नागार्जुन : सम्पूर्ण उपन्यास

खण्ड : दो

नागार्जुन : सम्पूर्ण उपन्यास

खण्ड : दो

नागार्जुन के उपन्यास

डा० रामविलास शर्मा की महत्त्वपूर्ण आलोचना-पुस्तक 'आस्था और सौन्दर्य' में 'हिन्दी उपन्यास : आस्था के नये संकेत' लेख की शुरुआत इस प्रकार होती है : "इधर अमृतलाल नागर, नागार्जुन, इलाचन्द्र जोशी, राजेन्द्र यादव आदि लेखकों के जो नये उपन्यास निकले हैं, वे उस नयी दिशा की ओर संकेत करते हैं जिस ओर प्रेमचन्द के बाद, व्यक्तिवाद और अतृप्ति की मरुभूमि पार करके, हिन्दी कथा-साहित्य को लोक-कल्याण के लिए आगे बढ़ना चाहिए···"

यह पंक्तियाँ आज से कोई 30-35 वर्ष पहले की हैं। लोक-कल्याण की जिस दिशा की ओर, हिन्दी कथा-साहित्य के बढ़ने की यहाँ आकांक्षा व्यक्त की गयी है, इस बीच उस दिशा में वह बढ़ा है या नहीं, बढ़ा है तो कितना बढ़ा है, इसका सर्वेक्षण-अध्ययन तो लोग अपनी-अपनी तरह से कर ही रहे हैं, आगे भी यह सब होता रहेगा, लेकिन इतनी बात साफ है कि डा० शर्मा ने ऊपर जो चार नाम गिनाये हैं, अगर उन्हीं की बनायी निर्देश-रेखा के आधार पर आज कोई बहस आयोजित हो तो उनमें से केवल दो नामों की अद्यतन प्रासंगिकता बची हुई नजर आयेगी। वे दो नाम हैं—स्व० अमृतलाल नागर और बाबा नागार्जुन के। नागर जी स्मृति-शेष हो चुके हैं (उनके कृतित्व का विस्तृत और सार्थक मूल्यांकन भी हुआ है, स्वयं डा० शर्मा ने किया है) और बाबा की कथा-लेखन सम्बन्धी सक्रियताएँ सातवें दशक के उत्तरार्ध ('इमरतिया' के बाद) में लगभग ठप्प पड़ी हैं। इसके बावजूद; लोक-कल्याण से जुड़ी हिन्दी उपन्यास-धारा के ऐसे अन्तिम महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व स्व० नागर जी और बाबा नागार्जुन ही हैं, जो प्रेमचन्द वाली कथागुरुओं की परम्परा में आते हैं, और जिनसे कथाकारों की भावी पीढ़ियाँ सतत प्रेरणा ग्रहण करती—सीखती रह सकती हैं। नागर जी की समग्र रचनाएँ एक साथ, रचनावली की शक्ल में, आ चुकी हैं और 'नागार्जुन : सम्पूर्ण उपन्यास' शीर्षक से प्रकाशित हो रही इन दो जिल्दों (यद्यपि इनका संयोजन, कृतियों के रचना-क्रम के अनुसार किया जाना बेहतर होता !) के साथ, बाबा का इधर-उधर बिखरा कथा-साहित्य भी एक साथ

सुलभ हो जाएगा।

उपन्यास की शक्ल में, बाबा की कुल बारह कथाकृतियाँ हैं। 'पारो' और 'नवतुरिया' मैथिली में मूल रूप से लिखी गयीं और शेष दस हिन्दी में—'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे', 'दुखमोचन', 'कुंभीपाक', 'उग्रतारा', 'अभिनन्दन', 'इमरतिया' और 'गरीबदास'। स्वयं रचनाकार की देख-रेख में हिन्दी में अनूदित हो जाने के बाद, 'पारो' को भी इधर कई वर्षों से बाबा के हिन्दी के मौलिक उपन्यास की तरह ट्रीट किया जा रहा है।" वह भी इस संस्करण में सम्मिलित है। 'नवतुरिया' का हिन्दी अनुवाद, बल्कि कहें कि समान्तर रचना स्वयं बाबा ने 'नयी पौध' के नाम से प्रस्तुत की थी—1953 में ही। वह भी इस योजना में शामिल है।

प्रेमचन्द का निधन 1936 में हुआ था, और नागार्जुन ने कथा-लेखन (यहाँ आशय 'उपन्यास' से है) के क्षेत्र में कदम रखा ठीक दस साल बाद, 1946 में ('पारो' का मैथिली में प्रकाशन उसी वर्ष हुआ)। '48 में उनका प्रथम हिन्दी उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' आया और, '52 में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए, 'बलचनमा' का लेखन-कार्य भी उसी दौरान शुरू हो चुका था। फिर तो यह सिल-सिला अगले 20-25 वर्षों तक चलता ही रहा। यहाँ यह विवरण देने का आशय विश्वविद्यालयी कोटि के अकादमिक आँकड़े जुटाना नहीं है, बल्कि उस प्रस्थान-बिन्दु की ओर सकेत करना है, जहाँ से प्रेमचन्द वाली लोक-कल्याण की कथा-धारा अगले चरण में प्रवेश करती है। हिन्दी जनपद के ग्राम-समाज का प्रथम दृष्टि-सम्पन्न (और समग्र) सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अध्ययन प्रेमचन्द के ही यहाँ लक्ष्य किया गया था। आज तक उसे कोई चैलेंज नहीं कर सका। बल्कि एक तरह से बैरोमीटर माना जाता है। (प्रेमचन्द के सरोकारों से इतर खड़े उन लोगों का काम भी प्रेमचन्द का नामोच्चार किये बिना नहीं चलता, जो विचारधारा को ताख पर रखकर समय और परिवेश की अल्पनाएँ भर सँवारने की वकालत साहित्य और रचना-कर्म में करते रहे हैं।) किन्तु प्रेमचन्द के बाद के समय में हमारे लोक-जीवन में संवेदना, दृष्टि और रुचियों के स्तर पर, दाँव-पेंचों के मामले में जो परिवर्तन आये, उनके परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द के मुहिम को आगे ले जाने का काम जिन रचनाकारों ने सँभाला उनमें नागार्जुन का नाम सबसे अलग चमकता है। प्रेमचन्द का होरी या उनके नारी पात्र स्वयं में वैसे सजग या दृष्टि-सम्पन्न नहीं हैं, जैसा बलचनमा है, या रतिनाथ की चाची और मधुरी है। हो भी नहीं सकते थे। यह उनके समय की सीमा थी। होते तो निश्चय ही आरोपित होते। नागार्जुन के समय और वातावरण में वह सीमा ढीली हुई। उनके यहाँ यह परि-वर्तन लक्ष्य किया गया। उसकी आलोचना भी हुई, जो स्वाभाविक थी, क्योंकि नागार्जुन मानते हैं कि, "लेखक को अपनी बौद्धिकता का रुख जनाभिमुख रखना

चाहिए।" स्पष्ट है, जनाभिमुख रचनाकार की आलोचना-उपेक्षा जनविमुख बौद्धिकों की ओर से होगी ही। लेकिन नागार्जुन के रचनाकार की एक सिफत यह भी है कि वह अपनी जनाभिमुखता को कलाविमुख नहीं होने देता और एक ऐसी जीवनधर्मी कला, एक ऐसा जीवनरस से सम्पृक्त शिल्प मिट्टी के एन्साइक्लो-पीडिया से विकसित करता है कि, उसका सीधा रिश्ता मिथिला के ग्रामांचल से होने के बावजूद, वह समग्र भारत का हो जाता है। यहाँ तक कि डा० लोठार लुट्से को, 'बलचनमा' पढ़ते हुए अचानक 17वीं शताब्दी के जर्मन कथाकार ग्रिमेल शॉसेन के उपन्यास 'सिम्पलीसिमीमस' की याद आने लगती है। वैसे हिन्दी मे ढेरों ऐसे उपन्यास—ऐसी कहानियाँ हैं, जिन्हें पढ़ते हुए सजग और पढ़ाकू पाठक को गेश्टाल्ट मनोविज्ञान, अजनबीयत-बोध, जुंग-यास्पर्स-फ्रायड की स्थापनाओं तथा प्रूस्त, लॉरेंस, तुर्गनेव, काफ्का, मार्केज़ के उपन्यासों-कहानियों की याद आती है—आयेगी, किन्तु नागार्जुन-जैसे रचनाकार के सन्दर्भ में की गयी इस या ऐसी किसी टिप्पणी का लगभग वही अर्थ है, जैसे 'इलियड' को पढ़ते हुए किसी को 'महाभारत' की याद आये। कालजयी और अपने समय-समाज से जुड़े रचनाकारों के बीच इस तरह का साम्य दिख जाना रचनाकर्म की स्वाभाविक प्रक्रिया का एक अंग है।

"मिथिला के पिछड़े हुए सामन्ती समाज, उसकी घुटन, जनता का संघर्ष और उसकी नयी चेतना" के जितने स्तर, जैसे हार्दिक स्पर्श नागार्जुन के उपन्यासों में देखने में आये हैं, विचार-संवेदना और परिवेश का जैसा संश्लिष्ट रूप उनमें उभरा है, उसे प्रेमचन्द की परम्परा के हिन्दी के स्वातन्त्र्योत्तर लोककल्याणकारी कथा-साहित्य का एक प्रमुख सर्ग मानना होगा—एक ऐसा सर्ग, जिसमें समूचे हिन्दी जनपद की पहचान की जा सकती है।

—सुरेश सलिल

उपन्यास-क्रम

दखमोचन

एक

टिप टिप टिप···

पिछले सत्तर घण्टों से आसमान टपक रहा था। ऊदे-ऊदे भारी-भारी बादल विराट चँदोवा की तरह ऊपर तने हुए थे। नीचे भीगी धरती सिकुड़-सिमटकर मानो छोटी हो आयी थी। कोचड़ की चिचिर-पिचिर ने मन की प्रफुल्लता हर ली थी।

टिप टिप टिप···

काली डरावनी रात का यह सन्नाटा कई गुना अधिक गहरा हो रहा था। अमराइयों में डालों और टहनियों की सन्धियों से चिपके झींगुरों की एकरस-एकस्वर झंकार बरसात की इस प्रकृति को भयानक बना रही थी। कहीं कोई कुत्ता भी तो नहीं भूंक रहा था।

धान के खेतों में पानी भरा था—कहीं कम, कहीं ज्यादा। मेंड़ों पर जुताई के समय किसानों ने मिट्टी डाल दी थी; वह अब बैठ गई थी, लेकिन फिसलन के मारे उस पर से चलना मुश्किल था।

'साली ने नाक मे दम कर दिया, थूऽऽ···'

मद्धू ने वर्षा को गाली दी और सुरती थूककर मेंड़ पर से खेत में उतर आया। एक बड़े मेढक ने छलाँग मारी तो जोरों की आवाज हुई, छपाक्! पानी के कुछ-एक छींटे मद्धू की नंगी बाँहों पर पड़े। न छाता था, न बाँस की छतरी ही थी। कन्धे पर गमछा-भर था जो कि अभी पूरी तरह भीगा नहीं था।

खेत मे धान के पौधों को रौंदता हुआ वह आगे बढ़ रहा था—सीधे पश्चिम या दक्षिण की तरफ नहीं, कोने की तरफ। मुलायम पाँक, कड़े-तीखे घोंघे, घास की पाँठें, बारीक घुँघचियाँ और जाने क्या-क्या तलवों के नीचे आ रहा था।

एक के बाद दूसरा खेत, दूसरे के बाद तीसरा, फिर चौथा···फिर और, फिर और! फिर ऊँची सतह की बलुआही जमीन मिली। मक्के की खूँटियों से उलझकर चलना असम्भव हो उठा तो फिर मद्धू ने मेंड़ पकड़ ली। यह रामसागर का ही खेत था। और माँ भी तो रामसागर की मरी थी न!

हाँ, अभी कुछ देर पहले रामसागर की बूढ़ी माँ के प्राण-पखेरू उड़े थे और मधुकान्त लोगों को इसकी खबर देने निकला था। दो ही जने बाकी थे, जिनके यहाँ जाना था—दुखमोचन और वेणीमाधव। टभका-कोइली कोई छोटा गाँव नहीं था, पाँच हजार से ऊपर की जनसंख्यावाली एक भारी बस्ती थी। दरअसल यह छोटी-छोटी कई बस्तियों का एक समूह था। बीच-बीच में खेत और बाग फैले हुए थे। उत्तर-पूरब की तरफ से कन्नी काटकर एक नदी निकल गयी थी। इधर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की पक्की सड़क, उधर मीटरगेज की रेलवे लाइन।

दुखमोचन का घर नजदीक आया तो बादल की टिपिर-टिपिर रुक गयी। कीचड़ से सने पैरों की उँगलियों में हल्की-हल्की-सी खुजली महसूस हो रही थी। मद्धू की तबीयत हुई कि कुएँ पर चलकर एक डोल पानी खींच ले और अच्छी तरह पैरों को धो डाले। लेकिन अभी तो रात-भर घूमना-फिरना था, फिर क्यों कोई पैर धोये।

दुखमोचन के दालान के सामने जो आँगन था, वह छोटा नहीं था। लगातार कई रोज वर्षा हुई थी, मगर सतह ऊँची होने के कारण आँगन घिच-पिच नहीं हो पाया। भीगी मिट्टी पैरों के नीचे रबड़-सी दबती मालूम दे रही थी।

बाहर बैठकखाने में कोई सो रहा था। दुखमोचन का भाई सुखदेव दालान के भीतर कोठरी में सोया होगा, मधुकान्त को यह निश्चय था ही; फिर भी वह दो सीढ़ी ऊपर बरामदे में न जाकर नीचे आँगन में ही खड़ा रहा।

उसने तम्बाकू निकाला, चूने के लिए चुनौटी निकाली अण्टी से। सोचा कि सुरती तैयार करके ही सुखदेव और दुखमोचन को जगाना उचित होगा···

लाठी एक तरफ खड़ी कर दी और उचककर वह बरामदे के किनारे पर बैठ गया। आठ-दस रोज बाद वह दुखमोचन के यहाँ आया था। इस बीच दुखमोचन बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए लगातार बाहर-ही-बाहर घूमता रहा; मधुकान्त की ही नहीं, गाँव के दूसरे लोगों की भी मुलाकात उससे नहीं हुई थी।

सुरती फाँककर मद्धू ने आवाज लगायी—"सुखदेव भाई! ओ सुखदेव भाई ई ई ई ई···"

"ऊँ !!"

सुखदेव ने करवट बदली तो अन्दर चारपाई चरमरा उठी।

"उठिए, सुखदेव भाई!"

"क्या है, मद्धू?"

"रामसागर की माँ मर गयी···"

"कब?" सुखदेव ने उसी तरह अलसायी आवाज में पूछा।

मुँह में सुरती की थूक भर आयी थी। मधुकान्त ने जैसे-तैसे कहा—"घण्टा-भर हुआ है।" जरा रुककर पूछा—"सुखदेव भाई, आपके टॉर्च में बैटरी तो

भरी होगी न ?"

किवाड़ खोलकर सुखदेव बाहर निकले और टॉर्च की रोशनी से समूचा आँगन जगमगा उठा।

सुरती थूककर मद्धू ने पूछा—"दुखमोचन कब लौटे ?"

"लौट तो आये थे शाम को ही, लेकिन सोये हैं देर से···"

"तो फिर उनको जगाने की जरूरत नहीं ?"

सुखदेव रहे तो चुप ही, लेकिन रंग-ढंग से साफ था कि बीच नींद का यह विघ्न उनको बेहद अखरा है।

इतने में अन्दर घर में से खड़ाऊँ की खटपट सुनायी पड़ी।

"लो, जग तो गये दुखन !"

आश्वस्त होने की भावना में डूबे हुए थे ये शब्द मद्धू को सुखदेव के मुँह से निकलने के कारण ही शायद अच्छे नहीं लगे। उसका दिल चाहता था कि हफ्ता-भर की गहरी थकावट के बाद दुखमोचन अभी दो-एक रोज पूरा आराम लें और इस समय बुढ़िया की श्मशान-यात्रा में सुखदेव ही शरीक हों।

अगले ही क्षण दुखमोचन मद्धू के सामने खड़ा था।

"तुम सो जाओ !" उसने भाई से कहा। फिर मधुकान्त के कन्धे थपथपाकर बोला—"चल, मैं चलता हूँ।"

"नहीं दुखन भैया, तुम बहुत थके हो।"

"चल, चल !" दुखमोचन ने हँसकर कहा—"पागल कहीं का !"

"नहीं, दुखन भैया !"

"उहूँ !"

खड़ाऊँ दुखमोचन ने बरामदे पर रख दी और आगे आँगन में निकल आया।

दाहिने कान पर जनेऊ चढ़ाते हुए सुखदेव ने कहा—"बबुअन, टॉर्च नहीं लोगे साथ ?"

"नही, भैया !"

"ले लो न !" मधुकान्त ने कहा तो दुखमोचन ने उसकी उँगली दबा ली मगर प्रकट रूप में कहा—"नहीं, रहने दो, बरसात का मौसम है और हमारी बँसवार में साँप रहते हैं···"

सुखदेव ने कहा—"हाँ, मद्धू, बबुअन ठीक कहते हैं···और···और मैं रामसागर की माँ के शव को कन्धे जरूर लगाता, किन्तु फिर तीन दिन हमारे शालिग्राम बिना पूजे ही पड़े रहेंगे, शंख में पानी भरकर कौन उन्हें नहलायेगा और कौन करेगा सहस्रशीर्षा मन्त्र का पाठ ? समझते हो न, मधुकान्त ?"

मद्धू चुप रहा। सुखदेव को तसल्ली नहीं हुई। उस चुप्पी से तो टॉर्च जलाकर

उसकी मुखमुद्रा देख लेनी चाही, लेकिन दुखमोचन के पीछे-पीछे जाते मधुकान्त के सिर और पीठ के पिछले हिस्से ही दिखायी पड़े, जिन पर किसी प्रकार का प्रभाव अंकित नहीं था।

सही रास्ता काफी घूमकर इधर आता था, इसी से मधुकान्त खेतों में से होकर दुखमोचन के घर तक पहुँचा था। अब वापसी में वेणीमाधव को साथ लेना था। गाँव के बीचोंबीच जो रास्ता था, दुखमोचन और मधुकान्त उसी पर आ गये।

तीनों रामसागर के दालान पर पहुँचे। अन्दर औरतें रो रही थीं। तीखी खुरदरी रुलायी के बेधक स्वरों से भादों की काली रात का वह मनहूस सन्नाटा टूक-टूक हो रहा था।

कंचन और कन्हाई लालटेन लेकर गये और बाँस काट लाये।

ताजे-हरे बाँस के डण्डों से उधर अर्थी बनती रही, इधर लोगों मे बातें होती रहीं। आँगन के कोने में तुलसी का चबूतरा था। उसी के नजदीक उत्तर की तरफ सिर करके लाश रख दी गयी थी। सामने ईंट के आधे टुकड़े पर ढिबरी जल रही थी, जिसका फीका-फीका आलोक बुढ़िया की बुझी पुतलियों से टकरा रहा था।

लोग यही मना रहे थे कि सुबह तक अब और वर्षा न हो कि रामसागर दुखमोचन को उठाकर अलग ले गया।

"गीली लकड़ी से तो लाश जलेगी नहीं, दुखन भाई!"

"किसके यहाँ हो सकती है सूखी लकड़ी?"

"अपने यहाँ तो फूस भी नही है, भैया!"

"मद्धू या वेणी मे न पूछ लें?"

"मद्धू का बाप कटखना है, होगी भी तो नहीं देगा।"

"और वेणी?"

"मालूम करो।"

दुखमोचन ने वेणी को बुलाया तो मालूम हुआ कि वह पुरानी फूस के चार-छह पूले दे सकता है।

बरसात के मौसम में गरीब गृहस्थों के यहाँ सूखी लकड़ियाँ पाना बड़ा ही कठिन है। लगातार कई दिन कई रात तक जब बारिश होती रही हो तो उस कठिनाई का न ओर मिलेगा न छोर!

दुखमोचन ने कुछ देर सोचा। एकाएक उसे काठ के अपने वे तख्ते याद आ गये जो तख्तपोशों की तैयारी के लिए चीरे गये थे। निश्चय ही यह लकड़ी अच्छी किस्म की थी, मगर रामसागर की माँ का अग्नि-संस्कार भी होना ही था।

कंचन और कन्हाई को साथ लेकर दुखमोचन फौरन आये और बैलोंवाले अपने बाहरी घर से तख्ते निकलवा ले गये। सुखदेव को कुछ पूछने की हिम्मत नहीं

हुई···

रामसागर ने सूखी लकड़ी का यह अनोखा इन्तजाम देखा तो आँखें भर-भर आयीं। भर्राये गले से बोला—"दुखन भैया, अपना भाई तो काम नहीं आया मगर तुम तो सगे भाई से भी बढ़कर निकले।"

झुककर उसने दुखमोचन के पैर छू लिये।

थोड़ी ही देर बाद अर्थी बाहर निकली। लोग चुपचाप नदी की ओर बढ़े। वर्षा सचमुच रुक गयी थी, लेकिन आसमान साफ नहीं हुआ था।

बीजू आम के पेड़ों का पुराना बाग नदी के किनारे-किनारे दूर तक फैला था। गाँव के मुर्दे वहीं जलाये जाते थे। इलाके के पुराने जमींदार राज रत्नेश्वरी नन्दन सिंह जी बहादुर की जमींदारी तो सरकार ने ले ली, मगर यह बाग नहीं ले सकी। राजा साहब ने चुपके-चुपके कुछ-एक धनी किसानों को बाग की जमीन पर पट्टा लिख दिया। अधिकांश पेड़ ईंटें तैयार करने वाली कम्पनियों के ठेकेदार कटवा ले गये। अब बाग बड़ी तेजी से खेतों का रूप ले रहा था, आम लोगों के लिए एक यह विकट समस्या थी कि मुर्दे कहाँ जलाये जायें। जमींदार नदी का कछार भी पट्टे पर उठा रहे थे। दुखमोचन ने गाँव के लोगों की राय से एक एकड़ जमीन श्मशान के लिए छेक रखी थी। इसमें चार-ही-छह पेड़ बच रहे थे अब।

वहीं रामसागर ने माँ का दाह-संस्कार किया। लाश जलने मे बहुत देर नहीं लगी। सुबह होते-होते नहा-धोकर लोग वापस आ गये।

रिवाज के मुताबिक मामी ने पत्थर का टुकड़ा आगे रख दिया तो दुखमोचन ने उस पर पैर रखकर पानी डाल लिया, फिर भीगे कपड़े बदले।

मामी बुड़बुड़ाने लगीं—"मरने का कोई और मौसम बूढ़ी को नहीं मिला क्या! माई री माई, न ऐसी बारिश देखी, न ऐसा मरना ही देखा! और···यह भी ऐसे परोपकारी जीव हैं कि भगवान् ही बचावें तो बचावें···नहीं जाते अर्थी के साथ तो बुढ़िया शायद इन्हीं के माथे मँडराती रहती···"

दुखमोचन ने मुस्कराकर कहा—"तुम तो नाहक रंज होती हो, मामी कोई-न-कोई तो हमारे घर से जाना ही न! मैं नहीं जाता तो भैया जाते कि नहीं?"

मामी चुपचाप रसोईघर के अन्दर चली गयीं।

दुखमोचन बरामदे पर रखे हुए पीढ़े पर बैठ गया। पैरों की उँगलियों के नाखून पानी में फूलकर और भी सफेद और भी बड़े लग रहे थे।

"बच्ची!···बच्ची ईईई!"

दुखमोचन ने बेटी को पुकारा। पिछवाड़े की बगिया मे जवाब में आवाज आयी—"आयी बापा, अभी आयी!"

पायलों की रुनझुन-रुनझुन से अपने आने की घोषणा करती हुई एक चौदह बरस की लड़की सामने दिखाई पड़ी। उसके दोनों हाथ गीली-रूखी मिट्टी से सने

थे, बड़ी-बड़ी कमलपत्री आँखों में उल्लास छलक रहा था। गोरी सूरत, सुडौल देह !

पिता ने स्नेहपूर्ण निगाहों से पुत्री को देखा।

वह नजदीक आकर खड़ी हो गयी।

नाक पर पसीने की बुँदियाँ चमक रही थीं। चोटियों को जूड़े की शकल में लपेट लिया गया था, किन्तु उनके दोनों सिरे अपनी काली-चमकीली झालर छिपा नहीं सके थे। सामने पेशानी पर एक पतली लट काले कुण्डल की तरह चिपकी हुई थी।

दुखमोचन ने कहा—"सारी बागवानी आज ही पूरी कर लोगी, बेटा ?"

लड़की खिलखिला पड़ी और बोली—"अभी-अभी तो खुरपी लेकर उधर गयी थी कि आपने पुकार लिया। पद्मा ने हजारा गेंदे के पौधे भेजे हैं, सोचा कि लगा दूँ।"

पिता मुस्कराये। नरमी से कहा—"उस रोज पुराना ब्लेड दिया था, ले तो आओ, बेटी !"

दुखमोचन ने पैर के नाखूनों की तरफ हाथ से इशारा किया और जाने क्या सोचने लगे।

बच्ची ने ब्लेड लाकर पिता को थमा दिया और वापस चली गयी फुलवाड़ी की ओर। पायलों की रुनझुन-रुनझुन हौले-हौले शून्य में समा गयी। दुखमोचन ब्लेड से नाखून काटने लगे। उधर दालान पर सुखदेव शालिग्राम की पूजा कर रहे थे। छोटी घण्टी की टुन-टुन टिन-टिन आवाज लगातार आ रही थी। साफ था कि पण्डित सुखदेव मिश्र हमेशा की तरह आज सवेरे भी भगवान् को रिझाने बैठ गये थे।

आसमान साफ था और सूरज की किरणें खुलकर खेलने लगी थीं। बीच में आँगन, चारों तरफ घर। लगता था कि भादों की कड़ी धूप धरती का गीलापन पाँच-सात घण्टों में ही सोख लेगी।

बाएँ पैर की बूढ़ी उँगली यानी सबसे मोटी और पहली उँगली बचपन में ठेस खाकर बुरी तरह घायल हो गयी थी। तभी से उसका नाखून ठूँठ पड़ गया था। कोने में मसूर-नुमा खोडर बन गयी थी; उतनी दूर नाखून को सँभालकर काटना होता था। बाकी सारी उँगलियों के नाखून काटकर इसे आखिर में लेते थे।

कई दिनों से अखबार नहीं देखा था। बाढ़-पीड़ितों के सहायता-कार्य में मशगूल रहने के कारण क्षण-भर की भी फुरसत नहीं मिली थी। अब आज काफी अखबार इकट्ठे ही देखने थे, मगर पलकें नींद की प्यासी थीं।

एक बार पलक झिपी तो ब्लेड बहक गया। उसी अँगूठे का नाखून जरा

अन्दर तक कट गया। दुखमोचन ने धोती की खूंट से खून पोंछा। पसीना, पानी, खून या आँसू, कोई भी तरल पदार्थ क्यों न हो, खादी उन्हें चट से सोख जाती है। और दुखमोचन ने तो स्कूली जीवन में स्याहीसोख का भी काम अकसर खादी के अपने कुर्ते से ही लिया था।

छोटी थाली में नाश्ता लेकर मामी सामने आयीं तो धोती की खूंट में खून के धब्बे देखते ही आतंक और विस्मय के मारे अपनी जीभ पर उन्होंने दाँत गड़ा लिये।

"कुछ नहीं, मामी!" दुखमोचन ने कहा। मगर मामी चीखीं--"तुमसे हजार बार कहा कि ब्लेड से नाखून काटने का काम न लिया करो, लेकिन एक जाहिल औरत की बात कौन सुनता है!"

दुखमोचन को हँसी आ गयी, बोला—"तो कुल्हाड़ी ही थमा देती!"

मामी का साँवला-सलोना स्वस्थ मुखमण्डल गम्भीर हो गया। नाश्ते की थाली नीचे रखकर वह पीने का पानी लेने गयीं। लौटी तो कहा—"कहाँ रखा वह ब्लेड? लाओ, मेरे हवाले करो।"

करौंदे का अचार और दो हल्के परांठे। दुखमोचन आहिस्ते-आहिस्ते नाश्ता करने लगा। मामी ने छोटी लड़की को आवाज देकर बाँस की चौकोर पंखी मँगवा ली थी और अब नजदीक बैठकर हवा करने लगीं।

एक परांठा खत्म हुआ तो आधा गिलास पानी पीकर दुखमोचन ने मामी की तरफ देखा।

विधवा जीवन की कठिन और लम्बी तपस्या उनकी आँखों के पानी में कडवापन नहीं भर पायी थी। पिछले कई वर्षों से वह इस परिवार की सेवा कर रही थी। मायके में या ससुराल में अपना कोई था भी तो नहीं। थे तो बस, बड़ी ननद के यही तीन लड़के। सुखदेव की स्त्री धनी बाप की इकलौती थी। वहाँ आकर हमेशा के लिए जम जाने में उसे घाटा था। दुखमोचन की औरत पाँच साल पहले हैजा की शिकार हुई थी। नारायण हजारीबाग मे महकमा-जंगलात का मुलाजिम था। उसकी पत्नी वहीं रहती थी। बच्चों में दो थे दुखमोचन के, एक नारायण का।

मामी चुपचाप पंखा झल रही थीं। बीच-बीच मे दुखमोचन की ओर आँखें उठाकर देख लेती थीं।

दूसरा परांठा थोड़ा ही बाकी था कि मामी ने पूछ लिया—"आज भी कहीं जाना है?"

"नहीं, आज कहीं नहीं जाऊँगा।"

"तुम्हें क्या, कोई आ जायेगा तो उसके साथ चल दोगे! और एक बार घर से निकले कि पतंग भी क्या उड़ता है···"

"मामी, क्या मैं यों ही मारा-मारा फिरता हूँ ?"

"नहीं तो कहीं कोई अहल्या पड़ी होगी तुमसे छू जाने की आशा में ! है न बाबू ?"

दुखमोचन को हँसी आ गयी और मामी की दबी मुस्कान अब उभर आयी। काली पुतलियोंवाली आँखों के दूधिया कोये चमकने लगे। फिर वह बोली—"नहीं, आज मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगी; बिस्तर ठीक कर देती हूँ, आराम करो !"

नाश्ता हो चुका था। अब हाथ-मुँह धो रहे थे दुखमोचन।

मामी उठकर गयीं, अन्दर से सुपारी और सरौता ले आयीं।

आँचल से सरौता पोंछकर सुपारी के टुकड़े करने लगीं तो बोलीं—"कई दिन हुए, पान खत्म हो गया। आज कोई प्रबन्ध करूँगी।"

धोती के छोर से हाथ-मुँह पोंछ चुके तो दुखमोचन ने कहा—"हाट या स्टेशनवाले बाजार से मँगवा लिया होता। लोग आते-जाते तो रहते ही हैं; एँ !"

"बरई से पान की पत्तियाँ खरीदने का शऊर किसी-किसी में हुआ करता है।" मामी ने कहा और सुपारी का चौथाई टुकड़ा थमा दिया।

दुखमोचन को मामी ने ही पान खाना सिखाया था। चार-पाँच साल के अपने कलकत्ता-प्रवास में उन्होंने कभी-कभार ही पान खाया होगा। बंगाली या उड़िया पान से उन्हें विरक्ति थी। हाँ, मगही पान का बनारसी विन्यास अच्छा लगता था। मामी के मायकेवाले जिला पूर्णिया के सुखी-सम्भ्रान्त काश्तकार लोग थे, जिनके यहाँ पान और जर्दा रोज़ाना खुराक में शामिल था। इस परिवार में भी मामी ने पान खाने के कई चेले तैयार कर लिये थे। दुखमोचन और छोटी बहू में तो यह शौक अपनी जड़ जमा चुका था; बच्ची भी पान खाने लग गयी थी।

"अखबार कहाँ है ?" दुखमोचन ने पूछा—"भैया के पास या मेरी कोठरी में ?"

"आज इस वक्त अखबारों में मगजमारी करोगे ?"

"हाँ, कुछ उलट-पुलट लूँगा तो तसल्ली हो जायेगी।"

"सब कुछ सँभालकर रखा हुआ है। आओ।"

दुखमोचन आँगन के उत्तर की तरफ अपने घर के अन्दर गये तो मामी ने भी पीछे-पीछे प्रवेश किया।

लकड़ी की दो अलमारियाँ, दो-तीन ट्रंक, एक पलंग, एक फोल्डिंग चारपाई और मामूली-सी एक मेज—अन्दर यही सामान था। अलमारियों के पीछे टूटी कुर्सियों के कंकाल झाँक रहे थे। मेज के नीचे सही-साबित एक छोटा खूबसूरत स्टूल पड़ा था।

पलंग पर गद्दा। गद्दे पर लाल-पीली किनारियोंवाली नीली चादर। सफेद खोलवाला तकिया। सिरहाने की तरफ सामने खुश-फैल जंगला। ऊपर दीवार में

पाँच-सात फोटो टँगे थे—गांधी, नेहरू, लेनिन, सनयातसेन, भगतसिंह, सुभाष···

दुखमोचन लेट गये तो मामी ने अलमारी खोली। अखबार निकालकर सिरहाने की तरफ ला रखे—दैनिक आर्यावर्त, अवन्तिका, पुस्तकालय सन्देश, सोवियत भूमि, अमेरिकन रिपोर्टर, साप्ताहिक हिन्दुस्तान के आठ-दस अंक थे।

दुखमोचन ने लपककर आर्यावर्त का एक अंक उठा लिया।

निगाहें मोटे-मोटे शीर्षकों पर दौड़ने लगीं···पुलिस और छात्रों में भिड़न्त··· ताप्ती नदी में अनोखी बाढ़, गोरखपुर जिले के बीसों गाँव जलमग्न···कोसी बाँध फिर संकट में—गोआ में नरमेध···समूचे भारत से सत्याग्रहियों के जत्थे···

मामी पानी से भरा लोटा और गिलास रख गयीं चुपचाप।

छोटी लडकी ने आहिस्ता से झाँका, फिर दबे-पैरों अन्दर घुस आयी। पिता को इसका कुछ भी पता न चला; वह अखबारों में ही मग्न रहे।

लडकी थोड़ी देर तक पिता की ओर ही आँखें गड़ाये रही, बाद में दीवार की तरफ ऊपर जिधर फोटो टँगे थे उधर देखने लगी। एक पूँछकटी छिपकली शिकार की खोज में छप्पर के अन्दर से उतर आयी और गांधीजी के पास ठिठक गयी।

छोकरी ने उसे पंजे से थूथन झाड़ते देखा तो अनजाने ही पलंग की पट्टी से आ लगी। अब उसका एक हाथ बाप के बदन पर पड़ा।

दुखमोचन ने लेटे-ही-लेटे चुमकारकर लड़की को ऊपर खींच लिया, निगाहें लेकिन अखबार की पंक्तियों में ही चिपकी रहीं। छोकरी ने ठुड्डी पकड़कर छिपकली की तरफ पिता का ध्यान आकृष्ट किया।

अखबार छोड़कर दुखमोचन उठ बैठे। हुलसकर बेटी को छाती से दबा लिया और बोले—"अरे वाह, इसकी तो पूँछ कटी है—बता री छिपकली, क्या नाम है तेरा?"

बाप की गोद में बैठी और प्यार के बोझ से दबी हुई छः साल की वह लड़की खुशी के मारे फूलकर कुप्पा हो रही थी। खिलखिलाकर बोली—"मैं बताऊँ बापा, इस गिरगिट का नाम?"

"बता तो देखूं।"

"इसका नाम है पूँछकटी।"

दुखमोचन हँसने लगे। लड़की भी हँसने लगी।

"क्या हो रहा है? बाहर से मामी की आवाज आयी।"

दुखमोचन ने उसी तरह आवाज ऊँची करके कहा—"कुछ नहीं, मामी।"

"अरी, तू उन्हें आराम नहीं करने देगी टुनू ऽऽऽ···"

"नहीं मामी, मैंने ही बिठा लिया है इसे।"

"अच्छा, तो यह बात है!"

लड़की सहमकर काठ हो गयी थी और पिता की गोद से उतरकर घर से निकल जाने का जी कर रहा था उसका।

दुखमोचन ने बारी-बारी से उसके गाल थपथपा दिये और कान से मुँह सटाकर कहा—"आज रात को तुझे कहानियाँ सुनाऊँगा, हाँ! अभी बाहर जाकर खेल··· और पटना जाऊँगा तो गुड्डा लेता आऊँगा तेरे लिए, और चाकलेट···"

"नहीं," कान हटाकर टुनू ने पिता से आँखें मिलायीं और कहा—"चाकलेट नहीं, लेमनचूस लूँगी मैं तो!"

"तो लेमनचूस ही सही," दुखमोचन ने उसे चूम लिया और अगले ही क्षण गोद से उतारकर पलंग के नीचे खड़ा कर दिया।

लड़की चली गयी। दुखमोचन लेट गये और आँख मूँदकर निद्रादेवी के दरबार में प्रवेश किया।

दो

मड़वा और मकई की आधी फसलें बरबाद हो गयी थीं। भादों में होनेवाले 'आउँस' और 'गम्हड़ी' धानों को भी बाढ़ ने काफी नुकसान पहुँचाया था। अधिकांश खेत-मजदूर रोजी की तलाश में अपना-अपना इलाका छोड़कर पूरब-पश्चिम जानेवाली रेलगाड़ियों पर सवार हो चुके थे।

मलेरिया और कालाजार ने तो लोगों को तबाह कर ही रखा था। आसिन में एक नयी किस्म की खुजली फैलने लगी। यह दाद की तरह समूचे बदन में छा जाती थी, गोरी सूरत को साँवली और साँवली को काली कर देती थी। बूढ़ों-सयानों का कहना था कि इस बार बाढ़ के पानी में कोई जहरीला असर था जिससे सभी का खून खराब हो गया है। दरअसल यह बीमारी न दाद थी, न खुजली ही; एक विचित्र प्रकार का चर्मरोग था यह। बदन में कहीं आपको खुजलाहट महसूस हुई और आपने खुजला लिया। थोड़ी देर बाद उस जगह चकत्ते निकल आये, फिर आप उसे जाने-अनजाने खुजलाते रहे, सूजन जरा-जरा बढ़ती रही और चमड़ी का ऊपरी छिलका सफेद पड़ता गया। चार-छः रोज बाद देह में यहाँ-वहाँ चकत्ता-ही-चकत्ता। चकत्तों पर फुंसियाँ निकलती गयीं, पकती गयीं और सूख-साखकर आपका रूप बनाती गयीं। न खारिश हटी, न चकत्ते मिटे।

सुखदेव पर और छोटी बहू पर इस बीमारी ने हमला किया तो मामी घबरा

उठीं। पहले समझा जाता रहा कि भात और गेहूँ की रोटी जिन्हें नसीब नहीं होती उन्हें ही यह रोग अपना शिकार बनाता है। लेकिन अन्दाज गलत निकला।

दुखमोचन ने बार-बार होमियोपैथी और आयुर्वेद की किताबों में इस बीमारी की बाबत उलट-पुलटकर देखा, मगर कुछ समझ में नहीं आया। आखिर दरभंगा ले जाकर सरकारी मेडिकल कॉलेज के एक चर्मरोग-विशेषज्ञ डॉक्टर से दोनों का खून टेस्ट करवाया।

नुस्खा देते वक्त डॉक्टर ने बतलाया कि गन्धक का अधिक-से-अधिक इस्तेमाल करें। गन्धक का मरहम, गन्धक का तेल, गन्धक की टिकिया। नीम के साबुन से या नीम के पानी से घाव को अच्छी तरह धो लें, फिर गन्धक मिलाकर नारियल का तेल बार-बार लगावें।

मगर यह दो-चार का रोग तो था नहीं, आस-पास के गाँव के सत्तर प्रतिशत लोग इसके शिकार थे। जहाँ-तहाँ मवेशियों पर भी इसका असर देखा गया। दुखमोचन इलाके के पाँच-सात नेताओं और ऑफिसरों से इस सिलसिले में बार-बार मिले, मेडिकल कॉलेज के अध्यापकों और छात्रों से बार-बार सहायता की प्रार्थना की, जिला अधिकारियों तक प्रतिनिधि-मण्डल की मार्फत जनता की सम्मिलित आवाज पहुँचायी। नतीजा यह हुआ कि गन्धक के दर्जनों पैकेट और नारियल के तेल से भरे बीसियों डिब्बे ग्राम पंचायत के दफ्तर में पहुँच गये। सार्वजनिक मामलों मे दिलचस्पी लेनेवाले कुछ-एक व्यापारियों ने नीम की सौ टिकिया साबुन की दी थीं।

पचायत गाँव की गुटबन्दी को तोड़ नहीं सकी थी अब तक। चौधरी टाइप के लोग स्वार्थ-साधन की अपनी पुरानी लत छोड़ने को तैयार नहीं थे। जात-पाँत का टण्टा, खानदानी घमण्ड, दौलत की धौंस, अशिक्षा का अन्धकार, लाठी की अकड़, नफरत का नशा, रूढ़ि और परम्परा का बोझ—जनता की सामूहिक उन्नति के मार्ग में एक नहीं, अनेक रुकावटें थीं। मुसीबत के दिनों में बाहरवालों से तत्काल सहायता पाना जितना कठिन था, उससे भी कठिन था सहायता में मिली हुई वस्तुओं और रकमों को सही जगहों तक पहुँचाना। स्वार्थी और लालची लोगों के सींग नही हुआ करते, न कोई खास किस्म का झण्डा-पताका होता है उनका।

एक रोज रात के अँधेरे में मास्टर टेकनाथ एक पैकेट गन्धक, पाँच पौण्ड वजन का नारियल के तेल का टिन, पाँच टिकिया नीम के साबुन की, और डॉक्टरी मरहम की दो-तीन डिबिया लेकर आया।

सुखदेव शाम की सन्ध्या और पूजा से निबट चुके थे, छोटी भतीजी की तबीयत बहला रहे थे।

पूछा उन्होंने—"क्या है, मास्टर ?...बैठो !"

"कुछ नहीं, सुखदेव भाई !" मास्टर बैठ गया। बरामदे में चारपाई पहले से

ही बिछी पड़ी थी।

छप्पर के बाँस से लालटेन लटक रही थी। साफ शीशे की उस मद्धिम रोशनी में सुखदेव ने टेकनाथ के चेहरे की तरफ गौर से देखा। चालीस से ऊपर का अधेड़ आदमी। खिचड़ी बाल। गोल मुखड़ा। गेहुँआ सूरत। गले के नीचे आधी बाँहों-वाली डोरिया कमीज थी। काली-पतली कोर की मैली धोती का छोर पैरों से बित्ता-डेढ़ बित्ता ऊपर ही लटक रहा था। छाती पर बायीं तरफ कमीज के पाकिट में मामूली क्लिपवाली पीली पेंसिल चमक रही थी। पैर खाली थे।

मास्टर ने लड़की को नजदीक बुलाया। अँगोछे में बँधा सामान थमाकर उससे कहा—"अन्दर रख आओ, बिटिया ! समझी !···"

माथा हिलाकर लड़की ने हामी भरी। सुखदेव के सामने से बरामदे के छोर पर कोठरी की ओर जाने लगी, तो उन्होंने लपककर पकड़ा—"देखूँ क्या है ?"

मास्टर ने मुस्कराकर कहा—"आप इसे जाने दीजिए सुखदेव भाई, अभी-अभी मैं सब कुछ बताता हूँ आपको···जा बिटिया, रख आ। अँगोछा वापस लेती आना···समझी न !"

लड़की अन्दर चली गयी।

सुखदेव हथेली पर तम्बाकू-चूना मलकर सुरती तैयार कर रहे थे। टेकनाथ मास्टर चारपाई से उतरा, उनके करीब आकर बैठ गया और फुसफुसाकर बातें करने लगा।

हथेली पर सुरती तैयार होती रही। बातचीत के बीच दोनों के सिर हिलते रहे, आँखें फैलती-सिकुड़ती रहीं। विदेशी लालटेन के मद्धिम प्रकाश में दस-पाँच कीड़े हुलसते-झुलसते रहे।

लड़की खाली अँगोछा लेकर वापस आयी कि टेकनाथ ने सुखदेव से सुरती लेकर निचले होंठ के हवाले की।

जाने लगा तो सुखदेव बोले—"अरे, बैठो अभी !"

"नहीं भैया, जरूरी काम है।" मास्टर ने कहा।

"बाजार जाओ तो पंचांग लेते आना।"

"कौन-सा ?"

"कोई भी।"

"अच्छा, लेता आऊँगा।"

थोड़ी देर बाद अन्दर खाने गये तो मामी ने सौगात की सारी वस्तुएँ सामने फैला दीं। दस-पाँच कौर ही मुँह के अन्दर डाले थे, बाजारू सामग्री की प्रदर्शनी निगाहों के आगे आ पड़ी, तो मुस्कराने लगे पण्डितजी।

खाते समय बोलते नहीं थे। तनी भौंहों और फैली आँखों के जरिये आश्चर्य का भाव बिखेरते हुए प्रश्न की मुद्रा में सिर हिलाया—"क्या है यह सब !"

दुगुने विस्मय में मामी चिहुँक उठीं। कहा—"टुनू के हाथों यह सब आपने ही तो भेजा था अभी! लाल रंग के अँगोछे में···"

मुखदेव ने माथा हिलाकर स्वीकार किया और खाने लगे।

मामी के हाथ में पंखी आ चुकी थी। नजदीक बैठकर अब वह सुखदेव को हवा कर रही थीं। जरा देर बाद उन्होंने अपर्णा यानी बड़ी बच्ची को पुकारा, "अप्पी, ओ अप्पी!"

"अभी आयी, मामी!" अपर्णा ने ऊँची आवाज में जवाब दिया। वह इस समय चाची से नेपाल के उनके अपने ग्राम-जीवन की बातें सुन रही थी। बीच में उठ जाना उसे बुरी तरह अखरा। लेकिन क्या करती?

मामी को बच्चे भी मामी ही कहते आये थे। सुखदेव को छोड़कर बाकी सबको वे भी 'तुम' या 'तू' कहकर सम्बोधित करतीं। सुखदेव चार साल बड़े और खट-कर्मी पण्डित थे, इसी से उनके लिए मामी के मुँह से 'आप' निकलता।

अपर्णा आयी। मामी ने इशारे से बताया कि अपने चाचा के सामने फैली वस्तुएँ उठा ले जा। वह उन्हें आँचल में उठाने लगी तो चाचा ने बायें हाथ से संकेत किया, "नहीं, अभी इन्हें नहीं उठाओ···जाओ, अपना काम करो।"

अपर्णा वापस चली गयी।

रसोईघर के बरामदे में पीढ़े पर बैठकर सुखदेव खाना खा रहे थे। सामने आँगन था। बरामदे के नीचे मुहल्ले का चौकीदार बैठा हुआ था—काला कुत्ता। खानेवाले के परिचित चेहरे की तरफ और भोजन-सामग्री की तरफ उसकी निगाहें गड़ी थीं। हमेशा की तरह उसे इस थाली के भात के आखिरी कौर का इन्तजार था।

मामी का दाहिना हाथ सहज गति से पंखी झलता रहा, चेतना थोड़ी देर के लिए कहीं और चली गयी थी··· कोई आकर कुछ दे जाये और घर के लोग बिना समझे-बूझे यों ही उसे ले लें, दुखमोचन के लिए यह बात बरदाश्त के बाहर थी। कुछ वर्ष पहले, पड़ोस के गाँव का कपड़ा-सौदागर मुखदेव पण्डित को रेशमी छींटों का एक छोटा बण्डल थमा गया था। चार रोज बाद दुखमोचन को पता लगा तो उन्होंने छींटें वापस भेज दी थीं। पिछले साल अकाल-निवारण समिति का एक सदस्य यहाँ के लोगों में सहायता का सामान बाँटने आया था। जाते-जाते ओवल्टीन और जमाये हुए दूध के दो छोटे डिब्बे छोड़ता गया। सुखदेव ने वह दूध भगवान् को भोग लगाकर बच्चों में वितरित करना शुरू कर दिया। मालूम होने पर दुखमोचन ने भाई को कितना लताड़ा था! दुर्गा-पूजा के दिनों में गाँव के नौजवानों ने नाटक किया था। पीछे हुआ यह कि मुँह में लगाने का पाउडर काफी बच गया। मधु-कान्त का भतीजा अपने लिए उसे छिपा रखना चाहता था। चचेरे भाइयों के डर से यहाँ अप्पी को चुपचाप थमा गया पाजी। टुनू ने चुगली खायी···पिता अपर्णा

पर बहुत गुस्सा हुए। मामी को भी बातें सुननी पड़ीं…

तीन-चौथाई खाना खाकर सुखदेव ने पानी-भरा गिलास उठा लिया और ऊपर-ही-ऊपर मुँह में पानी डालने लगे। काशी के पढ़े पण्डित थे, गिलास या लोटे में मुँह लगाकर पानी नहीं पीते थे।

गट-गट की हल्की आवाज आयी तो मामी का ध्यान टूटा। थाली की तरफ देखा तो तरकारी नहीं थी।

भिगोये हुए अरवा चावल पिसवाकर पीठी तैयार करवायी थी और उसमें लपेटकर कचनार के फूलों के पकौड़े तले थे। दुखमोचन को ये पकौड़े बेहद पसन्द थे।

पंखी नीचे रखकर मामी उठीं, चार पकौड़े लाकर थाली मे रख दिये। हाथ धो आयीं तो बैठकर फिर पंखी झलने लगी।

मिसरी की बुकनी मिलाकर गाय का दूध पीते थे, पाव डेढ़-एक। रात का खाना खाते ही कटोरा-भर दूध पी जाना उनका दस्तूर था। अप्पी दूध ले आयी थोड़ी देर बाद, ऊपर से मिसरी की बुकनी छिड़क गयी।

खाना खाकर सुखदेव ने दूध का कटोरा खाली किया। आचमन का पानी लेकर मौन तोड़ा—"मास्टर टेकनाथ दे गया है यह सब…क्या-क्या है, देखा नहीं खोलकर ?"

मामी ने कहा—'मैं नहीं जानती, यह आपका काम है।"

कुत्ते के लिए डबल कौर भात मुट्ठी मे लेकर सुखदेव उठे, खड़ाऊँ पहनकर बाहर गये। मुहल्ले का परिचित कुत्ता पहले से ही बैठा था, पीछे-पीछे गया। हाथ-मुँह धोकर वह अन्दर आये।

अँगोछे के छोर मे हाथ-मुँह धोकर उन्होंने पैकेट खोला। अपनी कड़ी महक से गन्धक ने मानो उनकी नाक तोड़ दी। मुँह बनाकर 'ऐ ऐ' करने लगे। टिकिया और मरहम सूँघे, तो उनसे गन्धक की बू भभक उठी। नारियल के तेल का डिब्बा हथेली पर लेकर वजन का अन्दाज लिया तो आँखें फैल गयीं। बोले—"दो सेर से कम तो क्या होगा ! क्यों, अप्पी ?"

अपर्णा कुछ क्षण पहले ही आकर नजदीक खड़ी थी। मुसकराकर कहा—"हाँ, चाचा, दो सेर तो जरूर होगा।"

मामी कुछ नहीं बोलीं। अपर्णा ने हाथ आगे बढ़ाया—"लाइए, देखूँ। कहाँ का है ? कलकत्ता का या बम्बई का ?"

सुखदेव ने तेल का डिब्बा अप्पी को थमा दिया। मामी की तरफ मुँह करके कहने लगे—"हमारे बबुअन दुनिया-भर के लिए तो सचमुच दुखमोचन हैं, किन्तु अपने परिवार में किसे क्या कष्ट है, इसकी उन्हें रत्ती-भर परवाह नहीं ! फुंसियों के मारे समूचा बदन सड़ गया है, मेरा भी और बहू का भी। देखती हो न !"

मामी अब भी चुप रहीं।

वह सफेद फाइन साड़ी पहने हुए थीं, उनका सुर्ख और चौड़ा किनारा लालटेन की मधुर-मद्धिम रोशनी में खूब ही चमक रहा था। साँवले चेहरे पर उनकी बड़ी-बड़ी आँखें भी खूब चमक रही थी।

साड़ी की बँधी खूंट खोलकर मामी ने एक इलायची निकाली। सुखदेव ने हाथ बढ़ाकर उसे ले लिया। छिलका छुड़ाते हुए अपर्णा की ओर देखा और दाने मुँह में डाल लिए।

अपर्णा तेल के डिब्बे पर छपा विवरण बाँच रही थी जो कि चार लिपियों और भाषाओं में अलग-अलग छपा था। हिन्दीवाला विवरण पढ़कर उसने डिब्बा बरामदे पर रख दिया और बोली—"बड़ा अच्छा तेल है।"

सुखदेव ने कहा—"अपनी चाची को समझा दो कि इस तेल में गन्धक मिलाकर लगायेंगी तो चार ही दिन में खुजली भाग जायेगी। साबुन की टिकिया भी तो है। यह नीम का असली साबुन होगा···दो हैं, एक वे लगाया करेंगी ··"

"और दूसरी आप!" चाचा के मुँह की बात छीनकर भतीजी बोल उठी।

साबुन की एक टिकिया और मरहम की एक डिबिया लेकर सुखदेव बाहर बैठकखाने की तरफ जाने लगे तो अपनी से कहा—"बाकी यह सब सँभालकर रखना!"

चाचा बाहर निकले तो भतीजी ने छोटी चाची को पुकारा—"अरे, आकर देखो भी तो!"

मामी ने मुँह बनाकर अपर्णा की तरफ देखा और कहा—"बाप को नहीं पहचानती है? आने तो दे उन्हें···"

अपर्णा सचमुच ही बाप को नहीं पहचानती थी। सुखदेव भी भाई को नहीं पहचानते थे। छोटी बहू भी नहीं पहचानती थी उन्हें। बस मामी ही दुखमोचन के मर्म की बातें जानती थीं, और कोई नही जानता था उन्हें।

अपर्णा और बहू खा-पीकर सो गयी। मामी ने सिर-दर्द का बहाना करके खाना नहीं खाया। चटाई और तकिया बरामदे में डालकर लेटे रहीं। बत्ती कम करके लालटेन को अन्दर रख लिया गया था।

दुखमोचन लौटे तो रात डेढ़ पहर ज्यादा हो गयी थी। दस बजे वाली ट्रेन उत्तर की तरफ जा चुकी थी। दालान के सामने बाहरी आँगन में झण्डे के बाँस के करीब वही काला कोतवाल बैठा था। गर्दन ऊँची करके पूँछ को बार-बार हिला-डुलाकर उसने उनकी अगवानी की। आगे बढ़ते ही तरुण हरसिंगार की हँसती-खेलती टहनियों ने अपनी ताजा खुशबू से उन्हें मस्त कर दिया। भीतर आँगन के प्रवेश-द्वार पर दाहिनी ओर वह भी पहरेदार की तरह ही लग रहा था।

आहट पाते ही मामी उठीं, बत्ती तेज करके लालटेन ले आयीं घर से। दुखमोचन ने जूते खोलकर कुर्ता उतारा। कुर्ता मामी को थमाकर बनियाइन निकाली।

उसे नाक के करीब लाकर चटाई पर फेंक दिया और बोले—"दिन-भर पसीना निकलता रहा, आधा आसिन बीत चला फिर भी उमस कम नही हुई···"

मामी ने पीढ़ा लाकर रख दिया। दुखमोचन बैठ गये।

दिन-भर की थकान ने चेहरे की ताजगी चाट ली थी—राहु की छाया जिस तरह चाँद की ताजगी चट कर जाती है।

मामी पंखे से उन्हे हवा करने लगी। कहा—"नहाने की जरूरत नही, अँगोछा भिगोकर समूची देह पोंछ लेना ! बस···"

"नही, मामी," दुखमोचन ने कहा—"नहाऊँगा तो अवश्य।"

मामी बोली—"मौसम है बुखारों का, कब कैसे किसको बिस्तर पकड़ना पड़े, कोई ठीक नही।"

"सब ठीक है, मामी !"

दुखमोचन सुबह तो नहाते ही थे, रात को भी अक्सर नहाते थे। इस मामले में मामी की हिदायत का बाँध बीच-बीच में टूटता रहता था।

दाढ़ी की खूँटियाँ इस कदर उभर आयी थी कि मामी की निगाहों में बुरी तरह गड़ती थी। मन-ही-मन मामी ने अपने-आपसे कहा—आज भी इन्हें हजामत बनवाने की फुरसत नही मिली···फिर उन्हें हज्जाम पर गुस्सा आया कि हफ्ता-हफ्ता गुजर जाता है, समय पर कभी नही आता, पाजी कही का !·· सेफ्टीरेजर पड़ा है मुद्दत से, उसको नही छुयेंगे। साँप है, डस नही लेगा !

गेहुँआ सूरत के गोल गालों पर काली खूँटियाँ सचमुच भद्दी लग रही थीं। मामी के जी मे आया कि आईना लाकर हाथ मे थमा दें। लेकिन उस वक्त उन्होंने कुछ नही कहा। चुपचाप हवा करती रही।

पन्द्रह-बीस मिनट तक जुड़ा लिये तो दुखमोचन उठकर बाहर आये। धोती, अँगोछा और लोटा लेकर मामी पीछे-पीछे आयी।

डोल-डोरी हमेशा कुएँ के जगत के पास ही रखी रहती थी। दो गज लम्बा और एक गज चौड़ा पटरा बना था सीमेण्ट का, जिस पर बैठकर लोग नहाते थे; कपड़े पछीटने थे।

दुखमोचन बैठ गये पटरे पर, मामी कुएँ मे पानी भर-भरकर डोल थमाती गयीं। दस-बारह डोल पानी बदन पर डालकर नहाना हुआ।

कपड़े बदलकर धोती पछीटकर अन्दर आये। खाना खाया।

मामी ने जान-बूझकर अभी उनसे मास्टर टेकनाथवाली बात नही बतायी कि कहीं नीद में अड़चन न आ जाये।

टुनू रात को आठ बजे ही सो जाती थी और तड़के उठती थी। उठकर पिता के बिस्तर पर पहुँचती। आधा घण्टा, पाव घण्टा तक उनसे बात करती और खेलती। जिस रोज ऐसा नहीं होता, उस रोज वह दिन-भर उदास रहा करती या

चाची और बहन से लड़ती रहती।

मामी बारह महीने सुबह-सुबह नहा लेती। उसके बाद पिण्डी की शकल में स्थापित कुलदेवी दुर्गा की पूजा करती। फिर अपनी इष्टदेवी 'काली' का एक अक्षर वाला बीज मन्त्र 'क्ली' जपती थीं, हजार बार। आखिर में एक-एक अध्याय चण्डी और गीता। अपने इस नित्य-कर्म में एक घण्टा समय उनका जाता था।

अगले दिन वह खूब सवेरे सोकर उठीं। नहा-धोकर पूजा-पाठ से निबट चुकीं तब भी अभी सूरज नहीं निकला था।

दुखमोचन टुनू से बातचीत कर रहे थे।

लड़की ने कल भालू का नाच देखा था। मामी चुपचाप अन्दर आयीं तो वह नाच की नकल उतार रही थीं···ढब्बर ढब्बर ढब्बर ढब्बर! थइया थइया थइया थइया! ढम-ढमाक्! ढब्बर ढब्बर ढब्बर···

दुखमोचन लेटे-लेटे ही यह सब देख रहे थे। नकल दिखानेवाली टुनू के लिए उन्होंने आधे से अधिक पलंग छोड़ दिया था, खुद एक तरफ हटकर पलंग की पट्टी से सट गये थे। लड़की ताली पीट-पीटकर भालू के नृत्य का अभिनय कर रही थी। पिता की प्रसन्न मुख-मुद्रा से उसका उत्साह दुगुना हो गया था।

मामी को किसी ने नहीं देखा। वह ठिठककर खड़ी रह गयीं। क्षण-भर को उनका भी चेहरा इस दृश्य से खिल उठा। उन्हें अपना बचपन याद आ गया। वह भी अपने बाप की ऐसी ही लाड़ली थी कभी; उन्हें भी नाच-गाना, स्वाँग-थियेटर का भारी शौक था।

दो मिनट तक मामी प्रतिमा-सी खड़ी रहीं— भीत से सटकर, कि नाच की भाव-भंगिमा में कुलाँच खाकर टुनू ने उन्हें देख लिया। आँखें चार होते ही बेचारी शरमा गयी। दुखमोचन ने गर्दन फेरकर नजर मारी तो मामी को मुस्कराते पाया। फिर तो दोनों भभाकर हँस पड़े।

लाज के मारे लड़की भाग गयी।

थोड़ी देर तक हँसते रहे।

तब मामी ने रातवाली बात बतायी। दुखमोचन का चेहरा बेहद गम्भीर हो उठा।

काफी देर तक उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला तो मामी बोलीं— "आज हजामत कहीं जरूर बनवा लेना!"

"ऊँ:," अनमने स्वर में दुखमोचन ने कहा और कान पर जनेऊ चढ़ाया।

लोटा और कन्धे पर अँगोछा। बाहर निकले, मामी भी घर से बाहर आयीं। पीछे मुड़े बिना ही बोले—"सारी चीजें अलमारी में रख लो। देखना इनका इस्तेमाल न होने पावे।"

बाहर कुएँ के नजदीक, सीमेण्ट के पटरे पर बैठकर सुखदेव इमली की टहनी

की दाँतों से दातुन को घिस रहे थे। दुखमोचन ने भाई की ओर देखा तक नहीं। डोल से पानी ले लिया। सीधे पूरब की तरफ चल पड़े।

आसिन का साफ-सूफ नीला आसमान बड़ा ही सुहाना लग रहा था क्योंकि धूप नहीं चढ़ी थी अभी। हरी-ताजी दूबों के नुकीले सिरे ओस की बूंदों के बोझ से झुके क्या थे, एक-एक मोती को कैद किये हुए इठला रहे थे।

दूर तक धान के खेत फैले थे। खिलती मजरियाँ हरियाली एकरसता को खत्म कर रही थीं। ओस के भीगे पत्ते यहाँ तेजी से चमक रहे थे।। मेंड़ों पर से दुखमोचन आगे बढ़ने गये।

खेत खत्म हुए तो बाँसों का जगल आया, फिर अमराई।

अमराई में घुसे तो नदी के किनारे जा निकले। काँस के सफेद फूलों की बाढ़ देखकर तबीयत मानो धुल ही गयी।

यह जीवछ की शाखा-नदी थी, अपना कोई स्वतन्त्र नाम नही था। चौमासे में फूल उठती थी, बाकी ऋतुओं में तो नहाने लायक भी पानी नही होता था। किनारे के गाँवो मे किसान जगह-जगह इसकी धारा को बाँध लेते थे और सूखा के दिनों मे करीन या कूंड लगाकर पानी उठाते थे।

दुखमोचन ने दिशा-फरागत से निबटकर नदी के पानी मे हाथ-मुँह धोये, जामुन की टहनी से दातुन किया और लौट आये।

नहा-धोकर नाश्ता किया। धुली वनियाइन और कोकटी रंग का कुर्ता डालकर निकल पड़े।

नित्याबाबू गाँव के सबसे धनी व्यक्ति थे। उम्र पचपन और साठ के अन्दर थी। आधुनिक ढंग का पक्का दुमंजिला मकान पहले-पहले उन्होंने तैयार करवाया था। सोलह जगले, आठ दरवाजे! बड़े-बड़े चार कमरे! लोहा और सीमेण्ट का खुलकर उपयोग हुआ था। शोहरत थी, दस हजार रुपये नकद लगे थे। लोगों ने ग्रामोफोन पहले उन्ही के दालान पर सुना था; पिछले वर्ष से रेडियो भी बज रहा था। पोता विलायत गया था बैरिस्टर बनने। छोटे लड़के की शादी हुई तो बाईस हजार का तिलक चढ़ा। पोती का ब्याह हुआ तो पन्द्रह हजार गिने थे।

दुखमोचन पहुँचे तो नित्याबाबू मुलायम चटाई पर पेट के बल लेटे हुए थे। नौकर मालिश कर रहा था। लाल और पीले तेलों की दो शीशियाँ रखी थीं। नाश्ते की तश्तरी और चाय की जूठी प्याली पर मक्खियों के झुण्ड जमा थे। अंग्रेजी दैनिक के पेज अलग-अलग पड़े थे।

"आओ दुखमोचन!" नजर पड़ते ही नित्याबाबू ने कहा।

दुखमोचन खाली कुरसी पर बैठे और हालचाल पूछा।

हालचाल सुनकर नित्याबाबू ने नौकर को चाय लाने की हिदायत दी और उठ बैठे।

धीमी आवाज में बोले—"बुलाया इसलिए कि बहुत दिनों से मुलाकात नहीं हुई थी तुमसे। आजकल व्यस्त रहते हो। दुनिया-भर की फिकर तुम्हें सताती है। अरे, कुछ हम बुड्ढों की भी फिकर रखो, दुखन !"

दुखमोचन समझ नही पा रहे थे कि बाबू नित्यानन्द ठाकुर के पेट में क्या है। बिना किसी खास मतलब के तो उन्हें याद नही आयी होगी दुखमोचन की।

नित्याबाबू के स्वर एकाएक हमदर्दी में डूब गये—"भले तो तुम कलकत्ता में थे। ओह, कितना कमाते थे ! कैसे सलीके से रहा करते थे। सिल्क का कुर्ता, नफीस धोती और कीमती जूते पहनकर जब तुम गाँव मे निकलते थे तो हमारा सीना तन जाता था···अरे, तुम्हें यह क्या सूझा है कि नौकरी छोड़कर···"

दुखमोचन को फिजूल लगी यह बातें। कहा—"अजी छोड़िये, इस पुराने पचड़े में अब क्या रखा है ? चाचाजी, कोई काम की बात कीजिये।"

क्षण-भर के लिए रुककर भी नित्याबाबू ने छोड़ा नही। हमदर्दी और गहरी हो आयी—"बेटा, अभी तेरी उमर ही क्या है। मैंने तो पैंतालीस वर्ष की उम्र में तीसरी शादी की थी। किस चीज की कमी है ? भगवान् ने क्या नहीं दिया है तुझे ! जवानी के जोश में अभी तो नही अखरेगा मगर बुढ़ापा आने पर···"

दुखमोचन इस बकवास से उकता उठे तो प्रसंग बदलना चाहा।

चक्रपाणि गत दो वर्षों मे लन्दन में कानून की पढ़ाई कर रहा था। नित्याबाबू को अपने पोते की विदेश-यात्रा का भारी गुमान था और जब कभी कोई इस बात की चर्चा छेड़ देता तो उनके पोपले गाल खौलते तेल में पकते गुलगुलों की तरह ऊपर-नीचे होने लगते। वह देर तक चक्रपाणि की खूबियो और सम्भावनाओं पर प्रकाश डालते रहते। दुखमोचन को यह मालूम था।

यों ही दुखमोचन ने कहा—"चाचा, लन्दन में आजकल बड़ी अशान्ति है। जहाजी मजदूर हजारो की तादात मे हड़ताल करनेवाले हैं, समूचा शहर उनका साथ देगा···चक्रपाणि का खत-वत आया है न ?"

निताई बाबू के मन ने झटका खाया। आशंका और आश्चर्य मे भरकर बोले—"कहाँ ? अखबारों में इस तरह की एक भी खबर कहाँ आयी है, दुखमोचन ? तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ ?"

"मुजफ्फरपुर के एक लड़के ने अपने पिता को लिखा है।"

"मगर बच्चाबाबू ने तो किसी को कुछ नहीं लिखा है।"

"शायद आनेवाले पत्र में लिखेगा।"

"हुँ···"

अब कुछ देर तक चक्रपाणि की बातें होती रही। इस बीच चाय आयी तो दुखमोचन ने प्याले को खाली किया।

आखिर नित्याबाबू अपने मतलब पर पहुँचे। कहा—"गेहूँ आनेवाला है, कैसे

क्या होगा उसका ?"

तो यह बात है, दुखमोचन ने सोचा, मुफ्त का गेहूँ चाहिए इनको ! इसलिए हमदर्दी की पिचकारी छोड़ रहे थे !

"पता नहीं कब तक आयेगा ?" जवाब में दुखमोचन बोले और नित्याबाबू की बदलती निगाहों को तोलने लगे।

"कहाँ रखा जायेगा उतना गेहूँ ? अपने-आप बुड़बुड़ाये नित्याबाबू। एकाएक उठकर खड़े हुए और दुखमोचन का कन्धा थपथपाया। फुसफुसाकर कहा—"आधा अनाज लोगों में तत्काल बाँट देना और आधा तुम अपने घर में रख लेना…"

दुखमोचन उठकर खड़े हो गये। भौंहें तन रही थीं, चेहरा सिकुड़ रहा था।

नित्याबाबू की सधी नजरों ने यह भावान्तर ताड़ लिया। हँसकर बोले—"पागल कहीं के ! अमानत के तौर पर सौ-दो सौ मन गेहूँ अगर तुम्हारे घर में पड़ा रहेगा तो क्या बुरा है ? समय-समय पर लोगों को मिलता रहेगा न ?"

दुखमोचन खड़े-खड़े न जाने क्या सोचते रहे। पता नहीं, नित्याबाबू के हितोपदेशी सूत्र उनके अन्दर धँस रहे थे या नहीं ! लेकिन उनकी चुप्पी से उत्साहित होकर नित्याबाबू कहने लगे—"बाढ़ और अकाल के संकटों का शिकार, बताओ कौन नहीं है ! कौन है जिसे गेहूँ नहीं चाहिए ? कहे तो कोई छाती पर हाथ रखकर…"

पान की सीठी दबी पड़ी थी मुँह के अन्दर। उसे थूककर नित्याबाबू ने गला साफ किया। अब उन्हें लगा कि दुखमोचन पर इन बातों का रत्ती-भर भी असर नहीं पड़ा। फिर उन्होंने आखिरी तीर छोड़ा—"साँवाकोदो और मकई, मड़ुआ ही जिनके लिए सबसे अच्छी किस्म का अनाज ठहरा, उन्हें गेहूँ देना बेकार होगा। वे ले तो लेंगे, लेकिन मिट्टी के भाव सारे दाने बेच डालेंगे। घूम-फिरकर सहायता का वह गेहूँ सही जगहों पर आ ही जायेगा। विधाता ने गेहूँ और धान सबके लिए थोड़े ही सिरजे हैं ?"

"ठीक, बिलकुल ठीक, चाचा !" मन को काबू में करके दुखमोचन ने कहा और हँस पड़े।

नित्याबाबू ने झुककर स्टूल पर से चाँदी की डिब्बी खोली। दो बीड़े पान के निकाले। एक दुखमोचन की तरफ बढ़ाया और दूसरा अपने मुँह में डालकर जर्दा की छोटी शीशी आगे कर दी; आँखों से इशारा किया—लो !

दुखमोचन ने चुटकी-भर जर्दा ले लिया और विदा हुए।

नित्याबाबू ने पीछे से कहा—"माघ में मुन्नी का गौना होगा, पाँच-सात मन गेहूँ चाहिए…"

अटक गये नित्याबाबू फिर; दुखमोचन खुले नहीं, न पीछे मुड़कर देखा ही।

लेकिन नित्याबाबू से नहीं रहा गया; ऊँची आवाज में कहा—"तुम्हारा ही भरोसा है, दुखमोचन ! इस बुड्ढे को भूलना नहीं, बेटा !"

दुखमोचन क्षण-भर के लिए ठिठक गये, मुड़कर पीछे देखा। उसी तरह ऊँची आवाज में कहा—"मैं भला आपको भूलूँगा ? कभी नहीं ! कभी नहीं !"

"खूसट कहीं के !" बुड़बुड़ाये दुखमोचन और अभी-अभी जो जर्दा पान मुँह के अन्दर डाला था, उसे थूककर आगे बढ़ गये।

तीन

कंचन का छोटा दालान लोगों से ठसाठस भरा था।

यह गाँव का वह हिस्सा था जो बेहद घना था और जहाँ कड़ी मेहनत-मजदूरी करके गुजारा करनेवाले लोग रहते थे। ये कई जातियों के थे। अच्छी हैसियत के थोड़े ही परिवार थे इनमें। भूमिहीनों की ही तादाद ज्यादा थी।

चार सौ मन गेहूँ आया था। हो तो गयी थी देर, फिर भी इस गल्ले की जरूरत थी।

तख्तपोश पर दुखमोचन बैठे थे। वेणीमाधव के सामने कापी थी। पेट के बल झुककर फाउण्टेन पेन से वह कुछ लिख रहा था। मधुकान्त तख्त से सटी भीत से उठँगकर खैनी मल रहा था।

आसपास कंचन, चुल्हाई, गोनौड़, कन्हाई, राधे, परमेसर, सनीचर आदि बैठे थे। इधर-उधर पचासों जने खड़े या बैठे दुखमोचन और वेणीमाधव की ओर देख रहे थे। जुलाहों के टोले-मुहल्ले से रहीम और लतीफ आये हुए थे। चमारों की बिरादरी के बूढ़े बौधू चाचा मौजूद थे।

दो-ढाई घण्टे की माथापच्ची के बाद फेहरिस्त तैयार हुई थी। वेणीमाधव अब उसे अलग कापी में उतार रहा था।

फी परिवार आधा मन के हिसाब से दो सौ सत्तर परिवारों को एक सौ पैंतीस मन; दस-दस सेर के हिसाब से नौ सौ परिवारों को दो सौ पच्चीस मन; एक-एक मन के हिसाब से पच्चीस परिवारों को पिचासी मन; कुल जमा ग्यारह सौ पचानवे परिवारों में तीन सौ पच्चीस मन अनाज तक्सीम किया जानेवाला था।

पूरी लिस्ट तैयार करके वेणीमाधव ने कापी दुखमोचन को थमा दी। देर से बैठा था, जोरों की पेशाब लग आयी थी; दालान से बाहर निकल आया।

दुखमोचन ने पैंसिल से दो-एक जगह जाने क्या ठीक-ठाक किया। लोगो की तरफ इधर-उधर निगाहें घुमाकर बोला—"भाइयो, फेहरिस्त तैयार करना झंझट का काम होना है। आप सब की मदद न मिली होती तो भारी दिक्कत का सामना करना पड़ता। अब यह तैयार है, सुनिए···"

पूरी लिस्ट बाँचकर दुखमोचन ने सुना दी। इस बीच वेणीमाधव अपनी जगह पर आ चुका था और एक बार फिर मद्धू की बायीं हथेली पर सुरती तैयार हो गयी थी।

"क्यो, ठीक है न ?" दुखमोचन ने लोगों से पूछा।

बौधू चाचा की आँखें फैल गयी। उसने लतीफ की ओर देखा। वह पास ही खड़ा था।

अपनी उँगली से बौधू की बाँह गोदकर भौहो के इशारे से मालूम करना चाहा—क्या है ?

बिना दाँतोंवाले पोपले मुह के अन्दर बूढ़े की जीभ चंचल हो उठी, मगर होंठ यों ही खुले रहे। शब्द एक भी नहीं निकला।

लतीफ बोला—"बोलेगा सो नहीं होता है, बस अन्दर-ही-अन्दर जीभ नचा रहा है !"

"बोलो ! बोलो !" एक साथ कई आवाजें उठीं।

बौधू दुखमोचन की तरफ गौर से देखने लगा। उन्होंने हाथ के इशारे से बढ़ावा दिया—"कहो, क्या कहना है ?"

"सरकार !" बौधू ने मानो बड़ी मुश्किल से कहा—"दू ठो नाम छूट गया है, सरकार !···"

वह फिर चुप हो गया, दुखमोचन का ध्यान फेहरिस्त के उस अंश पर भागा जहाँ चमार भाइयों के नाम आये थे।

बूढ़ा जरा देर तक चुप रहा तो दुखमोचन ने अपनी आँखों के इशारे से उसे वे नाम बतलाने के लिए उत्साहित किया।

बौधू ने कहा—"मालिक, एक ठो नाम बुधनी का छूट गया है; दूसरा नाम छूटा है झिंगुर का···"

दुखमोचन मधुकान्त और वेणीमाधव की तरफ देखने लगे, उन दोनों की निगाहें रामसागर पर जा अटकीं। रामसागर और कंचन पर चमारों की बिरादरी में से अकाल-पीड़ितों का पता लगाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। उन्होने पाँच नाम दिये थे।

रामसागर ने डपटकर बौधू से पूछा—"कौन बुधनी ?"

"मोसम्मात है, बीमार रहती है बेचारी ! आगे-पीछे कोई नहीं है उसके···"

फिर उसने सोमना से पूछा—"क्यों रे, जानता है तू बुधनी को ?"

चौड़े चेहरे का बादामी आँखोंवाला एक साँवला नौजवान सामने आकर बोला—"परसों तक तो वह थी नहीं, कहीं चली गयी थी, सागर बाबू !"

इस पर बौधू ने कहा—"चिलबिल की बेवा है हजूर, भूख के मारे नहीं रहा जा सकता है तो हाट-बाजार की तरफ निकल जाती है और चार-चार, छः-छः दिन बाद लौटती है ।"

"अच्छा झिंगुर कौन है ?" दुखमोचन ने पूछा ।

सोमना ने कहा—"नदी के पार लखनौली में चरवाहे का काम करता है बाबू !"

"जी हजूर, टूगर है । न माँ है उसके, न बाप ..."

बौधू ने लडखडाती जीभ से समर्थन किया ।

पाँच सेर अनाज पाने वालों में बुधनी का नाम दर्ज कर लिया गया । झिंगुर के लिए इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी गयी ।

दुखमोचन ने पूछा लोगों से—"अब तो ठीक है न ?"

"ठीक है, ठीक है !" एक साथ ही बहुत-सी आवाजें उठीं ।

दालान में भीतर की खूँटी से मृदंग टँगा था । एक छोकरे ने देर की चुप्पी और स्थिरता से ऊबकर उसे थपथपा दिया तो दुखमोचन ठठाकर हँस पड़े । मधुकान्त, वेणीमाधव और रामसागर ने भी साथ दिया । फिर तो करीब-करीब सारे ही हँस पड़े ।

कंचन की बहन बाल्टी में गुड़ का शरबत ले आयी । पहला लोटा भरकर उसने दुखमोचन को थमाया ।

दो घूँट पीकर वह बोले—"शाबाश चमकी ! क्या बढ़िया शरबत बनाया है ! काली मिर्च और सौंफ पीसकर डाल दिये हैं । वाह री बहिनिया !"

अपने शरबत की प्रशंसा सुनकर चमकी का चेहरा खिल उठा । मुसकराकर बोली—"तुम्हें खिलाने-पिलाने को भला क्या है हमारे पास, भइया ? पानी भी तो पराया ही लायी हूँ !"

सचमुच कुआँ काफी दूर था । इधर के दो सौ परिवारों के बीच दो छोरों पर दो कुएँ पड़ते थे । पिछले चालीस-पचास वर्षों में आबादी काफी बढ़ी थी । दो कुएँ और होते तो ठीक थे ।

दुखमोचन ने दूसरा लोटा नहीं लिया । मधु, वेणी और रामसागर ने भी बारी-बारी से शरबत पिया ।

फिर एक-एक टूक सुपारी मिली चारों को ।

दुखमोचन दालान से निकल आये और ऐलान किया—"दोपहर बाद अपना-अपना अनाज ले जाना !"

सभी के चेहरे खुशी में दमकने लगे ।

कंचन बोला—"मैं बाजार जा रहा हूँ।"

"चमकी तो रहेगी न ?" वेणीमाधव ने पूछा।

माथा हिलाकर आहिस्ता से उसने जवाब दिया—"हूँ !"

अगले ही क्षण कंचन का दालान सूना पड़ गया। लोग अपने-अपने घर की ओर चले गये थे।

मधुकान्त और रामसागर कुछ दूर तक साथ आकर दुखमोचन और वेणीमाधव से अलग हो गये।

ये दोनों एक तरफ के रहनेवाले थे।

चलते-चलते दुखमोचन ने पूछा—"तुम्हारी खुजली का क्या हाल है, वेणी ?"

अब ठीक है, दुखन भैया !

दुखमोचन ने पीछे घूमकर देखा। सचमुच चकत्ते सूख गये थे और वेणी का बदन चिकना हो गया था। बस, सूखी खाल के हल्के छिलके भुस की तरह यहाँ-वहाँ दिखायी दे रहे थे।

बोले—"भैया की भी खारिश छूट चली है, जोगी की अम्मा को भी आराम है।"

"सब को आराम है, दुखन भैया !" वेणी ने कहा—"गन्धक का मलहम बैदजी ने इतना अच्छा तैयार किया है कि कुछ न पूछो ! गन्धक और नारियल का तेल तुम्हारी कृपा से आ ही गया था, ऊपर से बैदजी ने भी अपनी तरफ से उसमें कोई बूटी डाल दी थी।"

दुखमोचन बोले—"वह कोई मामूली बैद थोड़े ही है ! आयुर्वेद की आचार्य-परीक्षा में अव्वल आया था। सोने के दो तमगे मिले थे। चीर-फाड़ की डॉक्टरी ट्रेनिंग भी ले रखी है। छोटा नागपुर इलाके की किसी बड़ी डिस्पेन्सरी का इंचार्ज है। पता है, कितना पाता है ?"

वेणी ने इनकारी मुद्रा में सिर हिला दिया।

"दो सौ !"

"मगर उसके अपने गाँव मे लोगों की अच्छी राय नही है उसके बारे में। यह क्या बात है, दुखन भैया ?"

दुखमोचन को हँसी आ गयी। मुँह से निकला—"घर की मुर्गी दाल बराबर !"

आगे वेणीमाधव का छोटा भाई मिला। उसने दुखमोचन को बताया कि लोगों में अजीब-अजीब अफवाहें फैल रही है।

दुखमोचन क्षण-भर के लिए रुक गये। पूछा—"एक-आध बता भी दो, जयमाधव !"

जयमाधव बीस-बाईस का नौजवान था, एक आँख का भैंगा। मुँह से लफ्ज

जल्दी-जल्दी निकलते थे। तैश में आकर बोलता तो लगता कि भाड़ में मक्के डाल दिये हैं और अब खीलों का फूटना फटाफट शुरू हो गया है।

उसने बताया—"पहली अफवाह है कि यह गेहूँ ऐसे हैं कि मशीन मे इनका सत निचोड़ लिया गया है। गेहूँ नहीं, गेहूँ की सीठी हैं यह ! दूसरी अफवाह है कि जो भी कोई गेहूँ लेगा, उसे जबरन कोसी नदी के किनारे ले जायेंगे; अफसर लोग उससे महीनों बिना मजदूरी के काम लेंगे। तीसरी अफवाह है कि अगले साल सरकार चार गुना ज्यादा अनाज वसूल कर लेगी···"

पतली मूँछोवाले होंठ खिल उठे। दुखमोचन की मुसकराहट बड़ी प्यारी लगती थी लोगों को। जयमाधव उनकी तरफ देखता रहा कि मुसकान के पीछे क्या छुपा है।

लेकिन वह मुसकराकर ही रह गये, बोले एक शब्द भी नहीं।

वेणीमाधव का मकान करीब था, वे दोनों भाई उधर गलियारे में मुड़ गये।

मन-ही-मन नित्याबाबू की इन कमीनी हरकतों को कोसते हुए दुखमोचन घर पहुँचे, तो सूरज ठीक ऊपर जा चुका था।

सुखदेव खा-पीकर लेट चुके थे। यह उनका दैनिक दस्तूर था। वज्र गिरे चाहे आग लगे, धरती पर ओले बिछ जायें चाहे बादल टूट पड़े, सुखदेवबाबू दिन का खाना खाकर दो घण्टे सोयेंगे जरूर !

मामी ने धीरे-से कहा—"बस, इतनी जल्दी लौट आये ? और काम नहीं था ?"

मुसकराये दुखमोचन, कहा नहीं कुछ।

उत्तरवाले घर के बरामदे पर दो चटाइयाँ बिछी थीं। पाँच गज लम्बा लाल कपड़ा उन पर फैला हुआ था। अपर्णा और पद्मा कैंची लेकर सफेद कागज से बड़े-बड़े अक्षर तैयार कर रही थीं। पास ही कड़ाही में लेई रखी थी।

घर के अन्दर घुसना था दुखमोचन को; पूछ लिया—"क्या हो रहा है, अप्पी ?"

बड़ी-बड़ी आँखें पिता के चेहरे पर जमाकर अपर्णा ने कहा—"दुर्गा-पूजा में अब की बाहर के मेहमान आनेवाले हैं न ! मेहराब बनेगा, उस पर लाल कपड़ा टाँगा जायेगा, बापा !···"

"अच्छा ऽऽ !"

"हाँ, चाचाजी !" पद्मा ने सहेली का समर्थन किया।

दुखमोचन क्षण-भर के लिए घर के अन्दर गये; कुरता खोलकर खूंटी पर टाँग आये। जोरों की भूख लगी थी। सवेरे चिउड़ा-दही और चीनी का नाश्ता करके निकले थे, अब पाँच घण्टे बाद पेट बिल्कुल खाली था।

रसोईघर के बरामदे पर खाने बैठे। मामी पंखी लेकर हवा करने लगीं।

दस-बारह कौर खाकर आधा गिलास पानी पिया और सामनेवाले दूसरे बरामदे पर पद्मा की तरफ देखा।

पद्मा का बड़ा भाई मिहिरकुमार कॉलेज में पढ़ता था। नाटक में अभिनय करने का तो शौक था ही, कविता और कहानी लिखने का भी शऊर था उसमें। शशिकान्त, नवकुमार, अमलेन्द्र, प्रज्ञाकर, रविनाथ, मिहिरकुमार ··यही चार-छः नौजवान तो थे जो कॉलेज में पढ़ रहे थे। गरमी और दुर्गा-पूजा की लम्बी छुट्टियों में जब ये लोग आ जुटते तो कुछ-न-कुछ इनका अपना प्रोग्राम चला करता।

अभी-अभी अपर्णा ने कहा था, बाहर के मेहमान आ रहे हैं। दुखमोचन की समझ में नहीं आ रहा था कि यह कैसा खेल लड़के रचानेवाले हैं। क्या करेंगे मेहमान यहाँ आकर? इस बार तो नाटक की भी कोई तैयारी नहीं नजर आ रही थी। उन्होंने चाहा कि चुपचाप खाना खा लें और घण्टा-आधा घण्टा पलंग पर पीठ टिकाकर आराम करें। लेकिन नहीं, नहीं रहा गया।

खाते-खाते बार-बार अपर्णा और पद्मा की ओर देखने लगे। मामी ने बड़े जतन से मसाला भरकर करेले तले थे। आज दुखमोचन ने न तो करेलों की प्रशंसा की, न दुबारा माँगा ही। उनका ध्यान ही नहीं था इस ओर। मामी को ताड़ते देर नहीं लगी। छोकरियों पर गुस्सा चढ़ रहा था कि जाने क्या कह दिया है इनसे। पंखीवाला हाथ ठुड्डी से अड़ाकर पूछा—"करेले अच्छे नहीं बने, बबुअन?"

"बहुत अच्छे हैं, मामी!" दुखमोचन जैसे-तैसे बोले तो आत्मा ने कहा, क्यों ठगते हो बेचारी को! साफ-साफ बतला दो कि नहीं मालूम, कैसे बने हैं करेले और कैसी बनी है दाल···

"और ला देती हूँ," मामी करेले लेने गयीं।

दुखमोचन ने पद्मा से पूछा—"कौन-कौन आनेवाले हैं बाहर से, बेटा?"

"भैया से मालूम करके बताऊँगी।"

"तुम्हें पता है, अप्पी?"

"नहीं, पिताजी। हम तो सिर्फ भोलण्टियर हैं इन लोगों के। काम बेशक लाद दें, बात एक भी नहीं बतलायेंगे।"

"हाँ चाचाजी, हमसे काम-ही-काम लेते हैं···"

दोनों हँसने लगीं। दुखमोचन भी मुसकराये।

थाली में दो करेले और कटोरे में दाल डाल दी मामी ने। कहा—"कौन आनेवाले हैं? कौन आनेवाले हैं। अरे, तुम्हारे दादा-परदादा तो नहीं आनेवाले हैं न? क्यों इतना परेशान होते हो छोटी-छोटी बात पर? लाख समझाती हूँ कि कम-से-कम खाते समय तो मन को फिकर और फतूर से अलग रखा करो···

दाल अ ज तुम्हारी ही पसन्द की पकायी थी, बतलाओ क्या है ?"

दुखमोचन ने चट से कहा—"वाह, खूब सोंधी है ! भाड़ में भुने हुए मूँग की दाल जैसी तुम खिलाती हो वैसी और कहीं नहीं नसीब होती, मामी !"

मामी का चेहरा खिल उठा। दुखमोचन के शब्दों ने अब के अन्दर पहुँचकर दिल के वे तार छू लिए थे जो कि आस्था, अभिमान और अनुराग में से कढ़े होते हैं।

हाथ धोकर फिर से पंखी झलने बैठ गयी थीं मामी। सहज सावधानी से दुखमोचन खाना खा रहे थे और मामी की निगाहें उनके चेहरे पर जमी थीं।··· काले और मुलायम बाल तरतीब मे छँटे थे। पतली-छोटी मूँछें साफ दाढ़ीवाले गोल चेहरे पर खूब फब रही थी। नाक पर तिल का निशान था, मामी का ध्यान उस पर आकर अटक गया।

खाना खतम हुआ तो बोलीं —"गाय ने दूध देना बन्द कर दिया है, कई दिनों से बिना दही का खा रहे हो।"

"अजी, सब चलता है घर में।" दुखमोचन बोले और आखिरी दो कौर भात मुट्ठी में लेकर उठ गये। कुत्ता जाने कब का बैठा था, वह भी उठा।

लड़कियाँ अपने काम में मशगूल रहीं। टुनू कहीं बाहर गयी हुई थी खेलने। बहू उड़द का बेसन लपेट कर अरुई के पत्तों मे 'अरकोंछ' बना रही थी। दुखमोचन हाथ धो आये, मामी से पान-जर्दा लिया और अन्दर जाकर पलंग पर लेट गये।

अखबार देखते-देखते पता नहीं कब आँखें झिप गयीं।

मधुकान्त ने आकर जगाया तो ढाई बज रहे थे।

बाहर दालान पर और अँगनई मे भारी भीड़ इकट्ठी थी। वेणीमाधव किसी पर गरज रहा था। बीच-बीच में सुखदेव और मधुकान्त की आवाज सुनायी पड़ती थी।

मामी ने पानी लाकर थमाया। दुखमोचन ने कुल्ली की, आँखों को पोंछा। एक बीड़ा पान और चुटकी-भर जर्दा मुँह के हवाले करके दालान की ओर निकल आये।

दालान के बरामदे में गेहूँ की बोरियाँ अँटी पड़ी थीं—फिलहाल दस बोरियों का अनाज निकाला गया था। तराजू और पसेरी लेकर रामसागर तोलने के लिए मुस्तैद था। उसकी मदद में राधे, कन्हाई और मद्धू आदि थे। वेणीमाधव चटाई पर बैठकर मास्टर टेकनाथ को झाड़ रहा था।

दुखमोचन आकर वेणीमाधव के पास बैठ गये। कहा—"नाहक लोगों को बैठा रखा है, घोंचू हो तुम भी एक नम्बर के !···रामसागर, मुँह क्या देखते हो मेरा ! शुरू करो न ?"

वेणीमाधव के हाथ में कापी थी। दुखमोचन लेने लगे तो रोककर उसने कहा—"नहीं दुखन, इस बात का निपटारा कर दो ! वह काम तो खैर होगा ही···"

आँखों-भौंहों के इशारे से पूछा दुखमोचन ने—"कैसी बात और कैसा निपटारा ?"

वेणीमाधव ने कहना शुरू किया—"मास्टर टेकनाथ की राय में ऊँची जातवालों के प्रति हमने अन्याय किया है। अनाज का ज्यादा हिस्सा छोटी जातवालों को मिला है। दूसरा ऐतराज मास्टर को यह भी है कि आँखें मूँदकर सभी को गेहूँ देना समझदारी का काम नहीं है···"

बीच में ही मधुकान्त ने टोका—"समझदारी का काम होगा नित्याबाबू जैसे बड़े लोगों को मालपुए खाने के लिए दस-दस मन गेहूँ यों ही दे देना !"

"क्यों किसी का नाम लेते हो ?" दुखमोचन बोले।

तब उन्होंने टेकनाथ से पूछा—"भूख की भी कोई जात होती है ?"

मास्टर बगलें झाँकने लगा। वेणीमाधव ने लोगों से कहा—"भाइयो, यह टेकनाथ मास्टर अपने स्कूल में लड़कों को भी छोटी जात, बड़ी जातवाली यही बातें पढ़ाते होंगे। गांधीजी जीते होते तो आकर अपने हाथों से इनको इनाम देते···"

इस पर नौजवानों ने ठहाका लगाया। मास्टर का चेहरा सूखी लौकी की तरह सफेद पड़ गया।

"छोड़ दो !" दुखमोचन ने इशारे से लोगों को चुप कराया और उधर अनाज तुलने लगा।

वेणीमाधव नाम पुकारता था, रामसागर तौलकर दे रहा था। लोग टोकरी या कपड़े में ले रहे थे।

दस-पन्द्रह जने ले चुके तो दुखमोचन ने वेणीमाधव से रुकने को कहा। रामसागर भी रुक गये, कन्हाई और राधे भी रुक गये।

दुखमोचन उठकर पहले पान की सीठी थूक आये, तब कहा—"भाइयो, इस अनाज को खैरात न समझना और न गुलामी का चारा-चोगा ही समझना इसको। यह तो एक किस्म की अगाऊ मजदूरी है जिसके लिए आप सभी को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कभी-न-कभी काम करना होगा। आगे हम बाँध तैयार करेंगे, पोखरों की मरम्मत करेंगे, कुओं की खुदाई होगी, गाँव की तरक्की के दसों काम होंगे। एकजुट होकर हमें यह सब करना होगा। जिसके पास अनाज है और पैसे भी हैं, उन्हें हमने एक भी दाना देना वाजिब नहीं समझा। उन्हें तो उल्टे अपने दुखी भाइयों की मदद करनी चाहिए थी, मगर उनकी नीयत मैं समझ नहीं पा रहा···हाँ, एक बात और···मुझे मालूम हुआ है कि गाँव के दो-चार स्वार्थी अब

आपको फुसलायेंगे और बहकायेंगे; सस्ती कीमत पर वे आपसे गेहूँ लेना चाहेंगे। भाइयो, उनसे होशियार रहना। इस अनाज को बेचने की तो बात ही नहीं, हाँ, बदलना हो किसी को तो हमें आकर बताये। बस, यही मुझे कहना था…"

सभी गम्भीर होकर दुखमोचन की बातें सुन रहे थे। अब फिर नामों की पुकार होने लगी और अनाज तुलने लगा।

शाम तक ढाई सौ मन अनाज बाँट दिया गया। बाकी बँटवारा अगले दिन के लिए मुल्तवी रखकर वेणीमाधव, रामसागर वगैरह उठ खड़े हुए।

राधे और कन्हाई ने दालानवाले बाहरी कमरे मे बाकी अनाज सहेज दिया। कुल एक सौ आठ बोरियाँ थी, अब पचपन रह गयी थी और पाँच बोरियों का अनाज नीचे ढेर लगा था।

कमरे मे ताला लगाकर चाबी रामसागर मामी को दे आया।

चमकी ने झाड़-बुहारकर दालान साफ कर दिया और बोली—"जाती हूँ भैया, कल फिर आऊँगी।"

अपर्णा ने आकर कहा—"चमकी बुआ, तुम्हे मामी बुला रही है।"

"अभी आयी, बिटिया!" चमकी बोली। कुएँ पर जाकर उसने पानी निकाला, हाथ-मुँह धोये। आँचल से चेहरा पोछती हुई अन्दर आँगन की तरफ बढ़ी मामी से मिलने।

सूरज कब का डूब चुका था। आसिन का गाढ़ा-नीला आसमान मानो आँखों का दुख-दर्द खीचने को ही फैला हुआ था।

दुखमोचन और वेणीमाधव उत्तर-पूरब की तरफ बढ़कर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क पर घूमने निकले।

सड़क नदी के किनारे-किनारे जाकर आगे पश्चिम को मुड़ गयी थी। दोनों तरफ नीम, आम, जामुन, पाकड़ और पीपल के पेड़ो की कतारें बड़ी प्यारी लगती थी। हाल ही मे रोड़े जमाकर ऊपर-ऊपर काल-तार बिछाया गया था। टायर के पहियोवाली गाड़ियाँ, इक्के, टमटम, रिक्शे और पैदल चलनेवाले ही इन पर से आते-जाते थे। मामूली बैलगाड़ियों के लिए सड़क मे सटकर लेकिन अलग लीकें थी।

नदी और सड़क के दरमियान खेत-ही-खेत नहीं थे, अमराई भी थी और बाँसों के जंगल भी थे। उस पर खिले हुए काँस और सरकण्डे शाम के इस झुटपुटे में चमक रहे थे। दूर पूरब मे मशहूर पाण्डे परिवारों के पक्के मकान शान से खड़े थे, लखनौली के खानदानी जमींदारों की नयी-पुरानी हवेलियाँ थी।

जहाँ सड़क पश्चिम को मुड़ती थी, वहीं बायी तरफ लड़को के लिए खेलने का मैदान था।

दस-पन्द्रह नौजवान गेंद खेल रहे थे। अँधेरे में चेहरा साफ-साफ नहीं दिखा

किसी का ।

दुखमोचन सड़क छोड़कर नीचे मैदान में उतर आये। वेणीमाधव से कहा—"मिहिर को पुकारो ।"

बुलाने पर मिहिरकुमार आकर सामने खड़ा हो गया—लम्बा-छरहरा गोरा नौजवान ! अँधेरे में भी चमक रहा था। कन्धे पर हाथ रखकर दुखमोचन ने पूछा—"दुर्गा-पूजा मे तुम लोग इस बार नाटक-वाटक नही दिखलाओगे ?"

"नाटक तो नही हो सका इस वर्ष," मिहिर बोला और चुप हो गया। दुखमोचन हंसने लगे, हँसते-हँसते वेणीमाधव का हाथ दबा लिया। वह इस संकेत का मतलब नही भाँप सका।

"सुना, बाहर से कुछ लोग आयेंगे !" दुखमोचन ने कहा।

"किसने कहा आपसे ?"

"मैं भी इसी गाँव का रहनेवाला हूँ बच्चा ! हूं कि नही ?"

मिहिर पसोपेश में पड़ गया। हो न हो, इन्हें हमारा प्रोग्राम मालूम हो गया है। फिर खुलासा बता ही क्यों न दें···

बोला—"कुछ कवियो को हमने राजी कर लिया है, काका ! दो प्रोफेसर भी आ रहे हैं। लोग हिन्दी और मैथिली की कविताएँ सुनेंगे···अच्छा रहेगा न ?"

बाछें खिल गयी दुखमोचन की। बेताबी मे पीठ ठोकने लगे लड़के की, और कई बार मुँह से निकला—"शाबाश, बेटे ! शाबाश !"

"कुल कितने रुपये लगेंगे इसमे ?"

"हद-से-हद चालीस। खाना और नाश्ता अलग···"

"कोई बात नहीं, दस रुपये कल मुझसे ले लना।"

"अच्छी बात है काका, आऊँगा कल।"

"अब जाओ, खेलो !"

मिहिरकुमार को किसी से बातें करते देखकर दो-तीन लड़के और आ गये थे। दुखमोचन ने इशारे से सभी को खेल पर वापस भेज दिया और खुद भी लौट चले।

वेणीमाधव अपने घर गया, दुखमोचन भी सीधे अपने यहाँ आये।

सुखदेव शाम की पूजा खत्म करके किसी से मिलने निकले थे। गाय बाहर बँधी थी, डांस और मच्छर बेचारी को परेशान किये हुए थे। पुरानी फूस और कण्डों के टुकड़े जलाकर धुआँ देने का इन्तजाम किया गया, लेकिन आग बीच में ही ठण्डी पड़ गयी थी।

अपर्णा को बुलाकर दुखमोचन ने आग मँगवायी। अँगोछे से हवा करके घूरे को फिर से सुलगा दिया। धुआँ लगने पर डांस-मच्छर भागे, तो गाय की बेचैनी

कम हुई और अब वह इत्मीनान से सानी-भूसी खाने लगी।

हाथ-पैर धोकर दुखमोचन चारपाई पर बैठे ही थे कि एक औरत सामने आकर खड़ी हो गयी—माथे पर गठरी लिये हुए; छोटी-सी लड़की थी बगल में।

"कौन है?"

"मैं हूँ सरकार, हरखू की माँ—अनाज वापस लायी हूँ···"

इशारा पाकर लड़की ने गठरी बरामदे पर दुखमोचन के सामने रख दी। उन्होंने पूछा—"क्या बात है?"

बुढ़िया बोली—"सरकार, पच्चीस रुपया मनिआर्डर आया है आज···अब मैं हाट-बाजार से अनाज खरीद लाऊँगी। यह गेहूँ किसी दूसरे को दीजियेगा मालिक!"

हरखू की माँ का यह ईमान देखकर दुखमोचन दंग रह गये। भीत से पीठ टिकाकर बैठे थे, लेकिन अब कमर सीधी कर ली। अंधेरे में बुढ़िया या लड़की किसी का चेहरा सूझ नहीं रहा था। कपड़े दोनों के ही मैले थे। दुखमोचन की निगाहों में इस मजदूर-परिवार की एकमात्र झोपड़ी घूम गयी। हरखू तीन महीने पहले फारबिसगंज गया था। दस रुपये पहले और पच्चीस अब भेजे थे, बस··· लेकिन चार मुँहोंवाले परिवार के लिए तीस-पैंतीस की यह मामूली-सी रकम काफी हुई। जल्दी-जल्दी में दुखमोचन ने इस पर अपना दिमाग लड़ाया, मगर किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पाये। आखिर बुढ़िया से कहा—"नाम तो अब दर्ज हो चुका है, कौन वापस लेगा? ले जा अपना अनाज तू···"

हरखू की माँ आगे बढ़ आयी। बरामदे से सटकर खड़ी हुई और चाहा कि दुखमोचन के पैर पकड़ ले। नहीं पहुँच सके उनके पैरों तक बेचारी के हाथ तो गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की—"दुहाई मालिक की! दुहाई सरकार की! यह अनाज वापस रख लीजिए। यह मामूली गेहूँ नहीं है कि आसानी से हजम होगा। धरम का अनाज है मालिक! अब इस वक्त मैं झूठ कैसे कहूँ कि हमारे घर में कुछ नहीं है। पच्चीस रुपया है हाथ पर, दो-पौने दो मन गेहूँ हुआ सरकार! तो झूठ-मूठ मैं कैसे कहूँ कि छटाँक-भर भी दाना नहीं है घर में!"

दुखमोचन समझ गये कि बुढ़िया अब किसी भी हालत में यह अनाज नहीं उठायेगी। उन्होंने अपर्णा को बुलाया। वह टोकरी ले आयी।

टोकरी में गेहूँ डालकर बुढ़िया ने गठरीवाला कपड़ा साथ लायी लड़की को थमा दिया और उल्टे आसीस देती हुई लौट पड़ी।

पाँच सेर गेहूँ थे। अपर्णा टोकरी अन्दर ले आयी।

दालान पर अभी बाहरी आदमी एक भी नहीं था। मामी ने झाँककर देखा और सामने आकर खड़ी हुईं।

अनाज की वापसी का हाल मालूम करके बोली—"इसी ईमान पर तो दुनिया-जहान टिका है बबुअन !"

दोनों थोड़ी देर चुप रहे, जाने क्या-क्या सोचते रहे दोनों !

फिर मामी ने कहा—"चलो, खाना खा लो।"

चार

अगहन शुक्ल पंचमी को जनकपुर-धाम में हर साल धूमधाम से रामजी का ब्याह होता है। भारी जुटान होती है। दूर-दूर से लोग पहुँचते है दर्शन करने। सन्तों की पलटन भी अपनी छावनी डाल देती है। अयोध्या, चित्रकूट, काशी की बोली और भेख सुनने-देखने को मिलते है।

रामसागर की माँ ने कभी मनौती मानी थी और इसके मुताबिक वह प्रतिवर्ष अगहन में जनकपुर-धाम पहुँचता था। पाँव-पैदल जाता और पाँव-पैदल आता। अकसर जान-पहचान के साथी मिल जाते या टोले-मुहल्ले की औरते चावल-चिउडा की गठरी लेकर विदा होतीं साथ-साथ।

हमजोली इसी वजह से रामसागर को कभी-कभी 'औरतों का लीडर' कह देते और यह बेचारे को बुरा लगता···

इस बार मुंशी पुलकितदास का भतीजा और टेकनाथ का छोटा भाई साथ हो गये। एक का नाम था नवलकिशोर, दूसरे का रमानाथ। सब की राय हुई कि जायेगे पैदल, आयेंगे रेल से। जयनगर में सिनेमा देखा जाएगा और···

'और' पर आकर नवल रुक गया; रमानाथ की तरफ देख रहा था। बायीं आँख दबाकर उसने कुछ इशारा किया।

"क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, सागर भाई !"

"उहूँ !"

"नहीं, सागर भाई, अपनी कसम।"

रमानाथ ने जोर देकर कहा तो सागर को तसल्ली हो गयी, कोई खास बात नहीं थी। मगर कोई बात थी तो जरूर।

रामसागर ने अब के नवल से पूछा—"क्या बात थी, तुम बताओ ?"

"मैं बता दूँ, सागर भाई ?" रमानाथ ने कहा—"कहेंगे तो नहीं किसी

से ?"

"उहूँ !"

"शादी से पहले ही अपनी बीवी को देखना चाहता है नवल ।"

रामसागर भभाकर हँसा और बोला—"अब यह नयी चाल चला रहे हो तुम ? पहले तो कभी सुना नही गया ऐसा··· "

"तो अब सुन लीजिए !" नवल ने कहा और मुसकरा दिया। पल-भर रुककर बोला—"और रामजी ने क्या किया था ?"

"शादी से पहले ही सीता को कई बार देख लिया था," रमानाथ का जवाब था ।

"वह आदमी नहीं, देवता थे ।" रामसागर के मुँह से निकला ।

नवल ने उँगली चटकाई और कहा—"आदमी होते तो एक-आध नजर देखकर ही सन्तोष कर लेते···"

सभी हँसे इस पर ।

रमानाथ ने कहा—"जयनगर हाईस्कूल में नवल का भावी ससुर मास्टरी करता है, परिवार के लोग साथ रहते हैं। लड़की मिडल पास कर चुकी है, सागर भाई ! क्या बुरा है, देख आयेगा ।"

रामसागर को भला क्या एतराज था ! हाँ, जयनगर और मधुबनी-दरभंगा घूमते हुए घर पहुँचने में खर्चा जरूर ज्यादा पड़ेगा···इसकी जिम्मेदारी नवल और रमानाथ ने अपने ऊपर ले ली ।

रमानाथ और टेकनाथ का बाप जिन्दगी-भर बंगाल में ढाका के नजदीक नारायणगंज या कहीं और रसोइया का काम करता रहा । खूब गाँजा पीता था। छोटे लडके को कई साल तक साथ रखे रहा। लुक-छिपकर इस रमानाथ ने भी चिलम से नाता जोड़ लिया था। रामसागर ने पिपरा बाजार में एक सेठ की नौकरी की थी, चार वर्ष की बाजारू रहन-सहन से उसे गाँजे का चस्का लग चुका था। तरुण मुंशी नवलकिशोर इन मामलों में रमानाथ का चेला था।

अँधेरे में गाँव के बाहर नदी-किनारे या दुर्गाजी के मन्दिर के नजदीक शिवजी की मठिया में इन गँजेड़ियों के अनहद-नाद गूँजा करते। नवल की चाची और रामसागर की माँ ने अपने घरों को धुआँखोरी के अड्डे नहीं बनने दिया, मगर रमानाथ की भाभी उन्हें काफी छूट देती थी और वह भी तब जबकि टेकनाथ घर से बाहर होता। पीछे बेचारी गुग्गुल की धूप-धूनी देकर गाँजे की गन्ध दबाया करती ।

जनकपुर-धाम से तीनों जने लौटे तो पाव-भर नेपाली गाँजा साथ था। कागज की कई तहों में लपेटकर पुड़िया बना ली गयी थी। ऊपर से जो कपड़ा डाला था, उस पर अच्छी तरह चन्दन का लेप चढ़ाया था। फिर ऊपर से एक

कपड़ा। राममागर ने उसे चावल की अपनी गठरी के अन्दर दबा लिया तो भी दिल धड़क रहा था।

नवल और रमानाथ आगे-आगे थे। राममागर के बाएँ कन्धे पर गठरी थी, दाहिने हाथ से लोटा थामे हुए था। गरीब और गुनहगार निगाहों से वह बार-बार साथियों को देख लेता था।

जयनगर इस तरफ हिन्दुस्तानी सीमा पर पूर्वोत्तर रेलवे का आखिरी स्टेशन है। आबकारी विभाग के अधिकारियों की चौकस निगरानी से बचकर निकलना आसान नहीं था। देहात का एक मामूली चालाक उनकी आँखों मे धूल झोककर यों निकल जाये, हो नहीं सकता।

ट्रेन छूटने को थी, ह्विमल हो गयी थी। गाड़ी की रवानगी का वक्त नोट कराकर स्टेशन मास्टर गार्ड के दस्तखत ले चुका था।

यह ट्रेन सीधे पहले जयघाट जानेवाली थी। बीच में कहीं भी बिना उतरे-चढ़े एक ही गाडी पर सवार होकर पटना जानेवालों के लिए इधर से एकमात्र यही गाड़ी थी। पिछले कुछ अरसे से ब्रांच-लाइन की इस शाखा मे भी नयी किस्म के खूबसूरत डिब्बे दिखायी पडने लगे थे। और, शाम को खुलने वाली यह थ्रू ट्रेन तो बिल्कुल नये डिब्बों की बनी थी···फर्स्ट क्लास के कम्पार्टमेण्ट मे से एक नेपाली लड़की बाहर खड़े हमवतनी नौजवान से बातें कर रही थी।

पतली नली से ढेर-सी दबी भाप छोड़कर इंजन ने हल्का-सा धक्का दिया, पीछे खिसका, फिर आगे की ओर बढ़ा। नेपाली लडका प्लेटफार्म पर दो कदम पीछे हट गया।

कि एकाएक गार्ड ने लाल झण्डी दिखायी, इंजन रुक गया।

गार्ड के पास सादे लिबास मे दो आदमी खड़े हो गये थे, साफ था कि उन्हीं के कहने से गाड़ी रुकी है।

गार्ड के पास जो दो आदमी खड़े थे, उनमे से एक सीधे रामसागर के सामने आ गया। वह प्लेटफार्म की तरफ मुँह करके खिड़की से लगा बैठा था, हथेली पर सुरती थी।

प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े ही उस आदमी ने खिड़की से अन्दर झाँका। बेंत की छड़ी से रामसागर की गठरी छूकर पूछा—"किसकी है ?"

कोई कुछ नहीं बोला। दुबारा उसने डपटकर पूछा—"किसकी है यह ?"

रामसागर अब भी गुम रहा, लेकिन साथ बैठे बूढ़े ने उसकी बाँह पकड़कर कहा—"बतलाते क्यों नहीं हो ?"

रामसागर ने बड़ी कोशिश की कि चेहरे का रंग न उड़े, बोली-वाणी से कम-जोरी न प्रकट हो, लेकिन इसमें वह असफल रहा। नवल पीछे ही रह गया था, बाजार में। रमानाथ दूसरे डिब्बे में एक दोस्त से बातें कर रहा था।

"उतरो! उतरो!" आबकारी दारोगा ने हाथ पकड़कर रामसागर को खींचा। गठरी तो पहले ही उसके कब्जे में आ गयी थी।

रामसागर अछता-पछताकर ट्रेन से नीचे उतरा।

गार्ड ने सीटी दी और इंजन खिसका।

सरकती गाड़ी से झाँक-झाँककर मुसाफिर रामसागर को देख रहे थे और आवाजें उठ रही थीं—"गाँजा है! गाँजा है!"

रमानाथ अन्दर-ही-अन्दर परेशान हो उठा। ट्रेन मधुबनी रुकी तो उतर गया। अकेले गाँव पहुँचने की उसकी हिम्मत नहीं हुई।

अगले रोज ही रामसागर को पुलिसवालों ने मधुबनी जेल की हाजत में पहुँचा दिया। छोटी अदालत ने दो दिन के अन्दर ही तुरत-फुरत तीन हफ्ते सादी कैद की सजा का फैसला सुना दिया। वह तो खैर हुआ कि ऐन मौके पर दुखमोचन को खबर मिल गयी और उसने जमकर पैरवी की, वरना तीन महीने जेल की खिचड़ी खानी पड़ती। यों रामसागर रमानाथ को भी उसी दम ट्रेन में पकड़वा देता, मगर उसके नेक दिल ने कहा—"क्या है, अकेले भुगत लूँगा। जान-बूझकर किसी ने मुझे थोड़े फँसाया है?"

पीछे दुखमोचन ने जासूसी छानबीन की तो पता लगा कि नित्याबाबू का ही यह सारा प्रपंच था। रमानाथ और नवलकिशोर को उन्होंने पट्टी पढ़ाई थी कि नेपाली गाँजा लेकर जनकपुर-धाम से साथ-साथ लौटो और किसी तरह रामसागर को आबकारी विभागवालों के हवाले कर दो।

दुखमोचन दूसरी बार जेल में मिलने गये तो उसने बताया—"ट्रेन में मुझे बैठाकर रमानाथ प्लेटफार्म पर देर तक घूमता रहा, कई बार स्टेशन के अन्दर-बाहर गया-आया। तुम्हारा शक वाजिब है दुखन भैया, उसी ने आबकारी इन्सपेक्टर को सूचना दी होगी। पाजी कहीं का!"

"नवल कहाँ रह गया था?"

"होनेवाले ससुर के यहाँ बैठा था।"

"अच्छा, एक बात तो बताओ, तुम गैर-कानूनी गाँजे के इस झमेले में पड़े ही क्यों? भारी गधे हो! खुद तो बदनाम हुए ही, गाँव की हमारी सारी जमात को तुमने बदनाम किया। लोग कहते हैं, आपका साथी गाँजा-केस में सजा पाकर जेल की खिचड़ी खा रहा है!"

"अब कान पकड़ता हूँ अपने कि···"

"मुझे नहीं मालूम था कि तुम गाँजा के ऐसे गुलाम हो···"

काफी फजीहत हुई रामसागर की, मगर वह मुँह लटकाये सब कुछ बरदाश्त कर गया।

पत्नी, दो बच्चे। बस, घर में और कोई नहीं था। रामसागर भूमिहर खान-

दान का गरीब किसान था। खेत थोड़े थे, खींच-खाँचकर किसी तरह गुजारा होता था। बीवी शीलवन्त और सयानी थी, किफायत में निभा लेती थी।

रामसागर लहेरियासराय की जिला-जेल से रिहा हुआ तो फाटक पर ही उसे वेणीमाधव और मधुकान्त मिले। वे अपने मित्र को लेने ही वहाँ पहुँचे थे।

वेणीमाधव ने मजाक किया—"घबराओ नहीं, तुम्हारा माल ले आया हूँ।"

अचकचाकर रामसागर ने कहा—"कैसा माल, भाई?"

मद्धू ने चिलम पीने की मुद्रा बनायी, दोनों हाथ नाक-मुँह से लगे थे···

रामसागर दबी आवाज में बोला—"भूल किससे नहीं होती, भाई?"

मद्धू ने उसके कान में कहा—"भैया, नाराज मत होना, मैंने भी कभी···"

"चुप, पाजी!" मुसकराकर वेणीमाधव ने मद्धू को मीठी फटकार बतायी।

तीनों हँसते-हँसते बड़ी सड़क पर आये।

रात को तीनों ने होटल में साथ-साथ खाना खाया, फिर सिनेमा देखने गये। एक बजे की ट्रेन पर सवार होकर तीन बजे पिपरा बाजार स्टेशन पर उतरे और सुबह-सुबह घर पहुँचे।

घर पहुँचते ही पहला काम रामसागर ने यह किया कि गाँजा पीने की दोनों चिलमें जाँता पर पटक-पटककर टूक-टूक कर डाली और उन ठीकरों को बटोरकर बाँस के जंगल मे फेंक आया। फिर नदी में नहाने गया।

वेणीमाधव के दालान पर बैठकर रात के वक्त रामसागर ने जेल के अपने अनुभव कई रोज सुनाये। दिन का वक्त आजकल खेत-खलिहानों में बीतता था। जिनकी खेती ज्यादा थी, वे तो और भी व्यस्त रहते।

बाढ़ ने आसपास के इलाकों में धान की खेती को बरबाद कर दिया था इस वर्ष, लेकिन बाँधों की रोकथाम के कारण टभका-कोइली गाँव के किसानों को छाती नहीं पीटनी पड़ी। पचास प्रतिशत सफलता मिल ही गयी।

इन दिनों दुखमोचन भी धान की अपनी फसलें कटवाने और उगहवाने में, खलिहान की निगरानी करने मे जी-जान से लगे हुए थे। कातिक के अन्त में सुखदेव को कई दिन तक बुखार आता रहा। अब वह भी कमजोर थे, इससे दुखमोचन की परेशानी बढ़ गयी थी।

पड़ोस के गाँव सिमरौन में एक किसान की खड़ी फसल खेत में ही जला दी गयी थी। इसी तरह मौजे पुनाई चक में किसी की फसल रात-ही-रात में कटकर कहाँ चली गयी, पता तक नहीं चला गाँववालों को।

इन पाँचों गाँव की एक ही पंचायत थी जिसमें दस नामजद मेम्बर थे। टभका-कोइली से पुलकितदास और दुखमोचन पंच थे। अपने गाँव की पंचायत पिछले दो-तीन वर्षों से सोयी-सी थी। कहीं कुछ झगड़ा-टण्टा उठ खड़ा होता तो पाँच गाँवों की यह पंचायत जुटती और जो कुछ फैसला होता उसकी रिपोर्ट

अंचलाधिकारी साहब तक पहुँचानी पड़ती।

धान की खड़ी फसलों के जलाने और चोरी-चोरी काट लेने की ये जो शिकायतें पचायत के सामने आयीं, उन्हें दूर करने के बारे में पंचों ने कई उपाय सोचे—थाना से सशस्त्र सिपाहियों की मदद, चौकीदारों की तादाद बढ़ाना, ग्राम-रक्षा-समिति का संगठन, फसलों की निगरानी के लिए काफी तनख्वाह देकर पहरेदारों की बहाली आदि।

दुखमोचन ने रक्षा-समितियों के संगठन पर ही ज्यादा जोर डाला और काफी बहस के बाद पंचों ने इस उपाय को ही एकमात्र कारगर तरीका घोषित किया।

तय हुआ कि एक हजार आबादीवाले गाँव मे जो रक्षा-समिति होगी, कम-से-कम पाँच रक्षकों से बनी होगी, रमका-कोइली जैसे बडे गाँव की रक्षा-समिति का सगठन कम-से-कम बीस रक्षकों का होगा। रक्षकों की उम्र बीस से चालीस साल तक रहेगी। उन्हें भाला या गँडासा लेकर रात के वक्त फसलों की निगरानी करनी होगी, अनुशासन उन पर पचायत का रहेगा। दो-दो रक्षक साथ निकला करेंगे और चार-चार घण्टे तक पहरा देंगे···

इन फैसलों को असली जामा पहनाने में दुखमोचन के तीन रोज लग गये। सिमरौन और पुनाई चक के बाशिन्दों ने पुरकिशनदास को तो छोड़ दिया, मगर दुखमोचन को नहीं छोड़ा। दोनो बस्तियो में रक्षा-समितियो का बाकायदा संगठन करके उन्होंने रक्षकों को सारी बातें समझा बुझा दीं, अंचलाधिकारी साहब से बातें कर आये, दारोगा और हेड कान्स्टेबल के कानों में सारा मामला डाल दिया। राजनीतिक पार्टियों के जो भी दो-चार प्रमुख नेता थे, थाने के अन्दर सबकी स्वस्ति ले ली। बस अखबारों में समाचार भेजना-भर बाकी रह गया था।

इस बीच गिरस्ती के काम जैसे-तैसे सुखदेव ने सँभाले। अन्दर की सारी जिम्मेदारी मामी पर थी ही। बाहर खलिहान में फसलों का ढेर लगा था। खेत सारे कट चुके थे। दँवरी चल रही थी।

अपनी बस्ती में भी रक्षा-समिति का संगठन करना था, लेकिन कोई जल्दी नहीं थी। पिछले वर्ष एक-आध बार तैयार फसलों की बरबादी का प्रयत्न हुआ था किन्तु अपराधी का पता लग गया था। पचास रुपये का जुरमाना वसूल करके उसे पंचों ने छोड़ दिया था। और भी कई मामलों में गुनहगारों से जुरमाने की बड़ी-बड़ी रकमें वसूल की गयी थीं। इसी सबका नतीजा था कि बदमाश अपनी हरकतों से बाज आ गये थे।

दोपहर का खाना खाकर दुखमोचन अखबारों में भेजने के लिए खबरें लिख रहे थे; वही रक्षा-समिति के निर्माण की बातें! टुनू को नानी ने पुतला भेजा था, वह उसी से खेल रही थी और बीच-बीच में पिता की तरफ एक-आध नजर देख लिया करती थी।

गेहुँआ रंग की ऊन के लच्छे और बिनाई की सलाइयाँ लेकर मामी घर के अन्दर आयीं।

दुखमोचन का कुरता और बनियाइन खूँटियों पर टँगी थीं। कुरता साफ था, बनियाइन मैली थी।

मामी ने कहा—"बनियाइन और सिलवा लो। यह तो हमेशा बदन से लगी रहती है। एक नहीं, दो चाहिए कम-से-कम···"

नजर उठाये बिना ही दुखमोचन बोले—"नहीं मामी, कम-से-कम आधा दर्जन चाहिए!"

मामी हँसीं, खिलखिला उठी। मेज के नीचे से स्टूल ले लिया, बैठ गयी। स्वेटर की दूसरी बाँह अभी बिनी जानेवाली थी, सलाइयों को आड़े-तिरछे रखकर उनमें धागे उलझाते हुए बोलीं—"तुम्हारी इस बस्ती में जिनके पास साधन हैं भी वे सलीके से रहना नहीं जानते। कमर से नीचे मैली-चीकट मरदानी धोती, कन्धे पर चारखाना गमछा, सरसों के तेल में भीगे हुए बाल! आप कौन हैं? बाबू त्रिजुगीनारायण चौधरी हैं! साठ हजार रुपये नकद जमा कर रखे हैं और कसम खा रखी है कि धोबी से कपड़े नहीं धुलायेंगे? आप कौन हैं? रामरखराय हैं! तीन हजार मन धान हर साल आपकी खेती आपको सौंपती है, लेकिन शक्ल-सूरत बना रखी है कि हफ्तों से हाजत में बन्द मुजरिम भी क्या होगा!"

दुखमोचन ने गरदन उठाकर कहा—"नहीं, मामी, नहीं! यह तुम इकतरफा बातें कर रही हो! अरे, दूसरा रुख भी तो देख लिया करो। उन्हीं परिवारों के नौजवान कैसे बन-ठन के रहते हैं।"

"हूँ!" मामी ने आँखें मटका लीं। चुपचाप बिनाई करने लगी। दुखमोचन लिखे हुए कागज लिफाफों में बन्द कर चुके तो उठे और अलमारी के अन्दर टिकट खोजने लगे। डायरी की गत्ती में देखा, इस किताब की जिल्द में ढूँढा, उस किताब की जिल्द में खोजा, एक भी टिकट कहीं नहीं मिला। हारकर मामी से कहा—"सुनती हो? तुम्हें याद है कहाँ रखे थे टिकट मैंने?"

"मैं क्या जानूँ!" मामी ने कहा।

टिकटों की जरूरत आज बहुत दिनों बाद पड़ी थी। कुछ रुककर मामी बोली—"किसी को दे आये होंगे, याद नहीं होगा···डाकखाने से ले लेना, परेशानी काहे की?"

दुखमोचन बैठ गये तो टुनू गोद में आ गयी।

मूँछ के बाल सहलाती-सहलाती लड़की बोली—"परसों जो लेमनचूस तुम लाये थे, अच्छे नहीं थे।"

"अब जो लाऊँगा वे अच्छे होंगे," पिता ने कहा। उनकी उँगलियाँ उसके बालों में उलझी हुई थीं।

टनू पुतले को सजा दे रही थी, टाँग पकड़कर उसे उलटा झुलाने लगी। बाप से कहा—"बापा, यह बड़ा शैतान हो गया है, पढ़ता है न लिखता है, दिन-भर मटरगश्ती करता है···इसे मैं घर से निकाल बाहर करूँगी···मगर आप मुझे रंगीन तसवीरों वाली किताब कब ला देंगे ?"

मामी ने उधर से कहा—"टुनू पढ़ेगी तो खेलेगी कौन ?"

दुखमोचन ने मचलती हुई बेटी को छाती से लगा लिया और बोला—"भारी शौक है टनू को पढ़ने का, लिखने का, तुम तो बस यों ही कुछ कहती रहती हो।"

लाइन पूरी हो गयी थी, बिनाई की सलाइयाँ पलटकर मामी दूसरी लाइन बिनने लगीं तो कहा—"यों ही कुछ कहती रहती हूँ मैं ? दवात में उँगली डालकर भीत पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींचने में ही जिसका जी लगता हो, उसे भला क्या कहा जाये ! स्कूल से रानीजी भाग-भाग आती हैं···"

"हाँ रे ?" दुखमोचन ने भौंहें जरा कड़ी करके टुनू से पूछा।

लड़की ने निगाहें नीची कर लीं तो मामी ने कहा—"जा टुनू, तेरी चाची तुझे बुला रही है, जा।"

अपना पुतला वहीं पलंग पर छोड़कर टुनू बाहर निकली।

लेकिन फौरन ही वापस आ गयी और बोली—"बापा, चाची पूछ रही हैं, हजारीबाग से जो कपड़े आये हैं उनका क्या-क्या बनेगा ?"

दुखमोचन मामी की तरफ देखने लगे। मामी का ध्यान अभी बिनाई पर था। छोटी बहू दुखमोचन से परदा करती थी; बरामदे में आड़ लेकर खड़ी थी।

"···मामी, क्या-क्या कपड़ा है ?"

"···तीन तो साड़ियाँ थीं, ब्लाउज के लिए चार गज सादी छींटें थीं। बच्चों के लिए फ्राक, सलवार, पाजामा और कमीज के कपड़े थे। पण्डितजी के लिए पाँच गज मलमल था···"

मामी ने बिनाई रोककर तफसील से कपड़ों का हाल बता दिया।

छोटी बहू का लड़का जोगेन्द्र नानी के साथ ही रहता था। अब दस-पाँच दिन के अन्दर ही आने वाला था। परिवार में लड़कियाँ तो दो थीं, लड़का बस यही था। वहाँ नाना-नानी के भी और कोई नहीं। इसी से सुखदेव—दुखमोचन भतीजे को छूट दिये थे कि चाहे जहाँ रहे।

दुखमोचन ने मामी से कहा—"अप्पी है, तुम हो, जोगेन्द्र की माँ है···"

"···और मैं हूँ।"···टुनू बीच में ही बात काटकर बोल उठी और पिता से सटकर बैठ गयी।

मामी को हँसी आयी और दुखमोचन को भी। बाहर भीत की ओट में खड़ी छोटी बहू भी खिलखिला पड़ी।

मामी ने टुनू से ही पूछा—"अच्छा, तू क्या-क्या सिलवायेगी ?"

"कान में कहूँगी," शरमाकर लड़की बोली।

पिता ने कान उसके मुँह से लगा दिया।

टुनू ने बाप के कान में कहा—"फ्राक तो ठीक है, मगर सलवार नही सिलवाऊँगी मैं···"

"तो क्या करेगी अपने कपड़े का ?" मामी ने मुँह बनाकर पूछा।

"तुम पर रंज है, तुम्हे कुछ नहीं बनायेगी।"

"मुझको क्या पड़ी है, जिसकी बेटी है उसे बता दे !"

दुखमोचन ने फुसलाकर चुपचाप टुनू से पूछा तो उसने बतलाया—"मुझे पाजामा चाहिए, बाबा।"

"पाजामा पर फ्राक कैसी लगेगी ?"

"अच्छी लगेगी।"

मामी ने कहा—"जिद्दी हो गयी है छोकरी ! पीठ पर सास के झाड़ू बरसेंगे इसके ता···"

"बाप रे बाप !" दुखमोचन ने लड़की को सीने से चिपका लिया। बोले—"खाल न उधेड़ लूंगा उस सास की !"

इस पर छोटी बहू की खिलखिलाहट फिर कानों में आयी।

मामी ने मुसकराते हुए कहा—"जोगेन्द्र आयेगा तो इसकी मरम्मत किया करेगा !"

"च्च···च्च···च्च !" ओट से छोटी बहू ने प्रतिवाद किया।

दुखमोचन टुनू की पीठ पर हाथ फेरते रहे। बोले—"हो नही सकता।··· जोगेन्द्र तो इतना ज्यादा प्यार करता है इसे कि दूसरा कोई क्या करेगा ! वह छिपा-छिपाकर इसको मिठाइयाँ देता था, कँटीली झाड़ियों के अन्दर घुसकर पीले-पीले पके बेर तोड़ लाता था इसके लिए···उसी ने टुनू को पानी में तैरना सिखाया था···नहीं, टुनू !"

माथा हिलाकर लड़की ने कहा—"हाँ, भैया ने मुझे कभी नही पीटा। कोई कितना भी चुगली खाये, वह मुझ पर रंज नहीं होते। अब की मैं भी भैया को मिठाई खिलाऊँगी।"

एकाएक टुनू ने मामी की तरफ देखा और बेताबी से पूछा—"अच्छा, तुम्हारे पास मेरा कितना जमा है ?"

"कुछ नही।" मामी ने जवाब दिया—"धेला भी नहीं।"

टुनू रुआँसी होकर बोली—"गंगा मैया की तरफ मुँह करके कहो तो सन्तोष कर लूँगी।"

मामी खिलखिला पड़ीं।

जाने कहाँ से आकर अपर्णा चाची के पास खड़ी थी और टुनू की बातें सुन रही थी। अब सामने आ गयी।

टुनू ने बहन से पूछा—"मामी के पास डेढ़ रुपया नहीं है जमा मेरा? तुम्हारे सामने ही तो दिया था, एक रुपैया एक बार और अठन्नी दूसरी बार···"

अपर्णा को हँसी आ गयी। बोली—"क्यों आप लोग टुनू को परेशान कर रहे हैं?"

दुखमोचन ने कहा—"डेढ़ रुपये की ही तो बात है, इसके लिए टुनू मामी से कसम लेना चाहती है।"

अपर्णा बोली—"आप सयानों के लिए डेढ़-दो रुपया कोई चीज नहीं, मगर हम बच्चों के लिए यह रकम डेढ़-दो हजार रुपये के बराबर है, बापा! मैं गवाह हूँ, मामी को टुनू ने डेढ़ रुपया रखने को दिया था···"

टुनू की आँखों में चमक वापस आ गयी, चेहरा खिल उठा।

मामी मुसकराती हुई उठी, स्टूल खिसकाकर फिर मेज के नीचे रख दिया। ऊन के लच्छे, सलाइयाँ और बुना हुआ टुकड़ा अपर्णा के हवाले किया। दुखमोचन की तरफ रुख करके बोलीं—"तुम भी अब डाकखाना जाओगे, मुझे भी बैठना नहीं है। देखते हो न, समूचे आँगन में धान सूख रहे हैं, उन्हें समेट लेना है। तिल संक्रान्ति का त्योहार करीब आ पहुँचा, उसके लिए अलग चूल्हा आज ही बनाऊँगी। अप्पी की माँ की बरखी के दस-बारह रोज रह गये हैं, सिवाय चावल और दाल के और कुछ भी तो नहीं है इस घर के अन्दर···"

अपर्णा की माँ का प्रसंग आया तो दुखमोचन के मन ने एक अजीब-सा दर्द महसूस किया। वह चटपट उठ खड़े हुए।

पाँच

गाँव के पश्चिमी मुंशी पुलकितदास का मकान था। उन्हीं के दालानवाले कमरे की दीवार से 'डाकखाना' की तख्ती लटकी हुई थी। लाल-सुर्ख जमीन पर सफेद हर्फ। खम्भे से लैटर-बॉक्स लगा था।

बाहर तख्तपोश पर मुंशीजी छोटा-हल्का हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। आबनूसी सूरत, गोल चेहरा। बाल पक चुके थे। हजामत बनवाये हुए चमकीले गाल। पतली मूँछें। गोल गले की नफीस बनियाइन पहन रखी थी। आँखों के कोये छोटे

मगर पीले। कद नाटा। हाथों और पैरों की उँगलियाँ सीधी-सपाट।

दालान के सामने गेंदा के पचासों पौधे थे, फूलों की बहार देखने लायक थी।

दुखमोचन आये तो मुंशीजी ने हुक्का-समेत उठकर स्वागत किया और बैठाया।

छप्पर की पाढ़ के पीछे पुराने-नये अखबार और कागज खुँसे थे। हवा की कृपा से उनका रंग उड़ गया था और सिकुड़न आ गयी थी।

मामूली कुशल-समाचार पूछकर दुखमोचन ने उन अखबारों की तरफ देखा।

मुंशी ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए पूछा—"क्या देख रहे हैं ?"

दुखमोचन ने कहा—"पिछले वर्ष बाढ़ के जमाने में कोशी अचल के निवासियों ने सम्पादकों के नाम काफी पत्र लिखे थे, अधिकांश छपे भी थे। पिपरा बाजार के मेरे एक मित्र वैसे पत्रों की कटिंग इकट्ठी कर रहे हैं…आपके यहाँ अखबार एक-न-एक आता ही रहता है।"

मुंशीजी ने माथा हिलाकर स्वीकार किया और तृप्तिपूर्वक हुक्का पीते रहे। कुछ देर बाद नरेले से होंठ हटाये और पूछा—"डाकखाने का भी काम है कुछ ?"

"जी हाँ! चार इकन्नी टिकट और दो पोस्टकार्ड चाहिए।"

"हूँ… और अखबारों की कटिंग के बारे में नवल से ही कहियेगा, वही जानता है, [illegible] कब का अखबार कहाँ पड़ा है।"

"[illegible] बात है, पूछ लूँगा नवल से !"

[illegible]तने में चार साल का एक लड़का अन्दर से निकला—दरवाजे तक दुलकी चाल से आया था, लेकिन बाहर आते ही अजनबी चेहरा देखा तो भय और कौतूहल से एकाएक ठमक-सा गया। मुंशीजी ने नजरों के इशारे से बार-बार बढ़ावा दिया, तब वह शंकित पैरों से नजदीक आया। अचम्भा-भरी निगाहों से एक बार दुखमोचन की तरफ और अभयप्रार्थी निगाहों से एक बार मुंशीजी की तरफ देख रहा था।

बिल्कुल करीब आ गया तो मुंशीजी ने बच्चे को अंक में भर लिया और चूमकर कहा—"यह तेरे चाचा हैं, चाचा !"

दादा की गोद में आने से सुरक्षित महसूस करके बच्चा पूछ बैठा—"बाबूजी के भाई होंगे यह ?"

"हूँ उँ उँ उँ उँ," मुंशीजी ने स्वर को लम्बा करते हुए नाटकीय ढंग से माथा हिलाया।

फिर कुछ देर तक मुंशीजी अपने इस होनहार पोते की प्रशंसा करते रहे और दुखमोचन ने उसमें गहरी दिलचस्पी ली।

"अच्छा, चाबियों का गुच्छा तो ले आ !"

बच्चा मुंशीजी की गोद से उतरा और अन्दर हवेली की तरफ भागा।

हुक्के को दीवार से टिकाकर मुंशीजी लघुशंका से निबटने गये—दस मिनट का वक्त लगता था इस काम में उनको।

दुखमोचन की आँख पश्चिम के खेतों की तरफ इतने में सैर कर आयी··· बीच में सरसों के फूल खेत अपनी खास छटा दिखला रहे थे। इन खेतों के आगे धान के खेतों का विशाल मैदान था जिनमे कटी फसलों की खूँटियाँ-ही-खूँटियाँ थीं—साफ-सूफ और सीठी-सी खूँटियाँ, धौरी-भूरी-मटियाली खूँटियाँ, तरल और स्निग्ध निगाहों के अन्दर पल-भर में ही रूखापन भरने वाली खूँटियाँ। उनके दरमियान जहाँ-तहाँ दूबोंवाली मेंड़ें हलकी हरी लकीरों-सी लग रही थीं। लेकिन, नजदीक इधरवाले खेतो में सरसों के फूल लहरा रहे थे। बस, आँखें प्रकृति की पीली ओढ़नियो में ही उलझ-उलझकर मस्त हो उठी···दुखमोचन को क्षण-भर के लिए गौने के समय का अपनी पत्नी का रूप याद आ गया—पीली रेशमी साड़ी, पीला रेशमी ब्लाउज, चाँद-सा मुखड़ा और चन्दन-सी सूरत ! पीले कपड़ो से ढकी हुई पालकी···

बच्चा अन्दर मे चाबियों का गुच्छा ला चुका था और मुंशीजी ने डाकखाना खोल लिया था।

दुखमोचन कमरे के भीतर आ गये।

साठ साल के मुंशी पुलकितदास पोस्टमास्टर की अपनी कुरसी पर बैठे। दुखमोचन के लिए स्टूल था।

मेज पर कागज बे-तरतीब पड़े थे। मुहरों के ठप्पे गन्दे दिखायी दे रहे थे। डाक के दो-तीन खाकी थैले। लकड़ी की एक छोटी-सी अलमारी। लोहे का छोटा सेफ। नोटिस-बोर्ड भी अन्दर ही था। 'नेशनल सेविंग्स' के दो छोटे-छोटे पोस्टर दीवार से चिपके थे। कोने में ढिबरी और सील करने के लिए चमड़े की टिकिया पड़ी थी।

बड़ा पोस्ट-ऑफिस था पिपरा बाजार में। यह निहायत मामूली डाकघर था। डाकिये का भी काम पोस्टमास्टर को ही करना होता था। मुंशीजी ने अपने दूसरे भतीजे को डाक बाँटने की ड्यूटी पर तैनात कर रखा था। पहले मनिआर्डर की रकमें महीना-महीना, डेढ़-डेढ़ महीना रोक ली जाती थीं। लोगों को भारी कष्ट था। दुखमोचन ने यों भी और अखबारों में भी काफी लिखा-पढ़ी की; हल्ला-गुल्ला मचाया। अब ठीक वक्त पर रुपये मिल जाते थे।

मुंशीजी ने टिकट और पोस्टकार्ड दिये और पैसे लिए। दुखमोचन उठने लगे तो कहा—"दस बोरा सीमेंट की जरूरत थी।"

"शहर जाकर एस० डी० ओ० (सब-डिविजनल ऑफिसर) से मिलिये,

दासजी !" जवाब मिला ।

अन्दर हवेली में तश्तरी में सुपारी के टुकड़े और सौंफ आ गये थे। मुंशीजी बोले—"अरे, सुपारी नहीं लीजियेगा ! सुनते हैं ? मेरा मतलब था कि एस० डी० ओ० साहब इधर-उधर तहकीकात करेंगे और आखिर आपसे पूछा जा सकता है···समझे न ?"

"मगर इतना सीमेंट क्या कीजिएगा ? बड़ी किल्लत है सीमेंट की।"

"तुलसी का चबूतरा बनवाना है, लक्ष्मीनारायण के लिए वेदी बनवानी है। चहारदीवारी में भी काफी सीमेंट लग जायेगा। दस हजार ईंटें पड़ी हैं, बैठकबाजी के लिए एक पक्का अड्डा तैयार करना है···"

"यह काम तो ढाई-तीन मन सीमेण्ट से हो जायेगा।"

"अरे, समझे नहीं ? अच्छी चीज यों भी घर में पड़ी रहे तो क्या हर्ज है ?"

"अच्छा ऽऽऽऽऽ !"

दुखमोचन कमरे से बाहर निकले और टिकटें लगाकर लिफाफों को लैटरबॉक्स के हवाले किया। मुंशीजी बरामदे तक आकर उन्हें छोड़ गये।

चार बजे होंगे। जाड़े के दिन थे। सूरज काफी नीचे आ गया था। पीली धूप बदन को खुशगवार लग रही थी। निगाहों में बार-बार खेतों की वह पीली छटा आ जाती और ध्यान बार-बार पत्नी की सूरत पर अटक जाता। लगातार चार वर्षों तक टी० बी० की मरीज रही बेचारी···मरने लगी तो वह उसे देख भी नहीं सके। माँ ने भाई को मना कर दिया···नहीं, बुलाने की जरूरत नहीं है। आकर क्या कर लेगा बबुअन ?···थाइसिस से अप्पी की माँ का गोरा-गेहुँआ रंग एकदम पीला पड़ गया था···सरसों के फूले खेतों का पीला-पीला मैदान दिशाओं के छोर छूने लगा तो गहन के अँधेरे में दिखायी पड़नेवाला चांद का फीका ढाँचा क्षयग्रस्त पत्नी का प्रभाहीन मुखमण्डल बनकर चक्कर काटने लगा···

दुखमोचन आते-आते वेणीमाधव के दालान के करीब आ गये। यह जगह रास्ते के बिलकुल किनारे थी।

दालान के आगे सहन में छोकरों, छोकरियों और औरतों की भीड़ जमा थी। बीच में दो पंजाबी फेरीवाले चटकीले सामान फैलाकर एक-एक की दस-दस खूबियाँ गिना रहे थे। और कह रहे थे—"ऐसा माल पटणे में भी नहीं मिलणा भैणजी, लै लो ! जो मर्जी तुसी दे देणा···आ बलाउज देखो, चीन की लाजवाब सिलक मँगवाई थी हमारे मालिक ने !···वो पेटीकोट तो छूकर देखणा, कैसा सोहणा है ! जरा उसकी लैस तो देखो भैणजी···"

दुखमोचन पर नजर पड़ते ही औरतें हवेली की तरफ आड़ में चली गयीं। इशारे से फेरीवालों को भी बुला लिया तो भीड़ भीतर चली गयी।

दुखमोचन दालान में आ गये।

एक नफीस तख्तपोश बिछा था। अलग एक बड़ी चारपाई को भी खड़ा करके रख दिया गया था।

तख्तपोश पर लेट गये दुखमोचन। एक लड़का दरी और तकिया ले आया। यह उनका पुराना दस्तूर था कि जब कभी थके-थकाये आये तो वेणीमाधव के दालान में इसी तरह लेटे रहे। वेणीमाधव या जयमाधव मौजूद हों चाहे नहीं हों, दुखमोचन बेझिझक घण्टा-आधा घण्टा आराम करते। फिर अपने-आप उठकर चल देते···

परसों अप्पी की माँ की बरसी हुई थी—पाँचवीं बरसी। जात-बिरादरी के लोगों का ज्योनार था। मामी, छोटी बहू, मधुकान्त की माँ और सुग्गी बूआ परसों दिन-भर तरकारियाँ तलतीं-पकाती रहीं। सिद्धी और माँगन ने पीतल के बड़े-बड़े हण्डों में भात-दाल पकाये थे। कन्हाई और राधे पानी भरने, लकड़ी जुटाने और मसाला पीसने पर थे। रामपट्टी का महापात्र आया, वार्षिक श्राद्ध के क्रिया-कर्म दुखमोचन से उसी ने करवाये थे।

अप्पी की माँ इन दिनों बेहद याद आ रही थी। दूसरे कामों में दुखमोचन का जी नहीं लग रहा था। इस वक्त भी उन्हें बार-बार वही मुखड़ा याद आ रहा था। तबीयत करती थी, उसी के बारे में सोचते-सोचते दो-एक झपकियाँ ले लें।

अन्दर हवेली से औरतों और फेरीवालों की मिली-जुली आवाजें आ रही थीं।

"बच्ची की सलवार के लिए यह साटन ले लो भैणजी !"

"लड़के की कमीज के लिए यह नीला पापुलीन···"

"अपनी कुर्ती के वास्ते बैंगलोर की सिलक···"

"नहीं, सादी छींटें दिखलाओ !"

"हमें तो उनके लिए मलमल चाहिए।"

इस पर हल्की हँसी सुनायी पड़ी और फिर—"लओ जी ! हमारे मुल्क में ऐसा महीन मलमल ओढ़नी के लिए पसन्द करते हैं; ठीक है भैणजी ?"

"छींटें ?"

"छींटें अब और नहीं हैं···"

"ब्लाउज के लिए सादी छींटें तुम्हें भी तो पसन्द थीं, गुञ्जन !" दुखमोचन लेटे-ही-लेटे बुदबुदाये—कलकत्ता में एक गुजराती मित्र से मैंने कहा था, अहमदाबाद से छींट की दो साड़ियाँ और ब्लाउज के कपड़े मुझे अपनी पत्नी के लिए ला देना···वह तो ले आया, लेकिन तुमने उन कपड़ों को नहीं पहना। गुञ्जन, मैं उन्हें तुम तक पहुँचा ही कहाँ पाया ! आखिर तुम्हारा नाम लेकर मैंने वे कपड़े गंगा में डाल दिये थे। अप्पी को भी छींट के कपड़े उतने ही पसन्द हैं, गुञ्जन !···

गुंजेश्वरी अपर्णा की माँ का नाम था। दुखमोचन प्यार मे उसे गुञ्जन कहा करते थे। मायकेवालों के लिए वह गुञ्जी थी। चौदह की थी तो ब्याह हुआ, चौबीस की हुई तो हमेशा के लिए आँखें मूंद ली। सास की सख्ती से ढकी हुई दूब की तरह पीली हो गयी थी बेचारी। मुखदेव को बहू की तन्दुरुस्ती से न कुछ लेना था, न देना। नारायण तो और भी भारी लापरवाह ठहरा। दुखमोचन शील-संकोच के मारे उन दिनो पत्नी के बारे में जबान तक नही खोलते थे। तो फिर वही हुआ जो होना था।

वेणीमाधव के दालान पर देर तक दुखमोचन पत्नी की स्मृतियों में डूबते-उतराते रहे। उन्हें पता नही, कब तक हवेली मे मोल-भाव और खरीद-फरोख्त की उथल-पुथल मुखरित होती रही। उन्हें यह भी पता नहीं कि कब फेरीवाले निकलकर दूसरे घरों की तरफ चले गये थे।

दुखमोचन को नींद आ गयी तो डेढ़ घण्टा तक सोते रहे।

वेणीमाधव की ऊँची आवाज सुनकर दुखमोचन ने पलकें खोली। सूरज डूब चुका था। नीले आसमान की ठण्ड और भारी सूनापन अन्धकार की विराट् भूमिका बनाने जा रहा था।

दालान से जरा हटकर खलिहान था। धान के ढेर कई रोज पहले ही हवेली के अन्दर पहुँच चुके थे। अब पुआलों की टालें ही बाहर रह गयी थीं। चार बैल एक ओर लम्बी नाँद में मुह डाले सानी-भूमी खा रहे थे। उनसे थोड़ी दूर पर दो भैंसें बँधी थीं, हरी घास का एक-एक ढेर उनके सामने था।

डोल रस्सीसहित कुएँ मे गिर गया था। आज तीन रोज से पानी भरनेवाली मजदूरिन का पता नहीं था। घर की औरतों को चालीस-चालीस डोल पानी खींचने की आदत नहीं थी। आठ घड़े सुबह, आठ घड़े शाम, रोज-रोज कौन इतना पानी भरे ! उस पर भी डोल नदारद !

वेणीमाधव बाहर से लौटा था। डोल नहीं था कि हाथ-पैर-मुँह धोकर ताजा हो लेता, फिर इतमीनान से बैठता। छोटे भाई जयमाधव पर गुस्सा आ रहा था कि बहन ने सामने आकर डोल के न निकाले जाने की शिकायत की। गुस्सा और भड़क उठा—"कहीं से झग्गड़ मँगवाकर डोल निकाल लिया होता सो नही, मेरा माथा खाने आयी है ! लाट साहब क्या करते रहते हैं सारा वक्त ?"

बहन सहमकर चुप हो गयी, मगर इस ऊँची आवाज ने दुखमोचन को जगा दिया। करवट बदलकर उन्होंने पूछा—"नाहक क्यों गरम होते हो ? हमारे घर से झग्गड़ ले आओ चलकर, बस बात खत्म हुई !"

वेणीमाधव व्यंग्य की हँसी हँसा और बोला—"हो गयी खतम बात ! बस, झग्गड़ कुएँ में डालकर डोल निकाल लो कि हुई छुट्टी ! अरे, मैं तुमसे पूछता हूँ कि हरामजादी ने पानी भरना क्यों छोड़ दिया ? तबीयत करती है साली को पकड़

लाऊँ और गिनकर सौ जूते लगाऊँ···"

दुखमोचन उठ बैठे। अँगड़ाइयाँ लीं और बोले—"गाली-गलौज और मार-पीट से तो मामला बिगड़ेगा ही। आखिर बात क्या थी ? क्यों छोड़ दिया है पानी भरना उसने ?"

वेणीमाधव की श्याम-साला विधवा बहन दालान की खम्भेली से लगकर खड़ी थी। उसने कहा—"देवर के बहकाने से हमारी पनभरनी का माथा फिर गया है। वह कलकत्ता रहता है, दस दिन के लिए आया है। यों तो छुट्टी का बखत कटेगा नहीं, आठो पहर भौजाई से गप्पें लड़ाना रहता है···"

"क्या कहती थी ? काम छोड़ने का कोई तो कारण बताया होगा ?"

"कहती थी, कलकत्ता में इतना पानी भरनेवाली पन्द्रह रुपैया महीना लेती है। दो बालटी नलके का पानी यहाँ से उठाकर चार कदम पर वहाँ रख दिया, तो फी महीना पाँच ठो रुपया धरा है···"

"तो अब हम उसका तलवा चाटें ?" वेणीमाधव के अन्दर की उफान बाहर आयी। उसका जी कर रहा था कि मजदूरिन का नाम लेकर ढेर-सी गालियाँ बक जाये, लेकिन दुखमोचन के लिहाज से जीभ को काबू में रखना पड़ा।

दालान के आले मे ढिबरी पड़ी थी। एक लड़की आयी, उठा ले गयी। वेणीमाधव उठकर खलिहान की तरफ गया, कुआँ उधर ही था। दुखमोचन ने पुकारकर कहा—"पानी मेरे लिए भी लेते आना।"

बहन के अगले दो दाँत निकले हुए थे। सूरत साँवली थी। आँख-नाक-होंठ ठिकाने के थे। स्वास्थ्य अच्छा था। बोली में मिठास थी।

दुखमोचन ने पूछा—"अब वह किस शर्त पर काम करेगी, तुमने मालूम नहीं किया, माया ? या फिर दूसरी मजदूरिन को रख लो···"

माया बोली—"माँ ने उसकी सास से पूछा था। उसने बताया कि बहू किसी का कहा नहीं मानती। सास तो उसे फूटी आँखों भी नहीं सुहाती···भाभी ने और भी कई मजदूरिनों से कहा था लेकिन कोई तैयार नहीं होती। पता नहीं क्या बात है, भैया !"

दुखमोचन चुप रहे। सोचा, मामी से पुछवाकर असल भेद का पता लगायेंगे।

साबे घास की इकहरी डोरी लोटे के गले मे फँसाकर वेणीमाधव ने कुएँ से पानी निकाला, हाथ-पैर धोये, मुँह-कपाल को पानी के छींटे दे-देकर तर किया। एक लोटा पानी लाकर दुखमोचन के भी सामने रखा।

दुखमोचन ने भी हाथ-मुँह धोया।

काँसे की थालियों मे भुने हुए चिवड़े और मछली के तले टुकड़े आये तो दोनों ने नाश्ता किया।

लड़की ढिबरी जलाकर रख गयी। दुखमोचन ने अभी तीन रोज पहले सिर

मुँड़ाया था, घुटी हुई चाँद इस मामूली रोशनी में भी चमक उठी। सुपारी के टुकड़े लेकर माया फिर आ गयी, बोली—"बालों के बिना दुखन भैया का चेहरा उदास लगता है···सुपारी लीजिए भैया···क्या ही अच्छा होता, रात-ही-रात में आपके बाल दो अंगुल बढ़ जाते, दुखन भैया !"

इस पर दुखमोचन और वेणीमाधव हँसने लगे।

फिर दोनों उठकर दालान से नीचे उतरे।

छोटे-छोटे दो बच्चे आकर वेणीमाधव की टाँगों से लिपट गये। उनमें भी जो ज्यादा छोटा था, वेणी ने उसे उठाकर कन्धे पर बिठा लिया। इतने में दूसरा टाँगों के बीच अपनी गरदन फँसाकर इधर-से-उधर, उधर-से-इधर आने-जाने लगा।

दुखमोचन ने हँसकर कहा—"कहाँ थे अब तक ये बन्दर !"

वेणीमाधव बोला—"दोनों चुग रहे होंगे अन्दर !"

फिर दोनों ने कहकहे लगाये और बच्चों से पीछा छुड़ाकर रास्ते पर आ गये।

नित्याबाबू का बैठकखाना गुलजार था। पोती का दूल्हा आया हुआ था; दो-तीन मेहमान और भी थे। रेडियो पर चौपाल के अन्तर्गत 'लोहासिंह' नाटक चल रहा था। पाँच-सात पड़ोसी भी आ कर बैठ गये थे। नित्याबाबू खुद नहीं थे लेकिन उनकी नफीस छड़ी दीवार से लगी खड़ी थी।

दुखमोचन और वेणीमाधव अपनी राह पकड़े सीधे चले आये।

सुखदेव आसन पर बैठकर दाहिने हाथ की उँगलियों से नाक दबाये प्राणायाम कर रहे थे। आहट पाकर उन्होंने एक नजर आगन्तुकों पर डाली और तसल्ली हो गयी तो फिर आँखें मूँद लीं।

काला कुत्ता दुम हिलाता हुआ सामने आया।

दुखमोचन अन्दर चले गये, वेणीमाधव दालान में जाकर तख्तपोश पर बैठा। सामनेवाला खलिहान खाली था।

दो-तीन मिनट बाद ही दुखमोचन बाहर निकल आये। झगड़ वेणीमाधव को थमाकर बोले—"काम हो जाये तो तुरन्त भिजवा देना।"

झगड़ लेकर वेणीमाधव लौट गया।

दुखमोचन गाय-बैलों के नजदीक जरा देर के लिए बैठे।

गाय आजकल दूध नहीं दे रही थी, बछड़ा भी अब पी नहीं सकता था। कभी थन से थूथन लगा देता तो हड़क उठती। अभी बछड़ा अलग बँधा घास खा रहा था। गाय और बैलों के सामने सानी-भूसी थी—एक नाँद गाय के लिए और दूसरी दोनों बैलों के लिए।

बैल बस दो थे—तन्दुरुस्त और नाटे कद के। सूरत उनकी सँवलिया थी। हल खींचने में दोनों बहादुर थे। जिन खेतों में धान उपजते हैं, बैसाख-जेठ की

पहली जुताई के समय उनकी मिट्टी बेहद कड़ी होती है। जवान हलवाहा हो, मजबूत बैल हों, तेज और नुकीली फार हो, तभी वे खेत जोते जा सकते हैं। क्वार-कातिक या माघ-फागुन में हल्की-भुरभुरी मिट्टीवाले खेती में तो बूढ़े बैल भी हल खींच ले जाते हैं। ये मामूली नहीं, परगना बजौर के तेज-तर्रार बैल थे। पाँच सौ पचास रुपये गिनकर सीतामढ़ी के मवेशी-हाट से दुखमोचन और वेणीमाधव इन्हें लाये थे। यहाँ इनका यह तीसरा वर्ष था।

गाय दो बार ब्याई थी अब तक। दुखमोचन को ससुराल से एक गाय मिली थी, यह उसी की सन्तान थी। पत्नी की याद दिलानेवाली जो भी कुछ वस्तुएँ रह गयी थीं, उनमें यह गाय भी एक थी।

बैलों के नजदीक पाँच मिनट बैठकर वह गाय के करीब आ गये। पूस की धुँधली चाँदनी में उसके मुठिया सींग चमक रहे थे। गले में कौड़ियों की तीन लड़ोंवाली माला थी। रंग काला-सफेद मिलाकर चितकबरा था। कद नाटा।

जीभ निकालकर उसने दुखमोचन को चाटना चाहा। उन्होंने अपने बायें हाथ की कलाई आगे कर दी। गरम-गरम खुरदरे स्पर्श से गुदगुदी लगी तो हाथ हटा लिया।

इतने में दस-ग्यारह साल का एक लड़का अन्दर से आया और बोला—"काका, मामी ने बुलाया है।"

"क्या है?" दुखमोचन ने पूछा—"अच्छा जोगी, चल तू! मैं अभी आया···"

जोगी वापस चला गया। यह छोटे भाई नारायण का इकलौता लड़का था, योगेन्द्र! प्यार से लोग जोगेन्दर या जोगी कहते थे। पतला-छरहरा, गोरी सूरत। चेहरा चौड़ा और भरा-भरा-सा था।

दुखमोचन दो मिनट बाद हवेली के अन्दर गये।

सुखदेव खाना खा रहे थे। अपर्णा और योगेन्द्र पढ़ने-लिखने में लगे थे। टुनू के सामने भी कोई किताब थी।

मामी ने कहा—"तुम देर से खाना खाओगे?"

"हाँ मामी, अभी नहीं!"

"अच्छी बात है।"

फिर मामी ने धीरे से कहा—"अभी-अभी तुम झगड़ लेने आये थे तो कह गये थे एक बात पूछनी है···भला क्या बात थी?"

दुखमोचन ने आहिस्ता से कहा—"भैया को खाना खाकर उठने दो, वह बाहर जायें तो बतलाऊँगा···जल्दी क्या है?"

मामी को तसल्ली हुई तो माथा हिलने लगा।

दुखमोचन ने कुरता निकाल लिया और इशारे से अपर्णा को नजदीक बुलाया। बनियाइन पहने रहे, लेकिन कुरता लड़की को थमा दिया और बाहर निकल

आये।

पूरब की तरफ आसमान में दशमी का चाँद काफी ऊपर उठ आया था। कोहरे ने चाँदनी को फीका कर रखा था। फीका आसमान और फीके तारे !

सर्द हवा के झोंके लगे तो दुखमोचन ने गाय और बैलों की तरफ देखा। आज चरवाहा तमाशा देखने निकल गया था। नदी के पार लखनौली गाँव में एक कोइरी भगत पर हर मंगलवार की रात को बरहम देवता चढ़ता था। पास-पड़ोस के इलाकों से लोग देवता से सवाल पूछने पहुँचते थे। भारी मेला जुटता था।

दालान की दाहिनी ओर मवेशियों के लिए छोटा-सा घर था, गाय और बैलों को दुखमोचन उसके अन्दर बाँध आये। फिर अलाव के पास बैठे हाथ सेंकते रहे।

मौका पाकर मामी से उन्होंने पानी भरनेवाली मजदूरिन का जिक्र छेड़ा जिसने वेणीमाधव के यहाँ काम छोड़ दिया था।

मामी ध्यान से सारी बातें सुनती रही, फिर बोलीं—"पिछले महीनों में और भी कई घरों में मजदूरिनों ने झगड़ा-झंझट खड़ा किया है। कई-कई रोज तक पानी भरना छोड़ देती हैं ये, तो भले घरों की औरतों का बुरा हाल हो जाता है। हमारी महरी भी एक बार कुनमुनायी थी, मैंने उसे अपनी नयी धोती देकर मना लिया। अब वे छ: आने माहवारी पर काम नहीं करना चाहतीं। जमाना तेजी से बदल रहा है, बबुअन ! और है भी तो यह पुराना रेट···"

बच्चे खाना खाकर उधर गप-शप कर रहे थे। टुनू सो चुकी थी। मामी मलसी सामने रखकर उसमें तकली नचा रही थीं, जनेऊ के लिए रुई हमेशा से वह खुद ही कातती आयी थी। एक तरफ डाली में कते सूतों के लच्छे और रुई की पूनियाँ पड़ी थीं···मलसी के अन्दर नाचती हुई तकली 'किर्र-किर्र' की लगातार आवाजों से रात की चुप्पी को खरोंच रही थी।

दुखमोचन पीढ़े पर बैठे थे। उनकी निगाहें तकली की तरफ थीं, लेकिन कान कुछ और सुनने की प्रतीक्षा में सजग थे।

मामी ने तकली की रफ्तार कम कर दी। नयी पूनी के रेशों को तार के छोर से छुआकर उन्होंने एक बार दुखमोचन की तरफ पूरी निगाहों से देख लिया। बाल न होने से दुखमोचन का सिर छोटा और उदास मालूम पड़ा। वह फिर तकली पर नजर जमाकर सूत कातने लगीं। कुछ क्षण बाद बोलीं—"तुम्हीं से तो सुना है कई बार कि कारखाने कई-कई महीने बन्द रह जाते हैं। पंचों के बीच-बचाव से या माँगें मनवा लेने के बाद ही मजदूर काम पर वापस आते हैं···अब यहाँ भी समझ लो कि महरियों ने हड़ताल कर दी है, जब तक उनका वेतन नहीं बढ़ेगा, वे काम पर वापस नहीं आयेंगी।"

दुखमोचन को हँसी आ गयी, बोले—"खूब उड़ाती हो तुम भी, मामी ! भला यहाँ टभका-कोइली गाँव में कौन-सा कारखाना है कि कोई हड़ताल करेगा ? घरों में पानी भरनेवाली मजदूरिनों की क्या तादाद होगी, बताओ तो ?"

"अब यह तो तुम्हारा काम है कि उनका पता लगाकर सही तादाद मालूम करो, मैं क्या बताऊँ ?"

"तुम्हारी राय में कितनी तनख्वाह महरियों को मिलनी चाहिए ?"

"सिर्फ पानी भरने पर एक रुपया और बरतन-बासन माँजने, झाड़ू-बुहारी करने पर अठन्नी और···बबुअन, शहर का हाल तो तुम्हें ही मालूम है, मगर देहात में भी अब चीज-बस्त के दर-भाव खूब ऊँचे चढ़ गये हैं। पुराने जमाने की महरियाँ नहीं हैं ये कि चार-छः आने महीनेवारी पर तुम लोगों के तलवे सहलाती रहेंगी···नारियल का खुशबूदार तेल और प्लास्टिक की लम्बी कंघी इनके घरों में भी पहुँच चुकी है, बबुअन ! इनके घरों के भी मर्द रेल और स्टीमर पर सवार होकर कलकत्ता हो आते हैं। इन्होंने भी अपनी मेहनत का रेट बढ़ाने का इरादा कर लिया है।"

दुखमोचन चुपचाप मामी की बातें सुनते रहे। उन्हें वेणीमाधव की झल्लाहट याद आ रही थी। माया से जो कुछ सुना वह सब याद आ रहा था। पाँच-सात साल पहले देहाती मजदूरों के भाई-बन्दों ने अपनी पंचायत में फैसला किया कि ऊँची जातवालों के यहाँ अब वे अपमानजनक तरीकों से न कोई काम ही करेंगे, न कुछ इनाम इकराम ही लेंगे। जूठन में चाहे अमृत ही क्यों न रह गया हो, उसे कोई नहीं उठायेगा···बड़े लोगों में इससे खलबली मची थी, लेकिन दुखमोचन को यह सब अच्छा लगा था।

वह कुछ देर तक गुमसुम बैठे रहे। मामी तकली पर महीन सूत कातती रहीं। बीच-बीच में अपर्णा की दबी हँसी सुनायी पड़ती थी।

मामी ने कहा—"बस, एक पूनी और बच गयी है। चलो, पीछे कात लूँगी। भात ठण्डा हो जायेगा, खाना खा ही लो !"

"नहीं, इसे भी तुम कात ही डालो।" दुखमोचन उठते हुए बोले—"मैं अभी आया।"

छः

माया विधवा थी और कपिल विधुर था। दोनों की उम्र में चार-पाँच वर्ष का अन्तर था।

पिछले साल-डेढ़ साल के अन्दर दोनों का स्नेह-सम्पर्क बेहद गाढ़ा हो गया था। दोनों की नीयत थी कि पति-पत्नी की तरह साथ रहें और स्वस्थ जीवन बितायें, लेकिन यह आसान नहीं था। एक तो विधवा-विवाह ही इस गाँव के लिए अनहोनी घटना थी, दूसरे कपिल राजपूत था।

जयमाधव और कपिल स्कूल के साथी थे। दोनों ने साथ-साथ मैट्रिक की परीक्षा दी थी। कपिल पास कर गया था, जयमाधव फेल। अगले वर्ष जयमाधव की शादी हुई और पढ़ना छूट गया। कपिल बनारस रहकर बी० ए० तक पढ़ा। पिता मर गये, जोरों की बाढ़ आयी और पीछे सूखा पड़ा। कपिल आखिर बी० ए० की परीक्षा दोबारा नहीं ही दे पाया।

परिवार की आर्थिक स्थिति अब विषम नहीं थी। भाई और भाभी खूब मानते थे और वामपन्थी राजनीति की तरफ अभिरुचि थी। घरवालों ने कभी नहीं कहा था कि नौकरी करो। यह भी नहीं कहा कि आगे की पढ़ाई फिर से शुरू करो। शादी के छः महीने बाद ही कपिल की पत्नी प्लेग में मर गयी तो जात-बिरादरी के लड़कीवाले इर्द-गिर्द मँडराने लगे। मोटी रकमों के दसियों प्रलोभन थे, मगर बड़े भाई अखिल की लार नहीं टपकी। उसने कपिल को इस मामले में भी स्वतन्त्र छोड़ दिया था।

कपिल की समझ में नहीं आता था कि क्या करे। मनोरथ की पूर्ति का सीधा रास्ता था माया को भगा ले जाना और बाहर-ही-बाहर कहीं शादी कर लेना। मगर कपिल की प्रबुद्ध चेतना वैसा करना दुराचार और अविवेक मानती थी। या तो माया को पत्नी बनाने का खयाल ही छोड़ दे, या फिर उसके अभिभावकों का समर्थन हासिल करे। तीसरा कोई विकल्प वह सोच ही नहीं सकता था।

माया अपनी माँ और भाभियों की दुलारी थी। भाई तीन थे, मगर बहन तो यह एक ही थी उनकी। जिसमे शादी हुई थी वह कुलीन लेकिन दरिद्र परिवार का लड़का था। बाढ़ से उफनती हुई 'बूढ़ी गंडक' पार कर रहा था, भँवर में पड़कर नाव उलट गयी तो वह भी डूब गया। लाश का पता नही चला। जब से विधवा हुई थी, तब से माया ससुराल नहीं गयी। बूढ़ी सास थी, आवारा देवर था। खेत-खेत थोड़े थे, निर्वाह बड़ी मुश्किल से होता था। माँ और बड़ी भाभी के आग्रह से माया मायके में ही जम गयी थी।

मँझले भाई जयमाधव की पत्नी उसकी हम-उम्र थी और दोनों में खूब हेल-मेल था। वे एक-दूसरे का नाम नहीं लेती थीं, 'प्रान' 'प्रान' कहकर पुकारती थीं।

आपस में शायद ही कोई बात छिपाती रही हों। और, यही हाल जयमाधव और कपिल का था : वे एक-दूसरे को 'मीत' कहते थे। यह मित्रता बचपन से ही चली आयी थी।

दोनों भाई बाहर गये हुए थे। छोटा भाई नीलमाधव मैट्रिक की तैयारी के सिलसिले में पिपरा बाजार हाई स्कूल की बोर्डिंग में रहता था। बड़ी भाभी पड़ोस में गप्पें लड़ाने गयी थी और माँ उसना चावल तैयार करने के लिए कनस्तरों में धान उबाल रही थीं।

माया स्वेटर बुन रही थी। कपिल आहिस्ता से आया और खड़ा हो गया। माया की माँ ने देखा तो मुसकरायी। इशारे से कपिल ने बताया कि वह कुछ बोले नहीं···

हमेशा इसी तरह कपिल आता था और माया को चौंका देता था। फिर दोनों हँस पड़ते थे। माँ भी साथ देती थी हँसने में।

कुछ क्षण खड़ा रहकर कपिल और भी करीब आ गया। पॉकेट से पेन निकालकर माया की पीठ में भिड़ा दी तो वह चिहुँक उठी। पीछे गरदन घुमाकर देखा—

"ओह, तुम हो ! मैं तो डर गयी···"

"इसमें डरने की क्या बात थी ?"

"एकाएक पीठ से उँगली-सी कोई चीज छू जाये तो तुम भी इसी तरह डरोगे···"

कुछ क्षण तक दोनों हँसते रहे, उधर माँ भी मुसकराती रहीं।

माँ को यह पता था कि दोनों एक-दूसरे से प्यार करते हैं। पिछले साल गरमियों में माया की गरदन पर एक भारी फोड़ा निकला। टीस बढ़ती गयी, दिन गुजरते गये। मगर फोड़ा पककर फूटा नहीं। जयमाधव और कपिल उसे लहेरियासराय के बड़े अस्पताल ले गये। चीर-फाड़ तो मामूली ही हुई थी, लेकिन घाव भरते-भरते दस रोज लग गये। जयमाधव बीच-बीच में गाँव आ जाता था। तीमारदारी का पूरा भार कपिल ने ही उठाया था।

माँ ने हुलसकर कहा—"कई दिनो के बाद आये हो। कहाँ गये थे, बेटा ?"

कपिल बोला—"कहीं नहीं गया था चाची, यहीं था···"

"तो आये क्यों नहीं ?"

"माया गाहक उस रोज मुझसे झगड़ पड़ी थी···"

"नहीं माँ, झूठ ! बिलकुल झूठ ! !"

माँ हँसने लगीं। हँसती-हँसती घर के अन्दर चली गयीं।

छोटी बहू भाई के गौने के सिलसिले में मायके गयी हुई थी। कपिल ने पूछा—"छोटी भाभी कब तक लौटेंगी, माया ?"

ऊन का लच्छा और सलाइयाँ एक ओर रखकर माया पीढ़ा ले आयी। कपिल बैठा।

बिनाई चालू करते हुए माया ने कहा—"छोटी भाभी के बारे में पूछा था न? वह होली के बाद ही लौटेंगी अब···"

कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद धीमी आवाज में कपिल बोला—"तो तुम तैयार हो न, माया?"

माया ने इधर-उधर देखा, कोई नहीं था। फिर भी वह चुप रही। चेहरे पर गम्भीरता छा गयी थी। बिनाई के काम मे मन को जमाये रखना मुश्किल पड़ने लगा।

"बोलती नही हो कुछ? क्या बात है, माया?"

"मेरी तैयारी से क्या होगा?"

"वाह! बाकी सब-कुछ ठीक हो और तुम्हीं तैयार न रहो तो सारा मामला बिगड जायेगा···नही माया, गलत कहता हूँ?"

"तुम भला गलत कहोगे?"

"मेरी बातों का मखौल न उड़ाओ, माया!"

"नाराज हो गये?"

कपिल चुप था। उसका चौड़ा और गोरा मुखमण्डल बड़ी-बडी आँखो की तरह उदासी को खुलकर उभरने नही दे रहा था। छोटी मूँछें, पतले होंठ, उभरी हुई ठुड्डी···

माया ने गौर से कपिल की तरफ देखा।

वह अब भी मौन था।

माया शान्त और गम्भीर स्वर में बोली—"उस रोज कह गये थे कि दुखमोचन भाई को यह सारी बात खुलासा करके लिखोगे और प्रार्थना करोगे कि मेरे भइया को समझा-बुझाकर राजी कर लें···मुझे तो बस उन्हीं का भरोसा है। तीन साल पहले की बात है, लखनौली की एक लड़की जनकपुर के मेले में गायब हो गयी थी। ढाई महीने बाद पटना के अनाथ महिलाश्रम से उसका पता चला। समाज के डर से घरवाले उसे वापस लेने का विचार छोड़ चुके थे। दुखमोचन भाई ने कई दिनों तक लखनौलीवालों को समझाया-बुझाया, लोग आखिर राजी हो गये और लड़की घर लौट आयी। पीछे खादी भण्डार के एक कार्यकर्त्ता से दुखमोचन भाई ने उसकी शादी करवा दी थी···"

कपिल ने कहा—"सुना तो मैंने भी था। अखबारों में खबर छपी थी—'मैथिल विधवा की भूमिहार युवक से शादी···' "

"फिर नही छप सकती है इस तरह की खबर?"

"नित्याबाबू जैसे दकियानूस यह काम होने भी तो दें!"

माया ने छूटते ही कहा—"क्या कर लेंगे नित्याबाबू ? दुखमोचन भाई अगर हमारी पीठ पर अपना हाथ रख दें तो किसी की नहीं चलेगी। नित्याबाबू को अब पूछता ही कौन है ? अच्छा, यह तो बताओ कि दुखमोचन भाई तक अपनी बातें तुमने पहुँचा दीं न ?"

"पहुँचा दी थीं," कपिल बोला, मगर आवाज बिलकुल फीकी थी—ऐसी कि माया को यकीन ही नहीं हुआ इस बात पर। वह बुदबुदायी—"नहीं, तुम झूठ बोल रहे हो, कपिल !"

कपिल अपने झूठ पर अड़ नहीं सका, आखिर चुप रह गया। निगाहें नीचे की ओर धरती पर जमी थीं। संकोच ने साहस को पछाड़ दिया था, माया अच्छी तरह समझ रही थी।

वह बोली—"कोई बात नहीं, अब मैं कोशिश करूँगी···"

कपिल की पीठ पर मानो चाबुक पड़ी हो। वह तनकर बैठा। निगाहें माया के चेहरे पर अटक गयीं। हड़बड़ी में कह गया—"तुम ? दुखमोचन भाई से तुम कहने जाओगी यह सब ? नहीं, यह हो नहीं सकता, माया, कभी नहीं ! वह मुझे कैसा घोंचू समझेंगे ? तुम दो दिन की मुहलत मुझे और दो···"

माया के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। आँखें उँगलियों, सलाइयों और ऊन के लच्छे पर थीं। आज ही उसने डेढ़-साला भतीजे के लिए पूरी बाँहों का स्वेटर बिनना शुरू किया था, बाँहवाली एक पट्टी बिनी जा चुकी थी और उधर माघ का सूरज डूबनेवाला था।

माँ ने आवाज दी—"कपिल को नाश्ता नहीं करायेगी ?"

माया ने जवाब में कहा—"छोटी भाभी मायके से आयेंगी तो उन्हीं के हाथों से तैयार नाश्ता इनको मिलेगा···"

माँ खिलखिलाकर हँसी—"तो बाकी लोग इस परिवार में कपिल के दुश्मन हैं ? कैसी बात करती है तू भी !"

"नहीं, चाची !" कपिल ने सँभलकर कहा—"नाश्ता आज मैं करके चला था।"

"तू तो भारी लजकोटर है, कपिल !"

"और यही बात मैं कहूँ तो मुँह फुला लेंगे बाबू साहब !"

माया ने गाल फुला लिए और कपिल की ओर शरमाते हुए देखा। कपिल भीतर-ही-भीतर कटकर रह गया। अभी कुछ ही क्षण पहले माया ने उसकी यह कमजोरी पकड़ी थी। अकारण और अनावश्यक लज्जा-संकोचवाली अपनी यह भारी दुर्बलता खुद को ही खलने लगी·· नाश्ता नहीं किया था, फिर भी कह रहा था कि करके आया है !

वस्तुतः यह कपिल की पुरानी कमजोरी थी।

माया ने कहा—"भैया आते ही होंगे, उनके लिए चिउड़ा तलने जा रही हूँ। तुम यह न समझ लेना कि सिर्फ तुम्हारे लिए नाश्ता तैयार होगा···"

अब कपिल कुछ नहीं बोला।

माया उठी और रसोईघर में घुस गयी, लेकिन कपिल पीढ़े पर उसी तरह बैठा रहा।

आज रात को वह जरूर दुखमोचन तक अपनी बातें पहुँचा देगा। प्रार्थना करेगा कि शीघ्र-से-शीघ्र यह काम हो जाय···और अगर···

कपिल के चिन्तन की चरखी घूमने लगी—और अगर दुखमोचन भाई को यह सम्बन्ध अनुचित जँचे, अनर्गल मालूम हो यह रिश्ता तो साफ बतला दें···मगर क्यों दुखमोचन भाई को कोई हिचक होगी? क्यो नहीं वह 'स्वस्ति' कहेंगे···मेरे भैया तो मान ही जायेंगे, असल कठिनाई है माया के बड़े भाई वेणीमाधव को रास्ते पर ले आना···और यह कठिनाई दुखमोचन भाई हल कर ही लेंगे ··

नजदीक आकर माया की माँ ने कपिल के कन्धे पर बायाँ हाथ रख दिया। सवेरे से धान उबाल रही थी, चूल्हों में भूसी और सूखे पत्ते झोंकते-झोंकते दाहिना हाथ काला पड़ गया था।

"किस फिकर में पड़े हो, बेटा?"

"नही चाची, किसी फिक्र में नही पड़ा हूँ।"

मशीन की तरह कपिल के मुँह ने शब्द उगल दिये। वह सूनी निगाहों से वृद्धा की तरफ देखने लगा।

"नहीं बेटा, कोई बात होगी!"

"उँहुँ!"

माया ने उधर रसोईघर से कपिल के पक्ष को सँभाला, बोली—"इनको सोचने का रोग लग गया है, माँ!"

कपिल ने मुसकराने की कोशिश की तो माया की माँ ने आँख-भौंह चमकाकर कहा—"कठहँसी से मुझे तुम ठग नहीं सकोगे, मैं सब समझती हूँ बेटा!···"

बड़ी बहू पड़ोस के घरों को फेरा लगाकर वापस आ गयी। उसने भी शिकायत की कि कपिल अब कई-कई रोज बाद क्यों आता है···

भीतर की दुनिया को छोड़कर कपिल को अब बाहर आना पड़ा। बड़ी भाभी की बातों में दिलचस्पी लेना आवश्यक था न!

घी में तले हुए चिउड़े और···और परवल का अचार—काँसे की छिपिया में नाश्ता आया; पीतल के गिलास मे पानी।

जैसे-तैसे नाश्ता करके कपिल बाहर निकल आया।

अपने घर पहुँचकर उसने दुखमोचन के नाम एक पत्र लिखा और उसे लिफाफे में अन्दर डाल दिया। अपने संकल्प के अनुसार आज ही सब कुछ वह दुखमोचन

के दरबार में पेश करने चला। चलते समय अपनी भाभी से इतना-भर कहता आया कि रात को वह कुछ देर से लौटेगा।

गाँव में राजपूतों के आठ-दस परिवार ही थे। उनके पास काफी तो नहीं मगर कामचलाऊ जमीन-जायदाद थी और साधारण तौर पर वे सुखी थे। सिसोदिया खानदान का एक राजपूत सरदार ढाई-तीन सदी पहले पश्चिम में आकर नेपाल-तराई में बागमती के किनारे आबाद हो गया था। उसके सात बेटे और ग्यारह पोते थे। उन्हीं में से एक आकर यहाँ टभका-कोइली में बस गया था···गाँव से पश्चिम पाँच हजार बीघा जमीन का एक बड़ा चक उसे राजा रत्नेश्वरी नन्दनसिंह के पूर्वजों से पारितोषिक मिला था। आधी से अधिक जमीन दूसरों की हो गयी थी, फिर भी उन आठ-दस परिवारों के लिए उतनी जायदाद काफी थी। अखिलेश्वर और कपिलदेव के पिता का नाम था बाबू परमेश्वरसिंह। पाँच सौ बीघा जमीन के मालिक थे। शाहखर्ची उनमें कूट-कूटकर भरी थी। मरे तो पन्द्रह हजार का कर्ज छोड़ गये थे। अब भी ढाइ-तीन सौ बीघा जमीन अखिल और कपिल के अधिकार में थी अवश्य, लेकिन उपज का हाल अच्छा नहीं था। कभी बाढ़, कभी सूखा ! दूसरे काश्तकारों की तरह ये लोग भी तबाह थे, इनकी भी पुश्तैनी जायदाद साल-दर-साल छीजती जा रही थी।

राजपूतों का यह टोला गाँव के पश्चिम-दक्षिण कोने में आबाद था। इनके घरों की दीवारें पक्की ईंटों की थी। दूर से ही इनके मकान चमकते थे।

कपिल दुखमोचन से मिलने चला तो शाम अच्छी तरह उतर आयी थी। माघ की अमावस थी शायद आज। कई दिनों से पछिया हवा चल रही थी। जाडों की कनकनी हाड़-हाड़ को छू रही थी मानो ! खद्दर की कमीज पर भागलपुरी अण्डी डालकर कपिल घर से निकला था, कोट लेने की सुध ही नहीं रही।

गाँव के दक्षिण छोर पर पहुँचकर उत्तर की तरफ मुड़ा ही था कि मिहिर-कुमार और अमलेन्द्र मिल गये। उनसे पता चला कि दुखमोचन इलाके के एम० एल० ए० बाबू शुभंकर राय के लड़के की शादी में बरात के साथ सहरसा गये हैं, परसों-तरसों लौटेंगे। थोड़ी देर कपिल नौजवानों से बातें करता रहा, फिर वापस आ गया। एक बार इच्छा हुई कि पत्र मामी को दे आये, फिर सोचा कि कहीं खोलकर वह पढ़ न लें।

ये दो-तीन दिन उसके बड़ी बेचैनी से कटे, किन्तु मन संकल्प से डिगा नहीं। हाँ, इतना जरूर हुआ कि लिफाफा फाड़कर पत्र का मजमून बार-बार देखा। उसमें एक-आध लाइन घटायी और बढ़ायी। फिर लगा कि यह आवेग में लिखा गया था, शान्त और स्थिर चित्त से पत्र दोबारा लिखा जाना चाहिए। खैर, दूसरी दफा लिखा गया पत्र।

तीसरे रोज कपिल से रहा नहीं गया। दोपहर का खाना खाकर वह पिपरा

बाजार चला गया। प्रजा-समाजवादी पार्टी की थाना-कमेटी के दफ्तर में साथी सिंहासनराय से बातें करता रहा और शाम को पाँच बजे ट्रेन-टाइम पर स्टेशन पहुँचा।

गाड़ी तो वक्त पर आयी, लेकिन दुखमोचन नहीं आये। साथी सिंहासन की राय हुई कि एकान्त में मिल लेना आवश्यक है, रात की ट्रेन से आ ही जायेंगे दुखमोचन।

कपिल शाम को गाँव नहीं लौटा, बाजार में ही रह गया। बहुत दिनों के बाद दो साथी मिले थे। जमकर बातचीत चली। समान आस्थावाले दो दिलों की अटूट मैत्री थी। लगता था कि रात बीत जायेगी लेकिन गप्पों का सिलसिला खत्म नहीं होगा···आधी रात को एक बजे दक्षिण से ट्रेन आती थी। दोनो मित्र स्टेशन पहुँचे। पान और बीड़ी और गप्प···डेढ़ घण्टे की इन्तजारी के बाद ट्रेन आयी, बेहद लेट थी। गनीमत यही थी कि दुखमोचन दिखायी दे गये।

सिंहासन ने झोला थामते हुए कहा —"अब इत्ती रात को कहाँ जायेंगे, दुखमोचन भाई? चलिए, पार्टी-ऑफिस मे सो लीजिएगा। क्यो कपिल?"

दुखमोचन ने हँसकर कहा—"बडे आराम से आया हूँ भाई, सेकण्ड क्लास का सफर था न!"

सिंहासन बोला—"माने मुफ्त दिले बेरहम! आखिर आप भी सही रास्ते पर आ रहे हैं अब। है न, दुखमोचन भाई?"

इस पर तीनों खुलकर हँसे।

स्टेशन के फाटक से निकलते-निकलते दुखमोचन ने सिंहासन से कहा—"शुभंकर बाबू सर्वोदयी आदर्शो पर चलनेवाले कांग्रेसी ठहरे। लडका तो बाप से भी दो कदम आगे निकला। उसका हठ था कि तिलक या दहेज के तौर पर एक पैसा भी नकद रकम ली जायेगी तो वह विद्रोह कर बैठेगा। आखिर वही बात हुई। लेन-देन की चर्चा तक नहीं सुनी गयी। हाँ, बरातियो के स्वागत-सत्कार में कन्यापक्षवालों ने काफी कुछ खर्च कर डाला है। देखो न, तीस जने हम जोगिवाड़ा से सहरसा गये थे, आना-जाना सेकण्ड क्लास में ही हुआ है···"

साथी सिंहासन मुसकराता रहा पहले, अब भभाकर हँस पड़ा। बोला—"भारी मालदार होंगे शुभंकर बाबू के समधी। हमारे सर्वोदयी विधायक महोदय ने अपने समधी की इस शाहखर्ची पर अंकुश नहीं डाला? अजी दुखमोचन भाई, देखते चलिए! बहू जब शुभंकर बाबू की हवेली के अन्दर पैर रखेगी तो हजारों का सोना उसके बदन पर होगा···"

"सो तो होगा, रायजी!"

"फिर कैसे आपने कहा, लड़का बाप से दो कदम आगे निकला?"

दुखमोचन चुपचाप चलते रहे।

कपिल ने आहिस्ता-से छोटा-सा बन्द लिफाफा उन्हें थमा दिया। अचकचाकर दुखमोचन ने पूछा—"क्या है?"

"पीछे इतमीनान से देख लीजिएगा।"

अँधेरे में लिफाफे की सफेदी तो नजर आ रही थी, लेकिन अक्षर बिलकुल अस्पष्ट थे। लिखावट पतली-नीली रोशनाई की थी, इससे वह अक्षरों का मामूली आभास-मात्र दे रही थी।

दुखमोचन ने लिफाफे को सँभालकर पॉकेट में रख लिया। कुछ क्षण बाद साथी सिंहासन से पूछा—"दफ्तर में लालटेन तो होगी न?"

"है दुखमोचन भाई, मगर आप चलिए भी तो!"

"चल ही तो रहा हूँ···अब और कहाँ मिलेगी लालटेन?"

पार्टी-ऑफिस में आकर दुखमोचन ने बेताबी से लिफाफा खोला और चिट्ठी पढ़ डाली।

कपिल का दिल धड़क रहा था। वह सोच रहा था कि पत्र पढ़कर दुखमोचन भाई का चेहरा बेहद गम्भीर हो उठेगा, वह चुपचाप लेट जायेंगे और देर तक उन्हें नींद नही आयेगी···वह किसी से कुछ बोलेंगे नही।

लेकिन यह सब कुछ नहीं हुआ।

दुखमोचन ने आदि से अन्त तक वह पत्र दो बार पढ़ा और फिर उसे सँभालकर उसी तरह पॉकेट के हवाले किया।

साथी सिंहासनराय ने पूछा—"क्या था, भाई साहब?"

स्वाभाविक लहजे मे दुखमोचन ने जवाब दिया—"कुछ नहीं रायजी, गँव-गँवई का हमारा अपना मामला है।"

इस संक्षिप्त समाधान से साथी सिंहासनराय को तो तसल्ली हो गयी लेकिन कपिल का हृदय आश्वस्त नही हुआ।

सिंहासनराय और दुखमोचन देर तक बातें करते रहे, मगर कपिल का थका मस्तिष्क शून्य-सा हो गया था, सो उसे नींद आ गयी।

सात

नित्याबाबू बारहों महीने अन्दर ही सोते थे और यह तो भला जाड़ का मौसम था।

उजली पंचमी का तिहाई चाँद कब का डूब चुका था। बैठकवाले पक्के मकान के बरामदे में लालटेन की धीमी रोशनी ऊँघ रही थी। सीढ़ियों के दोनों ओर रातरानी की घनी झाड़ें थीं, उनसे उलझ-उलझकर मद्धिम प्रकाश आँगन की सफेद मिट्टी पर चितकबरी परछायीं बना रहा था।

मास्टर टेकनाथ आया तो खम्भे की ओट से कुत्ता गुर्रा उठा। उसे चुमकार-कर मास्टर ने शान्त किया तो अन्दर से आवाज आयी—"क्या है, टेकनाथ ?"

"बाहर नहीं निकलियेगा ?" मास्टर ने कहा और सूखे गले को थूक से तर कर लिया।

बोलने में कलेजे पर जोर पड़ा तो खाँसने लगे नित्याबाबू। खाँसती आवाज में ही नौकर को पुकारा—"घुटरा ! घुटरा रे ! घुटरा !"

उधर कहीं से निद्रामग्न व्यक्ति की अलस-प्रस्फुट ध्वनि आयी जो कि गले से ही नहीं बल्कि नाक से भी निकली, "ऊँ···ऊँ···।"

फिर नित्याबाबू ने एक वजनदार गाली दी और तब घूटर ने अन्दर से किवाड़ खोला आकर।

टेकनाथ कमरे के अन्दर आया तो घूटर लालटेन उठा लाया बाहर से। अब उसकी नींद अच्छी तरह टूट चुकी थी, बातें सुनने की नीयत से पलंग के करीब ही बैठ गया।

टेकनाथ कुरसी पर बैठा तो नित्याबाबू ने रेशमी लिहाफवाली मोटी रजाई में से माथा बाहर निकाला। गले मे ऊपर काश्मीरी शाल की दुहरी लपेट थी···होंठ, नाक और कपार-भर दिखायी दे रहे थे।

थकी बूढ़ी आवाज में नित्याबाबू ने पूछा—"क्या बात है, टेकनाथ ?"

"गाँव की नाक कट रही है, नित्याभाई ! वेणीमाधव की बहन का ब्याह हो रहा है फिर से।"

"कब ? कल कि परसों ?"

"कल-परसों नहीं नित्याभाई, अभी और इसी वक्त ! दूल्हा कहीं बाहर से नहीं आया है···अखिलेश्वर सिंह के छोटे भाई कपिलदेव को शायद आप नहीं जानते हैं, उसी के साथ वेणीमाधव अपनी विधवा बहन की शादी कर रहा है। मुजफ्फरपुर से आर्यसमाजी पुरोहित बुलवाया गया है···"

नित्याबाबू का दिमाग एकाएक ऐसी अनहोनियाँ सुनकर फटने लगा। बोले—"ठहरो, टेकनाथ, ठहरो ! मै समझ नहीं पाया, क्या हो रहा है···वेणीमाधव की बहन का ब्याह ? अरे, उसकी शादी तो कई साल पहले ही हुई थी, गौना भी हो गया था। विधवा हो गयी थी···"

टेकनाथ समझ गया कि आज अफीम की मात्रा ज्यादा ले ली होगी। वह बोला—"नित्याभाई, यह दुखमोचन जो न करे ! सारी खुराफात अकेले उसी के

दिमाग की उपज है, नित्याभाई ! आप और मुंशीजी अगर चाहें तो अब भी इस कुकर्म का प्रतिकार हो सकता है···"

दुखमोचन का नाम सुनते ही नित्याबाबू की चेतना ने झटका खाया। वह उठे और पलंग की सिरहानेवाली ऊँची पट्टी से पीठ टिकाकर बैठ गये। खाँसते-खाँसते पूछा—"अब खुलासा बतलाओ, दुखमोचन ने क्या किया है ? वेणीमाधव की बिधवा बहन का ब्याह करवा रहा है ?···शिव शिव शिव शिव ! अब यह गाँव भले आदमी के रहने लायक नहीं रह गया है, टेकनाथ !"

नौकर से कहा—"गरम पानी तो ले आ घुटरा, कुल्ली करूँगा। मुँह का स्वाद खराब हो गया है···"

फिर टेकनाथ को लक्ष्य करके बोले—"मैं तो बूढ़ा हूँ, मगर तुम लोग क्यों नहीं दुखमोचन की नाक में नकेल डालते हो ! उसे न किसी का लिहाज रह गया है, न डर। समूचा गाँव उसकी मुट्ठी में है।"

"तो इसमें मेरा क्या कसूर है, नित्याभाई ?"

"तो मेरा कसूर है ?" खिसियाकर नित्याबाबू ने कहा—"क्या करते रहते हो ? इतना भी नहीं होता कि चौकस रहकर पास-पड़ोस की गतिविधि का अन्दाज रखो ! अब क्या कर लोगे ? जाओ, रतजगा करने से क्या फायदा ?"

सूती कुरते पर खद्दर की चादर ओढ़ रखी थी टेकनाथ ने। नीचे पतली धोती और पैरों में कपड़े के जूते थे। गंगा-जमनी बालों की खूँटियाँ माथे पर चमक रही थीं। चौड़े चेहरे पर नुकीली नाक तो और भी चमक रही थी।

धोती की खूँट से नाक पोंछकर वह बोला—"मुंशीजी के यहाँ भी मैं गया था। उन्होंने कहा, यह तुम लोगों का अपना बभनौली मामला है, दूसरी जात के लोग इसमें क्या करेंगे ?"

"रमाकान्त से नहीं कहा ?"

"वहाँ भी गया था, मगर दुखमोचन का नाम सुनकर वह भी चुप मार गये, नित्याभाई !"

"राजकुमार से नहीं मिले ?"

"मिहिर ने बतलाया, पिताजी निर्मली गये हैं···बस, अब और मैं किसी के यहाँ नहीं जाऊँगा। जब भगवान् की यही मरजी है तो हम-आप क्या कर लेंगे, नित्याभाई ?"

"हूँ···"

शाल गर्दन के नीचे खिसक आया था। नित्याबाबू की गंजी चाँद लालटेन की मद्धिम रोशनी में चमक रही थी, यद्यपि बीमारी और बुढ़ापे ने साँवले चेहरे को काला कर दिया था।

कुछ क्षण चुप रहकर नित्याबाबू अपने-आप बोलने लगे—"हे रावणेश्वर

बम्भोलेनाथ, यह कैसा जमाना आया है ! जात-पाँत और धर्म-कर्म पर संकट-ही-संकट लदता चला आ रहा है···कल के छोकरे हम बूढ़ों की नाक में कोड़ी बाँध रहे हैं। चालीस-पैंतालीस की उमर के बाद सिर्फ बाल ही पकने लग जाते हों ऐसी बात नहीं, बल्कि अपमान और तिरस्कार भी शुरू हो जाता है। घर के लड़के तक बात नहीं मानते हैं···अच्छा हो कि दुखमोचन हमारा गला घोंट दें···"

फिर एकाएक टेकनाथ से पूछ बैठे—"तुम्हारी क्या उमर होगी, टेकनाथ ? चालीस ! पैंतालीस !"

"छियालीस नित्याभाई, और आपकी ?"

"सड़सठ खत्म ही हुई, अब चैत से अड़सठ चढ़ेगी।" घूटर ने गरम पानी का गिलास लाकर दिया और पीकदानी उठाकर मुँह के नजदीक रखी। नित्याबाबू ने मुँह में पानी लेकर दो-तीन बार कुल्ली फेंकी।

"पान खाओगे टेकनाथ ?"

"लाइए !"

पान देकर बोले—"अच्छा, अभी जाकर सोओ अब ! हाँ, इतना मैं जरूर कहूँगा कि बड़े बुरे दिन आ रहे हैं···हम तो खैर दो रोज और हैं, मगर तुम-जैसो के लिए जीवन पहाड़ हो जायेगा, टेकनाथ ! दुखमोचन तो खाली नही बैठेगा, एक-न-एक खटपट लगाये ही रहेगा और तुम लोग चुपचाप बरदाश्त करते जाओ सब कुछ···"

टेकनाथ चुपचाप सुरती तैयार कर रहा था। निगाहें नित्याबाबू के चेहरे पर लगी थीं। बोला—"मगर आपने भी तो आमने-सामने दुखमोचन को कभी रोका-टोका नहीं ! जो आदमी बहकने लगे, उसका इलाज शुरू में ही अच्छा रहता है नित्याभाई, कि नहीं ?"

पान की पीक उगालदान में फेककर उन्होंने कहा—"यह पाँच वर्ष तक कलकत्ता रहा, फिर जाने क्या सूझा कि जमा-जमाया काम छोड़कर गाँव आ गया। उन दिनों अगर मुझे पता होता कि आगे चलकर दुखमोचन खुराफाती धूमकेतु निकलेगा तो मैं तभी इसे हमेशा के लिए सुला देता, मगर··"

नित्याबाबू ने कपार ठोंक लिया। अपनी पिछली अदूरदर्शिता जिस तरह इस वक्त दुखमोचन के सिलसिले में उन्हें खली उस तरह कभी किसी प्रसंग में नहीं खली थी।

"अभी आप आराम कीजिए, नित्याभाई !" टेकनाथ ने कहा—"मैं उधर चलकर देखता हूँ, कल आकर फिर बताऊँगा।"

"जरूर ! जरूर ! टेकनाथ, जरूर ! तुम्हीं तो बुड्ढे की आँख-कान हो भइया···वरना बुढ़ापे की इस नजरबन्दी में मेरे-जैसे अपंग को दुनिया जहान का कुछ भी पता चलता ? उँहूँ, बिल्कुल नहीं !"

सुरती फाँककर वह उठा और चुपचाप बाहर निकल आया। उसे लगा कि नित्याबाबू अकेले आगे नहीं होना चाहते। गाँव में और कोई नहीं था जो नित्याबाबू की तरह पुरानी परम्परा का प्रबल समर्थक हो और जिस पर टेकनाथ की आस्था हो।

"कल शाम को अवश्य आना, टेकनाथ। सोच-विचारकर सही नतीजे पर पहुंच जायेंगे···"

नित्याबाबू ने अन्दर से ही कहा और टेकनाथ का संक्षिप्त जवाब सुनायी पड़ा—"आऊँगा !"

रात आधी से अधिक बीत गयी थी। धुन्ध ने नक्षत्रों की सहज कान्ति कम कर रखी थी। टेकनाथ वेणीमाधव के दालान पर आ बैठा। वहाँ छप्पर की पाढ़ से साफ शीशेवाली एक नयी लालटेन टँगी थी, मद्धिम और मीठी रोशनी में समूचा दालान आलोकित था। कंचन और कन्हाई अलग बैठे बातें कर रहे थे।

हवेली के अन्दर से आवाजें आ रही थीं, कभी जोरदार और कभी हल्की।

टेकनाथ ने फुसफुसाकर पूछा—"कहाँ कंचन, दुखमोचन अन्दर हैं कि अपने घर चले गये ?"

कंचन ने शंकित दृष्टि से मास्टर को देखा, कन्हाई तो पूछ ही बैठा—"क्या काम है तुमको दुखमोचन बाबू से ?"

"काम ? हे हें हे हे क···आ·· आ···आम ? हे हें, काम तो उनसे कोई नहीं है·· हें·· हे हें हें ··"

"तो फिर ?"

"माया का ब्याह हो रहा है सोचा, आशीर्वाद दे आऊँ—दूब-अच्छत छींट आऊँ माथे पर··"

अन्तिम वाक्य दोहराता हुआ जयमाधव निकल आया उधर से—"दूब-अच्छत छींट आऊँ माथे पर—दूब-अच्छत ! नहीं, नहीं, मास्टर आपके आशीर्वाद की कोई जरूरत नहीं है यहाँ ! आशीर्वाद देने के लिए नहीं, आप तो भेद लेने के लिए पधारे हैं यहाँ···क्या मैं झूठ कहता हूँ, मास्टर ?"

टेकनाथ सिटपिटा गया। कंचन और कन्हाई चुप थे, मगर जयमाधव के मुँह की भाप कम नहीं हो रही थी। वह अभी और कुछ कहता, मगर एकाएक दुखमोचन सामने आ गये तो मानो जबान ही सिकुड़ गयी।

"क्यों मास्टर को परेशान करते हो !" दुखमोचन ने जयमाधव से कहा—"ऐसा मत सोचो कि हमेशा अपने होंठों पर कलई किये रहता है—अरे, बातें सबकी सुना करो, जयमाधव !"

फिर दुखमोचन मास्टर की तरफ रुख करके बोले—"कहो टेकनाथ, कैसा चल रहा है आजकल ?"

"तुमसे तो कभी मुलाकात ही नहीं हो पाती, दुखमोचन !" मास्टर ने आश्वस्त स्वर में कहा और ऊपरी हँसी हँसता रहा।

मगर दुखमोचन ने यह नहीं पूछा कि उसे इस शादी की खबर किसने दी। अगले ही क्षण जयमाधव की पीठ पर हाथ रखकर बोले—"अरे, मास्टर को पान-वान नहीं दिया लाकर ?"

"आ जायेगा, कोई जल्दी थोड़े है ? काज-परोजन के मौके पर अबेर-सबेर हो ही जाती है, भइया ! और यह तो अपना ही घर ठहरा न !"

टेकनाथ ने ये शब्द चाटुकारी लहजे में कहे तो दुखमोचन की तबीयत हुई कि चुभने-चिकोटनेवाली चार बातें कहकर उसके दिल पर रन्दा फेर दे और घायल शिकार को छटपटाता छोड़कर वापस हवेली के अन्दर चला जाये। लेकिन नहीं, दुखमोचन ने ऐसा नहीं किया। उसे अपने-आप पर काबू पाने का गुर हासिल हो चुका था।

टेकनाथ की इच्छा थी कि किसी तरह अन्दर हवेली में जाने का अवसर मिले और दूल्हा-दुलहिन की एक-आध झाँकी ले ली जाये। चेहरा-मोहरा देखकर घर-वालों का रुख मालूम हो ही जायेगा···

जयमाधव ने दुखमोचन का संकेत समझ लिया था। वह पान लाकर टेकनाथ के आगे रख चुका था।

"लो, मास्टर, पान लो !" दुखमोचन ने व्यस्तता के अन्दाज में कहा और दो बीड़े थमा दिये। एक अपने मुँह में डाल लिया, बाकी कंचन और कन्हाई की तरफ तश्तरी खिसका दी। ऊपर से एक-एक चुटकी जर्दा और बस।

"तो मास्टर, मुझे फुरसत दो अभी।"

"मैं तो आशीर्वाद देने आया था, दुखमोचन !"

"सब कुछ हो गया मास्टर, आशीर्वाद की विधि भी पूरी हो चुकी है···यों, कैसे भी और कहीं से भी आशीष दोगे, उन तक पहुँच ही जायेगी, मास्टर !"

अब टेकनाथ मास्टर को उठना ही पड़ा—"अच्छा दुखमोचन, इस शुभ-कार्य में मेरी भी हाजिरी स्वीकार हो। वेणीमाधव से कह देना···"

दुखमोचन कुछ बोले नहीं, मुसकराये जरूर।

टेकनाथ दालान के बरामदे से नीचे उतरा और रास्ते की तरफ बढ़ गया। इधर दुखमोचन भी हवेली के अन्दर आये।

विवाह की विधियाँ सचमुच सारी-की-सारी पूरी हो गयी थीं। आर्यसमाजी पुरोहित अपनी 'संस्कार-विधि' स्रुवा आदि सहेज चुका था। दक्षिणा उसे मिल ही चुकी थी। बस, एक ही झंझट था। रात का एक बज रहा था, भूखा होने पर भी वह खाना नहीं खा रहा था। वेणीमाधव और उनकी माँ का आग्रह था कि बिना ब्राह्मण-भोजन के सब कुछ अधूरा ही रह जायेगा···

दुखमोचन ने बार-बार अनुरोध किया तो उसने कटोरा-भर गरम दूध और दो केले ले लिये।

सुबह की चार बजेवाली ट्रेन से पुरोहित को वापस जाना था। वेणीमाधव ने बौधू और परमेसर को साथ कर दिया, वे उसे पिपरा बाजार स्टेशन तक छोड़ने गये।

माया की माँ को इस बात का बड़ा क्षोभ रहा कि विवाह के आरम्भ में कुलदेवता की पिण्डी पर न तो मातृका पूजा हुई और न गणेश को ही किसी ने याद किया। बस, खाली हवन ! खाली मन्त्रपाठ ! माँ को ही नहीं, भाभियों को भी यह सब बड़ा ही सूखा-सूखा, फीका-फीका लगा···मगर विवाह की बाकी विधियाँ सकुशल सम्पन्न हुईं—माँग में सिन्दूर भी पड़ा, गाँठ भी बंधी, फेरे भी लगे···सब कुछ हुआ—

यह पहले ही तय था कि आधी पहर रात शेष रहेगी तो माया विदा होगी और सुबह-सुबह ससुराल में प्रवेश करेगी। दुखमोचन, वेणीमाधव, रामसागर, मधुकान्त, कंचन, कन्हाई, मिहिरकुमार, रविनाथ आदि मुस्तैद थे कि माया को कपिल के साथ उसके मकान तक पहुँचा आयेंगे।

दस-पाँच आदमियों को तो शाम को ही भनक मिल गयी थी। बाद को पचीस-पचास कानों तक और फैली यह बात। आश्चर्य और उत्सुकता ही वे मुख्य भाव थे जो कि यह समाचार पाकर चेहरों पर उभरे। हाँ, पुरानी पीढ़ी के लोगों ने कहा—राम-राम ! घोर कलियुग आ गया। जो कहीं नहीं हुआ था वह टभका-कोइली गाँव में हो रहा है···लेकिन यह राय ब्राह्मण बूढ़ों-बूढ़ियों की थी, दूसरी जातियों के ज्यादा उम्रवाले लोग तो और ही कुछ कहते सुने गये। उनकी राय में यह ठीक ही हुआ था···विधवा लड़की ने रँडुआ लड़के से सम्बन्ध कर लिया तो क्या बुरा किया ? इधर-उधर भटकती और भ्रस्ट होती तो गाँव-कुल का नाम डुबाती···वह अच्छा होता कि यह अच्छा हुआ ? दस-पाँच दकियानूसों को छोड़कर बाकी लोगों का ऐसा ही विचार था।

वेणीमाधव की स्त्री ऊँची नाकवाले खानदान की लड़की थी। उसे यह सम्बन्ध बिलकुल नहीं जँचा। प्राचीन संस्कारों में पली हुई माँ एक ओर थी, दूसरी ओर थी लड़की के जीवन को सुखमय देखने की लालसा में असवर्ण विवाह तथा पुनर्विवाह का प्रस्ताव कबूल करनेवाली माँ···एक ही बुढ़िया के अन्दर दो माताएँ थीं ! दोनों में डटकर संघर्ष हुआ था और आखिर में यह दूसरी माँ ही जीत गयी थी। वेणीमाधव खुद काफी समझदार था और जमाने का रुख उससे छिपा नहीं था। दुखमोचन के मुँह से माया और कपिल के पुनर्विवाह का प्रस्ताव सुनकर उसके दिमाग ने झटका नहीं खाया था, जरा भी उत्तेजित या क्षुब्ध नहीं हुआ था···और माँ को तो इन दोनों ने कई तरह से समझाया था, अलग-अलग भी

और साथ-साथ भी।

वेणीमाधव के बूढ़े ताऊ पण्डित ललितनारायण संस्कृत के अच्छे-खासे विद्वान् थे, बारह साल काशी मे रहकर महामहोपाध्याय शिवकुमार मिश्र से व्याकरण-शास्त्र का अध्ययन किया था। बीकानेर और राजकोट में तीस वर्ष तक अध्यापक रहकर पिछले पन्द्रह वर्षों से अब बुढ़ापे के विश्राम का उपभोग कर रहे थे। लड़का-फडका अपना तो था नहीं, पत्नी भी बहुत पहले सिधार चुकी थी, यही तीनों भतीजे पण्डित के लिए सब कुछ थे। सेवा-शुश्रूषा में त्रुटि नहीं रहती थी। लेकिन आज शाम को दालान पर और अन्दर हवेली मे पण्डितजी को उथल-पुथल नजर आयी तो उन्होंने बडे भतीजे की छोटी लड़की से अकेले में पूछा। उसने कान में मुँह सटाकर कहा—"बूआ की शादी होगी···" बूढ़ऊ ने छोकरी के गाल पर अविश्वास की हल्की चपत लगायी। थोड़ी देर बाद बड़ी बहू से पूछा तो उसने खुलासा नहीं बतलाया। जरा-सी अफीम लेते थे रोज शाम को, आधी रात तक गाढ़ी नींद आती थी।

अभी ढाई बजे के करीब अफीम का असर हटा और नीद टूटी तो पण्डित दालान की तरफ की अपनी बाहरी कोठरी से लोटा और छड़ी लिये निकले··· नजदीकवाले पोखर की ओर दिशा-फरागत के लिए बढ़े ही थे कि कचन की बूढ़ी माँ मिल गयी। राह रोककर उसने लज्जित पण्डित से पहले तो हाथ चमकाकर पूछा और पीछे ब्याहवाली बात खुद ही बता दी···

पण्डित लौटे तो गुस्से के मारे थर-थर काँप रहे थे। पानी-भरा लोटा दालान के बरामदे में पटक दिया और छड़ी सँभालकर अन्दर हवेली मे आ गये।

पुरोहित को विदा करके वेणीमाधव और दुखमोचन बैठे थे। इधर-उधर की बातें हो रही थीं। अभी दस मिनट हुए थे, खाना खाया था। माया और कपिल को तो खिला-पिलाकर पहले ही घर के अन्दर कर दिया गया था। बड़ी बहू और बच्चे सो चुके थे। माँ और छोटी बहू, जयमाधव और नीलमाधव कामों में लगे थे।

ताऊ तेजी से आये और दुखमोचन पर अन्धाधुन्ध छडी चलाने लगे—"चाण्डाल! पापी! विधर्मी!" मुँह से यही तीन सम्बोधन निकाल रहे थे। दुखमोचन सिर को बचाने की नीयत से बाँहों को आगे करके खड़े हो गये और वेणीमाधव ने कुर्सी से उठकर ताऊ को बाँहों में बाँध लिया। उधर से जयमाधव दौडा, पण्डित के हाथ से छड़ी छीनकर परे फेंक दी। अब विफल क्रोध कण्ठ के रास्ते गालियाँ बनकर बाहर आने लगा···

छड़ी बेंत की नहीं, विन्ध्याचली बाँस की थी। छ:-सात प्रहार पीठ पर पड़े थे, तीन-चार कन्धों पर, एक चोट दायीं ओर कनपटी पर पड़ी थी। दर्द की जलन पीकर दुखमोचन बोले—"बस ताऊजी, बाकी यही बचा था? आपने आखिर

आशीष दे ही डाली···बुजुर्गों की दुआ के बिना दुनिया का कोई काम आज तक पूरा नहीं हुआ है···बड़ा अच्छा किया आपने !"

"सुबह तक के लिए इन्हें कोठरी के अन्दर बन्द करके रखो, वेणीमाधव !" कमाण्ड की टोन में दुखमोचन ने कहा।

वेणीमाधव ने ताऊ को कन्धे पर उठा लिया और नीलमाधववाली छोटी कोठरी में रख आये, किवाड़ लगाकर बाहर से साँकल चढ़ा दी। भीतर से अब भी पण्डितजी की गालियाँ बाहर आ रही थीं।

"चोट ज्यादा नहीं पड़ी," दुखमोचन ने मुसकराकर कहा—"लेकिन घण्टे-भर की छुट्टी दो मुझे, जरा हो आऊँ !"

वेणीमाधव आदि तीनों भाई चुपचाप सहमे-से खड़े थे। दुखमोचन की बात का मौखिक जवाब तो किसी ने नहीं दिया, लेकिन वेणी की डबडबाई आँखें मानो कह रही थीं—भइया, यह भी तो तुम्हारा अपना घर है न !··

और माँ तो सचमुच रो ही पड़ीं। उनकी रुलाई सुनकर अन्दर घर से कपिल भी निकल आया। उसकी पीठ ठोंककर दुखमोचन ने कहा—"घबराना नहीं कपिल, तुम तो राजपूत हो !···फिर आगे बढ़कर अपनी अण्डी की चादर की खूँट से माया की माँ के आँसू पोंछ दिये और बाहर निकल आया।"

मामी इन्तजार में सो नहीं सकी, अब तक जगी थी।

दुखमोचन सब कुछ बताकर अन्त में बोला—"बनियाइन और कुरता न होते तो चमड़ी छिल जाती। हाँ, कपार में अलबत्ते चोट लगी है···"

लालटेन की बत्ती तेज करके मामी ने दुखमोचन का कपार देखा तो मुँह से चीख निकल गयी—"ईशी-शी-शी-शि-श् !···बाप रे ! बाप रे ! बाप रे !"

"कुछ हुआ भी तो हो ? नाहक बाप-बाप कर रही हो···"

मामी की आँखें छलछला आयीं, रुआँसी आवाज में कहने लगी—"तुम्हें मार डालेंगे इस गाँव के लोग ! दुनिया-भर की मुसीबतें अपने सिर पर ढोये चलते हो···बोटी-भर को मांस है ठठरी पर और रावन अहिरावन से कुश्ती लड़ेंगे !··· कैसे कुठाँव पर राच्छस ने मारा है···राम राम राम राम···"

दुखमोचन गम्भीर स्वर में बोले—"अरे, कुछ नहीं हुआ है, मामी ! हल्दी-वल्दी लगा दो, ठीक हो जायेगा···अब इस वक्त चीखोगी-चिल्लाओगी तो व्यर्थ का तमाशा खड़ा होगा। सोने दो, किसी को न जगाओ !"

दुखमोचन उधर अपनी कोठरी के अन्दर गये, इधर मामी ने क्षोभ और व्यंग्य की आवाज में कहा—"हुँह ! न जगाऊँ किसी को ! सिर फुड़वाकर आये हैं और नसीहत बघार रहे हैं···तबीयत तो यही करती है कि चीख-चीखकर सबको जगा दूँ, लोग इकट्ठे हों तो बताऊँ···देखो अपने गाँव के बुजुर्ग विद्वान् की काली करतूत ! वेणीमाधव का ताऊ नहीं है, वह तो भारी ब्रह्मराक्षस है···हुँ

हुँहुँ···"

छोटी बहू की नींद टूट चुकी थी। वह जल्दी-जल्दी हल्दी पीस लायी। मामी ने दुखमोचन के कपार पर हल्दी थोपकर ऊपर कपड़े की पट्टी बांध दी।

दुखमोचन पलंग पर उतान लेट गये, मामी माथे की मालिश करने लगीं।

पलक झिपने लगीं तो ऊँघती आवाज में दुखमोचन बोले—"घण्टा-डेढ़ घण्टा में मुझे जगा देना मामी, माया को कपिल के घर पहुँचा आना है···फिर दिन-भर आराम ही तो करना है कल !"

आठ

कुएँ के आगे मचान पर सफेद और बैंगनी सेम की बेलें लतरी हुई थीं। पत्तों, फूलों और फलियों से लता-वितान ढँका पड़ा था। जरा हटकर क्यारियों मे पातगोभी के बीस-एक मुकुटनुमा पौधे इठला रहे थे। बैंगन के बौने झाड़ों पर बुढ़ापा उतर आया था। पके-पाढ़े दानेदार गुच्छों के वजन से भी सौंफ की डण्ठलें झुकी नहीं थीं।

सुखदेव दोपहर का खाना खाकर तीन घण्टे सोये और अब लेटे-ही-लेटे अखबार देख रहे थे।

पाँचवाँ पृष्ठ पढ़कर छठा पृष्ठ पलटते ही चटकीले ढंग मे छपे हुए एक भारी विज्ञापन पर उनकी आँखें अटक गयीं···प्लेट में टमाटर, बैंगन और सेम की फलियाँ थीं। साफा बाँधकर एक मुसकराता चेहरा उँगली के इशारे से बता रहा था—इनको तलने और पकाने में फलाँ घी का इस्तेमाल कीजिये, कई गुना ज्यादा स्वाद मिलेगा···

वह इश्तहार पण्डित सुखदेव को बड़ा ही आकर्षक लगा। बाद को जो भी कुछ खबरें देखीं, उन पर पण्डित का ध्यान नहीं जमा। हारकर उठे और बरामदे में आकर तखतपोश पर बैठे। खैनी मलते-मलते छोटी भतीजी को पुकारा तो वह दौड़ी आयी। सटकर खड़ी हुई और ताऊ की गर्दन सहलाने लगी।

भतीजी के होंठों से नाक लगाकर सुखदेव ने साँस खींची और बोले—"दूध-भात खाकर आयी है ?"

"ऊँ···" टुनू ने मचलकर कहा।

"अच्छा, मेरा एक काम कर दे ! करेगी ?"

"जल्दी बताइए, अपना काम छोड़कर आयी हूँ···"

सुखदेव ने हँसकर कहा—"एह ! बड़ी कामवाली हुई है···"

"तो मैं झूठ कहती हूँ ?" मचलकर बोली टुनू—"चलिए अन्दर, दिखलाती हूँ अपना काम आपको !"

"अच्छा ! अच्छा ı ı ı ı···"

फिर पलकें झपककर संकेत से जानना चाहा कि क्या काम कर रही है। ताऊ के कान से होंठ लगाकर टुनू फुसफुसाई—"गुड्डे का कोट बनवा रही हूँ, बहन और पद्मा नाप लेकर कपड़े कतर रही हैं। मशीन तो अपने यहाँ है नहीं, पद्मा की भाभी के पास है। सिलाई वहीं होगी···"

काकी की हल्की चपत से उत्साहित होकर उसने कहा—"चाची तो हाथ से भी सी लेती हैं, लेकिन कोट मशीन पर ही अच्छा सिलता है···नहीं, ताऊजी ?"

सुखदेव की आँखें फैल गयीं, विनोद से कहा—"बाप रे ! सीने-पिरोने की सारी विद्या मेरी टुनिया जानती है···"

छोकरी ने अपनी प्रशंसा में फूलकर पूछा—"क्या काम था आपका ?"

"चँगेरी लेती आ, बेटा !"

"बस ! और कुछ नहीं ?"

"नहीं रे !"

टुनू समझ गयी कि काका सेम की फलियाँ तोड़ेंगे। वह दौड़कर गयी और चँगेरी ले आयी।

सुरती फाँककर सुखदेव उठे। टुनू वापस जाने लगी तो पूछा—"मामी कैसी हैं रे ?"

"बताती थी कि आज थोड़ा आराम है···"

अन्दर दुखमोचन वाले बरामदे में चटाई पर सुजनी बिछाकर मामी लेटी पड़ी थीं। चमकी अपनी जाँघ पर उनकी जाँघ लेकर हौले-हौले चाँप रही थी। अपर्णा और पदमा सामने वाले दूसरे बरामदे में गुड्डे के कोट के लिए कपड़े की कतर-ब्योंत कर रही थीं। टुनू का ध्यान निगरानी में था। योगेन्द्र स्कूल गया हुआ था।

छोटी बहू दाल पछोरकर फारिग हुई तो मामी के सिरहाने आ बैठी। उसने मामी का माथा गोद में ले लिया और हल्के हाथों से दबाने लगी। मामी ने आहिस्ता-से कहा—"रहने दो, छोटी बहू ! मैं तो रात-दिन पड़ी रहती हूँ, आराम-ही-आराम है। काम करते-करते तुम्हारे हाड़-गोड़ चटक रहे होंगे, जरा सुस्ता लो न !"

"सुस्ता तो रही हूँ, मामी !" छोटी बहू ने मामी की आँखों में झाँककर देखा और हँसकर बोली—"एक काम से हटकर दूसरे काम में लग जाना भी

सुस्ताना होता है···नहीं होता है, मामी ?"

मामी चुप रहीं, मगर चमकी मुसकरायी, कहा—"बेजा नहीं कहती हैं जोगी की अम्मा, ठीक ही कहती हैं···मगर आठों पहर हाथ-गोड़ नाचते रहें तो सुन्न पड़ जाएँ। नहीं, मामी ?"

समर्थन में मामी की पलकें झपक गयी।

पिछले दस दिन से बवासीर ने परेशान कर रखा था। खूनी बवासीर थी यह। साँवला-सलोना चेहरा सूख-सिकुड़कर काला पड़ गया था। आँखें निकल आयी थीं। लेटे रहना ही अच्छा लगता था। खाली मन पिछले जीवन की स्मृतियों के बीहड़ जंगल में भटका करता था···भरे-पूरे परिवार का आनन्दमय सामूहिक ढाँचा···तीन भाई और दो बहनें; बीमार माँ और सनकी बाप; उत्सव-त्योहार-नाच-गान-नाटक-भण्डारा; शादी और गौना, दूल्हा, सास-ससुर, ननद-ननदोई; देवर···बस एक ही तो देवर था—लेकिन वह अपना सगा देवर कहाँ था ? नहीं था सगा देवर ! वह तो पति की फूफी का सौतेला था···

यहाँ आकर मामी के चिन्तन का झरना मानो सौ फुट ऊपर से नीचे गिरता था—निराधार और तिरछा।·· उस लाडले लीलाधर ने अपनी इस मामी को गलत समझा, बिल्कुल गलत ! नारी-सुलभ सामान्य नेह-छोह ने नहीं, बल्कि अपने अविवेक ने उसकी मति-गति हर ली·· पितौझिया की गुठलियों से एक सौ आठ दानों की माला बनाकर वह 'शशिकला' 'शशिकला' जपने लगा था, पता नहीं अब कहाँ भटक रहा था !

जब से कपिल और माया के ब्याह की बात सुनी थी तब से अक्सर लीलाधर याद आ रहा था। सास-ससुर पहले ही मर गये थे। साँप के डसने से पति का देहान्त हुआ था और साल-भर बाद यह शशिकला खुद भी मलेरिया के चंगुल में पड़ गयी। लगातार ढाई-तीन महीना बिस्तर से लगी रही। लीलाधर ने जी-जान से सेवा की थी और···

बायें घुटने पर घट्टा था, जामुन की गुठली के बराबर। चमकी ने चुटकी में ले लिया उसे, खींचती हुई कहने लगी—"मेरी भी माँ के घुटने पर ऐसा निशान था। नदी के उस पार गाय लेकर गयी थी। गुलेल चलानेवाले एक नौसिखिये का निशाना बहक गया तो माँ घायल हुई। अन्दर-ही-अन्दर गोश्त सड़ गया, पिपरा बाजार के सरकारी अस्पताल में ऑपरेशन हुआ···और मामी, आपको यह क्या हुआ था ?"

जाँघ बदलकर मामी ने कहा—"चचेरी बहन ने पोखर में धकेल दिया था। अन्दर पानी में दो रोज पहले खटमल-भरा तख्तपोश डाला गया था। मैं गिरी तो तख्तपोश का कोना घुटने में 'खच्च' से चुभा। वही निशान है···"

"मैं तो समझती रही कि कोई भारी फोड़ा निकला होगा।" छोटी बहू ने

घट्ठे की अपनी व्याख्या बतायी और अपर्णा से ऊँची आवाज में कहा—"वो तेल तो निकाल लाना बच्ची, अपने बाबूजी की अलमारी में से !"

"रहने दो !" मामी ने थके स्वर में कहा और चमकी की तरफ देखकर हाथ से कमर चाँपने का इशारा किया।

अपर्णा लाल तेल की शीशी उठा लायी। छोटी बहू ठेपी खोलने लगी तो चमकी ने लालसा-भरी निगाहों से उस ओर देखा। हाथ मामी की कमर दबा रहे थे, मगर नजर तेल की तरफ लगी थी।

चमकी की यह टकटकी ताड़कर अपर्णा ने उँगली उसकी पीठ में गड़ा दी और कहा—"कलकतिया तेल है, दो ही बूँद रगड़ोगी तो माथा हल्का हो जायेगा ! खुशबू नहीं आ रही है ?"

छोटी बहू की बायी हथेली पर भी थोड़ा तेल था, दाहिनी हथेली से वह मामी का सिर रगड़ रही थी। अपर्णा ने तेल छुआकर अपनी उँगली चमकी की एक कलाई से पोंछ दी, बोली—"सूँघकर तो देखो !" ऊपर से चमकी ने कहा—"हाँ अर्पी, जुलुम है ! अनोखी महक है !" आँखें नचाकर अपर्णा सामने वाले बरामदे में चली गयी, मगर चमकी का तो माथा ही घूमने लगा। थोड़ी देर बाद बोली—"मामी, एक बात बताऊँ ?"

"बता !" मामी ने कहा।

"साल-डेढ़ साल के अन्दर किसिम-किसिम का जितना तेल कपिल ने माया को लाकर दिया होगा, उतना न किसी ने देखा होगा, न सुना ही होगा।"

मामी चुप थी। छोटी बहू की पलकें तन गयीं। बुड़बुडायी—"तेल लाकर देता था।"

"क्या नहीं देता था लाकर, जोगी की अम्मा ?"

"साड़ी भी लाता रहा होगा ?"

"रसगुल्ले आते थे···"

"रसगुल्ले ?"

"तो मैं झूठ कहूँगी, जोगी की अम्मा ?"

मामी के लिए अब यह चर्चा असह्य हो उठी। उन्होंने चमकी को डाँटा—"चुप करती है कि नहीं ? सतवन्ती की नानी !·· पाजी कहीं की !···"

वह उठ बैठी और अपनी ताकत के मुताबिक हाथ लगाकर चमकी को आगे की ओर धकेल देना चाहा।

वह खुद ही थोड़ा हट गयी थी। सहमी आवाज में बुड़बुड़ायी—"सभी तो कहते हैं मामी, अपनी तरफ से एक भी आखर अगर मैंने फाजिल कहा तो हे गंगा मइया, यह जीभ गल जाय···"

गंगा को दुहराते वक्त चमकी चट-से दक्षिण की दिशा में मुड़ गयी, हाथ

कानों को छू रहे थे।

अपर्णा, पद्मा और टुनू—तीनों लड़कियां तमाशबीन की ललक लेकर करीब आ गयी थीं।

"क्या हुआ ?"

अपर्णा और पद्मा को जवाब नहीं मिला। छोटी बहू ने नजर के इशारे से उन्हें हटा दिया।

सामनेवाले बरामदे में आकर पद्मा ने आहिस्ता-से पूछा—"क्या बात थी, अप्पी ?"

"पता नहीं !" फुसफुसाकर अपर्णा ने कहा—"मामी का मिजाज आजकल चिड़चिडा हो गया है न ! बड़ी दुब्बर हो गयी हैं, देखती नहीं हो ?"

"अँ हूँ ! कुछ जरूर हुआ होगा। तू मुझसे छिपा रही है।"

अपर्णा मुसकरायी—"तो बता ही दूँ ?"

अगल-बगल और पीठ-पीछे नजर मारकर उसने देख लिया कि टुनू नहीं है। अब फुसफुसाकर कहा—"पता नहीं, मामी को माया ने पिछले जन्म में कितना घूस दिया था ! क्या मजाल कि कोई इनके सामने रत्ती-भर भी उसकी निन्दा करे ! बस, कच्चा ही चबा जायेंगी मामी···समझी ?"

"मगर अभी क्या हुआ था ?"

"चमकी ने कुछ कह दिया होगा।"

"मामी माया का पच्छ क्यों लेती हैं आखिर ?"

"पता नही पद्मा, सँभलकर रहना लेकिन !"

कुछ क्षण बाद ही गुड्डे के कोट का कपडा लेकर पद्मा चली गयी, अपर्णा मिट्टी गूँधने लगी, चाचा की शामवाली पूजा के लिए महादेव बनाना था।

छोटी बहू चुप थी, चमकी का चेहरा उदास था।

मामी की निगाहें सूनी थीं, यद्यपि वह सामने देख रही थीं।

थोड़ी देर बाद चमकी ने मामी के पैर पकड़ लिए और कहा—"फिर कभी इस तरह की बात करूँ तो जीभ खींच लेना मेरी···"

अपने पैर छुड़ाने की कोशिश करते-करते मामी बोलीं—"कहाँ है मुझमें इतनी कूवत ! और जिसे दूसरों की निन्दा का चस्का लग गया हो, उसका कोई इलाज नहीं···जा, अपना काम कर !"

चमकी ने मामी का यह रुख देखा तो समझ गयी कि गुस्से का दौरा जोरों पर है, अभी चुपचाप खिसक जाना ही अच्छा होगा। मामी के पैर छोड़कर वह उठ खड़ी हुई।

जाते-जाते पूछ लिया—"कल कब आऊँ, मामी ?"

जवाब में मामी ने मुँह से एक भी शब्द नहीं निकाला।

छोटी बहू ने कहा—"जैसे आज और कल आयी थी, उसी तरह आना।"

इस पर भी मामी कुछ नहीं बोलीं।

चमकी बाहर निकली तो मामी फिर लेट गयीं।

टुनू सेम की फलियों से भरी चँगेरी लायी और रसोईघर के बरामदे में उझल दिया, खाली चँगेरी लेकर फिर काका के पास चली गयी।

होली करीब थी। छँटे धुले गेहूँ खजूर के पत्तों की चटाई पर सूख रहे थे। छोटी बहू ने देखा कि दिन काफी ढल चुका है। वह उठकर अन्दर से टोकरी ले आयी और बरामदे से नीचे उतरकर आँगन में सूखते गेहूँ बटोरने बैठी।

धूप पूरब की तरफ फूस के टाट को छू रही थी, पछवरिया घर की छाया उसके पीछे थी। गोबर और चिकनी मिट्टी के घोल से लिपा-पुता आँगन आँखों को बड़ा ही अच्छा लग रहा था। तुलसी की छोटी वेदी से सटकर छाँह में बिल्ली लेटी पड़ी थी।

जोगेन्द्र स्कूल से लौटा और किताबों का बस्ता दक्षिणवाले घर के बरामदे में पटक दिया।

"भूख लगी है, माँ!" वह छोटी बहू के गले मे झूलकर वहीं आँगन में बैठ गया।

माँ ने कहा—"चल, हट भी···हाथ-मुँह तो धो आ!"

लडके की बाँहें अलग हटाकर छोटी बहू उठ खड़ी हुई, बोली—"तू चटाई उठाता आ, मैं गेहूँ ले चलती हूँ।"

मुसकराती हुई अपर्णा यह सब देख रही थी। महादेव की पिण्डी बना चुकी थी। कहने लगी—"चाची, तुम भी जुलुम करती हो! भूखा-प्यासा आया है इस्कूल से, चटाई उठाने को कहती हो?···नहीं जोगी, रहने दे! मैं आती हूँ, उठा के रख दूँगी···"

उधर से मामी ने कहा—"हाथ धोकर पहले पान तो लगा!"

"अच्छा!"

"मेरे लिए भी!" जोगेन्द्र ने कहा—"आज मैं भी पान खाऊँगा, बहन।"

"लड़के पान नहीं खाते!"

"ऊँ खाते हैं कि!"

अपर्णा हँसती-हँसती उठी, बाहर कुएँ पर हाथ धोने गयी।

अगले ही क्षण खाना जोगेन्द्र के सामने आ गया और वह खाने लगा।

अपर्णा हाथ धोकर आयी तो एक लिफाफा लायी।

मामी को थमाती हुई बोली—"बब्बू का नहीं, तुम्हारा है। अभी-अभी काका को दे गया है डाकिया।"

मामी उठ बैठीं, लिफाफे पर पता-ठिकाना बाँचने लगीं। थोड़ा रुककर

बोलीं—"बबुअन का है। मुझे कौन चिट्ठी लिखेगा?"

"स्याही की नहीं," अपर्णा ने अपने बालों पर हाथ फेरकर कहा—"पेंसिल की लिखावट देखो न!···यह क्या लिखा है···मामी को मिले···अच्छर लेकिन जनाने ढंग के हैं···"

सचमुच दुखमोचन के नाम के नीचे और गाँव के नाम से ऊपर पेंसिल की फीकी लिखावट में कुछ लिखा था। कमजोरी की वजह से मामी की नजर अब भी उन अक्षरों को साफ-साफ देख नहीं पा रही थी।

खोलने पर अन्दर से हल्के नीले रंग का कागज निकल आया। काशी से माया ने लिखा था—

"स्वस्ति श्रीमती मामीजी के चरणकमलों में माया का कोटि-कोटि प्रणाम पहुँचे। यहाँ हम दोनों राजी-खुशी हैं, आप लोगों की राजी-खुशी चाहिए। गाँव से निकलकर पाँच-छः रोज तो हम पटना रहे, दो रोज गया। घूमते-घामते अब काशी आ गये हैं। मामी, अपना देहात बार-बार याद आता है। मन करता है कि जल्द लौट चलें। छोटे भइया की चिट्ठी से मालूम हुआ कि आप बीमार हैं। आपकी बीमारी का हाल मालूम करके भारी अफसोस हुआ मामी। वही पुरानी बवासीर उभरी होगी, कि दूसरी बीमारी है? हम होली तक यहाँ रहेंगे, फिर सीधे गाँव लौट आयेंगे। आपने गणेशजी की मूर्ति के लिए कहा था न? पीतल की एक अच्छी प्रतिमा खरीद ली है। बाबा विश्वनाथ से और मातेश्वरी अन्नपूर्णा से रोज-रोज आपके स्वास्थ्य के लिए विनती करती हूँ, मामी। भाई साहब को प्रणाम और अप्पी का प्यार।"

25 फरवरी '55 की तारीख पड़ी थी डाकखाने की मुहर पर। मामी ने चिट्ठी पढ़ी, फिर उसे लिफाफे के अन्दर डाल दिया। अपर्णा से कहा—"यह आदत अच्छी नहीं है, अप्पी।"

"मैंने आपकी चिट्ठी पढ़ी ही कहाँ?" अपर्णा मुँह बनाकर बोली।

मामी ने अविश्वास से माथा हिलाया। उन्हें पता था कि पीछे खड़ी-खड़ी खत देख रही थी छोकरी···एक-एक पाँती पी गयी होगी। कैसी भोली बन रही है! मामी ने अपर्णा की ओर देखा और मुसकरायीं। वह नजर नहीं मिला सकी तो बोली—"पान लगा लाऊँ तुम्हारे वास्ते?"

अपर्णा पान लगाने गयी और मामी ने फिर खत निकाला।

इस वक्त वह महसूस कर रही थीं कि मामी वेणीमाधव की नहीं बल्कि उन्हीं की छोटी बहन है।···हाय, जो कभी समस्तीपुर से पश्चिम नहीं गयी, अब दूर देश में उस बेचारी का जी किस तरह लगता होगा? अपनी भाषा में बतियाने वाले लोग नहीं मिलते होंगे, जान-पहचान के मुखड़े नहीं दिखायी देते होंगे··· लेकिन कपिल, वह तो जरूर माया को खुश रखता होगा। बबुअन जिसके गुन

गायें उसमें खराबी कहाँ से आयेगी !

सोचते-सोचते कपिल का स्थान लीलाधर ने कब किस तरह ले लिया, मामी को पता ही नहीं चला।

...लीलाधर ने रात-रात-भर जगकर इस शरीर की सेवा की थी। बाकी और सब तो ठीक-ही-ठीक था, लीलाधर में मगर जल्दबाजी बेहद थी। ले-देकर यही एक औगुन था...'बटगबनी' की लय में उसने प्यार और मनुहार के कई गीत रचे थे, आखिरी पक्तियों में लीलाधर के बदले शशिकला का नाम डालता था।

शशिकला ! शशिकला !! शशिकला !!!

मामी के कानों में अपना ही नाम बार-बार गूँजने लगा, निगाहों में लीलाधर की मासूम सूरत नाचने लगी...दिल अपने-आपसे पूछने लगा, लीलाधर कहाँ गया !...उसने एक रोज हुलसकर कहा था—भाभी, चलो तुम्हें कलकत्ता की सैर करा लाऊँ...गंगासागर, कामरूकमच्छा, जगन्नाथ, जहाँ बताओ ले चलूँ, भाभी ! शशिकला, तू क्यों न गयी लीलाधर के साथ ?

जोगेन्द्र आ गया। पान का बीड़ा लेकर अपर्णा भी आ गयी।

दोनों ने मामी का ध्यान तोड़ दिया।

अपर्णा के हाथ से पान लेकर मामी ने लड़के के मुँह में डाल दिया। उसने जीत की अकड़ से बहन की ओर देखा और दाहिने हाथ का अँगूठा हिला दिया।

मामी मुसकरा पड़ी।

"तो चिढ़ाता क्यों है इसे ?"

"यह कभी अपने-आप मुझे पान नहीं देती, मामी !"

"झूठा कहीं का !" अपर्णा ने तुनककर कहा—"देखूँगी, अब कैसे तू पान खाता है।"

"खा तो रहा हूँ पान, देखो !"

जोगेन्द्र ने जीभ दिखा दी, पान और कत्था-चूना अपना सही रंग जमा चुके थे।

अपर्णा चिढ़ गयी, बुरी तरह मुँह बनाकर जोगेन्द्र की ओर एक बार फिर देखा। अगले ही क्षण शिकायती नजर से मामी की तरफ ताकने लगी और बोली—"ऐसा तो आपने कभी नहीं किया था, मामी ! आज क्या हो गया है आपको ? पान लगवाया, मगर उसे मुँह के अन्दर नहीं डाला !"

मामी ने इशारे से अपर्णा को बिलकुल पास बुला लिया।

करीब आयी तो उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोलीं—"मेरा जी नहीं करता है कि पान-वान मुँह में डालूँ, बच्ची ! कहने को कह तो दिया तुझसे कि पान ला, मगर इसी बीच तबीयत फिर खराब हो गयी...नाहक तुझे परेशान

किया !"

जोगेन्द्र पान का मजा ले चुका था। मामी और बहन को उस तरह घुलते देखा तो जाने क्या सूझा कि चेहरे पर गम्भीरता छा गयी, कहा—"गेहूँवाली चटाई मैं रख आता हूँ बहन, तुम मामी के पास ही बैठी रहो।"

"तुझे खेलने नहीं जाना है ?"

"जाना है कि !"

"तो फिर रहने दे।"

मगर जोगेन्द्र नहीं माना, गेहूँवाली चटाई लपेटकर अन्दर रख आया और खेलने निकला।

नौ

गाँव के बीचोबीच जो रास्ता उत्तर से दक्षिण की ओर गया था वह कच्चा था, पक्का नहीं; गाँव के उत्तर डिस्ट्रिक्ट बोर्डवाली पक्की सड़क से जुड़ा था और दक्षिण की ओर सात-आठ मील जाकर सहसौला बाजार में खत्म होता था। बस्ती सहसौला जिला बोर्ड की उस सड़क के किनारे आबाद थी जो पश्चिम से आकर सीधे पूरब की तरफ चली गयी थी।

टभका-कोइली से दक्षिण डेढ़ मील तक यह कच्ची सड़क गत वर्ष की बाढ़ में चौपट हो गयी थी। लोकल बोर्ड और लघु सिंचाई-विभागवालों से लिखा-पढ़ी चल रही थी, मगर और मामलों की तरह यह मामला भी लाल फीतों की गिरफ्त में था।

ग्राम-पचायत ने जुरमाने के तौर पर पिछले साल सवा दो सौ रुपये वसूल किये थे। रकम मुंशी पुलकितदास के नाम डाकखाने में जमा थी। पन्द्रह मन अनाज दुखमोचन के जिम्मे था। लेकिन काम तो कई थे। रास्ते की मरम्मत की ही बात होती तो क्या थी ? चमारों का कुआँ धँस गया था, कुम्हारों के कुएँ से जैसे-तैसे उन्हें पानी मिल जाता था···कुआँ न सही, एक ट्यूब-वेल का प्रबन्ध तो उनके लिए होना ही था। कन्या-पाठशाला की दीवारें तो दुरुस्त थीं, लेकिन छप्पर दो साल से नहीं छवाये गये थे। इस वैशाख में अगर बीस-पच्चीस बोझ खर-फूस उन छप्परों पर नहीं पड़े तो चौमासे में अन्दर बैठकर पढ़ना-पढ़ाना मुश्किल हो जायेगा, टपकती बूँदें कीचड़ को सदाबहार किये रहेंगी और उमस की बदौलत

फफूंद की फसलों का तमाशा देखते ही बनेगा। तो सौ रुपये लड़कियों का यह स्कूल भी खा जायेगा···

पुलकितदास को अच्छा नहीं लगा, लेकिन दुखमोचन ने रास्ते पर मिट्टी डलवाने का काम शुरू कर दिया।

मजदूर आधी मजदूरी पर मिट्टी कोड़ने और ढोने पर राजी हो गये। खाते-पीते परिवारों से एक-एक आदमी बिना मेहनताना के ही काम करने लगा। सिमरौना और पुनाई चक से ग्राम रक्षा-समिति क जवान मदद के लिए आ पहुँचे। उनके लिए खाना और तमाखू-बीड़ी का इन्तजाम हुआ।

रास्ते के दोनों ओर खेतो में मिट्टी कटने लगी और रास्ता ऊँचा होने लगा। दुखमोचन, वेणीमाधव, रामसागर, मधुकान्त, कंचन, कन्हाई और राधे सभी डटे रहते थे। मुंशीजी का भतीजा नवलकिशोर और मास्टर टेकनाथ आदि भी सहयोग का स्वाँग भर रहे थे।

असल काम मजदूर और मामूली ग्रामीण कर रहे थे। मिट्टी रास्ते के पश्चिम नरम और भुरभुरी थी, लेकिन रास्ते के पूरब कड़ी और चिकनी। सैकड़ो कुदालें मिट्टी खोदने में लगी थी। मिट्टी की टोकरी उठाकर एक-दूसरे को थमाता, खाली टोकरी उससे वापस लेता। दूसरा मजदूर भरी टोकरी तीसरे को थमाता और खाली टोकरी उससे वापस लेता, तीसरा मजदूर मिट्टी रास्ते पर डाल देता और खाली टोकरी वापस लाता। श्रम का यह सधा हुआ और व्यवस्थित क्रम दूर से देखने पर बड़ा ही भव्य प्रतीत होता था···मिट्टी की टोकरी उठाने-धरने का सिलसिला यों तो सारा दिन चलता मगर बीच-बीच मे दो-ढाई घण्टे पर मजदूर दस-पाँच मिनट के लिए दम भी मार लेते।

रामसागर की स्त्री और माया ने भारी जीवट का परिचय दिया। पड़ोस के गाँव से जितने भी जवान आये, उनके लिए एक बार नाश्ता और दोनों जून खाना बनाने का भार उन्हीं दोनों ने उठाया। चमकी, अपर्णा और पद्मा आदि भी हाथ बँटाती थीं, लेकिन खास जवाबदेही उन्हीं दोनों की थी। सुग्गी बुआ होती तो काफी मदद पहुँचातीं इन कामो में, मगर नतनी के लड़के का कनछेदन था, वह मेहमानी में गयी हुई थीं।

ऊँचे उठती उस कच्ची सड़क के इर्द-गिर्द चैत का दुपहर आज और मुखर हो उठा जबकि हल्के हरे रंग की एक नफीश जीप आकर कैम्प के करीब खड़ी हो गयी और उससे तीन-चार अधिकारी निकल आये। सब-डिवीजनल-ऑफिसर, अंचलाधिकारी, दरोगा और हिन्द-हितकारी समाज की जिला-शाखा के मन्त्रीजी···बस और कोई नहीं था। पाँचवां जो था वह ऑफिसर नहीं, ड्राइवर था।

कैम्प क्या था, फूस की निहायत मामूली झोंपड़ी थी, अस्थायी किस्म की!

बाहर जीप के रुकने की आवाज सुनी तो दुखमोचन अपनी मण्डली-समेत निकल आये। हिसाब-किताब बीच में ही छोड़ दिया गया।

नमस्कारा-नमस्कारी हुई। सभी अधिकारी जान-पहचान के थे। उन्हे घेरे मे लेकर लोग सड़क का मुआयना करवाने चले।

समाज के मन्त्री खादी के देशी लिबास मे थे। एस० डी० ओ० और अंचलाधिकारी पैण्ट-बुशर्ट में थे। दरोगा अपने खाकी यूनिफार्म मे था।

अंचलाधिकारी ने दुखमोचन से पूछा—"कब तक हो जायेगी तैयार सड़क ?"

"दस रोज लगेंगे साहब !"

"मजदूरी का क्या हिसाब है ?"

"आधी मजदूरी पर सौ मजदूर काम कर रहे हैं। पाँच मन धान रोज उठता है।"

हिन्द-हितकारी समाज के मन्त्री उधर वेणीमाधव से बातें किये जा रहे थे—"तो आप लोगों ने श्रमदान का एक शानदार रिकार्ड कायम कर ही दिया ! समूचा गाँव दिलचस्पी ले रहा है न ?"

"जी हाँ," वेणीमाधव ने माथा हिलाकर स्वीकार किया। जाने क्यों, श्रमदान के बदले उसे यज्ञ कहना अच्छा लगता था। बोला—"यज्ञ ही तो ठहरा हुजूर ! सभी लोग दिलचस्पी नही लेंगे तो इतना भारी काम अकेले सपरेगा ?"

"आप दुखमोचन बाबू के कौन होते है ?"

"हम लोग बचपन के साथी हैं, लँगोटिया यार···साथ-ही-साथ खेले-कूदे और साथ-ही-साथ बड़े हुए···"

"मैं समझा कि भाई-भाई होंगे या कोई रिश्ता होगा !"

वेणीमाधव हँसने लगा जवाब में। मन्त्री जी ने आँखे बड़ी-बड़ी करके उसे देखा और पूछा—"क्यो, इसमें हँसने की क्या बात थी भाई ?"

"इस तरह का सवाल पुराने लोग पूछा करते थे, हुजूर !"

मन्त्रीजी चुप हो गये।

दारोगा मधुकान्त से बातें कर रहा था और एस० डी० ओ० प्रतीक्षा मे था कि अचलाधिकारी की बातों से दुखमोचन को फुरसत मिले तो उनसे बातें करें।

स्वेच्छा से काम करनेवाले गाँववालो ने अधिकारियों को बाँध की तरफ आते देखा तो कौतूहल के मारे उनके हाथ कुछ क्षणो के लिए ढीले पड़ गये। अधिकांश लोग तो कामो पर डटे रहे मगर कुछ-एक आकर अधिकारियों के साथ चलनेवाली भीड़ मे शामिल हो गये।

मौका पाकर सब-डिविजनल ऑफिसर दुखमोचन से बातें करने लगा।

बातचीत आगे बढ़ी। दुखमोचन ने शिकायत के स्वर मे कहा—"सात-आठ मील का यह चालू रास्ता अब और कितने दिन तक कच्ची हालत में पड़ा रहेगा,

पता नहीं। मिट्टी तो हम इस पर काफी डाल रहे हैं, मगर बाढ़ फिर धो-पोंछकर साफ कर देगी, हुज़ूर ! कोई ऐसी तरकीब नहीं निकल सकती जिससे इस सड़क का कायाकल्प हो जाये ?"

"दो-तीन वर्ष पहले अखबारों में राजस्थान के किन्हीं पानी-महाराज का चमत्कार प्रकाशित हुआ था। अब कहीं सड़क-महाराज कोई निकल आये तो मैं आपको बताऊँगा," एस० डी० ओ० ने चमकती आँखों से कहा और हँसने लगा। सभी को हँसी आ गयी।

दुखमोचन आहिस्ता-से बोले—"अभी तो हम पानी पीट रहे हैं। लगभग हर साल इस रास्ते पर मिट्टी डालते हैं और बाढ़ भी अपना काम मुस्तैदी से कर जाती है। लेकिन कितना भी झीखें-चीखें, अपनी शक्तिभर बचाव का अपना इन्तजाम तो आखिर करना ही होगा, कर ही रहे हैं···और कोई उपाय भी तो नहीं नजर आ रहा साहब !···"

एस० डी० ओ० साहब शायद ऊँचे खानदान के ब्राह्मण थे, सिगार-सिगरेट नहीं पीते थे। पैण्ट के पॉकेट से उन्होंने चाँदी की नफीस डिबिया निकाली और चुटकी-भर नस नाक के पुटों से सुड़क ली। रूमाल से नाक और हाथ पोंछा। अब चेहरे पर इतमीनान का भाव निखर आया। गम्भीर स्वर में कहने लगे—"मैं कलक्टर और जिला बोर्ड के चेयरमैन को इस सड़क के बारे में लिखूँगा। दुखमोचन बाबू, आप तो धीरज की खान हैं। इतने दिन झेलते आये तो दो-एक वर्ष और झेल लीजिये···पिपरा बाजार के व्यापारी भी इस मार्ग का विकास चाहते हैं। मुझे तो विश्वास है कि दो-तीन साल के अन्दर ही आठ मील का यह रास्ता पक्का हो जायेगा।"

अंचलाधिकारी और दारोगा ने सहमति में माथा हिलाया।

मन्त्रीजी जरा अलग होकर मजदूरों और ग्रामीणों से कुछ पूछताछ कर रहे थे। वेणीमाधव और रामसागर उन महाशयजी के अगल-बगल खड़े थे।

भीगे कपड़े से ढकी बाल्टी में कंचन शरबत लेकर पहुँचा। राधे के हाथ में लोटा और गिलास थे। ऑफिसरों के आने की खबर पिपरा बाजार से सुबह ही आयी थी। वे वक्त के मुताबिक आ गये थे।

स्कूल से चार कुर्सियाँ और एक टेबल मँगवा लिया गया था।

दुखमोचन ने हाथ जोड़कर कहा—"हुजूर, पानी पी लिया जाये चलकर। वहाँ कैम्प के पास लौटना होगा हुज़ूर !···"

"प्यास ? नहीं, प्यास नहीं लगी है।"

"नहीं हुज़ूर, सो कहाँ मानेंगे हम !"

एस० डी० ओ० ने अंचलाधिकारी और हिन्द-हितकारी समाज के मन्त्री हेमराज शर्मा की तरफ देखा तो जवाब में उनके सिर हिले। संकेत साफ था कि

प्यास नहीं लगी है। लेकिन दुखमोचन ने बार-बार अनुरोध किया तो वे मान गये।

अधिकारी कैम्प के नजदीक लौट आये।

टेबल पर काँसे की चार कटोरियाँ रखी हुई थीं, घी में भुने नमकीन ताल-मखाने भरे थे उनमें।

दुखमोचन ने विनम्र भाव से कहा—"यह कुछ नहीं है हुजूर, तिरहुत इलाके का खास मेवा है···"

"हम तो खा-पीकर चले थे।" अंचलाधिकारी साहब एक-एक शब्द पर जोर देकर बोले और एस० डी० ओ० की तरफ देखने लगे तो उन्होंने कहा—"बस, शरबत-मात्र।"

"नहीं श्रीमान्, तालमखाने तो आपको लेने ही होंगे।"

भीड़ बटुर आयी थी। उसने सम्मिलित स्वर में दुखमोचन का समर्थन किया। मुंशी पुलकितदास भी तब तक लपके-लपके आ पहुँचे थे। उन्होंने हाँफते-हाँफते कहा—"सरकार, तालमखाना बिलकुल हलका होता है···सेर-भर भी खा जाइयेगा तो मालूम नहीं होगा कि पेट के अन्दर कोई चीज पड़ी है··और आप तो पहली दफा आये हैं, हुजूर! हम कैसे समझेंगे कि 'दुर्जोधन घर मेवा त्यागे, साग विदुर घर खाये'।"

आखिर तालमखाने की कटोरियाँ खाली हुईं और शरबत का दौर चला। एस० डी० ओ० ने एक ही गिलास लिया, बाकी तीनों ने दो-दो बल्कि तीन-तीन गिलास सोंट लिया।

जोगेन्द्र पान के बीड़े ले आया था, उनकी भी सद्गति हुई।

अंचलाधिकारी ने अलग ले जाकर दुखमोचन को बतलाया कि सब-डिविजनल ऑफिसर को किसी की गुमनाम चिट्ठी मिली थी। निकटवर्ती खेतों मे भूमि का थोड़ा-थोड़ा हिस्सा बाँध में मिलाया जा रहा है···किसानों में इससे भारी असन्तोष है·· किसी भी क्षण झगड़ा खड़ा हो सकता है और दो-एक लाश गिर सकती हैं···गुमनाम चिट्ठी का मजमून ऐसा ही कुछ था· ·एस० डी० ओ० साहब यों तो सड़क का पुनर्निर्माण देखने आये हैं, मगर असल मंशा उनका तहकीकात का है।

गुमनाम चिट्ठी किसने लिखवायी होगी, दुखमोचन को समझते देर न लगी। रामसागर को भेजकर फौरन मुंशीजी के यहाँ से गाँव का नक्शा मँगवाया गया। अधिकारियों ने कई जगहों पर सड़क की नयी चौड़ाई को नक्शे से मिलाकर देखा, आधा बित्ता भी किसी का खेत कहीं दबाया नहीं गया था। उल्टे कई एक किसानों ने सड़क का ही कुछ-कुछ हिस्सा दबा रखा था। सड़क पर मिट्टी डलवाते समय शुरू में ही दुखमोचन ने जरीब से नाप-नापकर इस गलती को दुरुस्त कर लिया

था और सम्बन्धित किसानों तक सूचना पहुँचा दी थी।

कपिल आ गया था। उसने अंग्रेजी में सब-डिविजनल ऑफिसर को सारी बातें समझा दी। मोटे फ्रेमवाला काला चश्मा पॉकेट में रखता हुआ एस० डी० ओ० बोला—"आप कहाँ काम करते हैं ?"

"कहीं नहीं, सर !" कपिल ने मुसकराकर जवाब दिया।

ऑफिसर बोला—"घर-गिरस्ती का अपना काम देखते हैं ? यह तो बड़ा ही अच्छा है। पढ़े-लिखे ग्रामीण युवक यदि अपने को ग्राम-जीवन में खपा दें तो समूचा देश नयी चेतना के सुफल हासिल कर लेगा।"

कपिल ने इस पर कुछ नहीं कहा, लेकिन दुखमोचन बोले—"यह तो हमारी बस्ती का हीरा है हुजूर, नाम है कपिलदेव सिंह। नौकरी के लालच में गाँव छोड़ कर भाग जानेवाला बन्दा नहीं है यह…"

दुखमोचन ने कपिल के कन्धे पर अपना हाथ रख दिया। अंचलाधिकारी ने एस० डी० ओ० से कुछ कहा फुसफुसाकर, तो कुर्सी से उठकर उसने कपिल की तरफ हाथ बढ़ा दिया। कपिल ने आगे बढ़कर हाथ मिला लिया।

बातचीत खतम करके अधिकारी वापस जाने के लिए जीप पर सवार हुए। जीप स्टार्ट हुई और ढेर-सी धूल उड़ाती हुई सरपट भागी।

दोपहर में खाने के लिए घण्टा-डेढ़ घण्टा काम बन्द रहता था। आज आधा घण्टा देर हो गयी थी इस क्रम में। माथे पर चैत का सूरज ग्रीष्म के शैशव की प्रखरता बिखेर रहा था।

दुखमोचन हवेली के अन्दर आये तो छोटा भाई नारायण अपर्णा और जोगेन्द्र को दामोदर घाटी-योजना की उपलब्धियों के बारे में बता रहा था। वे ध्यान से उसकी बातें सुन रहे थे।

नारायण पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर दस महीने में घर आया था। मेहमान की ही तरह रह रहा था। अब आधी छुट्टी बाकी थी। मँझले भइया से जमकर बातें करने के लिए तबीयत मचल-मचलकर रह जाती थी, मगर दुखमोचन को अवकाश हो तब न !

खिलाते समय मामी ने उलाहने की आवाज में कहा—"एक जुग के बाद नारायण अपने परिवार के बीच आया है। रोज बीस बार पूछता है भइया कहाँ गये हैं, कब तक आयेंगे ! अरे, घड़ी-आधी घड़ी उसके पास बैठोगे तो संसार की नबज नहीं डूब जायेगी, बबुअन !"

दुखमोचन ने मुँह का कौर चबाकर गले के नीचे उतारा, मामी की ओर देखा और मुसकराये। आहिस्ता से बोले—"अच्छी वकालत झाड़ रही हो ! अब की कोई खास तोहफा लाया होगा !"

"हाँ, तुम्हारी तरह मुफ्त की वकालत नहीं करवाता है।"

भौंहें चमकाकर हँसी को मामी ने पलकों में ही घोंट लिया और निगाहें फेर लीं। दुखमोचन एकाएक गम्भीर हो गये, थाली में सने हुए दाल-भात पर हाथ रोककर कहने लगे—"दुनिया समझती है कि गाँववाले बड़े भोले-भाले और शराफत के पुतले होते हैं, लेकिन यहाँ आकर देख जाये कोई···कौन-सी बदमाशी छुटी है गाँववालों से ! लोभ-लालच, छल-प्रपंच, झूठ-बेईमानी, ठगी और विश्वासघात···वह कौन-सा औगुन है जो यहाँ नहीं है, मामी ! बतला सकती हो ?"

मामी समझ नहीं पा रही थीं कि आज इन्हें क्या हो गया है। सुबह भले-भले तो घर से निकले थे, अभी कुछ ही क्षण पहले नारायण की चर्चा छिड़ी तो मखौल भी किया था। मामी सोचने लगीं, उनकी जबान से तो कोई ऐसी बात नहीं निकली जिससे बबुअन का दिल चोट खा गया हो। बार-बार सोचा मामी ने, बार-बार आत्म-निरीक्षण किया, लेकिन अपनी एक भी वैसी बात पकड़ में नहीं आयी।

दुखमोचन की तबीयत खाने से उचट गयी, कम-से-कम मामी को तो ऐसा ही लगा।

"बड़बड़ाकर उठ नहीं जाना बबुअन, दही लाती हूँ। मगर आज क्या हो गया है तुम्हें ? पांच-सात कौर भात खाकर पीछे यह कौन-सी फिकर तुमने बुला ली है ?"

"नहीं मामी, कोई बात नहीं है। खा ही तो रहा हूँ···"

दुखमोचन जैसे-तैसे खाते रहे। मामी दही ले आयीं, ऊपर से चुटकीभर नमक डाल दिया।

खा-पीकर जरा देर के लिए आराम करने गये।

पलंग के पास स्टूल पर मामी भी बैठीं, पान देकर पूछा—"मेरी कसम तुम्हें, अगर यह बात तुमने न बतलायी···आज बाहर से अफसर लोग आये थे। ऐसे मौकों पर तो तुम हमेशा खुश नजर आते थे, बबुअन ! लेकिन आज क्या हुआ तुमको ?"

"गाँववालों ने एस० डी० ओ० को गुमनाम चिट्ठी लिखी है।" दुखमोचन उदास स्वर में बोले—"मेरी शिकायत की है कि मैं किसानों के खेत बरबाद करके सड़क को अधिक-से-अधिक चौड़ा कर रहा हूँ···"

"सांच को आँच क्या ?" मामी ने कहा—"नक्शा मिलाकर दिखला नहीं दिया ?"

"सो तो सब कुछ दिखला दिया मामी, लेकिन मैं तो गुमनाम चिट्ठी लिखनेवालों के कमीनेपन पर सुलग रहा हूँ। गाँववालों का यही रवैया रहा तो दुखमोचन फिर कलकत्ता चला जायेगा···"

"अरे, समूचे गाँव का इसमें क्या कसूर है ? दो ही चार तो हैं जो लाल चींटों की तरह तुम्हें छिप-छिपकर डसते रहते हैं। बाकी लोग तो किसी कीमत पर तुम्हें छोड़ना नही चाहेंगे, बबुअन ! झूठ कहती हूँ ?"

दुखमोचन ने कुछ नहीं कहा इस पर। थोड़ी देर तक पान चबाते रहे। फिर बोले--"नारायण से कल रात बातें करूँगा, उसे कह देना।"

"कह दूंगी," मामी ने कहा और उनके हाथों की तरफ गौर से देखने लगीं। बायीं हथेली की खाल दो-तीन जगहों पर सिकुड़ी-सी, स्याह-सी नजर आयी तो विस्मय के स्वर में बोली—"लाओ, हाथ तो देखूँ !"

दुखमोचन के दोनों हाथ आगे फैल गये। मामी ने बायीं हथेली को अपने हाथों में ले लिया, शिकायती निगाहों और स्वरों में कहा—"कुदाल से मिट्टी काटने का शौक चर्राया है ! अच्छा होता कि दस-बीस फफोले निकल आते और तुम घर बैठते ! कुदाल और टोकरी लेकर सैकड़ों आदमी तो काम में जुटे रहते हैं, तुम्हें क्या पड़ी कुदाल चलाने की ?"

"इसकी भी जरूरत पड़ती है, मामी ! मैं भी उन्हीं सैकड़ों आदमियों में से एक हूँ। उनसे अलहदा रहने लगूं तो दम ही घुट जाये ! वेणीमाधव, रामसागर, मधुकान्त···सबका यही हाल है, मामी !"

"तुम लोगों से कौन जीतेगा, बबुअन !"

मामी ने हथेली छोड़ दी। उठकर अलमारी से धुला कुरता निकाला, सुई और धागा लेकर बटन टाँकने बैठ गयी। इस बीच दुखमोचन अखबार देखने लग थे।

टुनू ने झाँककर देखा। पायलोंवाले पैर आहिस्ता से पलटकर पिता का ध्यान खींच लेने की अपनी सफलता पर वह आप ही खिलखिला उठी और भाग गयी। इस पर मामी और दुखमोचन मुसकरा पड़े।

दस

निश्चित अवधि से एक रोज पहले ही सड़क की मरम्मत का काम पूरा हो गया। इस खुशी में दुखमोचन और वेणीमाधव ने लोगों को दूध-चीनी और भंग की पार्टी दी।

अंचलाधिकारी साहब ने बाढ़-सहायता फण्ड से पच्चीस मन अनाज मजदूरी के लिए दिया। पन्द्रह मन पहले से जमा था। बाकी मजदूरी नकद दी गयी।

पानी भरनेवाली मजदूरनियों के बारे में दुखमोचन की सिफारिश पर पंचों ने यह निर्णय दिया कि फी घड़ा आठ आने मिलना चाहिए। यानी यदि कोई मजदूरनी किसी परिवार को प्रतिदिन चार घड़े पानी देती है तो दो रुपये माहवार पायेगी। मजदूरनियों ने इस फैसले को खुशी-खुशी मान लिया। डेढ़ महीने तक अनियमित रूप में चलने के बाद हड़ताल अपने-आप और पहले ही समाप्त हो चुकी थी।

पर्याप्त सीमेण्ट न मिलने के कारण मुंशी पुलकितदास भीतर-ही-भीतर दुखमोचन पर नाराज थे। नारायण हजारीबाग वापस जा चुका था। मिडिल स्कूल की सालाना परीक्षाएँ करीब आ गयी थीं।

पिछले कई दिनों से पछिया हवा जोरों पर थी। अमराइयों में टिकोले बुरी तरह झड़ रहे थे। नित्याबाबू के बाग में लोचियों के कई झाड़ थे। उनकी भी कच्ची फल्नियाँ टूट-टूटकर गिर रही थीं।

औरतें अन्दर घर में खाना पकाती थीं, बरामदे के चूल्हे नहीं सुलगाती थीं कि चिनगारी छिटकेगी और हवा के झोंके उसे ले उड़ेंगे।

हरखू की अम्मा शाम को हुक्का पी रही थी। कश खींचने पर तम्बाकू की टिकिया आतिशी फुलझड़ी की तरह पड़पड़ा उठती थी। आज भी वही हुआ। जैसे ही बुढ़िया ने तीसरी बार जोर का कश खींचा कि सुलगती टिकिया से चिन-गारियाँ भड़क उठीं।

फूस के दो छोटे-छोटे घर थे हरखू के। छप्पर भीतों पर नहीं, सरकण्डों के टट्टरों पर थे। दोनों तरफ जीमड़ के पतले खम्भे उन्हें सँभाले हुए थे। पलानी काफी नीचे झुकी हुई थी। बुढ़िया को पता नहीं चला, कब कैसे चिनगारी पलानी की फूस तक पहुँची और कितनी देर तक अन्दर-ही-अन्दर सुलगती रही।

ओसारे की खम्भेली से हुक्का टिकाकर हरखू की माँ पोते की खोज में निकली कि पलानी का छप्पर लपटों में सुलग उठा। बुढ़िया ने नहीं देखा, आगे बढ़ गयी थी। हरखू की औरत साँझ-सकारे खा-पीकर आज पड़ोसिनों से गप्पें मारने निकली थी; बड़ी लडकी भी पीछे-पीछे गयी थी।

दूसरे घर की ओरियानी में दो बकरियाँ और बछियाँ बंधी थीं, धुएँ की घुटन से वे चक्कर काटने और मिमियाने-रँभाने लगीं।

मिनट-आधे मिनट में ही दोनों घरों के ऊपरी छप्पर जल उठे। उड़ते बगूले हवा के झोंकों में पास-पड़ोस के छप्परों पर उड़ने लगे। जहाँ-तहाँ घर जलने लगे। 'आग', 'आग', 'दौड़ो', 'दौड़ो', की चीख-पुकार मच गयी। जो जहाँ था, वहीं से दौड़ पड़ा। भागते लोग एक-दूसरे से टकराते और पूछते—'कहाँ, किधर ?'

आज दोपहर में पछिया हवा ने जो प्रचण्ड रूप धारण किया था, अब तक उसमें कमी नहीं आयी थी। दस मिनट बीतते-न-बीतते पास-पड़ोस के पच्चीसों घर

ज्वालाओं के पुंज दिखायी देने लगे।

समूची बस्ती में खपरैल के मकान बीस-तीस से ज्यादा नहीं थे। बाकी छप्परों पर फूस-ही-फूस था। फागुन और चैत की पछिया में सूख-सूखकर फूस फूस नहीं पलीता हो रहा था। बगूला गिरते ही छप्पर सुलग उठता और अगले ही क्षण ऊँची लपटों का नाच शुरू हो जाता।

बूढ़ों-बच्चों समेत सारी जनता बाहर निकल आयी।

औरतें हाय-हाय करती हुई अपने-अपने घर के सामान निकालने लगीं, बच्चे और बूढ़े उनका हाथ बँटा रहे थे। मर्द फुरती से छप्परों पर चढ़ गये। अधिकांश आदमी घड़े लेकर कुओं और पोखरों की तरफ भागे। हाथों-हाथ पानी-भरे घड़े छप्परों पर उँड़ेले जाने लगे। धूल-भरी टोकरियाँ भी आग की लपटों पर डाली जाने लगीं। कहीं-कहीं बन्धन काटकर छप्पर नीचे गिराये जा रहे थे। मगर अग्निदेव का कोप अब भी उफान पर ही था।

दुसाधों, ग्वालों, धनुकों और जुलाहों के टोले तो आग की लपेट में आ ही चुके थे। अब ब्राह्मणों के घर जलने लगे। पहला बगूला मधुकान्त के रसोईवाले घर पर पड़ा। वह तीन भरे घड़े थामकर पहले से ही मुँडेर पर मुस्तैद था, लेकिन बगूला पड़ा अन्दरवाले घर के छप्पर पर। मधुकान्त का भतीजा शशिकान्त उस पर चढ़ने की कोशिश करने लगा मगर अन्ततः असफल रहा।

दुखमोचन रामसागर के घर की तरफ भागे वह खुद मेहमानदारी में गया हुआ था। परिवार में स्त्री और दो बच्चों के अलावा और कोई न था।

थोड़ी देर तक तो एक या दूसरा घर बचाने के लिए भाग-दौड़ और कोशिशें चलती रहीं, लेकिन समूचा गाँव ही जब प्रलयंकर लपटों की गिरफ्त में आ गया तो लोग घरों और अन्दर से न निकाली जा सकी वस्तुओं की तरफ से हताश हो गये।

पण्डित सुखदेव ने पहला काम यही किया कि शालिग्राम और नर्मदेश्वरवाली पूजा की पिटारी उठाकर कुएँ के आगे कमल बाग में रख आये। पीछे बच्चों को हटाया। गाय और बैलों को खोलकर नदी की तरफ भगा दिया। फिर घर के अन्दर से कानूनी कागजातवाला बक्सा निकाला। बाद को पोथियों-पत्रोंवाले काठ के सन्दूक हटवाये।

छोटी बहू और अपर्णा ने मिलकर गहनों के डिब्बे, कपड़ों के ट्रंक, काँसे-पीतल के बरतन-बासन आदि निकाले। मामी ने खुरपी लेकर जल्दी-जल्दी कुलदेवता की पिण्डी खोद डाली और उसे थाली में जमाकर बाहर ले आयीं। दुखमोचन की अलमारी खाली की जा चुकी थी। पलंग पर से बिस्तर वगैरह हटाया जा चुका था। पीछे कंचन और कन्हाई भागते आये तो पलंग-अलमारी-तख्तपोश-सन्दूक आदि भारी-भारी सामान निकले।

सुखदेव, छोटी बहू और अपर्णा फूट-फूटकर रो रहे थे। जोगेन्द्र और टुनू आतंक के मारे सज्ञा-शून्य की तरह कुएँ के नजदीक खड़े थे। मामी की आँखों से आँसू बह रहे थे, लेकिन होंठों पर ताला जड़ा था। कटोरी में चिउड़ा भिगोकर और उसमें दही-चीनी मिलाकर मामी ने सुखदेव को थमा दिया, हाथ के इशारे से बताया कि जलते छप्परों की तरफ अग्निदेव के उद्देश्य से यह छोड़ दें। सुखदेव के 'ओं अग्नये स्वाहा', 'ओ अग्नये स्वाहा' कहकर पाँच-सात बार वह अन्न अग्नि की तरफ फेंका और कटोरी खाली कर दी।

हजारों का हाहाकार वातावरण को भयानक बना रहा था। ऊपर की तरफ लपकती लपटों से चैत की काली रात का वह पहला पहर कोसो तक जगमगा रहा था। आसपास विशाल बरगदों, पीपलों और पाकड़ो की टहनियो मे लटकनेवाले सैकडों घोसले खाली हो गये थे, भयभीत पक्षियो का झुण्ड आकाश मे चक्कर काट रहा था, मर्मवेधक कोलाहल दिशाओं मे टकरा-टकराकर और कई गुना अधिक होकर वापस आ रहा था। आतंकित मवेशी रह-रहकर रँभा उठते थे तो यह विभीषिका और भी घनी हो उठती थी।

आधा घण्टा बाद दुखमोचन अपने परिवार की सुध लेने आये तो सबको दहशत मे डूबा पाया। टुनू पिता से चिपट गयी और रोने लगी। मामी ने रुआँसी आवाज मे कहा—"अब इस वक्त तुम्हे और कहीं नही जाने दूँगी। चुपचाप बैठे रहो, बबुअन ! भगवान् की यही मरजी थी·· लगता है, अग्नि महाराज बहुत भूखे थे।"

बिटिया के बदन पर हाथ फेरते-फेरते दुखमोचन बोले—"भूखे तो क्या रहेंगे अग्नि महाराज ! दुनिया की बात छोड दो, साल-साल इसी इलाके मे बीसियों गाँव जलाकर खाक कर देते है। सन्तोष तो अग्निदेव को न कभी हुआ, न होने का। इन्हे तो काबू मे करना होगा, मामी !"

उधर से सुखदेव ने उदास स्वर मे कहा—"अग्नि को कभी काबू मे नही किया जा सकेगा, यह कोई मामूली देवता हैं बबुअन ?"

वाद-विवाद का यह वक्त नहीं था। दुखमोचन चुप रहे। टुनू के बदन पर उसी तरह हाथ फेरते रहे। मामी ने डबडबायी आँखों से जलते घरों की ओर देखा, माथा झुकाकर और दोनो हाथ जोड़कर कहने लगी—"दुहाई महाराज की ! घर-गृहस्थी तो लोगो की स्वाह कर ही डाली आपने, जान न लेना किसी की ! कुत्ते की भी नहीं, बिल्ली की भी नही ! मेरी इत्ती-सी प्रार्थना मंजूर करना ! देखना अग्नि महाराज !···"

दुखमोचन बोले—"हाँ मामी, मुझे भी बस अब एक ही बात की फिक्र है कि इस अग्निकाण्ड मे झुलसकर कोई प्राण न गँवा बैठे···प्यास लगी है, मामी !"

मामी डोल लेकर कुएँ से पानी निकालने गयी। उतनी दूर पर भी आँच की गरमी लग रही थी।

कुएँ से सैकड़ों घड़े पानी निकाला गया था अभी-अभी। पानी गँदला हो गया था, पीने के काबिल नही था। लेकिन प्यास जोर की लगी थी, दुखमोचन लोटा भर पानी गट-गट पी गये। टुनू को गोद से उतारकर बोले—"मामी, मेरा इस वक्त यों बैठ जाना ठीक नही। जाने दो, जल्दी ही लौट आऊँगा···घबराओ मत! पड़ोसी गाँव से रक्षा-समितिवाले आ गये है और अपने आदमी भी तो हैं···"

मामी का चेहरा और भी फीका पड़ गया, बोली—"बीच-बीच मे किसी को भेजकर हमारी खोज-खबर लेते रहना।"

"यह भी कहने की बात है भला!"

सुखदेव ने कहा—"मैं भी साथ चलूँ, बबुअन?"

"नही-नही, भइया! आप कहीं नहीं जाइये। बस, आप अपने परिवार को देख-रेख कीजिए। चीज-वस्त की भी निगरानी रखिएगा···कंचन और कन्हाई आपकी खोज-खबर लेते रहेंगे···"

दुखमोचन दस-पन्द्रह कदम गये होंगे, मामी ने ऊँची आवाज मे कहा—"जूते नही लिए? पैर झुलस जायेंगे···"

अपर्णा पिता को जूते दे आयी।

जहाँ-जहाँ रास्ते के दोनो ओर घर जल रहे थे उधर से चलना भट्ठियो की दो कतारो के दरमियान होकर गुजरने-जैसा लगता था। सभी परिवारों का एक-जैसा हाल था। सब हताश थे, सभी रो रहे थे। सामान घरो से बाहर मैदानो मे, खेतो मे, बागों मे, बीच-बीच की खुली जगहो में जमा कर दिया गया था। बच्चे और औरते अपने-अपने सामान के इर्द-गिर्द रोती-बिसूरती दिखायी दे रही थीं। गायों, बैलों, भैसों और बकरियो को गाँव के बाहर भगा दिया गया था।

यह आग पहले कहा से उठी और कैसे फैली, इस बात का पता लगाने की न किसी को सुध थी, और न अभी इसका पता लगाना आवश्यक ही प्रतीत हो रहा था। लेकिन इतना अच्छी तरह मालूम हो गया था कि दुसाधो का ही पुरवा पहले सुलगा था। हो न हो, समूचे गाँव की इस बरबादी का असल कारण वही लोग थे···इसी तरह की बाते दुखमोचन के कानो मे पड़ने लगी, तो उन्होने फौरन प्रतिवाद किया। कहा कि इस बरबादी का असल कारण है हमारे घरों को फूस से छवाया जाना। समूची बस्ती अगर खपरैल के मकानो की रही होती, तो अग्निदेव का मनोरथ अपूर्ण ही रह जाता।

नित्याबाबू ने दुखमोचन को देखा तो फुक्का फाड़कर रो पड़े।

अभी पचास कदमों का फासला था। दुखमोचन के साथ वेणीमाधव, कपिल और मिहिर थे।

वेणीमाधव ने आहिस्ता से कहा—"इनके लिए आग नही, भूचाल आता तो ठीक था। अच्छा होता कि नित्याबाबू के वे सन्दूक जलकर राख हो जाते, जिनमे

कबाला और रेहन-मकबूला के दस्तावेज, काश्तकारी कागजात, ब्याज पर लगाये रुपयों के हैण्डनोट आदि रखे हैं···सब कुछ स्वाहा हो जाता नित्याबाबू का !···मेरी तो तबीयत करती है कि बुढऊ को उठाकर इस आग में डाल दूँ···"

दुखमोचन ने पीछे घूमकर वेणीमाधव को देखा। भौंहें तन गयी थीं, मुख का भाव कठोर हो आया था। कपिल और मिहिर ने दुखमोचन का यह भावान्तर ताड़ लिया, लेकिन वेणीमाधव की समझ में नहीं आया यह सब।

जरा देर बाद दुखमोचन बोले—"विपत्ति के इन क्षणों में इस तरह की बातें करना बर्बर प्रतिहिंसा का सूचक है, वेणीमाधव ! नित्याबाबू की हरकतों से हमारा काफी नुकसान हुआ है और आगे भी हो सकता है, लेकिन इस वक्त तो हम बिना किसी भेद-भाव के उनकी सहायता करेंगे। मैं महसूस करता हूँ कि अपने गाँव के एक-एक व्यक्ति की सुरक्षा का दायित्व हम पर है। अभी यह नहीं देखना है कि फलाँ दौलतमन्द है और फलाँ गरीब है, फलाँ हमें गालियाँ देता है और फलाँ हमारा नाम लेकर सुबह-शाम शंख फूंकता है···अभी एक-एक व्यक्ति हमारा अपना आदमी है, वेणीमाधव !"

सभी चुप थे।

बरामदे से नीचे आकर नित्याबाबू दुखमोचन के पैरों पर गिरने को हुए, मगर दुखमोचन ने उन्हें बाँहों में ले लिया।

रो-रोकर नित्याबाबू ने कहा—"दादा के जमाने के काठ के दोनों बड़े सन्दूक पुराने मकान के अन्दर पड़े हैं···लोहे के बड़े-बड़े और मजबूत ताले लगे हैं उनमें··· चाबियाँ भी नहीं मिल रही हैं इस वक्त··· सन्दूकों में चार पुश्त पुराने बरतन अँटे पड़े हैं बेटा···"

घिग्घी बँध गयी नित्याबाबू की, आगे एक भी साफ शब्द मुँह से नहीं निकल रहा था। पड़ोसी घरों की लपकती लपटों के प्रकाश में लगातार बहते आँसुओं की मोटी लकीरें चिकने-चुपड़े, गद्दीले-साँवले गालों को कई गुना ज्यादा चमका रही थीं।

अपनी धोती की खूंट से नित्याबाबू के आँसू पोंछते हुए दुखमोचन ने उन्हें आश्वासन दिया—"मैं निकलवाता हूँ सन्दूक, चाचाजी ! आप रत्ती-भर भी फिक्र न कीजिये···"

"तुम्हारा ही भरोसा है, दुखमोचन !" घिघियाते स्वर में नित्याबाबू बोले—"मैं तो पुराना पापी हूँ, रात-दिन तुम्हारा बुरा चाहता रहा हूँ···"

"उहूँ उहूँ उहूँ ! यह सब क्या कह रहे हैं आप ?"

दुखमोचन ने नित्याबाबू के मुँह पर हथेली रख दी, तो वह और अधिक रो पड़े।

दुखमोचन ने नित्याबाबू को अभी उसी तरह रोता छोड़ दिया। वह बड़े

दरवाजे से अन्दर हवेली में घुसे। दो मकान नये और पक्के थे, तीन पुराने। तीनों की दीवारें तो पक्की पुरानी ईंटों की थीं लेकिन छप्पर सारे-के-सारे बड़े और मजबूत होने पर भी ऊपर फूस मे छवाये हुए थे, मोटे और अच्छे किस्म के फूस से जैसा कि गाँव के किसी दूसरे गृहस्थ के छप्पर पर नहीं था।

तीनों मकान लपटों की चपेट में आ चुके थे। पाँच-सात मजदूर छोटे-मोटे सामान अब भी हटा रहे थे। सन्दूक लेकिन टस-से-मस नहीं हो रहे थे।

दुखमोचन ने कपिल को दौड़ाया, रक्षा-समितिवाले जवान मधुकान्त के टोले में बचाव का काम कर रहे थे। पन्द्रह मिनट के अन्दर वे आ धमके।

आग अब तक भीतर पहुँच चुकी थी। छप्परों के अन्दरूनी ढाँचे जलने लगे थे। बरेंडी का ऊपरी हिस्सा सुलग रहा था। धरनें, मानिकथम्भ और बीचवाले दोनों खम्भे ही बच रहे थे।

खेती मे ईंटें खोदकर चौखट गिरा दी गयी। दस आदमियों ने ठेल-ठालकर सन्दूक बाहर निकाल लिए! इन बड़े सन्दूकों मे नीचे छः-छः मोटे पहिये लगे थे। नित्याबाबू का आँगन क्या था, अच्छा-खासा मैदान था। आँगन के बीचोबीच लाकर सन्दूकों को खड़ा कर दिया गया।

बाकी लोग उधर भौंहों से टपकते पसीने पोंछ रहे थे और नित्याबाबू दुखमोचन से चिपटकर रो रहे थे।

दुखमोचन उनके आँसू पोंछते-पोंछते बोले—"चाचाजी, आपके तो भला दो पक्के और शानदार मकान अब भी खड़े हैं, लेकिन बाकी लोग कहाँ पनाह लेंगे? हमें अभी फुरसत दीजिये, समूचा गाँव प्रलय-काल का लावा बनकर धधक रहा है ···धान के बखार तो आपके सही-सलामत हैं न, चाचा?"

रोते-रोते नित्याबाबू ने कहा—"हाँ, दुखमोचन! अनाज पर कोई आँच नही आयी। 'आग-आग' का शोर-गुल मचा और लपकती लपटों से आसमान को उजागर देखा तो मैंने पहला काम यही किया कि बखारो के छप्पर नीचे गिरवा दिये, वरना सारा गल्ला खाक हो जाता···आज हमारे घूटर ने बड़ी हिम्मत दिखायी है···मगर दादा-परदादा के बनवाये मकान आखिर जल ही गये, बेटा!"

"अजी, फिर से बन जायेंगे चाचा, आप तो नाहक अफसोस करते हैं···"

"बाँस-काठ और घास-फूस की ऐसी कारीगरी अब कहाँ देखने को मिलेगी, दुखन?"

नित्याबाबू फिर रोने लगे, तो दुखमोचन ने उन्हे इशारे से चुप रहने को कहा। अगले ही क्षण सभी बाहर निकले और गाँव के बड़े रास्ते पर आ गये।

राजपूतों का पुरवा गाँव के दक्षिण-पश्चिमी छोर पर कुछ अलग हटकर आबाद था। बाँसों की चौड़ी-घनी झुरमुटें और कलमी आमों के बाग दरमियान में पड़ते थे, इससे राजपूतों का टोला बच गया। इधर से जलते घरों के जो भी बगूले

उड़े, वे बँसवार और अमराई में उलझकर रह गये।

मुंशी पुलकितदास के दो मकान खपरैल के थे, इसी से नहीं जले। बाकी दो घर फूस से छवाये हुए थे, जिनके आठों छप्पर खुलकर दहकते रहे। मुंशीजी के आँसू रुकते ही नही थे। दहशत के मारे नवलकिशोर की जबान बन्द थी।

गाँव-भर में जितने भी खपरैल के मकान थे, आग ने मानो छू-छूकर उन्हें छोड़ दिया। लेकिन इस प्रकार के घर तीस से ज्यादा नहीं थे। दस घर ब्राह्मणों के, सात-आठ जुलाहों के, चार कायस्थों के, दो ग्वालों के, तीन-चार भूमिहारों के···मिडिल स्कूल का मकान···देवी मन्दिर के नजदीक ब्रह्म का मण्डप···पंचायत का छोटा घर···बस, यही कुछ मकान थे, जो नये-पुराने खपड़ों से छवाये हुए थे।

वेणीमाधव का बैठकखानावाला बड़ा मकान इन्हीं में से एक था। उसकी बरामदेवाली खम्भेलियाँ-भर झुलसकर रह गयीं, बाकी समूचा बच गया। शेष फूस-वाले तीनों घर स्वाहा हो गये थे। मधुकान्त, रामसागर, दुखमोचन, टेकनाथ, कंचन, कन्हाई, बौधू, परमेसर आदि का एक भी घर नहीं बचा था।

मास्टर टेकनाथ बूआ से एक बूढ़ा बैल माँगकर लाया था पिछले साल। खूँटे से खोल देने पर भी जाने कब वह किधर से होकर वापस आ गया और मास्टर के अनजाने ही पड़ोस की सँकरी गली के दहकते कोने में झुलसकर ढेर हो गया था··

टेकनाथ जैसे गरीब ब्राह्मण के लिए यह कोई मामूली मुसीबत नहीं थी। घर जल गये; कोई बात नहीं; मड़ैया खड़ी कर ली जायेगी, जैसे-तैसे गुजारा हो लेगा। लेकिन बैल के जल मरने पर यह जो चारों चरन प्रायश्चित्त लग गया है, इससे छुटकारा पाने में सिर का एक-एक बाल नुच जायेगा··

देर तक मास्टर दुखमोचन को खोजता फिरा। उनसे उसकी मुलाकात आखिर चमारों के टोले में हो गयी।

दुखमोचन चमारों की बिरादरी के सबसे बुजुर्ग बौधू चाचा से बातें कर रहे थे, मालूम कर रहे थे कि इस बिरादरी में अग्निकाण्ड से किसका कितना नुकसान हुआ है। यों घूम-घामकर वह सब कुछ देख चुके थे, फिर भी बातचीत आवश्यक थी।

निगाहें मिलते ही दुखमोचन ने पूछा—"कहो मास्टर, चीज-वस्त तो नहीं नुकसान गयी? घर तो खैर सबके खाक हो गये है···तुम्हारे भी, हमारे भी, बौधू चाचा के भी, इनके भी और उनके भी···"

टेकनाथ की आँखें छलछला आयीं, लगा कि एक शब्द भी गले से ऊपर आयेगा तो माथा फट जायेगा। वह चुप रहा, चुप क्या रहा, जबान ही नही खुली!

दुखमोचन ने जले छप्परों के दमकते अंगारों की मामूली रोशनी में भी मास्टर का फीका चेहरा देख लिया···फड़कते होंठ, डबडबायी आँखें, उसाँस में फूलते

नथुने···

उन्होंने गाढ़ा आत्मीयता के लहजे में फिर कहा—"बोलते क्यों नहीं हो? क्या हुआ टेकनाथ!"

इतना कहकर दुखमोचन बिलकुल करीब आ गये और टेकनाथ के दाहिने कन्धे पर अपना बायाँ हाथ रख दिया। दाहिने हाथ से उसकी ठुड्डी ऊपर उठाकर ममता की आवाज में फिर पूछा—"क्यों भाई, बोलते क्यों नहीं? क्या हुआ?"

अब मास्टर फफक-फफककर रोने लगा।

दुखमोचन ने उसे अपनी बाँहों में ले लिया। घण्टों घूम-घूमकर वह गाँव-भर की आग बुझाते रहे थे। इसमे हाथ तो काले हो ही गये थे, बल्कि हथेलियाँ सूज गयी थीं, एक-एक उँगली मे पाँच-पाँच फफोले निकल आये थे। पैरों का भी यही हाल था। चेहरा भी स्याह लग रहा था। मूँछों और बालों में उड़ते बगलों की सफेद-धूमिल छाइयाँ उलझ पड़ी थीं···

टेकनाथ की भी यही तसवीर थी। बौधू चाचा का भी यही नक्शा था, वेणीमाधव और कपिल का भी। रक्षा-समितिवाले भी ऐसे ही दिखायी देते थे।

टेकनाथ ने रो-रोकर कहा—"मेरा बैल झुलसकर मर गया है, दुखमोचन! मुझे तो चारों चरन प्रायश्चित्त लग गये···घर जलने का उतना अफसोस नहीं है, जितना इस बात का···बैल की हत्या का यह कलंक कैसे छूटेगा? कैसे ऽऽऽ···"

आगे मास्टर से बोला नहीं गया, वह फूट-फूटकर रोने लगा।

सभी चुप थे। एक भी शब्द किसी के मुँह से निकलना नहीं चाहता था। सभी के दिमागों पर मानो गोहत्या का वह पाप क्षण-भर के लिए अपना विषैला प्रभाव छोड़ गया हो। दुखमोचन की बाँहें अनजाने ही टेकनाथ के बदन से अलग हो गयी थीं, क्षण-भर के लिए वह भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये।

एकाएक दुखमोचन की अपनी सधी चेतना चौकस हो गयी, टेकनाथ के कन्धे पर उनका एक हाथ फिर पहुँच गया। आश्वासन की गम्भीर भंगिमा में वह बोले, "पण्डितों के पुराने पचड़े में नहीं पड़ना मास्टर, वे तो पतिया प्रायश्चित्त के खर्चीले खटरागों में फँसाकर तुम्हारी बधिया ही बिठा देंगे।"

टेकनाथ रोकर हल्का हो चुका था और दुखमोचन का अनुकूल रुख उसके मन में छुटकारे की आशा का संचार कर रहा था। आहिस्ता लेकिन उदास स्वर में कह गया—"मैं किसी से कहूँ भी तो कौन यह मानने को तैयार होगा कि बैल जलकर नहीं मरा है? बात तो आखिर सच है ही···"

दुखमोचन तुनककर बोले—"तो तुमने जान-बूझकर अपने बैल को आग में झोंक दिया था? अरे, अग्नि महाराज की यही मरजी थी भइया! अब इसके लिए तुम अपने प्राण क्यों संकट में डालोगे, मास्टर?"

गदगद स्वर में टेकनाथ ने कहा—"मेरी अकल कुछ काम नहीं दे रही है

दुखमोचन, तुम्हारी बात तुम्हीं जानो भाई !"

"हाँ, इस मामले में तुम कुछ नहीं बोलना। मैं पण्डितों से निबट लूंगा, मास्टर !"

"मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है, एकमात्र तुम्हीं सूझ रहे हो···तभी तो दौड़ा आया हूँ।"

"जाओ, रत्ती-भर भी फिक्र मत करो, टेकनाथ।"

ग्यारह

अधेड़ दीखनेवाले एक आदमी ने उत्तर की तरफ से गाँव में प्रवेश किया। दाढ़ी और सिर के बाल काफी बढ़े थे। कपार चौड़ा, नाक नुकीली और आँखें बड़ी-बड़ी।

रामसागर ने उसे सड़क के मोड़ पर ही देखा। अब बड़ी सड़क छोड़कर आगन्तुक ने जब छोटी सड़क पकड़ी और गाँव की सीमा के अन्दर पैर रखे तो रामसागर लपककर करीब आया। पूछा—"किसके यहाँ जाना है ?"

दाढ़ी पर हाथ फेरकर आगन्तुक बोला—"पण्डित सुखदेव मिश्र के यहाँ··· मगर देख रहा हूँ कि अग्निदेव ने खुलकर ताण्डव-नृत्य किया है। समूचा गाँव जल कर खाक हो गया है···राख के समुद्र में बीस-पच्चीस खपरैल-मकान और पाँच-सात कोठे टापुओं की तरह चमकते हैं। हे नारायण, यह कैसी दुर्दशा तुमने इस गाँव की कर दी !"

आगे एक शब्द भी आगन्तुक से नहीं बोला गया, गला फँस गया शोक के उफान में। आँखों में आँसू छलछला आये थे।

मलमल की लाल-सुर्ख धोती, कुरता भी उसी तरह लाल। गले में हाथी के दाँत तराशकर बनायी गयी मनकों की माला लटक रही थी। पैरों में कपड़े के किरमिची जूते।

"महाराज, आप कहाँ के रहनेवाले हैं ?" रामसागर ने पूछा।

आगन्तुक ने ठहाका लगाया और कहा—"गलत पूछा ! अरे, यह पूछिए कि कहाँ का नहीं रहनेवाला हूँ।"

"अजीब बातें करते हैं आप तो !"

"हाँ, मैं खुद ही अजीब हूँ। फिर मेरी बातें अजीब नहीं होंगी !"

रामसागर की समझ में नहीं आया कि आगन्तुक का सुखदेव से क्या रिश्ता हो सकता है। वह सुखदेव और दुखमोचन के प्राय: सभी रिश्तेदारों को पहचानता था। अग्निकाण्ड के बाद सभी के रिश्तेदार मिलने आ रहे थे। जान-पहचान के दूसरे लोगों का भी आवागमन बढ़ गया था। यह नयी बात नहीं थी कि पण्डित सुखदेव से कोई मिलने आया था। मगर प्रश्नों का ऊटपटांग जवाब देनेवाला यह कौन हो सकता है सुखदेव का, रामसागर की समझ में नहीं आया।

कुछ सोचकर उसने कहा—"इस गांव में शायद आप पहली बार आये हैं। चलिए, मैं आपको सुखदेव भाई के ठिकाने तक छोड़ आता हूं।"

"चलिए!" आगन्तुक ने ठहाका लगाया और कहा—"पहली और दूसरी बार आया हो चाहे दसवीं बार, अग्निदेव की सत्यानाशी कृपा के कारण कौन अभ्यागत भ्रम में नहीं पड जायेगा! झुलसी भीतें, काले-अधजले खम्भे, ठूंठ और कलूटे खूंटे···नारायण! नारायण! कैसा भयानक दिखलायी पड़ता है गांव! दुर्गा! दुर्गा! दुर्गा! काली! काली! काली! कब लगी थी आग? आज कै दिन हुए हैं?"

"छ: रोज हुए हैं।" रामसागर ने कहा—"महाराज, आपने बतलाया नहीं, कहाँ से आ रहे हैं?"

आगन्तुक ने रुककर कहा—"मैं नर्मदा-तट से आ रहा हूँ, नाम मेरा है लीलाधर झा। हमारी कुटिया में एक भगत उस रोज अखबार ले आया था। उसी ने खबर सुनायी कि दरभंगा जिले का टभका-कोइली गाँव जलकर खाक हो गया है··· सुखदेव की मामी मेरी भाभो होती हैं। जिज्ञासा में आया हूँ···ठीक-ठाक हैं न वे लोग?"

"हाँ महाराज, ठीक-ठाक हैं. घर अलबत्ता जल गये, मगर जान-माल का नुकसान नहीं हुआ···आँच और धुएँ की धौंस से गल्ला बरबाद हो गया···"

"तारा! तारा! तारा! काली! काली! काली!"

"हाँ महाराज, महामाया की ही लीला है सब कुछ! ···तो आप रिश्ते में सुखदेव भाई के मामा हुए न?"

"हाँ," लीलाधर क्षण-भर रुककर बोला—"लेकिन उनकी मामी सकुशल हैं न?"

"जी, महाराज!"

अब रामसागर ने आगे से राह छेककर कहा—"तो मैं आपको प्रणाम करूँ, मामाजी! ठहरिए···"

उसने लीलाधर के पैर छू लिए।

सधुअई ढंग से बँधी एक गठरी लटक रही थी उसके कन्धे से। रामसागर ने वह उतारकर बगल में दबा ली। बातें करते-करते दोनों जने सुखदेव के ठिकाने

पर पहुँचे। घर तो रह नहीं गये थे, ठिकाना ही था सिर्फ ! खूँटों के सहारे धोतियाँ और साड़ियाँ परदों का काम दे रही थीं; वरना परिवारों के दरमियान कहीं कोई आवरण नहीं था, सभी सबको देख रहे थे। हाँ, झुलसी हुई बदरंग भीतें यहाँ-वहाँ, जहाँ-तहाँ शील-संकोच का पारिवारिक कवच बनकर अब भी खड़ी थी। कहीं-कहीं इन नंगी-कलूटी भीतों के सहारे कामचलाऊ छप्पर-छानी लटका ली गयी थी।

मुसीबत आडम्बरों को चीर-फाड डालती है। झूठ-मूठ की लाज, फिजूल का गुमान, अनावश्यक भावुकता आदि तो उसके सामने टिक ही नहीं सकते। मामी ने लीलाधर की आवाज सुनी तो झट-से आड के बाहर निकल आयी। लीलाधर ने झुककर उनके पैर छुए तो डबडबायी आँखों से उसकी तरफ देखती रह गयी। गला भर आया था. होठ रुलाई के आवेग में फड़क रहे थे।

दुखमोचन सवेरे ही सहायता के कामों में निकल गये थे। सुखदेव कुएँ के आगे 'कलकतिया' आम के झुलसे पेड़ों की पतली छाया में नित्य का अपना पूजा-पाठ कर रहे थे। दालान के सहन में चार-पाँच मजदूर बाँस के डण्डे फैलाकर बड़ा-सा छप्पर तैयार कर रहे थे। रुखान, आरी, बसूला, टाँगी, खन्ता आदि औजार इधर-उधर बिखरे पड़े थे। कोडो, बाती, झाँजन, तड़ग, खूँटा, खम्भा, खँभेली, मोटी और पतली डोरिया···खढ़, खढी, सरकण्डा, बाँस···यानी घर बनाने का सारा सामान मौजूद था। जयमाधव और परमेसर मजदूरों से काम भी ले रहे थे, साथ ही खुद भी काम कर रहे थे।

अपर्णा दौड़कर गयी, कुएँ से एक डोल पानी भर लायी। लोटा-भर पानी सामने आया तो मामी अपने ही हाथों से लीलाधर के पैर धोने बैठी।

लीलाधर ने दो-एक दफा हलकी जबान से 'न-ना' किया, आखिर चुपचाप पैरों को निश्चेष्ट छोड़ दिया। वह अच्छी तरह जानता था कि भाभी मानेंगी नहीं, अपने हाथों से जब तक वह इन पैरों को धो नहीं लेंगी तब तक उनको सन्तोष नहीं होगा।

पैरों को धोते समय मामी ने देखा, फटी-सूखी बिवाइयों ने तलवों को खुरदरा करके छोड़ दिया है···बेतरतीब कटते रहने की वजह से नाखून अपनी सहज शक्ल-सूरत खो चुके हैं···सेवा और हिफाजत के अभाव में चमड़ी कड़ी पड़ गयी है, नसों में एक अनोखा तनाव आ गया है।

हाय, वे मुलायम और सुन्दर पाँव कहाँ गायब हो गये ! ···मामी की आँखें अपने लाडले देवर की दुर्दशा देखकर बार-बार सजल हो रही थीं।

पैरों को अच्छी तरह धोकर मामी ने आँचल से उन्हें पोंछ दिया और आँखें नीचे किये-किये ही अन्दर रसोईघर की तरफ चली गयीं।

रामसागर वापस जा चुका था मगर सुखदेव की पूजा अभी बीच में ही थी। अपर्णा ने आकर नहाने के बारे में पूछा तो लीलाधर ने बतलाया कि गाड़ी से वह

रात ही उतरा और सुबह-सुबह स्नान-ध्यान आदि से निबटकर स्टेशन मे चला है।

थोड़ी देर बाद अपर्णा बुलाकर लीलाधर को अन्दर ले गयी। चमचमाती थाली में चार पूड़ियाँ, हलुआ, तले हुए परवल और आम का अचार—एक फाँक। अलग कटोरे मे दूध। पीढ़े पर बैठकर वह नाश्ता करने लगा तो बिजनी लेकर मामी हवा करने बैठी।

नलीदार मूँठ के अन्दर से घूमती हुई बाँस की वह पंखी 'किर्र-किर्र', 'कैंच-कैंच' आवाज कर रही थी। हवा तो खूब आ रही थी, लेकिन कान गुदगुदा रहे थे। लीलाधर ने पखी की तरफ कौतूहल की निगाहों से देखा।

मामी सहज स्वर में बोली—"बड़ी बेहूदी है यह बिजनी, लखनौलीवाला डोम परसों ही तो दे गया है। मेरी अपनी बिजनी अग्नि-महाराज ने ले ली। तीन वर्ष की वह मेरी बेहद प्यारी सहेली थी। छोटी बहू के भरोमे मैं उसकी तरफ से निश्चिन्त रही, पीछे नहीं मिली तो बड़ा दुख हुआ। नान्ह बाबू, क्या बताऊँ कि उसकी आवाज कितनी मीठी थी!"

थोड़ी देर बाद लीलाधर ने कहा—"भाभी, अब मेरी जान-मे-जान आयी! भरोसा नहीं था कि तुम्हें सही-सलामत देख पाऊँगा इन आँखों से···"

हथेली पर ठुड्डी टेककर मामी बोली—"नहीं नान्ह बाबू, इतनी आसानी से मैं नही मरने की! यमराज के मुंशी ने अपने रजिस्टर से मेरा नाम काट दिया है शायद···"

"यही सब मुझे तुम्हारे मुँह से सुनना था, भाभी?" लीलाधर ने विषाद-भरे स्वर में कहा और हलुआवाले कटोरे से हाथ हटा लिया।

मामी हँसकर बोली—"बुरा मान गये! ···मगर हलुआ तो तुम्हें खाना ही होगा···दूध चाहे पीछे ले लेना···और··"

लीलाधर ने हलुआ खाते-खाते कहा—"चुप क्यों हो गयीं, भाभी? गले तक आयी बात मुँह से नही निकालोगी तो अगले जन्म मे जीभ सुन्न हो जायेगी, समझी?"

"समझी!" तुनककर मामी ने कहा—"जी, बाबाजी महाराज!···यह तुमने अच्छी धज बना रखी है! देखा है कभी शीशे में अपना चेहरा? पिटारी लेकर घूमोगे तो चार पैसा जरूर कमा लोगे?···हुँ!"

लीलाधर दूध छोडकर उठ रहा था, लेकिन मामी ने अपनी कसम देकर दूध पी लेने को बाध्य कर दिया।

हाथ-मुँह धोकर सुखदेव के नजदीक आ बैठा। अपर्णा पान दे गयी। पान चबाते-चबाते सुखदेव से बातें करता रहा। पण्डित की पूजा खत्म हो चुकी थी।

पेड़ों की छाया में उधर चारपाई डाल दी गयी, कम्बल और चादर अपर्णा

बिछा गयी उस पर। मामूली बातचीत के बाद सुखदेव ने कहा—"अब आप आराम करें मामाजी, खाना खाकर मुझे बाजार जाना है···कई दिनों के थके हैं आप।"

फिर उसने जयमाधव से कहा—"धूप आ जाये तो चारपाई-समेत इन्हें उठाकर छाँव में कर देना, समझे?"

इस पर सभी को हँसी आ गयी। लीलाधर बोला—"भगवान् जो न करायें!"

"भगवान् नहीं, मामाजी!" सुखदेव ने चिढ़कर कहा—"एक बुढ़िया की बेवकूफी से समूचा गाँव जलकर खाक हो गया।"

"मैं होता तो बुढ़िया को उसी आग में डाल देता! ऐसी चुड़ैल को लोगों ने जिन्दा छोड़ दिया!"

"अजी, वह तो पीछे पता लगा मामा! उस वक्त तो ऐसी चीख-पुकार और भाग-दौड़ मची थी कि कुछ न पूछिये। हवा भी उस शाम को इतनी तेज चल रही थी कि उनचासों पवन मात थे उसके आगे···"

जोगेन्द्र ने इतने में आकर कहा कि खाना खाकर बाजार अभी चलना होगा; मामी नाराज हो रही हैं। सुखदेव भीत की आड़ में चले गये। लीलाधर की चेतना पर सचमुच थकावट छा रही थी, बदन का एक-एक जोड़ टूट रहा था। वह अब चारपाई पर लेट गया। कुछ ही क्षणों के बाद उसे नींद आ गयी।

सुखदेव के सामने थाली में जो भात आया, उससे धुँआइन भाप उठ रही थी। झुलसे चावलों का बदरंग भात—नाक-भौंह सिकोडकर पण्डित ने उसमें दाल मिलायी: दाल से भी वैसी ही गन्ध उठ रही थी। तरकारी परवल की थी और ठीक थी। पाँच-सात कौर मुँह में डालकर उन्होंने मामी की तरफ देखा। मामी पंखी लेकर हवा कर रही थी।

खाना समाप्त करते ही सुखदेव ने पूछा—"मेहमान को भी यही खाना खिलाओगी?"

"तो कहाँ से आयेंगे बढ़िया चावल? अच्छे चावल बाजार से मँगवा लूँ?··· मगर ये चावल भी तो फेंक नहीं दिये जायेंगे! अनाज तो अनाज ही ठहरा, जरा झुलस ही गया तो क्या हुआ?"

"हमारे यह मामाजी पहली बार आये हैं, क्या कहेंगे मन-ही-मन?"

"कहेंगे क्या! कुछ नहीं कहेंगे। मुसीबत की बात सुनकर ही तो मिलने आये हैं। आप नाहक इतना कुछ नान्ह बाबू के लिए सोचते हैं, पण्डितजी! परिवार में सबके लिए जो कुछ तैयार होगा, वह भी वही खाना खायेंगे। उनके लिए अलग से खाना तैयार होगा तो कल ही भाग खड़े होंगे। अभी नाश्ते में पूड़ियाँ थीं, हलुआ था। मेरे डर से नान्ह बाबू ने खा तो लिया, लेकिन आँखें फाड़-फाड़कर वह

झुलसे चावलों के ढेर देखते रहे···"

मामी उठकर रसोई में गयीं और कटोरे में हलुआ ले आयीं। बोलीं—"आज बबुअन शायद ही लौटें, जरा-सा हलुआ उनके लिए भी रख दिया है। नहीं आयेंगे तो जोगी खा लेगा···आप लोग बाजार से सांझ-सकारे ही लौट आना!"

सुखदेव उठे। हाथ-मुंह धोकर पान ले लिया और बदन में कुरता डालकर बाजार के लिए निकले। हाथ में खाली डिब्बा था, बोतल और झोला लेकर जोगेन्द्र ताऊ के पीछे-पीछे था।

दुखमोचन रात को काफी देर से लौटे। अकेले नहीं, तीन आदमी और साथ थे—दो विधायक, एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता। विधायकों मे एक थे शुभंकर बाबू, दूसरे थे चतुरी ठाकुर।

मामी ने उदास होकर पूछा—"अब इत्ती रात को इन्हें क्या खिलाओगे?"

"पिपरा बाजार से खाकर चले थे।" दुखमोचन ने कहा तो मामी के दिल को तसल्ली हुई। फिर भी बोलीं—"शरबत तो पियेंगे। चीनी बाजार से आज ही मंगवायी है, सौंफ और पुदीना मैं चटपट पीस लेती हूँ। तुम ताजा पानी ले आओ।"

"अच्छा!" दुखमोचन ने कहा—"लाल धोतीवाला वह दढ़ियल कौन सो रहा है बाहर? यह कहाँ के सिद्धजी आ टपके, मामी?"

अन्दर की खुशी को दबाकर मामी ने गम्भीर मुद्रा धारण कर ली। बोलीं—"मैं क्या जानूं! पण्डितजी के हीत-मीत कोई मिलने आ गये होंगे!"

तीनों अभ्यागत तख्तपोश पर बैठे रहे। अन्दर से लाकर दुखमोचन ने दरी-चादर बिछा दी। थोड़ी देर बाद शरबत ले आये, फिर पान आया।

नित्याबाबू का नौकर घूटर खवास इस बीच यह कह गया कि मालिक ने मेहमानों के लिए बिस्तरे लगवा दिये हैं। थोड़ी देर तक अग्निकाण्ड से होनेवाली बरबादी और अगले नवनिर्माण की योजनाओं पर बातें होती रहीं। तय हुआ कि सुबह घूम-घूमकर समूचा गाँव देखा जायेगा। तीन आगन्तुकों की इच्छा थी कि दुखमोचन के दालान की अँगनई में सो जायेंगे। लेकिन दुखमोचन ने सोचा कि यहाँ इन्हें तकलीफ होगी। समझा-बुझाकर वह उन्हें नित्याबाबू के बैठकखाने में ले गये। वहाँ तीन पलंगों पर बाकायदा बिस्तर लगे हुए थे। तीनों लेट गये। चतुरी ठाकुर बड़े ही कर्मठ किसान-सेवी थे। वह देर तक दुखमोचन से बातें करते रहे। शुभंकर बाबू की नाक साँस के मुताबिक बजती रही।

सियारों ने नदी-किनारे लखनौली की ओर कहीं 'हुआँ-हुआँ' की टेर लगायी तो चतुरी ठाकुर ने आग्रहपूर्वक दुखमोचन को घर भेजा।

मामी बिना छप्पर के खुले बरामदे में अब तक करवटें बदल रही थीं। नींद के पंख लग गये थे; पास फटकती तक नहीं थी। वह बेहद उतावली थीं लीलाधर

के बारे में बताने के लिए। मेहमानों की सेवा-टहल में व्यस्त रहने के कारण ही दुखमोचन दढ़ियल आगन्तुक की तरफ ध्यान नहीं दे पाया। और मामी ने जब खुद ही कह दिया उसके बारे में कि 'मैं क्या जानूं !' तो दुखमोचन उसकी तरफ से और भी निरपेक्ष हो गया, दोबारा जिक्र तक नहीं किया···मामी पछता रही थीं कि बबुअन ने पूछा तो लीलाधर के बारे में सीधे-सीधे बतला क्यों नहीं दिया ! बातचीत की टेढ़ी-मेढ़ी शैली कभी-कभी कितनी महँगी पड़ जाती है !···रह-रहकर मामी यही सोच रही थीं।

बीच में दो दफे वह कुएँ के इर्द-गिर्द चक्कर लगा आयीं। सुखदेव और लीलाधर दो चारपाइयों पर आस-पास सोये थे। यह चैत का शुक्ल-पक्ष था। नील-निर्मेघ आकाश मे द्वादशी का चांद बड़ा ही अच्छा लग रहा था। रात्रि-शेष का हल्का गुलाबी जाड़ा सूती चादर से ठगने के काबिल नहीं था। दूसरी बार लीलाधर को सिकुड़े देखा तो मामी आहिस्ता-से ट्रंक खोलकर अपना शाल निकाल लायीं और उसे ओढ़ा दिया। करवीर और हरसिगार के झाड़ आग की प्रचण्ड लपटों में बुरी तरह झुलस गये थे, आँगन की श्रद्धारानी तुलसी तो और बुरी तरह झुलसी थी। इनकी ठूँठ परछाइयों से आँखों को खरोंच-सी लगी तो मामी वापस आकर बिस्तर पर लम्बी हो गयीं, पलकों को देर तक उँगलियों से दबाये रहीं।

दुखमोचन के पैरों की आहट पाते ही उठ बैठी मामी।

वह आकर पास ही बैठे। उबासी लेकर कहा—"आज बहुत थका हूँ, मामी। सोऊँगा तो एक ही नींद में सूरज दो बाँस ऊपर चढ़ जायेगा।"

मामी ने चुटकी बजाकर सराहा—"बड़े भागवन्त हो बबुअन ! यहाँ तो नींद निगोड़ी जाने कब से खार खाये बैठी है···अच्छा, एक नयी खबर है तुम्हारे लिए···लीलाधर आये हैं।"

"झूठ !"

"इतनी रात को तुमसे मजाक करूँगी ? जिस दाढ़ीवाले के बारे में तुमने तब पूछा था, वह लीलाधर ही तो हैं···अखबार के जरिये उन्हें गांव जलने की बात मालूम हुई तो मेरी खोज-खबर लेने आये हैं···"

"भाग तो नहीं जायेंगे फिर ?"

"अब तुम्हीं उन्हें सँभालना, बबुअन !"

"नहीं, मामी !" दुखमोचन ने स्नेहासिक्त स्वर में कहा—"मेरा नहीं, तुम्हारा ही मधुमय अंकुश लीलाधर को आदमी बना सकता है।"

मामी की आँखें डबडबा आयीं, स्वर में कम्पन उभर आया—"बबुअन, लीलाधर ने आज बहुत आँसू बहाये हैं···"

दुखमोचन ने कहा—"और तुमने भी !"

"हाँ, बबुअन, मैंने भी !" उसी तरह तरल-विह्वल आवाज में वह बोलीं।

थोड़ी देर तक दोनों तरफ से साँसों को अपना माध्यम बनाकर मौन ही मुखर रहा, फिर दुखमोचन हाथ जोड़कर बोले—"अब मैं लीलाधर मामा को भागने नहीं दूंगा···भागकर वह जायेंगे कहाँ !"

दुखमोचन सोने के लिए बाहर निकल आये।

दालान के बिना छप्परवाले खुले बरामदे में एक तरफ चरवाहा सो रहा था, दूसरी तरफ चारपाई पर दुखमोचन का बिस्तर बिछा था।

बरबाद बस्ती का उलंग कंकाल चाँदनी में और भी बीभत्स, और भी भयानक लग रहा था। बिना भीत के जले घरों के नंग-धड़ंग खम्भे पुरानी नावों के बदरंग मस्तूलो की तरह चाँदनी के दूधिया समुद्र में इस वक्त बेशरमी से इतरा रहे थे।

बारह

पास-पडोस के देहातों ने बाँस-काठ-फूस-अनाज और श्रम-शक्ति द्वारा टभका-कोइली के दुर्दशाग्रस्त लोगों की खुलकर सहायता की। दो विधायक महोदय अग्निकाण्ड से होनेवाली बरबादियाँ अपनी आँखों से देख गये थे। अलग-अलग पार्टी से सम्पर्कित रहने के कारण सहायता के लिए अखबारो मे उनकी अपीलें अलग-अलग निकली थी। जिलाधीश और अंचलाधिकारी अपील निकलने से पहले ही दो हजार और दो सौ रुपये मदद के तौर पर दुखमोचन के हवाले कर चुके थे। अब पिपरा बाजार, दरभंगा और सीतामढ़ी के व्यापारियों ने ढाई हजार नकद रकम, दो सौ मन अनाज, पन्द्रह थान कपड़ा, लोहे के दस सेर कील-काँटे आदि काफी सामग्री भेजी।

दुखमोचन ने पुनर्निर्माण के सिलसिले में सबसे पहला काम यह किया कि गाँव के दक्षिण, देवी-मन्दिर के नजदीक सहायता-शिविर के लिए आठ-दस झोंपड़ियाँ एक कतार में खड़ी करवायी। सिमरौन, पुनई चक, लखनौली आदि गांवों के साठ जवान बिना मजदूरी के ही काम पर डटे थे। सोलह-सोलह, अठारह-अठारह घण्टे की दैनिक ड्यूटी थी। दो जून का खाना, तमाखू, सुपारी और बीड़ी·· मनोरंजन के नाम पर हँसी-ठट्ठा, चुटकुले, कहानियाँ, आपबीती की दास्तान·· सनीचर और मंगलवार की रात को ढाई-तीन घण्टे के लिए कीर्तन के नाम पर गाना-बजाना···हारमोनियम, मृदंग और मजीरा···फिर काम, काम और काम।

कपिल का काम कोषाध्यक्ष का था। माया खिलाने-पिलाने की ड्यूटी पर थी। मधुकान्त और वेणीमाधव घूम-घूमकर सहायता के लिए फेहरिस्त तैयार कर चुके थे। नित्याबाबू, त्रिजुगीनारायण चौधरी, राम रखराय और पुलकितदास-जैसे सम्पदावालों के नाम जान-बूझकर ही नहीं लिखे गये थे। गरीब किसानों और खेत-मजदूरों की तरफ ज्यादा ध्यान दिया गया था। मास्टर टेकनाथ और रामसागर-जैसे छोटी हैसियतवालों को सहायता-पात्रों की दूसरी श्रेणी में रखा गया था। तीसरी श्रेणी में उनके नाम थे जिनको मदद की आंशिक आवश्यकता थी। इनमें रमाकान्त, रामकुमार और वेणीमाधव-जैसों के नाम थे। लोगों ने काफी जोर डाला कि इस कोटि में सुखदेव का भी नाम लिखा जाये, मगर दुखमोचन राजी नहीं हुए।

अपने परिवार को सहायता पहुँचाने के बारे में दुखमोचन ने इतना जरूर किया कि कामचलाऊ दालान और अन्दर हवेली के नाम पर दो मामूली घर अग्निकाण्ड के बाद सप्ताह में तैयार करवा लिए। बाँस-लकड़ी-फूस आदि सारी सामग्री खुद की थी ही, श्रम पड़ोसी देहात के स्वयंसेवकों का था।

सुखदेव बेहद नाराज थे कि सहायता की सामग्री की रकम, जो दूसरे परिवारों को सहज प्राप्य थी, दुखमोचन ने क्यों नहीं ली। मामी लेकिन असलियत को ताड़ गयी थीं। सुखदेव की नाराजगी समर्थन न पाकर उदासी में बदल चुकी थी। लीलाधर को समझा-बुझाकर ठीक कर लिया गया था कि अगले छह महीने वह अन्यत्र कहीं नहीं जायेंगे और जोगेन्द्र तथा अपर्णा को संस्कृत-हिन्दी-मैथिली पढ़ायेंगे।

दालान पर सवेरे अच्छा रंग जमता था। एक तरफ पण्डित सुखदेव अपने शालिग्राम-नर्मदेश्वर-सहित पूजा-पाठ में जुटे होते और दूसरी तरफ रक्ताम्बरधारी सिद्ध लीलाधर काले कम्बल की आसनी पर वज्रासन लगाये और पीले रंग की रेशमी गोमुखी के अन्दर दाहिना हाथ डाले देवी उग्रतारा का बीज-मन्त्र जपने में घण्टों डटे रहते। लोग कहते—"न गाँव में आग लगती न हमें सिद्धजी का दर्शन होता।"

किन्तु अब लीलाधर ने लम्बी दाढ़ी और बाल कटवा लिए थे। साधारण नेपाली वज्राचार्य की तरह लग रहे थे। दमकता हुआ लाल चेहरा···कपार पर गाढ़े सिन्दूर का अँगूठा जितना टीका···गले में तुलसी और मूँगे की माला··· आकृति बड़ी ही भव्य लगती थी। मामी उन्हें बीच-बीच में झाँक जातीं।

रामनवमी के दो दिन बाकी थे। प्रसाद के लिए आटा पिसवाना था। मामी गेहूँ पछोर रही थीं। बाहर सुखदेव और लीलाधर मानो पूजा-प्रतियोगिता में आमने-सामने डटे थे।

माया ने मुसकाते-मुसकाते अन्दर हवेली में पैर रखा। मामी ने उसकी तरफ

देख लिया। जवाबी मुसकान से उनका चेहरा चमक उठा, फिर बोलीं—"क्या बात है, माया? पके दाड़िम की तरह फूटी पड़ती हो, मगर बोलती नहीं हो कुछ भी !"

माया खिलखिलाकर हँस पड़ी, क्षण-भर बाद कहा—"बाहर दालान में दो ऋषि आमने-सामने बैठे हैं, कितना अच्छा लगता है मामी! उठो, जरा चलकर देखो मामी···"

माया ने मामी का हाथ पकड़ लिया। हँसते-हँसते उन्होंने हाथ छुड़ा लिया, बोली—"चल, हट! बता, किस काम से आयी है?"

भौंहें नचाकर कृत्रिम क्रोध के स्वर में माया ने कहा—"तो तुमने देख लिया होगा, मामी! हाँ, जरूर देखा होगा···"

मामी मुसकाती रही और अपना काम करती रही।

कुछ रुककर माया ने कहा—"तुम्हारे यहाँ दाल परोसने का बड़ा डब्बू होगा, भइया ने कहा था। सोचा, ले आऊँ···कलछी से नहीं परसाना है, मामी! जल्दी निकाल दो···"

"सास से क्यों नहीं माँग लायी?"

"होता तो ले आती, मामी!"

"भारी कंजूस हैं तेरी ससुरालवाले, अच्छा-सा एक डब्बू खरीदकर रखेंगे सो नहीं होता···"

"और चाहे जो कुछ हो मामी, कंजूस नहीं हैं वे लोग। दो सौ बाँस, दस पेड़ सीसम के और तून के चार पेड़ कटवाकर दूसरे किसने दिये हैं, बता सकती हो? अभी और दे रहे थे, लेकिन दुखमोचन भैया ने खुद ही मना कर दिया। कहा कि फिर से बस्ती बनाने का यह जग्ग किसी एक के सरबसदान से थोड़े सँभलेगा, इसमें सभी को अपनी-अपनी आहुति देने दो···दूसरों के लिए तभी से भइया ने शर्त लगा दी कि पचास बाँसों से अधिक की सहायता स्वीकार नहीं की जायेगी···"

मामी के जी में आया कि मजाक-मखौल करे, कहें कि अपने मुँह ससुरालवालों की विरुदावली बखान रही है, कलजुग की छोकरी कहकर ताना मारने की तबियत हुई···लेकिन एकाएक मामी की बुद्धि ने पलटा खाया। विवेक ने कहा कि माया शेखी नहीं बघार रही है, संजीदा ढंग से सही बात कह रही है···पिछले दो हफ्तों से दुखमोचन और उनके साथियों के हाथ बँटा रही है। वेणीमाधव या कपिल से रत्ती-भर भी कम मेहनत नहीं की है इस लड़की ने···

मामी के हाथ रुक गये। गेहूँवाला सूप एक तरफ रख दिया। हाथ झाड़ती-पोंछती उठ खड़ी हुईं।

माया के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"हाय! अपने बालों का क्या हाल कर रखा है पगली ने! बैठ, चटपट मैं तेरे बाल सँवार देती हूँ।"

माया खिलखिला पड़ी, निषेध की मुद्रा में हाथ हिलाकर बोली—"ना मामी, अभी दम मारने की भी फुरसत नहीं है। यह सब खटराग रहने दो अभी। चलो, डब्बू निकाल दो सन्दूक में से···"

"हे भगवान् कैसा उतावलापन है !"

"भगवान् नहीं, डब्बू ! डब्बू चाहिए मामी, दाल परोसने के लिए··· समझीं !"

"हाँ समझी, सब समझी," हाथ से कपार पीटकर मामी ने कहा और पीतल का डब्बू निकाल लायीं।

अगले ही पल डब्बू लेकर माया सहायता-शिविर में वापस आ गयी। सुग्गी बूआ, रामसागर की स्त्री और मधुकान्त की माँ रसोई के मोरचे पर डटी थीं। दूकान से माया जीरा और लाल मिर्च लेती आयी थी।

माया की आवाज सुनायी पड़ी तो कपिल ने उसे बुलाया। पास आयी तो पूछा—"रास्ते में कहीं दुखमोचन भइया तो नहीं मिले ?"

"नहीं तो ! आये थे क्या ?"

"अभी-अभी गये हैं, स्वयंसेवकों के खाना खाते वक्त आज वह मौजूद रहेंगे, माया !"

"यह तो मैं चाहती ही थी···कोई नयी बात ?"

"नयी बात ?···"

कपिल को हँसी आ गयी। हँसते-हँसते कहा—"अब नित्याबाबू भी बिना मजदूरी के ही मकानों की तैयारी के सपने देखने लगे है, माया !"

"घोर स्वार्थी है बुड्ढा !" माया बोली। नाक और भौहें सिकुड़ गयी। एक क्षण के बाद कहा—"एक भी स्वयंसेवक उसके यहाँ काम करने गया तो कैम्प छोड़कर चली जाऊँगी मैं ! तुम दुखमोचन भइया से साफ-साफ बतला देना।"

"हाँ, नित्याबाबू की बुढभस का कोई कहाँ तक साथ दे ?"

"तुम इसे बुढ़भस कहते हो ? अरे, यह तो साफ बदनीयत है भाई !"

"नित्याबाबू दुनिया-भर को धोखे में डाल सकते हैं, मगर हमारे दुखमोचन भइया पर उनका जाल-फरेब नहीं चलेगा, माया !"

"यह तो मैं खूब अच्छी तरह समझ रही हूँ, कपिल !"

सुग्गी बूआ ने रसोईवाली झोंपड़ी से पुकारा तो माया उधर चली गयी।

कहावत है, जले गाँव पर सूरज भी जलता है। दोपहरी अभी हुई नहीं थी, लेकिन धूप कई गुना तेज लग रही थी। हवा चलने पर राख मिली धूल की होली इन दिनों यहाँ कंकाल का शृंगार-जैसी लगती थी। उसके लिए लोगों के मुँह से गालियाँ ही निकलतीं !

कुछ देर बाद रक्षा-समितिवाले जवान और स्वयंसेवक खाना खाने आये।

पुरइन के पत्ते पर मोटे चावल का भात, खेसारी की दाल, आलू का भुरता, इमली की चटनी···तीस-तीस की दो कतारों में बैठकर उन्होंने खाना खाया, डकार लेते हुए पत्तलें समेट लीं और उठ गये।

दुखमोचन ने अपने हाथों से एक-एक टूक सुपारी का टुकड़ा सबको दिया और हुलसी आँखों से एक-एक नजर देख भी लिया।

देवी मन्दिर से दक्षिण पोखर था। पोखर के दक्षिण मुहार पर कलमी आमों का घना बाग था। बाग के किनारे-किनारे ऊँचे बाड़े थे, जिन पर तरुण सीसम की चौकोर पाँतें लहरा रही थीं। लगता था कि नीलिमा के चारों तरफ हरियाली पाढ़ बनकर जमी हुई है।

यह पोखर और बाग नित्याबाबू की जायदाद थे। सहसौला बाजारवाली कच्ची सड़क इस पोखर और बाग को छूती हुई दक्षिण की ओर निकल गयी थी। गरमियों के छायार्थी पथिक बाग के अन्दर घडी-आधी घड़ी सुस्ता लेते थे।

खाना खाकर घण्टा-आधा घण्टा स्वयंसेवकों का भी आराम कर लेने का दस्तूर था, आज भी वही हुआ।

दुखमोचन थोडी देर मुग्गी बूआ, माया और कपिल आदि से बातें करते रहे। फिर खाना खाने के लिए घर आ गये। आजकल गाँव का नक्शा, स्केल और जरीब हमेशा साथ रहते थे। मामी ने देखते ही कहा—"बबुअन, तुम तो अमीन हो गये! आठों पहर नक्शा-जरीब ढोने की क्या जरूरत आ पड़ी है, समझ नहीं पाती हूँ मैं!"

सामने खाना आ चुका था। भूख कड़ाके की लगी थी। जल्दी-जल्दी चार-छह कौर भात खाकर दुखमोचन ने कहा—"दिन-भर मेरे साथ कभी घूम आओ तो सारी बात समझ में आ जायेगी, मामी!···"

"लीलाधर मामा खा चुके थे?···आज उन्हें साथ ले जाऊँगा···अब वही तुम्हें नक्शा और जरीब का महातम बतलायेंगे आकर!"

दुखमोचन इतमीनान से खाना खाते रहे और मामी पास बैठकर पंखा झलती रहीं। चुप थी कि बबुअन को भी बोलना पड़ेगा और खाना खाने में देर होगी, तो पीछे वही नाराज न हो जायें···

सामने आकर वही काला कुत्ता बैठ गया, करिया। गरदन से नीचे आधी पीठ पर उसके बाल झुलस गये थे।

खाना करीब-करीब खत्म हो चुका था। मामी दही ले आयीं, ऊपर से मुट्ठी-भर भात और। दुखमोचन की नजर बार-बार कुत्ते की तरफ जा रही थी। मामी ने कहा—"रोज कपूर और रेंडी का तेल इसकी पीठ पर मलती हूँ, मगर बाल जम नहीं रहे हैं, बबुअन! आग लगने के तीन दिन बाद राख की ढेरी पर कलमुँहा पीठ खजलाने गया था···अन्दर आग थी, बाल झुलस गये।"

डकार लेते हुए दुखमोचन ने पूछा—"किसने बतलाया ?"

"चरवाहे ने।"

"मुझे तो कुछ और ही शक होता है···आवारा छोकरों ने आगवाली गर्म राख की ढेरी पर बेचारे को पटक दिया होगा···लेकिन तुम घबराओ नहीं, चार-छह महीने में बाल उग आयेंगे।"

आँचल फैलाकर मामी ने ऊपर सूरज की ओर देखा और प्रार्थना के विगलित स्वर में बोलीं—"दुहाई दीनानाथ दिनकर की ! करिया की पीठ पर बाल जरूर उगा देना दयानिधान। छठ की अरघ के अवसर पर प्रतिवर्ष मैं आपको इस कुत्ते की तरफ से पकवानों की एक डाली नवेद चढ़ाऊँगी, हे सूर्य भगवान् !"

दुखमोचन को हँसी तो आयी, लेकिन उसे उन्होंने होठों के अन्दर ही घोंट लिया। कुत्ते के प्रति करुणा के जो भाव मामी के हृदय में हिलोरें ले रहे थे, उनका खयाल आते ही दुखमोचन के चेहरे पर संजीदगी छा गयी। दिल ने कहा—'अपनी इस अनोखी मामी पर तुझे अपना सर्वस्व निछावर कर देना चाहिए, दुखमोचन !"

खाना खा ही चुके थे। उठकर हाथ-मुँह धो आये। अपर्णा ने पान लगाकर दिया। जाते-जाते सचमुच ही लीलाधर को साथ लेते गये, तो यह मामी को अच्छा ही लगा।

पिछले दो दिनों से दुसाधों और जुलाहों के पुरवे तैयार हो रहे थे। दस दस स्वयंसेवकों के छह जत्थे अलग-अलग काम कर रहे थे। दो जत्थे ब्राह्मणों और कायस्थों के घर तैयार कर रहे थे, बाकी चार जत्थे गरीब किसानों—खेत-मजदूरों वाली बहुसंख्यक जनता के मुहल्लों में मुस्तैद थे।

पहले बस्ती का कोई क्रम नहीं था। घर-पर-घर, मकान-पर-मकान। न रास्ते का ठिकाना, न नाली-मोरी का निकास। एक का दालान, दूसरे का पिछवाड़ा, तीसरे का बथान, चौथे का बाड़ा···सभी आमने-सामने हुआ करते थे। जिसको जैसा सुभीता नजर आया, अपनी छप्पर-छानी डालता गया और ओलती-पलानी फैलाता गया।

दुखमोचन कई रोज तक सोचते रहे। सामने बस्ती का पुराना और बेडौल नक्शा था। बाढ़ का पानी हटने पर कछारों में चिकनी या बालूवाली पाँक की जो परतें फैली रह जाती हैं, लकीरों के ऐसे ही कुछ बेतरतीब नक्शे उन पर भी उभर आते हैं···लेकिन सदियों पुरानी अपनी निवास-भूमि के नक्शे में फेर-फार गाँव का भला कौन बाशिन्दा कबूल करेगा ? दूसरों का तो छोड़ दीजिए, खुद अपने भाई सुखदेव पण्डित की ही नब्ज डूबने लगेगी···नयी बस्ती का नया ढाँचा नयी जमीन पर ही तैयार होगा। यहाँ नवनिर्माण नहीं, पुनर्निर्माण करना है। पुराने नक्शे में मामूली हेर-फेर ही सम्भव होगा···

फिर भी निकास के रास्तों, गलियों और मोरियों के बारे में दुखमोचन

बराबर मुस्तैद रहे। बहुत सारी जगहों पर लोगों ने रास्ते की जमीन हड़प ली थी और अब अपनी नकली सीमा पर अड़ जाते थे। ऐसे लोगों को कदम-कदम पर नक्शा फैलाकर और जरीब से जमीन नाप-नापकर समझाना पड़ता था।

हरखू धान की फसल के दिनों में दो महीने के लिए घर आया था; माघ की पूरनमासी के अगले रोज ही फारबिसगंज लौट गया था। छोटे-छोटे दो घर थे, बकरी और बाछी के लिए अलग एक पलानी थी। कायदे के मुताबिक फिलहाल एक घर तैयार कर देना था। दोपहर के बाद लौटने पर एक जत्था हरखू की माँ से बताकर कामों में भिड़ गया।

लीलाधर को साथ लिये हुए दुखमोचन आये। पीछे-पीछे मास्टर टेकनाथ भी आ पहुँचा।

दुखमोचन ने नक्शा फैलाकर और जरीब से जमीन नापकर देखा। रास्ता ठीक अपनी जगह पर निकल आया। खुशी से चेहरा खिल उठा।

मैली साड़ी का जो हिस्सा माथे को ढके हुए था, उसे नीचे नाक तक खींचकर हरखू की घरवाली आगे बढ़ आयी, झुलसे धुआँखे कुटले की ओट लेकर खड़ी हो गयी। पास ही दस-ग्यारह साल की साँवली लड़की थी। लड़की के ही माध्यम से फुसफुसाकर बोली—"हमारी ही भूल-चूक से आग भड़की और समूचा गाँव जलकर खाक हो गया मालिक! हम तो मुँह दिखाने लायक नहीं रहे, हुजूर!···"

आगे एक शब्द भी नहीं निकला, लेकिन आड़ रहने पर भी सुननेवाला समझ गया कि कहनेवाली की आँखें डबडबा आयी हैं और होंठ परिताप का आवेग पचा नहीं पा रहे हैं, बुरी तरह फड़क रहे हैं·· क्षणभर के लिए दुखमोचन स्तम्भित रह गये। बातचीत की सुविधा के लिए उन्होंने छोकरी से नाम पूछा तो शरमाकर वह बोली—"टुनिया।"

दुखमोचन बोले—"सुनती हो टुनिया की अम्मा, इस गाँव में आग यह पहली ही बार नहीं लगी थी। कुछ कसूर था मौसम का, कुछ पछिया हवा का, कुछ फूस का, कुछ तुम्हारा और कुछ हमारा·· इसमें किसी एक का कसूर नहीं था, टुनिया की अम्मा! होनी थी सो होकर रही, अब नाहक पछता रही हो!··· हरखू ने इधर रुपये-उपये कुछ भेजे हैं कि नहीं?"

टुनिया की माँ का सिर 'हाँ' की मुद्रा में हिला, तो दुखमोचन कहने लगे—"अभी तो हर परिवार के लिए एक-एक घर ही तैयार करवा रहे हैं। सभी को जल्दी थी, बाल-बच्चे खुले आसमान के नीचे आखिर कब तक धूप-ओस झेलते रहते? पीछे और भी मदद मिलेगी, टुनिया की अम्मा! दवा-दारू की जरूरत आ पड़े तो टुनिया को मेरे पास भेजना···"

हरखू की औरत बीच में माथा हिलाती रही।

लीलाधर स्वयंसेवकों के लिए सुरती तैयार कर रहे थे। मास्टर टेकनाथ

गड़े हुए खम्भों के सिरे पर डोरी तानकर उसके समानान्तर की जाँच कर रहा था। दुखमोचन की बात खत्म हुई, तो टप्-से बोला—"बुढ़िया नहीं दिखायी पड़ी···आग लगाकर जमालो दूर खड़ी !"

सभी हँसने लगे, लेकिन दुखमोचन का चेहरा गम्भीर रहा। हँसी का फव्वारा थमा, तो उन्होंने टेकनाथ की तरफ हाथ बढ़ाकर कहा—"जीभ को काबू में रखना सीखो, मास्टर !"

सभी चुप थे। मास्टर की निगाहें नीचे की ओर थीं।

थोड़ी देर बाद वह आहिस्ता-से बोला—"नित्याबाबू ने तुम्हें आज शाम को बुलाया है, दुखमोचन !"

"फुरसत मिली तो जाऊँगा," आरी चलाते हुए दुखमोचन ने कहा। ठट्टर खड़ी की जा चुकी थी, वह उसमें एक खिड़की निकाल रहे थे। इस्पात की बनी हुई छोटी-सी वह आरी बाँस की बातियों से तैयार की गयी थी। ठट्टर को सर्र-सर्र काटती जा रही थी।

लीलाधर लोगों को नमदा-किनारे के अपने तजुरबे सुना रहे थे। दुखमोचन ने कहा—"मामा, आप तो बहुत घूमे-फिरे हैं, पढ़े-लिखे भी काफी हैं ! हमारे बहादुरों को रोज इसी तरह कुछ-कुछ सुनाया कीजिए।"

"हाँ मामा, मैं भी सुना करूँगा," टेकनाथ ने बरेरी छीलते हुए कहा।

इस प्रकार हथरस और बतरस दोनों का योग पाकर शाम तक हुरखू का एक घर खड़ा हो गया।

तेरह

फसल इस बार रबी की अच्छी हुई थी और आम भी खूब फरे थे। गाँव के अन्दर आमों के जितने भी पेड़ थे, टिकोलों के साथ-साथ उनके पत्ते और टहनियाँ तक झुलस गयी थीं। लेकिन अमराइयाँ और कलम-बाग गाँव के बाहर थे। उन तक आँच नहीं पहुँच पायी, वे बच गये थे।

मध्यवर्ग और ऊपरी तबके के परिवारों के लिए आमों की फसल कोई मामूली फसल नहीं हुआ करती। खूब फरे हों और आँधी-पानी से बरबाद न हो गये हों तो आमों का दो-ढाई महीने का यह मौसम साल-भर की तन्दुरुस्ती बना लेने का अचूक अरसा होता है।

जेठ की पूर्णिमा के पाँच-सात रोज बाकी थे। बम्बइया और रोहिणियाँ आम पकने-टपकने लगे थे। लगता था कि समूचा गाँव बागों और अमराइयों में आ डटा है···गीत, खिलखिलाहट, ठहाके, शोर-पुकार, बातचीत, बन्दरों को खदेड़ने की ललकारें और बीच-बीच में हवा की हल्की सिहकी से पके आमों का टपकना··· और इन विलक्षण ध्वनियों की पृष्ठभूमि के तौर पर झींगुरों की झंकार—अविराम और एकरस।

दुखमोचन की यह अमराई नयी नहीं थी, खानदान की पुरानी अमराई थी। मोटे-पतले पचास-साठ पेड़ थे। किनारे-किनारे जामुन और महुआ की कतार थी। इर्द-गिर्द वेणीमाधव, मधुकान्त, राजकुमार आदि की अमराइयाँ थीं। जरा हटकर नित्याबाबू और चौधरी लोगों के अमराइयों के टोक थे।

सुखदेव ने वैशाख के आरम्भ में ही मचान खड़ा कर लिया था। कभी खुद, कभी लीलाधर और कभी जोगेन्द्र के साथ अपनी अमराई अगोरते थे। दुखमोचन को इन कामों के लिए कतई फुरसत नहीं थी।

दिन का खाना दस बजे के करीब ही खाकर आज लीलाधर अमराई के अन्दर आये और टपके हुए तीनों आम जाबी में लेकर जोगी वापस गया। लीलाधर पढ़ने को पुराने अखबार और मैथिली का एक गल्पसंग्रह साथ लाये थे। सात-आठ वर्षों का लम्बा प्रवासी जीवन बिताकर लौटे थे, अब मिथिला की अपनी यह भूमि बेहद प्यारी लग रही थी। यह देस-कोस, यह माटी-पानी, पहली वर्षा के बाद धानों के ये अंकुर, आमों से लदी ये अमराइयाँ, घौदों में लटके पकने को आतुर जामुन, गुलाबी फल-भार से विनम्र लीची की तुनुक टहनियाँ, श्याम-सलिल पोखर, ग्रीष्म की संजीदा और बरसात की बेहूदी नदियाँ नेह-छोह की सजीव छड़ी-सी भाभी··· अमराई की घनी छाँह···

बाहर की कड़ी धूप थी, मगर अमराई के अन्दर तो मानो समूचे संसार की ठण्डक सिमट गयी थी।

लीलाधर मचान पर लेटे-लेटे देर तक त्रिकाल-विवेचन करते रहे। बीच-बीच में भाभी आकर अन्तश्चक्षु के सामने खड़ी हो जाती थीं।

काफी देर बाद उन्हें करवट बदल लेने की आवश्यकता महसूस हुई तो बदन के साथ-साथ विचार ने भी पासा पलटा। अपने और भाभी के बारे में लीलाधर ने नए सिरे से सोचना शुरू किया। संकल्पों का उदय हुआ तो विकल्प अब डूबने लगे। कुछ देर बाद वह उठ बैठे और जप की अव्यक्त उच्चारणवाली शैली में अपने-आप कहने लगे—"भाभी, भविष्य में कभी मैं तुम्हारे आदेशों की अवहेलना नहीं करूँगा। छोड़कर कभी भागूँगा नहीं, आजीवन साथ निभाऊँगा···"

कि, कहीं आम टपका !

लीलाधर ने इसे अपनी इष्ट देवता भगवती उग्रतारा की तरफ से अनुकूल

संकेत समझा। दोनों हाथ जोड़कर माथा झुका लिया और तीन बार देवी को प्रणाम किया। फिर मचान से उतरकर टपके हुए आम की टोह में टहलने लगे।

मोटी जड़ोंवाले एक भारी पेड़ की ओट में नन्ही घासों पर लाल मुँहवाला वह पीला आम पड़ा था। नजर पड़ी तो प्रसन्न होकर लीलाधर उधर लपके। उठाने को झुके ही थे कि ऊंची आवाज कानों से टकरायी—"मैं देख रहा हूँ, मामा ! अजी, इसे मेरे लिए छोड़ दिया होता···"

अचकचाकर लीलाधर ने सिर उठाया। देखा तो दुखमोचन अमराई की सीमा के अन्दर आ चुके थे।

"आओ ! आओ ! आओ !" लीलाधर हुलसकर बोले और आमवाला हाथ आगे बढ़ा दिया—"इस पर तुम्हारा ही हक है, बबुअन ! छोटे हो न तुम ?"

सामने बढ़ आए हाथ तक अपनी गरदन लम्बी करके दुखमोचन ने आम को सूँघ-भर लिया, हाथ में लेने की कोशिश नहीं की। कई बार सूँघा। तृप्ति से चेहरा चमकने लगा। थोड़ी देर बाद कहा—"कैसे यह भूमि छोड़कर इतने वर्षों तक आप बाहर रहे, मामा ?"

"बुरे ग्रहों के फेर में पड़कर।" लीलाधर धीरे-से बोले।

"अपना कसूर नहीं था ?"

"हाँ, बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी।"

"नहीं, चेतना की चाँदनी पर संशय का कुहरा छा गया था···अच्छा एक काम में लगाना चाहता हूँ आपको, मामा···मामी की भी राय है···कन्या-पाठशाला बड़ी बुरी हालत में है, उसकी आवश्यकता का भार आपको सँभालना होगा।"

लीलाधर का माथा भारी हो उठा। उन्होंने कातर नेत्रों से दुखमोचन की तरफ देखा। गम्भीर हो कहा—"आज तक जीवन में कहीं कोई जिम्मेदारी मैंने नहीं उठायी। हमेशा भागता रहा हूँ, कन्धे ढालता रहा हूँ, हमेशा ! अब यह तुम हो कि अपनी क्षमता के प्रति खोयी हुई आस्था मेरे अन्दर फिर वापस लौट आयी है···"

गला भर आया, आगे एक अक्षर भी मुँह से नहीं निकला।

दुखमोचन ने देखा, लीलाधर की आँखें सजल हो आयी हैं। उनके कन्धे पर अपनी हथेली से आश्वासन का स्निग्ध स्पर्श देते-देते वह बोले—"डाकखाने में मामी के ढाई हजार रुपये जमा हैं, उन्होंने निश्चय किया कि दो हजार कन्या-पाठशाला को दे देंगी। मामा ने महज दस रुपये मासिक वेतन पर पाँच वर्ष तक अध्यापिका बने रहने का व्रत लिया है। मकान नए सिरे से हमने बनवा ही दिया है। आप-जैसा सुघर-समझदार और अनुभवी आदमी संस्था का अधिष्ठाता होगा तो न रकम का टोटा पड़ेगा, न कार्यकर्ताओं की कमी होगी···बस, यह भार

आपको उठाना ही है, मामा !"

दुखमोचन ने उलटे बड़े भाई की गरिमा के अन्दाज में लीलाधर की पीठ थपथपायी और चुमकारा।

लीलाधर ने अँगोछे से नाक-आँख पोंछी और खँखारकर गला साफ किया, फिर पूछा—"थोड़ी देर बैठोगे नहीं, बबुअन ?"

"नहीं मामा, अभी नहीं बैठूंगा। घर जाकर खा-भर लेना है। फिर कामों में जुट जाना है। अगले पाँच-सात रोज यही हाल रहेगा। कई गाँवों की खाक छानकर आ रहा हूँ, मामा !"

दुखमोचन मुसकराए तो नाक की नोक पर तिल का निशान निखर उठा। मुसकराते-मुसकराते जाने लगे तो लीलाधर ने आम थमाते हुए कहा—"टुनू को देना, परिवार में सबसे छोटी उम्र उसी की है न !"

खाना खाकर दुखमोचन फौरन निकले।

वेणीमाधव का दालान तैयार हो चुका था। वहीं दोपहर के बाद गाँववालों की जुटान थी। अग्निकाण्ड के बाद सहायता के कामों का और जमा-खर्च आदि का लेखा-जोखा लोगों के सामने रखना था। रजिस्टर, छोटी कॉपियाँ और मामूली कागज-पत्तर लेकर कपिल पहले ही पहुँच गया था।

दुखमोचन आये तो कपिल ने रजिस्टर खोला।

कोई भी ऐसा टोला-मुहल्ला नहीं था जिसका प्रतिनिधि गैरहाजिर हो। जातियों, वर्गों और प्रमुख परिवारों का भी प्रतिनिधित्व मौजूद था। कुछ एक दिन पहले जमकर बारिश हुई थी। खेत जाग गये थे। बहुसंख्यक किसान और खेत-मजदूर मीटिंग में नहीं आ सकते थे। दुखमोचन पर उनकी अपार आस्था थी, मीटिंग के परिणामों की तरफ से इसलिए वे बेफिकर थे।

वेणीमाधव के हाथ में छोटा सरौता था। वह बारीकी से सुपारी कतर रहा था। नीचे दरी पर पड़े बटुए की नफासत लोगों का ध्यान रह-रह अपनी तरफ खींच लेती थी।

वेणीमाधव की हथेली पर से सुपारी का चुटकी-भर कतरा उठाकर दुखमोचन ने मुँह के हवाले किया और निगाहें घुमाकर जन-समुदाय के रुख का अन्दाज लिया। वही रहीम, वही लतीफ, वही बौधू चाचा। वही राजकुमार और रमाकान्त, वही परमेसर और सनीचर और गोनौड़—मधुकान्त रामसागर, टेकनाथ, जयमाधव वगैरह नजदीक ही बैठे थे—

और तब, एक बार दुखमोचन की दृष्टि नये सिरे से आबाद हो रही बस्ती के अधूरे ढाँचों की क्षणिक परिक्रमा कर आयी।

बैठे-बैठे ही वह कहने लगे—"भाइयो, घर तैयार करने की बहुत सारी सामग्री के अलावा साढ़े-सात हजार की नकद रकम अब तक हमें सहायता के तौर

पर मिल चुकी है। हर परिवार के लिए एक-एक घर जैसे-तैसे तैयार कर दिया गया। बीज के दाने बुरी तरह झुलस गये थे। हमने तीन हजार की रकम लगाकर दो सौ मन बीज के धान खरीद लिए हैं। सौ मन बीज खरीफ और रबी की फसलों का अभी लेना है, पन्द्रह सौ के लगभग इसमें भी लग जायेंगे। पाँच हजार रुपये पुनर्वास-विभाग की ओर से मिलने वाले हैं। आठ हजार की यह रकम घर को खपरैल का बनाने में खर्च हो, मै तो यही चाहता हूँ···आपकी क्या राय है ?"

थोड़ी देर तक चुप्पी छायी रही, फिर फुसफुसाहट के मिले-जुले दबे स्वर उठने लगे।

दुखमोचन ने टेकनाथ की तरफ देखकर कहा—"मास्टर, तुम्हारी क्या राय है ?"

"खपड़ों की तैयारी मे भारी झंझट होगी," टेकनाथ मुरती थूककर बोला—"बरसात सिर पर है, अभी तो होगा नही। होगा आसिन-कार्तिक के बाद···पास-पड़ोस के गाँव से बीसों कुम्हार बुलाने होंगे, हजारों मन बढ़िया मिट्टी चाहिए, फिर खपरा और नरिया के पचासों आवा लगाओ, सैकड़ों मन कण्डे और सूखी लकड़ियाँ जुटाओ···भारी झमेला है, दुखमोचन !"

टेकनाथ की यह दलील सुनकर दुखमोचन भभाकर हँस पड़े। कहा—"अपने• आपमे हमारी यह जिन्दगी ही क्या कोई मामूली झमेला है, मास्टर ? झमेले को भी तो तुमने खूब कही ! कैसा भी झंझट क्यो न हो, हर परिवार के पास एक-एक घर खपरैल से छवाया हुआ मौजूद रहेगा तो आग लगने पर इस तरह का लंका-काण्ड फिर कभी नहीं होगा। घरों का फूस से अच्छी तरह छवाना ही क्या कुछ कम खरचीला पड़ता है ?"

"तो खपरैल ही क्यों ? छतें पक्की कर दो न सबकी !"

"वह भी होगा, मास्टर ! आ रहा है जमाना—फिलहाल इतना तो हो लेने दो !"

टेकनाथ तिनके से दाँतों के खोडर खोदने लगा और जनता की जीभों को हिलने का अवसर मिला। आपस में ही बातें होने लगीं। बौधू चाचा ने लतीफ से पूछा कि खपरैल होने पर फूसवाली छप्परों का क्या होगा तो आसपास कई लोग जोर से हँस पड़े। सनीचर बोला कि कई खेतिहरों को हल बनाने की लकड़ी अब तक नही मिली। सहायता-कार्यों के प्रमुख व्यवस्थापक की हैसियत से दुखमोचन ने इस भूल के लिए लोगों से क्षमा माँगी और वचनबद्ध हुए कि चार रोज के अन्दर ही उन खेतिहरों को बने-बनाये हल मिल जाएँगे।

इसके बाद कपिल कुछ देर तक ब्योरेवार लेखा-जोखा सुनाता रहा और दस-बीस आदमी कान लगाकर सुनते रहे। बाकी लोग दो-दो, तीन-तीन या चार-छह की अलग-अलग संगतों में बैठकर घर-गिरस्ती की बातों में लग गये। फिर

आहिस्ता-आहिस्ता उठ-उठकर वे जाने भी लगे।

दुखमोचन ढाई-तीन घण्टे तक वेणीमाधव के दालान पर जमे रहे। जयमाधव ने बीच में तकिया ला दिया था। वेणीमाधव की पत्नी ने पान के बीड़े लगाकर भेजे थे।

कपिल कागज-पत्तर सँभालकर जा चुका था। दुखमोचन ने देखा, मास्टर टेकनाथ हटने का नाम नहीं ले रहा है और चेहरा भी काफी उदास है बेचारे का।

नरमी से पूछा—"क्या बात है, मास्टर ? एकाएक यह उदासी क्यों छा गयी चेहरे पर ?"

"क्या बताऊँ, दुखमोचन !" रुक-रुककर टेकनाथ बोला—"कल शाम को मेरी घरवाली का पड़ोसिन से किसी बात पर झगड़ा हुआ···"

"अजी, यह सब तो चलता ही रहता है !" वेणीमाधव बीच में ही टपक पड़ा—"घरवाली की बातें घर तक ही रहने दो, मास्टर !"

दुखमोचन ने वेणीमाधव को डाँटा—"पूरा कहने भी तो दो !···हाँ मास्टर, फिर क्या हुआ ?"

"रात का खाना बच गया। चलो, अच्छा हुआ !" वेणीमाधव से नहीं रहा गया। वह हास-परिहास के मूड में था।

टेकनाथ का चेहरा और भी फीका पड गया। दुखमोचन को वेणीमाधव की बचकानी रुझान पर अन्दर-ही-अन्दर भारी क्षोभ हुआ। भौहें तन गयीं और आँखों के कोए फैल गये।

दुखमोचन की क्षुब्ध मुखमुद्रा ने वेणीमाधव को अपनी भूल फौरन महसूस करा दी, आगे वह गम्भीर हो गया।

टेकनाथ ने नजर घुमाकर इधर-उधर देखा और कहने लगा—"पड़ोसियों और पड़ोसिनों में आपस के अदना झगड़े तो आये-दिन होते ही रहते हैं, मगर कल का मामला कुछ और था, दुखमोचन !···पड़ोसिन ने मेरी घरवाली से कहा, तेरा घरवाला बैल को भूनकर खा गया और डकार तक नहीं ली···देखती हूँ, अब कौन तुम लोगों का छुआ पानी पीता है···आखिर में 'कसायों की राँड' कहकर पड़ोसिन ने तीन बार थूक दिया। दुखमोचन, सचमुच रात का खाना वैसे ही पड़ा रहा। न मन्नो की अम्मा से खाया गया, न मुझसे खाया गया···"

टेकनाथ चुप हुआ तो लम्बी उसाँस छूटी।

थोड़ी देर तक सभी मौन थे, दालान के बाहर जेठ की ढलती धूप अब भी तेज थी, लेकिन पुरवैया ने उसकी प्रखरता को पूरी तरह पछाड़ दिया था।

दुखमोचन की आत्मा बराबर यही कहती रहती थी कि बैल जब अपने आप झुलसकर ढेर हो गया तो इसमें टेकनाक का क्या कसूर था ! लेकिन सामाजिक समाधान के लिए यह आवश्यक था कि समूचा गाँव टेकनाथ को निर्दोष मान ले।

बेहद व्यस्त रहने के कारण दुखमोचन बैल के जल मरने की इस बात पर तत्काल उचित ध्यान नहीं दे सके थे। उधर टेकनाथ दुखमोचन से अपने निर्दोष होने का आश्वासन पा ही चुका था, बेफिक्र होकर घर-गिरस्ती के कामों में लगा रहा। लेकिन पास-पडोस के लोगों में इस मामले को लेकर खुसर-फुसर चलती रही··· सीधे सामने तो पहले किसी ने कुछ कहा नहीं, पडोसिन के माध्यम से कल शाम को यह पहला ही विस्फोट हुआ था।

दालान की झुलसी दीवार पर हाल में चिकनी मिट्टी की पोची पड़ी थी। लेखा-जोखा के बाद दुखन सिर के नीचे तकिया लगाकर लेट गये थे, किन्तु अब उठकर बैठ रहे। पीठ दीवार से टिकी हुई थी।

काफी देर तक गम्भीरता मौन से लिपटी रही।

फिर एकाएक दुखमोचन दीवार का सहारा छोड़कर सीधी मुद्रा में बैठे और टेकनाथ की तरफ देखकर बोले—"तुम अभी जाओ मास्टर, शाम को मिलना।"

"कहाँ मिलूँ, दुखमोचन ?"

"मधुकान्त के दालान पर।"

टेकनाथ उठकर चला गया।

दुखमोचन और वेणीमाधव भी उठकर गाँव के दक्षिणी छोर पर पहुँचे।

खेती-गिरस्ती का मौसम आ जाने से पड़ोसी गाँवों के स्वयंसेवक और रक्षा-समितिवाले जवान पिछली अमावस के अगले रोज ही वापस जा चुके थे। शिविर-वाली झोंपड़ियाँ सूनी पड़ी थीं क्योंकि सहायता का दफ्तर अब मधुकान्त के दालान पर चला गया था।

वेणीमाधव ने कहा—"इन झोंपड़ियों का क्या करोगे ?"

दुखमोचन बोले—"बौधू चाचा अपने पुरवे में एक चौपाल खड़ी करना चाहते हैं। छठे-छमाहे कोई रैदासी भगत आ जाता है तो चमार भाइयों की भारी जुटान होती है। इन झोंपड़ियों का सामान एक चौपाल के लिए काफी होगा।"

"तो बौधू चाचा से कह क्यों नहीं दिया ?"

"भूल गया वेणीमाधव, तुम कह आना जाकर···दो-ही-एक दिन में उठा ले जायें !···अच्छा, तुमने अपने चाचा से टेकनाथ के मामले की चर्चा की थी।"

"की तो थी, लेकिन वह कुछ बोले नहीं थे, दुखमोचन ! और, दूसरी दफा मैंने कभी पूछा ही नहीं।"

"मुझ पर तो बेहद खफा होंगे ! कि नहीं ?"

"नहीं दुखमोचन, इधर काका ने कई बार तुम्हारे बारे में पूछा है···क्रोधित होने पर हमारे पण्डित काका महाकाल-महारुद्र की तरह लगते हैं, लेकिन गुस्सा हटने पर उनका दिल मक्खन का लोंदा हो जाता है। अभी तुमने काका का एक ही रुख देखा है···"

देवी-मन्दिर से कुछ हटकर पश्चिम की तरफ ललित पण्डित का कलमी आमों का छोटा-सा बगीचा था। यह उनकी खुद की रची हुई सृष्टि थी। लंगड़ा, किसुनभोग, बम्बइया, कलकतिया, जर्दालू, शाह-पसन्द, गुलाबखास, मुकुल और सीपिया आमों के कलमी पौधे छाँट-छाँटकर जाने कहाँ-कहाँ से लाये थे ! पौधों की सेवा में रात-दिन एक कर दिया था। हाता बहुत बड़ा नहीं था, दस कट्ठा भीठ जमीन थी। चारों तरफ से सीसम-महुआ-खैर आदि पेड़ों की तरुण कतारें आमों को घेरकर खड़ी थीं। बाग के बीचोबीच पक्की ईंटों का छोटा-सा कुटीर था, पक्की जगतवाला एक कुआँ भी।

दोनों जने बातचीत करते-करते बाग के अन्दर दाखिल हुए तो पण्डितजी 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' का पारायण कर रहे थे।

दोनों ने पैर छूकर पण्डितजी को प्रणाम किया। आशीर्वाद संकेत से ही मिला। अध्याय समाप्त करके उन्होंने हुलसकर दुखमोचन की तरफ देखा। क्षण-भर बाद पूछा—"आम तो अभी पकने ही लगे हैं। इक्के-दुक्के टपकते होंगे, उनसे अभी बच्चे ही अपनी जीभ की खुजलाहट मिटाते होंगे। परसों एक आम बम्बई की डाल में पका हुआ नजर आया, मैंने लग्गी से टहनी झुकाकर हाथों-हाथ तोड़ लिया। मौसम का पहला फल कल भगवान् का नैवेद्य हुआ। आज तीन आम तोड़े हैं और संयोग से तुम आ गये हो···बेटा ! अपनी सृष्टि के फल हैं, खिलाकर आत्मा को परितोष होगा।"

काका चाकू से आम छीलते रहे। वेणीमाधव को दुखमोचन ने कोहनी से छूकर उकसाया, मतलब की बात पूछने के लिए। उसने आहिस्ता से कहा—"ताऊ, टेकनाथ के बारे में आपसे मैंने कुछ पूछा था। याद है ?"

"हाँ, अच्छी तरह याद है, बच्चा !" ललित पण्डित बोले—"कमजोर, अपंग बैल खोल देने पर भी लौट आया और गली के कोने मे अनदेखे झुलसकर मर गया तो इसमें टेकनाथ का क्या दोष ?"

"मगर पड़ोसी तो उसे बैल का हत्यारा समझते हैं, ताऊजी ! एक-आध जगह इसकी चर्चा भी सुनने में आयी है···बेचारा टेकनाथ चिन्ता के मारे सूखकर काँटा हो गया है।"

पण्डित ने कहा—"पड़ोसी भी मूर्ख हैं और टेकनाथ भी मूर्ख है···"

ललित पण्डित का अनुकूल रुख पाकर दुखमोचन को खुशी हुई। भीतर की प्रसन्नता को दबाकर वह बोले—"काका, परसों है संक्रांति। टेकनाथ सत्यनारायण भगवान् की पूजा करेंगे। आपको उस समय टेकनाथ के यहाँ उपस्थित रहना है और पान-प्रसाद ग्रहण करना है।"

"अवश्य !" पण्डितजी ने बिना किसी झिझक के कहा और कटोरा दुखमोचन को थमा दिया। छीले आम के लाल कतरे थे उसमें। वेणीमाधव अपना भतीजा

था, उसे हाथ में ही थमा दिये गये ।

आम खाकर, मुँह-हाथ धोकर दोनों चले तो ताऊ बाग के बाड़े तक उन्हें छोड़ने आये। अलग होते वक्त दुखमोचन की पीठ पर हाथ रखकर बोले—"टेकनाथ से कह देना, हत्यावाली बात अपने मन से निकाल डाले···और ठाठ से सत्यनारायण भगवान् की पूजा करे, पुरोहिताई बल्कि मुझसे ही करवाये···"

"कह दूँगा, काका !" दुखमोचन बाड़े से बाहर आ गये ।

वेणीमाधव पीछे था। चलते-चलते कहा—"अगर ताऊ उलटा रुख अख्तियार करते तो मामला टेढ़ा हो जाता ।"

पीछे घूमकर दुखमोचन ने वेणीमाधव को देख लिया। फिर जमी हुई आवाज में बोले—"तो भी परसों टेकनाथ में मैं भगवान् की पूजा इसी तरह करवाता और इसी तरह समाज के दस आदमी मास्टर के हाथ से पान-प्रसाद ग्रहण करते··· पण्डित काका की मुहर लग जाने से अब इतना तो हो ही गया कि पुराने विचार के लोगों का दिल भी टेकनाथ के प्रति साफ रहेगा। यों तुम देख ही चुके हो कि माया और कपिल की शादी करवाकर बुजुर्गों की दकियानूसी को हमने किस तरह दफना दिया···"

दोनों बस्ती के भीतर आये। सूरज डूबने में थोड़ा ही विलम्ब था। नये-नये सादे-फीके घर जेठ की सादी सन्ध्या को कई गुनी अधिक सादगी में डुबो देने के लिए मानो घड़ी-आधी घड़ी पहले से ही तैयार खड़े थे ।

मामी से दो बातें करके दुखमोचन लहेरियासराय की ट्रेन पकड़ने के लिए स्टेशन की तरफ लपके। टेकनाथ से मिलने का काम वेणीमाधव को सौंपते गये ।

लीलाधर रात को खाने बैठे। सामने बैठकर मामी पंखी से हवा करती रहीं। अपनी पसन्द की नयी बिजनी आर्डर देकर उन्होंने इधर बनवा ली थी ।

अमराई में दुखमोचन से आज जो कुछ बातें हुई थीं, लीलाधर ने सब अपनी भाभी से बतला दीं तो वह बोलीं—"बड़े भागे-भागे फिरते थे तुम, अब हमारे बबुअन का फन्दा तोड़कर भागो तो समझूँ !"

दबायी हुई मुसकान भाभी की आँखों में कई गुना ज्यादा चमक बनकर जगमगा उठी, लालटेन की मद्धिम रोशनी भी देवर से इस तथ्य को छिपा नहीं पायी···लीलाधर खाते-खाते हँस पड़े। कौर चबाने में व्यस्त मसूड़ों और चालू गालों की कसरत हँसी का जोर भला कैसे सँभालती ! मुँह के कौर को जैसे-तैसे गले के नीचे धकेलकर कहा—"खाली फन्दा होता तो एक बात भी थी, मगर इसमें लासा लगा हुआ है, भाभी !"

अब की दोनों खुलकर मुसकराये। तरकारी ले आयीं मामी उठकर। बैठने की अपनी मुद्रा ठीक करके कहा—"बबुअन का अब एक ही काम जल्दी करने को रह

गया है···झण्डा झुलस गया तब से दालान का आँगन सूना लगता है। पन्द्रह अगस्त के तो अभी ढाई-तीन महीने बाकी हैं। इसी पूर्णिमा के प्रातःकाल ध्वजा गाड़ने और झण्डा फहराने का निश्चय किया है बबुअन ने। देखें, झण्डा फहराने के लिए इस बार बाहर से कौन पधारते हैं!"

लीलाधर ने डकार लेकर कहा—"शुभंकर बाबू···"

"हाँ, शायद वही पधारेंगे। बबुअन जिसको चाहेंगे, पकड़ लायेंगे।"

हुआ भी यही।

दुखमोचन संक्रान्ति की दोपहर को लौटे। शाम को टेकनाथ ने सत्यनारायण भगवान् की पूजा की और लोगों को अपने हाथ से पान-प्रसाद दिये। सब ने वहीं बैठकर उसे ग्रहण किया। ललित पण्डित की मौजूदगी का हाल मालूम करके नित्याबाबू और त्रिजुगी चौधरी-जैसे पुराने लोग भी आ गये थे।

अगले दिन पूर्णिमा थी। तीन विधायक आ पहुँचे—शुभंकर बाबू, चतुरा ठाकुर और इन्द्रशेखर सिंह। दारोगा, अंचलाधिकारी साहब, पिपरा बाजार के पाँच-सात नागरिक और पड़ोसी गाँव के पंच भी आ जुटे।

बौधू चाचा के पुरवे मे ढोल-पिपही बजानेवाले भाई सवेरे-सवेरे आकर डट गये थे। समूचा गाँव इस झण्डा-समारोह को अपना खास त्योहार समझ रहा था। छोकरे और छोकरियाँ गोल बाँधकर तमाशा देखने आये।

मौसम खेती का था। हल्की बूँदा-बाँदी के बाद बादलों ने आसमान को खाली कर दिया तो खुशी के मारे लोगों के चेहरे दमकने लगे।

लम्बा-पतला हल्का हरा ताजा-चमकीला 'चाप' बाँस दालान से बीस कदम आगे गाड़ दिया गया। पिसे चावल की गाढ़ी घोल में हथेली डुबो-डुबोकर मामी ने ध्वज-दण्ड पर पाँच-सात पंचगुरा छाप दे डाली, फिर सिन्दूर लगा दिया।

लोगों का खयाल था, दुखमोचन शुभंकर बाबू से या किन्हीं दूसरे विधायक से झण्डा फहराने का अनुरोध करेंगे। लेकिन ध्वजा के नजदीक खड़े अभ्यागतों की अगवानी में अनुनय-विनय के चार शब्द कह लेने के बाद दुखमोचन ने हाथ उठाकर सफेद बालों और चुचके गालोंवाले एक अर्धनग्न गँवई बुजुर्ग की ओर संकेत किया और बोले—"यह हमारे बौधू चाचा हैं, गाँव के सबसे बूढ़े। भाइयो, मेरी लालसा थी कि कभी बौधू चाचा को राष्ट्रीय पताका उत्तोलित करते हुए देखूँ··· आप सभी ने मुझे अपना स्नेह दिया है, मुझ में अपनी आस्था प्रकट की है। आपके ही आशीर्वादों का नतीजा है कि मेरी वह लालसा आज पूर्ण हो रही है···"

दुखमोचन खुद ही आगे बढ़े और बौधू चाचा को ध्वजा के पास ले आये।

लोगों ने आश्चर्य से देखा, बूढ़ा खादी की नयी चारगजी धोती पहने हुए है···

दुखमोचन ने उसे डोरी खींचकर झण्डा फहराने के बारे में अच्छी तरह बता दिया···

ढोल बज रहा था, पिपही बज रही थी। [लोगों की उत्सुक निगाहें ध्वजा के ऊपरी छोर पर जमी थीं कि बीघू बाबा ने खट-से डोरी खींच ली और अशोक-चक्र-शोभित तिरंगा आकाश में फहराने लगा।

जोरों से तालियाँ पीटी गयीं तो ढोल-पिपही की आवाज भी तीव्र से तीव्रतर हो उठी।

इसके बाद कन्या-पाठशाला की तीन छात्राओं ने 'वन्दे मातरम्' गाया, जिसकी कड़ियों को अधिकांश लोगों ने दोहराया।

विधायकों से दुखमोचन ने 'कुछ' कहने की प्रार्थना की तो तीनों पन्द्रह मिनट तक बोले···कपिल ने अभ्यागतों को धन्यवाद देकर समारोह के अन्त की घोषणा की।

□

रतिनाथ की चाची

एक

चैत का महीना था और शाम का वक्त। बीच आँगन में टोला-पडोस की औरतें जमा थीं। सभी किसी-न-किसी बातचीत में मशगूल थीं। दो-एक की गोद में बच्चा भी था। दो-एक जनेऊ का धागा तैयार करने के लिए तकली लिये आई थीं। उनकी तकलियाँ किर्र-किर्र करके काँसे के कटोरों में नाच रही थीं और पूनी से खिंचकर सर्र-सर्र निकलता जा रहा था सूत।

एक ही थी जो बेकार और चुप बैठी थी। चेहरे पर विषाद की काली छाया मँडरा रही थी। वह न तकली ही कात रही थी, न गोद में उसके कोई बच्चा ही था। बाकी औरतें रह-रहकर उसकी ओर अजीब निगाहों से देख रही थीं।

इसी बीच थोड़ी देर बाद दम्मो फूफी आ पहुँचीं। अदालत में मुजरिम हाजिर हो, वकील-मुख्तार, गवाह सभी मौजूद हों, फिर भी अगर जज ने किसी कारण से देर कर दी तो क्या होता है? दम्मो फूफी के बिना यही हाल था इस महिला-परिषद् का।

फूफी को आग्रहपूर्वक आसन पर बैठाया गया। गोरा और छरहरा बदन, गोल-मटोल चेहरा। नन्हे-नन्हे से पतले होंठ। गंगा-जमनी बाल। कानों में सोने के छोटे-छोटे मगर लटक रहे थे। शांतीपुरी धोती पहने हुए थीं। गले में बारीक रुद्राक्षों की माला शिवभक्ति की सबूत थी या शौक की, कहा नहीं जा सकता। अंटी में से चाँदी की सुन्दर डिबिया निकालती हुई वे बोलीं—"आज गर्मी मालूम देती है, कहीं तूफान आया तो आम की फसल चौपट हो जाएगी।" नस निकालकर चुटकी से नाक के पूड़ों में उसे भरते हुए फूफी ने फिर कहा—"गुज्जी बिटिया, हमारे यहाँ से जरा पंखा तो लेती आ।"

गंजेसरी ने पंखा ला दिया।

इतने में रूपरानी का बच्चा रो पड़ा, न जाने किधर से सब की नजर बचाकर एक लाल चींटा आया और बच्चे को काट लिया। बाएँ पैर का अँगूठा धरती से छू रहा था। बच्चे की चीख बढ़ती ही गई। दम्मो फूफी ने कहा—"जाओ रूपरानी, लोहा छुआ दो। जलन जाती रहेगी।"

अपने बच्चे को लेकर रूपरानी जब चली गई तो फूफी ने एक बार और सुघनी सुड़की।

सभी की दृष्टि, सभी का ध्यान फूफी पर केन्द्रित था। एक ही थी जो विषाद और जडता की प्रतिमा बनी बैठी थी। अब दम्मो फूफी ने अच्छी तरह आँख फाड़-कर उस पाषाणी की ओर देखा। उसके बाद सभी को अपनी निगाह के दायरे में समेटती हुई बोलीं—"उमानाथ की माँ, कब तक चुप रहेगी? कुछ न कुछ तो इसे कहना ही पड़ेगा। समूचे गाँव में इसी बात की चर्चा है। आखिर जो होना था, वह होकर ही रहा। विधना के विधान को भला हम-तुम टाल सकते है? यह बेचारी···"

इतना कहकर अपने सुन्दर और कोमल हाथ से फूफी ने उस विषादमयी प्रतिमा की ओर संकेत किया। सुननेवाली औरतों ने साँस खींचकर अपने कानों को मानो और भी साफ कर लिया। फूफी बोलती गईं—"वैद्यनाथ के मरने के बाद कितनी कठिनाई से उमानाथ को पाल-पोसकर इतना बडा कर पाई है, यह तुम में से बहुतों को मालूम नहीं होगा। भगवान करें, उमानाथ अपने बाप का नाम रखे।"

सहानुभूति के ये शब्द सुनकर उमानाथ की माँ की आँखें छलछला आईं और ऐसा लगा कि पाषाणी प्रतिमा में फिर से प्राणों की प्रतिष्ठा हो गई है। उसने कृतज्ञ आँखों से दमयन्ती (दम्मो फूफी) को देखा और सिर नीचा कर लिया। शिकार को गिरफ्त में करके बाघिन को जितना संतोष होता है, इस समय फूफी के भी संतोष की वही मात्रा थी। बेचारी उमानाथ की माँ को क्या पता कि इस सहानुभूति के पीछे एक डायन का निठुर अट्टहास छिपा पड़ा है! बेचारी को जयनाथ याद आया, जो आज चार महीनों से लापता है।

फूफी ने सुँघनी सुड़कते हुए कहा—"कोई चिन्ता नहीं, सारा इंतजाम हमने कर लिया है। परसों इस समय तक यह बोझ तुम्हारे सिर से उतर जाएगा। उमानाथ की माँ, रत्ती-भर भी फिकर मत करो।"

कृतज्ञता के मारे उमानाथ की माँ का जी करता था कि दमयन्ती के पैरों पर अपना सिर रख दे और सुबुक-सुबुककर कुछ देर रो ले। यह चतुर बुढ़िया उस बेचारी को ममता का अवतार प्रतीत हो रही थी। वह विधवा है, अकिंचन है। उसे गर्भ रह गया है। कहीं वह मुँह दिखाने के काबिल नहीं रही। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी सभी गुपचुप उमानाथ की माँ के इस महान् कलंक का मानो कीर्तन कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि दम्मो फूफी जैसी संभ्रान्त वृद्धा उसे सान्त्वना देने आई हैं तो इससे बढ़कर व्यावहारिक मानवता भला और क्या होगी? मगर वहाँ तो बीसियों बैठी थीं, दम्मो फूफी अकेले रहतीं तब न! उमानाथ की माँ को साहस नहीं हुआ कि फूफी के पैरों पड़ जाए। लज्जा भी निगोड़ी कैसी होती है कि उसका

आँचल घोर से घोर पापी के लिए सुलभ है !

स्वर को अधिक से अधिक कोमल करके फूफी ने कहा—"अच्छा, कौन था वह कलमुँहा उमानाथ की माँ, जिसने तुम्हें आग में यों झोंक दिया ?"

इस असंभावित प्रश्न से बेचारी के रोम-रोम काँप उठे, समूचे शरीर का लहू पानी-पानी हो गया। विकराल मुँह वाली राक्षसी याद आई, जिसकी कहानियाँ वह बचपन में अपने नाना से सुना करती थी। दमयन्ती का वह सौम्य रूप उमानाथ की माँ के लिए अब मिटता जा रहा था। उसकी जगह कहानी की विकरालवदना वही राक्षसी नजर आने लगी। अभागिनी का हृदय केले के पत्ते की तरह काँपने लगा।

तो क्या, जयनाथ का नाम वह बता देगी ? नहीं, कभी नहीं। उसने कहा—"पता नहीं, मैं कैसे बताऊँ ?"

"हूँ !" दमयन्ती ने गौर से उमानाथ की माँ की ओर देखा और पंखे की बेंट से पीठ खुजलाते हुए मुस्कुराना शुरू किया। फूफी की इस लम्बी मुस्कान का और स्त्रियों ने हँसकर समर्थन किया। परन्तु इस मुस्कान और इस हँसी के पीछे उमानाथ की माँ को उछलता-कूदता काला पहाड़ स्पष्ट दिखाई पड़ा जो कि आहिस्ते-आहिस्ते उसी की ओर बढ़ा आ रहा था। ये लोग मानेंगे नहीं, कुछ न कुछ कहना ही पड़ेगा। क्या कहा जाय, क्या नहीं— वह बेचारी देर तक इसी गुन-धुन में पड़ी रही।

फूफी ने बदले हुए स्वर में पूछा—"तो तुम इस बारे में कुछ नहीं जानतीं ?"

उमानाथ की माँ नाखून से नाखून खोंट रही थी। आँगन के एक कोने में रतिनाथ बैठा था। महज ग्यारह वर्ष की उम्र होने के कारण ही वह स्त्रियों के इस गुप्त अधिवेशन में शामिल हो सका था। इस सवाल से उस लड़के का दिल धड़क रहा था कि कहीं उसी के बाप का नाम न चाची के मुँह से निकल आवे ! चार मास से रत्ती का बाप—जयनाथ लापता है।

इस मातृहीन बालक का अपनी चाची के प्रति बहुत ही गहरा स्नेह था। चाची भी रत्ती को खूब मानती थी। पिछले चार मास में यह स्नेह और भी गाढ़ा हो उठा था। चारों ओर से लांछित, चारों ओर से तिरस्कृत होकर उमानाथ की माँ जब भूखे पेट ही सो जाना चाहती तो रतिनाथ सत्याग्रह कर देता—"ऐसी क्या बात है चाची कि तुमने खाना-पीना छोड़ रखा है ? अच्छा, नहीं खाना है न खाओ, मगर कल मैं भी नहीं खाऊँगा, नहीं खाऊँगा, नहीं खाऊँगा।" इतना कहकर वह चाची की पीठ से सटकर बैठ जाता और उसके रूखे बालों में अपनी नन्ही-नन्ही उँगलियाँ उलझाने लगता। चाची की देह सिहर उठती। वह उठ बैठती और दो-चार कौर भात खा लेती। एक दिन पड़ोस की एक लड़की ने रतिनाथ से कहा था—"तेरी चाची को, रत्ती, बच्चा होने वाला है।" उसने कसकर छोकरी

को एक तमाचा लगा दिया...बेचारे को कुछ पता नहीं कि आखिर क्या बात है। एक दिन दूर की किसी भाभी ने खुलासा कहा—"लाला, तुम्हारी चाची की अगर दूसरी शादी हो गई होती तो ठीक था।" इस पर रतिनाथ ने उस भाभी को फटकारते हुए बतलाया था कि पंडित की लड़की होकर तुम ऐसी बातें करती हो। दूसरी-तीसरी शादी क्या कभी किसी विधवा या सधवा ब्राह्मणी ने की है?

"अच्छा भई," फूफी ने उठते हुए कहा—"अँधेरा हो गया, मुझे तो शिवजी के दर्शन करने नित्य इस समय भी मन्दिर जाना होता है। तुम्हारी मर्जी! लेकिन पांच साल की बच्ची भी इतना बता देती है कि आँखमिचौनी के वक्त उसकी पीठ थपथपाने वाला आखिर कौन रहा होगा, और एक हो तुम! ओह, कितनी भोली..." अब के फूफी खिलखिलाकर हँस पड़ीं, औरों ने भी साथ दिया। यह उन्मुक्त हास उमानाथ की माँ को असह्य हो उठा। मन में आया कि वह भी कसकर चिकोटियाँ काटे। दमयन्ती के बालवैधव्य की रंगीनियों का उसे सारा हाल मालूम था। मगर नहीं, रत्ती की चाची ने अपने को सँभाला और उठकर कहा—"मैं और कुछ नहीं जानती। वह भादों का महीना था। अमावस की रात थी। एक घनी और अँधेरी छाया मेरे बिस्तरे की तरफ बढ़ आई। उसके बाद क्या हुआ, इस बात का होश अपने को नहीं रहा..."

फूफी ने इस पर कुछ नहीं कहा। परन्तु रामपुरवाली चाची ने आँगन से निकलते समय हलकी आवाज में कहा था—"होश कैसे होता? मौज मारने की घड़ियों में किसी को भला कैसे होश रहेगा? बला से, अब पेट कोहड़ा हो गया है तो होने दो!"

दो

उस रात चूल्हा नहीं जला।

चाची जाकर बिस्तरे पर लेट गई। बिस्तरा क्या था, खजूर के पत्तों की चटाई थी। बीच घर में वही बिछाकर लेट गई, न तकिया लिया न सुजनी। दाईं बाँह पर सिर रखकर वह पड़ी रही और आँखों की रोशनी को घने अंधकार में भटकने के लिए छोड़ दिया, जैसे थका और भूखा चरवाहा लापरवाह होकर अपनी गायों को जंगल में छोड़ देता है। वे लौट भी आना चाहती हैं तो मार डंडा से, मार डंडा से वह उन्हें फिर-फिर जंगल की ओर खदेड़ देता है। बस्ती नजदीक नहीं

होने से किसी पेड के नीचे वह भी बाँह का तकिया बनाकर करवट लेट जाता है···

रतिनाथ भी जाकर सदूक पर सो रहा। विपत्ति के अथाह समुद्र मे गोते खा रही इस चाची के लिए बेचारे ने उस रात कितने आँसू बहाए, यह रहस्य भगवान ही जानते हैं। दिन का भात हाँडी मे था, पत्थर के बड़े कटोरे मे दाल थी। एक दूसरी पथरौटी में जरा-सा बैंगन का चोखा रखा हुआ था। पर किसी ने हाथ तक नहीं लगाया। रत्ती भूखा जरूर था, लेकिन उसकी भूख-प्यास हवा हो गई, जब कि टोल-पडोस की महिलाओ का दल मुस्कराता और आँखें मटकाता हुआ शाम को रत्ती के आँगन से चला गया। चाची बुत बनी वही खड़ी रही, उसकी आँखों से आँसू के चार बड़े-बडे बूँद ढुलक पडे थे। समाज व्यक्ति के प्रति इतना निठुर, इतना नृशंस हो सकता है, उस अबोध बालक को अपनी छोटी-सी आयु में आज यह सत्य पहली बार भासित हुआ था।

परन्तु दो पहर रात को किसी ने रत्ती के मुँह में दस-पाँच कौर अवश्य डाल दिए थे। और कौन होगा! चाची ही होगी।

हाँ, चाची ही थी। उसी ने नीद में विभोर रतिनाथ को उठाकर दाल-भात और बैंगन का चोखा खिला दिया। रत्ती बराबर आँखें मूँदे ही रहा। खिला-पिलाकर कुल्ली कराकर चाची ने उसे अपने पास सुला लिया। खुद उसने कुछ नही खाया। बचा भात बाहर डाल दिया था।

उस रात चाची को नीद नही आई। जिसके माथे पर विपत्ति का इतना बड़ा पहाड हो, वह भला कैसे सोए? भादो, आसिन, कार्तिक, अगहन, पूस, माघ, फागुन और यह चैत—आठवाँ महीना चल रहा था। पेट मे बच्चा ऊधम मचाने लगा था। चाची को ख्याल आया जयनाथ का चेहरा और फिर उसने सोये हुए रत्ती का मुँह चूम लिया। उमानाथ की माँ जानती थी कि जयनाथ देवधर था और आजकल काशी में है। बेचारी ने कई बार चिट्ठी लिखवानी चाही, मगर किससे लिखवाती? जयनाथ वादा कर गए थे कि दस दिन में ही मैं बाबा (वैद्यनाथ) को जल ढालकर आ रहा हूँ। पूस ढलते गए और यह चैत भी बारह दिन बीत गया। चाची को सारी पुरुषजाति से घृणा हो गई···इस मुसीबत का सामना जिसे करना चाहिए, वह कहीं यो बाबा वैद्यनाथ और काशी विश्वनाथ के इर्द-गिर्द गाल बजाता फिरे? छि:! ऐसा था तो मुझे भी साथ ले लिया होता। हे भगवान! पानी में डूब मरने के अतिरिक्त क्या और कोई उपाय नही है? सुनती हूँ, लहेरियासराय के सरकारी अस्पताल की डाक्टरनी गर्भ गिराने मे बहुत कुशल हैं ·· मगर वहाँ तक मैं पहुँचूँगी कैसे?

मुसीबत की उस घड़ी में एकाएक चाची को अपनी माँ याद आयी। उसने तय किया कि आज तो नहीं, कल रातोरात वह तरकुलवा चली जायेगी। वहाँ गाँव मे ही, कई चमाइनें है। डाँट, फटकार, गंजन-फजीहत के बावजूद भी माँ आखिर

माँ ही होगी। लड़की का कवच बनकर तमाम मुसीबतों को वह अपने ऊपर ले लेगी, इसमें भी क्या कुछ शक है ?

इस निश्चय से चाची को राहत मिली और रात्रिशेष में बेचारी की बोझिल पलकें जरा झपक गयीं।

रतिनाथ की आँख सबेरे ही खुली। चाची को दूसरे दिन की भाँति आज उसने नहीं जगाया। आँख मलते-मलते वह चाची के घर के पिछवाड़े गया। पेशाब करते वक्त उसकी निगाह घिवही पर पड़ी। आम के इस बड़े पेड़ को वह बहुत प्यार करता था। इसके आम गोल-गोल होते थे। पकने पर मुँह पीला और बदन लाल हो जाता था। स्वाद घी जैसा। रस गाढ़ा और गुठली छोटी होती थी। इस आम का यह नाम दादी का रखा हुआ था। पेड़ फलता भी खूब था। बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस हजार तो सिर्फ पकने पर निकलते। आँधी और तूफान मे हजारों कच्ची अबियाँ गिरती सो अलग। वह भी बेकार नहीं जातीं, अचार और सूखी खटाई लोग साल-भर खाते। पकने पर घिवही का पेड कल्पवृक्ष-सा मनोहर लगता। गाँव में ऐसा कौन होगा जिसने घिवही के दस-पाँच आम न खाए हों। उनका अमावट ये लोग साल-दो साल तक खाते। इस बार भी घिवही मे फल खूब आये थे। रतिनाथ ने देखा, पचासों टिकोरे गिरे पड़े हैं। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा, चटनी के लिए यह काफी है।

वह टिकोरे इकट्ठे करने लगा। चुनने को कुछ रह गये थे कि चाची ने आवाज दी---"रत्ती, ओ रत्ती ! कहाँ गया ?"

"यह रहा चाची, टिकोरे चुन रहा हूँ," रतिनाथ ने जोर से जवाब दिया। तब तक चाची भी वहाँ पहुँच गयी। नजदीक आकर रत्ती की ठुड्डी पर हाथ फेरती हुई बोली—"तुझे क्या है पागल ! तू क्यों इतना दुबला हो गया है ?"

लड़के ने नजर नीची कर ली। जरा देर बाद कहा—"चाची, आज मैं पाठशाला अवश्य जाऊँगा। रसोई तो भला तुम जल्दी कर लो, चटनी मैं खुद ही कर लूँगा।"

चुने हुए टिकोरे लेकर चाची आँगन में चली आयी। चौका-बर्तन करने के बाद उसने चूल्हा जलाया। खानदानी खवास की बुढ़िया औरत आज पानी भरने नहीं आयी, घड़े रीते पड़े थे। रतिनाथ ने छोटी बाल्टी में पोखर का पानी ला-लाकर उन्हें भर दिया। चाची समझ गयी कि दमयन्तन का अनुशासन उसके खिलाफ शुरू हो गया आज से। अब इस आँगन में न धोबिन आयेगी, न नाइन, न डोमिन, न चमाइन। ब्राह्मणों की तो भला बात ही कौन कहे। पुरानी दियासलाई में अभी चार-छः तीलियाँ थीं, एक तीली घिसकर चाची ने चूल्हा जला लिया था। नहीं तो गाँवी गँवई में आग एक घर से माँगकर दूसरा घरवाला ले जाता है, दूसरे से तीसरा। यों दियासलाई का काम ही नहीं पड़ता। फिर भी लोग सलाई

की दस-पाँच तीलियाँ बचाकर रखते अवश्य हैं । यह नहीं कि रतिनाथ किसी के यहाँ से आग ला नहीं सकता था । ला सकता था, अगर किसी ने चाची के सम्बन्ध में कुछ अनाप-शनाप उसे सुना दिया तो लडके के दिल को कितनी चोट लगेगी ! यही सब सोचकर चाची ने रत्ती को कहीं आग लाने नहीं जाने दिया ।

रत्ती को चाची का यह रुख पसन्द नहीं आया । वह सोचता, जो एक सुनाएगा हम उसे दस सुना देंगे । जो आग नहीं देगी उसके चूल्हे पर पेशाब कर दूँगा ।

खैर थोड़ा पानी से भी काम चल गया । चाची ने सिर्फ चार-छः लोटा पानी नहाने में खर्च किया, बाकी रसोई में । पीने के लिए एक बाल्टी रत्ती कुएँ से स्वयं ले आया भरकर । भात तैयार हो गया । तब जाकर पोखर में नहा आया ।

सौ साल पहले पण्डित नीलमणि ने यह पोखर खुदवाया था । वह रत्ती के दादा के दादा थे । अपने दालान के बिल्कुल करीब एक छोटा-सा पोखर खुदवा गये । इस पोखर के तीन भिंडो पर अब उपाध्याय घराने की बढ़ती आबादी छा गयी थी । केवल पूरब वाला भिंडा बच रहा था । पास-पड़ोस के मर्द आकर उसी ओर के घाट पर नहाते ।

आज शालिग्राम की पूजा में रतिनाथ का मन लगा नहीं । सराइयाँ (लघु पूजा-पात्र) तीन थीं, देवता दो ही थे—शालिग्राम और नर्मदेश्वर । ताँबे की सराई शालिग्राम के लिए, पीतलवाली नर्मदेश्वर के लिए । तीसरी भी पीतल की ही थी । वह पंच देवता के उद्देश्य से थी । चन्दन रगड कर उसने अच्छत भिगोये । "ॐ सहस्रशीर्षा···" आदि मन्त्र पढ़कर शंख से शालिग्राम पर जल ढारा, फिर नर्मदेश्वर पर । फिर अनमने भाव से चन्दन, अच्छत, फूल वगैरह चढ़ाकर रत्ती ने पूजा खतम की । उधर थाली में भात-दाल परोसा जा चुका था ।

थोडा-सा उसने खाया होगा कि तब तक चाची ने चटनी भी पीस ली । भुना हुआ जोरा भी दिया था उसमें । रतिनाथ ने चटनी का स्वाद ले-लेकर खूब खाया । खाते-खाते उसे चाची ने कहा—"बेटा, पांच-छः रोज तुझे अकेला ही रहना पड़ेगा ।"

"और तुम कहाँ रहोगी ?" उठते हुए कौर को रोककर रतिनाथ ने आँखों से ही सवाल किया ।

"तरकुलवा जाऊँगी, किसी से कहना मत !' चाची बोली ।

उसने फिर कहा—"रात को पड़ोस के आँगन में सो जाना । चावल, दाल, लकड़ी, धनियाँ, हल्दी, नमक, तेल सामान सब मौजूद है । खुद पकाकर खा लेना । पाँच ही छः रोज की बात है, उसके बाद तो मैं आ ही जाऊँगी ।"

रत्ती खाना खतम करते-करते बोला—"मैं भी न साथ चलूँ ?"

"नहीं," चाची ने कहा—"बात ऐसी आ पड़ी है कि अकेली ही जाऊँगी,

यही अच्छा रहेगा।"

रतिनाथ ने चुप रहकर चाची की बात का औचित्य मंजूर कर लिया। अब वह खाना खा चुका था। हाथ-मुँह धो आया। खाकर मुख-शुद्धि के तौर पर सुपारी का एक छोटा-सा टुकड़ा चबाना उसके अभ्यास में शामिल हो गया था। सुपारी का टुकड़ा थमाते हुए चाची ने आले की ओर इशारा किया और कहा—"यहाँ आठ-दस सुपारी रख जाऊँगी, सरौता भी रहेगा।"

तब तक दिन काफी उठ आया था। रत्ती पाठशाला जा चुका था। चाची अपनी चिन्ता की धारा को समकूल रखने के लिए तकली लेकर बैठी। खाना वह देर से खायेगी।

बीच घर में बैठकर वह तकली कातने लगी किर्र-किर्र-किर्र। मिथिला की कुलीन ब्राह्मणियों के जीवन में इस तकली का बहुत बड़ा स्थान रहा है। कुटीर-शिल्प का यह मधुर प्रतीक अब तो उठता ही जा रहा है, फिर भी जनेऊ के लिए तकली से निकले इन बारीक सूतों की आवश्यकता अनिवार्य समझी जाती है। फुर्सत का वक्त स्त्रियाँ तकली के सहारे बहुत आसानी से काट लेती हैं। आठ-दस वर्ष की उम्र से लेकर जीवन-पर्यन्त तकली का और उनका साथ रहता है। कहते हैं, ईस्टइंडिया कम्पनी के शासन से पहले घर-घर तकली चलती थी। तकली के ये सुन्दर और महीन सूत मलमल बुनने के काम आते। परन्तु अब तो यह वस्तु ब्राह्मणों के ही घरों में रह गयी है और इन सूक्ष्म और मनोहर सूतों का उपयोग सिर्फ जनेऊ तक सीमित रह गया है। हाँ, तो तकली की मृदु मधुर ध्वनि में एक-रस होकर चाची सोचने लगी—इस समय अगर जयनाथ होते···अगर जयनाथ होते तो उन्हें कुछ-न-कुछ प्रतिकार अवश्य करना पड़ता। यह गरीबी और इतनी असहाय अवस्था। विपदाओं का यह महाजाल। कौन मुझे उबारेगा? कुछ भी हो, मर्द फिर मर्द ही है।

चाची को एक-एक कर पुरानी बातें याद आने लगीं—सुखी माँ-बाप, भरा-पूरा बचपन। कुलीन परन्तु दरिद्र से विवाह। रोगी पति। घुन लगा हुआ दाम्पत्य। लड़का उमानाथ, लड़की प्रतिभामा। वैधव्य। सुदूर दक्षिण (भागलपुर) में लड़की का बेचा जाना। ऋण से छुटकारा···ओह! उमानाथ जब सुनेगा कि उसकी विधवा माँ गर्भवती हो गयी है तो···

उमानाथ की उम्र पन्द्रह साल की थी। वह जिद्दी, गुस्सैल और पढ़ने में मन्द था। प्रतिभामा सत्रह साल की थी, उसे ससुराल गये तीन-चार साल होने आ रहे थे। कुलीनता की दृष्टि से बहुत ही नीच, मूर्ख और चालीस साल के एक अधेड़ ब्राह्मण ने सात सौ नकद गिनकर उससे शादी की। वह छः महीने के बाद ही गौना करा ले गया और तब से प्रतिभामा फिर शुभंकरपुर की इस धरती पर पैर नहीं रख पायी।

इतने में किसी के पैर की आहट पाकर चाची का ध्यान भंग हुआ। उसकी बोटी-बोटी काँपने लगी—हे भगवान् ! यह कौन आ रहा है···कल किसी ने कहा था कि थाने में भी इस बात की खबर हो गयी है।

उसका दिल धड़कने लगा। मुसीबत के इन दिनों में किधर से भी वज्रपात हो सकता है। कैसी भी अनहोनी हो सकती है। चाची को टोला-पड़ोस की एक-एक औरत दमयन्ती मालूम दे रही थी। हवा से उड़ा हुआ एक-एक तिनका खतरे से भरा नजर आ रहा था।

आहट बिल्कुल करीब आ गयी। चाची ने अपने को और कड़ा कर लिया—कोई भी हो, घबड़ाना नहीं चाहिए। बदनामी तो फैल ही गयी। अब और इससे अधिक क्या होगा ? दारोगा फाँसी तो देगा नहीं, हाँ पहरा जरूर बैठा दे सकता है। सरकार के कानून में गर्भ गिराना नाजायज है; तो क्या सोचकर अंग्रेज बहादुर ने यह कानून बनाया होगा, कि कोई भी विधवा भ्रूणहत्या नहीं कर सकती··· चाची अब भी उसी रफ्तार से तकली कात रही थी। पूनी पर पूनी खतम होती गयीं, मगर सोचने का धागा अपने छोर पर नहीं पहुँचा।

चाची के सामने जयनाथ खड़े थे। दाढ़ी बढ़ी हुई, चेहरा खिला हुआ। चाची की उँगली रुक गयी, तकली का तकुआ ठिठक गया। कता हुआ सूत तकली में जल्दी-जल्दी लपेटकर उसने पूनियाँ और तकली डाली में रख ली।

जयनाथ ने कहा—"रहने दो उमानाथ की माँ ! तुम क्यों उठती हो ? पैर धोने के लिए लोटा भर पानी घड़े से क्या खुद नहीं ले सकता मैं ?"

पर चाची तब तक पानी ला चुकी थी। वह अपने हाथों से ही जयनाथ के पैर धोने लगी, परन्तु जयनाथ नहीं माना। खुद पैर धोने लगा।

"दातून भी नहीं की होगी," चाची ने कहा—"ठहरो ला देती हूँ।" दक्खिन तरफ जो घर था, उसमें से वह साहड़ की दातून ले आयी और जयनाथ को थमा दी। बोली—"कल सुबह यह दातून रत्ती कहीं से लाया था। देखो न, अभी तक हरी है···" कपार पर आई एक रूखी लट को बायें हाथ से ठीक करती हुई चाची फिर बोली—"चार अच्छर लिखना तुम्हारे लिए पहाड़ हो गया ! कोई खत नहीं, खबर नहीं ! बडे अजीब आदमी हो !"

जयनाथ ने कोई सफाई नहीं दी, मुस्करा भर दिया। गठरी में से उसने अपनी धोती निकाल ली और दातून करते-करते स्नान करने चला गया।

तीन

एक छोटा-सा स्टेशन। राजनगर। 11 बजे रात के ट्रेन से चाची और जयनाथ उतरे। स्टेशन से बाहर आकर उन्होंने कोई बैलगाड़ी किराये पर कर लेनी चाही। पाँच कोस पैदल चलना चाची के बूते से बाहर था।

शुभंकरपुर से तारसराय स्टेशन महज कोस-भर पड़ता है। उतने में ही चाची को चार जगह बैठना पड़ा था। और यह पाँच कोस का लम्बा रास्ता बेचारी कैसे तय करेगी !

जयनाथ ने तय कर लिया था कि पाँच रुपया भी लेगा तो क्या, बैलगाड़ी बिना किये तरकुलवा नहीं जाएँगे। स्टेशन से बाहर, सड़क की ओर दस-बारह गाड़ियाँ थीं जरूर, लेकिन उनमें से एक भी तरकुलवा की नहीं थी। आसपास की थीं, पर उनके आरोही सुबह की ट्रेन से आने वाले थे।

चाची का मन था कि किसी तरह किरण फूटने से पहले मैके पहुँच जाती। जयनाथ का भी यही विचार था, और ठीक ही था। चाची जिस काम के लिए अपनी माँ के यहाँ जा रही थी, उसमें सराहना, खुशी और स्वागत की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उसके मुँह पर तो कालिख पुती हुई थी। माँ न जीती होती तो तरकुलवा जाने की अपेक्षा वह यहीं कमला की धार में डूब मरना अधिक पसन्द करती। उसे अपनी माँ के सरल, शीतल, दयालु स्वभाव पर बहुत भरोसा था, इसीलिए तो जा रही थी।

जयनाथ ने अपनी भाभी को वहीं सड़क पर एक ओर बैठा दिया और खुद निकले सवारी की तलाश में। उन्हें मालूम था कि दस-बारह इक्के भी राजनगर के स्टेशन पर मौजूद रहते हैं। लेकिन, आज उनका भी पता नहीं था। कमला का पुल पार कर जब वे आगे बढ़े तो पाकड़ के नीचे एक इक्का दिखाई पड़ा। मचान पर जो आदमी सो रहा था, वह जयनाथ के पैर की आहट पाकर जग गया है, उसने यह बात अपनी खाँसी में जाहिर कर दी। पूछने पर मालूम हुआ कि वह तरकुलवा पहुँचा देने को तैयार है, मगर छः रुपया से धेला भी कम न लेगा।

आखिर साढ़े पाँच पर सौदा पट गया। इक्के वाले ने कहा, "आप स्टेशन चलिए। मैं घोड़ी को जोतकर अभी लाया।"

उन लोगों के पास सामान के नाम पर कुछ नहीं था। था क्या, सिर्फ आठ महीने का गर्भ। सही सलामत तरकुलवा तक पहुँचने की ही उन्हें चिन्ता थी। इक्का आया तो उस पर इक्केवान से कहकर ओहार (परदा) डलवा दिया गया। इस काम के लिए जयनाथ ने अपनी ही धोती निकालकर दी थी।

चाची सवार हुई और जयनाथ चले पैदल। बाजार के बाद सड़क पर रोड़ियाँ नहीं थीं। बिल्कुल कच्ची और देहाती सड़क हो और उस पर धूल और

बालू न रहे तो इक्का मजे में चल निकलता है।

जरा-सी रात बाकी थी कि वे तरकुलवा पहुँच गये। जयनाथ को चुम्मन झा (चाची के पिता) का घर मालूम था। इक्के को लिवाए सीधे वहीं पहुँचे।

इक्के से उतरकर चाची अपने बाप के आँगन में आ गयी। उधर जयनाथ ने इक्के वाले को किराया देकर फौरन रवाना किया। इसके बाद वे खुद भी अन्दर गये।

स्त्रियाँ अपने दामाद से हल्का-सा परदा करती हैं और जयनाथ ठहरे यहाँ दामाद के छोटे भाई साहब। खैर। अन्दर जाकर जयनाथ ने देखा कि पच्छिम वाले घर के ओसारे में माँ-बेटी दोनों एक-दूसरे से गले लगकर सिसक-सिसककर रो रही है।

जयनाथ के अन्दर आ जाने पर रोने की इस धीमी आवाज में और भी अधिक धीमापन आ गया।

पैर छूकर प्रणाम करने पर वृद्धा ने आशीर्वाद दिया।

जयनाथ ने सोचा—खुल करके सारी बातें भाभी ने अपनी माँ से न कही होंगी, और बिना कहे बनेगा नहीं। यह कठिन कर्त्तव्य मुझे ही करना पड़ेगा।

वृद्धा को अलग ले जाकर जयनाथ ने शान्ति और संकोच के साथ सारी बात समझा दी और कहा—"यहाँ मेरे रहने की कोई जरूरत नहीं। स्नान और भोजन के उपरान्त मैं चला जाऊँ, यही अच्छा है। और—" जयनाथ ने अपने बटुवे में से दस रुपये के नोट निकाले और यह रकम वृद्धा के हाथ में थमाते हुए बोले—"इसकी चिन्ता नहीं कीजिए। बाबा विश्वनाथ की कृपा से अभी इतना और निकाल सकता हूँ।"

वृद्धा ने आग्रहपूर्वक रुपये लेने से इन्कार कर दिया। बोली—"गौरी (चाची) का कर्म ही फूट गया है तो इसमें किसी को क्यों दोष दूँ! रही खर्चे की बात, सो कमला मैया की कृपा से सब ठीक हो जायेगा। आप जरा भी चिन्ता न करें। हाँ, किसी के साथ रतिनाथ को यहाँ भेज दें तो अच्छा होगा। मैं उसका मुँह देखना चाहती हूँ।"

स्नान और भोजन के बाद जयनाथ तरकुलवा से चल पड़े। चैत की दुपहर। धूप कड़ी अवश्य थी, परन्तु वहाँ रहना जयनाथ ने बेकार समझा। इसके अलावा उन्हें इस बात की भी चिन्ता थी कि रत्ती घर पर अकेले कैसे रहेगा।

उन दिनों रेलवे-लाइन इस ओर जयनगर तक ही थी। उसके आगे नेपाल का इलाका पड़ता है और अब तो नेपाल सरकार ने जयनगर से जनकपुर तक अपनी रेल खोल ली है। उस दिन जयनाथ को शाम की ट्रेन मिल गयी, पाँच मिनट की देर हुई होती तो गाड़ी खुल जाती।

राजनगर से मधुबनी, पंडौल, सकरी और तारसराय—चारों स्टेशन वह खड़े

ही आये। नेपाली औरत-मर्द सिमरिया घाट जा रहे थे, गंगा नहाने। गाड़ी का वह डिब्बा उन्हीं से ठसाठस भरा हुआ था।

पहर रात बीतते-न-बीतते जयनाथ अपने घर पहुँचे। रतिनाथ अपने साथी नरेश के साथ उसी के घर में सो रहा था। जयनाथ ने उसे उठाया नहीं। सामान मौजूद था, खिचड़ी पका ली और खाकर सो गये।

सुबह उठते ही वह कुटी पर चले गए। यह कुटी गाँव से बाहर पूरब ओर बलुआहा के पोखरे के भिड पर थी। वहाँ पन्द्रह साल से एक महात्मा रहते थे, जिनका असल नाम कोई नही जानता था। सभी उन्हें तारा बाबा कहा करते क्योंकि रोज सुबह-शाम आप 'माई तारा, माई तारा' बीस-पचीस बार इतने जोर से चिल्लाते कि आस-पास के चारों-पाँचों गाँव उस सिंहनाद से परिव्याप्त हो जाते। उनकी धोती लाल-सुर्ख रहती थी। गले में हाथीदाँत के खरादे हुए दानों की माला थी। दाई बाँह पर दो बड़े-बड़े रुद्राक्ष और एक बड़ा-सा मूँगा पहनते थे। दाढ़ी-मूँछ, बाल और नाखून कभी कटाते नहीं थे।

जयनाथ को तारा बाबा के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। वे नित्य एक बार बाबा का दर्शन कर आते। मन की आकुलता ही सुबह-सुबह आज इस ब्राह्मण को वहाँ ले गई।

बिना किसी संकोच के जयनाथ ने तारा बाबा को उमानाथ की माँ के सम्बन्ध में आज सब कुछ बता दिया। सुनकर बाबा की आँखें चमकी। वे बोल उठे—"नाहक ही उस बेचारी को तुम तरकुलवा में छोड़ आए हो! मुझसे क्यों नहीं कहा? सब ठीक हो जाता। खैर। फिर भी मैं एक यंत्र बनाकर दूँगा, भिजवा देना।"

अपने पिता के बारे में रतिनाथ को सोकर उठते ही मालूम हो गया कि लौट आए हैं। वह जल्दी से निबटकर रसोई करने लगा। चाची सब चीजें रख तो गई थीं। जब भात भी हो गया, दाल भी हो गई, बैंगन और सहजन की तरकारी चढ़ी थी तब आए जयनाथ। ये उधर से नहाते ही आए थे।

पूजा भगवान की जयनाथ आज स्वयं करने बैठे। वे अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, फिर भी एक कुलीन ब्राह्मण के साधारण दैनिक जीवन में जितनी उपासना और कर्मकांड की आवश्यकता होती है, उतना तो जानते ही थे। प्रातःस्मरण, संध्या-तर्पण, पंचदेवता पूजन (शिव, विष्णु और दुर्गा का विशेष रूप से) चंडी (सप्तशती) पाठ···इतना बिना किए उन्हें चैन नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त, विद्यापति की महेशवानी भी जयनाथ बड़ी तन्मयता से गाया करते। सिद्धान्त-कौमुदी और तर्क-संग्रह वे पूरी-पूरी नही पढ़ पाए। अपनी अल्पज्ञता पर उन्हें जीवन-भर पश्चात्ताप होता रहा।

करीब आधा घंटा पूजा में जयनाथ लगाते थे। यह गोल-मटोल मनोहर

शालिग्राम नकली नहीं था जिसे बनारस या जयपुर के कारीगर काले पत्थर से तराश कर बनाते हैं। यह भगवान् पाँच पुश्त मे इस कुल में श्रद्धा और भक्ति के पात्र बने हुए थे। पलिवाड़ महावंश की यह शाखा 'झा' उपाधि वाली थी। जयनाथ के वृद्ध प्रपितामह नीलमाधव उपाध्याय बहुत बड़े नैयायिक थे। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर मुर्शिदाबाद के नवाब ने पूर्णियाँ जिले में सौ बीघा जमीन लाखिराज ब्रह्मोत्तर के तौर पर उन्हें दी थी। जयनाथ के पितामह-भ्राता जगदानन्द झा अच्छे ज्योतिषी थे, उनके दो भाई और थे। गृहकलह हुआ तो यह ब्रह्मोत्तर उन लोगों ने बेच डाला। उन्हीं नैयायिक नीलमाधव उपाध्याय को मुक्तिनाथ का दर्शन करके लौटने वाले एक महात्मा ने यह शालिग्राम दिया था! नारायणी नदी (गंडक) का जहाँ उद्गम-स्थान है, वहीं यह दिव्य प्रस्तर उस महात्मा को मिला था। बेतिया के तत्कालीन महाराज के यहाँ एक बार नैयायिक जी गए थे, महात्मा ने उन्हें यह शालिग्राम दे दिया। महाराज ने इनकी महिमा सुनकर सोने का छोटा-सा सिंहासन बनवा दिया था। आज से चालीस साल पहले नैयायिक जी के प्रपौत्र इन्द्रमणि झा ने गया से लौटते समय पटना मे भगवान का वह सिंहासन बेच डाला। इन्द्रमणि को पुत्र का मुँह देखने की लालसा कभी पूरी न हुई। हाँ, लड़कियाँ चार अवश्य हुईं। उन्हें अपने से भी उच्च कुल में कन्याएँ दान करने की सनक थी। और, मिथिला का ब्राह्मण जो जितना ही कुलीन होता है, उसकी दरिद्रता भी उतनी ही बड़ी हुआ करती है। इन्द्रमणि को भी अपनी तीन कन्याओं का भरण-पोषण आजन्म करना पड़ा, क्योंकि चार में से तीन दामाद परम अभिजात और महादरिद्र थे। मरते वक्त, जो कुछ था, लड़कियों के नाम चढ़ा गए। इन्द्रमणि जब मृत्युशय्या पर थे तभी जयनाथ ने यह भगवान (शालिग्राम) उनसे माँग लिया था। आज पन्द्रह साल से जयनाथ उनकी पूजा करते आ रहे हैं।

पूजा समाप्त करके वे खाने गए।

अपने पुत्र की सहनशीलता और कार्यक्षमता देखकर प्रसन्न होने का अवसर आज जयनाथ को पहली ही बार मिला हो, ऐसी बात नहीं है। अब तो रतिनाथ ग्यारह साल का हो गया है। पाठशाला में सबसे अधिक तीव्र बुद्धि वाला समझा जाता है। बहुत कम बोलता है, फुर्ती गजब की है उसमें। गरीबी के मारे बाप उसे हिन्दी-अंग्रेजी स्कूल में नहीं रख सका। और रसोई-वसोई तो जब रत्ती सात साल का था तभी से करना जानता है। सातवें (गर्भ-स्थिति के अनुसार आठवें) साल की उम्र में उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) हुआ था। हाँ, मछली और मांस बनाना अभी उसमे नहीं सपरता। पिता और पितियाइन (चाची) घरेलू कामों में रत्ती को कम उलझाते।

सो, खाना दो थालियों में परोस लिया गया और दोनों बाप-पूत खाने बैठ गये।

चार

माँ-बाप ने चाची का नाम रखा था गौरी।

वह बहुत सुन्दर थी। चेहरे में लम्बाई-गोलाई की अपेक्षा फैलाव ही अधिक था। आँखें बड़ी-बड़ी। नाक नुकीली। कपार छोटा। बाल खूब काले और एड़ी तक लम्बे। गोरी तो थी ही। गले की आवाज नरम और सुरीली थी। हाथ-पैर छोटे-छोटे, लाल और भरे हुए, मानो आम के पल्लव हों।

गौरी के इस सौन्दर्य का रहस्य उसके माँ-बाप की भरी-पूरी गृहस्थी तथा निर्विघ्न जीवन में निहित था। चुम्मन झा के पच्चीस बीघा जमीन थी, उपजाऊ! चार सौ मन धान साल-साल होता था। एक बड़ा-सा कलमबाग था जिसमें कलमी आम के पचासों पेड़ थे। मालदह, कृष्णभोग, बंबइया, फजली, शाहपसंद, राढ़ी, भदई, दुर्गीलाल का केरवा, सुकुल, सिपिया, जर्दा—सब थे। किसी साल नागा नहीं जाता, सब साल फलता वह कलमबाग। चुम्मन झा पाँच पेड़ छोड़कर बाकी खटिकों के हाथ बेच लिया करते। चार सौ, पाँच सौ, और कभी छः सौ तक मिल जाता। इस तरह आम भी इनके लिए एक अच्छी फसल थी।

संतान कुल चार हुई—दो लड़के और दो लड़कियाँ। एक लडका और एक लड़की बची थी। लड़का जयकिशोर किसी जिला स्कूल में हेड पंडित था और बाल-बच्चे और पत्नी समेत बाहर ही रहा करता। उन दिनों शायद डाल्टनगंज में था। गृहपति को मरे सात साल हो चुके थे। अब गृहस्थी का सारा भार वृद्धा के कंधे पर था। जयकिशोर का मामा कभी-कभी इसमें अपनी बहन की मदद करता और अक्सर उसका रहना तरकुलवा ही होता।

तीन साल पहले छोटे भतीजे का मुण्डन-छेदन हुआ था। पिछले दफे तभी गौरी यहाँ आई थी।

परिस्थिति की भयानकता का अन्दाज लगाकर गौरी की माँ गुमसुम थी। जयनाथ जब चले गए तब उससे नहीं रहा गया। गौरी की ठुड्डी छूकर कर्कश स्वर में उसने पूछा—"यह क्या कर आई है तू?"

साहस नहीं हुआ कि गौरी माँ की आँख से आँख मिलाती। माँ बोलती गई—

"इस खानदान में जो किसी ने नहीं किया, इस अभागिन ने वही कर डाला ! हे दुर्गा ! हे बाबा कपिलेश्वर ! अब मैं इसका क्या इलाज करूँगी ? कब तक इस बात को मैं छिपा सकूँगी ?"

नाखून से नाखून खोटती रही गौरी ।

अभी तक किसी को मालूम नहीं हुआ था कि गौरी आई हुई है। लोगों ने जयनाथ को सिर्फ गाँव से जाते ही देखा । आये तब तो कुछ रात बाकी थी ।

भैंस की बीमारी के बहाने गौरी की माँ ने बुधना चमार की औरत को बुलवा भेजा । यह चमाइन इन कामों में उस्ताद थी । गाय, भैंस, औरत, घोड़ी, बकरी वह सब के काम आती । आस-पास के दस-बारह गाँवों में उसकी शोहरत थी। गौरी की माँ के दो भैंसें थी जरूर, मगर उन्हें कहाँ कभी कुछ हुआ ? फिर भी बुधना चमार की औरत फौरन आई ।

गौरी की माँ ने सारी बात समझा-बुझाकर चमाइन के हाथ पर पाँच-पाँच रुपये के दो नोट धर दिए, लेकिन वह सिर हिलाने लगी—"नही मलिकाइन, इतने मे काम नही चलेगा। यह तो दवा का दाम भी नहीं होगा। मेरी मजदूरी आप क्या देंगी, बस इतना ही ?"

"दो तो तुम्हारा बँधा हुआ है ही," गौरी की माँ ने कहा—"और मैं तो इतना-सा दे रही हूँ।"

मुस्कराकर सिर हिलाते हुए चमाइन ने कहा—"यही बबुई तुम्हारी और भी तो दो बार यहाँ से बच्चे पैदा कर गई है। तब कहाँ मैंने तुमसे कुछ कहा मलिकाइन ? मगर आज तो मामला ही कुछ और है···"

इतना कहकर वह गम्भीर हो गई। जरा देर बाद बोली—"अगर थाने में किसी ने जाकर चुगली कर दी तो मुझे जेहल-डामुल होगा। तुम लोग तो धनवाली हो, हाकिम भी तुम्हारी तरफदारी कर लेगा। कितने जोखिम का काम है पेट गिराना ! पता चल जाए तो सरकार मेरा सत्यानास कर देगी···"

गौरी की माँ पाँच रुपये का एक नोट और निकाल लाई, फिर भी वह राजी नही हुई। उसने कहा—"दस और देने होंगे । जब काम कर दूँगी तो अपनी खुशी से आप कुछ न कुछ और दे दीजिएगा।"

चमाइन की बात पर गौरी की माँ ने गौर किया। वह काफी प्रतिभाशील स्त्री थी। समझ गई कि पचीस तो यह लेकर रहेगी। जरूरत ऐसी आ पड़ी है कि पचास पर भी अड़ जाए तो देना ही पड़ेगा। खैर, दस रुपये का एक नोट वह और निकाल लाई। देते हुए कहा—"देखो, मेरी लड़की को इस मुसीबत से पार कर दो। पाँच-सात दिन के अन्दर ही यह सब हो जाना चाहिए और गुपचुप।"

जीभ निकालकर चमाइन बोली—"भला यह भी क्या कहने की बात है, मलिकाइन ? आपकी बदनामी क्या हमारी बदनामी नहीं है ? पर एक बात कहती

हूँ, माफ करना, बड़ी जात वालों की तुम्हारी यह बिरादरी बड़ी मलिच्छ, बड़ी निठुर होती है मलिकाइन! हमारी भी बहू-बेटियाँ राँड़ हो जाती हैं, पर हमारी बिरादरी में किसी के पेट से आठ-आठ नौ-नौ महीने का बच्चा निकालकर जंगल में फेंक आने का रिवाज नहीं है। ओह, कैसा कलेजा होता है तुम लोगों का! मइया री मइया!"

गौरी की माँ साँस खींचकर भी कुछ बोलीं नहीं। अपनी लड़की के बढ़े हुए पेट पर उनका ध्यान गया और ऐसा लगा कि उसके अन्दर एक सुन्दर और स्वस्थ शिशु पड़ा हुआ है। आँखें मुँदी हुईं, परन्तु पलकें लगातार फड़क रही हैं—ओ अभागे, तुम्हारा क्या कसूर? यही चमाइन तुम्हें गाँव के बाहर झुरमुट के अन्दर डाल आएगी! फिर कुत्ते और सियार नोच-नोचकर तुम्हें खाएँगे! जैसे और बच्चे अपनी माँ के पेट से समय पर बाहर आते हैं, तुम उस तरह समय पर गर्भ मे बाहर नहीं निकल सकते। तुम्हारे जन्म से प्रसन्न हो सोहर गाए, ऐसी एक भी औरत नहीं होगी···मेरा बस चलता तो—

"अच्छा मलिकाइन, अभी मैं चली। कल शाम को आऊँगी।" इतना कहकर चमाइन आँगन से बाहर हो गई, लेकिन फिर लौट आई। कहा—"जरा देख तो लूँ बबुई को।"

माँ ने कहा—"पूरब वाले घर में है, आओ।"

गौरी को झपकी आ गई थी। आहट पाते ही उसने आँखें खोल दी। चमाइन ने करीब जाकर देखा। बोली—"आठवाँ महीना है। बबुई, नाहक तुमने बखत बर्बाद किया। पेट तीन-चार महीने तक काबू में रहता है। अब देखना, तन्दुरुस्ती पर कितना बुरा असर पड़ता है।"

माँ को अंदेशा हुआ। उसने आँखे फाड़कर पूछा—"क्यों री, गौरी की देह को फिर तैयार होने मे बहुत दिन लग जाएँगे?"

"हाँ मलिकाइन!" चमाइन घर से बाहर निकलती हुई बोली—"दुसंझी मालिश करवाती रहें तो पचीस दिन लगेंगे। हाँ, आज और कल बबुई को कुछ खाने नहीं देना।"

"आज अभी तो खा चुकी," माँ ने कहा—"हाँ, रात और कल नहीं खाने दूँगी। तो तू कल रात आएगी न?"

"जरूर माईजी, आती तो मैं शाम को भी, मगर डीहटोल में सन्हेस (छोटे जाति वालों के ग्रामदेवता) महराज की पूजा है। भाव-भगत होगी। हमारे यहाँ के सभी जाएंगे देखने।"

बुधन चमार की औरत चली गयी। गौरी की माँ ने उँगली पर गिनकर हिसाब लगाया। बड़ी छुट्टियों में, खासकर गर्मियों में जयकिशोर गाँव अवश्य आया करते। इस बार भी आएँगे। माँ ने सोचकर देखा, आधा चैत बीत चुका

है। अभी समूचा बैसाख पड़ा ही है। जेठ के दशहरा से पहले शायद ही कभी जयकिशोर का स्कूल बन्द हुआ हो। और, तब तक गौरी बिल्कुल तन्दुरुस्त हो जाएगी। इस गणित से उस वृद्धा को कुछ आश्वासन मिला। जयकिशोर बाबू बहुत ही अच्छी प्रकृति के आदमी हैं, फिर भी माँ को खटका था कि अपनी बहन के सम्बन्ध में यह कुकाण्ड जब किसी तरह उन्हें मालूम होगा तो कुछ कहेंगे अवश्य। इसके अतिरिक्त, उमानाथ भी किसी-किसी साल आम खाने आता है। अपनी माँ के बारे में जब वह सुनेगा तो आश्चर्य नहीं कि कुएँ में कूदकर जान दे दे या माँ को ही मार डाले। लड़की को छः मास-आठ मास अपने पास रखना माँ को और भी भारी लग रहा था। इन बातों को सोचते-सोचते वृद्धा का दिमाग जब पथरा गया तो एक बार फिर आप पूरबवाले घर में घुसी और गुस्से में आकर गौरी की ठोड़ी में एक ठुनका लगा दिया। गौरी हाउ-हाउ करके रो पड़ी। आँखों से आँसू की धार जो बहने लगी तो उसने बन्द होने का नाम ही नहीं लिया था। माँ जी कड़ाकर कुछ देर अवाक् खडी रही, फिर धम्म से वहीं बैठ गई और लड़की को अपनी छाती से लगाकर आप भी रोने लगी।

दरिद्र कुल में लडकी ब्याहने का ही यह दुष्परिणाम था। शुभंकरपुर के यह वैद्यनाथ झा कुलीनता की दृष्टि से ही जरा बड़े थे। गौरी के पिता चुम्मन झा को स्वयं भी पीछे जाकर यह विवाह-सम्बन्ध असंतोषप्रद लगने लगा। जमाई महाशय दमे के रोगी और प्रकृति से सुस्त थे। शादी के बाद तो पढ़ना जान-बूझकर ही छोड़ दिया था। ससुराल आते तो बीस-बीस दिन, पच्चीस-पच्चीस दिन तक पड़े रहते। शतरंज का इतना शौक था कि एक बैठक मे दस-दस घटे खेलते रहते। कमाकर शायद ही दो पैसे कभी झा जी ने अपनी स्त्री के हाथ पर रखे हों। जाते-जाते एक क्वाँरी लड़की और एक अबोध शिशु बेचारी के मत्थे ठोक गये। यह लोग औसत दर्जे के मध्यवित्त की लडकी को अपने यहाँ ले जाकर उसे नाना प्रकार के अभाव-अभियोगों की परिधि में डाल देते हैं। लडकी जिन्दगी-भर अपने माँ-बाप को उलाहना देती रहती है। वैद्यनाथ को विरासत में सात बीघा खेत मिले थे। तीन बीघा शुभंकरपुर में और चार बीघा कोसी के किनारे (उत्तर भागलपुर में)। बस्ती का नाम था रामगंज। वहाँ वैद्यनाथ का ननिहाल था। नाना के लडका नही हुआ था। मात्र लड़की थी, तीन दौहित्र थे—कमलनाथ, वैद्यनाथ और जयनाथ। इन्ही तीनों के नाम पर वह अपनी जायदाद चढ़ा गये। शुभंकरपुर के खेत तो वैद्यनाथ बेंच-बाँचकर खा ही गये थे, डेढ़-दो बीघे रामगंज में भी रेहन रख दिए थे!

बहनोई की मृत्यु के बाद जयकिशोर ने चाहा कि गौरी हमेशा के लिए तरकुलवा ही रह जाए, मगर गौरी को यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुआ। यह दूसरी बात है कि इस समय बेचारी एक विचित्र परिस्थिति में पड़ गयी है, मगर यों

गौरी की प्रकृति में स्वाभिमान की मात्रा कूट-कूटकर भरी हुई है। इसी कारण पितृगृह की अपेक्षा पतिगृह में रहना उसने पसन्द किया। एक बार आग्रह करने पर अपनी माँ से गौरी ने कहा था—"बाबू (पिता) ने कुश-तिल-जल लेकर मुझे दान कर दिया, फिर मेरा इस घर में रहना अनुचित नहीं होगा, माँ ? विवाहिता के लिए पितृकुल का अमृत भी पतिकुल के माँड़ या पीने के साधारण जल की तुलना में तुच्छ है। माँ, तभी तो तुमने अपनी नानी के धन पर लात मार दी थी। है न माँ ?" ये सब बातें एक-एक करके माँ को याद आती रहीं और उसकी आँखों से जल-प्रवाह जारी रहा।

न जाने कितनी देर तक माँ-बेटी रोती रहीं ? शोक और पश्चात्ताप के इस समुद्र से उनका उद्धार तब हुआ जब कि चरकर वापस आयी हुई भुल्ली भैंस चरवाहे की लापरवाही से आँगन के अन्दर घुस आयी। उसके खुरों की खुट्ट-खुट्ट, खट्ट-खट्ट ने माँ का भी और बेटी का भी स्थान एवं समय की ओर ध्यान खींचा। अपने को छुड़ाकर माँ घर से बाहर निकली तो देखा अमावस की सन्ध्या अपने साज-सरंजाम लेकर आसमान से धरती पर उतर चुकी है। ऊपर देखने पर एक तारा नजर आया। गौरी की माँ ने चारों ओर घूम-फिरकर आसमान में दूर-दूर तक आँखें दौड़ाईं परन्तु दूसरा तारा न दिखाई पड़ा। तब हाथ जोड़कर उसने पहले तारे को प्रणाम किया और साथ ही यह श्लोक पढ़ा—

"एकातारा मया दृष्टा द्वितीया नैव दृष्यते।
तद्दोष परिहाराय नारदाय नमोऽस्तुते॥"

नौकरानी ने आकर कहा—"रसोई में देर न हो जाएगी ? मलिकाइन ! क्या बात है ? आज तबियत कुछ ढीली दीखती है।"

गौरी की माँ ने कहा—"नहीं, कुछ नहीं, सुक्खो ! यों ही जरा सो गयी थी। पानी भर चुकी घड़ों में ?"

"हाँ, मलिकाइन ! अब जाती हूँ।" उसने कहा। नजदीक आकर गौरी की माँ बोली—"अपनी सास को जरा भेज देना। जरूरी काम है।"

"अच्छा।" सुक्खो चली गयी। थाली में दिन का जूठा भात, दाल और कई किस्म की भाजियाँ लिये थी। मेहमान की थाली में दुगुना भात परोसना कोई नयी बात तो है नहीं—जयनाथ सबेरे ही खाकर चले गये थे। और, तब से अब तक करीब आठ-नौ घंटे खाने की यह सामग्री खुली पड़ी थी। सैकड़ों मक्खियाँ इससे परितृप्त हुई होंगी। जौ-मकई-मड़ुआ की रोटी खाकर तंग आये हुए सुक्खो के बच्चे देखते ही इस पर टूट पड़ेंगे, चाट-पोंछकर थाली साफ कर देंगे। सुक्खो, उसकी सास, उसका घरवाला, सब ललचाई निगाहों से उस दृश्य को देख भर सकेंगे !

गौरी की माँ का खाना बनाने में मन नहीं लग रहा था, लेकिन कल

मंगल है। मंगल को उपवास रखती है। अभी कुछ पेट में डाल लेगी तो अच्छा रहेगा।

चटपट उसने आग जलाई। पानी खौल जाने पर चावल उसमें छोड़ दिए। उसी में चार-छह आलू चोखे के लिए डाल दिए। सुजनी डालकर बीच आँगन में लेट रही। लेटे-लेटे सोचने लगी—इस तरह गौरी को मैं छिपाकर कब तक रख सकूँगी? इसी तरकुलवा में यह घटना क्या पहले कभी नहीं हुई है? अवश्य हुई है, तब? चतुरा चौधरी की लड़की, मक्खन पाठक की पतोहू, पडितजी की बहन··· गौरी की माँ के सामने का समूचा आसमान तारों से झलमल-झलमल कर रहा था। नक्षत्रखचित यह रजनी उसको वैसी ही लग रही थी जैसी चाँदी के दस-पाँच गहनों से भूषित कोई साँवली औरत।··· वह थोड़ी देर तक आँखें मूँदे रही, फिर मानो किसी निश्चय पर पहुँच गयी हो, उसकी आँखें चमक उठीं। अन्दर के संकल्प को वाणी का परिधान देने के लिए उसके होंठ फड़कने लगे। वह अपने आप ही बुदबुदाने लगी—कोई क्या कर लेगा हमारा? बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन के अन्दर दबाकर नहीं रख सकती, इसके चलते जो कुछ हो। जिस समाज में हजारों की तादाद में जवान विधवाएँ रहेंगी, वहाँ यही सब तो होगा! मक्खन पाठक की पतोहू उढ़रकर पंजाब चली गयी है, एक सिक्ख के साथ रहती है। मैं अपनी लड़की को झाड़ू से झाड़-पीटकर घर-निकाला और देश-निकाला दे दूँ सो मुझसे नही होगा। मेरे जीते जी गौरी मुसलमान या सिक्ख के घर जाने को मजबूर नही की जा सकती···

भात तैयार हो चुका था। छिलके छीलकर गौरी की माँ ने चोखा बनाया। नमक, हरी मिर्च और सरसों का तेल डाला। थाली में भात परोसा। चमाइन मना कर गयी थी, मगर माँ का दिल ठहरा, वह कहाँ माने? थोड़ा-सा भात एक छोटी थाली में भी परोसा। काँसे की चमचमाती यह छोटी-सी थाली माँ का ध्यान अतीत की ओर खींच ले गयी। जयकिशोर भी इसी थाली में खाकर बड़ा हुआ था और गौरी भी इसी में खाकर बड़ी हुई थी। प्रतिभामा और उमानाथ ने भी कई बार इस थाली मे खाया होगा। जयकिशोर बाबू के तीनों बच्चे इसमें खा चुके हैं। ममता के मारे माँ का हृदय छलकने लगा। वह पछताने लगी कि नाहक ही दिन में गौरी को एक ठुनका मार दिया। माँ हूँ, तभी तो आयी है। नहीं तो मुजफ्फरपुर, पटना न भाग जाती? कहते हैं, अरिया समाज (आर्य समाज) के तरफ से बड़ा ही अच्छा इन्तिजाम है। विधवा हो चाहे कोई हो, वहाँ गरभ किसी का नहीं गिराया जाता। ठीक समय पर बच्चा पैदा होता है। माँ चाहती है तो बच्चे को रखती है, नहीं तो अरिया समाज ही बच्चा को रख लेता है। अच्छा न है! आखिर अच्छे लोग नहीं हैं तो दुनिया कैसे चलती है!

सब ठीक-ठाक करके वह उठी और गौरी को ले आयी खिलाने। वह आ नहीं

रही थी, परन्तु माँ ने कहा—"तो मैं भी नहीं खाऊँगी, जा।"

दोनों खाने बैठीं। दही का बर्तन नजदीक ही रख लिया।

पाँच

रतिनाथ को अपनी माँ याद नहीं है। थोड़ा-सा आभास मात्र है। वह गौरश्याम थी। उसे दमा का रोग था। ज्यादातर वह लेटी ही रहती थी। बस यही रत्ती को याद है। माँ का चेहरा कैसा था? कपार छोटा, आँखें न छोटी न बड़ी। नाक नुकीली नहीं थी। माँ का प्रसंग छिड़ते ही एक भयानक दृश्य उस लड़के की आँखों के आगे नाच जाता था। वह नहीं चाहता था कि इस तरह का अप्रिय और भयानक दृश्य उसे याद आए। किन्तु सिर्फ आँखें मूँद लेने से ही कोई बात मन में न आए, ऐसा तो कहीं हुआ नहीं।

क्या थी वह बात? यही कि रतिनाथ की बीमार माँ बिस्तरे पर उतान लेटी पड़ी है और जयनाथ रुद्र रूप धरकर बेचारी की छाती पर बैठा है। हाथ में कुल्हाड़ी है और वह अपनी स्त्री की गर्दन रेतता जा रहा है। वह घिघिया रही है, लेकिन कोई भी इस नरमेध में हस्तक्षेप करने वाला वहाँ मौजूद नहीं है···माँ घिघियाती है, साढ़े तीन साल के अबोध रत्ती ने यह दृश्य देखकर दम साध लिया है। घर के कोने में बैठा हुआ वह कनखी से रह-रहकर अपनी माँ और बाप को देख लेता है···

माँ की स्मृति के साथ यह भयानक चित्र रत्ती की आँखों के आगे आ जाता है। पिता के रुद्र स्वभाव के प्रति इस बालक के हृदय में प्रतिहिंसा की आग कभी-कभी सुलग उठती है। तनी भौंहों और चढ़ी आँखों से वह बाप की ओर घूरता है। जिसको चाची से सदैव घुल-घुलकर बातें करते पाया है, उसी का अपनी माँ के प्रति वह नृशंस और रुक्ष व्यवहार रतिनाथ की समझ से परे की बात थी। वह चार साल का था, तभी माँ मरी थी। माँ के बाद चाची ने ही उसकी देखभाल की है। अकारण क्रोधी स्वभाव के इस पिता से चाची ही उसे बचाती आयी है। इन बातों से रतिनाथ अपनी चाची के लिए जान तक देने के लिए हाजिर रहता। पिता के प्रति उसकी भक्ति या श्रद्धा बिल्कुल दिखावटी थी। हृदय से वह चाची को ही बाप और माँ सब समझता था।

आँगन में तीन घर थे। दच्छिन, पूरब और उत्तर तरफ। पच्छिम वाला डीह

खाली था। मिट्टी की तीन भीत और बाँस के छप्पर, खर (खढ़) के छाए हुए। पूरब वाला घर चाची का था। दच्छिन और उत्तर वाले घर जयनाथ के थे। कमलनाथ को शुभंकरपुर से न कुछ लेना था, न देना। अपने हिस्से की जायदाद उन्होंने इन्ही लोगों के सुपुर्द कर दी थी। इसी तरह जयनाथ और उमानाथ की रामगंज वाली जायदाद का उपभोग कमलनाथ करते थे। कमलनाथ पढ़े-लिखे नही थे, उनके तीन लड़के थे, तीनों मूर्ख। यह मूर्खता इन लोगों की चार-पाँच पुश्त की विरासत थी। मिथिला में कहावत है कि मूर्ख का लड़का मूर्ख हो सकता है, मगर पंडित का लड़का पंडित नही होगा। परन्तु पंडित का लड़का भी पंडित होता है जैसे कि नीलमाधव उपाध्याय का पुत्र जयमाधव झा। नीलमाधव के तीन लड़के थे—जयमाधव, वेणीमाधव और श्रीमाधव। इनमें दो अपठित थे, उनके जिम्मे खेती-बाड़ी का काम था। जयमाधव के दो लड़के हुए, सोनमणि और राजमणि। सोनमणि ने व्याकरण का अध्ययन काशी में रहकर किया था। सोनमणि के एकमात्र लड़का हुआ इन्द्रमणि। वही मूर्ख भगवान का छत्र-सिंहासन बेचकर खा गया। कमलनाथ आदि श्रीमाधव के प्रपौत्र थे। वैद्यनाथ ने पढ़ना आरम्भ किया था, परन्तु ब्याह के बाद उनकी पढ़ाई शीघ्रबोध और मुहूर्त्त चिन्तामणि तक ही सीमित रह गयी।

आँगन में पच्छिम वाली निवास-भूमि खाली पडी थी। उस पर मौसम के मुताबिक भिंडी, बैंगन, मिर्चा वगैरह उपजाया जाता। इससे पूरब तालाब था, दच्छिन बाग और बाँस। बाग में चार ही छः आम के पेड़ थे। दो पेड़ कटहल के, एक बड़हल का, एक सहिजन का। अड़हुल, इन्द्रकमल, करबीर, कनैल, थलकमल, थल-कुमुदिनी, हरसिंगार, बेला—दो-दो, एक-एक झाड़ इन फूलो के थे। जम्बीरी नीबू का भी एक बड़ा-सा झाड़ था। तालाब में रोहू, ब्वारी, भाकुर से लेकर सिंगी, मांगुर, इंच्चा, पोठी, यानी बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी मछलियाँ थीं। तालाब में इन लोगों का अठारहवाँ हिस्सा पडता था : तीनों भाइयों के बीच नौ बीघा खेत था सो अलग। पुरखो की लगाई हुई अमराई थी, छठवाँ भाग उसमे भी होता था। दस कट्ठा जमीन ऐसी थी, जिसमें खढ़ होता था। घर छवाने के लिए खढ़-वर इन्हें खरीदना नहीं पड़ता था। एक परिवार बहिया (खबास) का था, कुल्ली राउत का। कुल्ली राउत का परदादा ठींठर राउत था। उसने सात रुपये में अपने को रतिनाथ के परदादा के हाथ बेच दिया था।

गृहस्थी के उपयुक्त सब कुछ था, लेकिन करने वाला कोई नहीं था। जयनाथ का मन खेती-बाड़ी में लगता तो घर की यही हालत रहती? सारे खेत बटाई पर लगे हुए थे। पूरी उपज घर में नहीं आती थी। साल-साल कुछ खेत बेचना या रेहन रखना पड़ता था। उमानाथ की माँ भला कर ही क्या सकती थी? कोई टोकता तो जयनाथ कह उठते—का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते? यदि

भगवान का नाम विश्वम्भर है तो फिर चिन्ता किस बात की? खेत जोता ही रह जाएगा यदि बारिश न हो। धन्य भगवान् कि धान उपजता है, कि हमारे-तुम्हारे मुँह में दोनो जून पाँच-पाँच कौर भात जाता है! धन्य भगवान्!

जयनाथ को इस बात का बड़ा अभिमान था कि वह ब्राह्मण हैं। पूजा-पाठ, गप-शप, सैर-सपाटा, बाबा वैद्यनाथ, बाबा विश्वनाथ, दुर्गा-तारा-काली—इनकी चर्चाओं के अतिरिक्त यदि और कोई वस्तु जयनाथ को प्रिय थी, तो वह थी विजया बनाम भंग भवानी। बम्भोले की बूटी का समय पर सेवन हो, वे इसके पाबन्द थे। जब आधा पहर दिन रहता, तो जयनाथ के नित्य कृत्य का यह महत्त्वपूर्ण अध्याय आरम्भ हो जाता। इस सिलसिले में वह मौलवियों का दृष्टान्त बड़े ही उल्लासपूर्वक दिया करते—"देखो, मौलवी लोग कहीं भी हों, गाड़ी पर, चाहे नाव में, जल मे, चाहे थल में, परन्तु नमाज का समय जहाँ आया कि अँगोछा बिछाकर चट से घुटने टेक देंगे! आहा हा हा!! कितनी तत्परता है!" और, तब जोर-जोर से जयनाथ भंग रगड़ने लगते। उनका दीप्त चेहरा और भी दीप्त हो उठता। बीच-बीच में सोटे को रोककर कुंडी की ओर गौर से देख लेते और बोल उठते—"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

औरत मर गयी तो लोगों ने कहा था—"दूसरी शादी कर लो जयनाथ, नहीं तो घर बर्बाद हो जाएगा। लडका अभी बहुत छोटा है, उसकी देखरेख के लिए भी तो कोई चाहिए।"

"नही-नहीं!" जीभ निकालकर और दोनों हाथ दोनों कान पर रखकर जयनाथ तब बोले थे—"हरे-हरे! इतना हलका मुझे मत समझिए। जगदम्बा की कृपा होगी तो दस वर्ष में रत्ती ही इस योग्य हो जाएगा। मैं तो अब यही प्रयत्न करूँगा कि देवघर या विन्ध्याचल में कोई मारवाड़ी अपने राम के लिए छोटी-सी एक मड़ैया डलवा दे, बस।"

सुनने वाले अवाक् रह गए थे।

कुछ साल जयनाथ रत्ती को इधर-उधर टाँगते फिरे। पीछे लड़के ने एक दिन झुँझलाकर कहा—"इस तरह मैं पढ़ नहीं सकूँगा, भुट्टू और टुन्नो मेरे सहपाठी थे, अब वह मुझसे एक दर्जा आगे हैं।"

उमानाथ की माँ ने भी समझाया। जयनाथ इस बात पर राजी हो गए कि लडका गाँव में ही रहे और संस्कृत पढ़े।

तभी से रत्ती अपनी चाची के पास रहता आया है।

उमानाथ बूढ़ानाथ पाठशाला (भागलपुर) में रहकर पढ़ रहा था। इससे पहले कुछ दिन वह अपने मामा के पास मोतिहारी में रहा। बुद्धि मन्द होने के कारण अपने पाठ उसे कभी याद नहीं हुए। हिसाब में जोड़ना जैसे-तैसे उसको आ गया, लेकिन गुणा और भाग दिमाग में घुसता ही नहीं था। घर से आया हुआ घी

पिघलाते समय उमानाथ की असावधानी से कड़ाई ही उलट गयी। सारा घी राख और चूल्हे की गरम मिट्टी पी गयी। मामा ने भांजे को इस अपराध के लिए दो तमाचे लगाए तो भागकर वह भागलपुर चला गया और अपने एक साथी के पास पाँच साल से वहीं है। प्रथमा में पिछले साल फेल हुआ था, इस ाल पास हो जाने की सम्भावना है। गीता भाषाटीका बाँचकर सुनाने से एक मारवाड़ी सीधा-सामान देता है। रोज मालिश करवाकर पंडितजी वहीं से दो रुपया मासिक और दिलवा देते हैं।

वह घर बहुत कम आता है। एक बार रत्ती से भी उमानाथ ने कहा था भागलपुर चलने के लिए। परन्तु रत्ती ने जवाब दिया—"मध्यमा तक तो गाँव में भी पढ़ा जा सकता है, भैया, फिर कहीं क्यों ले जाओगे?"

रत्ती का कहना यथार्थ था। पंडितों के इस गाँव में छोटी-बड़ी दो पाठशालाएँ थीं। एक लोअर प्राइमरी स्कूल था। छोटी पाठशाला के अध्यापक का नाम था पंडित योगानन्द ठाकुर, व्याकरणाचार्य। प्राइमरी स्कूल के मास्टर थे जयवल्लभलाल दास। वे पुराने थे। हमेशा एक खजूर की छड़ी उनके पास पड़ी रहती थी। लड़कों को पीटते भी खूब थे और पढ़ाते भी खूब थे। बड़ी पाठशाला का नाम था 'श्रीतारिणी संस्कृत टोल' शुभंकरपुर। यह चटसाल बहुत पुरानी थी। बिहार जब बंगाल सरकार की मातहत था, तब संस्कृत पाठशालाएँ टोल कहलाती थीं। वही पुराना नाम अब तक इस पाठशाला का चला आ रहा था। पण्डित भी इसके बहुत ही वृद्ध थे, नाम था बबुअन मिश्र। व्याकरण और धर्मशास्त्र में आप बड़े ही निष्णात थे। दूर-दूर से लोग पतिया-प्रायश्चित लिखाने आते। आस-पास के इलाकों में धार्मिक बातों को लेकर जब वाद-विवाद उपस्थित होते तो फैसला आप पर ही निर्भर करता। मिश्र जी के पास बड़ी उम्र के छात्र ही पढ़ा करते।

जयनाथ की अब यही महत्त्वाकांक्षा थी कि लड़का पढ़-लिखकर अच्छा पण्डित बने। रतिनाथ था भी पढ़ने में खूब तेज। अपने साथियों में हमेशा वह बीस ही रहा। उसका मन था हिन्दी-अंग्रेजी पढ़ने का, मगर जयनाथ मास्टर को फीस देने में बराबर आनाकानी करते। लोअर प्राइमरी का इम्तिहान देकर पिछले साल रत्ती आया तो अपर प्राइमरी की किताबें बाप से माँगीं। इधर-उधर टोह लेकर जयनाथ को जब पता चला कि चार-पाँच रुपये सिर्फ किताबों में ही लग जायेंगे तो तै किया—नहीं, कभी नहीं! यह नहीं हो सकता। प्रातःस्मरणीय नीलमाधव उपाध्याय का वंशधर म्लेच्छ भाषा पढ़ेगा? उस दिन धरती उलट जायेगी और आसमान से अंगारे बरसने लगेंगे! वकील-बालस्टर बनकर प्याज-लहसुन और अण्डा नहीं खाना है रत्ती को, उसे तो अपने पूर्वजों की कीर्ति-रक्षा करनी है··· बस, एक फटा-कटा अमरकोष कहीं से उठा लाये और बेटा के हाथ में उसे थमाते हुए कहा—"क्या करना है अंग्रेजी पढ़कर, क्रिस्तान बनना है! लो यह अमरकोष,

जिस दिन यह कंठस्थ हो जायेगा उस दिन तीनों लोक तुम्हारे लिए हस्तामलक हो जायेंगे। क्या समझते हो, मैंने ज्यादा पढ़ा है? नहीं, नहीं, बेटा, यही अमरकोष, थोड़ी लघु (कौमुदी) थोड़ा सिद्धान्त (कौमुदी)! बस! फिर भी देखो, लोग मुझे पण्डितपछाड़ कहते हैं।"

सिर से पैर तक रतिनाथ ने अपने पिता को देखा और फटा हुआ अमरकोष ले लिया। मन-ही-मन उसे बहुत अफसोस हुआ कि प्राइमरी स्कूल के पुराने साथियों से बिछुड़ना पड़ेगा। जयनाथ बोले—"दो पन्ने इसमें नहीं है, सो मैं पाठशाला जाकर किसी से लिखवा दूँगा। एक दुअन्नी लगेगी जिल्द में, कोई बाजार जायेगा तो वह इसे लेता जायेगा और बँधवा लायेगा। और हाँ, "विद्यारम्भे गुरु. श्रेष्ठः" मतलब यह कि वृहस्पतिवार को विद्या का आरम्भ करना अच्छा है। आज कौन-सा दिन है?"

"शनीचर।" रत्ती बोला।

जयनाथ ने उँगली पर हिसाब लगाकर कहा—"शनि एक, रवि दो, सोम तीन, मंगल चार, बुध पाँच और वृहस्पति छः। आज से छठवें दिन हमारे साथ तुम चलना। योगानन्द ठाकुर की पाठशाला में जय गणेश-जय गणेश करके अमर-कोष आरम्भ कर देना।"

सिर झुकाकर रतिनाथ ने पिता का आदेश मंजूर किया, परन्तु हृदय उसका रो रहा था।

रत्ती अपने बाप से बहुत डरता था। जरा-जरा-सी बात पर जयनाथ उसे पीटते थे। पिटाई में वह इस बात का ख्याल नहीं रखते कि दस-ग्यारह साल का बच्चा है, कोमल शरीर और लचीली हड्डियों में चोट ज्यादा लगती होगी। छड़ी, कलछी, चैला, लोढ़ी जो भी हाथ में पड़ जाता उसी से उसे पीटने लगते। कभी-कभी खम्भे में कसकर बाँध देते। एक दफा गर्दन पकड़कर ऊपर उठा लिया और धरती पर पटक दिया। ये घोर दण्ड उसे किन अपराधों के कारण सहने पड़ते? बहुत ही मामूली अपराध हुआ करते। खाते समय जमीन पर जरा-सा पानी ढुल गया। थाली में थोड़ी दाल बाकी रह गयी। पैसा या अधली चुरा ली। तालाब में नहाने गये तो हाथ-पैर पटककर जरा तैर लेना चाहा। पेड़ पर चढ़कर अमरूद खाते समय नाखून-भर खरोंच लग गयी। लुक-छिपकर कहीं तमाशा देखने निकल गये। इसी किस्म के अपराध हुआ करते थे। पिता के भय से रतिनाथ जी-भर कभी दौड़ नहीं लगा सकता था। खिलखिलाकर खूब हँसना उसके लिए स्वप्न की वस्तु थी। पेड़ पर चढ़ना कल्पना मात्र थी।

चाची उसे बहुत बचाती थी। इसी से उसका रोम-रोम चाची के प्रति कृतज्ञ था। किसी के मुँह से चाची की शिकायत सुनता तो गुस्से के मारे उसके छोटे-छोटे नथने फड़कने लगते।

और, अभी चाची नहीं थी। जयनाथ ने एक दिन कहा था—"उमानाथ की माँ बीस-पच्चीस रोज में लौटेंगी। यह अर्सा रत्ती के लिए पहाड़ था। बहुत ही बच-बचकर उसे चलना था। रसोई तो, खैर जयनाथ खुद भी खुशी-खुशी कर लेते थे। घर के और कामों में भरसक रत्ती भी हाथ बँटाता। बचा हुआ समय वह पढ़ाई में लगाता। इन्द्रमणि के घर में रामायण का एक बड़ा-सा पोथा था—तुलसीदासी। रत्ती ने निश्चय किया कि पाँचों दिन वह रामायण बाँचने में लगा देगा। डरते हुए उसने बाप से अपनी यह इच्छा प्रकट की। वे राजी हो गये।

इन्द्रमणि स्वयं तो अब थे नहीं। तीनों लड़कियाँ बाप के वैभव की मालकिन थीं। चौथी लड़की, चूँकि बिकौआ की औरत नहीं थी, ससुराल में ही रहती थी, उसका पति धनी था। ससुर की जायदाद मे हिस्सा बँटाने की उस भले आदमी की कभी इच्छा नहीं हुई। ये तीनों लड़कियाँ भी एक-दूसरे से अलग हो गयी थीं। दस-दस बीघा खेत एक-एक के हिस्से पड़ा था। तीन में से एक नि:सन्तान थी। एक के एक लडका और दूसरे के दो लडकियाँ थीं। तीनों नाम मात्र की सधवा थीं। पाँच दिन में रत्ती अयोध्या काण्ड के अन्त तक पहुँच गया।

बृहस्पति के दिन रतिनाथ ने पाठशाला में जाकर अमरकोष आरम्भ किया। जयनाथ ने अपने बटुए से एडवर्ड छाप का एक रुपया निकाला और लड़के के हाथ पर धर दिया। कहा—"गिरो पण्डित जी के पैरों पर, प्रणाम करो।"

रत्ती ने रुपया गुरुजी के पैर पर रख दिया, फिर प्रणाम किया। गद्गद होकर पण्डितजी ने आशीर्वाद दिया—"आयुष्मान भव ! विद्यावान् भव !"

छः

अगले दिन सुबह तरकुलवा के लोगों को मालूम हो ही गया कि गौरी आयी है। कब आयी, क्यों आयी, कैसे आयी—इस जिज्ञासा ने पुरुषों से अधिक स्त्रियों को ही चंचल बनाया। लोगों को इतना-भर पता लग सका कि कलेजे की बीमारी है, डाक्टर ने हिलना-डुलना तक मना कर रखा है।

लेकिन, इससे क्या? लोग तो हिल-डुल सकते थे। उनका तो घर से निकलना वर्जित नही था।

आहिस्ता-आहिस्ता एक-एक दो-दो करके टोला-पड़ोस की औरतें जयकिशोर बाबू के आँगन में आने-जाने लगीं। गौरी की माँ ने अपने दिल को काफी मजबूत

बना लिया था —कोई आये, कोई देखे। मेरी लड़की किसी का गला काटकर तो आयी नहीं।

गौरी भाई के खाली पलंग पर लेटी पड़ी थी। दूर के रिश्ते की दो भाभियाँ बिल्कुल करीब आ गयीं, और गौर से घूरते हुए पूछा—"लली, आखिर क्या हो गया है तुम्हें? चेहरा पीला पड गया है, बदन पर खून का नाम नहीं है। नाखून सफेद पड़ गये हैं। यह क्या हो गया है तुम्हें?"

गौरी कुछ बोली नही। मन-ही-मन अपनी स्त्री-जाति पर उसे क्रोध हुआ—ओ अभागी औरतो! मुझे क्या हो गया है, यह तुम भली भाँति जानती हो। तुम्हें रत्ती-रत्ती पता है कि इस तरह का चेहरा एक स्त्री का कब होता है। इस तरह की झेंप, इस तरह का सकोच किसी विधवा की मुखाकृति पर कब छाया रहता है, यह भी तुम भली भाँति जानती हो। फिर क्यों मेरा दिमाग चाटने आयी हो? तुम्हें जिसका खटका है, उसी दुर्भाग्य की मैं शिकार हूँ। मेरी नियति के साथ क्यो मखौल करने आयी हो?

उनमे से एक बिल्कुल पास आकर गौरी को देखने लगी। जरा देर बाद आहिस्ता से उसने अपना हाथ गौरी के सीने पर रख दिया। चट से गौरी ने उसका हाथ पकड़ लिया—"नहीं, मुझे कुछ नही होता है, भाभी। छोड़ दो।"

उसकी आँखों की कड़ाई से भाभी सकपका गयी। दो कदम पीछे हटकर उसने कहा—"नहीं लली, यो ही मैं देख रही थी। किसी ने कहा, तुम बीमार होकर यहाँ दवा कराने आई हो। सो मैं जरा देखने चली आयी।"

इतनी देर बाद अब दूसरी भाभी ने मुँह खोला—"सुनती हूँ, कलेजे मे दर्द होता है!"

गौरी कुछ बोली नही। घूरकर रह गयी।

जिस उल्लास मे यह दोनों स्त्रियाँ गौरी के पास आयी थी, वह मर गया। पत्थर पर तीर मारकर उन्होंने अपने तरकस खाली कर दिये, तो चली गौरी की माँ से बाते करने। वह अजवायन सुखा रही थी। खुद छाँह मे बैठी थी, और आध सेर के करीब अजवायन आँगन में पड़ी सूख रही थी। ये स्त्रियाँ जो रिश्ते में उसकी पतोहू होती थी दिखावटी नम्रता से एक ओर खड़ी हो गयीं, और इशारे से पूछा—"चाची, इस अजवायन का क्या करोगी?"

गौरी की माँ को लगा कि समूचे गांव ने मुझे चिढ़ाने के लिए इन्हीं दोनों छोकरियों को भेजा है। वह बाघिन की भूखी आँखों से उन्हें घूरने लगी कि इतने में उन्हीं मे से एक बोली—"बहिना, पटुआ का साग अजवाइन से छौकने पर बहुत ही स्वादिष्ट हो जाता है। इतनी मामूली-सी बात तुम नहीं जानतीं?"

अब गौरी की माँ से न रहा गया। उन्हें विश्वास हो गया कि जान-बूझकर ये मुझे बनाने आयी हैं। मगर उसने अपने आवेग को दबाया, और बोली—"बेटी,

यह दवा में काम आती है।" जरा रुककर उसने फिर कहा—"कहाँ आयी थीं, गौरी को देखने ?"

आधे घूंघट के अन्दर से सिर हिलाकर दोनों ने जतलाया—'हाँ'। और आँगन से बाहर हो गयीं। गौरी की माँ बड़बड़ाने लगी—"लुच्ची कहीं की ! अजवायन का और क्या होता है, दवा बनती है, वह दवा जो कि ब्याने के बाद औरतें खाती हैं। जान-बूझकर मुझे चिढ़ाने आयी थीं।"

उसके बाद दिन-भर फिर कोई नहीं आया। शाम को मुक्खो की सास आयी। उसने बतलाया कि कैसे गाँव-भर में गौरी की चर्चा हो रही है, और, कैसे इस घटना को लेकर औरतें छी-छी, थू-थू कर रही हैं, मर्दों का लोकमत क्या है, इस बारे में मुक्खो की सास जरा भी जानकारी नहीं रखती थी। सब कुछ सुन-समझ कर गौरी की माँ बोली—"अब तो बात फैल गयी, जानत सब कोई !"

थोड़ी देर चुप रहकर फिर छाती ठोकती हुई वह बोली—"देखें, कौन क्या बिगाड़ता है ? मैं रुई का फाहा नहीं हूँ कि लोग फूंक देंगे, और उड़ जाऊँगी। मर्द हो तो सामने आकर कोई कहे।"

मुक्खो की सास ने अपनी मलिकाइन को शान्त किया। जाते-जाते वह कहती गयी—"जब तक इस जर्जर देह में साँस बाकी रहेगी, गौरी की माँ, तब तक किसकी मजाल है जो तुम्हारी ओर उँगली उठाये।"

पहर-भर रात बीती कि चमाइन आयी।

गौरी की माँ को इस बात का खतरा था कि कहीं लड़की के प्राण न निकल जाएँ। परन्तु बुधुआ चमार की औरत इन कामों में बहुत होशियार थी। उसने कह दिया—"नहीं मलिकाइन, खतरा किस बात का ? यह मेरे लिए कोई नई बात तो है नहीं, ऐसा मौका तो आता ही रहता है।"

चार मास का, छह मास का, आठ मास का, पेट चाहे कितना ही असाध हो, इन हाथों के लगते ही सब ठीक हो जाता है, कमला मैया की कुछ ऐसी मेहरबानी है· ·

माँ ने दखिन ओर मुँह करके दोनों हाथ उठा लिए और आर्त स्वर में गुनगुनायी—"दोहाई बाबा बैजनाथ की ! इस मुसीबत से राजी-खुशी मेरी लड़की निकल गयी, तो गंगाजल भरकर मैं सुल्तानगंज से तुम्हारे धाम पहुँचूंगी।"

इतना कहकर छलछलायी आँखों और भर्रायी आवाज से नाम लेकर बाबा बैजनाथ को उसने प्रणाम किया।

चमाइन अपने काम में लगी।

सात

तारा बाबा की उम्र सत्तर साल से कम न होगी। उनके प्रति लोगों की बहुत ही गम्भीर श्रद्धा थी, बतला ही चुके हैं। शुभंकरपुर की मिट्टी से उन्हें एक प्रकार का मोह हो गया था। साल-डेढ़ साल बाद वह विन्ध्याचल या पशुपतिनाथ की यात्रा में निकला करते और डेढ़-दो महीने बाद वापस आ जाते। फिर वही गाँव, फिर वही कुटी।

गाँव से पूरब बलुआहा पोखर था। कहते हैं, खोदते समय उसमें से इतनी बालू निकली कि उसका नाम ही बलुआहा पड़ गया। यह पोखर शुभंकरपुर गाँव के मालिक राजाबहादुर दुर्गानन्दन सिंह का था। आपके परदादा महाराजकुमार गणेशसिंह ने इसे खुदवाया था। बाइस बीघा जमीन पानी के अन्दर पड़ती थी। आठ बीघा जमीन भिंड (भीड़, भीट) थी। आसपास पाँच कोस में ऐसा तालाब नहीं होने से बलुआहा पोखर इलाके-भर में मशहूर था। चौगवाँ के धनी मल्लाह इस पोखर की मछलियों का ठेका लिये हुए थे। उन्हें दो हज़ार रुपया जल-कर के तौर पर जमींदार को प्रतिवर्ष देना पड़ता था। मछलियाँ इतनी अधिक निकलती थीं कि कम-से-कम छः हजार रुपये बिक्री से आ जाते थे। इसका मतलब यह नहीं कि तालाब की मछलियों का स्वाद गाँव के लोगों की लालसा तक सीमित था। प्रकट और अप्रकट रूप से गाँव के लोग काफी मछलियाँ पीटते थे। बड़ी और छोटी सभी किस्म की मछलियाँ। कहने को गाँव में और भी कई पोखर थे, मगर उनकी मछलियाँ लोगों की पारखी जीभ को रुचती नहीं थीं।

यह तो हुई मछली की बात। पानी का यह हाल था कि भारी से भारी अकाल में भी बलुआहा पोखर पास-पड़ोस के दस गाँवों की टेक रखता था। कभी उसका पानी खराब होता नहीं देखा गया। बरसात के दिनों में वह समुद्र जैसा लगता था। शरद् ऋतु की चाँदनी में नील निर्मेघ आकाश, बिखरे नक्षत्रों की अपनी जमात के साथ बलुआहा पोखर के श्यामल वक्षस्थल पर जब प्रतिफलित हो उठता, तो भिंड (भीट) पर बैठे हुए निपट निरक्षर दुसाध-मुसहर भी कवि की तरह उसाँसें भरा करते! उन्हें जाने अपने जीवन की मधुमय घड़ियाँ एक-एक कर याद आतीं, या क्या।

हेमन्त की हल्की ठंड में सिल्लियों और बनमुर्गियों का झुण्ड बलुआहा के निर्मल जल में घने सेंवार पर इधर से उधर छप-छप करके दौड़ा करता। शिशिर की नीरव निस्तब्ध निशा में रह-रहकर एक-आध बड़ी मछली पानी पर उतराकर अपने 'पर' फड़फडाती तो ठिठुरती प्रकृति के वे एकान्त क्षण मुखरित हो उठते। वसन्त में ग्रामीण बालक-बालिकाएँ लाख मना करने पर भी अपना जल-विहार आरम्भ कर देते। वैशाख और जेठ के महीने में तो मानो वरुण देवता

का खजाना धनी-गरीब, बूढ़े-बच्चे, औरत-मर्द सभी के लिए खुल जाता। इन्हीं दिनों मछुए महाजाल डालकर बलुआहा की तमाम बड़ी मछलियाँ निकाल लेते। बरसात के दिन भी भूलने के नहीं हैं। बाहर से जब पानी का रेला आता तो इस पोखर की बची-खुची मछलियाँ बाहरी दुनिया की सैर को निकल पड़तीं। उनका वह अभियान स्वाद-लोलुप ग्रामीणों के लिए महोत्सव का द्वार उन्मुक्त कर देता। मतलब यह कि चौमासे मे भी काफी मछलियाँ मारी जाती थी। आश्विन और कातिक की कड़वी दुपहरियो में काँटे डालकर मछलियाँ फँसाना देहाती जीवन का एक बड़ा रोमांस है।

भिड पर चारों ओर बरगद, पीपल, पाकड़, मौलश्री, आम और जामुन के पेड़ थे। वे गर्मी, बरसात और जाड़े के दिन मे चरवाहो और राहगीरो के माँ-बाप थे। अपनी शरण में आए हुए पशु-पक्षियों के लिए भी उनमें अपार ममता थी। कीड़े-मकोड़े तक उनकी स्नेह-सुधा से वंचित न थे।

इसी पोखरे पर तारा बाबा की कुटिया थी।

बाबा थे तो फक्कड़, मगर अपने जीवन का भेद उन्होंने किसी से कभी नहीं कहा। बड़ी मुश्किल से इन्द्रमणि ने यह पता लगाया था कि आप बड़े उच्च कुल के ब्राह्मण हैं और सौतेली माँ से अनबन हो जाने के कारण संसार के प्रति विरक्त हो गए हैं।

आश्विन के महीने में बड़ी धूमधाम मे बाबा दसभुजा दुर्गा की पूजा किया करते। शुभंकरपुर मे उत्तर, नजदीक ही छोटा-सा एक गाँव पड़ता है, परसौनी। वहाँ के वंशी मण्डल प्रतिमाएँ बनाने में बहुत ही कुशल थे। यह गुण उनमे अपने पूर्वजों की परम्परा से आया था। आजकल तो लोगों में इन बातों की ओर से काफी उदासीनता दिखाई देती है, परन्तु सौ-पचास साल पहले का जमाना कुछ दूसरा ही था। उन दिनों गाँव-गाँव में प्रतिमाएँ बना करती। आश्विन में दुर्गा की। कातिक में काली, चित्रगुप्त और कार्तिकेय की : माघ मे सरस्वती की, चैत में राम, लक्ष्मण, सीता तथा उनके स्वजन-परिजन, अनुचर-परिचर की—कुल मिलाकर तेरह मूर्तियाँ। भादों में कृष्ण आदि की। इनके अलावा मिट्टी, रंग और कूची के इन उस्तादों की जरूरत और भी कामो में हुआ करती थी।

इसके लिए समूचा गाँव बाबा की मदद करता। वह थे भी तो गाँव भर के गुरु, गाँव भर के शुभचिन्तक। कितने गरीबों की बाबा ने चुपचाप सहायता की होगी। कितने रोते चेहरों के आँसू पोछे होंगे। पीठ थपथपाकर कितने ही लड़खड़ाते पैरों को आगे बढ़ाया होगा। यह कोई बता नहीं सकता। उनके बारे में नाना प्रकार की किंवदन्तियाँ जनता में प्रचलित हो चुकी थी। कहते हैं, एक दफे रात को बाबा की कुटिया में चोर घुसा। थोड़ी-बहुत काम की जो भी चीज मिली, उसे लेकर बाहर निकलने लगा तो निकल ही न सका। उनके पैरों में मानो किसी

ने जाँत बाँध दिया। बाबा बाहर चारपाई पर सोए पड़े थे। सुबह-सुबह उठे तो चोर को ज्यों का त्यों बैठा पाया। पूछने पर वह रो पड़ा। बाबा ने उसे सान्त्वना दी और खिला-पिलाकर विदा किया। मरी गाय को बाबा ने जिला दिया, इस इस बात को कहते-कहते लोग थकते नहीं। छट्टू कुम्हार की एक पूंछ कटी काली गाय थी, मगर दूध बहुत देती थी। एक दिन चरकर आने के बाद वह चित-पट हो गई, जंगल की कोई जहरीली घास खाकर मर गई। छठुआ दौडा-दौड़ा गया और धम्म से बाबा के पैरों पर गिर पड़ा। बाबा एक जड़ी उखाड़ लाए और गाय के मुँह में डाल दी। थोड़ी देर पीठ पर हाथ फेरते रहे कि वह उठ खड़ी हुई।

बाबा खाने-पीने या बरतने की चीज सँजोकर नहीं रखते। इसका फल यह होता है कि न देने वालों की कमी है और न ले जाने वालों की। परिवार में सिर्फ दो कुत्ते हैं। उन्हें बाबा बहुत मानते हैं। यात्रा में निकलने पर खासकर उन्हीं कुत्तों के लिए एक सेवक को नियुक्त कर जाते हैं। सर्दी, जुकाम या फोड़ा-फुंसी हो जाने पर उसी तत्परता से इन कुत्तों की दवा-दारू होती है जिस तत्परता से राजाबहादुर दुर्गानन्दनसिंह की एकमात्र कन्या की। शाम को बड़े प्रेम से बाबा भाँग छानते है। उसमें भाँग की अपेक्षा ठंढई की ही मात्रा अधिक रहती है। जयनाथ जैसे भंग-भक्तों का मन बाबा की ठंढई से नहीं भरता।

उस दिन बाबा भाँग छान रहे थे कि ठीक उसी वक्त जयनाथ पहुँचे। पैर छूकर प्रणाम किया। बाबा ने कहा—"बच्चा, भोजपत्र तो है नहीं। यंत्र कैसे बनेगा?"

कुटिया के ओसारे पर खंभेली के सहारे बैठते हुए जयनाथ ने कहा—"तो क्या होगा ? बादामी रंग के कागज पर लिख देने से काम नहीं चलेगा ?"

दाँतों तले जीभ दबाकर बाबा ने सिर हिलाया—"नहीं रे, नहीं। भोजपत्र का माहात्म्य ही कुछ और होता है। यों तो पीपल के पत्ते पर भी बीजमंत्र लिख देने से काम चल सकता है, परन्तु यह तो खास मामला है न ? भगवती त्रिपुर-सुन्दरी का एक पंचाक्षर मंत्र है, वह अवांछित गर्भ गिराने में अनुपम है। समझते हो न ? इसीलिए कहा कि भोजपत्र ही चाहिए।"

जयनाथ कुछ देर के लिए मौन रहे, फिर कहा—"पंडित कालीचरण पाठक साल-साल नेपाल जाते थे। वहाँ से वह ढेर का ढेर भोजपत्र लाते थे। उनको मरे आठ-दस साल हो गए हैं। ठहरिए, मैं जरा उनके लड़के से पूछ लूं।"

इतना कहकर तुरन्त जयनाथ वहाँ से बस्ती की ओर चल पड़े।

कालीचरण का मकान बस्ती के पूर्वी छोर पर था। जयनाथ जब तक वहाँ पहुँचे तब तक पंडितजी का लड़का अपनी अमराई की ओर निकल चुका था। फिर भी आवाज देने पर पंडितजी की पत्नी बाहर आई। रिश्ते की भाभी होने के कारण वह जयनाथ के सामने आती थी। परन्तु यह क्या, छूटते ही पंडिताइन ने जो पूछा,

उस प्रश्न का सम्बन्ध जयनाथ की कल्पना के भोजपत्र से तो था ही नहीं; उल्टे वह प्रश्न उमानाथ की माँ पर चोट करता था।

"क्यों बाबू!" पंडिताइन ने पूछा—"लक्ष्मण ने आसन्नप्रसवा सीता को ले जाकर कहाँ छोड़ दिया?"

कुछ हतप्रभ होकर जयनाथ ने कहा—"छोड़ा तो आखिर जंगल में ही।"

"और, आप लक्ष्मण लौट आए?"

जयनाथ ने चुप्पी साध ली।

पंडिताइन बोली—"धिक्कार है तुम्हें! उमानाथ की माँ और तुम वर्षों से साथ रहते आए हो और आगे भी सारी जिन्दगी साथ कटेगी, यह मुझे विश्वास है। फिर तुम उस बेचारी को अकेली तोप के मुँह पर छोड़ आए हो!"

जयनाथ ने झुंझलाकर कहा—"तो, भौजी, मैं करता ही क्या? तरकुलवा में बैठे-बैठे पहुनाई करना और लोगों के कटाक्ष सहना...भला, इससे क्या फायदा था? उनकी माँ सब ठीक कर लेंगी।"

"ठीक तो कर ही लेगी," पंडिताइन का सुर मद्धिम पड़ गया। कुछ रुककर उसने फिर कहा—"बुरा न मानना, जयनाथ बाबू! मैं दमयन्ती नहीं हूँ जो हाथ धोकर उमानाथ की माँ के पीछे पड़ जाऊँ। मेरे दिल में मुसीबत की मारी उस औरत के लिए बड़ा दर्द है।" तब दक्खिन की ओर मुँह करके पंडिताइन बोली—"जाने गंगा माई, उमानाथ की माँ को मैं अपनी सगी बहन समझती हूँ। इस दुर्घटना के बाद भी उसके प्रति मेरा स्नेह ज्यों का त्यों है। परन्तु..."

इतनी देर के बाद पंडिताइन का ध्यान इस बात की ओर आया कि अरे! जयनाथ को बैठने के लिए तो कहा ही नहीं। देखते ही लगी मैं उस पर तीर चलाने! तब, ममता-भरी आवाज में उसने कहा—"कब तक खड़े रहोगे? जरा बैठ तो लो।"

दरवाजे पर तख्तपोश पड़ा था। जयनाथ उस पर बैठने लगा तो पंडिताइन बोली—"अजी ठहरो, दरी तो ले आने दो।"

जयनाथ मना ही करते रहे, कि लपककर आँगन से वह दरी उठा लाई और तख्तपोश पर उसे बिछा दिया।

ममता की इस प्रतीक को जयनाथ बहुत गम्भीरता से देख रहे थे।

हाथ पकड़कर पंडिताइन ने बैठा दिया—"ताकते क्यों हो? बैठो न। कोई जल्दी थोड़े है।"

जयनाथ ने कहा—"जल्दी तो नहीं है, लेकिन जिस आँगन में भूकम्प हुआ हो उस आँगन के प्राणी चैन से तो कहीं बैठ नहीं सकते।"

जयनाथ की आँखें डबडबा आईं। उसके दिल के चढ़े हुए तारों को पंडिताइन ने जरा छू भर दिया था कि वे झनझना उठे। उस तीव्र झनकार की लहरों में

जयनाथ का पूरा व्यक्तित्व तिनके की तरह कंपित हो उठा। क्षण-भर के लिए उसकी आँखों के आगे उमानाथ की माँ का चमचमाता चेहरा नाचने लगा। उमानाथ की माँ ! तुम इतनी सुन्दर क्यों हुईं ? पूर्व जन्म के किस अभिशाप से वैधव्य का यह दुर्वह भार ढो रही हो ? मेरी कृतघ्नता को, देवि, कभी क्षमा मत करना···जयनाथ की आँखे छलक पड़ीं।

पंडिताइन से नही रहा गया। अपनी सफेद धोती के आँचल की खूँट से जयनाथ के आँसू पोंछती हुई कहने लगी—"ओह ! नाहक ही इतना सब मैंने तुम्हें कहा। बच्चे तो तुम हो नहीं, रोते क्यों हो ?"

पडिताइन की इस सान्त्वना का फल यह हुआ कि आँसू और भी तेजी से बह निकले। अब अपने ही अँगोछे से आँख पोंछकर और नाक साफ करके जयनाथ ने इशारा किया कि भौजी, बैठ जाओ तुम भी।

पंडिताइन आँगन की ओर चली और कहती गई—"भाग मत जाना, मैं सुपारी लेकर आती हूँ।"

बड़ी मुश्किल से जयनाथ ने अपने को प्रकृतिस्थ किया। तब तक सुपारी के दस-बारह खंड तश्तरी में सामने रख दिए गए थे। पंडिताइन ने कहा—"हाँ, यह तो नहीं बताया कि मेरे लड़के की कौन-सी जरूरत थी जो पुकार रहे थे ?"

दो टुकड़े सुपारी मुँह मे डालकर जयनाथ बोले—"कालीचरन भैया नेपाल से भोजपत्र लाया करते थे। तारा बाबा को एक यंत्र बनाना है, दो उँगली-भर भोजपत्र चाहिए। और कहाँ मिलेगा ?"

अपनी गोल-गोल आँखों को बड़ी करके पंडिताइन बोली—"लाते तो थे··· ठहरो मैं देखती हूँ।"

पंडिताइन भोजपत्र की खोज में अन्दर गई और जयनाथ सोचने लगे—आह ! कितना अच्छा स्वभाव है इस स्त्री का ! इसके पिता जिन्दगी-भर बनैली में राजपंडित रहे। सज्जनता की मूर्ति थे। जैसा बाप, वैसी बेटी। क्यो न हो, हीरे की खान से काँच थोड़े ही निकलता है···

पडिताइन फौरन वापस आई। उसके हाथ में भोजपत्र था। जयनाथ को उसे देती हुई कहने लगी—"पंडित रोज चंडी का पाठ करते थे। उसी पोथी के गत्ते मे यह भोजपत्र पड़ा था। मुझे ख्याल आया और मैं निकाल ले आई।"

भोजपत्र लेकर जयनाथ चले तो तश्तरी में बचे पड़े सुपारी के टुकड़े उठाकर पंडिताइन ने कहा—"बाबू, यह रख लो बटुए में। खुद न खाना तो किसी को खिला देना।"

वाह भौजी, तुमने भी खूब कहा, खुद न खाना···

आठ

पाठशाला में भी जल्दी ही रतिनाथ ने छोटे-बड़े विद्यार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। पंडितजी भी उस पर प्रसन्न रहते थे क्योंकि अपने पाठों को वह खूब मन लगाकर याद किया करता। इसके अलावा जब जिस काम में वे उस लड़के को लगाते तो उसमें वह जरा भी आनाकानी नहीं करता। हाँ, पंडितजी का धौला बैल बड़ा बदमाश था। एक दिन रत्ती से उन्होंने कहा—"इसे ले जाकर तालाब से पानी तो पिला लाओ।" रत्ती ने असमर्थता जाहिर की तो पंडितजी बोले, "अरे, यह काम तो सात साल का हमारा मुन्नू कर लेता है।"

इस पर रत्ती ने कहा—"गुरुजी हमारे अपने यहाँ तो बैल-गाय है नहीं। फिर हम क्या जानें कि किस तरह पुचकारने से बैल सीधी राह पकड़कर पानी पी आता है।"

यह पंडितजी बड़े ही चतुर थे। बारह रुपया महीना डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से भी लेते थे, और पाँच रुपया राजाबहादुर से भी। पतिया-प्रासचित से भी कुछ निकल आता था। पुरोहित के कामों मे भी पंडित जी का दखल था। गरज यह कि कुल मिलाकर पंडित की आमदनी पचीस रुपए माहवार पड़ जाती थी। अपनी ही दालान मे पाठशाला थी। सात-आठ बीघा खेत थे। दो चचेरे भाई थे। तीन लड़कियाँ, दो लड़के। तीन गाय-बैल एक हलवाहा, एक खेत-मजदूर। घर-गिरस्त का छकड़ा मजे में पंडित जी चला रहे थे। अध्यापन का कार्य उनके लिए उतने महत्त्व का नहीं था, जितने महत्त्व की खेती-बाड़ी और पुरोहिती। राजाबहादुर दुर्गानन्दन सिंह पंडितजी को खूब मानते थे। अन्दर हवेली में रोज चंडीपाठ करने का संकल्प पंडित जी के दादा ही कर गए थे। अभी तक उसे यह पंडित जी चलाए जा रहे हैं। इसीलिए बारह रुपया सालाना मिलता है। रक्षाबन्धन के दिन राजाबहादुर की कलाई मे पंडित जी राखी बाँधते हैं। विजयादशमी के दिन राजाबहादुर के सिर पर जौ के मृदु मनोरम हरित-गौर अंकुर डाल आते हैं। इसका भी एक-एक रुपया बँधा है। पर्व-त्योहार के दिन कभी पंडितजी अपने घर नहीं खाते, ऐसे अवसरों के लिए राजाबहादुर के यहाँ उनका नित नेवता रहता है। पेट भरकर खा भी आते हैं और अँगोछे में बाँधकर ले भी आते हैं।

राजाबहादुर और उनके पूर्वजो का गुणगान पंडितजी के नित्यकृत्य का ही एक अंग है। अपने छोटे-बड़े छात्रों को पाठ के आदि, मध्य या अन्त में राजाबहादुर से सम्बन्ध रखने वाली कथाएँ अवश्य वे सुना जाते हैं, और है भी ठीक। वैद्यनाथ-धाम में उस साल नौ दिनों तक हरिवंश पुराण रानी ने यदि पंडितजी के मुँह से न सुना होता तो यह लड़की भी न हुई होती? पंडित जी कहा करते—"यह मेरा ही दुर्भाग्य है कि राजा बहादुर के यहाँ लड़का नहीं हो रहा है···" यह कहकर

दाएँ हाथ की तीन बिचली अँगुलियों से वे अपना चन्दनचर्चित ललाट ठोंकने लगते।

शुभंकरपुर की उस छोटी-सी पाठशाला में नियमित रूप से पढ़ने वाले लड़कों की तादाद तेरह थी। उसमें से पाँच शब्द रूपावली, धातु रूपावली और अमरकोष पढ़ रहे थे। रत्ती पढ़ने में तेज तो था ही, महीना पूरा होते-होते अपने साथियों में प्रमुख हो गया। इस पाठशाला का वायुमंडल उसे और भी स्वतंत्र मालूम पड़ता था। प्राइमरी स्कूल में तीस-पैंतीस लड़के थे। खजूर की छड़ी लेकर बैठे हुए मुंशी जयवल्लभलाल की कड़ी मूँछों वाली वह सूरत रत्ती को बहुत भयावनी लगती थी। वहाँ अनुशासन काफी कड़ा था। घर में क्रोधी पिता के डर से जी भरकर वह कभी मुस्करा भी तो नहीं सका! इस पाठशाला का यह शिथिल अनुशासन रतिनाथ की चेतना के लिए कुछ स्फूर्तिप्रद साबित होने लगा। यहाँ पंडितजी लडकों को परेशान नहीं करते थे। बहुत हुआ तो हलकी उँगलियों से कान उमेठ दिए; गधा, कुत्ता और पाजी कह दिया; बस। खजूर की उस छड़ी के आगे मीठी सजा का यह संसार रत्ती को रोचक लगा। इसका फल यह हुआ कि उस मुक्त-प्रकृति के साथी मिले। उछल-कूद का मौका मिला।

अपने पिता से कई दफे उसने कहा—"शब्द रूपावली और धातु रूपावली मँगवा दीजिए। अमरकोष की जिल्द बँधवा दीजिए।" परन्तु जयनाथ ने बराबर झिड़क दिया—"अभी यह तो खत्म करो। किताबें आ जायेंगी। जिल्द नहीं बँधी तो क्या हुआ? तुम्हारे हाथ से तेल चूता है क्या?"

भीतर ही भीतर रत्ती का दिल कचोट और आत्मग्लानि से भर उठता। उसे चाची याद आतीं।

एक दिन वैशाख की कड़ी दुपहरी में वह पाठशाला पहुँचा। और लड़के दो-अढ़ाई बजे के करीब आया करते थे। रत्ती भी समय पर ही आता था; मगर आज वह निर्जन दुपहरी में पाठशाला के अन्दर घुसा।

सरस्वती की एक सुन्दर प्रतिमा थी। प्रतिवर्ष वसन्तपंचमी (माघ) के दिन सरस्वती की नई प्रतिमा की स्थापना होती थी, और साल-भर वह प्रतिमा ज्यों की त्यों वहाँ रहती थी। दूसरे कोने में एक रद्दी-सी आलमारी थी। उसी में पंडितजी अपनी पुस्तकें रखा करते। टूटी होने के कारण वह ऐसी थी कि कोई भी चीज यों ही अन्दर रख या बाहर निकाल सकते थे। लड़कों का जिस दिन खूब खेलने का मन रहता, उस दिन वे भी अपनी किताबें आलमारी में डाल देते। सो, आज रत्ती ने अपने साथियों को आलमारी के अन्दर किताबें डालते देखा था।

इधर-उधर नजर मारता और पैर बचाता हुआ वह आलमारी के पास पहुँचा। अन्दर हाथ डालकर चार-छः किताबें निकालीं। तीन नई और अच्छी किताबें उसने छाँट लीं और पुराने अखबार में लपेटकर उन्हें पाठशाला से जरा दूर एक झाड़ी में

छिपा दिया। फिर शंकित चित्त से बार-बार झाड़ी की ओर देखता हुआ वह अपने घर चला आया। उस दिन दुबारा रत्ती पाठशाला नहीं गया।

अगले दिन सुबह जब पाठशाला पहुँचा तो उसके सभी साथी चोर को गालियाँ दे रहे थे। रतिनाथ को उन्होंने घेर लिया और ऊपरा-ऊपरी कहने लगे—"देखो रत्ती, आलमारी के अन्दर से किसी ने हमारी किताबें उड़ा ली हैं… हे सरस्वती माता, आपको तो पता होगा !"

रत्ती का दिल धड़क रहा था। आज तक उसने बाहर चोरी नहीं की। अपने घर मे समय-समय पर दुअन्नी, इकन्नी, चवन्नी और अठन्नी चुराई थी। बाप ने दो-तीन दफे पकड़ा भी था। और, आज रत्ती के इस छोटे-से जीवन में यह पहला ही अवसर है कि उसने किसी की कोई चीज चुराई है।

रत्ती के अन्दर से एक धीमी-सी आवाज आई—"धिक्कार है! अपने साथियों की किताबें तुम चुरा ले गए !"

झूठ वह पचीसों बार और बोला है, मगर आग में तपाए लोहे के लाल गोले की भाँति इतना असह्य झूठ रत्ती के कंठ से कभी बाहर नहीं निकला। वह बोला—"चोरी ! नहीं, नहीं, चोरी नहीं, किसी ने देखने के लिए उठा ली होगी।"

साथी एक साथ चिल्ला उठे—"अरे भाई, इन छोटी-छोटी किताबों की जरूरत और किसको पड़ी होगी ! भूत-प्रेत तो ले नहीं गए होंगे ! अच्छा, परसौनी का जूगल कामति कटोरा चलाना जानता है। जिस साले ने हमारी किताब ली होगी, उस पर अगर कटोरा न चलवाया, तो…"

यह सुनकर रतिनाथ का चेहरा फक हो गया। उसे लगा कि चोरी का पाप दानव बनकर आज उसको निगल जायगा। पिता सुनेंगे तो कच्चा खा जाएँगे। हे भगवान !…बेचारे की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। शौच जाने का बहाना कर वह नजदीक के पोखर की ओर चला गया। उसके मुँह से इतनी-सी भी बात नहीं निकल सकी कि साथियो ! कटोरा चलवाने की क्या जरूरत है? पाठशाला के सभी लड़कों को सुनाकर यह कह दो, आज शाम तक—नहीं, कल सुबह तक आलमारी के अन्दर किताबें वापस न आईं तो हम परसौनी जाकर चोर पर कटोरा चलवाएँगे।

रत्ती शौच के लिए गया तो पोखर के भिंडे से नीचे उतरकर इमली के एक बूढ़े पेड़ की आड़ में बैठ गया। उसकी आँखों से आँसू का अविरल प्रवाह चुपचाप बह चला, लेकिन आज चाची नहीं थी कि अपनी धोती की खूँट से आँसू पोंछती और पीठ पर हाथ फेरते हुए चुमकारती, पुचकारती।

वह सूने मन से बड़ी देर तक रोता रहा। उसने रो-रोकर अपनी आँखें लाल कर लीं। अन्त में वापस लौटा और पोखर में नहाने के घाट पर घुटने-भर पानी

के अन्दर घँसकर उसने आँख-मुँह, हाथ-पैर धोए। पानी से निकलकर अँगोछे के फटे-पुराने कपड़े से चेहरा पोंछा और फिर पाठशाला आ गया। वहाँ वह अपनी किताब लेकर जब पढ़ने बैठा तो सत्तो (सत्यनारायण) ने कहा—"तुम्हारी आँखें क्यों लाल हो गयी हैं, रत्ती ?"

"पोखर पर गया था, उड़ते कीड़े पड़ गये थे। बड़ी मुश्किल से निकले। मसलने से आँखें लाल हो गयी," रतिनाथ ने जवाब दिया।

थोड़ी देर बाद रत्ती घर के लिए चल पड़ा—आज पिताजी नहीं हैं, रसोई करनी पड़ेगी ?

उस दिन भी दुबारा वह पाठशाला नहीं गया! अगले दिन आलमारी में गायब किताबें मौजूद थीं। किताबें मिलने की खुशी मे सत्तो, परमा, उत्तिम, नित्या और रत्ती—पाँचो साथियो ने मिलकर सरस्वती मैया को पांच पैसे की मिठाई अगले इतवार को चढ़ाना मंजूर किया।

नौ

आम अब बड़े-बड़े हो गये थे। बैशाख का महीना खतम हो गया था। चाचो के न रहने से इस बार सतुआ संक्रान्ति रत्ती के लिए फीकी रही। बीच-बीच मे कई बार अंधड और तूफान आये। इतने आम गिरे कि घिवही की टहनियाँ हलकी हो गयीं। अचार तो बनाता ही कौन ? रह गयी आमिल (कच्चे आमों की सूखी फाँकें, खटाई) और फाँकी की बात, इसमें जयनाथ ने तत्परता दिखाई। दो मजूरिन रखकर गिरे-पडे आमों की आमिल और फाँकियाँ उन्होंने काफी बनवा लीं!

अब इक्के-दुक्के आम पकने लग गये थे। एक दिन सुबह-सुबह रतिनाथ ने एक पका आम पाया और खुशी के मारे चिल्ला उठा—"पिताजी, यह देखिये, कैसा बढ़िया है!" घर के अन्दर से ही जयनाथ ने आवाज दी—"अरे सूँघ मत लेना, भगवान को भोग लगाएँगे।"

रत्ती ने वह आम लाकर फूल-डाली में रख दिया।

इस बार शुभंकरपुर में आम खूब नहीं फला था। जिसके बाग में दस-पाँच भी कलमी पेड़ थे, उनकी तो बात नहीं, लेकिन बीजू ही बीजू के पेड़ जिनके बाग मे थे, उनके लिए सचमुच ही आम कम था। जयनाथ के पिता एक कलकतिया

और एक मालदह की कलम लगा गये थे। सेवा नहीं होने के कारण ये दोनों पेड़ प्रौढ़ होने से पहले ही बुड्ढे हो रहे थे। कुछ डालें सूख गयी थीं। कुछ में टहनियाँ कम थीं। फिर भी सौ-दो सौ आम हर साल वे देते थे। मालदह (लँगड़ा) का पेड लम्बा नहीं, फैला हुआ था। जब जयनाथ नहीं रहते, उस समय मालदह की टेढ़ी-मेढ़ी डालों पर रतिनाथ का एकछत्र राज्य रहता और वह टोल-पड़ोस के पाँच-सात लड़कों को बुलाकर खेलने लग जाता था। और, इस बार तो मालदह में गिने-गिनाए पचास आम बच रहे थे। मालदह आमों का राजा है—जिसने एक बार खाया, उसका कहना है। कलकतिया फलने में बहादुर होता है, लेकिन जयनाथ का भी यही कलकतिया अपने मालिक की लापरवाही से चिढ़कर कसम खा बैठा है, कम से कम फलो।

इससे क्या? आम के अपने पेड़ फलें या न फले, जयनाथ ब्राह्मणों की भिक्षा-वृत्ति के बहुत प्रशंसक थे। राजाबहादुर की ड्योढ़ी के चारों ओर सैकडो बीघा कलमबाग थे। दुनिया के लिए आम का अकाल भले ही हो, लेकिन राजाबहादुर की स्टेट कभी आम के फलों से खाली नहीं जाती थी। दस-दस, पाँच-पाँच करके भी फलने तो लाखों फल निकल आते। 'बम्बई' आम जेठ से ही पकने लगता है, और बथुआ ठेठ कुआंर तक जाता है। इन चार-पाँच महीनों में स्टेट के कर्मचारी आम खा-खाकर लाल बुन्द हो जाते। अवधनारायण मल्लिक राजाबहादुर के यहाँ दीवानगीरी करते थे। मल्लिक जी के घर बच्चे हो-होकर मर जाते। न लड़का जीता न लडकी। ताराबाबा के आदेश से दीवान जी साधु-ब्राह्मणों की बडी सेवा करते थे।

जयनाथ पर तो उनकी खास कृपा थी; वे कई बार मल्लिक जी के यहाँ महामृत्युंजय का जप कर चुके थे। दक्षिणा के अलावा दो धोतियाँ, कम्बल का आसन, अर्घा, पंचपात्र, आचमनी, (हवन और पूजा के समय काम आने वाले धातु के लघु पात्र) ताँबे की पवित्री (अँगूठी) मिला करती। जितने दिनों तक जप चलता, तस्मई (खीर) और पकवानो से एकभुक्ति (पूजा-पाठ करने वालों का दिन में एक बार सात्विक भोजन करना) होती।

जयनाथ को मल्लिक जी का बड़ा भरोसा रहता था। जब जाते, शास्त्र-पुराण की बात सुनाकर, कोई न कोई चीज या एक-आध रुपया ले आते। दीवान जी की तीसरी पत्नी का मायका मानिकपुर में था और जयनाथ की भी शादी वहीं हुई थी। गाँव के रिश्ते में वह जयनाथ की सरबेटी होती थी और इन्हें फूफा कहा करती थी। इस प्रकार मल्लिक जी के परिवार में जयनाथ का प्रवेश हो गया था। अब, दुनिया में चाहे आम फले या न फले, मल्लिक जी बरकरार रहें; जयनाथ को और चाहिए क्या?

आठ-दस दिन बीतते-बीतते घिवही (आम की एक जाति) के आम पक-पककर

टपकने लगे। दिन-भर की प्रचंड गर्मी, दो पहर रात तक की ठिठकी हवा और उसके बाद रात्रिशेष में जब दक्षिण पवन ग्रीष्म ऋतु की श्रान्त शिथिल अलस प्रकृति-नटी के सिमटे हुए आँचल को फरफराने लगता, तो घिवही के विशाल वृक्ष की निस्पन्द टहनियाँ उच्छ्वसित हो उठतीं—टप-टप करके आम गिरने लगते। पूर्वी आसमान में शुक्रतारा अपने मधुर उज्ज्वल प्रकाश से दिग्वधुओं को ललचाता हुआ सहसा उग आता कि रत्ती की आँखें खुलतीं। वह पेड़ के नीचे जाकर आम चुनने लगता। एक-एक करके बीती बातें उसे याद आतीं—पद्मा की आँखें, बागो के लम्बे बाल! अपर्णा का गोल-मटोल चेहरा। और, इन सब पर अपने बड़े-बड़े परन्तु हलके पंख फैलाकर मुस्कराने वाला चाची का वह अनुपम सौन्दर्य! आसिन की दूध-धुली रातों में इन लडकियों के साथ वह छुटपन से ही हरसिंगार के फूल चुनता आया है। बाप की मार खाकर, यही जगह है कि, घंटों खड़े होकर माँ की याद में उसने आँसू बहाये हैं। यही जगह है कि चाची की अशेष सहानुभूति का अधिकृत उत्तराधिकारी की भाँति हृदय से उपभोग किया है।···

तब तक जयनाथ भी उठ जाते और अच्छी तरह पौ फट चुकी होती। फिर बिहान हो जाता। पूर्वजों के खुदवाए हुए अपने उस छोटे पोखर की हल्की लहरों पर जब रतिनाथ बालरवि की किरणों को मचलते देखता, तो सिहरन से उसका रोम-रोम कंटकित हो उठता।

जयनाथ का उमानाथ की माँ पर तो ध्यान था ही, फिर भी तारा बाबा ने जो यंत्र दिया था, उसे उन्होंने तरकुलवा नहीं भेजा। लिफाफे में भेजने से यंत्र का प्रभाव घट जाता। शूद्र के द्वारा इसे भेजा जा नहीं सकता! अन्ततोगत्वा जयनाथ ने तय किया कि रत्ती को तरकुलवा भेज दें।

कुल्ली राउत (अहीर ग्वाले की जाति) को साथ कर दिया। यह खवास (सेवक) सत्तर साल का था। बातचीत, रंग-ढंग और बनाव-देखाव ऐसा था कि अपरिचित लोगों को भ्रम हो जाता कि यह ऊँची जाति का कोई आदमी है। उसे संस्कृत के कई स्तोत्र याद थे। जनेऊ का मंत्र वह जानता था और, कहते संकोच होता है, गायत्री भी उसे आती थी। सकोच इसलिए कि जिस गायत्री के लिए ब्राह्मण बटुकों का उपनयन संस्कार होता है, जो सिर्फ द्विजों की चीज है, उस महान् प्रणव को एक शूद्र जान जाय, यह असह्य है। जाने कैसे उसने सीख ली थी। जयनाथ से इस बात की किसी ने शिकायत की, तो वह फुफकार उठे—"साले की चमड़ी उधेड लूंगा। शूद्र है तो शूद्र की भाँति रहे।"

तरकुलवा के रास्ते पर दरभंगा महाराज का एक बडा-सा पोखर पड़ता है। वहीं दोनो ने स्नान किया, रतिनाथ ने जल्दी-जल्दी संध्या की तो कुल्ली राउत ने टोका—"बबुआ, तुम नीलमाधव उपाध्याय के वंशधर हो। फिर अपने कर्म-धर्म में इतनी हड़बड़ी क्यों दिखाते हो? कहीं कोई जान जायगा तो शुभंकरपुर की

हँसी होगी।"

रत्ती ने जवाब दिया—"अरे, यहाँ कौन देखता है? देखना चलकर तरकुलवा में, घंटा-भर नाक न दबाए रहा, तो जो कहो।"

राउत ने मुस्कराकर कहा—"लो, बाप का गुन सीख न गए! जयनाथ भी जब दूसरी जगह जाते हैं, तो चार-चार घंटे पूजा करते हैं।"

रत्ती को बात लग गयी। ऊपर से उसने कहा—"चलो राउत, धूप कड़ी हो जायगी।"

दोनों चले, परन्तु रास्ते-भर रतिनाथ यही सोचता रहा कि राउत का कहना गैरवाजिब नहीं था। पिताजी अपने यहाँ तो पूजा-पाठ में आधा घंटा मुश्किल से ही लगाते हैं, मगर लोगों के सामने गप्पें खूब मारते हैं। क्यों किसी को ऐसा करना पड़ता है? रतिनाथ को कुल्ली राउत बहुत ही चतुर, बहुत ही व्यावहारिक, और बहुत बड़ा ज्ञानी मालूम पड़ा। वह सोचने लगा—अगर यह भी ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ होता, तो निश्चय ही इसके बदन पर फटे-पुराने कपड़े न होते। हमारी जूठन खाकर, हमारी पहिरन पहनकर इसके बच्चे पलते हैं। उन्हें कभी स्कूल और पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता। क्या मर्द, क्या औरत—इन लोगों का जीवन बड़ी जातिवालों की मेहरबानी पर निर्भर है···सोचते-सोचते रतिनाथ का दिमाग चकराने लगा तो तरकुलवा नजदीक आ गया। पूछने पर एक घर से आवाज आयी—ग्वाले का घर है। कुल्ली ने रत्ती से कहा—"आ तो गये ही, बबुआ, जरा सुस्ता न लें!"

इस सुस्ताने की ओट में कुल्ली राउत की तमाखू पीने की इच्छा काम कर रही थी। अन्दर से बुढ़िया निकली तो कुल्ली ने कहा—"पीनी (गीली तम्बाकू) हमारे पास है, तुम हुक्का भर कर ला दो।"

"और, आग नहीं चाहिए?" मुस्कराकर बुढ़िया ने कहा। फिर उल्टे पैर आँगन चली गयी। पीनी लेती गयी थी।

हुक्का और चिलम जब आयी तो राउत रतिनाथ को तरकुलवा का भूगोल बता रहे थे—"पाँच कोस उत्तर नेपाल है। पूरब लौकहा थाना है, दक्खिन थाना फुलपरास पड़ता है। पच्छिम कमला मैया बहती है। जमीन बड़ी उपजाऊ है। दो-दो मन कट्ठा धान उपजता है।"

फिर तन्मय होकर राउत तमाखू पीने लगे। गुड़गुड़ाते-गुड़गुड़ाते जब जी भर गया, तो हुक्का बुढ़िया को थमा दिया।

चुम्मन झा का घर राउत को मालूम था। वह कई दफे भार (बोझा) लेकर तरकुलवा आया है। सीधे दोनों जयकिशोर बाबू की दालान पर पहुँचे। रतिनाथ आँगन में चला गया। चाची पूरब की ओर वाले घर के ओसारे पर बैठी थी। आँखें चार होते ही वह बोल उठीं—लाल मेरे, इतनी कड़ी धूप में पैर तो तुम्हारे

जरूर ही पक गये होंगे ! साथ कौन आया है, राउत ?"

"हाँ !" कहते हुए, रत्ती ओसारे पर पहुँचा और चाची के पैर छुए। गौरी ने उसे छाती से लगा लिया और ठुड्डी छूती हुई बोली—"हे भगवान ! भूखे पेट इस जेठ में कैसे आया होगा ?"

रत्ती ने कहा—"नही चाची, भूखा नहीं हूँ, चिउड़ा और आम साथ थे ।"

आँखें नचाकर चाची ने कहा—"रहने भी दे, चिउड़ा और आम । पेट पाजर से सटा जा रहा है, और, भूखे नहीं हैं !"

रत्ती ने देखा, आषाढ़ में जब पहले-पहल किसी दिन मूसलाधार वर्षा होती है, तब जिस तरह धरती का सद्यःस्नात रूप निखर आता है, उसी प्रकार चाची का शरीर लगता है। डेढ़ मास पहले चाची की शकल जैसे कुछ पीली-पीली लगती थी, अब वैसा रंग नहीं था। इस परिवर्तन का रहस्य उस किशोर का मन भला जान ही कैसे सकता था ! उसके लिए इतना काफी था कि बीमार होकर चाची तरकुलवा आयी थी, और अब राहु-मुक्त चन्द्रकला की भाँति अपने स्वाभाविक स्वास्थ्य को फिर से उसने पा लिया है।

लोटा भर ठंडा पानी लाकर अपने ही हाथ से चाची ने रत्ती के पैर धोये। अपने ही आँचल से उन्हें पोंछा और कहा—"राउत को भी पानी दे आओ, हाथ-पैर धोएँगे ।"

जब तक राउत को पानी देकर वह आया, तब तक इधर चाची ने काँसे की उसी चमचमाती थाली में खाना परोस रखा था। वह खाने बैठा तो चाची पंखा झलने लगी। खाते-खाते रत्ती ने पूछा—"क्यों चाची, इस साल इधर आम की फसल कैसी है ?"

पंखे की बेंट से अपनी ठुड्डी को टेककर चाची बोलीं—"आठ आना समझो ।"

रतिनाथ की आँखें चमक उठीं। वह गुनगुनाया—"फिर तो दस दिन रहने का मन करता है ।"

इतने में उसे भूली हुई कोई बात याद आयी। खाते-खाते ही गौर से इधर-उधर नजरें घुमाईं और कहा—"नानी दिखाई नही पड़ रहीं !"

पंखा झलते हुए चाची ने कहा—"रात में चोरों ने आम तोड़ लिए। मालदह (कलमी आम की जाति) के दो पेड़ साफ कर दिए, माँ वहीं गयी है। जो कुछ बच रहे हैं, उनकी हिफाजत का इन्तजाम तो करना ही पड़ेगा ।"

रत्ती मचल उठा—"खाने के बाद मैं वहीं जाऊँगा ।"

"नही बेटा, जब ठण्डा होगा, तब जाना, अभी बहुत धूप है। और, मैं तो राउत के सामने जाती नहीं। बूढ़े को खाना कौन खिलाएगा !"

वह इस दलील से चुप हो गया।

राउत को खिलाकर और दो टुकड़े सुपारी देकर रत्ती अन्दर आया और

जयकिशोर बाबू के पलंग पर चाची के पास सो गया।

थोड़ा दिन बाकी रहा तो गौरी की माँ बाग मे लौटी। रतिनाथ को देखकर बहुत खुश हुई। शाम को रत्ती और राउत बाग की ओर टहलने गये। बम्बई आम (कलमी आम की जाति) जा रहा था और मालदह का पकना शुरू हो गया था कि ऐन मौके पर चोरों ने धावा बोला। फिर भी डेढ़-दो सौ बच रहे। दोनों ने घूम-फिरकर सारा बाग देखा। राउत की भी तबियत हुई कि दस दिन रहकर आमों की बहार लूटी जाय, मगर उसे अपने वे खेत याद आये, जो मड़ुआ रोपने के लिए तैयार पड़े थे।

राउत दो ही दिन तरकुलवा मे रहा, फिर भी काफी आम उसे खाने को मिले। गौरी की माँ को खिलाने-पिलाने का बड़ा शौक था। स्वयं विधवा होने के कारण वह निरामिषभोजी थी, परन्तु आगन्तुकों के लिए दूर-दूर से मछलियाँ मँगवाती, खस्सी (वह बकरा जिसकी नसबंदी कर दी गयी हो) पिटवाती। यह ठीक है कि कुल्ली राउत के लिए तरकुलवा में कभी खस्सी नहीं पिटवायी गयी, फिर भी उमानाथ की नानी का स्वागत-सत्कार इस बूढे खवास के लिए खास आकर्षण रखता था। वह दो दिन रहा, और तीसरे दिन प्रातःकाल शुभकरपुर के लिए रवाना हो गया। चाची ने जयनाथ के लिए दस बम्बई और दस मालदह आम दिए।

दस

समाज उन्हीं को दबाता है, जो गरीब होते हैं। शास्त्रकारो को बलि के लिए बकरे ही नजर आये। बाघ और भालू का बलिदान किसी को नही सूझा। बड़े-बड़े दाँत और खूनी पंजे पंडितों के सामने थे, इसलिए उधर से नजर फेरकर उन्होंने बेचारे बकरों की बलि का फतवा दे डाला।

गौरी की माँ समाज के लिए बाघिन थी। इतना बड़ा 'कुकांड' हो जाने पर भी तरकुलवा में किसी ने गौरी की माँ को खुल्लम-खुल्ला कुछ कहा नहीं। गर्भ गिराने के ठीक ग्यारहवें दिन उसने सत्यनारायण की पूजा की। गाँव-भर को आमंत्रित किया। पाँच ही छह लोग थे, जो नहीं आये। उनमें से तीन तो ऐसे थे जिनकी इस घर से पुश्तैनी अनबन थी। बाकी दो-तीन ऐसे थे जिनका ख्याल था कि सिमरिया घाट (बरौनी के निकट गंगा का किनारा) जाकर प्रायश्चित्त कर

लेने के उपरान्त ही सत्यनारायण की पूजा करवानी चाहिए थी।

गौरी की माँ का कहना था कि बूँद-भर गंगा जल में उतनी ही सामर्थ्य है, जितनी कि सिमरिया घाट की गंगा में। यों कोई कहे तो हमारी बेटी पचास बार गंगा नहाने को तैयार है। गो-हत्या, ब्रह्म-हत्या का पाप तो इसने किया नहीं, फिर महज मामूली बीमारी के लिए किसी को इतना बड़ा दण्ड मैं कैसे दिलवाती?

गरी-छुहाडे और मुनक्के डलवाकर पंजीरी तैयार की गयी थी। पुरोहित महाराज थे, बुढ़ऊ वैदिक नरेश ठाकुर। गुलाबी रंग में रंगी हुई दो धोतियाँ सत्यनारायण स्वामी को चढ़ाई गयी थी। पीले रंग में रँगा हुआ तीन हाथ का एक अँगोछा। पुजारी बने थे शकर बाबा। संकल्प कराते समय वैदिक जी ने जयकिशोर की माँ से कहा—"गौरी बिटिया से कहो, पुजारी के सामने आकर जरा बैठ जाय।"

स्वच्छ सफेद शान्तिपुरी धोती पहिने गौरी सामने आयी, तब संकल्प हुआ—"ॐ अद्य ज्येष्ठे मासे शुक्ले पक्षे त्रयोदश्यां तिथौ निवृत्तरोगाया अस्याः श्री गौरी देव्याः सर्वाऽऽपत्ति प्रशमनार्थं सांगसायुध सवाहन सपरिवार श्री सत्यनारायण पूजनमहं करिष्यामि···"

पूजन हुआ, कथा हुई, विसर्जन हुआ। फिर आमंत्रितो मे प्रसाद बाँटा गया। इस बीच मे रह-रहकर ढोल, पिपिहिरी वाले गाते-बजाते रहे। छाँटकर जिन पन्द्रह ब्राह्मणों को खाने का निमंत्रण दिया गया था, उन्हें खिलाया गया।

गाँव की तीन-चार वृद्धाओं ने भी असहयोग कर दिया था। गौरी की माँ को किसी की परवाह नहीं थी। हाँ, बेटे का डर जरूर था। अभी जयकिशोर के आने में आठ-नौ दिन की देरी थी। उनके आने से पहले ही गौरी ने शुभंकरपुर लौटना चाहा। इस विचार मे माँ भी सहमत हो गयी।

जेठ की पूर्णिमा को, रात के समय बैलगाड़ी पर रत्ती और चाची राजनगर स्टेशन की ओर चले। गाड़ीवान एक ग्वाला था। गाँव से बाहर आने पर रतिनाथ ने बाबा से कहा—"स्टेशन बहुत दूर है, आइए आप भी चढ़ लीजिए। नही तो थक जाएँगे।"

दाँतो तले जीभ दबाकर बाबा ने गम्भीरतापूर्वक सिर हिलाया—उहूँ:।

रत्ती बाबा की ओर बकर-बकर ताकने लगा। अपने हाथ से उसका हाथ दबाकर गौरी ने कहा—"बाबा, कभी बैलगाड़ी पर नहीं चढ़े? तुम्हारा गाँव कहने को तो पंडितों का गाँव है, किन्तु आँख-मुँह ढँककर बड़े-बूढ़े भी बैलगाड़ियों पर दूर-दूर तक हो आते हैं। तुम्हारे बाप को भी मैंने एक बार बैलगाड़ी पर बैठे देखा है।"

रत्ती को बूढ़े बाबा के प्रति एक अजीब-सी श्रद्धा हो आयी। वह बोला—"तो चाची, कुछ दूर तक मुझे भी इन्हीं के साथ पैदल चलने दो।"

"पागल कहीं का !" चाची ने डाँटा—"फूलकर पैर तुम्बा हो जाएँगे !"

आखिर रत्ती नहीं माना। छलाँग मारकर नीचे आ गया और शंकर बाबा के पीछे-पीछे चलने लगा। थोड़ी दूर जाकर उसने मुँह खोला—"क्यों बाबा, आप बैलगाड़ी पर क्यों नहीं चढ़ते ?"

बाबा ने सुरती फांक रखी थी। थूककर कहा—"बच्चा, अब कोई इन बातो का विचार नहीं करता। बैल ठहरे शिवजी के वाहन। इनके चारों पैर धर्म के ही चार चरण हैं। इसीलिए ब्राह्मण न हल जोतते हैं, न गाड़ी चलाते हैं। चढ़ना भी मना है।"

बाबा ने एक बार फिर थूका। रत्ती ने फिर पूछा—"तो क्यों लोग चढ़ने लगे हैं ? हल तो कोई नहीं जोतता है।" बाबा ने चलते-चलते रतिनाथ का कन्धा पकड़ लिया और थोड़ा रुक गये। बोले—"घोर कलियुग आ गया है, आज नहीं तो कल ब्राह्मण भी हल जोतेंगे। देख लेना। अंग्रेजी पढे-लिखे ब्राह्मण, सुना है, प्याज-लहसुन खाते हैं। मुर्गी का अण्डा खाते हैं···" इतना कहकर बाबा ने फिर थूक दिया।

गाड़ी चली जा रही थी, ढचर-ढचर-ढच। गौरी उसी पर लेटी पड़ी थी। आकाश मे चांद अमृत बरसा रहा था। हौले-हौले हवा चल रही थी। तारों को एक-दूसरे से दूर-दूर देखकर उसे फिर एक बार अपने एकाकी जीवन का ख्याल आगा। स्त्री और पुरुष, पुरुष और स्त्री। एक-दूसरे के पूरक हैं। एक-दूसरे से रहित कुछ नहीं है···इसके बाद गौरी को वह व्यक्ति याद आया जिसके हाथ में आज से बाईस साल पहले वैदिक जी ने यह हाथ थमा दिया था। फिर उसे अपना अभाव-अभियोग-ग्रस्त वह दाम्पत्य-जीवन याद आया जो इसी गाड़ी की भाँति ढचर-ढचर कुछ दिनों जैसे-तैसे चलता रहा—इस गाड़ी के भी दो बैल बराबर नहीं हैं, उनकी भी जोड़ी ऐसी ही विषम थी·· इसके बाद अपने हृदय-आकाश में अकस्मात् उग आने वाले उस स्वस्थ तरुण की याद आयी, जिसे लोग जयनाथ कहते हैं—

तब गौरी ने रतिनाथ की ओर मुड़कर देखा। वह बाबा के साथ आहिस्ते-आहिस्ते चला आ रहा था। चाँदनी में उस किशोर का सुन्दर मुखमडल चमक रहा था। मन हुआ कि आवाज देकर फिर उसे गाड़ी पर बैठा ले।

और सचमुच ही उसने आवाज दी—"आओ, गाड़ी पर चढ़ जाओ।"

रत्ती ने एतराज नहीं किया। चुपचाप आ बैठा। हिलती-डुलती उस गाड़ी पर थोड़ी देर बाद वह नींद के झकोरे खाने लगा और चाची के बदन पर उठंग गया। कुछ समय तक गौरी रतिनाथ की देह पर हाथ फेरती रही। उसे सहसा एक ख्याल आया···जयनाथ को धर-पकड़कर अगर किसी तरह दूसरी शादी करलेने के लिए राजी कर लिया जाय, तो कैसा रहे ? एक ही खतरा है कि सौतेली माँ इस लड़के

को जिन्दगी-भर परेशान करती रहेगी ! अरे, क्या परेशान करेगी ? मैं भी तो रहूँगी। रत्ती को अपने साथ रक्खूंगी, अपनी दुनिया लेकर जयनाथ और उनकी बीवी अलग रहें। दूसरा फायदा इससे यह होगा कि मुझ पर जयनाथ की लोलुप दृष्टि नहीं पड़ेगी। नयी नवेली महचरी पाकर निश्चित है कि मेरी ओर से उनका मन खट्टा हो जायगा। तीसरा फायदा यह कि उतने बड़े आँगन में रात-विरात मुझे अकेले रहना पडता है, सो, एक साथिन मिलेगी।

आधे रास्ते पर एक ओर बहुत ही चालू एक कुआँ पड़ता था। शंकर बाबा झटककर आगे जा चुके थे और उसी कुएँ पर बैठे सुस्ता रहे थे। गाड़ीवान को दूर से ही उन्होंने आवाज दी—"रोकना हो ऽऽऽ"

सड़क कुएँ से दो बीघा दूर थी। गाडीवान सोया हुआ था। बैल बेचारे लीक पकड़कर चले जा रहे थे। बायीं ओर जो जुता था, वह सिलेविया (संवलिया) था, दायीं ओर धौला। डील-डौल, चाल-ढाल, रंग-रूप सभी दृष्टि से सिलेविया अव्वल था। उसकी तुलना में धौला काफी हल्का था। सिलेविया की गरदन में घंटी बँधी थी। उसकी टुनटुन-टुनटुन् उस नीरव निशीथ में अवश्य दूर-दूर तक प्रतिध्वनित होती होगी। बाबा की परिचित आवाज सुनकर बैल ठिठक गए और हल्का-सा धचका लगा तो गाड़ीवान की नींद टूट गयी। गौरी और रतिनाथ भी जगे। सबने उतरकर पानी पिया। कुछ देर तक खड़े रहने से बैलों को भी दम मारने की फुरसत मिली। उन्होंने मूता।

करीब आधा घंटा के बाद गाडी फिर चली।

दूर की निविड़ अमराइयों में से चुहचुहिया की आवाज आ रही थी। शंकर बाबा राह चलते ही सोते जा रहे थे। एक बार आँख झपकती तो दस कदम उसी हालत में बढ़ जाते। वह देहात की कच्ची सडक थी। राह के किनारे एक ओर तो गाडी की लीक थी, और दूसरी ओर पगडंडी। पगडंडी पर कहीं धूल, कहीं चिकनी मिट्टी और कहीं दूब ही दूब पड़ती थी। बाबा के पैरों की खुरदरी उँगलियाँ दूब में उलझ जातीं, तो नेत्र खुल जाते। मिट्टी और धूल से तो पैरों को कोई डर था नहीं, इस स्थिति में चुहचुहिया की मधुर आवाज ने बाबा को एकदम जगा दिया और उन्होंने प्रभाती की तान छेड़ दी—"जागहु हो बृजराज, लाज मोर राखहु हो बृजराज···"

स्टेशन करीब आ गया था। बाबा ने गाड़ीवान से कहा—"अभी तक बैल अपने मन से चले हैं। अब जरा इनकी पीठ थपथपाओ। चाल तेज होगी, तो संभव है, सुबह वाली टेन (ट्रेन) मिल जाय। नहीं तो दिन-भर राजनगर ही अगोरना पड़ेगा। तुम्हें क्या है, अभी लौट जाओगे।"

गाड़ीवान ने कहा—"तो, बाबा तुम चलो झपटकर आगे। टिकट-उकट लो।"

उसने शाबाशी देकर बैलों को ललकारना शुरू किया। वे सरपट दौड़ने लगे। उनकी जोड़ी ठीक रहती, तब तो खूब ही दौड़ सकते थे। थोड़ी देर में बैलगाड़ी राजनगर पहुँच गयी, महाराजा के महलो की बगल से निकलते हुए आगे उसने कमला का पुल पार किया कि, बस स्टेशन।

और, ठीक ही उस दिन सुबह वाली ट्रेन घण्टा-भर लेट थी। अभी जयनगर से ही चली थी। जयनगर के बाद खजौली और खजौली के बाद राजनगर।

शंकर बाबा, चाची और रत्ती प्लेटफार्म पर जा बैठे। सामान ज्यादा नहीं था। गाड़ीवान को उन लोगों ने छुट्टी दे दी थी। मगर उसने कहा—"क्या है, पहर-आध पहर देर ही होगी तो क्या है? आप लोगों की गाड़ी जब छूट जायगी, तब मैं भी अपनी लढ़िया हाँक दूंगा।"

शंकर बाबा ने दूसरी-तीसरी दफे पैटमैन से पूछकर मन को पक्का किया कि आधा घंटा और बाकी है तब स्टेशन से बाहर निकलकर पुल के पार एक बाग में पहुँचे और आम की तीन दतुवनें तोड़ लाए। इसके बाद नदी के किनारे बैठकर दाँत साफ करने लगे और सोचा—बहुत दिन हो गए, कमला स्नान नहीं किया। आज तो हो नहीं सकेगा, लौटते समय, हे मैया, अवश्य मैं तुम्हारी धारा मे दो डुबकियाँ लगाऊँगा।

इतने में टिकट कटाने की घंटी बजी। जल्दी-जल्दी दतुअन चीरकर बाबा ने जीभ साफ की, और घाट के अन्दर घुटने-भर पानी के अन्दर कुल्ला किया. आँख-मुँह धोए। फिर तीन बार अपने ऊपर हिमालय से निकली उस पुण्य सलिला नदी का जल छीटकर अपने को सिक्त किया।

टिकट कटाया। दो पूरा और एक अद्धा। तब तक बंगाल-नार्थ-रेलवे की वह छोटी गाड़ी भी आ पहुँची। भीड़-भाड़ अधिक नहीं थी। तीनों चढ़ गए। इंजन ने छुस-छुस की आवाज की और चल पड़ी।

तारसराय मे शंकर बाबा ने इक्का ठीक किया। इक्केवान ने उस पर बाँस की दो फट्टी लगाकर ऊपर से बड़ी-सी चादर डाल दी। फिर, पर्दा का इन्तजाम हो जाने पर चाची इक्के पर बैठ गयी। इधर का इक्का बनारस और इलाहाबाद के इक्के की तरह नहीं होता। वहाँ के इक्कों पर छतरी होती है। उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि पुराने जमाने के रथ का बिगड़ा हुआ आधुनिक नमूना ही हमारे सामने खड़ा है, लेकिन इधर के यह इक्के छतरीदार नहीं होते।

कच्ची सड़क पर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड वालो ने किसी जमाने में अपनी उदारता दिखलायी थी। वहाँ रोड़ियाँ आवागमन की आधुनिक सुविधा के नाम पर अपना रोना रो रही थीं—इक्का इतना हिलता-डुलता कि चाची ने वह सारा रास्ता आह-ऊह करते हुए पार किया। बाबा और रत्ती बातें लड़ाते हुए पीछे आते रहे।

थोड़ी देर में शुभंकरपुर पहुँच गए।

ग्यारह

दमयन्ती ने टोल-पड़ोस की प्रमुख और मुँहजोर औरतों को इकट्ठा किया। दुपहर के बाद का समय था। अपने-अपने परिवार को खिला-पिलाकर खुद खा-पीकर औरतें जब निश्चित होती हैं, तो ज्ञान-गोष्ठी का सबसे निर्विघ्न समय होता है। एक-दूसरे के सुख-दुख की चर्चा; जो मौजूद न रही उसका छिद्रान्वेषण। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, काशी, प्रयाग, गंगा, यमुना और जाने क्या-क्या। आज की गोष्ठी में रामपुर वाली चाची, सन्नो की माँ, दम्मो फूफी, शकुन्तला और जनककिशोरी शामिल हुई थीं।

दम्मो फूफी अपने भतीजे की मसकी हुई चादर में जाली मढ़ रही थी। रामपुरवाली चाची और सन्नो की माँ अपनी-अपनी तकली लिये आयी थीं। शकुन्तला को तकिया के खोल पर रंग-बिरंगे सूतों में नक्कासी निकालना था। जनककिशोरी के नाखून जरा बड़े-बड़े थे, वह नहरनी लेती आयी थी। रामपुर वाली चाची के साथ उसकी दस साल की लड़की बागो भी थी। बागो के हाथ में हनुमानचालीसा था।

पीला धागा सुई में डालते हुए शकुन्तला ने कहा—"दम्मो दीदी, दुपहर में तुम्हें सोने की आदत नहीं है?"

रामपुरवाली चाची ने अभी तक तकली चलाना आरम्भ नहीं किया था। वे प्यूनियाँ बना रही थीं। काम पर नजर रखकर ही बोलीं—"खाकर तुरन्त सबको नींद नहीं आती।" अपनी सुई रोककर दमयन्ती मुस्करायी—"नीद का कोई ठिकाना नहीं!"

जनककिशोरी वहीं मिट्टी पर नहरनी की धार ठीक कर रही थी। उसने जब देखा कि सबसे मनोरजक बात को छोड़कर ये लोग बहकी जा रही है, तो उससे नहीं रहा गया। वह बोली—"उमानाथ की माँ मायके मे आयी है। फूफी, तुम्हारे यहाँ भी आम भिजवाया होगा।" इसका जवाब फूफी के बदले रामपुरवाली ने दिया। कहा—"हमारे यहाँ भी दो मालदह आम रत्ती देने आया था। लौटा दिया।"

दमयन्ती का चेहरा खिन्न उठा। वह अपनी बारीक सुई को चादर पर चला रही थी। प्रसन्नता मे उँगली की गति रुक गयी और बोली—"उस भ्रष्ट औरत से भगवान हमें बचाएँ। इन आँखों के सामने वह न आवे, महादेव से मेरी यही प्रार्थना है।" सन्नो की माँ तन्मय होकर अपनी तकली चला रही थी, किर्रं किर्रं किर्रं। अब उसका ध्यान भंग हुआ। ऊपरी मन से यह बातें वह सुन रही थी। तकली में कते सूत को लपेटती हुई वह बोली—"आम लेने में क्या हर्ज है! हाँ, पकवान-वकवान होता तो बात दूसरी थी।"

दमयन्ती सुलग उठी। उसकी भौंहें तन गयीं। वह सन्नो की माँ पर बरस पड़ी—"सवाल यह आम और पकवान का नहीं है।"

शकुन्तला और जनककिशोरी ने अपना सिर हिलाकर इस बात का समर्थन किया। इससे उत्साहित होकर दमयन्ती दूने ओज से बोलने लगी—"बात इतनी ही नहीं है सन्नो की माँ, देखना यह है कि पड़ोस के इस पाप का हमारे जीवन पर क्या असर पड़ता है। अपराधी को यदि दण्ड न मिले तो एक दिन भी संसार टिक नहीं सकता। उमानाथ की माँ अपनी मायके जाकर पाक-साफ हो आई है। परन्तु शुभकरपुर का नाम इसमें कितना कलंकित हुआ है…"

दम्मो फूफी आवेश में आ गयी। हाथों के हाथ से छूटकर हनुमानचालीसा जमीन पर गिर पड़ा। सन्नो की माँ ने कहा—"तो अब उसका क्या होगा? इतना बड़ा कलंक क्या मामूली सजा है!"

रामपुरवाली चाची चाहती थी कि दमयन्ती और बोले। तकली छोड़कर उसने सन्नो की माँ का हाथ पकड़ लिया। कहा—"पूरा-पूरा कहने तो दो?"

दमयन्ती कहती गयी—"अब और क्या होगा? मर्दों का तो कोई ठिकाना है नहीं। अगर हम न रहें, तो संसार से आचार-विचार हट जाय। उमानाथ की माँ व्यभिचारिणी है, पतिता है, भ्रष्टा है, कुलटा है, छिनाल है, उससे हमें किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। बोल-चाल बन्द। बात-विचार बन्द। प्रत्येक व्यवहार बन्द! हाँ, जयनाथ और रतिनाथ दोनों बाप-पूत यदि प्रायश्चित्त कर लें तो इस समाज में उनके लिए स्थान हो सकता है, परन्तु उमानाथ की माँ को समाज किसी भी हालत में क्षमा नहीं कर सकता।"

रामपुरवाली ने कहा—"बिल्कुल ठीक। अपराधी को सजा मिलनी ही चाहिए।"

थोड़ी देर तक उस गोष्ठी पर सन्नाटा छाया रहा।

निस्तब्धता को भंग करते हुए कोमल स्वर में दम्मो फूफी से जनकिशोरी ने पूछा—"उमानाथ की माँ भी तो प्रायश्चित करके शुद्ध हो सकती है?"

सन्नो की माँ ने जनककिशोरी की ओर देखा, मानो यह कह रही हो कि तुम्हारी जिज्ञासा ठीक है, मैं भी यही जानना चाहती थी।

उत्तर दिया दमयन्ती के बदले रामपुरवाली ने। वह बोली—"प्रायश्चित की बातें तो कोई पण्डित ही बता सकता है। इसमें किसी दूसरे के लिए रियायत थोड़ी ही हो सकेगी।"

दम्मो ने चादर में जाली मढ़ने का अपना काम खतम कर दिया था। सुई को एक कागज में टाँचते हुए उसने कहा—"रामपुरवाली की राय सही है, लेकिन खाली प्रायश्चित किसी काम का नहीं; जाति-बिरादरी का दण्ड ही इस प्रकार के अपराधों को फिर से न दुहराने की दवा का काम करता है। सामाजिक बहिष्कार

तो उमानाथ की माँ का हर हालत में करना पड़ेगा।"

सन्नो की माँ ने कहा—"और, इस बात को लेकर गाँव मे दो दल हो जाएँ तो?"

इस प्रश्न पर सभी थोड़ी देर तक चुप रहीं। मौन भंग किया रामपुरीवाली ने। उसने कहा—"भले ही तीन दल हो जाएँ, हमारा तो उमानाथ की माँ से किसी भी प्रकार का सम्पर्क न रहेगा!"

दम्मो फूफी ने मौन रहकर अपनी स्वीकृति इस विचार पर दी।

सन्नो की माँ उतनी मुँहजोर नहीं थी, जितनी कि समझदार। रामपुरवाली अपने पति की दूसरी स्त्री थी। भोला पण्डित ने पुत्र की लालसा से पैंतालीस की उम्र में यह दूसरी शादी की थी। पहली स्त्री भी अब तक मौजूद है। दोनों मुर्गियों की तरह आपस में लड़ती रहती हैं। रामपुरवाली को ही दुनिया विजयिनी मानती है, क्योंकि अपनी सौत को इसने ऐसी करारी हार दी कि वह बेचारी पाँच साल से मायके में पड़ी है। यहाँ शुभकरपुर के पाँच घरों के इस टोले में अब रामपुरवाली का एकच्छत्र राज है। झगड़ते-झगड़ते अन्त मे गालियों के अपने जिन तीरों का वह इस्तेमाल करने लग जाती है, यहाँ उनका जिक्र न करना ही अच्छा है। एक बार भोला पण्डित ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा था—"पूर्व जन्म में बहुत बड़ा प्रत्यवाय मैंने किया होगा, जिससे रामपुर मे अवतार लेने वाली यह चंडी मेरे घर आ गयी।" पंडित को जब बहुत गुस्सा चढ़ता है, तो झोटा पकड़कर चार लात जमा देते हैं। और, भगवान की कृपा से ऐसे अवसर इस दम्पति के जीवन मे आते ही रहते हैं। बागो कोयले की खान का हीरा है। कम बोलना, स्निग्ध और स्थिर आँखों से देखते रहना, मुस्कान और सौन्दर्य। बागो का यही परिचय है।

जनककिशोरी और शकुन्तला, इन्द्रमणि की वही लड़कियाँ हैं जिनका ब्याह बिकौआ से हुआ था। दोनों बहिनों का स्वभाव तीव्र था। परन्तु बुद्धिमती होने से उनकी यह तीव्रता बात नहीं, काम मे जाहिर होती थी। एक का अपने चचेरे भाई से, और दूसरी का कुल्लौ राउत के जवान बेटे से गुप्त स्नेह-सम्बन्ध था। साल-डेढ़ साल पर बिकौआ महाशय आ ही जाते। डेढ़-दो मास रहकर फिर चले जाते। शकुन्तला के तीन लड़के थे, और जनककिशोरी के एक लड़का और एक लड़की। शकुन्तला के पति की सात शादियाँ हुई थी, और जनककिशोरी के पति की दस। शकुन्तला का तीसरा लड़का हू-ब-हू उसके चचेरे भाई की शक्ल का था। जनक-किशोरी की दोनों सन्तानें आकृति मे कुल्लौ राउत की परम्परा में आती थी।

दम्मो के पिता की दो शादियाँ हुई थी। पहली शादी से एकमात्र यही दमयन्ती हुई। दूसरी से दो लड़के थे। पिता का नाम था विश्वनाथ झा। यह सभी लोग नीलमाधव उपाध्याय के ही वंशज थे। जयनाथ के पिता और विश्वनाथ

चचेरे भाई थे। तांत्रिक-साधना में दिलचस्पी लेने के कारण विश्वनाथ आजीवन रक्ताम्बरधारी रहे। बड़े-बड़े बाल, बड़ी-बड़ी दाढ़ी। दीप्त और प्रशस्त ललाट, सिन्दूर का बड़ा-सा टीका। लाल-सुर्ख धोती। लाल जनेऊ। हाथी के दाँत के तराशे हुए दानों की सुन्दर माला—विश्वनाथ का यह स्वरूप अब भी शुभंकरपुर में बहुतों को याद है। उन्हें लोग सिद्धजी-सिद्धजी कहते थे। अपनी ढलती उमर में ग्वालियर और इन्दौर जाकर वे रुपये भी काफी बटोर लाये थे। अपनी बाल-विधवा पुत्री—दमयन्ती को उन्होंने आग्रहपूर्वक यहीं रख लिया। दमयन्ती के ससुराल वाले उग्र कोटि के ब्राह्मण थे, जिन्हें अपनी परम्परा से चली आयी मर्यादा का बहुत अधिक ख्याल रहता है, जिनके रग-रग में ब्रह्मवाद और आस्तिकता भरे रहते हैं और पूर्वजों की ज्ञाननिधि के संरक्षण में बड़ा-सा-बड़ा त्याग करते हुए जो हिचकते नहीं। जिनके साथ दमयन्ती का विवाह हुआ उनका नाम था वाचस्पति पाठक। न्याय और व्याकरण के अद्वितीय विद्वान थे। छब्बीस साल की उमर में हैजे से उनका देहान्त हो गया। और, तब से दम्मो अपने पितृकुल में रहती आई है। अपनी जायदाद का तीसरा हिस्सा पिता उसके नाम चढ़ा गये है।

एक सम्मानित व्यक्ति की बुद्धिमती बेटी होने के नाते गाँव के सामाजिक जीवन में दमयन्ती का जो स्थान है, वह उपेक्षणीय नहीं है। समाजपतियों के कूटनीतिक शतरंज की वह भी एक खिलाड़िन है। उसकी पैनी सूझ का लोहा सभी मानते आये हैं।

इसलिए उमानाथ की माँ के सम्बन्ध में दम्मो फूफी का उक्त निर्णय बड़ा ही महत्त्व रखता था।

बारह

रतिनाथ तेरह-चौदह दिन पर गाँव आया था।

देहात की पाठशाला और सो भी संस्कृत की। उसका बन्द रहना और न रहना बराबर है। अपने साथियों से मिलने की इच्छा रत्ती को पाठशाला की ओर खींच ले गयी। पहर-भर दिन बाकी था। तीन ही चार लड़के थे। सरस्वती को प्रणाम करने के पश्चात् रतिनाथ ने पंडित जी के पैर छुए। पंडित जी उल्लसित होकर बोले—"क्यों रे, कहकर नहीं गया था ?"

रत्ती की जबान बेधड़क होकर झूठ खेल गयी—"क्या करता गुरुजी, पिताजी

ने कहा। जाना ही पड़ा। बतला तो उन्होंने आपको दिया ही होगा।"

गाय का पगहा (पशुओं के गर्दन, सींग, नकेल में लगने वाली मजबूत डोरी) टूट गया था। पंडित जी कुशासन पर बैठे हुए उसकी मरम्मत कर रहे थे। आगे सन पडा था। पगहा की नई गाँठ को दोनों हाथों की पूरी ताकत लगाकर पंडित जी कसने लगे। बीच ही में बोल उठे—"नहीं, तुम्हारे बाप ने मुझे यह सब नहीं बतलाया। हाँ, मत्तो से तुम्हारे तरकुलवा जाने की बात मालूम हुई थी···" तब पंडित जी ने गौर से रत्ती की ओर देखा। और आँखें फाड़कर बोले—"देखता हूँ, दस दिन की पहुनाई में ही तेरी शकल बदल गयी है।"

मत्तो मौजूद था। मुस्कराकर बोला—"हाँ, गुरुजी, बम्बई और मालदह इतना अधिक खा आया है कि साल-भर इसका बदन यह लाल ही रहेगा।"

रत्ती ने मटकी मारकर मत्तो की ओर देखा, फिर नजर नीचे कर ली।

पगहे की मरम्मत हो चुकी थी। कुछ मामूली-सा पढ़ा-बढ़ाकर पंडितजी शौच के लिए निकल गये। थोडी देर बाद रतिनाथ भी चला आया। कल से ही रत्ती का मन बागो से मिलने के लिए तरस रहा था। आज शाम को पाठशाला से लौटने के बाद वह अपने घर की ओर न जाकर भोला पंडित की दालान की ओर चला गया।

भोला पंडित का घर इन्द्रमणि के घर से कुछ उत्तर की तरफ था। उसके दो तरफ खेत थे। पीछे की ओर बाँस का जंगल था। रामपुरावाली चाची की कोख से बागो के अलावा एक और सन्तान पैदा हुई थी, लड़का। वह नौ महीने का होकर चल बसा। उसके बाद सन्तान होने का कोई लक्षण किसी को दिखाई नहीं पड़ा। भोला पंडित सत्तर की उमर टाप गये थे। हड्डी इतनी मजबूत थी कि चौदह-चौदह, सोलह-सोलह घण्टे अब भी खटते रहते। तेरहों अध्याय चंडी (दुर्गा सप्तशती) का पाठ रोज करते। कंठस्थ हो गया था सारा। सुबह उठकर, शौच से निबट चुकने के बाद उनकी यह भनभन शुरू हो जाती। हाथ लगे रहते काम में और जीभ नाम में। दुनियादारी और जगदम्बा की स्तुति। इहलोक और परलोक यह दोनों भोला पंडित साथ चलाते। इस बीच कोई मिलने वाला आता तो उससे एक प्रकार की अस्पष्ट भाषा में मतलब की बात भी कर लेते, जैसे कि कोई आकर कहता—पंडितजी, आज दुपहर का निमन्त्रण देता हूँ, तो पंडित पाठ छोड़कर उससे पूछ बैठते—ङौङ ङौङ ङङैंङा (कौन-कौन रहेगा) और उनका ऐसा करना बिल्कुल दुरुस्त था। चंडी, गीता अथवा किसी अन्य धार्मिक ग्रन्थ का पारायण करते समय बीच-बीच में आप बातचीत नही कर सकते। हाँ, संस्कृत की बात दूसरी है। वह ठहरी देवताओं की वाणी। उसका इस्तेमाल भले ही कोई कर ले। अनिवार्य आवश्यकता पड़ने पर समझदार लोग इसी ङ्-ङ या ऊँ आँ जैसी अव्यक्त ध्वनियों का सहारा लेते हैं।

भोला पंडित की दौड़-धूप का क्षेत्र चार जिलों तक विस्तृत था। दरभंगा, मुंगेर, भागलपुर और पूर्णिया। साल में एक बार तीन दिन के लिए वे बेतिया भी जाते थे। भिक्षा, आशीर्वाद, अनुष्ठान और रिश्तेदारी के सिलसिले में प्रतिवर्ष चार-छः महीने उनके बाहर बीत जाते। राजाबहादुर दुर्गानन्दन सिंह से लेकर बनैली के राजा कीर्त्यानन्दसिंह तक भोला पण्डित की शुभकामनाओं के पात्र थे। भागलपुर का सबसे धनी मारवाड़ी उन दिनों रायबहादुर भोलीराम जयपुरिया था। वहाँ तक पंडित की पहुँच थी।

असमर्थ व्यक्तियों के प्रति इस ब्राह्मण के हृदय मे असीम करुणा थी। कितने ही लूले, लँगड़े, अन्धे, अपाहिज और बूढ़े भोला पंडित की कृपा से अधखिली कलियों जैसी बालिकाओं को गृह-लक्ष्मी के रूप में पाकर निहाल हो गए। एक-एक ब्याह में पचास-पचास रुपये पंडित के बँधे हुए थे। उमानाथ की बहन को भी इन्हीं महाशय ने पैंतालीस साल के एक महामूर्ख के चंगुल में डाल दिया था। इस तरह पचीसों लड़कियाँ आपका नाम लेकर दच्छिन-पच्छिम में करम कूट रही थी। तारा बाबा का कहना था कि भोला पंडित ब्रह्मपिशाच होगा। पचीसों लड़कियाँ जिसके नाम पर रात-दिन आँसू बहाएँ, उसका भला कैसे होगा? दस-पाँच लड़कों को ठगने में भी पंडित ने सफलता पायी थी। किसी के पल्ले गूँगी पड़ी, तो किसी के पल्ले अन्धी। किसी के पल्ले लँगड़ी पड़ी, तो किसी के पल्ले कुबड़ी।

परन्तु, इससे क्या? बाबा वैद्यनाथ प्रसन्न रहें, पंडित का कौन क्या कर लेगा? वह साल-साल कन्धे पर कामरू लेकर गंगाजल भरकर पैदल ही देवघर पहुँचता है। बाबा पर जल ढालता है: कौन है ऐसा शुभंकरपुर में?

बागो के बारे में रामपुरवाली चाची अभी से सतर्क थी। डर था कि पंडित कहीं से किसी मसानवासी कापालिक को लाकर इस गौरी के साथ न बैठा दे।

रतिनाथ की दरवाजे पर ही बागो से भेंट हो गयी। नजर पड़ते ही लड़की ने मुँह फेर लिया। रत्ती नजदीक आया और बोला—"कल दिन-भर घर के काम में लगा रहा। आज सुबह चाची के काम से परसौनी गया था। दुपहर के बाद पाठशाला जाना पड़ा और अब जाकर कहीं फुरसत मिली है।" भौंहें तानकर बागो ने सिर हिलाया।

"नहीं अपनी कसम! मै बहानेबाजी नहीं करता," रत्ती ने कहा। लड़की ने चट से लड़के की कलाई पकड़ ली—"बड़ी बुरी आदत है तुम्हारी, कुछ बात हुई नहीं कि अपनी कसम खा ली।"

रत्ती ने बागो के चेहरे पर आँखे गडा दीं। थोड़ा रुककर बोला—"तुम मानती जो नहीं हो!"

हाथ पकड़कर बागो रत्ती को खींचकर आँगन में ले गयी। रामपुरवाली

चाची किसी दूसरे के घर गयी हुई थी। बागो ने एक पीढ़ा डाल दिया और इशारे से कहा—"बैठ जाओ।"

रतिनाथ चुपचाप बैठ गया, निर्निमेष बागो की ओर देखने लगा। चार-पाँच साल की पुरानी मित्रता थी, दोनों एक-दूसरे को जी-जान से प्यार करते थे। दोनों ने साथ-साथ तालाब में तैरना सीखा था। आसिन के रात्रिशेष में उस बूढ़े हरसिंगार के नीचे खड़े होकर दोनों ने एक-दूसरे के लिए फूल चुने थे। किसी रात हवा नहीं चलने से खिले फूल अपने-अपने वृन्तों से चिपके रह जाते। तब बागो सहारा देती और रतिनाथ उस पेड़ पर चढ़ जाता। छोटी-बड़ी डालों को हिलाकर नीचे उतर आता, और फिर दोनों साथ-साथ फूल चुनने लगते। दोनों की डालियाँ जब भर जातीं, तो फिर एक-दूसरे पर चुने हुए फूल बिखेर देते। अपने बड़े-बड़े बालों में उलझे फूलों की ओर संकेत करती हुई बागो कहती—'यह तुमने क्या किया ? कैसे ये झड़ेंगे ?'

हँसकर रतिनाथ उत्तर देता—'रहने भी दो। क्या बिगाड़ते हैं।'

झुँझलाकर वह रत्ती की गरदन से लपेटे हुए गमछे का पल्ला पकड़ लेती—'नहीं, मेरे बालों से एक-एक कर ये फूल तुम्हें हटाने होंगे।'

'नहीं तो ?'

'नहीं तो फिर कभी तुम्हारे साथ इस हरसिंगार के नीचे मैं नहीं आऊँगी।'

तब, हरे काँच की चार-चार चूड़ियों वाले उन गोरे हाथों को अपने हाथों से रतिनाथ दबा देता और उसका सिर सूँघ लेता।

फिर विभोर होकर वह चुपचाप उसकी पीठ की तरफ हो लेता और बालों में से लगता फूल निकालने। दो-एक फूल जान-बूझकर छोड़ देता···

"क्या बात है ?" खम्भे से सटकर खड़ी हुई बागो बोली—"क्या सोच रहे हो ?"

रत्ती का सपना टूट गया। चौंककर उसने कहा—"कुछ तो नहीं।" फिर दोनों टोल-पड़ोस के दूसरे लड़के और लड़कियों की चर्चा में लग गये। अन्त में बागो ने दम्मो फूफी की उस धान-गोष्ठी का जिक्र किया, जिसमें वह खुद भी मौजूद थी। रत्ती इतना ही समझ सका कि उसकी चाची के खिलाफ लोग कुछ साजिश कर रहे हैं।

कहीं से आये हुए दो पेड़े रखे पड़े थे। उनमें से एक बागो निकाल लायी और रत्ती के हाथ पर धर दिया। बोली—"पानी लाती हूँ। पीकर जाना।"

तोड़-तोड़कर थोड़ा-थोड़ा पेड़ा वह खाने लगा। खाते-खाते सोच रहा था—चाची के बाद दूसरी कोई औरत मुझे मानती है तो यही बागो। कई बार ऐसा हुआ है कि रत्ती बाप के पैसे चुराकर कहीं से कुछ खा-पी आया है। और, पीछे पिटाई के आतंक से चेहरा कुम्हला गया है, तो खोद-खोदकर इस लड़की ने चिन्ता

का कारण मालूम कर लिया है। फिर उतने पैसे अपनी माँ की डिबिया में से निकालकर रत्ती को दिए है। और उसने अपने बाप के बटुए में ज्यों के त्यों वे पैसे फिर से रख दिए हैं।

अपने आँगन में पैर रखते ही रतिनाथ की निगाह पिता पर पड़ी। वे भाँग घोट रहे थे। चुनार के पत्थर की बनी हुई यह कुंडी जयनाथ विन्ध्याचल से लेते आये थे। कुंडी लाल पत्थर की थी। बड़ी मजबूत, वजन में तीन सेर की रही होगी। सोंटा अमरूद का था। भोला पंडित की बगिया में अमरूद का एक पेड़ है। उसी की पतली डाली काटकर जयनाथ ने भाँग घोटने का यह सोंटा तैयार किया था। सदियों के तजुर्बे के बाद भंग-भक्तों की राय अब पक्की हो गयी है कि अमरूद का सोंटा घिसता कम है। इसीलिए भाँग पीसने के लिए बहुत ही उपयोगी होता है। आम, जामुन, कटहल वगैरह की डाली से तैयार किया हुआ सोंटा भुस-भुस घिसता है। बंभोले की बूटी छानने वाले इसीलिए अमरूद के सोंट की प्रशंसा करते थकते नहीं। जयनाथ कड़ी पत्ती का इस्तेमाल करते थे। गिनकर ग्यारह दाने काली मिर्च डालते, दो बादाम। चुटकी भर सौंफ। चीनी और गुड़ डालकर भाँग पीना उन्हें पसन्द नहीं था। वह कहते—यह साधकों की चीज नहीं है। पर्व-त्योहार को नशाखोरी की नीयत से भाँग पीने वाले ऐसा भले कर लें, परन्तु विजया देवी के जो नित्य सेवक है, उन्हें कड़वी भाँग ही प्रिय होती है।

रत्ती ने छिपाकर एक बार थोड़ी भाँग पी ली थी। बुरा हाल हो गया उसका। खाते समय मुँह के बदले कान में ही उसने भात के कौर डालने शुरू किए। जयनाथ ने पूछा—"दाल में नमक तो ठीक है? लड़के ने यों ही मुँह चलाकर सिर हिला दिया। कन्धे पर कान से भात गिरते देखकर पिता ने समझा, लड़के ने भाँग खा ली है। बस, फिर क्या था? रत्ती पर बड़ी पिटाई पड़ी। चाची ने आकर छुड़ा लिया, नहीं तो उस रात पीट-पाटकर जयनाथ उसे बेहोश कर देते। उस वक्त नशे में चोट नहीं लगी, मगर अगले दिन रत्ती का बदन टूटा जा रहा था। चाची ने दो बार मालिश की, तब कहीं जाकर दर्द दूर हुआ। मालिश के वक्त जयनाथ ने तो दाँत पीसते हुए कहा—"गधा! फिर कभी भाँग तूने पी, तो कुल्हाड़ी से गरदन काट लूँगा।" चाची ने जयनाथ को फटकारा, खुद जो पीते हो, भर-भर लोटा! जयनाथ बरबराते हुए आँगन से बाहर हो गये कि मैं तो अभिमंत्रित करके पीता हूँ, उसमें नशा कम होता है।

जयनाथ तन्मय होकर भाँग घोंट रहे थे! रत्ती नजदीक आकर खड़ा हो गया।

पिता ने पूछा—"क्या चाहिए?"

"कड़ुवा तेल नहीं है!" पुत्र ने कहा। जयनाथ बोले—"अभी उमानाथ की माँ से लेकर काम चला लेंगे, कल देखा जाएगा।"

रत्ती की आवाज सुनकर चाची निकल आयीं। उपालंभ के स्वर में बोलीं—"आज नाश्ता नहीं किया रे !"

रतिनाथ ने निगाहें जमीन पर गाड़ लीं। चाची ने सिर से पैर तक उसकी ओर देखा। जरा रुककर बोलीं—"तेरा खाना मैं ही बना रही हूँ।"

रत्ती चुप रहा। पिसी हुई भाँग के गोले को पानी में मिलाते हुए जयनाथ बोल उठे—"तो, इस गर्मी मे अपने पेट के लिए चूल्हे के पास बैठकर मैं तपस्या क्यों करूँ ? पाव-डेढ़ पाव चिउड़ा घर मे है ही, घिवही आम का गाढ़ा रस और फूला हुआ चिउड़ा···जरा-सी कसौंझी···आहा ! हा !! इस दिव्य पदार्थ के आगे भात-दाल-तरकारी गोबर है !"

चाची से न रहा गया। बोलीं—"रात-दिन वही गोबर तो खाते रहते हो।"

"अरे गोबर नही, एक बात कही है।" जयनाथ ने कहा—"जब परिश्रम किए बिना भी खाने की चीज सुलभ है, तो रसोई की झंझट मे वे पड़ते ही क्यों !"

कमलनाथ, वैद्यनाथ और जयनाथ—जब तक माँ जीती रही, तीनों इकट्ठे रहे। उसके बाद अलग-विलग हो गये। जमीन-जायदाद, बर्तन-बासन सभी के तीन हिस्से हुए। चूल्हे भी तीन। कमलनाथ यहाँ थे नहीं। रह गये वैद्यनाथ और जयनाथ। यह दोनों भी अलग-विलग थे। वैद्यनाथ की मृत्यु के बाद जब रत्ती की माँ मरी तो बेचारे जयनाथ की गृहस्थी छिन्न-भिन्न हो गयी। यों तो वह पहले ही से गयी-गुजरी थी, क्योंकि जयनाथ ठिकाने से कभी शुभंकरपुर नही रहे। उनकी सारी जवानी कटी थी भागलपुर मे बाईस कोस दक्षिण बड़हड़वा में। वहाँ इन लोगों की बड़ी बहन सुमित्रा की ससुराल थी। इसकी भी एक कहानी है। आज से चालीस साल पहले रुपया ही महँगा था, चीजें खूब सस्ती थीं। मेवालाल ठाकुर बड़हड़वा के बहुत बड़े काश्तकार थे। पचास वर्ष की उमर में उन पर यह सनक सवार हुई कि किसी कुलीन कन्या का पाणिग्रहण करना चाहिए। दो शादियाँ इससे पहले की थीं। वे दोनों औरतें मौजूद थी। उनमे से एक के चार और दूसरी के सात सन्तानें थीं। जयनाथ के पिता को अपने एक मित्र से मेवालाल की यह इच्छा मालूम हुई। यह जानकर कि बड़हड़वा वाले बहुत ही धनी हैं और धूमधाम से शादी करेंगे, उन्होंने निश्चय किया कि अपनी कन्या सुमित्रा का ब्याह उधर ही कर देंगे, तदनुसार बातचीत शुरू हो गयी और सम्बन्ध स्थिर हो गया। रानी छाप के दो सौ नगद रुपये, सौ मन कनकजीरा चावल, पन्द्रह मन अरहर की दाल, दो मन घी, पाँच थान ननगिलाट (लाँग क्लाथ), इतना सामान लेकर मेवालाल ठाकुर शुभंकरपुर आये थे शादी करने। बारात में कुल चार आदमी थे, एक खवास था। गरीब ब्राह्मण के घर को ठाकुरजी ने भर दिया। गहनों से सुमित्रा लद गयी। खानदान के पाँचों घर की औरतों को एक-एक बिसहत्थी साड़ी मिली थी। कुल्ली राउत को दो धोतियाँ। उसकी घरवाली को दस हाथ की साड़ी !

छः महीने बाद ही गौना हुआ। भाइयों में जयनाथ ही छोटे थे। वही साथ गये। पहली यात्रा में वे साल-भर बड़हड़वा रह आये। दूध, दही, घी, मछली-मांस— इनकी प्रचुरता ने जयनाथ के मन और तन, दोनों पर प्रभाव डाला। वे सदा के लिए अपने बहनोई के यहाँ रहने को तैयार थे। अपनी शादी और गौने के बाद भी जयनाथ का मन घर पर नहीं लगता था। वे भाग-भागकर बड़हड़वा पहुँच जाते। टट्टू और गधे को छोड़ दीजिए। वह उसी मैदान की ओर पिछली दो टाँगों के बल पर रुक-रुककर कूदता हुआ पहुँच जाएगा जिसकी हरी-हरी मुलायम दूबों का स्वाद उसे भली भाँति मालूम है। यही हाल था जयनाथ का। बड़हड़वा उनके लिए हरी घास का अक्षय मैदान था। फिर अपनी सारी जवानी अगर उन्होंने दक्षिण भागलपुर के उस देहात मे बिता दी, तो इसमे आश्चर्य ही क्या? ठाकुर जी की विधवा भावज वहाँ जयनाथ के लिए जान देती थी। खेत की मजूरिनों मे हँसी-मखौल करने का जयनाथ को अबाध अधिकार था। विशाल वटवृक्ष की छाया में दस-पाँच गायों के बीच खड़े होकर सांड जैसे आँखें मूँदे जुगाली करता रहता है, वही स्थिति थी जयनाथ की।

यही बात थी कि गृहस्थी में कभी जयनाथ का मन नहीं लगा। रत्ती की माँ मर गयी, तब से उमानाथ की माँ ने अपने देवर को टूटी गृहस्थी को सँभालने की बराबर चेष्टा की है।

अलगाव-बिलगाव की वह मोटी दीवार बहुत कुछ ढह चुकी थी। नाम मात्र के दो चूल्हे थे। खाना बहुधा साथ ही बनता। और, जयनाथ जब बाहर रहते तब तो रत्ती रात-दिन चाची के ही घर में आसन जमाये रहता; आँगन के दक्षिण ओर अपना बन्द घर उस लड़के का ध्यान शायद ही कभी आकर्षित करता।

भाँग पीकर जयनाथ बलुआहा पोखर की ओर निकल गये और रत्ती चाची के घर में घुसा। खाना तैयार होने में कुछ देर थी।

तेरह

ठीक दीपावली के दिन वैद्यनाथ की वर्षी पड़ती थी। इस अवसर पर उमानाथ घर आता। कम-से-कम पाँच ब्राह्मण जिवाये जाते! किसी-किसी वर्ष यह संख्या, सात और नौ तक पहुँच जाती। प्रथा यह है कि पाँच वर्षों तक कम-से-कम ग्यारह व्यक्तियों को निमंत्रण दिया जाय। उसके बाद आप स्वतन्त्र हैं।

परन्तु इस वर्ष तो समस्या ही दूसरी थी। कौन खाएगा उमानाथ के घर ? सभी ने उनकी माँ को समाज से बहिष्कृत कर दिया है।

उमानाथ दुर्गा पूजा की छुट्टी में हमेशा आता और दिवाली के दिन बाप की वर्षी करके फौरन चला जाता बहन के यहाँ। कार्तिक शुक्ल द्वितीया उन व्यक्तियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण तिथि है, जिनकी बहन जीवित हों। भाई दूज का यह त्योहार उमानाथ के लिए बचपन से ही आनन्द और उत्सव का दिन रहा है। ब्याह कर दूर चली जाने पर भी प्रतिभामा प्रतिवर्ष अपने भाई को इस त्योहार के अवसर पर बुलवाती ही। उमानाथ जब से भागलपुर रहने लगा तब से तो आग्रह और भी अधिक हो गया।

इस बार दुर्गा पूजा की छुट्टी में, कलश-स्थापन (नवरात्रि के आरम्भ का दिन—अश्विन शुक्ल, प्रतिपदा) से दो रोज पहले उमानाथ घर पहुँचा, पर थोड़ी ही देर बाद अपनी माँ के सम्बन्ध में सारी बात जब उसे मालूम हुई, तो ग्लानि और क्षोभ के मारे उसका दिमाग फटने लगा। और, उससे यह सब कहा किसने ? दम्मो बुआ ने !

आँखों में आँसू भरकर विषाद की फीकी छाया चेहरे पर लाकर फूफी ने उमानाथ से कहा था—"बबुआ, तेरी माँ ऐसी कुलबोरनी निकलेगी, इस बात का जरा भी पता पहले होता, तो कभी मैं वैद्यनाथ की शादी तरकुलवा में नहीं होने देती। सोचो तो, नीलमाधव उपाध्याय का यह विमल वंश कितना प्रसिद्ध है ! और एक विधवा··· " इतना कहते-कहते उन बनावटी आँसुओं को आँचल के खूँट से दमयन्ती ने पोंछ लिया और हाथ पकड़कर उमानाथ को अपने दरवाजे की भीत के ओट में ले गयी।

उमानाथ फुफकारता हुआ अपने आँगन में आया और माँ का झोंटा पकड़ लिया। वह बेचारी इस आकस्मिक आक्रमण से चकित थी ही कि इसी बीच लड़के ने उसकी पीठ पर आठ-दस लात गदागद जमा दिये। चाची ऐंच कर रह गयी। उसे यह समझते देर न लगी कि दमयन्ती ने उमानाथ के कान भरे हैं।

अपने आँसू, अपनी आह—चाची सब पी गयी।

पति, पुत्र या परिपालक के द्वारा पीटी जाने पर यदि औरत न रोए, न चिल्लाए और न आह-ऊह करे, तो क्या होगा ? होगा यही कि पीटने वाले का क्रोध क्षोभ के रूप में बदल जायगा और तब अपना कपार आप ही वह पीट लेगा···

उमानाथ का मन न भरा। दाँत पीसता हुआ वह बोला—"राक्षसी कहीं की ! ले, रख अपना घर। मैं जाता हूँ तालाब में डूबने और तब तू मौज मारती रहना···"

उठकर चट से चाची ने उमानाथ के पैर छान लिए।

लड़का चिल्लाया —"नही, नहीं, जीकर मैं क्या करूँगा ! गले मे घड़ा बाँधकर डूब मरूँगा, तभी मुझे शान्ति मिलेगी।"

"नही भैया," लडके के पैरों पर अपना मुक्त-कुन्तल मस्तक डालकर माँ गिडगिडायी—"नही भैया, कोने में कुल्हाड़ा रखा है, उठा लाओ, मुझे खण्ड-खण्ड कर दो ! मैं खुद इसलिए नहीं डूब मरी कि तुम्हारे हाथों से सद्गति मिलेगी तो मेरे सारे कुकर्म धुल जाएँगे।"

माँ के बाहु-पाश से अपने पैर छुड़ाकर वह अलग हो गया और बीच घर में बैठकर फूट-फूटकर रोने लगा। माँ की आँखें भी आँसू से तर थीं। वह उठी। लड़के के बिल्कुल करीब आकर बैठ गयी। आँचल के खूँट से उसके आँसू पोंछने लगी, परन्तु आज उमानाथ का हृदय गर्मी की गंगोत्री बन गया था। तापविगलित हिमानी प्रखर स्रोत की भूमिका बनकर जब वह निकलती है, तो मैदान की गंगा अपने दोनों तटों को आप्लावित करती हुई बहती चली जाती है।

बहुत देर तक उमानाथ रोता रहा, माँ पास ही बैठी बराबर उसके आँसू पोंछती रही। पाठशाला से रतिनाथ आ गया तो जागकर वह उठा और लोटा में पानी लेकर आँख-मुँह धो आया।

रत्ती को साहस नही हुआ कि चाची से पूछे।

यह सब तो हुआ, किन्तु निमन्त्रण देने पर बर्षी के दिन कोई खाने नहीं आया। मूर्ख और मन्दबुद्धि रहने पर भी उमानाथ होनहार को बलवान तो मानता ही था। अपनी अपराधिनी माँ को क्षमा करके उसे फिर कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। दीवाली के दिन ही वह भागलपुर के लिए रवाना हो गया।

चौदह

दुर्गा पूजा के दसों दिन जयनाथ ने विन्ध्याचल में बिताए। एक मारवाड़ी ने चंडी का सम्पुट पाठ करवाया था। पाठ करने वाले नौ थे। पचीस-पचीस की दक्षिणा मिली थी। एक-एक जोड़ा धोती। दसों दिन फलाहार का इन्तजाम था। शाम को गंगा के किनारे पंडे ठंडई छानते। वहीं जयनाथ भी अपनी कुंडी और सोंटा लेकर एक ओर बैठ जाते। पाठ करने वालों में से चार मैथिल थे और पाँच सरयूपारी। सेठ था कलकत्ते का, मगर प्रबन्ध मिरजापुर के हरिहर पंडे के हाथ था। सेठ के लड़के को लड़का नहीं हो रहा था। इसलिए भगवती विन्ध्यवासिनी की आराधना

वह करवा रहा था। हरिहर पंडा से जयनाथ का पहले से ही परिचय था। खत लिखकर उसने जयनाथ को इस बार बुलाया था। शर्त यही थी कि अपनी दक्षिणा में से पाँच रुपया पंडे को देना पड़ेगा। सभी से पाँच-पाँच उसने लिए थे। सेठ से एकमुश्त पाँच सौ लिया था।

दीवाली के बाद जयनाथ प्रयाग चले गए। वहाँ बेतिया की महारानी रहती थी। पागल करार देकर उसकी रियासत सरकार ने ले ली थी। सालाना डेढ़ लाख रुपया उसे खर्च के लिए मिलता था। इलाहाबाद में एक बड़ा-सा बँगला लेकर अपने अमले और नौकर-चाकर के साथ महारानी रहती थी।

बेतिया की महारानी के यहाँ पूजा-पाठ, अनुष्ठान, जप और ध्यान का कुछ-न-कुछ सिलसिला लगा ही रहता। रुद्रधर मिश्र पुजारी के तौर पर रानी के यहाँ रहते थे। इस बार विजयादशमी के दिन महारानी भगवती का दर्शन करने विन्ध्याचल गयीं तो मिश्र जी भी साथ थे। वहीं जयनाथ का मिश्र से परिचय हुआ और वही परिचय जयनाथ को प्रयाग खींच लाया। एक मास महामृत्युञ्जय का जप करके चालीस रुपया दक्षिणा पायी। भोजन का प्रबन्ध तो, खैर, अलग से था ही।

प्रयाग से जयनाथ काशी आ गए।

काशी बहुत ही विलक्षण और बड़ा ही विचित्र स्थान है। ऐसा लगता है, मानो हिन्दुत्व और भारतीयता के सारे गुण और सारे दुर्गुण यहाँ बाबा विश्वनाथ की शरण में दुबके पड़े हैं। इससे पहले भी जयनाथ दो बार काशी आ चुके थे। बनैली के राजा पद्मानन्द सिंह की रानी पद्मावती ने नेपाली खपड़ा मुहल्ले में तारा भगवती का एक मन्दिर बनवाया। भोग-राग के लिए लाख रुपये की तहसील भगवती के नाम ट्रस्ट कर गयी। गरीब विद्यार्थी और काशीवास की इच्छा से आनेवाले बूढ़े पचासों की तादाद में वहाँ नित्य भोजन पाते। परन्तु यह सुविधा केवल मैथिल ब्राह्मणों के ही लिए थी। मन्दिर के मैनेजर से जयनाथ की दूर की रिश्तेदारी की लपेट थी। इसलिए चाहे जितने दिन काशीवासी बनकर वह तारा भगवती का प्रसाद पा सकते थे। फिर भी होली तक ही रहे। साढ़े तीन महीने के इस काशीवास की स्मृतियाँ जयनाथ को जीवन-भर न भूलेंगी। यह अनुताप कि शिक्षित नहीं बना, उनके हृदय में काशी रहते समय और तीव्र, और भी असह्य हो उठा। बड़े-बड़े पंडितों को गंगा में तख्त पर बैठे और त्रिपुंड किये जप में लीन देखते तो जयनाथ सोचने लगते—यह अगर पच्छिम की ओर निकल जाएँ, तो सौ-सौ रुपये का मासिक वेतन पाएँ। परन्तु विद्या भी विजया की तरह एक मादक वस्तु है। तभी तो पन्द्रह-पन्द्रह, बीस-बीस रुपये लेकर जिन्दगी-भर ये लोग काशी ही में पढ़ाते रह जाते हैं। जयनाथ को अपने क्षेत्र के महामहोपाध्याय भवनाथ मिश्र का नाम याद आया, जिन्हें लोग अयाची कहते थे। वे जीवन-भर किसी से

कुछ माँगने नहीं गए। बस, अपनी कुटिया में बैठकर विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे।

इन बातों से रह-रहकर जयनाथ को अपनी मूर्खता खलती और आहत मन को बहलाने के लिए वह कचौड़ी गली, कुंजगली, ठठेरी बाजार, चौक और दशाश्वमेध की राह लेते। यदा-कदा परिचितों की निगाह बचाकर दालमंडी का भी चक्कर लगा आते। 'राँड़, साँड़, सीढ़ी, सन्यासी, इनसे बचे तो सेवें काशी।' सो, बेचारे जयनाथ भी आखिर उलझ ही गए। विश्वनाथ और अन्नपूर्णा की पूजा कर चुकने पर लोग ढुंढिराज पर जल चढ़ाने जाते हैं। वहाँ से दंडपाणि। दंडपाणि वाली गली में चूड़ियों की कई दुकानें हैं। एक दिन जयनाथ ने देखा कि दो विधवाएँ वहीं एक दूकान पर मैथिली बोली में चूड़ियों का मोल-भाव कर रही है। जयनाथ के कन्धे पर भीगी धोती थी, हाथ में लोटा था। जल चढ़ाकर आ रहे थे। अपनी मातृ-भाषा में विधवाओं को बोलते पाकर ठिठक गये। बाद में जिधर वे चलीं, वह भी उधर ही हो लिए। जाते-जाते मणिकर्णिका घाट के पास ऊपर एक गली में एक मकान के अन्दर वे घुसीं। उस मकान की दीवाल पर किसी ने गेरू से लिख दिया था—मैथिल विधवा-निवास। साहस हुआ, अन्दर गए। एक बुढ़िया नल के पास कपड़ा फींच रही थी। उसने देखते ही पूछा—"किसे ढूंढ़ते हो?"

"शुभंकरपुर की एक मुसम्मात यहाँ रहती है। उससे ही मिलने आया हूँ।"

बुढ़िया ने सिर हिलाकर कहा—"ना, ना, शुभंकरपुर की तो कोई नहीं है यहाँ।"

इतने में उन्हीं दो में से एक विधवा ने ऊपर से झाँककर देखा और पूछा—"आप कहाँ के रहने वाले हैं?"

"शुभंकरपुर के।" जयनाथ ने कहा।

ऊपर से आवाज आई—"ठहरिए," सीढ़ियों में धम्-धम् करते दो हल्के पैर नीचे उतर आए। नजदीक आकर उस विधवा ने माथे पर का कपड़ा ठीक किया और बोली—"मैं परसौनी की रहनेवाली हूँ। शुभंकरपुर और परसौनी दोनो पड़ोसी हैं।"

जयनाथ बरबस मुस्करा पड़े—"तो, हम और आप पड़ोसी हुए।"

बिना किसी संकोच के चट से उस औरत ने कहा—"इसमें भी क्या कुछ सन्देह है?"···थोड़ा रुककर वह फिर बोली—"ऊपर चलिए, हमारी कोठरी को अपनी चरण धूलि से···"

जयनाथ ने टोका—"प्रतिदिन सवेरे जहाँ की गलियाँ झाड़-बुहार कर साफ कर ली जाती हों, वहाँ भला चरण-धूलि?"

"धूल न सही, चरण तो पड़ेंगे!" विधवा ने कहा—और सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर चलने का संकेत किया।

चार महीने हो गए थे, जयनाथ को घर छोड़े। इतने दिनों पर नजदीक से एक स्त्री का मुँह देखकर और उस मुँह से निकली बातें सीधे अपने कानों से सुनकर उनका मन प्रसन्न हो गया।

दुतल्ले पर पहुँचकर पूरब की ओर एक छोटी कोठरी के पास वह औरत रुक गई। मुड़कर जयनाथ की ओर देखा और बोली—"इस मकान का किराया अपने ही जिले के एक श्रीमान् देते हैं। हम विधवाओं पर उनकी विशेष कृपा रहती है! और, आप देखते ही हैं, इस मकान में कमरा दो ही एक हैं। तीन तल्लों में कुल मिलाकर पाँच ही सात कोठरियाँ हैं, बाकी बरंडा ही बरंडा हैं।"

चारों ओर नजर घुमाकर जयनाथ ने उस मकान को देखा।

ख्याल आया—वह कौन श्रीमान् हैं, इन विधवाओं के प्रति जिनके हृदय में करुणा का यह उद्रेक हुआ है?

कुश का आसन बिछाते हुए विधवा ने बैठने का इशारा किया और बोली—"लोटा रख दीजिए और धोती दीजिए इधर। सूखते क्या देर लगेगी?"

जयनाथ ने कहा—"बैठने को तो थोड़ा मैं बैठ लेता हूँ, मगर तारा मन्दिर में ठीक ग्यारह बजे भोजन की घंटी बजती है।"

आसमान की ओर दृष्टि डालकर वह विधवा बोली—"दस भी न बजे होंगे। तब तक यह गीली धोती क्या आप कन्धे पर ही डाले रहेंगे?"

जयनाथ ने कन्धे से उठाकर यह गीली धोती उसे थमा दी।

संसार का जयनाथ को जो थोड़ा-बहुत ज्ञान था, तदनुसार वह विधवा उन्हें उन विधवाओं से विलक्षण मालूम हो रही थी, जिन्हें शुभंकरपुर, बड़हडवा या कहीं और देखा था। वह चौड़े पाड़ की सफेद साड़ी पहने थी। गले में चाँदी की तीन सिकड़ियाँ झूल रही थीं। भ्रमर-कुंचित केश और खिला हुआ चेहरा देखकर ऐसा लगता था कि इस जीवन को वह उपेक्षा के योग्य नहीं समझती।

तब तक बरामदे की खूँटियों पर वह धोती डाल आई और कोठरी के अन्दर जाकर एक दोने में चार पेड़े लाकर जयनाथ के सामने रख दिए। कहा—"अभी तक आपने पानी नहीं पिया होगा।"

जयनाथ से 'न' कहते नहीं बना। उन्होंने अपने को समझाया—मिट्टी की ओर सभी खिचते हैं, मेरी-इसकी कोई जान-पहचान तो थी नहीं। शुभंकरपुर का नाम सुनकर इसे अपनी मातृ-भूमि परसौनी याद आई। पास-पड़ोस का होना ही इस खिचाव का कारण है···जयनाथ भी चार महीने से प्रवासी-जीवन बिता रहे थे। एकाएक यों पड़ोस की महिला से भेंट हो जाना कितना बड़ा सौभाग्य है!

उनका साहस नहीं हो रहा था कि प्रथम परिचय के इन क्षणों में ही नाम, कुल, जीविका आदि पूछ लें।

पेड़ा खाकर पानी पीकर वह जब तक निवृत्त हुए, तब तक पान के दो बीड़े

सामने आ गए। विधवा और मगही पान! जयनाथ की आँखें कपार तक फैल गईं! पान खाकर उन्होंने कहा—"धोती मैं आकर फिर ले जाऊँगा, अभी जाने दीजिए।"

स्त्री ने निषेध-मुद्रा में हाथ उठाकर कहा—"अब आठ बजे रात से पहले मैं नहीं मिलूँगी। एक खत्री के तीन बच्चे हैं। औरत उसकी पिछले साल चल बसी। उन अबोध बच्चों की मैं ही देखभाल करती हूँ।"

मन ही मन जयनाथ बोले—"तभी तो! अब बात समझ में आई।"

"मेरा नाम सुशीला है। धोती आपकी थोड़ी देर बाद पहुँच जाएगी, उसकी चिन्ता न करें," विधवा ने कहा।

उस समय तो जयनाथ चले आए, मगर सुशीला उनके हृदय-कमल पर मानो वज्रासन मारकर बैठ गई।

तारा मन्दिर में जयनाथ के ननिहाल की एक वृद्धा चावल फटकने का काम करती थी। अवसर पाकर सुशीला के बारे में जयनाथ ने कुछ बातें मालूम कीं। वह सचमुच परसौनी की ही रहने वाली थी। बाल-विधवा हो जाने के बाद जेठानी और ननद के दुर्व्यवहार से तंग आकर मायके में रहने लगी। वहाँ भाभी से खटपट हुई, तो भागकर काशी आ गई। पहले एक घाटिया महाराज के पल्ले पड़ी, और अब उस खत्री दूकानदार के घर की मलिकाइन बनी हुई है। खूब चुगती है, खूब छितराती है। भाई और चाचा आते हैं, तो उन्हें भी काफी दे-दिवाकर विदा करती है।···सुशीला की यह गुण-गाथा सुनकर जयनाथ ने उसके प्रति और भी आकर्षण अनुभव किया। वह तीसरे-चौथे दिन सुशीला के यहाँ पहुँचने लगे। सम्पर्क बढ़ता गया तो इससे क्या? उस विधवा ने अपने व्यक्तित्व को सदैव जयनाथ की कोरी भावुकताओं से ऊपर रखा। एक दिन, रात को वह उन्हें सिनेमा दिखाने ले गई। भागलपुर और इलाहाबाद में जयनाथ सिनेमा पच्चीसों बार देख चुके थे, लेकिन ऐसी अद्भुत साथिन तो उन्हें कभी नहीं मिली। एक बार पचगंगा घाट पर बैठे-बैठे सुशीला ने कहा—"बहता पानी ही धार कहलाता है। देखो सुबह-शाम हजारों आदमी नहाने आते हैं। मगर तुम जिस जाति में, जिस समाज में पैदा हुए हो, वह जिन्दा नहीं, मुर्दा धार है, वह छाड़न है। फिर भी मिथिला की उस मिट्टी का मुझे बहुत ही मोह है। उस धनी सज्जन का नाम मैं तुम्हें नहीं बताना चाहती जिसका हृदय हम विधवाओं के प्रति करुणामय है—इतना करुणामय कि तीन-तीन विवाहिताएँ और पाँच-पाँच रखेलियाँ रहते हुए भी चूड़ियों से सूनी कलाई की ओर ललचाई निगाह से देखा करता है। ताड़ी पीने वाले को तुमने अवश्य देखा होगा, मेरा भी वही हाल है। मैं प्रज्वलित अग्नि-कुण्ड हूँ, जो जितनी ही स्निग्ध समिधाएँ पाता है, उतना ही निर्धूम, उतना ही निठुर होता जाता है।"

जयनाथ समझदार जरूर था, मगर सुशीला की जलन को भली भाँति समझ

सका हो, इसमें सन्देह है। वह जब आवेश में आती तो लगती सिगरेट पर सिगरेट फूंकने ! एक दिन उसे कीमती चूड़ियां पहने देखकर जयनाथ दंग रह गया था और इस पर क्या कहा था सुशीला ने ? कहा यही था कि मेरे जितने मित्र बनते हैं, उतनी बार मैं चूड़ियां पहनती हूं, और फोड़ती हूं।

पन्द्रह

पंडित कालीचरन की स्त्री और सन्नो की मां ने अब चाची से मिलना-जुलना आरम्भ कर दिया था। और लोगों का भी रुख बदल रहा था। कर्ज, घाव का निशान और बदनामी—यह तीन ऐसी बातें हैं जो आहिस्ते-आहिस्ते मिट जाती हैं। चाची के भी कलंक को अब लोग भूलने लगे थे। और शुभंकरपुर जैसे प्रतिष्ठित गांव में हर छः माह पर किसी न किसी ऐसी घटना का हो जाना असम्भव नहीं, जो पिछली तमाम दुर्घटनाओं पर पर्दा डाल दे।

जयदेव मिश्र एक ज्योतिषी थे। उन्होंने अपने तीन लड़कों में से दो को अंग्रेजी की उच्च शिक्षा दिलवाई थी। बड़ा लड़का हरिदेव एम० ए० में सर्वप्रथम होकर फौरन पटना कालेज का प्रोफेसर हो गया था। छोटा भवदेव एम० एस-सी० में सर्वप्रथम हो फिलहाल अनुसंधान का कोई काम कर रहा था। घर वाले उससे आगे चलकर एस० डी० ओ० और कलेक्टर हो जाने की उम्मीद रखते थे। वह स्वयं विलायत जाकर और भी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता था। बड़े की शादी हो चुकी थी और अब इसकी होने वाली थी।

पच्छिमी बंगाल के दिनाजपुर और मालदह जिले बिहार की पूर्वी सीमा से बहुत दूर नहीं हैं। आज से सैकड़ों वर्ष पहले कुछ मैथिल ब्राह्मण उधर जाकर बस गये। अब भाषा, वेश, शिक्षा आदि की दृष्टि से वे बिलकुल बंगाली हो गए। औरतों तक ही अपने क्षेत्र की संस्कृति, सभ्यता और भाषा सीमित रह गई है। रायबहादुर ब्रजबिहारी ठाकुर दिनाजपुर के रहने वाले थे। पूर्णिया में आप कलेक्टर के ओहदे पर थे। अपनी लड़की के लिए वर का पता लगाते-लगाते उनकी नजर भवदेव पर पड़ी। बात पक्की हो गई। रायबहादुर ने मान लिया कि वह या तो भवदेव को विलायत में पढ़ने का सारा खर्च देंगे या डिप्टी मजिस्ट्रेट का ओहदा दिलवा देंगे। पिता का विचार न रहने पर भी भाई तो इस विवाह-वार्ता से सहमत था ही। पूर्णिया में ही भवदेव की शादी हो गई। बस, फिर क्या

था ? उठा शुभंकरपुर में तूफान ! लोगों ने कहना शुरू किया—बंगाली की लड़की से जयदेव ने अपने लड़के की शादी करा दी। लड़की का बाप किरिस्तान है और अंडा खाता है। बाल-बच्चे समेत इतवार के दिन गिरजा जाता है।···इस चर्चा ने इतना तूल पकड़ा कि चाची की कलंक-कथा उसके आगे बिल्कुल फीकी पड़ गई। समाजपतियों ने तुलसी, ताम, गंगाजल उठाकर आपस में शपथ खायी—यदि लड़का शादी करके आया, और बाप ने उसे अपने घर मे घुसने दिया, तो जयदेव के यहाँ का अन्न-जल हममे से जो भी ग्रहण करे, वह गो मांस खाय। तीन बार सविधि उच्चारणपूर्वक यह शपथ ली गई थी—दमयन्ती के दरवाजे पर। दमयन्ती ने भी शपथ ली थी।

चैत का महीना था। एक दिन संध्याकाल पाँच इक्कों ने गाँव मे प्रवेश किया और जाते-जाते जयदेव के दरवाजे पर रुक गए। पीछे-पीछे गुलाबी रंग की धोती और आसमानी रंग की कमीज पहने हैट लगाए भवदेव साइकिल पर आया। लोगों ने आँख फाड़-फाड़कर देखा। वह आकर सीधे अपने दरवाजे पर उतरा। तख्तपोश पर बैठे पिता को प्रणाम किया। सामान उतारा जा चुका था। तीन इक्कों पर सूती, ऊनी कपड़ों से भरे ट्रंक लदे थे। दो पर मिठाइयों से भरे खाँचे थे। उन मिठाइयों की खुशबू से गाँव-भर की हवा भारी-भारी हो रही थी। नथने बिचका-बिचकाकर बूढ़ियाँ कहने लगीं—हुआ भ्रष्ट ! सारा गाँव इन मिठाइयों को खाकर किरिस्तान हो जायगा। सभी परिवार-पति अपने-अपने दालान पर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर बैठे थे। दो बातें उन्हें परेशान किए हुए थीं। एक यह कि बच्चों पर बराबर तो निगरानी रखी जा नहीं सकती। दिनाजपुर के बंगाली के यहाँ से आई हुई यह मिठाइयाँ अगर बच्चों को गुपचुप खिला दी गई तो अन्दर ही अन्दर सारा गाँव विधर्मी के सम्पर्क में आ जायगा। दूसरी यह बात उन्हें परेशान कर रही थी कि जयदेव और उसके कुपुत्र भवदेव का अधिक से अधिक अपमान किस तरह से किया जा सकता है। इन दोनो बाप-बेटों को चित करने के लिए किस्म-किस्म के दाँव-पेंच सोचे जा रहे थे। बच्चों को धमकाकर कह दिया गया था कि उस दरवाजे की ओर गए तो टाँग तोड़ देंगे।

उसी रात को जयदेव ने लोगों को बुलाया कि आकर नवविवाहित भवदेव पर दूब-अक्षत डाल जायँ, आशीर्वाद दे जायँ। जबकि पचकौड़ी पाठक और घूटर झा दो को छोड़कर कोई तीसरा नहीं गया। ऐसे में आशीर्वाद देने के लिए कम-से-कम पाँच ब्राह्मणों का होना तो अनिवार्य है, परन्तु भवदेव का आना निश्चित तिथि से तीन दिन पहले ही हुआ, इस असावधानी से दुश्मनो को खिल्ली उड़ाने का बहुत ही बढ़िया अवसर हाथ लगा। जयदेव टिटिया कर मर गए, अपने को लगाकर भी चार से अधिक ब्राह्मणों का जुटाना पहाड़ हो गया उस दिन। चौथे सज्जन थे जयदेव के मौसरे भाई यदुनन्दन। वह पाँच-छः दिनों से यहाँ पहुनाई कर रहे थे।

मछली के अंडों का बड़ा बहुत ही स्वादिष्ट होता है। यदुनन्दन ने कुछ अधिक खा लिया था। दूसरे दिन रोहू के तले खंडों के साथ घी में भूने चिउड़े का नाश्ता किया था। अगले दिन कटहल की भाजी आवश्यकता से अधिक खा ली थी। नतीजा यह हुआ कि पेट खराब हो गया और अब दही और बेल खाकर शीतोपचार कर रहे थे। इन्हीं कारणों से पहुनाई में तीन दिन के बदले छ: दिन हो गये थे !

पचकौड़ी पाठक समूचे गाँव के निर्णय को अमान्य करके भी जयदेव के यहाँ जो आए, वह भी निःस्वार्थ नहीं था। पचकौड़ी के लड़के ने इसी साल मैट्रिक किया था और आशा थी कि हरिदेव उसे पटना ले जाकर आगे पढ़ने का कोई रास्ता पकड़ा देंगे। घूटर झा ठहरे पाक-शास्त्री। वह जयदेव की बात में इसलिए आ गए थे कि भवदेव का डिप्टी मजिस्ट्रेट और थोड़े ही दिनों बाद एस० डी० ओ० बन जाना बिल्कुल निश्चित था। सो, सरकारी अफसर के साथ रहना कम भाग्य की बात नहीं है।

गाँव वालों को अपार आनन्द हुआ, जब उन्होंने यह सुना कि वर के माथे पर दूब-अक्षत डालने के लिए जयदेव को पाँच हाथ भी न मिले।

तब भी जयदेव ने बड़ी नम्रता दिखलायी। जयनाथ भी गाँव ही में थे। भोला पंडित भी मौजूद थे। दमयन्ती थी ही। दूसरे टोले में प्रमुख थे जयनारायण झा और रमानाथ मिश्र। जयदव ने स्वय जा-जाकर इन पाँचों के पैर पकड़े। गिड़गिड़ाकर कहा—"जिसे आप लोग बंगाली कहते हैं, किरिस्तान कहते हैं, वह प्रवासी मैथिल है। कुल और शील सब अच्छा है। चाहें तो पंजीकार से जाँच करवा लें।"

इस पर सभी ने यही कहा कि भवदेव को प्रायश्चित्त लगेगा। तुम्हारे घर-भर को प्रायश्चित्त करना होगा।

सभी घरों में मिठाइयाँ भेजी गयी थीं। मगर यह बायना लोगों ने लौटा दिया। जयनाथ ने लौटाया तो नहीं, परन्तु दमयन्ती के बैल को खिला दिया। दो दिन के बाद भोला पंडित दल से फूट गए। जयदेव ने उन्हें एक जोड़ा महीन धोती देकर चाँदी के दस रुपये सुँघा दिए थे। अब क्या था, भोला पंडित ने तारा बाबा की कुटिया पर जाकर गरजना शुरू किया—"अरे, मैं तो उस ब्राह्मण की सत्रह पीढ़ियाँ जानता हूँ। ब्रजबिहारी ठाकुर के दादा, परदादा बहुत बड़े तान्त्रिक थे। मुर्शिदाबाद के नवाब ने दिनाजपुर जिले के अन्दर पाँच हजार बीघा लाखिराज ब्रह्मोत्तर उन्हें दिया था। यह लोग तभी से उधर बस गए।···जयदेव के घर और कोई न खाय, मगर···"

आवेश में आकर भोला पंडित अपनी छाती पर आप ही मुक्कियाँ मार-मारकर कहने लगे—"मैं ? यह चला मैं जयदेव के घर खाने। देखूँ, कौन मेरा क्या कर

लेता है ?"

कहते-कहते वह इतने आवेग में आ गए कि कच्छा खोलकर अपने को अर्धनग्न कर लिया। इसके बाद प्रतिद्वंद्वियों का नाम ले-लेकर बड़ा ही बीभत्स संकेत किया।

जोरों की गर्जना सुनकर आसपास के खेतों से कुछ ग्वाले जमा हो गए। उन्हें डर हुआ कि उन्हीं में से किसी की गाय या भैंस पंडित की बगिया में घुसकर कुछ नुकसान कर आयी है। जब वे नजदीक आए, तब तक अविराम गर्जन के कारण भोला पंडित का गला बेसुरा हो चुका था; मानो फूटा शंख हो। कच्छा-वच्छा वे ठीक कर चुके थे।

बिरजू अहीर ने झुककर पालागन किया और नम्रता से पूछा—"क्या बात है ? किस पर आप इतना गरज रहे थे ?"

भोला पंडित ने थके स्वर में कहा—"अरे, जयदेव का लड़का ब्याह करके आया है। जानते हो न ?"

"हाँ, सब जानते हैं।" बिरजू बोला।

भोला पंडित खिसियानी सूरत बनाकर बोले—"सारा शुभंकरपुर जयदेव के ऊपर उलट पड़ा है। चाहते हैं लोग यही कि जयदेव सबकी जूतियाँ धो-धोकर पिए।..."

थोड़ा-सा विश्राम पाकर भोला पंडित के गले में फिर ताकत आ गयी और दायाँ हाथ उठकर चला गया मूँछ पर। मूँछ के विरले बालों को मरोडने की निष्फल चेष्टा ने उनके आवेश को द्विगुणित कर दिया। वे तमककर बोले—"अंग्रेज बहादुर का राज है, कोई किसी को चबाकर खा जाएगा, सो नहीं होगा।"

इस पर बिरजू अहीर बोला—"आखिर गाँववाले चाहते क्या हैं ?"

"चाहेंगे क्या ?" भोला बोले—"जयदेव के दिन फिरेंगे। किसी से भला यह कैसे देखा जायगा !"

ब्राह्मणों के समाज पर टीका-टिप्पणी करने का अवसर पाकर बिरजू अहीर को सचमुच ही बड़ी खुशी हुई। वह बोला—"जब ऐसी बात थी, तब क्यों जयदेव बाबू ने सबसे राय नहीं ले ली ? और समाज को भी अब सोचना पड़ेगा कि इस जमाने में किसी को एकघरा बनाकर छोड़ा नहीं जा सकता। हजाम अगर बाल नहीं बनाएगा तो क्या ? इस्टीसन पर दिन की गाड़ी के वक्त दस-दस हजाम दाढ़ी-बाल बनाने को तैयार बैठे रहते हैं। जाति-पाँति नहीं किसी की पूछते। अब बताओ महाराज, जिसका हजाम तुम बन्द कर दोगे, वह क्या जाकर इस्टीसन से बाल न बनवा आएगा ?"

भोला ने कहा—"बिरजू, अब इस गाँव में पंडित तो कोई रहा नहीं, खाली गधे भरे पड़े हैं। उनकी समझ में यह बात नहीं आती।"

अभी तक तारा बाबा कुटिया में बैठे जप कर रहे थे। जप खत्म हो गया। वे बाहर निकले। देखा, भोला पंडित बिना नाथे बैलों को हाँके जा रहे हैं। गाँव का कोई भी रहस्य बाबा से छिपा नहीं था। गाँववालों पर कभी बाबा ने अपना निर्णय थोपने की कोशिश नहीं की। फिर भी बाबा के लिए सभी के हृदय में श्रद्धा थी। उनके पास जयनाथ जैसे कामचोर, जिद्दी और रगड़ी आते थे और भोला पंडित जैसे लोलुप, अवसरवादी और काइयाँ भी आते थे। कभी-कभी जयदेव भी आते थे।

बाबा को सामने खड़े देखकर भोला पंडित और बिरजू अहीर, जो बैठ चुके थे, खड़े हो गए। बाबा ने हाथ से इशारा किया—"बैठो।"

एक बार और अन्दर जाकर फिर वे बाहर आए तो हाथ में एक बड़ा-सा बेल था। उसे भोला की ओर बढ़ाते हुए बाबा ने कहा—"बागो जगदंबा की पूजा के लिए अड़हुल के लाल फूल मुझे दे जाया करती है, यह बेल ले जाओ, उसको देना।"

भोला पंडित का गर्जन सुनकर दो-चार ग्वाले जो और आए थे, वे गरजने की वजह जानकर वापस चले गए थे। बिरजू ही था जो नजदीक आकर बैठा था। तारा बाबा की यह कुटिया गाँव वालों की साझी संपत्ति थी। सुखी-दुखी, धनी-गरीब, पठित-अपठित, सभी आते थे समय पाकर। बाबा भी गाँव-भर में सबके यहाँ जाने को तैयार रहते। पर, इधर बुढ़ापे के कारण कुटिया से निकलते कम थे। कल जयदेव के यहाँ से दही, केले, मिठाइयाँ आयी थीं। भगवती को भोग लगाकर और थोड़ा-सा अपने लिए रखकर बाकी बाबा ने बच्चों में बँटवा दिया।

भोला पंडित को अपने पक्ष में पाकर जयदेव निश्चित हो गए कि यह बुड्ढा खुद ही कई को खींच लाएगा।

और हुआ भी ऐसा ही।

सोलह

शुभंकरपुर की कुल उपजाऊ जमीन का रकबा तीन सौ बीघा था। ढाई सौ बीघा धान के खेत थे। पचास बीघा रबी और भदई के थे। इसके अलावा आमों के बाग, बाँसों के जंगल, तालाब, गोचर आदि के लिए पचास बीघा और पड़ते थे। ढाई सौ परिवारों की आबादी, खाने वाले मुँह ग्यारह सौ। साफ है कि गरीब ही अधिक थे। यह गरीब भी दो श्रेणी में बँटे थे। बाभन और गैर-बाभन। ब्राह्मणों में विद्या

का खूब प्रचार था। पढ़े-लिखे लोग शहरों में फैले थे। चिट्ठियाँ और मनीआर्डर उन्हीं की बदौलत गाँव में खूब आते। सौ घर ब्राह्मणों के थे, मुश्किल से पन्द्रह घर ऐसे होंगे, जिनका शुमार महादरिद्रों में होता था। बाकी लोग खेती के अभाव में भी भर पेट खाने वालों में से थे। गाँव के नजदीक हाट लगती थी, सोमवार और गुरुवार को। धान, चावल, दाल, तेलहन, मड़ुआ, मकई, साग-भाजी, मछली, पान, मोटिया गमछा और चादरें—हाट के रोज शुभंकरपुर के लोग यह चीज जाकर खरीद लाते थे।

इस गाँव के ब्राह्मणों का खिला चेहरा देखकर बाहर वाले सोचते—बड़े सुखी होंगे ये लोग। काफी खेत होंगे इन लोगों के पास! मगर, असलियत यह थी कि लूट लाओ, कूट खाओ। ये लोग जवार में जब भोज खाने जाते, तो इनका साफ-सुथरा पहनावा, विनीत और भद्र वेश देखकर दूसरे गाँव वालों को भ्रम होता कि जमींदार घराने के होंगे।

इस मौजे के मालिक रायबहादुर दुर्गानन्दनसिंह बड़े जमींदार तो थे ही, साथ ही लहना-तगादा का भारी कार-बार भी चलाते थे। आस-पास की पाँच कोस जमीन पर उनकी छत्रछाया थी। तीन लाख रुपये पचीसों बस्तियों के इस समुद्र में दाँत निपोड़े पूँछ कड़ी किए मगरों की भाँति टहल-बूल रहे थे। ब्याज की दर प्रति मास डेढ़ रुपये सैकड़ा थी। राजाबहादुर पुराने अँगूठे को साल-साल नया करवाते जाते। सूद भी मूल बनता जाता। चक्रवृद्धि का यह क्रम राजाबहादुर की शरीर वृद्धि के लिए रसायन का काम कर रहा था। कहते है, हवेली में नकद रुपये रखने के लिए उन्हें चहबच्चा (छोटा तालाब) बनाना पड़ा था। माँ के श्राद्ध में समूचे भारत के उन पंडितों की आपने सभा बुलवाई थी, जो महा-महोपाध्याय की उपाधि से विभूषित थे। प्रत्येक पंडित को दुशाला और एक-एक सौ एक-एक रुपये की बिदाई दी गयी थी। आने-जाने का सेकेण्ड क्लास का खर्च। सात दिनों तक पंडितों का शास्त्रार्थ चला था। मैथिल पंडितों को अपनी भूमि पर अपने पांडित्य प्रदर्शन का जो सुयोग मिला, वह अभूतपूर्व था। बाहर के पंडित विदा होते समय राजाबहादुर को 'धर्म-दिवाकर' की गौरवपूर्ण उपाधि से सुशोभित करने गये थे। जवार के पचासों गाँव निमंत्रित किए गये थे। उन्हें पूड़ी-तरकारी से नहीं, खाजा, मुँगवा (बुँदवा), घेवर, बर्फी, पेड़ा, बालूसाही, रसगुल्ला, गुलाबजामन, जलेबी वगैरह अठारह किस्म की मिठाइयों से परितृप्त कर दिया गया। हाथी के कान जैसा बड़ा-बड़ा खाजा, फुटबाल जैसा मुँगवा था। दरअसल यह चीजें खाने की नहीं, तमाशे की थीं। सबके आगे बड़े पत्तलों में मिठाइयों का ढेर लगा था। जूठन की उन मिठाइयों को जवार के शूद्रों ने कई दिन तक खाया था और आज भी उल्लसित होकर वे राजाबहादुर का गुणगान कर रहे हैं। ब्राह्मणों को भर-भर अंजुरी बम्बइया सुपारी दी गयी थी। महापात्र को हाथी

मिला था ।

अपने वैभव के इस विराट् प्रदर्शन मे राजाबहादुर को इतना आत्म-संतोष हुआ कि खाने-पीने में अरुचि हो गयी। कोई भी चीज चित्त पर चढ़ती ही न थी। एकमात्र कन्या थी। धूम-धाम से उसकी शादी वे पहले ही कर चुके थे। स्टेट का सारा भार घर-जमाई के कंधों पर डालकर राजाबहादुर तीर्थयात्रा के लिए निकलने ही वाले थे कि सन् 37 का वह कांग्रेसी जमाना आ धमका।

बार-बार आगे-पीछे सोचकर कांग्रेस ने जब प्रान्तों के शासन में हाथ बँटाना स्वीकार कर लिया तो जनता ने युग की ओर नई आशा से देखा। मिनिस्टरी कुबूल कर लेने पर नेताओं का उत्तरदायित्व बेहद बढ़ गया। चुनाव के समय उन्होंने जनता से बड़े-बड़े वादे किए थे।

जमींदार चुनाव मे हारकर अपने अंधकारमय भविष्य की कल्पना करते हुए कछुए की भाँति दुबके पड़े थे। अन्दर ही अन्दर कुछ सोचकर अपने पैंतरे बदल डालने का उन्होंने निश्चय किया। परंपरा की दुहाई देकर कांग्रेसी मंत्रियों को उन्होंने धमकी दी—"आपका खादी का कुर्ता पहले हम अपने खून से तर कर देंगे, उसके बाद जाकर जमींदारी प्रथा उठा दीजिएगा।"

मंत्रियों ने अपनी पीठ कर दी किसानों की ओर, मुँह कर दिया जमींदारों की ओर। दुनिया-भर मे बदनामी फैल गयी कि बिहार की कांग्रेस पर जमींदारों का असर है। जवाहरलाल तक ने खुल्लम-खुल्ला यह बात कही।

किसान संगठित होने लगे। उनका नारा था—"कमाने वाला खाएगा, इसके चलते जो कुछ हो।" संगठन की यह हवा राजाबहादुर की भी जमींदारी में पहुँची। उनकी सूदखोरी और जमींदारशाही से सारा इलाका तंग आ गया था।

हजारों बीघा जमीन वे किसानों को मनखप (मन के हिसाब से खेत उपजाने का ठेका देना) दिए हुए थे। चार मन फी बीघा से लेकर पन्द्रह मन फी बीघा तक रेट था। शुभंकरपुर के ग्वाले सत्तर-अस्सी बीघा खेत मनखप पर जोतते थे। अब वे लोग भी सुरफुराए। गाँव में से ही दो-तीन लीडर निकल आये। बलुआहा पोखर के भिंडे पर किसान-कुटी बन गयी। घर-घर से मुठिया (प्रति घर से एक-एक मुट्ठी अनाज) वसूल होने लगा। किसान-कुटी के लिए किसी ने लोटा दिया, किसी ने थाली दी। कुम्हार ने घड़े दिए, नौला दिया, कड़ाही दी। उमानाथ की माँ ने अपना दो साल का पुराना कम्बल दे दिया। उनके पास दूसरा कम्बल नहीं था। रतिनाथ ने मना किया तो बोली—"यह दस का काम है। देश का काम है। गरीबों का यज्ञ है। मेरे पास और है ही क्या, जो दूँगी।"

ब्राह्मणों में इस बात को लेकर दो दल हो गये। एक दल जमींदारों की ओर था, दूसरा किसानों की ओर। जो लोग जमींदारों की ओर थे वे खूब नफे में रहे। आन्दोलन की बातें इस तरह बढ़ा-चढ़ाकर राजाबहादुर के कानों में डाली गयीं

कि वे बदहवास हो गये। बढ़िया-से-बढ़िया धनहर खेत सौ या पचास रुपये फी बीघा लुटाने लगे। 'आग लगते झोपड़ी जो आवे सो हाथ।' किसान बित्ता भर भी जमीन छोड़ने को तैयार नहीं थे। उनमें गजब का जोश था। उनके लीडर दरभंगा और पटना तक दौड़ लगा रहे थे। इस संघर्ष की जरा-जरा-सी बात भी 'जनता' में विस्तारपूर्वक छपती थी। सभा, जुलूस, दफा एक सौ चवालीस, गिरफ्तारी, सजा, जेल, भूख-हड़ताल, रिहाई—यह सिलसिला किसानों को ठण्डा नहीं कर सका। जयदेव ज्योतिष पढ़-लिखकर घर बैठ गये और अब तीन-तीन लायक बेटों के भाग्यवान् बाप बनकर बुढ़ापे के दरवाजे पर खड़े थे! शायद ही कोई कुकर्म उनसे छूटा हो। तरुणी विधवाओं को प्रेम-पाश में फँसाकर फिर उनकी जायदाद अपने नाम लिखवा लेना और चूसे आम की गुठली की भाँति फिर उन्हें फेंक देना; दो खेत वालों में सीमा का झगड़ा खड़ा करके मुकदमों में बझा देना और उनमें से एक को खदुका (कर्जखोर, ऋणी) बनाकर लील जाना; सस्ते दामों में अँगूठे (हैंडनोट) खरीदकर पीछे ज्यादा-से-ज्यादा रकम चढ़ाकर उन्हें अदालत में पेश कर देना, और अपने घर में आप ही सेंध डलवाकर पड़ोसी को गिरफ्तार करवा देना—इसी रास्ते से चलकर जयदेव उस मंजिल तक पहुँचे थे, जहाँ कि चोरों का सरदार और थाने का दारोगा समान श्रद्धा-भक्ति से स्वागत पाता है। किसान-आन्दोलन से सर्वाधिक लाभ इन्हीं महाशय को पहुँचा, क्योंकि राजाबहादुर ने दबंग समझकर मनखप वाले दस बीघा खेत जयदेव को लिख दिया, सिर्फ छः सौ रुपये लेकर। मालूम होने पर किसान गुस्से के मारे पागल हो गये, मगर अन्दर के घूसखोर और ऊपर के पुरजोर कुछ किसान-सेवकों ने उल्टा-सीधा समझाकर उन्हें शान्त कर दिया। जिला किसान सभा के एक प्रमुख नेता रमापति झा परसौनी के रहने वाले थे, तीन साल तक एड़ी-चोटी का पसीना एक करके उन्होंने राजाबहादुर के रैयतों को जगाया था। और अब उनके भी मुँह से लार टपकने लगी। चौदह बीघा जमीन मिली, बारह सौ का कर्जा माफ हो गया। शुभंकरपुर के तीन तरुण ब्राह्मण छोटी जाति वाले किसानों के अगुआ बनकर उठे थे। दो-दो बीघा खेत देकर राजाबहादुर ने उनके मुँहों में भी दही लगा दिया। इतने पर भी किसान डटे रहे। पड़ोस के एक दूसरे छोटे जमींदार ने राजाबहादुर के शुभंकरपुर वाले सारे खेत लिखा लिए। किसानों के संघर्ष को अवसरवादी नेता चौपट कर चुके थे। मुकदमा लड़ते-लड़ते उन बेचारों का बुरा हाल था। ऐसी स्थिति में पंडित कालीचरण के नौजवान लड़के ताराचरण ने बीच-बचाव करके नये जमींदार से यह मनवा लिया कि खेत किसानों की ही जोत में रहेंगे। फी बीघा ग्यारह मन के हिसाब से अनाज इसके एवज में उसे साल-साल मिलता रहेगा। हारती बाजी के समय का यह मामूली नेतृत्व किसानों की दृष्टि में ताराचरण को आगे ले आया।

किसानों के उस संघर्ष का जब इस प्रकार उपसंहार हो रहा था तब दो साल पूरे हो चुके थे और यूरोप हिटलर की चंगुल में था। कांग्रेसी मंत्रिमण्डल इस्तीफा देकर विश्राम कर रहा था। विश्राम तो क्या कर रहा था, आगामी महासंघर्ष की चर्चा में जोर से लग गया था।

सत्तरह

जयकिशोर की बदली मोतिहारी जिला स्कूल में हो गयी थी। एक ही भेंट ने रतिनाथ के प्रति उनके हृदय में ममता पैदा कर दी थी। इस बार प्रथमा परीक्षा पास कर चुकने पर रत्ती ने उन्हें पत्र लिखा और साथ रहने की अपनी इच्छा प्रकट की। जवाब में जयकिशोर ने लिखा---तीन जून से हमारा स्कल बन्द हो रहा है। तेरह जुलाई को खुलेगा। पाँच-सात दिन पहले ही तुम तरकुलवा आ जाना। साथ ही मोतिहारी आ जाएँगे।

रत्ती ने चाची को मामा का पत्र दिखाया तो वह गम्भीर हो गयी। चर्खा चला रही थी। खतम हो रही पूनी के छोर पर नयी पूनी रखते हुए एक बार उसने रत्ती के मुँह की ओर देख लिया। चर्खा ज्यों का त्यों चल रहा था। जरा देर बाद अपनी दृष्टि को तकुए पर सीमित किए हुए ही चाची बोली---"मुझे क्या, अकेली भी रह लूँगी। परन्तु मेरे भैया के साथ रहकर तुम अपने बाप को न भूल जाना।"

रतिनाथ ने कहा कुछ नहीं; सिर्फ गौर मे चाची की ओर देखा। वह बोली --"समझती हूँ, पिता के प्रति तुम्हारे हृदय में माया-ममता बहुत ही कम है। परन्तु, सद्गति तो उनकी तुम्हारे ही तर्पण से होगी। संसार उन्हें खिला सकता है, पिला सकता है, जिला सकता है, पर मरने के बाद वह उन्हें प्रेत होने से नहीं बचा सकता। यह तुम्हीं कर सकते हो।"

रत्ती बकर-बकर सुन रहा था। उसे माँ याद आ रही थी। साथ ही पिता का वह कसाईपन और कुल्हाड़ी मे गला काटने की चेष्टा का वह दृश्य भी याद आ रहा था...

चिन्तना की गहरी छाप रत्ती के चेहरे पर देखकर चाची ने बातचीत का सिलसिला बदल दिया। बोली---"अरे! हाँ, अब मेरा सूत खादी भण्डार कौन ले जाएगा!"

रत्ती थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला—"मधुवनी जाने वालों की भी क्या कमी है ? जिससे कहोगी, वही तुम्हारे सूत के लच्छे वहाँ पहुँचा देगा ।"

अपने बारीक सूत पर निगाह टिकाकर चाची बातचीत कर रही थी। उन्होंने कहा—"क्या-क्या ले जाओगे !"

"लोटा, धोती और किताब ।"

चाची ने मुस्कराकर कहा—"और मुझे क्या इसी जंगल में छोड़ जाओगे ?"

अब रत्ती का मुँह खुला—"सुनता हूँ, पुराने जमाने मे तापसियाँ वनवासिनी होती थीं। कम-से-कम खाना-पीना, कम सोना। व्रत और उपवास। भक्ति और भजन। अतिथियों की सेवा। सब के प्रति ममता का भाव। यही उनकी जीवन-चर्या थी। और, चाची, तुम भी बहुत बदल गयी हो। दिन-रात चर्खा चलाकर अपने लायक पैसा कमा लेती हो। तीस दिन में दस दिन तो तुम्हारे उपवास मे चले जाते हैं। शरीर सूखकर काँटा हो गया है। गाँव में भूला-भटका कोई आ जाता है, तो लोग उसे इस टोले में भेज देते हैं कि उमानाथ की माँ दो मुट्ठी भात और कलछी-भर दाल तो आगन्तुक को खिला ही देंगी। बाराखड़ी मुझसे सीखकर अब तुम रामायण बाँचने लग गयी हो। ऐसा लगता है कि दिन-ब-दिन तुम देवता होती चली जा रही हो ।"

जिस हाथ से चाची चर्खा चला रही थी, उसी हाथ से रत्ती के गाल पर हल्की चपत लगाकर बोली—"दुत पगला !" और हाथ फिर चर्खा चलाने लगा। बाएँ हाथ में तो पूनी थी ही।

इतने में रत्ती को पुकारता हुआ सत्तो आ गया। उसके साथ रत्ती बाहर चला गया।

चाची का जीवन सचमुच ही इधर एक विशेष प्रकार का हो गया था। रत्ती ने अभी जो कहा, उसमे थोड़ी भी अत्युक्ति नहीं थी। तीसरे साल जब वे तरकुलवा से आयी, तभी से चर्खा चला रही हैं। पचीस-तीस रुपये हर महीने इससे निकल आते हैं। सूत बेहद बारीक कातती हैं। चर्खा-संघ वाले भी कम चालाक नहीं होते। चाची जैसी कत्तिनों के सूत को कभी तो एक सौ दस नम्बर का करार देते हैं और कभी साठ का। तरीका चर्खा-संघ वालों का यह है कि पहले कुछ दिनों तक महीन सूत कातने वाली के प्रति कुछ इन्साफ का अभिनय किया, फिर सूतों के माकूल नम्बर दिए। बाद में धीरे-धीरे नम्बर घटाते गये। झख मारकर कत्तिनों को यह सब बर्दाश्त करना पड़ता है, तभी तो चाची जैसी कत्तिनें अखिल भारतीय सूत-प्रतियोगिता में सर्वप्रथम पदक पाने पर भी इतनी कम मजदूरी पाती हैं।

चाची की समझ में यह नहीं आ रहा था कि गांधीजी के चेले इस प्रकार की बेईमानी क्यों करते हैं ? फिर भी चर्खा चलाते रहने से चाची को बहुत लाभ

पहुँचा है। आर्थिक समस्या हल हो गयी। मन नियंत्रित हो गया। दुर्भावनाओं से छुटकारा मिला। इधर वे जयनाथ की भी ओर से तटस्थ थी। आजकल वे अधिकतर गाँव में ही रहते हैं। बचे-खुचे खेत बेचकर महाजन बनने की धुन में कजरौटा (काजल वाली डिबिया) और सादा कागज लिये बैठे रहते हैं। बादाम और खीरे के बीज डालकर तैयार की गयी दूधिया भाँग आप उन्हें पिला दीजिए और पचास-पचहत्तर ले लीजिए, अँगूठे का निशान भले ही दो दिन बाद बना दीजिएगा। दादा-परदादा के जमाने के खेत बेचने का विचार रत्ती को असह्य लगा था, परन्तु चौदह साल का लड़का कर ही क्या सकता था!

एक विधवा तेलिन इन दिनों जयनाथ की प्राणवल्लभा बनी थी। चाची ने समझाया—"शादी कर लो बाबू, भले आदमी की जिन्दगी बिताओ। सेंध लगाने की फिराक में भीतों की ओर घूरते रहनेवाला चोर क्या खाक चैन से रहेगा?"

अपनी भूतपूर्व प्रेयसी की ये बातें जयनाथ को गुड़िच-सी कड़वी लगीं। उनकी सिर्फ एक ही दलील थी कि संसार मुझे क्या कहेगा? लड़का सयाना हो रहा है, शादी तो उसकी न होनी चाहिए!

इस पर चाची का कहना था कि लड़के के खा-पी लेने पर क्या तुम्हारी भी भूख-प्यास मिट जाती है? उमानाथ की उसी माँ के मुँह से यह बात सुनकर जयनाथ देवरोचित परिहास कर बैठते—"और तुमने क्या अमृत पी लिया है!"

चाची का चेहरा दीप्त हो उठता। क्षुद्र पुरुष के इस धृष्ट-परिहास का मुँह-तोड़ उत्तर देना अत्यन्त आवश्यक समझकर वे बोल पड़ती, किसी भी युग में स्त्री को अमृत पीने का सुयोग नहीं मिला। पुरुष को अमृत पिलाकर स्वयं वह विषपान ही करती आई है ''जाने दो, तुम यह सब क्या समझोगे!

पिछले साल इन्हीं महाशय ने उमानाथ की माँ को क्या कम परेशान किया है! दिन में तो नहीं, परन्तु रात को सोना चाची के लिए हराम हो गया था। वे रत्ती को बराबर अपने नजदीक सुलातीं, फिर भी जयनाथ नहीं मानते, खा-पी चुकने पर कहानियाँ सुनते या गप करते जब रत्ती सो जाता तो किसी न किसी बहाने जयनाथ चाची के पास आ बैठते। वे बेचारी भी सँभलकर उठ बैठतीं। उनका रोम-रोम जागरूक प्रहरी बन जाता। जयनाथ का हाथ बहकता तो चाची उसे पकड़कर आहिस्ते से हटा देतीं। वासना के उद्रेक से जयनाथ की जीभ लड़खड़ाने लगती तो ये फुर्ती से उठकर बीच आँगन में आ जातीं। ऊपर नीले आकाश में, नक्षत्रों का मृदु मधुर आलोक उस समय चाची को आकर्षित नहीं करता। उनका सारा ध्यान रुग्ण हृदय वाले अभागे जयनाथ पर केन्द्रित रहता।

मन्मथ का यह नृत्य देर तक देखते रहना उन्हें जयनाथ के प्रति अन्याय प्रतीत होता। वे दौड़कर पीढ़ा ले आतीं और उस पर जयनाथ को बैठा देतीं।

कुएँ का ठण्डा पानी घड़े में मौजूद रहता ही। चाची फुर्ती से घड़ा उठा लाती और जयनाथ के माथे पर धीरे-धीरे ठण्डा पानी ढालने लगती। आपत्ति करने पर कहती— नहीं, धो लो। फिर देखा जाएगा। परन्तु पन्द्रह मिनट तक शीतल जल के इस अभिषेक से जयनाथ स्वस्थ हो जाते। चाची धोती लाकर पहना देती।

चलो सो रहो—जयनाथ का हाथ पकड़े चाची उन्हें बिस्तरे पर लिटा आती। जब वे लेट जाते तो तेल और पानी मिलाकर तलवे रगड़ने लगती। इस तरह उन्हें सुलाकर तब रत्ती के पास आती और सो रहती।

इसी प्रकार वह अपने को जयनाथ से बचाती रही है। तैंतीस साल के इस विधुर देवर के प्रति उनका वही भाव रहता है जो कि एक समझदार माँ का अपने बीमार बालक के प्रति रहता है। वे उन्हें घृणा की दृष्टि से नहीं देखती थी। खैर भी जयनाथ ने अपने मन से बेचा था। उनसे पूछते तो जरूर मना करती। रत्ती के सम्बन्ध में चाची उतनी चिन्तित नहीं रहती थी, जितनी कि जयनाथ के सम्बन्ध में। उस तांत्रिक से जयनाथ का सम्पर्क जो इधर स्थापित हो गया, उसका पता चाची को कई महीने बाद ही लग सका। यह समझकर कि यों भी भला गाँव में उनका मन लगा रहे, उन्होंने इस बारे में जयनाथ से कभी कुछ कहा नहीं।

अब चाची आत्मलीन रहने लगी थीं। इसलिए रत्ती का सौनिहारी जाना उन्होंने इतनी आसानी से मंजूर कर लिया।

मर्दों में से एक ही था कि जिससे इन दिनों चाची की घनिष्ठता थी। वह था ताराचरण। किसान-आन्दोलन के आरम्भ से ही उसे अखबार पढ़ने की चाट लगी और अब वह दैनिक 'आज' का नियमित ग्राहक एवं समझदार पाठक हो गया था। किसान-सभा के नाम पर चाची ने कई बार करके थोड़ा-थोड़ा चन्दा दिया था। गरीबों के स्वराज और धनिकों के स्वराज में आकाश-पाताल का अन्तर है, यह बात चाची के हृदय में ताराचरण ने भली भाँति बैठा दी थी। ताराचरण दूसरे-तीसरे दिन आकर चाची को देश और दुनिया के हाल बताया करता। पर्व-त्योहार के दिन वे न्योता देकर उसे ही खिलाया करती।

अठारह

उमानाथ भागलपुर से कलकत्ता चला गया था। खूब मन लगाकर पढ़ने पर भी भागलपुर में जब वह प्रथमा पास नहीं कर सका, तो विशाल और कोलाहलपूर्ण

कर्म-क्षेत्र में अपना उचित स्थान प्राप्त करने की नीयत से कालीजी की छत्रछाया में उसने प्रवेश किया। थोड़े दिनों तक इधर-उधर धक्के खा लेने के बाद पान की एक दूकान पर सुपारी काटने का काम पा गया। दस घण्टा काम। पन्द्रह रुपये की माहवारी। शुभंकरपुर के वैदिक अच्युतानन्द दिन-भर घास की तरह पान कचरते रहते। हरीसन रोड और अपर चितपुर रोड का जहाँ क्रास हुआ है, उसी नुक्कड़ पर पान की वह दूकान थी जहाँ से वैदिक जी पान लिया करते। इस दूकान के तमोली लोग दरभंगे के ही रहने वाले थे। कलकत्ते में लाखों बिहारी हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों के भी हजारों होंगे। उन्हें बँगला पान नहीं सुहाता, मगही और देशी पान ही उन्हें रुचते हैं। इसीलिए इधर के सैकड़ों तमोली कलकत्ते में पान की दूकान करते हैं। वह चलती भी खूब है। उस नुक्कड़ वाली दूकान के मालिक ने वैदिक जी से पुराने नौकर के भाग जाने का जिक्र किया तो अगले दिन ही वह उमानाथ को भरती करा गये। हाँ, कमीशन के तौर पर पहले मास के वेतन में से पाँच रुपया देने की बात उन्होंने उमानाथ से मनवा ली थी। इन बातों को वैदिक जी वेद-पाठ के अन्दर ही समझते थे। नये आगन्तुकों की पहली कमाई में से इस तरह कुछ-न-कुछ ले लेना अच्युतानन्द जी की अच्युत नीति थी।

उमानाथ दसों घण्टा अविराम गति से सरौता चलाता हो, ऐसी बात नहीं थी। पान की दुकानों का तरीका यह है कि सुपारी के छोटे-छोटे टुकड़े करके आज शाम को उसे पानी में डाल देंगे और कल सुबह दुकान खोलने पर उसे निकाल लेंगे या थोड़ा-थोड़ा करके जरूरत के मुताबिक दिन-भर निकालते रहेंगे। उमानाथ को दिन-भर के लायक सुपारी काटने में छः घण्टे लगते थे। उसके बाद मौज थी। लेकिन दुकान पर मौजूद रहना आवश्यक था। कुल मिलाकर वहाँ चार छोकरे थे। मालिक स्वयं शाम को आकर डेढ़ घण्टा, दो घण्टा बैठा करता। सारा काम नौकर ही करते। उनमें से एक का काम था पीतल-मढ़ी चौकी का, कत्थे की कुल्ही (मिट्टी [illegible]) [illegible], [illegible] आलमारियों का, पान [illegible] साज-सिंगार साफ रखना। दूसरे का काम था सुपारी काटना, [illegible] [illegible] जमा करना, मसाला, इलायची [illegible] पीतल-मढ़ी चौकी के दोनों ओर बैठकर कुर्सी से [illegible] पान लगा-लगाकर देते जाना।

चारों नौकर एक ही उम्र के थे। अपना देहाती दायरा छोड़कर वे बाहर आ गये थे। कलकत्ते की हवा उन्हें लग रही थी। आपस में अनबन का कोई कारण नहीं था। इसीलिए किसी व्यक्तिगत काम के लिए उनमें से एक भी अपनी ड्यूटी छोड़कर कहीं जाता तो बाकी तीनों उसका काम सँभाल लेते। उमानाथ चार महीने उस दूकान पर रहा। छोड़ते समय वह बीस पा रहा था। लड़ाई छिड़ जाने पर भी खाने-पीने की चीजें अभी सस्ती थीं। मन्दिर स्ट्रीट के एक मकान में डेरा

था। पाँच-छः जने थे, मिल-जुल कर रसोई कर लेते। खाने का खर्च छः से अधिक नहीं पड़ता। साबुन, तेल, हजामत वगैरह के लिए दो रुपये काफी थे। बारह रुपया प्रतिमास बचाए जाने से उमानाथ को किसी प्रकार की दिक्कत महसूस नहीं होती। माँ को खत या रुपया वह कुछ नहीं भेजता। उन्नीस वर्ष का हो रहा था और जाने किसने उसके दिल में यह बात बैठा दी थी कि चार-पाँच सौ रुपया जमा नहीं करोगे, तो शादी नहीं होगी। बचे हुए रुपये वह डाकखाने में जमा करने लगा।

उसके मेस में खाने वाले सभी प्रायः दरभंगा जिले के ही थे। सब के सब ट्राम कम्पनी के मुलाजिम थे। दो ड्राइवर, तीन कंडक्टर। उन्हीं लोगों की बदौलत उमानाथ को ट्राम कम्पनी में ड्राइवर का काम मिल गया। ऊपर बिजली के तार का सहारा लेकर नीचे सड़क से सटी पटरियों पर दौड़ने वाली यह छोटी-छोटी गाड़ियाँ कलकत्ता के नागरिक जीवन में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। ट्राम-गाड़ियाँ बिजली के चार-चार, पाँच-पाँच खम्भों की दूरी के फासले पर खड़ी होती जाती हैं। एक ओर से आप चढ़िये, दूसरी तरफ से उतर जाइये। कंडक्टर आकर टिकट के लिए पूछेगा। इकन्नी का टिकट ले लीजिये, चार-चार मील चले जाइये। सबसे सस्ती सुविधाजनक सवारी है यह!

पाँच छः दिन में ही उमानाथ ने ड्राइव करना सीख लिया। ट्राम के ड्राइवर को मोटर के ड्राइवर की तरह लम्बी ट्रेनिंग नहीं दी जाती। रोकना, चालू करना, दाएँ-बाएँ मोड़ना, पीछे खिसकाना, और राहगीरों की भीड़-भाड़ में से गाड़ी को बचाकर ले जाना—यही सब उसे सिखलाया जाता है। दस-पन्द्रह दिन पुराने ड्राइवर के पास खड़े रहकर उसे गाड़ी चलाने दी जाती है। बाद में धोखाधड़ी मिट जाने पर वह अकेले ही गाड़ी चलाने लगता है। ट्राम में इंजिन तो होता नहीं, होती है बिजली! दो डिब्बों की एक गाड़ी बनती है। अगले डिब्बे के सिरे से सम्बन्धित एक बड़ा-सा डंडा ऊपर की ओर उठा रहता है। उसका ऊपरी छोर सड़क के बीचो-बीच फैले चले गये तार को छूता रहता है। ड्राइवर के स्विच दबाते ही ऊपर तार से सम्बन्धित डंडा सर-सर-सर-सर सरकने लगता है और गाड़ी चल पड़ती है। गाड़ी को रोकना होता है तो स्विच को ऊपर कर देते हैं। इसी तरह चलाने, ठहराने, मोड़ने, तेज करने वगैरह की स्विचें ड्राइवर के सामने होती हैं। ट्राम का फुर्ती से सरकने लगना, फुर्ती से खड़ा हो जाना और फिर चल पड़ना, अनभ्यस्त और अपरिचित लोगों को अजीब-सा लगता है। चढ़ते-उतरते समय दस-पाँच दिनों तक उनके पैर लड़खड़ाते हैं।

तीस रुपये पर उमानाथ बहाल हुआ। फिर भी अपना खर्चा उसने नहीं बढ़ाया। उसके पिता कुछ जमीन गिरवी रख गये थे। पचहत्तर रुपये में पन्द्रह कट्ठा जमीन फँसी थी। बेचनेपर आजकल छः सौ रुपये मिलते। उमानाथ ने भोला पंडित के नाम छिहत्तर रुपया आठ आना मनीआर्डर भेजा। समूचा गाँव दंग रह

गया। किसी ने कहा—यह है बाप का बेटा। किसी ने कहा—उमानाथ की माँ के दिन फिर गये। भोला पंडित इसीलिए फूलकर कुप्पा हो गये कि मनीआर्डर जयनाथ के नाम में न आकर उनके नाम आया। लम्बी साँस खींचकर जयनाथ ने कहा—बाबा विश्वनाथ मेरे भतीजे पर इसी प्रकार दयादृष्टि रखें। रत्ती को बड़ी खुशी हुई। चाची ने सुना तो उनकी आँखों में आँसू छलक आये।

पति के देहान्त के बाद न जाने कितनी मुसीबतें झेलकर चाची ने अपने लड़के को पाला-पोसा, बड़ा किया था। आज उमानाथ इस योग्य हुआ है कि बाप के फँसाये खेत को छुड़ा रहा है। जमीन के इस उद्धार को चाची ने भगीरथ द्वारा उद्धृत तथा अवतरित गंगा से कम महत्त्व नहीं दिया। अगले ही दिन उन्होंने रत्ती से खत लिखवाया—

"स्वस्ति सकल मंगलाऽलय चिरजीवी श्री बबुआ उमानाथ को गौरी का शुभ आशीर्वाद पहुँचे। अत्र कुशलं तत्रास्तु।

आगे हाल-समाचार यह है कि तुम्हारा भेजा हुआ मनीआर्डर बागो के बाप के नाम आया। खेत उन्होंने छोड़ दिया। बेटा, दो साल से तुम घर नहीं आये। कसूर मेरा ही है, मगर इस तरह सन्यासी बनने से तुम्हारा काम नहीं चलेगा। सौराठ (जि० मधुबनी का एक ग्राम) की विवाह सभा के दिन नजदीक आ गये। मुझे कब तक यों अकेली रखोगे? देह मेरी दिन-प्रतिदिन दुर्बल होती जा रही है। तुम ब्याह करते, बहुरिया आती। फिर मैं निश्चिन्त होकर जरा काशी-प्रयाग हो आती। इति।

ज्येष्ठ सुदि पंचमी बुध सन् 1346 साल।"

इस खत का जवाब डाकिया नहीं लाया, लाये अच्युतानन्द वैदिक। खचिया-भर प्रशंसा करते हुए, उमानाथ का जो सम्वाद वैदिक जी ने चाची को दिया, उसका सारांश इतना ही था कि वह अभी रुपया जमा कर रहा है। पाँच सौ हो जायेगा, तब आकर शादी करेगा।

चाची मुट्ठी बाँधकर खर्च करती, तो उनके लिए भी सौ-दो सौ बचा ले जाना आसान था, परन्तु इधर उन्हें 'दवाय-धर्माय' का चस्का पड़ गया था। रत्ती को वह अपने ही आश्रम में रखती थी। दैनिक 'आज' मँगाने के लिए ताराचरण को प्रति वर्ष पाँच रुपया देने का वादा किया था, इस साल का दे चुकी थीं। इसके अलावा धीरे-धीरे कई बरतन चाची ने खरीद लिए थे। फूल की दो थालियाँ ली थीं, दो लोटे, दो गिलास। अतिथि-अभ्यागत आते तो पहले दरी या कम्बल न रहने के कारण लेटने-पड़ने के लिए उन्हें खजूर की चटायी देते समय चाची को कचोट होता। अब उन्होंने काली भेड़ की ऊन के दो कम्बल मँगवा लिए थे।

यह सब उमानाथ की भावी गृहस्थी का पूर्वाभास नहीं तो और क्या था?

और, अब रतिनाथ जा रहा था मोतिहारी। खर्च में कमी होने जा रही थी।

फिर भी चाची उमानाथ के विचार में अप्रसन्न नहीं थी। ब्याह मुफ्त में होता नहीं, और उसके बाद तो खर्च का तांता ही बँध जाता है। पाँच सौ तो क्या, हजार भी हो तो कम होगा।

रतिनाथ चौदहवाँ साल पारकर पन्द्रहवें में पैर रख रहा था। बड़हड़वा में पुरोहित की आठ साल की एक लड़की थी। चार सौ पर पिछले साल ही जयनाथ सौदा पटा चुके थे। उन्होंने चाची के सामने एक दिन यह चर्चा छेड़ दी—"रत्ती का ब्याह बड़हड़वा में कराने का निश्चय कर चुका हूँ। कन्या क्या है, साक्षात् गंधर्विणी है। आठ वर्ष की लड़की यों भी 'गौरी' कहलाती है। चार सौ रुपये मिलेंगे। पढ़ने का खर्च देगा। जब चाहोगी गौना कराकर बहू ला देंगे..."

सुनते ही चाची के बदन में आग लग गयी। जयनाथ को फटकारती हुई बोलीं—"तुम भी धन्य हो! महाजन बनने की धुन में यही सब सोचा करते हो? इस तरह मैं तुम्हें रत्ती का गला नहीं काटने दूँगी। तुम्हारा वह खिलौना मात्र है, परन्तु मेरा? मेरा वह कलेजा है। उसके साथ खिलवाड़ मत करो।"

यह बात बतलाकर बाप के प्रति रत्ती की घृणा को और अधिक तीव्र होने देना चाची को अभीष्ट नहीं था। इसी से रत्ती को उस अष्टवर्षीय गौरी के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चला। जरूरत भी क्या थी, वह तो मानिहारी जाने की भावनाओं में मग्न हो रहा था।

रत्ती के मानिहारी जाने में जयनाथ को भला आपत्ति ही क्या हो सकती थी? अब वह अलग होकर दूर जा रहा था। जयनाथ ने जीवन में पहली बार सन्तान के प्रति ममता का अनुभव किया। वह उसे दरभंगा ले गये, पैर नपवाकर जूता खरीद दिया। देह नपवाकर दर्जी से कमीज सिलवा दी। आज तक न उसने कभी जूता पहना था, न देह की नाप लेकर कटाई-सिलाई कमीज पहनी थी। अपने प्रति पिता का यह वात्सल्य देखकर भीतर-ही-भीतर उस मातृहीन किशोर का हृदय भर उठा।

जाने का दिन आ पहुँचा। शौच आदि से निबटकर रतिनाथ नहा आया और भक्ति से भगवान की पूजा की, सोचा—चिरपरिचित यह शालिग्राम, यह नर्मदेश्वर, अब मुझे कहाँ मिलेंगे?

पूजा कर चुकने पर वह खाने बैठा। दाल-भात, परवल की तरकारी, अचार, आम और दही। चाची पंखा झलने बैठी। दस-पाँच कौर मुँह में डालकर वह उठ गया। खाया नहीं गया उससे।

कमीज पहनी। कुलदेवता (उग्रतारा) को जाकर प्रणाम किया और छोटी-सी गठरी लेकर बाहर निकला। चाची को प्रणाम करते समय उसकी आँखें तर थीं। आशीर्वाद देते हुए उनका भी गला भर आया। गठरी जयनाथ ने लड़के के हाथ से ले ली। गाँव से बाहर छोड़ आने को वह साथ हो गये।

नये जूतों ने पैर काट खाये थे। उन्हें बाएँ हाथ की उँगलियों से उठाकर जब रतिनाथ आँगन से बाहर निकला; तो पीछे मुड़कर एक बार उसने घिवही आम के जाने-पहचाने पेड़ की ओर देखा। घर के पिछवाड़े की ओर बांस का जंगल था, रत्ती ने उस ओर भी देखा।

आज अपने टोल-पड़ोस की एक-एक वस्तु सचेतन प्रतीत हो रही थी। लगा कि सब उसे मना कर रहे हैं—मत जाओ, मत जाओ, मत जाओ! तालाब, बुड्ढा पीपल, मौलसिरी का वह बौना पेड, वे खेत, वे बाग, वे झाड़ियाँ, वे झुरमुट, वह बलुआहा—उन्होंने मानो चिल्ला-चिल्लाकर रतिनाथ को मना करना शुरू किया—कहाँ जाओगे, लौट चलो, लौट चलो, लौट चलो!

नई जगह, नये लोग-बाग, नई वस्तुएँ—यह भला किसे न अच्छा लगेगा! रतिनाथ भी उल्लास और उमंग से भरा हुआ मोतिहारी के लिए विदा होना चाहता था। मगर छुटपन से ही जिनके बीच वह रहता आया था, जिन्हें देखता आया था, जिनकी रग-रग से परिचित था, उन व्यक्तियों, पशु-पक्षियो, कीड़ों-मकोड़ों और यहाँ तक कि चर-अचल सभी वस्तुओं से बिछुड़ते समय उसका हृदय रो रहा था। पैर उसके उठ नहीं रहे थे।

गाँव से बाहर आने पर उसने अपने पिता के दोनों पैर छू लिए। जयनाथ की आँखें छलछला आयीं! इससे पहले रतिनाथ ने अपने बाप की आँखें कभी गीली नहीं देखी थी। ऊपरी दाँत से निचला होंठ दबाकर ही वह अपने को रोने से रोक सका।

पिता के हाथ से गठरी लेकर जब रत्ती चला तो उन्होंने पाँच रुपये का एक नोट उसकी जेब में डाल दिया और चुपचाप लौट गये।

उन्नीस

उस साल आम बिलकुल नहीं फले थे। शादी-ब्याह, मूड़न-छेदन, उपनयन-संस्कारों और उत्सवों की धूम थी। शुभंकरपुर की ही बात लीजिये। वहाँ बाहर के नौ दूल्हे ब्याह करने आये थे। सात घरों में जनेउआ हुआ था। मूड़न-छेदन भी पाँच-सात बच्चों के हुए थे। गौना करके चार बहुएँ आयी थी।

बागो का भी ब्याह हुआ था, इसी आषाढ़ में। रामपुरवाली की बात रह गयी। वर अच्छा मिला। काशी का साहित्य-शास्त्री। बीस साल की उम्र, गेहुँआ

रंग, लम्बा चेहरा, नुकीली नाक, गोल-गोल आँखें, चौड़ा कपार, बड़े-बड़े कान। सिर के बाल पतले और मुलायम थे। लड़के का बाप मुजफ्फरपुर में होटल चलाता था। छोटा भाई मिडिल स्कूल में पढ़ रहा था। यह लोग हरिपुर के रहने वाले थे। शुभंकरपुर के दस कोस उत्तर बेनीपट्टी थाने में यह गाँव पड़ता था। भूमिहारों की बस्ती थी। मैथिल दो ही चार घर थे।

रामपुरवाली चाची के मायके के लोग न पड़े होते तो इतना अच्छा काम होता! होता यही कि भोला पंडित अपनी टेव के मुताबिक कहीं से कोई ठूँठ पीपल उखाड़ लाते और जिन्दगी-भर बागो उसकी परिक्रमा करती रहती।

अब उमानाथ की माँ समाज में बहिष्कृत न रह गयी थी। उस कुकाण्ड को लोग अब भूलते जा रहे थे। इधर गाँव में एक तीसरा ही भूचाल उठा था। जयनारायण झा के छोटे भाई की शादी जयनगर के पास भुतही में हुई थी। जयनारायण शुभंकरपुर के उन चार-पाँच भाग्यशालियों में थे, जो समाज के स्तम्भ कहलाते हैं। और, जयनारायण के पास तो कुलीनता भी थी, धन भी था। एक मौजे में दो आने की जमींदारी पड़ती थी। बैठक के सामने चार बखार थे। काठ के लम्बे नाँद में सानी भूसा खाते हुए आठ तंदुरुस्त बैल उनकी भरी-पूरी गृहस्थी की गवाही दे रहे थे। नाटे कद का हिनहिनाता हुआ भोटिया घोड़ा वैभव का ओजस्वी प्रमाण था। अपने छोटे भाई की शादी उन्होंने भुतही के जमींदार की एकमात्र कन्या से करवाई थी। सोने के टुकड़े जैसे दस बीघा खेत उस जमींदार ने अपनी लड़की के नाम लिख दिए थे। अभी कुछ दिन पहले उसकी जमींदारी के किसी दूसरे मौजे में किसान आन्दोलन ने जोर पकड़ा, रैयतों ने अपनी जोत की तीस बीघा जमीन छोड़ने से साफ इन्कार कर दिया। मालिक उसे पड़ोस के किसानों के हाथ बन्दोबस्त कर देना चाहता था। जो पच्चीसों वर्ष से उस जमीन को जोतते-बोते और फसल काटते आ रहे थे, वे लोग डट गये—इस पर हमारा हक है। रैयतों में से पाँच-सात घर ब्राह्मण भी थे। तनातनी बढ़ी। सरकार ने एक सौ चौवालीस दफा लगाकर जमीन को लाल साफे और लम्बी लाठी की अपनी निगरानी में ले लिया। किसानों ने सत्याग्रह आरम्भ किया। मालिक को लठैत और पुलिस वाले मिल गये। ऊपर कांग्रेसी मंत्रिमंडल था, नीचे धरती माता थी। सत्याग्रही पृथ्वी-पुत्र जब पिटने लगे तो खून से तिरंगा लाल हो उठा। इस छोटे से महाभारत में दो कुर्मियों और एक ब्राह्मण की जान गयी। किसानों को कुछ हद तक सफलता अवश्य मिली; परन्तु मालिक को ब्रह्महत्या का पाप लग गया। चाँदी और सोने का भस्म कई बड़े रोगों की अचूक दवा है। जमींदार बाबू ने अपना पाप धोने के लिए भागीरथी गंगा की शरण नहीं ली। कर्मकांडकेशरी वयोवृद्ध पंडित बुच्चन पाठक के आदेशानुसार मालिक बाबू ने कमला नदी में स्नान किया और वहीं एक पीपल के नीचे साधारण-सा प्रायश्चित्त कर लिया। प्रकट रूप से कुल दस-

बारह रुपये खर्च पड़े। यह दूसरी बात है कि कर्मकांडकेशरी महाशय को दस कट्ठा बढ़िया जमीन इस सिलसिले में मिल गयी।

जयनारायण के अनुज का नाम था लक्ष्मीनारायण। इस बार जब वे ससुराल से लौटे; तो गाँव गनगना उठा —ब्रह्मवध का महापाप हजम करने वाले ससुर के दामाद होकर, उसके यहाँ खा-पीकर लक्ष्मीनारायण अपने भाई की आँखों में भले ही धूल झोंकें, परन्तु शुभंकरपुर का समाज उनको माफ नहीं कर सकता। अरे राम ! ब्राह्मण की हत्या करके उस महापापी ने समूचे देश को कलंकित किया है, और अब लक्ष्मीनारायण भुतही का पाप शुभंकरपुर के माथे पर लादने आए है ! हरे । हरे !!

बात बिल्कुल दुरुस्त थी। ब्रह्महत्या महापाप है, तो महापापी से संसर्ग रखना भी पाप है। लक्ष्मीनारायण जनकपुर जाने के बहाने गाँव से निकले थे और ससुराल में चार-पाँच दिन बिताकर परसों रात दबे पैर चुपचाप घर आ गए थे। आज फिर पूरे दो दिन के बाद जो यह भूचाल उठा था इसमें अदरूनी ज्वालामुखी का काम जयदेव ने किया था। उसने अपने चारो पट्टशिष्यों को सारी योजना समझा दी और वे गाँव-भर मे लक्ष्मीनारायण के प्रच्छन्न पाप की मुक्तघोषणा कर आए। इन चारों में जो अगुआ थे, वे और कोई नही, यही हमारे भोला पंडित थे। अपने मँझले लड़के (भवदेव) की शादी के बाद जयदेव जयनारायण गुट द्वारा बार-बार अपमानित और तिरस्कृत हुए थे। अब बदला लेने का अच्छा सुयोग जयदेव के समक्ष स्वतः आकर उपस्थित हो गया था।

जयनारायण भी मामूली अखाड़े का पहलवान नहीं था। विरोधी दल के हमलों से वह बिल्कुल नहीं घबड़ाया। प्रायश्चित्त की तो बात ही क्या, अपने छोटे भाई पर लगाए गए अभियोग को ही उसने उड़ा दिया। कहा—जिसके बाल-बच्चे मुर्गी का अंडा और प्याज-लहसन खाते है, अशौच मे केश नहीं कटाते, वह इतना बड़ा निर्लज्ज होगा, यह मै नहीं जानता था। ईसाई की लड़की अपनी माँग में सिन्दूर लगाती है, तो लगाए, परन्तु भुतही के हमारे उस कुटुम्ब ने ऐसा कौन-सा पाप किया कि जिसका पंडित लोग प्रायश्चित्त कराते ! रैयतों की हुल्लड़बाजी को किसान-आन्दोलन कह देने से काम नहीं चलेगा। ब्राह्मण मरा नहीं, मगर गोली तो सरकार बहादुर की लगी थी। इसमे लक्ष्मीनारायण के ससुर का क्या कसूर ?

फिर भी जयदेव जयनारायण के दल मे से आठ-दस परिवारों को फोड लेने मे कामयाब रहे, इसका पता तब चला जबकि जयनारायण के लड़के का उपनयन हुआ।

जयनाथ और दमयन्ती भी अब जयदेव के दल में आ गए थे। ताराचरण उधर ही रहे

भोला पंडित दामाद की विदाई के समय घर से रूठकर दरभंगा चले गए थे,

उन्हें यह पसन्द नहीं था कि जमाई की विदाई में सौ रुपये से एक पाई भी अधिक खर्च किया जाय। रामपुरवाली ने नहीं माना। तीन सौ रुपये का सामान मधुबनी से उसने मँगवाया। चार जोड़ा धोती, ओढ़ने की दो चादरें, दो तौलिया, हाफ जूता, दो जोड़ा पैतावा, बनियाइन, कमीज, तसर का कोट, रेशम के पाग, छड़ी-छाता, बारह आने भर सोने की अँगूठी, कम्बल, दरी, तोसक, उलैच (बिछाने का चादर), दो तकिए, फूल का बड़ा थाल, लोटा और गिलास, दाल खाने का दो बड़ा कटोरा, छ: छोटे कटोरे (भाजियों के लिए), घी और चटनी खाने की दो कटोरियाँ, इसके अलावा रसोई में काम आने वाले तमाम बरतन, पीकदान···इतनी सारी चीजों से रामपुरवाली ने जमाई की विदाई का आयोजन किया। भोला पंडित को यह असह्य लगा। वे गाँव से टल गए।

जमाई बाबू विदा हुए, उनके साथ भार लेकर पन्द्रह भरिया (बोझा ढोने वाले) गये। दही, केला, मिठाई, पान-सुपारी, मेवा-मखान, बहुत कुछ सामान था। ऊपर लिखी चीजें तो थी ही।

दूध, दही, घी, मछली आदि खिला-पिलाकर रामपुरवाली ने दूल्हे की देह को लाल-बुन्द कर दिया था। इक्कीस रोज रहे थे वे।

रतिनाथ बागो की शादी के सात दिन बाद निकला था। अपनी बाल-सखी के इस रूपान्तर से रत्ती को बड़ी प्रसन्नता हुई थी। चतुर्थी (सुहागरात) के बाद, अगले दिन थोड़ी देर के लिए दोनों मिले थे। किसी काम से वह चाची के यहाँ आयी थी। रत्ती अपने ओसारे पर बैठा 'कन्यादान' पढ़ रहा था। प्रसंग बहुत रोचक था। नायक की संभावित वधू बुच्चीदाई की मुग्धताओं पर मस्त होकर रतिनाथ उस उपन्यास को सस्वर पढ़े जा रहा था कि पीछे से आकर किसी ने अपने छोटे-छोटे मृदु-सुरभि हाथों से उसकी आँखें झाँप दीं। एक हाथ से उपन्यास पकड़े रहकर, दूसरे हाथ से रतिनाथ उस चोर का हाथ टटोलने लगा। लाह की चूड़ियों पर उँगलियाँ पड़ते ही वह खिलखिला उठा। बोला—"धत् तेरी की! बागो, कैसे आयी?"

पीछे से हाथ हटाकर बागो सामने हो गयी थी। पूछा था—"अब तो तुम मोतिहारी में पढ़ोगे, आओगे कब?"

"दुर्गापूजा की छुट्टी में," रत्ती ने कहा था।

इसके बाद देर तक वे एक-दूसरे को ताकते रह गए थे। इससे पहले दोनों जब मिलते थे, तो बड़ी देर तक गप-शप चलती रहती। मगर उस दिन न रतिनाथ के मुँह से कुछ निकला और न बागो के मुँह से।

बीस

अषाढ बीत चुका था।

खेतों में धान के पौधे लहलहा रहे थे। बरसात भली भाँति शुरू हो गयी थी। धान रोपने के दिन थे। क्यारीनुमा खेत पानी से भरे थे।

आज रात फिर बारिश हुई थी, खूब हुई थी।

जयकिशोर सुबह-सुबह उठे और लोटा लेकर दिशा-फराकत के लिए घर से निकले। तरकुलवा में सभी जाति के लोग बसते थे। दुसाध, मुसहर, डोम थे तो धुनिया, जुलाहा भी थे। लेकिन बाभन, राजपूत, बनिया, ग्वाला वगैरह गाँव के एक ओर थे। मुसलमान दूसरी ओर। छोटी जाति वाले उसके बाद—सड़क के किनारे लम्बाई में बसा था गाँव। आठ-दस पोखर थे। कुछ बस्ती के सामने और कुछ पीछे की ओर। एक का नाम 'बड़ी पोखर' था। जयकिशोर ने बचपन में इसी पोखर में तैरना सीखा था। भादों-आसिन की तपती दुपहरियों में छाता लगाए इसी के बाँध पर घंटों बैठकर डोरी में मछलियाँ फँसने की प्रतीक्षा की थी। बीसों बार इसके छाती-भर पानी में घुसकर नीले-सफेद कमल वह तोड़ लाए थे। इन्हीं कारणों से यह पोखर उन्हें प्रिय था।

कान पर जनेऊ चढ़ाए, हाथ में लोटा लिये जयकिशोर जब बड़ी पोखर के घाट पर हाथ मटियाने आए, तो शंकर बाबा मिल गए। वह बाँस की छतरी (मेघडम्बर) लगाए हुए थे, कछौटी मारकर बड़े ही गौर से उस नाले की ओर देख रहे थे जिसमें से बरसाती पानी आ रहा था। तालाब की मछलियाँ रात में काफी निकल चुकी थीं, लोगों ने खूब पकड़ा था। पोते ने जिद की तो अब शंकर बाबा भी आए थे : अभी तक दो पोठियाँ हाथ लगी थी, कुछ और हाथ आतीं तो अच्छा था···जयकिशोर को देखते ही बोले—"किशोर, तुम्हें इनका शौक नहीं रहा क्या ?"

"वाह, क्यों नहीं !" जयकिशोर ने कहा—"मछलियों का शौक भी कभी जा सकता है ? मगर, कौन रात-भर इसके लिए परेशानी उठाए ! चरवाहे ने कुछ मछलियाँ पकड़ी होंगी जरूर। हमारे वहाँ यह सब वही करता है। तालाब से मछलियाँ पकड़ना, बाग में से आम तोड़ लाना, हाट से साग-भाजी ले आना··· सब वही करता है। दूसरा है ही कौन ?"

इतना कहकर जयकिशोर बाबू पानी के किनारे रखे काले सिल पर बैठ गए और हाथ मटियाने लगे। इस बीच में शंकर बाबा को एक पोठी (छोटी मछली) और दिखाई पड़ी, वह नाले के छल-छल करते पानी में उस मछली को पकड़ने के लिए लपके। पैर लगाकर छपाक् से पानी उछाला, निशाना ठीक बैठा था। पोठी नाले से बाहर आकर उछल रही थी। हरी-हरी दूब पर चाँदी-सी सफेद और

चमकदार वह छोटी मछली जयकिशोर को बहुत बढ़िया लगी। बाबा ने उसे उठाकर जोर से पटक दिया, वह निष्प्राण हो गयी। उछल-कूद बन्द हो जाने पर भी दूब पर वह सुन्दर तो लग ही रही थी। बाबा ने कहा—"बस, एक और हो जाय।"

जयकिशोर हाथों में तीन बार मिट्टी लगा चुके थे, अब लोटा माँज रहे थे। वह शंकर बाबा की ओर नजर फेरते हुए बोले—"बस, चार ही पोठी ! सारा परिवार इतने से ही तृप्त हो जायगा ?"

बाबा की निगाह फिर छल-छल करते पानी पर जम चुकी थी। उन्होंने कहा—"मुझे अब इन वस्तुओं का आवेश नहीं है। बुचनू का हठ था, उसके लिए तीन-चार काफी होंगे।"

इतने में एक बड़ा-सा झींगा तालाब से निकलकर बाहरी दुनिया की सैर करने के लिए नाले के रास्ते पर आगे बढ़ा। बाबा ने देख लिया। उसका मटमैला रंग उसकी आँखों को धोखा नहीं दे सका। वह फिर उसी भाँति झपटे। इस बार अंजुरी से पानी उछाला उन्होंने। झींगा नाला से बाहर आ पड़ा। बाबा ने उसे भी दे पटका। जयकिशोर यह सब देख रहे थे, कुल्ली कर चुके थे। अब उन्हें भिंडे पर बैठकर दाँतुन करना था। बाबा से कहा—"अब तो आप जाएँगे ?"

"एक-आध और हो जाए तो क्या हर्ज है ?" शंकर बाबा गुनगुनाकर बोले। जयकिशोर ने सोचा—'इनका लोभ बढ़ता जा रहा है। मनुष्य जब प्राप्तव्य पा जाता है तब उसकी दृष्टि आगे की ओर इतनी तेजी से क्यों फिसलती है ?'

बड़ी पोखर के भिंडे पर उत्तर की ओर मुँह करके जयकिशोर दाँतुन करने बैठे। आगे खेतों में धान के हरे-हरे पौधे लहरा रहे थे। उनसे परे आमों के नील-निविड़ कुञ्ज थे। उनसे भी परे सुदूर उत्तरी आकाश में हिमालय की धवल-धूमिल चोटियाँ थीं जो उगते सूरज की पीली किरणों से उद्भासित होकर स्वर्ण-शृंग-सी लग रही थीं। जयकिशोर ने इसी भाँति यह दृश्य कई बार देखा है और यहीं बैठकर। किन्तु आँखों को परितृप्ति नहीं हुई। हिमालय क्या इतना नजदीक है ? उन्हें विश्वास नहीं होता, फिर भौगोलिक जानकारी चिकोटी काटती कि दरभंगा जिले की उत्तरी सीमा यहाँ से चार कोस पर है, आगे नेपाल है। यह हिमालय नेपाल ही में तो पड़ता है। हाँ, ठीक तो है। फिर वह स्वप्न देखने लगे कि पेन्शन मिल जाने पर जब घर बैठेंगे तब रोज यह दृश्य देखने को मिलेगा। वह कभी बिहार छोड़ बाहर नहीं गये, फिर भी अपनी मातृभूमि की प्रशंसा करते थकते नहीं। सुजलां सुफलां मलयजशीतलां फुल्ल कुसुमित द्रुमदलशोभिनी शुभ्रज्योत्स्ना पुलकितयामिनी सुहासिनीं सुमधुर-भाषिणी सुखदां वरदां—मातृभूमि की वन्दना के लिए बंगीय बंकिमचन्द्र ने इन विशेषणों का उपयोग किया है। जयकिशोर का दावा था कि हमारी मातृभूमि मिथिला भी ठीक इन्हीं विशेषणों की अधिकारिणी

है। इस सम्बन्ध में दक्षिण बिहार के अपने भाइयों से वह उलझ पड़ते।

जयकिशोर के तीन बच्चे थे, दो लड़के और तीन लड़की। सपरिवार वह प्रवास में रहते। बहुत कोशिश की कि माँ भी साथ रहे, मगर बुढ़िया ने मंजूर नहीं किया। जिद करने पर वह कहती—"जनम-भर कहीं नहीं गयी और अब बुढ़ापे में क्यों कुलदेवता और ग्रामदेवता की पूजा मुझसे छुड़वाओगे? पर्व और त्योहार के दिनों में देवता-पितर आवेंगे, आँगन घर सूना रहेगा तो निराश लौट जाएँगे। यह सब सुनकर जयकिशोर चुप हो जाते। श्रद्धालु माँ के दिल को दुखाना उस शिक्षित पुत्र को अच्छा नहीं लगता। दूसरी बात भी थी। जायदाद काफी थी, दूसरे पर निगरानी का भार सौंप देने से निश्चित था कि उसमें चूहे लग जाते। जयकिशोर की नौकरी मजबूरी की नौकरी नहीं थी। वह थी खाते-पीते आदमी द्वारा शौक से की जाने वाली नौकरी। जिला स्कूल में हेड पंडिताई यों भी मामूली नौकरी नहीं कहलाएगी, उसका सम्बन्ध सीधे सरकार बहादुर से रहता है। औरत उन्हें अच्छी मिली है। उसका कुल-शील भी अच्छा है, चेहरा-मुहरा भी बढ़िया है। गौना के बाद कई साल तक वह अपनी सास के साथ ही रही। जब जयकिशोर की नियुक्ति राँची के जिला स्कूल में हुई तब से रूपरानी भी साथ रहती आयी है। यह नाम सास का रखा हुआ है। मायके का नाम था शशिमुखी। भले घर की सभी औरतों के दो-दो नाम हुआ करते हैं—एक ससुराल का और दूसरा मायके का।

पिछले दिन सन्ध्याकाल रतिनाथ तरकुलवा पहुँचा था, अकेला। इधर वह कई बार शुभंकरपुर से तरकुलवा आ-जा चुका था। इसलिए जयनाथ ने अकेले ही जाने दिया।

रतिनाथ यद्यपि जयकिशोर का अपना भांजा नहीं था फिर भी वह उसे बहुत मानते थे। उसके गुणों पर मुग्ध थे। वह बहुत कम बोलता। फुर्ती से काम करता। कमजोर और दुबला रहने पर भी सभी प्रकार के कामों के लिए तैयार रहता। पढ़ने में तो खैर तेज था ही, अक्षर भी उसके सुन्दर होते थे। खाते-पीते समय कभी कोई शिकायत नहीं की कि यह खाऊँगा और वह नहीं। रसोई भी करना उसे आता था। एक प्रवासी के लिए यह बहुत बड़ा गुण है कि वह खाना पकाना जाने।

जयकिशोर के जाने में तीन दिन बाकी थे। आम इस बार नहीं फरा था। फिर भी जिनके पास कलमी आम के पेड़ थे उन्हें कुछ न कुछ हाथ लगा ही। कलकतिया थोड़ा-बहुत हर साल फलता है। मालदह और कृष्णभोग के बारे में ठीक यही बात नहीं कही जा सकती। और वर्षों की भाँति इस वर्ष भी सौ-डेढ़ सौ आम जयकिशोर साथ ले जाना चाहते थे। माँ को भला इसमें क्या आपत्ति होती? उसने कहा—"यहाँ खाओ तब भी और वहाँ खाओ तब भी, बराबर है।

कौन है खाने वाला ? बच्चों को खाते देखती हूँ तो यों ही मेरा मन अघा जाता है। नही तो अकेले कोई अच्छी चीज खाना मेरे लिए पहाड़ हो जाता है।"

रूपरानी ने कहा —"आम मोतिहारी मे भी है, क्या होगा ले जाकर ? यहां रहेगा तो पड़ोस और समाज के लोग खाएँगे। जस देंगे।"

मगर माँ ने बहुत जोर दिया—"कितना भी ले जाओगी, यहाँ के लिए घटेगा नहीं। इस गाँव मे सभी के यहां अपने-अपने पेड़ हैं। थोड़ा-बहुत आम सभी के पेड़ों में फरे हैं। कुछ ने तो बेचा भी है। तुम वहाँ खरीदकर खाओगी और यहाँ सड़ेंगे, सो कैसे होगा ?"

आखिर दो सौ आम खाँचो मे भरकर ऊपर से एक-एक खाँचा डालकर उन्हे मजबूती से सी दिया गया। इन कामो मे जयकिशोर की माँ बहुत चतुर थी। वह वास्तव मे नारी के रूप में पौरुष की अवतार थी। जयकिशोर मुक्तकण्ठ होकर कहते—"ऐसी माँ और किसकी होगी ? कभी किसी काम के लिए मुझे नही कहा। मैं राजकुमार की तरह रह आया हूँ। हाथ से कदाचित् ही एक तिनका भी उठाना पड़ा हो !" और, जयकिशोर बाबू का ऐसा कहना अनर्गल नही था। उनकी माँ घर के सारे काम-काज स्वयं ही करती-कराती थी। खेती-बाड़ी के लिए कभी उन्होंने कारपर्दाज नहीं रखा। कभी-कभी भाई मदद कर जाता था। तरकुलवा मे खेत-मजदूर सुलभ थे। जयकिशोर की माँ ने दो खेत-मजदूरों को पाँच-पाँच कट्ठा खेत दे दिए थे। वे पिशाच की तरह कड़ी मेहनत से सारे काम करते। धान रोपने के दिनों में रोज पाँच-पाँच, सात-सात, दस-दस तक मजदूर लगे रहते। उन्हे अढ़ाई सेर धान और पेट-भर खाना मिलता। दाल-भात, तरकारी और अचार। छोटी जाति के उन गरीब और भूखे बनिहारों (खेत-मजदूरो) के लिए जयकिशोर बाबू के खेतो में धान रोपने के ये दिन महोत्सव के दिन थे, पुण्याह थे। इसका असर पड़ता गृहस्थी पर। सबसे पहले जयकिशोर के ही खेतों में धनरोपनी हो जाती, औरो की पारी पीछे आती। सोहनी करने (निराने) और फसल काटने मे भी यही सिलसिला रहता। यह सब उस वृद्ध महिला का ही पौरुष था, नहीं तो प्रवासी पंडित की खेती-बारी का नमूना देखना हो तो शुभंकरपुर के जनार्दन पंडित के खेतों को देखिए। खुद कलकत्ता रहते है। बेटा राँची स्कूल में मास्टर है। परिवार को साथ रखता है। बेटा-पतोहू राँची में। दो छोटे लड़के पटना में पढ़ते है। घर पर पचासी साल की वृद्धा चाची हैं। जायदाद काफी है मगर यह सब खवास, नारायण मड़ड़ के भाग मे लिखा है। भैंस का दूध वह पीता है। मालभोग और कनकजीर का भात वह खाता है। बगिया का चम्पा केला, मालदह आम, बनारसी अमरूद—सब उसी के बाल-भोग मे चला जाता है। बाप-दादे के जमाने का राजाशाही पलंग। पंडित नही हैं तो उस पर टाँग फैलाकर और कौन सोएगा ? सोता है नारायण खवास ?

चाची बेचारी न जीती हैं न मरती हैं, हुकुर-हुकुर करती है। राँची से जब-जब पोता आता है, अपनी इस दादी के लिए एक न एक रसोइया बहाल कर जाता है। मगर वह रसोइये को दस-पन्द्रह दिन से ज्यादा टिकने नहीं देतीं। जिन्दगी-भर वह अकेली ही रहीं, अकेले पकाकर अकेले ही खाया। अब उन्हें दूसरे के हाथ की रसोई कैसे पसन्द आए? आँगन में चारो तरफ चार घर है। एक में चाची का डेरा है। दूसरे में पलग वगैरह है। तीसरे में धान-चावल, चूहा, झींगर और नेवले रहते है। चौथा खाली पड़ा है, जिसमें धान की भुस, टूटी सन्दूक, पुराना पिटारा वगैरह सुरक्षित हैं। कुन्ती और नीलो इसी घर मे ब्याती हैं। टोल-भर की सार्वजनिक कुत्ती का नाम जाने कब किसने 'कुन्ती' रख दिया। नीलो बिल्ली थी। कुन्ती के प्रसव का सुनिश्चित स्थान पिटारा है और नीलो रानी टूटी सन्दूक मे बच्चे जनती है। जनार्दन पंडित का घर-आँगन किसी अभागे जमीदार की उजाड़ कचहरी जैसा लगता है! बिना देख-भाल की घर-गिरस्थी का यही हाल होता है।

जयकिशोर को अपनी माँ का बहुत बड़ा अभिमान था। कभी उन्होने माँ की किसी बात का प्रतिवाद नहीं किया। तीसरे साल जब वह घर आये तो किसी ने गौरी के उस कुकाण्ड का सारा समाचार जयकिशोर से कहा और बारम्बार कहा, परन्तु वह उत्तेजित नहीं हुए। समाज में एक तरुणी विधवा को किन परिस्थितियों का मुकाबला करना पड़ता है, इस बात को वह भली भाँति समझते थे। थोड़ा क्षोभ और सकोच जयकिशोर को अवश्य हुआ परन्तु उन्होंने उसे दूसरे ही रूप में प्रकट किया। प्रतिवर्ष की भाँति उस साल भ्रातृद्वितीया में अपनी बहन के यहाँ वह नहीं गये, बस। माँ को समझाने के लिए कोई बहाना ढूँढ़ लिया।

रतिनाथ को स्नेह-भाजन बनाकर जयकिशोर उसे अपने साथ रखने के लिए तैयार हुए थे। इसके अन्दर उनका भगिनी प्रेम ही काम कर रहा था। उमानाथ को वह पढ़ा नहीं सके थे तो इसमें उनका क्या दोष? रतिनाथ को गौरी कितना मानती थी, यह जयकिशोर को खूब अच्छी तरह मालूम था। रत्ती की प्रतिभा देखकर उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि यह लड़का उमानाथ की तरह मुझे बहन की दृष्टि में हल्का नहीं बनाएगा।

साल तेरह जुलाई को खुल रहा था। एगारह और बारह को मंगल और बुधवार पड़ते थे। उत्तर की तरफ जाने में दिशा-शूल होता, इसीलिए जयकिशोर आषाढ़ शुक्ल पंचमी सोम को सपरिवार मोतिहारी के लिए चल पड़े। एक अहीर का लड़का—ठकवा साथ रहता था। तीन बच्चे, नौकर, रतिनाथ और दो जने खुद। कुल मिलाकर इस बार परिवार में सात प्राणी हो गये थे। तरकुलवा से राजनगर। काम एक ही बैलगाड़ी से चल गया।

भीड़ के कारण औरत और बच्चों को जनाना डब्बे में बैठा दिया गया था।

सुबह की ट्रेन थी, रतिनाथ ने सोचा, चलो अच्छा हुआ। देखते चलेंगे। तारसराय तक, नहीं दरभंगा तक, उसका देखा हुआ था ही। उसके आगे रत्ती सहस्राक्ष बनकर चलती गाड़ी में से आसपास के दृश्य देखने लगा। कोसों तक फैले धान के हरे-भरे खेत। उनकी लहराती हरियाली क्या थी, तरंगित समुद्र का ही हरा संस्करण था, लेकिन रतिनाथ ने समुद्र नहीं देखा था। हाँ, बाढ़ के दिनों में परसौनी के पच्छिम, जब मोहना चौर पानी से भर जाता तो लोग कहते—मोहना तो समुद्र हो गया है। इससे समुद्र का एक कल्पित नक्शा उस किशोर के दिमाग में था अवश्य, फिर भी धान के खेतों की कोसों लहराती हरियाली को महा समुद्र कह देना उसके बूते की बात नहीं थी। असीम हरीतिमा के इस भव्य दृश्य से रत्ती की आँखें अघाती नहीं थी। इधर-उधर बैठे-खड़े मुसाफिरों के गुल-गपाड़े उसका ध्यान भंग करने में असमर्थ थे। गाड़ी हड़हड़ाती हुई जब एक पुल को पार करने लगी तो ठकवा ने चकोटी काटकर कहा—"रत्ती बाबू, जानते हैं, कौन नदी है?"

"नहीं तो!" रतिनाथ ने चौंककर कहा। ठकवा बोला—"बागमती है।" रत्ती को किसी कवि का एक पद याद आया जिसमें कहा गया—बागमती, तू धन्य है! तेरा पानी विद्यापति की साँस से सुरभित है और तेरे तट के बालुका-कण दार्शनिकों की दृष्टि से भास्वर। तेरा प्रवाह जिस भूमि पर से एक बार भी गुजर जाता है, वह सदा के लिए रत्नगर्भा बन जाता है। बागमती, तू धन्य है। शरद् ऋतु की पूर्णिमा के इस निशीथ में मन करता है, मैं अपनी देह तेरे प्रवहमान वक्ष पर छोड़ दूँ···सोचते-सोचते वह झपकियाँ लेने लग गया।

एक धक्के के साथ नींद टूटी तो गाड़ी समस्तीपुर आ चुकी थी। लोग धड़ाधड़ उतर रहे थे। रतिनाथ भी उतरा। उसकी छोटी-सी गठरी मामा-मामी के बिस्तरों में डाल दी गई थी। उस ओर से वह निश्चिन्त था। इतमीनान से उतरा और मामा के पास जाकर खड़ा हो गया।

बहुत बड़ा स्टेशन। लोगों की अपार भीड़। ट्रेनों की कमी नहीं। पान-सिगरेट-बीड़ी वालों का कोलाहल। दुनिया के इस विचित्र पहलू से रतिनाथ आज तक अनजान था। बाप, चाची और साथियों के बिछोह से जो दिल अभी तक भारी-भारी-सा था वह अब हल्का होता जा रहा था। नयी जगह, नये लोग, नये नजारे। स्मृतिपट पर से पिछली रेखाएँ मिटती जा रही थीं, रंग तो धुँधला पड़ ही चुका था। रत्ती को ख्याल आया—यह तो समस्तीपुर का हाल है! और, कलकत्ता कितना बड़ा शहर होगा? कहते हैं, वहाँ पन्द्रह लाख लोग रहते हैं। बड़ा होने पर भैया के साथ मैं भी कलकत्ते जाऊँगा···

इतने में मुजफ्फरपुर की गाड़ी आ धमकी। सब उसमें सवार हुए। भीड़ कम थी। पूसा रोड, ढोली, सिलौट और चौथा स्टेशन मुजफ्फरपुर। रत्ती गिनता

गया था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते बारह बज गए। लाइन के दोनों ओर आम और लीची के बड़े-बड़े बाग थे। धान के खेत भी थे, मगर उतने हरे-भरे नहीं। लीची का मौसम बीत चुका था और आम फरा ही न था। फिर भी स्टेशन पर 'बथुआ' आम बिक रहे थे, रुपये मे बारह। वह उन लोगों के लिए अलभ्य वस्तु नहीं थी क्योंकि दो सौ बड़े और बढ़िया आम साथ जा रहे थे।

मोतिहारी की गाड़ी मे अभी कुछ विलम्ब था। दरी बिछाकर प्लेटफारम पर वे बैठ गये। वहीं खाना-वाना हुआ। जयकिशोर पड़ रहे तो ठकवा ने उनके पैर और जाँघों में मुक्कियाँ लगाना शुरू किया। मुक्कियाँ लगवाते-लगवाते उन्हें नीद आ गयी।

छोटी बच्ची के आगे से पूड़ी उठा लेने के कारण सड़ी दुम वाले काने कुत्ते को रतिनाथ ने एक लात लगाया। वह आँउ-आँउ-आँउ कर उठा तो जयकिशोर की आँख खुली। बिस्तर बाँध-बूँधकर तैयार हो गये। थोड़ी देर में पहलेजा-घाट से गाड़ी आयी, उसी पर सब सवार हुए। तीन बज रहे थे। गाड़ी के चलते ही रतिनाथ को नींद आ गयी।

आठ बजे रात को ट्रेन मोतिहारी पहुँची।

इक्कीस

स्टेशन के उत्तर गुमती के नजदीक उनका डेरा था। पास ही एक मन्दिर था। बीच मे मन्दिर, चारों ओर धर्मशाला। यह सब बकुलहर मठ की मिल्कियत थी। पिछले साल महन्त जी आये तो जयकिशोर का उनसे परिचय हुआ और उसी परिचय का फल है कि यह धर्मशाला और मन्दिर अब जयकिशोर की निगरानी में हैं। इनको इससे और कुछ नही, पर एक फायदा जरूर था कि वक्त-बे-वक्त दो-चार आदमियों को वहाँ टिका देते।

धर्मशाला में पचीसो कोठरियाँ थीं। बहुधा वे खाली ही पड़ी रहती। खाली रहने के दो कारण थे। एक तो वह शहर मे बाहर पड़ती थी और दूसरा यह कि मोतिहारी कोई बड़ा शहर तो है नहीं। जिला चम्पारन का सदर होने से ही इसका थोड़ा-बहुत नाम है। नहीं तो, चम्पारन में प्रमुख नगर अगर है तो वह बेतिया है। सभी दृष्टि से वह मोतिहारी से अव्वल है।

दूसरे दिन उसी धर्मशाला की एक छोटी-सी कोठरी रतिनाथ को मिली। वह

उसी में रहने लगा।

मोतिहारी में संस्कृत का एक उच्च विद्यालय था। अध्यापक थे पंडित दुःखनाथ तिवारी व्याकरणाचार्य। जयकिशोर स्वयं भी कभी-कभी रत्नी को पढ़ाते थे। रतिनाथ का पढ़ाई में मन खूब लगता था। काव्य और व्याकरण, यही दो विषय थे। व्याकरण वह विद्यालय में पढ़ आता, काव्य जयकिशोर पढ़ाते।

विद्यालय शहर के बीच में पड़ता था। पढ़ने वाले बीस से अधिक न थे। पंडित जी को बीस रुपये मासिक मिलता था। कुछ अनियमित रूप से मारवाड़ी लोग भी दान दे दिया करते। बात यह है कि संस्कृत पाठशाला के अध्यापक और विद्यार्थियों के प्रति धनी समाज का वही दृष्टिकोण रहता है जो कि पिंजरापोल के प्रति सेठों का। सड़े-सूखे आम, रद्दी चादरें, खुरदरे कम्बल, घुन लगा अनाज, फटी-पुरानी किताबें—इन वस्तुओं का दान और कौन लेगा?

विद्यालय के पास ही 'कमला नेहरू पुस्तकालय' था। वहाँ दैनिक आज, सरस्वती, बालक, योगी विश्वामित्र आदि कई अखबार आते थे। रतिनाथ उन्हें पढ़ना पसन्द करता था। मासिक पत्रों ने उसकी रुचि को उपन्यासों की ओर मोड़ दिया।

जयकिशोर ही उसे लाये थे, इसलिए खाना-कपड़ा वही देते थे। एक संस्कृत प्रेमी जमींदार ने अपने छोटे लड़के को पढ़ाने के लिए अपने यहाँ एक विद्यार्थी रखना चाहा। उसने जयकिशोर से यह बात कही। उन्होंने रतिनाथ को उसके यहाँ रख दिया। खाना-कपड़ा और रहने की जगह अब सभी कुछ रत्ना को वह जमींदार ही देने लगा। बदले में जमींदार के लड़के को संध्या, गीत आदि पढ़ाना पड़ता। लड़के की उम्र थी बारह साल की। वह देखने में खूबसूरत था, पढ़ने में मन्द।

यह जमींदार महाशय जिला गोरखपुर के कोई दूबे थे। मोतिहारी शहर से डेढ़ मील उत्तर उनका मौजा था। दो सौ बीघा काश्तकारी भी थी। चम्पारन की जमीन खूब उपजाऊ है, वहाँ की मामूली मिट्टी सोना उगलती है। फिर यह दूबे तो जमींदार भी थे और काश्तकार भी। इस साल वर्णाश्रम स्वराज्य संघ (काशी) के किसी महोपदेशक ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि अपने कनिष्ठ पुत्र को संस्कृत की शिक्षा दिलाने का आपका निश्चय वज्र संकल्प बन गया, इसीलिए एक गरीब विद्यार्थी को अपने परिवार में शामिल करके उससे लड़के को पढ़ाना चाहते थे।

शुभंकरपुर के जीवन से मोतिहारी के इस जीवन की कोई तुलना हो ही नहीं सकती। यहाँ नागरिकता का वातावरण था। रतिनाथ की प्रतिभा खिल उठी। संस्कृत के साथ ही हिन्दी में भी उसने योग्यता हासिल करना अपना लक्ष्य बनाया। संस्कृत के लिए जयकिशोर थे, विद्यालय था। हिन्दी के लिए पुस्तकालय था और

अखबार थे। कठोर और रुक्ष प्रकृति के पिता का नियंत्रण हटते ही रतिनाथ स्वतन्त्र हो उठा। स्वतन्त्र नहीं, स्वच्छन्द कहना चाहिए। जमींदार का लड़का खूबसूरत तो था ही, रतिनाथ उसकी सुन्दरता पर मुग्ध रहने लगा। दूबेजी (जमींदार) का आदेश हुआ —विद्यार्थी जी, तुम दोनों को एक अलग कमरा देता हूँ। उसी में सोया करो। आपस में तुम लोग देववाणी (संस्कृत) में ही बतियाया करो। बस, फिर क्या था? दोनों किशोर, दोनों 'राम-लक्ष्मण' साथ रहने लगे। उनका सोना-जागना, उठना-बैठना, खाना-पीना सब साथ चलता। परन्तु उनमें से एक अभावों-अभियोगों की सीमान्त भूमि से आया था और दूसरा था विलासिता के वातावरण में पनपने वाला। उस लड़के का नाम था नरेश। अपने पिता के कठोर शासन के अनुसार आजकल वह ब्रह्मचारी का जीवन बिता रहा था। न तो सिर में वह तेल डाल सकता न आईने में मुँह देख पाता और न कंघी का इस्तेमाल कर सकता। जूता तक जमींदार साहब ने उसके लिए वर्जित कर रखा था। रतिनाथ के लिए यह त्याग कोई नया अभ्यास नहीं था, बल्कि एक आसान खेल था। मगर नरेश की माँ को अपने पति का यह पागलपन कतई पसन्द न था। वह बीच-बीच में लड़के के सिर में सुवासित तेल डाल देती, शायद नारियल का। खद्दर की मोटी धोती और मोटा कुर्ता उतरवाकर मिल की महीन धोती और नफीस कमीज पहना देती। पैसे देकर रतिनाथ को साथ कर देती, सिनेमा देखने के लिए। यह सब तब होता जबकि दूबेजी गोरखपुर गये होते।

मुजफ्फरपुर के प्रख्यात व्यापारी रायबहादुर श्री ललितकिशोरी शरण प्रकट रूप से वैष्णव और प्रच्छन्न रूप से सखी-समाजी थे। बहुत सारे सुन्दर छोकड़ों में से छाँट करके तीन उन्होंने अपने यहाँ रख लिए थे। उन्हें राम, लक्ष्मण और सीता के रूप में पूजते थे। रायबहादुर की यह उत्कट सखी-भावना जब उत्तर बिहार के कतिपय बुद्धिजीवियों में अन्दर ही अन्दर फैलने लगी, तो दूबेजी भी उस ओर आकृष्ट हुए। शायद इसीलिए रतिनाथ और नरेश का जोड़ा उनकी आँखों को एक प्रकार की परितृप्ति देता था। पढ़ने में तेज था, इसलिए रतिनाथ पर किसी को किसी प्रकार का सन्देह क्यों होता?

नरेश की घड़ी, चश्मा और अच्छी पेन्सिल देख-देखकर रतिनाथ का मन मचल उठता। चुराने की इच्छा होती, मगर छिपाकर रखने की कोई दूसरी जगह तो थी नहीं, इससे वह इच्छा ज्यों की त्यों रह जाती।

आठ-दस दिन पर वह जयकिशोर के बासे पर जाया करता। मामी उसे खूब मानती थीं। उनकी राय नहीं थी कि रतिनाथ जमींदार के यहाँ जाकर रहे। मगर जयकिशोर ने अपनी पत्नी को जब समझाया कि यहाँ तुम्हारे बच्चों की चह-चह चुह-चुह में उसकी पढ़ाई ठीक से नहीं होगी तब रूपरानी मान गयी। फिर भी जब-जब खास किस्म का कोई खाना बनता तो वह रत्ती को बुलवा लेतीं। मछली

जिस दिन पकाई जाती उस दिन तो जरूर ही। रत्ती को मछली खाने का बड़ा शौक था। शुभंकरपुर में एक छोटे-से पोखर का वह पट्टीदार था ही, बचपन से ही छोटी-बड़ी मछलियों का स्वाद उसे मालूम था। वहाँ, विधवा होने के कारण चाची के लिए मछली-मास अखाद्य था और इसीलिए जयनाथ और रतिनाथ ही थे कि पानी-फल (मछली) का भोग लगाते। हाँ, चाची यत्नपूर्वक मछलियाँ तलतीं अवश्य कि रतिनाथ और जयनाथ मन से खाएँगे। यहाँ दूबेजी जब से वैष्णव हुए थे तब से परिवार-भर को निरामिषाहारी बनाने का सत्याग्रह कई बार कर चुके थे। दो-चार दिन के लिए जब वह बाहर जाते तभी उनके यहाँ मछलियाँ पकतीं और नरेश की माँ का जी भरता। जमींदार बाबू स्वयं पचपन साल की अवस्था तक मछली-मांस का स्वाद ले चुके थे और अब जाकर रायबहादुर ललितकिशोरी शरण की छत्रछाया में कंठी बाँध आये थे। कंठी क्या थी? तुलसी-काठ के खरादे हुए मसूर जैसे दाने थे, उन्हीं को गूँथकर बनाया हुआ कंठहार था। परन्तु संस्कार क्या कम प्रबल होता है? बाबू साहब को जब कभी ललमुँहा रोहू का स्वाद याद आता तो बाजार चले जाते, मछली बेचने वालों के इर्द-गिर्द चार चक्कर लगा आते—सट्टी की मत्स्यगंधा आबोहवा उन्हें तृप्त कर देती। एक दिन किसी साथी ने दूबेजी की चुटकी ली तो आप बोले—भाई, इतना भी नहीं करने दोगे? खाना तो मछली का छूट ही गया, कहो तो अब नाक भी काट लूँ।

दुर्गा पूजा की उन छुट्टियों में न जयकिशोर घर गये न रतिनाथ। रतिनाथ को तो मोतिहारी ऐसी मनलगू जगह मालूम हुई कि सपने में भी उसे घर जाने की इच्छा न होती। साथी भी कई मिल गये थे। हाँ, चाची की याद आती तो छन-भर के लिए उसका दिल झनझना उठता। बीच में दो-एक खत शुभंकरपुर से आये थे जरूर, मगर उनमें कोई बात नहीं थी।

विजयदशमी के रोज बेतिया में बहुत भारी मेला लगता है। गाय, बैल और घोड़े खूब बिकते हैं। जमींदार बाबू प्रति वर्ष मेला में जाते थे। इस बार गाड़ी के लिए बैलों का जोड़ा उन्हें खरीदना था। साथ में नरेश, रतिनाथ, दो नौकर और रसोइया गया।

बाईस

उस साल का सावन शुभंकरपुर के लिए मौत का पैगाम लेकर आया। मलेरिया का ऐसा प्रकोप उस इलाके में इससे पहले शायद ही हुआ हो। लोग पटापट मरे।

मवेशी तक न छूट पाये। भोला पंडित उन्नीस दिन तक बुखार में उबलकर स्वर्ग सिधार गये। दम्मो फूफी भी इस बीमारी की चपेट में आ गयीं। डाक्टर-वैद्य कोई काम न आया। काम आई उमानाथ की माँ। बेचारी ने जी-जान से सेवा की, फिर भी दमयन्ती न बचीं तो इसमें किसका दोष? फूफी की सारी जायदाद भतीजे के हाथ लगी।

जयनाथ भागकर बड़हड़वा चले गये। चाची को भी दो दिन का बुखार आया, मगर वह शीघ्र ही ज्वरमुक्त हो गयी। छोटे-बड़े सौ से कम नहीं मरे होंगे। सरकारी सहायता तब पहुँची जब सत्तर के करीब लोग मर चुके। कुनैन की टिकिया बँटी थी, किन्तु गरीबों को वह मुश्किल से ही मिली थी। तुलसी का काढ़ा पी-पीकर आखिर कब तक लोग मलेरिया का मुकाबला करते?

ताराचरण ने बड़ी कोशिश की कि जिले और थाने के कांग्रेसी अधिकारियों से इस मामले में कुछ करवाएँ, मगर अभी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की तुलना में नेताओं के लिए इन बातों का क्या महत्त्व था? यह वे दिन थे जबकि हिटलर आधा से अधिक यूरोप जीत चुका था और गांधी जी कोई नया कदम उठाना चाहते थे।

लोगों का कहना था कि भूकम्प (1934) के बाद देश की आबोहवा बदल गयी है। नदियाँ, तालाब और पोखर उथले हो गये हैं। उपज कम होने लगी है। मलेरिया का प्रकोप बढ़ गया है, अकाल मृत्यु बढ़ गयी है। इधर पैदा होने वाले बच्चे साँवले नजर आते हैं। आमों की फसल अब साल-साल नहीं आती।

शुभंकरपुर के इस टोले में चौदह औरतें थीं, उनमें छः को मलेरिया ने लील लिया। दस मर्द थे, अब पाँच ही बच रहे। मन्नो की माँ, दमयन्ती, जलकिशोरी, जयदेव की बहन और पतोहू, नरेश की माँ—यही छः औरतें मरी थीं। ग्यारह ब्राह्मणों का जुटना मुश्किल हो गया था कि क्रिया-कर्म करने वाले का उद्धार होता। परसौनी के महापात्र भी मलेरिया का शिकार हो गये थे। हजाम इस गाँव में तीन ही थे, उनमें से दो मर चुके थे। क्रिया-कर्म की कौन कहे, लाश उठाकर ले जाने वाले नहीं थे। पास में कोई बड़ी नदी थी नहीं, हाँ लकड़ी की कमी नहीं थी। फिर भी सैकड़ों चिताएँ तैयार करने में गाँव-भर की अमराइयाँ ठूँठ हो गयीं। छोटी जात वालों को अपनी लाशें बहाने में जीबछ नदी की बाढ़ ने काफी मदद न पहुँचाई होती तो मुश्किल था। कहाँ से बेचारे उतनी लकड़ियाँ लाते?

भागकर जो बाहर जा सकते थे, जा चुके थे। मगर औरतें और बच्चे कहाँ जाते? मुसीबत का यह पहाड़ उन्हीं पर अधिकतर गिरा। सौभाग्य से रतिनाथ और उमानाथ बाहर थे, चाची को अपनी परवाह नहीं थी। जयनाथ श्रावणी पूर्णिमा से चार दिन पहले ही भाग चुके थे। आँगन में और कोई नहीं था। दिन तो

खैर जैसे-तैसे कट जाता, लेकिन रात का कटना पहाड़ हो जाता। एक तो यों ही ये लोग गाँव के छोर पर थे। तिस पर जयनाथ का आँगन बिल्कुल अलग था। वह छोर की पेंठ पर था। छिद्रों में हवा भर जाने के कारण जब सूखे-अधसूखे बाँस रात-बिरात बेतुकी तान अलापने लगते, तो चाची का हृदय काँपने लगता। बेचारी साफ देखती कि अँधेरी रात में भैंसे पर सवार काले-कलूटे यमराज आग बरसाती अपनी लाल-लाल आँखों से उसे घूर रहे हैं। तब उसे अपने विजन का वह बाल-साथी—रत्ती याद आता। घोर एकान्त के इन दारुण क्षणों को चाची उस लड़के से चिपटकर जाने कब से फटकारती आयी थी और अब वही सहारा पचासों कोस दूर हट गया था! उदास देखकर चाची के कंधे या पीठ पर रतिनाथ जब अपने हाथ रख देता तो असमर्थता या अनाथपन की उसकी भावना खटाई पड़े दूध की तरह फट जाती। वह महसूस करती कि एक ऊर्जस्वी पुरुष का क्षमताशाली हाथ पीठ पर है; लड़का है तो क्या हुआ, मर्द तो है।

चार-छः महीने बड़ी मुश्किल से कटे। कभी-कभी तो ढिबरी जलाकर रात-रात-भर चाची चर्खा ही चलाती रहती। दिन में बहुधा ताराचरण की माँ आ जाती या कोई और। चाची की पिछली भूल-चूक का लेखा लेनेवाला अब कोई रह नहीं गया था। गरीबी और मलेरिया ने लोगों की कमर तोड़ दी थी। लड़ाई की तेजी के साथ अनाज का भाव भी बढ़ता जा रहा था। चाची के हाथ में पैसे थे, बेसाह खरीदकर चावल, मकई, अरहर सब कुछ वह मँगाती थी। ताराचरण की खेती काफी थी। साल-भर का सारा खर्चा उसका उसी से निकलता था। चाची ने कभी अपने लड़के को रुपये-पैसे के लिए नहीं लिखा। जब लिखा तब यही कि खान-पीने में कंजूसी नहीं करना। अपने शरीर का ख्याल रखना। सौ रुपये पिछले छः महीनों में चाची ने बचा लिए थे। नोकटी की रुई खरीदकर उसने दो सेर सूत इस-लिए काते कि दोनों लड़कों की चादरें और कुर्ते का कपड़ा बुनवा लेगी।

जयनाथ का महाजन बनने का उत्साह शान्त हो चुका था। दो सौ रुपये डूब गये थे। बाकी भंग, माजून, घी, दूध, मछली, मांस और प्रेयसी के पीछे लग रहा था। आजकल आप बड़हड़वा चले गये थे। वहाँ भांजे अपने एक पट्टीदार से मुक-दमा लड़ रहे थे। मामूली पैरवी के लिए भी भागलपुर दौड़ना उन अमीरजादों को अखरता था। ऐन वक्त पर उन्होंने अपने लायक मामा को याद किया। आतुर गजराज की पुकार पर शेषशय्या छोड़कर और लक्ष्मी को समझा-बुझाकर नारायण भी उतनी फुर्ती से नहीं दौड़े होंगे जितनी फुर्ती से जयनाथ बड़हड़वा पहुँचे। प्रेयसी को पाँच रुपये का एक नोट थमा और उमानाथ की माँ को सौंप दिया घर-आँगन। चल पड़े। दुतरफा झोला कन्धे में लटक रहा था। भगवान् (शालिग्राम) इस बार साथ जा रहे थे। जाते-जाते उन्होंने चाची से कहा—"कृष्णाष्टमी तक अवश्य लौट आऊँगा, बाबा (वैद्यनाथ) पर जल ढारना है। और

तो कोई काम है नहीं। तुम किसी बात का अन्देशा मत करना··"

चाची ने कहा था—"बाबू, जल्दी की क्या बात है? समूचा गाँव भट्टी पर चढ़ा हुआ है। देखते हो, लोग मलेरिया के मारे तबाह हैं। क्या करने आओगे अभी? कृष्णाष्टमी क्या और जगहों मे नहीं होती? हम न ठहरीं लाचार, तुम्हारा क्या है? जहाँ घड़ तहाँ घर।"

इस बात का जयनाथ ने प्रतिवाद किया था—"नहीं-नहीं उमानाथ की माँ, कहीं क्यों न हों, जी तो हमारा यही टँगा रहता है! घर है बार है, बाप-दादो की जायदाद है। टोल-पड़ोस, जान-पहचान, चीन्हा-परिचय क्या-क्या नहीं है? सब कुछ तो अपना यहीं है···उमानाथ की माँ, ऐसा मत समझना कि जयनाथ को इस मिट्टी का मोह नहीं है···"

अन्त में उसका गला भर आया था और झुककर आँगन की भूमि में से एक चुटकी मिट्टी उसने उठा ली थी। उसमें से जरा-सा तो जयनाथ ने कपार मे लगा लिया था और बाकी बाँध लिया था चादर के खूँट में। उस दिन देवर का वह अपूर्व भावावेश देखकर उमानाथ की माँ का सारा शरीर सिहर उठा था। जयनाथ का वह रूप आज तक उसने नहीं देखा था। उत्तरदायित्व की भावनाओं से शून्य, मेहनत-चोर, आवारा, कृतघ्न, कठोर, झूठा—जयनाथ यह नहीं तो और क्या था? ऐसे मनुष्याभास के हृदय मे भी कहीं अपनी पितृभूमि की मिट्टी के प्रति इतनी ममता हो सकती है? हाँ, हो सकती है। अपने देवर का भरा हुआ गला और डब-डबाई आँखें चाची के सामने थी। यह सब कुछ किसी निपुण अभिनेता का असं-भावित कौशल नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष वास्तविकता थी।

सचमुच इस बार जयनाथ बड़हड़वा मे रम गये। उनका नित्य-कृत्य था सुबह उठकर शौच आदि से निबटना, फिर भाँग छानना। दस बजे स्नान-पूजा। ग्यारह बजे भोजन। उसके बाद घंटा-भर मनोयोगपूर्वक देशी सरौते मे कतर-कतरकर सुपारी फाँकते जाना और साथ ही बातें भी लड़ाना। बारह से चार बजे तक सोना। छः तक फिर भंग-भवानी की आराधना। आठ तक भाजों के इस्टेट का काम। नौ बजे भोजन। उसके उपरान्त दिवंगत बहनोई की छोटी भ्रातृ-वधू से नर्म-आलाप। वह बाल-विधवा बड़ी हँसोड़ तबीयत की थी और जयनाथ के लिए जान देती थी। कहने के लिए एक-दूसरे के लिए भाई-बहन थे, परन्तु उनका आपस के सम्पर्क का क्षण दो संतप्त प्राणियों के चिरवांछित मिलन का मधुपर्व ही था। सुमित्रा बहन का वैधव्य नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का निर्मल प्रतीक था। उनकी कोख से यही एकमात्र कमलकान्त उत्पन्न हुए थे। बाईस साल हुए, पति के देहान्त के बाद कभी सुमित्रा ने रंग-बिरंगी या किनारीवाली साड़ी नहीं पहनी। न पान खाया, न दाँतो मे मिस्सी लगाई। गहने पतोहुओं को दे दिए। मेले के दिनों में गंगा या और तीर्थों में नही गयी। मार्कीन की पतली धोती, गले में बारीक रुद्राक्षों की माला,

कपार पर गंगा की मिट्टी का टीका—यही उसका भेस था। अकेले में किसी ने मर्द से बातें करते उसे कभी नहीं देखा। बहुत कम बोलती थी, सो भी जमीन-जायदाद या घरेलू मामलों की गुत्थियाँ सुलझाने के लिए ही। अब तो खैर लड़के बालिग हो गये थे। उन्होंने गृहस्थी का भार भली भाँति सँभाल लिया था। फिर भी एक सतर्क निरीक्षक की भाँति सुमित्रा की दृष्टि सदैव अपने पुत्रों पर रहती। एक कमलाकान्त था और कई सौतेले थे। व्रत, उपवास और नियमित आहार से सुमित्रा ने स्वास्थ्य को अपने काबू में कर लिया था। मधुर वाणी और सरल व्यवहार से वह स्वजन-परिजन, नौकर-चाकर और खवास-खवासिन सभी की श्रद्धा का पात्र बन गयी थी। इस प्रकार तिरहुत और शुभंकरपुर का नाम उसके कारण विख्यात हुआ था। बहन ने बड़ी कोशिश की कि भाई आदमी बने, पर वह नहीं सुधरा। जयनाथ को काफी जमीन देकर बडहडवा में ही अलग बसाने की सुमित्रा की इच्छा थी, किन्तु वह पूर्ण न हुई। इसमें जयनाथ का ही दोष था। वह शादी करने के लिए तैयार नहीं हुआ। दो साल तक पड़ोस की एक लड़की को सुमित्रा अपने भाई के लिए छेके रही, मगर 'यहाँ न लागहि राउर माया !'

इस बार भी सुमित्रा की देवरानी ने ही छल-बल से जयनाथ को बुलवाया था। प्रेमी या तो अविवाहित हो या फिर विधुर। वैसी स्थिति मे प्रेमिका को सहूलियत रहती है। देवरानी का नाम था चन्द्रमुखी। धनी माँ-बाप की लाडली बेटी 'फुदनी' ससुराल में चन्द्रमुखी क्यों कहलाई? इसका रहस्य उसके सौन्दर्य की अब तक अकंपित दीप-शाखा मे निहित है। विधवा हुई तो क्या हो गया? मछली-मांस छोडकर और सभी वस्तुएँ वह खाती है। बचपन से ही छटाँक-भर घी, आधा पाव मलाई रोज लेती आई है। काँच और लाह की न सही सोने-चाँदी की चूड़ियाँ पहनने से कौन उसे मना करेगा? खान-पान, ओढ़न-पहिरन सभी मे चन्द्रमुखी बदलती ऋतुओं के मुताबिक रुचि-वैचित्र्य का ध्यान रखती थी।

चन्द्रमुखी से भर पेट गप-शप कर चुकने पर जयनाथ दालान के उस खंड में सोने आते जो हवेली से सम्बद्ध था। सोने से पहले वह दो-चार श्लोक गुनगुनाते और अँधेरे में बिस्तरे पर बैठे-बैठे ही बटुए से निकालकर दस-दस रुपये वाले पन्द्रहों नोट गिन लेते। यही डेढ़ सौ बच रहा था। यह आमदनी की जगह थी, इसीलिए खर्च नहीं पड़ रहा था। छूते-टटोलते अब पन्द्रहों नोट जयनाथ की अँगुलियों से ऐसे परिचित हो गए थे कि कोई जरा भी हेर-फेर या कमोबेश उनमे करता तो वह जरूर ही जान जाते।

तीन-चार रुपये प्रतिमास वह रतिनाथ को मनीआर्डर भेजते थे। इसके लिए किसी ने उनसे कहा नहीं था। स्वतः ही यह बात उनके दिमाग में बैठ गई थी कि लड़का परदेश मे है। कभी कोई खास चीज खाने-पीने का मन करेगा तो किससे कहेगा? यों भी हाथ में चार पैसे रहेंगे तो दिल मजबूत रहेगा।

रत्ती महीने में एक खत बाप के नाम डालता था। एक खत चाची को भी भेजता था। कभी-कभी उसका हृदय अपने गाँव के लिए रोता था। बागो याद आती। सत्तो याद आता। वह कई बातों मे रत्ती का गुरु था। तैरना और पेड़ पर चढ़ना उसने सत्तो से ही सीखा था। नकली रोने की तालीम भी रत्ती को उसी उस्ताद से मिली थी।

उम्र में दो महीने का छोटा होने पर भी सत्तो इन्हीं कारणो से रत्ती का गुरु था। अपने इस प्रिय साथी की याद रतिनाथ को बहुत सताती। दूसरा नम्बर था बागो का, मगर अब उसका ब्याह हो चुका था, इसमे उसके प्रति थोडा बिलगाव और बेगानापन अनुभव करना अस्वाभाविक नही था।

जाड़े के दिन आए। रत्ती ने अपने मन को पढ़ने में लगाया। रात बडी देर तक वह जागता रहता। यह जागरण उपन्यासो की सैर के लिए नहीं, पाठ्य-पुस्तको के लिए था। होली तक उसने मध्यमा का कोर्स पूरा कर लिया। उसके बाद वह हिन्दी के पीछे लगा। गर्मियो के दिन आते-आते कुछ अंग्रेजी भी उसने सीख ली थी। इसके अलावा संस्कृत से हिन्दी और हिन्दी से संस्कृत करने मे जो विशेष योग्यता वह हासिल कर सका, इसका सारा श्रेय जयकिशोर बाबू को ही देना चाहिए।

बेतिया रतिनाथ को मोतिहारी से अच्छा लगता था। इस बीच मे कई बार वहाँ से वह हो आया था। वहाँ की प्राकृतिक शोभा और वातावरण उसे दरभगा जैसा ही लगता था, मगर जिला स्कूल तो मोतिहारी मे ही था। रतिनाथ की इच्छा से तो नरेश बेतिया नही आ-जा सकता था। दुबेजी का मुनहला पिंजडा उसे अब अच्छा नही लगता। नरेश की रुचि पढ़न-लिखने की ओर थी नही। बाध्य होकर रत्ती को उसके साथ ताश, कौआठुठी, मांगन्न-पैठान और बाघगोटी खेलना पड़ता। यह ठीक है कि अपरिग्रह का बन्धन अब बिलकुल शिथिल हो गया था और सुवासित तेल-साबुन का व्यवहार, ताम्बूल-सेवन, नृत्य, गीत, वाद्य, नाट्य आदि का दर्शन-श्रवण, चर्व्य-चोष्य-लेह्य का आस्वादन नरेश ने आरम्भ कर दिया था, परन्तु रतिनाथ का हृदय इन बातों को अपनी पढ़ाई का अतराय समझता था। अपने पूर्वज नीलमाधव उपाध्याय का नाम उसे इस प्रवाह मे अपने को भी बहा देने से रोक रहा था। उसने सोचा— क्या है, इनके लिए यही विद्या है, यही पढाई है। नरेश और उनके बाप (दुबेजी) को जरा-सी छीक पर चुटकी बजाकर 'चिरजीव' कहनेवाले, इनकी कलाई पर रक्षासूत्र बाँधने वाले पचासो नहीं सैकडों निकल आएँगे। मगर उसे कौन पूछेगा? इस उमर मे चार अक्षर पढ़ नहीं लिया तो जिन्दगी-भर इन्ही की जूतियाँ उसकी इष्ट देवता बनी रहेंगी।

तईस

सौराठ की सभा उस साल वैशाख के ही अन्त में हुई थी। उमानाथ की शादी पंडौल स्टेशन से पाँच कोस पश्चिम महनौली के एक खेतिहर ब्राह्मण की सयानी लड़की से हो गई। सिर्फ दो घण्टे लगे, बात पक्की हो गई। उमानाथ का यह ब्याह इतना चटपट तय हो जाएगा, किसे पता था? सौराठ में यही तो होता है। हजारों विवाहार्थी इकट्ठे होते हैं। कन्याओं की तरफ से उनके अभिभावक बड़ी तादाद में जमा रहते हैं। सभा में यदि कन्याएँ भी शामिल होतीं तो स्वयंवर का यह विराट पर्व न केवल भारत-भर में परन्तु सम्पूर्ण विश्व में अद्वितीय कहलाता। तब सोनपुर के प्लेटफार्म और हरिहर क्षेत्र के मेले की तरह सौराठ की यह विवाह सभा भी मशहूर हो गई रहती। यद्यपि अपनी मौजूदा स्थिति में भी ब्राह्मणों का यह वैवाहिक मेला अनुपम है।

चौदहवीं सदी में कर्णाटवंशीय राजा हरिसिंहदेव मिथिला के शासक थे। उनके राजत्वकाल में, एक जनश्रुति के अनुसार, किसी अभिजात ब्राह्मणी पर व्यभिचार का आरोप लगाया गया। राजसभा में वह खड़ी की गई। हाथ में पीपल का पत्ता और उस पर आग रखकर धर्माध्यक्ष ने उससे कहलवाया—चाण्डाल से कभी मेरा सम्पर्क नहीं हुआ, अगर हुआ तो इस आग से मेरा हाथ जल जाए। तीन बार ब्राह्मणी ने कहा। हाथ जलने लगा। तब पंडितों का दिमाग चकराया। उन्होंने सोचा—इसके विवाह-सम्बन्ध की छानबीन करनी चाहिए। कदाचित् इसका पति ही दूषित विवाह-सम्बन्ध के कारण चाण्डाल की कोटि में आ गया हो। ब्राह्मणी और ब्राह्मण दोनों के मातृ-कुल तथा पितृकुल का लेखा-जोखा हुआ। बाप की तरफ से सात पुरखा और माँ की तरफ से पाँच पुरखा तक यदि कुछ लगाव रहा तब तो शादी नहीं होनी चाहिए। कन्या और वर दोनों के पुरखों की छानबीन की जाती है तब जाकर ब्याह होता है। उन दोनों की शादी के समय इस गणना में कुछ गड़बड़ हो गया था। पक्का सबूत मिल जाने पर धर्माध्यक्ष ने फिर उस ब्राह्मणी के हाथ पर आग रखवाई और कहलवाया—पति को छोड़कर यदि किसी दूसरे से मेरा लैंगिक सम्पर्क हुआ हो, तो यह हाथ जल जाए। इस तरह कहने से ब्राह्मणी का हाथ नहीं जला।

इस घटना के उपरान्त राजा हरिसिंह देव को इस बात की बड़ी चिन्ता हुई कि मिथिला के ब्राह्मणों का आभिजात्य कैसे सुरक्षित रहेगा। साथियों से परामर्श करके तत्कालीन ब्राह्मणों की उन्होंने पंजी (ब्यौरेवार सूची) तैयार करवाई। विद्या, आचरण, कुलीनता आदि का विचार करके बनवाई हुई ब्राह्मणों की अनुक्रमणिका समयानुसार बढ़ती ही गई। प्रत्येक नवजात ब्राह्मण-कुमार का नाम पंजीकार लोग आज भी अपनी अनुक्रमणिका में लिख लेते हैं।

इससे हुआ यह कि शादी-ब्याह में ब्राह्मणों को सहूलियत होने लगी। ब्राह्मणों की ऐसी सिलसिलेवार फेहरिस्त भारत-भर में और कहीं नहीं है। पंजीकार लोग इन छ: सौ वर्षों तक निर्लोभ और तटस्थ रहकर यह काम करते आए हों सो बात नहीं। कुलीनता बनाम आभिजात्य विनिमय, क्रय-विक्रय आदि का प्रामाणिक इतिहास अभी काल के गर्भ में छिपा रहे, यही अच्छा। वह भी इन्हीं लोगों का शासन था कि रतिनाथ के नाना की दस विमाताएँ थीं। जयनाथ के परदादा ने इक्कीस शादियाँ की थी। तिब्बत में जैसे बहुपति-प्रथा अभी तक जायज और जीवित है, उसी तरह रतिनाथ की मिथिला में बहुपत्नी-प्रथा जायज और जीवित है।

सौराठ इन लोगों का बड़ा बाजार है।

मगर, अब जमाना बहुत बदल गया है। कुलीनता ही काफी नहीं थी, उमानाथ दरिद्र था। उसके बाप और दादा भी दरिद्र थे। उसकी शादी की बात इतनी चटपट जो तय हुई इसका श्रेय ट्राम कम्पनी की नौकरी को था। उमानाथ आजकल चालीस पा रहा था। अंग-अंग से जवानी झाँक रही थी। लगता था कि हरौती बाँस की कोंपल सरं से बढ़ आई है और अब उसमें से कॅलियाँ फूटने ही वाली हैं। पतला-छरहरा। क्या ही खूबसूरत किशोर था! फिर भी दो सौ रुपये देने पड़े। जयदेव और जयकिशोर ने अभिभावक का काम किया। पंजीकार वीरभद्र मिश्र ने ताल-पत्र पर सिद्धान्त लिख दिया। उन्हें दो रुपये उसकी लिखाई मिली। यह रकम कन्या वाले ने दी थी क्योंकि उसका वंश कुछ निम्न कोटि का था।

जयदेव और जयकिशोर बारात में गए। तीसरा स्वयं उमानाथ था। अगले दिन से अतिचार पड़ता था। शुभ लग्न का अन्तिम क्षण दोपहर रात तक ही था। जैसे-तैसे सब महनौली पहुँचे। सौराठ से छः कोस पच्छिम।

वर देखकर महनौली वाले खूब खुश हुए। कन्या के बाप का नाम था नन्द झा। लोगों ने कहा—नन्दे को यह काम अच्छा मुतरा। पैसे भी मिले, पात्र भी मिला। लड़की जायगी तो उसे बरगद की छाँह मिलेगी। कमामुत पति मिलेगा, मुसम्मात सास मिलेगी···और क्या चाहिए?

आँगन में औरतों ने कमीज-कोट और बनियाइन खुलवाकर उमानाथ को गहरी निगाह से देखा। एक मुँहफट खबासिन बोली—"आँख मूँद लो भैया, धोती भी खुलेगी।"

"आ, तू ही खोल दे," अधेड़ उम्र की एक औरत ने अपनी छोटी आँखें नचाकर उससे कहा, वह अप्रतिभ हो गई। उमानाथ को ट्राम कम्पनी का वह बंगाली डाक्टर याद आया जिसके सामने इसी भाँति कपड़े खोलकर खड़ा होना पड़ा था। उस दिन भी पसीना निकल आया था और आज भी। फर्क यही था कि

उस दंतटुट्टे डाक्टर ने फोते टटोलकर देखा था। इन औरतों ने वैसा कुछ नहीं किया। एक बुढ़िया ने आगे बढ़कर पूछा—"कुछ पढ़ा-लिखा भी है?"

"ज ज ज ज्योतिष···थोड़ा···" उमानाथ के मुँह से पूरा वाक्य नहीं निकला। उसका दिल बेहद धड़क रहा था। तब तक पुरोहित ने उधर से आवाज दी—"सिन्दूर दान का मुहूर्त निकट आ गया। आप लोग जल्दी करें।"

धोती बदलकर उमानाथ पुरोहित के पास, वेदी के निकट पहुँचा।

कई प्रकार के विधि-व्यवहार होते-हवाते कन्यादान जब सम्पन्न हुआ तो रात ढल चुकी थी।

अगले दिन जयदेव और जयकिशोर ने वधू का मुँह देखा। चार-चार रुपये मुँहदिखाई दी। लडकी का स्वस्थ सुन्दर चेहरा देखकर दोनों खूब प्रसन्न हुए और भगवान् से प्रार्थना की, वह जैसी रूपवती है वैसी ही सुशीला निकले।

उसी दिन दुपहर को वे दोनों चल पड़े। नन्द झा ने दोनों को दो-दो धोतियाँ और चार-चार रुपए विदाई में दिए। रुपए लौटाकर धोतियाँ इन लोगों ने रख ली।

शाम तक दोनों शुभंकरपुर पहुँचे। उन्हें लाल धोती पहने देखकर लोग समझ गए कि उमानाथ का विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हो गया।

चाची को यह शुभ समाचार कल रात ही मिल चुका था। सौराठ से जो लोग लौटे थे, उन्होंने ही आकर कहा था।

कुल जमा तीन सौ लेकर उमानाथ कलकत्ते से घर आया था। माँ को शक था कि इस बार काम होगा। इसी से पहले इस शुभ समाचार को चाची ने मजाक ही समझा। मगर गुलाबी रंग में रँगी धोती पहने जयदेव और जयकिशोर आकर जब सामने खड़े हो गए तो खुशी से उसकी आँखें डबडबा आईं। जयकिशोर को प्रणाम करते समय उसके हाथ काँपने लगे।

जयदेव ने मुस्कराते हुए कहा—"लो, उमानाथ की माँ, तुम्हारा काम हमने कर दिया। कब मिठाई खिला रही हो?"

वह भावावेश में थी, चुप रही। जयकिशोर बहन की तरफ से बोले—"खाइए न, अब से आसिन तक कितना खाइएगा?"

और ठीक ही कहा था जयकिशोर ने। गरीब से गरीब सास-ससुर भी नये दामाद को हरेक त्योहार पर दही, पकवान, चूड़ा, केला, मिठाई—दो-चार चंगेरा भरिया के द्वारा जरूर भिजवाता है। सन्तान की ससुराल से आई सौगात की यह सामग्रियाँ लोग अड़ोस-पड़ोस में बायना के तौर पर बँटवा देते हैं। सबकी मिठाई सब खाता है। सब का पकवान सब खाता है। शादी के बाद साल-भर तक यही सिलसिला रहता है। सास-ससुर अगर धनी और उदार हुए, फिर तो कहना ही क्या?

जयदेव चले गए अपने घर की ओर। जयकिशोर बहन के साथ आँगन में आए। वहाँ और कोई तो था नहीं। शाम की ठंडक में बीच आँगन में ही चाची ने कम्बल बिछा दिया। पानी लाकर भाई के पैर धोने ही जा रही थी कि रतिनाथ भी आ गया। वह बलुआहा पोखर पर कबड्डी खेलने गया था। लाल-गुलाबी धोती पहने दो आदमियों को अपने घर के सामने दूर से ही देखा तो खेल से उसका मन उचट गया और भाग आया। आते ही लपककर उसने मामा के पैर छुए। फिर एक ओर होकर बैठा।

भाई के पैर धोते-धोते चाची बोलीं—"हमको तो भरोसा नहीं था। समय-साल खराब है। चीज-वस्तु दिन से दिन ऊपर चढ़ती जा रही है···।"

"भगवान की कृपा," जयकिशोर ने कहा—"सारी बातचीत मिनटों में तय हो गई। रत्ती तो गया ही नहीं था। नहीं तो यह भी इस समय कहीं ससुराल में ही होता।"

शर्म से रतिनाथ की कनपटी सुर्ख हो गई, मामा ने अपनी आँख उसके चेहरे पर गड़ा दी और बोले—"इसी डर से यह सौराठ गया तक नहीं। है न रे!"

संकोच के मारे रतिनाथ की गर्दन टूट रही थी। चाची ने इस अवग्रह से उसे छुटकारा दिलाया। उसने कहा—"जाओ बेटा, बूढ़े राउत को समझाकर कहना कि मामा बहुत थके हैं। रात में आकर मालिश कर जायँ।"

रत्ती झटककर आँगन से निकल गया।

चाची पंखा ले आई थीं। झल रही थीं। जयकिशोर ने कहा—"दो सौ देने पड़े, मगर काम अच्छा हुआ। लड़की सयानी है। खूबसूरत तो है ही।"

भाई के एक-एक शब्द को चाची मानो पी रही थीं। उसका रोम-रोम कंटकित हो रहा था। जाने कितनी मुसीबतें झेलकर उमानाथ को उसने पाला-पोसा था। कितना कष्ट, कितनी तपस्या इस लड़के के लिए उसने की थी। आज उमानाथ ने शादी की, कल बहू आएगी। परसों चाची जरूर ही पोते का मुँह देखेंगी···वह सुख-स्वप्न में डूबने-उतराने लगीं। हाथ में पंखा था, कब उसका डुलना रुक गया और बाँहें निश्चेष्ट होकर घुटने से आ लगीं और कब फिर कम्पित चेतना की सन्धि के किसी क्षण में बाँह अपने आप हिलने लगी और पंखा फिर चलने लगा, चाची को पता नहीं। ध्यान उसका तब भंग हुआ जब एक बार पंखा कम्बल के छोर से जरा छू गया।

जयकिशोर एक नहीं, दसों दफे शुभंकरपुर आ चुके थे। सब देखा-सुना था। ब्याह के बारे में साधारण बातें कह चुकने पर दिशा-फरागत के लिए लोटा लेकर बलुआहा की ओर निकल गए। चाची रसोई में लगीं। जयदेव ने लोटा-भर दूध भेज दिया था। उनकी दो भैंसें दुधारू थीं। दूध-दही के लिए शुभंकरपुर मरुस्थल था। मेहमान आ जाने पर अच्छे-अच्छे गृहस्थ तक गोरस के अभाव में निर्लज्जता

का अनुभव करते थे।

जयनाथ अभी तक बड़हडवा में ही थे। शुभंकरपुर में उनके लिए कोई आकर्षण तो था नहीं। जायदाद बेच-बूचकर स्वाहा कर गए थे। रतिनाथ अब अच्छी तरह समझ गया था कि महादरिद्र तो हूँ ही, पढ़ूँगा नहीं तो बुरी गत होगी। इसलिए प्रतिदिन चार-छह घंटे वह अपनी पाठ्य-पुस्तकों से चिपटा रहता। हाँ, गाँव में कभी-कभी मन ऊब उठता तो मोतिहारी का वह छोटा-सा पुस्तकालय ध्यान में आ जाता। यहाँ ताराचरण के पास 'आज' बराबर आता था, उससे थोड़ा कुछ मनोरंजन हो जाता है। परन्तु उपन्यास पढ़ने की चाट पड़ चुकी थी, इसका क्या उपाय हो?

पोखर में उस दिन मछलियाँ पकड़ी गयी थी। मल्लाह आए थे। केले के थम्भों पर तख्तपोश डालकर उसे मजबूती से बाँध दिया गया था। वही फिर अच्छी-खासी नाव हो गयी। तख्तपोश दस्सो फर्मा की थी। आठ हाथ लम्बी और छः हाथ चौडी। पोखर के बीच में उसे हेला दिया। चारों मल्लाह जाल लिये हुए उस पर सवार थे ही। समूचे तालाब में घूम-घामकर वे जाल फेंकने लगे। भाकुर, ब्वारी, रोहू, भुनबट्टी, सौरा तेन—किस्म-किस्म की मछलियाँ पकड़ी गयीं थीं। रत्नी को तीन फरीक का हिस्सा दस सेर का एक रोहू मिला था। अट्ठारह में से तीन भाग। एक हिस्सा कमलनाथ का, जो रामगंज में बस गए थे। एक भाग चाची का। तीसरा भाग अपना। रिवाज यह था कि मल्लाह तीन में से एक भाग, तेहाई, के हकदार हों। इसके मुताबिक उस दिन उन्होंने कुल नब्बे सेर (दो मन, दस सेर) मछलियाँ पकडी थी। तीस सेर उनकी मजूरी हुई थी। साठ सेर पोखर के मालिकों का हुआ। दमयन्ती, भोला पंडित आदि तीन और थे जो चार-चार छै-छै पाट्टियों के हकदार थे। पोठी, झिंगा या इंच्चा जैसी छोटी-छोटी मछलियाँ कभी पकड़ी जाती—दो सेर होने पर भी अट्ठारह जगह उनका बाँट-बखरा होता।

अकेले इतनी बड़ी मछली लेकर चाची क्या करतीं? पाँच सेर रखकर बाकी उसने जयदेव के घर भेज दिया था। चीरने पर रोहू के पेट से करीब आधा सेर अंडा निकला था, देखने में ठीक पोश्ता-दाना की तरह।

जयकिशोर निबट आए तो भुना हुआ चूड़ा और रोहू के तले टुकड़े तश्तरी में सामने आये। अंडे के बड़े थे। उन्हें यह सुयोग बहुत दिनों पर प्राप्त हुआ था। चार साल पहले जयकिशोर के ससुर मरे थे। वहाँ तेरही के दिन रोहू मछली का पर्याप्त प्रबन्ध किया गया था। जमींदार थे वह, चार पोखरों के मालिक। भला वहाँ मछलियों का क्या कहना? और इतने दिन बाद आज फिर वही वस्तु आगे आयी थी। मोतिहारी में या तरकुलवा में खरीदकर खाना पड़ता था। खरीदकर खाने में यह आनन्द कहाँ?

जलयोग कर चुकने पर मालिश का अवसर आया। असल में यह अवसर रात

का खाना खा लेने के बाद आया करता है। आप खाकर लेट जाइए। थकावट ज्यादा है। खवास आएगा। हाथ में जरा-सी चिकनाई (तेल) मखाकर वह आपके पैरों में शुरू करेगा, एक-एक नस को मानो दुहता चला जाएगा। पैर, गोड़, टाँग, घुटने, जाँघ, कमर, पीठ, पसलियाँ, गर्दन, कंधे, सिर, माथा, कपार, कनपटी, बाँह, केहुनी, कलाई, हाथ, पंजे—अंग-अंग की नसों को दुह लेगा। पंजे से पंजा लड़ाकर अँगुलियों के एक-एक पोर को चटकाकर अपने हाथ एक बार फिर आपके पैरों पर ले जाएगा। घुटियाँ चाँपकर अँगुलियाँ (पैरों की) चटकाकर कुछ देर तक तलवे रगड़ता रहेगा। और अन्त में टाँग, जांघ और कमर में हल्की मुक्कियाँ लगाता रहेगा। तब तक आपकी पलकें झप चुकी होंगी, आप अवश्य ही रेशम की रस्सियों वाले नींद के झूले पर बेभान हो गए रहेंगे। इसमें कम-से-कम घंटा-भर तो लग जाएगा।

परन्तु जयकिशोर बचपन से ही परदेश रहे। खवासों की इस कला के प्रति उनकी जरा भी दिलचस्पी नहीं थी। कल और आज पैदल इतना अधिक चलना पड़ता था कि चूर-चूर हो रहे थे, एकमात्र यही कारण था कि अपना बदन राउत से चँपवाने के लिए वह राजी हो गए। फिर भी इस बूढ़े खवास ने अपने तईं कोई कसर न रखी। जयकिशोर की आँखें लग ही गयीं।

ताराचरण की माँ, जयदेव की चचेरी बहन, शकुन्तला, रामपुरवाली और नरेश की भाभी ने आकर तीन मंगल गीत गाए। चाची का भी मन था, साथ मिलकर गाएं। दूसरा लड़का तो है नहीं कि कभी और गाकर मनोरथ पूरा कर लेगी। किन्तु बेचारी रसोई में मशगूल थीं। फिर भी दूसरे गीत में थोड़ा योग दिया था। जयकिशोर को औरतों की इस मांगलिक गोष्ठी का पता तक न चला, वह सो रहे थे। जाते-जाते रामपुरवाली ने कहा—"अहा, आज कहीं जयनाथ भी यहाँ होते!"

नाक पर उँगली चढ़ाकर और आगे बढ़कर ताराचरण की माँ बोली—"उनका क्या, मझौली में समधी का दालान हो चाहे बड़हड़वावाले बहनोई का दालान हो, कहीं भी बैठा दो, मुदा भंग और कुण्डी-सोटा उनका सही-सलामत रहे...हाँ, यह कहो बहिना, कि कहीं आज बाबू वैद्यनाथ खुद होते तो..."

चाची ने लम्बी साँस ली और पड़ोसिनों को दरवाजे तक जाकर छोड़ आयीं।

थोड़े काल बाद रत्ती ने धीरे से उठाया तो मामा उठे। खाना पकाने में चाची ने कुछ लफलफा नहीं किया। मछली, भात, अंडे का बड़ा। झोल भी थी और तले टुकड़े अलग से भी थे। जयकिशोर मछली के आगे और किसी भोज्य पदार्थ को महत्त्व नहीं देते थे। हाँ, साथ में जम्बीरी नींबू रहना ही चाहिए? 'जम्बीर-नीरपरिपूरितमत्स्यखंडे' की तुलना में मैथिल लोग अमृत तक को तुच्छ समझते हैं, राघव (रोहू) का मूँड़ भी जयकिशोर के ही भाग्य में बदा था। पीठ, पेट, पुछरी,

शिर—रोहू के अंग-अंग मे पृथक्-पृथक् स्वाद होता है, इससे जयकिशोर अनभिज्ञ नही थे। चालीस मिनट लगे होंगे खाने मे। भात तो दो ही चार कौर खाए होंगे, रोहू के आगे भात-दाल को कौन पूछता है ? मछली पर से दही खाना अच्छा रहता है, मगर वहाँ तो दूध था। चाची को इस अभाव का खेद अवश्य हुआ।

गर्मी की रात थी। तीनों जन आँगन में ही सोए। चाची को देर तक नीद नहीं आयी। कल नहीं, परसों उसे कम-से-कम चार भार तो भेजने ही होंगे। नहीं तो महनौली मे लोग क्या कहेंगे ? दूध कहाँ से आएगा ? केले तैयार कहाँ मिलेंगे ! कपड़े और मिठाई तो खैर बाजार मे आ जाएँगे। भरिया कौन-कौन जाएगा ? राउत एक, बुचिया दो, किमुनी मंडड तीन और चौथा ? बहू के लिए एक-आध गहना जाना ही चाहिए···अच्छा तो है, बाजार मे नाक का लौंग मँगवा लूँगी। पन्द्रह लगेगा कि बीस ? ··

इन्हीं परिकल्पनाओं में जाने कब चाची की आँखें झिप गयी।

चौबीस

गेहुँआ रंग। लम्बा कद। फैला हुआ चेहरा। प्रशस्त ललाट। पतले होंठ। बड़ी-बड़ी आँखें। नाक जरा चिपटी। पन्द्रह-सोलह साल का तरुण साफ धोती और नीली धारी वाली पीली कमीज पहने जब उसने उस विशाल आँगन में बेधड़क प्रवेश किया तो सूर्यास्त का समय था।

किसी ने उसे नही पहचाना। वह भी किसी को पहचान नही पा रहा था कि इतने मे कुंजी खबास की औरत जनकमनि सिर और कमर पर पानी भरे दो घड़े लिये पहुँची। आगंतुक का मुँह देखते ही वह उल्लास मे चिल्ला उठी—"दइया रो दइया ! यह तो रत्ती बबुआ है। कितना बड़ा हो गया है !"

तब तक दो मामियाँ सामने घर से दौड़ आयी। नानी बीच आँगन मे खजूर की सितलपाटी पर बैठी थीं, वह भी उठ खड़ी हुई। उनके हाथ मे बाँस की बिजनी थी। गर्मी के मारे मारे बदन में फुंसियाँ निकल आयी थीं। बिजनी के बेंट से पीठ खुजलाती हुई वह भी चार कदम आगे आयी।

बड़ी मामी ने रत्ती के हाथ से गठरी ले ली और कहा—"नानी को नहीं पहचाना ?"

वृद्धा के पैरों पर धव मे पड़कर उसने प्रणाम किया। नानी रो पड़ीं—"भूल

गए हमें बेटा ?"

अपनी मृत पुत्री की पुरानी स्मृति इतने जोर से उभर आयी कि वृद्धा का गला रुँध गया। वह आगे लपकी और लडके को छाती से लगा लिया। माथे पर हाथ फेरते मानो संतोष ही नहीं हो रहा हो ! वात्सल्य का यह रूप रतिनाथ ने आज तक नहीं देखा था। उसके जीवन में सर्वप्रथम यह रस उँड़ेलने वाली चाची थी। उसको माँ की तो याद तक नहीं है। ननिहाल पूरे दस साल पर आया है···

ओसारे पर घड़े रखकर जनकमनि भी स्वागत के इस अद्भुत समारोह में शामिल हो गयी। मौका पाकर बोली—"और मामियों को परनाम नहीं किया ? और मैं ? तुम क्या जानो, मैंने तुम्हें साल-भर अपनी छाती का रस पिलाया है···"

मामियों को अनजाने तो पहले भी वह प्रणाम कर बैठा था, अब जान-बूझकर प्रणाम किया। तब तक नानियों और मामियों की पूरी पलटन आकर आसपास खड़ी हो गयी। बात यह थी कि रतिनाथ के नाना पाँच भाई थे। अपने और चचेरे कुल मिलाकर सत्रह मामा थे। बारह मौसियाँ थीं। चौदह मामियाँ थीं। सचमुच उसका मातृ-कुल बहुत विशाल था।

नाना रुद्रधर पाठक मस्त और झक्की स्वभाव के आदमी थे। जयनाथ उनको फूटी आँखों भी नहीं सुहाते। प्रतिदिन तीन पहर तक उनका पूजा-पाठ चलता। उसके उपरान्त भोजन। दिन-रात में केवल एक बार। बाल-बच्चे, नौकर-चाकर मिलाकर तिरसठ प्राणियों के उस महान् परिवार के वह कुलपति थे, बारह सौ बीघा जमीन के मालिक। चालीस बैल थे, बीस हल। अठारह भैंस। तीस गाय। पाडी-पाडा, बाछी-बाछा सब जोड़कर अस्सी के लगभग मवेशी थे। पक्का और बड़ा, चार ओसारों वाला दालान था। पहियों वाले पाँच बड़े-बड़े सन्दूक उन ओसारों पर पड़े रहते थे। दालान से पूरब ज़रा हटकर एक कतार में ग्यारह बखार थे, चिकनी मिट्टी से लिपे-पुते और गोल-मटोल। उन्हें देखकर किन्हीं पंक्तिबद्ध ऐतिहासिक स्तूपों का भ्रम होता था।

रतिनाथ ने उठकर सबको प्रणाम किया। इस समय मर्द एक भी अन्दर नहीं था। गोधूलि का समय क्या घर में घुसे रहने के लिए है ? दिन के काम से थके और गर्मी से ऊबे गृहस्थ शाम को पोखर और विरलवृक्ष बागों की ओर निकल जाते हैं। बूढ़े दालान के आँगन में पड़ी चारपाइयों और तख्तपोशों पर, खुले आसमान के नीचे। बच्चों को अपने बीते दिनों की बातें सुनाना उनके लिए सबसे बढ़कर मनोरंजक काम हुआ करता है। शाम का वक्त मखौलिए नौजवानों और अधेड़ों से पीछा छुड़ाकर बूढ़ों को मनोरंजन का यह अवसर प्रदान करता है। वे दिल खोलकर तब बच्चों से कहते-सुनते हैं। सुनते कम, कहते अधिक।

रतिनाथ को संकोच हो रहा था यह पूछते कि नाना कहाँ हैं, मामा कहाँ हैं ?

और कहाँ इस वक्त उनसे भेंट हो सकेगी ? नानियों और मामियों की उत्सुकता, उनका अकृत्रिम वात्सल्य, सहज आत्मीयता—ऐसा लग रहा था मानो किसी अमृतकुंड में उसको आकंठ खड़ा कर दिया गया हो।

अपनी छोटी मामी ने स्नेहपूर्वक उसके पैर धो दिए और अन्दर कमरे में ले गयी। वहाँ भिगोया हुआ चूड़ा, दही और केले से रत्ती ने जलपान किया। बातें और मौखिक छेड़खानी करके छोटी मामी भगिना बाबू का संकोच काफी हद तक हटा चुकी थी। रत्ती प्रसन्न होकर कमरे से निकला और दालान पर आ पहुँचा।

नाना को बाल-मंडली से अपने दौहित्र के आने की सूचना मिल चुकी थी।

वह दालान के नीचे, आँगन में पड़ी एक बहुत बड़ी तख्तपोश पर पल्थी मारे बैठे थे। आगे, कुछ हटकर एक छोटी चौकी पर पीतल का बहुत बड़ा लोटा रखा था। उसी चौकी से टिकाकर बाँस की सुन्दर फराठी (फट्टी से तैयार की हुई छड़ी) रखी थी।

नाना के सामने अर्धचन्द्राकार बालपरिषद् बैठी थी। वह अनुशासक और प्रवक्ता की तरह परिषद् को कुछ समझा रहे थे।

उनकी देहकान्ति गौर-श्याम थी। चेहरा गोल था। चौड़े कंधे। तना हुआ सीना। लम्बी-लम्बी बाँह। वैसी विशाल काया शुभंकरपुर में कहाँ किसी की थी ? बाल, दाढ़ी, मूँछ सब सफेद हो चुके थे। भौंह और कान तक के बाल सफेदी पकड़ चुके थे। दीप्त ललाट, छोटी-छोटी आँखें और कान बहुत भले लगते थे। नाक नुकीली नहीं थी। होंठ न पतले थे न मोटे। गले में स्फटिक की माला थी। पीला और बारीक यज्ञोपवीत बाएँ कंधे से वक्षस्थल के बीच और वहाँ से दाहिनी ओर पेट और कमर की तरफ लटक रहा था। दाहिने हाथ की अनामिका में चाँदी की पवित्री थी। वह साफ धोती पहने हुए थे। पास में अंगोछा रखा हुआ था।

रतिनाथ ने दोनों पैर छूकर प्रणाम किया। नाना ने माथा और पीठ पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिए—आयुरानन्दयोर्वृद्धिरस्तु (आयु और आनन्द की बढ़ती हो)।

रत्ती प्रणाम करके एक ओर बैठ गया तो नाना बोले—"क्यों रतिनाथ, मैं समझता था कि जब तक ओझा (जयनाथ) जियेंगे तब तक तुम नहीं आओगे और अब इन आँखों से तुम्हें देख नहीं पाऊँगा। खैर, आ गए।"

रत्ती गुम ही रहा।

नाना ने फिर घर का हाल और पढ़ाई-वढ़ाई के बारे में पूछा। रतिनाथ सक्षेप में उत्तर देता गया। अन्त में उन दर्जनों लड़कों का नाम और रिश्ता उन्होंने अपने दौहित्र को बताया—यह हिमकर हैं। यह श्रीकर, वह क्षेमकर, वह शंकर, वह दिनकर, यह सुधाकर, वह रहा मधुकर, पद्मनाभ, रेवतीरमण, इन्द्रकान्त, गोपीकान्त, जयकान्त, श्रीनाथ, शिलानाथ, एकनाथ, लक्ष्मीनाथ, जटाधर, श्रीधर,

गगाधर, धरणीधर···यह सब तुम्हारे ममेरे भाई होंगे। और भी हैं। नाना झोंक में आ गये थे। पचीस-तीस नाम बता गये। रतिनाथ लद गया।

थोडी देर वहाँ बैठकर वह टहलने के लिए निकला तो कई और समवयस्क साथ हो लिए।

रत्ती का यह ननिहाल, मानिकपुर, जोगियाड़ा स्टेशन से एक कोस पच्छिम पड़ता था। पूछ-पूछकर वह पहुँचा था। सड़क कच्ची थी। और, मानिकपुर तो बडा ही प्रसिद्ध गाँव है। पाठकों की खानदान पास-पड़ोस के पच्चीस कोस देहात में मशहूर थी। ये लोग कुलीनता की दृष्टि से निम्नकोटि के ब्राह्मण थे। आचार-विचार, शील-स्वभाव, ठाठ-बाट, धन-दौलत, यह सब प्रमाणित करता था कि उनमें वैशाली के लिच्छवि और मिथिला के विदेह इन दोनों गणों का रक्त मिश्रित है। यह भी क्या कोई रहस्य है कि इन पाठकों का सम्पर्क एक ओर दरिद्र मैथिलों से है तो दूसरी ओर धनाढ्य भूमिहारों से भी। इनका मालिक कोई दूसरा जमींदार नहीं है। अब भी चालीस सौ बीघे का इतना बड़ा रकबा पाठक लोगों की खास अपनी जायदाद है। आसपास के कई गाँवों की जमींदारियों मे वे पट्टी-दार हैं। इनके गोतिया और भी कई जगह हैं। मगर यहाँ मानिकपुर मे पाठकों के छोटे-बडे बावन परिवार हैं। इस गाँव के बाकी ब्राह्मण भी, जो पाठक नहीं हैं, इन्हीं लोगों के भांजे, दौहित्र या उनकी औलाद हैं। ब्राह्मणों की कुल आबादी सत्रह सौ पचहत्तर है परन्तु सभी की धमनियों में एक ही रक्त प्रवाहित है। पाठक कुल एक जटायु वटवृक्ष है जिसके दसियो धड़ और पचीसों शाखाएँ होती हैं। फिर उन शाखाओं की पचासों डालें, सैंकड़ों डालियाँ एवं हजारों टहनियाँ। बडे-बूढ़ों के श्राद्ध में, लड़कों के मूँड़न-छेदन और उपनयन में पाठकों के यहाँ जब जातिभोज —कुलभोज होता है तो वह दृश्य देखकर अवश्य ही आप मुग्ध रह जाएँगे। उस समय आपस का सारा वैमनस्य, व्यक्तिगत राग-द्वेष से अंकुरित छोटे-मोटे झगड़े— सब भूल जाते हैं वे। पंक्तिबद्ध होकर बैठते हैं और दो-दो घंटे तीन-तीन घंटे तक वह महाभोज चलता रहता है। पाठको की परम्परागत अनुश्रुतियाँ, वीरता के आख्यान इतने अधिक हैं कि एक पोथा बन जायगा।

माँ मरी थी तो रतिनाथ नानी के पास रहने लगा था। साल-भर रहा होगा कि एक ऐसी बात हो गयी जिससे जयनाथ क्रुद्ध होकर लड़के को ले आये। तब से कभी रत्ती को बाप ने मानिकपुर नहीं आने दिया था। इस बार साहस करके वह स्वयं ननिहाल आया हुआ था।

नानी एक बड़े ही भद्र और कुलीन ब्राह्मण की सन्तान थी—माँ-बाप की तीसरी बेटी। बचपन में ही उसके माँ-बाप मर गये। चाचा ने तीन सौ में बेचारी को पाठकों के कुल में बेच दिया। अभाव-अभियोग के बीच पनपने वाली इस स्त्री का स्वभाव ऐसा उदार और विनीत होगा, किसे पता था? जितनी प्रशंसा की

जाय, थोड़ा होगा। सन्त और सनकी स्वभाव के पति मिले। तिस पर इतने बड़े परिवार की जिम्मेवारी ! नानी ने अपने माँ-बाप और नइहर के नाम पर कभी धब्बा नहीं लगने दिया। कम-से-कम पहना, कम-से-कम खाया-पिया। अधिक-से-अधिक बर्दाश्त किया, अधिक-से-अधिक सुना। अपने को पति-कुल की गतिविधि में, क्रिया-कलाप में इस भाँति खपा दिया कि आज सारा मानिकपुर शशिधर (मामा) की माँ का नाम लेकर ही सुबह-सुबह आँख खोलता है। नानी पुण्यश्लोक हैं, प्रातःस्मरणीय हैं। पंचकन्या के बाद इस नर्मदा का नाम कोई कवि जोड़ दे तो अनर्गल नहीं होगा।

मानिकपुर और पाठकों का राज। ननिहाल में रतिनाथ का मन ऐसा रमा कि पैंतीस रोज रह गया। संसार ऐसा स्वर्गीय है, इतना मनोरम है—रत्ती ने इस बात की कल्पना तक नहीं की थी। मोतिहारी के विद्यालय में पंडित जी संसार की तुलना मछली के तले टुकड़े से करते थे। कोई चाहेगा कि काँटे न हों, मछली ही मछली हो, सो कैसे होगा ? सुख को दुख से बिल्कुल अछूता रहकर भोगा नहीं जा सकता। रतिनाथ सोचता था, नहीं, संसार उजाड़ है। इसमें दुख ही दुख है। परन्तु ननिहाल की दुनिया से वह इतना प्रभावित हुआ कि सारा ब्रह्माण्ड उसे एक विराट् रसगुल्ला जैसा दीखने लगा।

उस बार आमों की फसल खूब तो नहीं, मगर आठ आना जरूर हुई थी। नाना के पास पचास बीघों का बाग था। कलमी ही कलमी आमों का। बम्बई, मालदह, किसुनभोग, कलकतिया, फजली, दड़मी, जर्दालू, शाहपसन्द, सुकुल, सिपिया, कपुरिया, दुर्गीलाल का केरवा, बथुआ, राढ़ी, भदई, मोहरठाकुर की भदई। मालदह आमों का राजा है। बनारस की तरफ यही लँगड़ा कहलाता है। बम्बई सबसे पहले पकने लगता है। मालदह पतला छिलका, मामूली गुठली और अपने विशिष्ट स्वाद के लिए मशहूर है। बम्बई का छिलका मोटा होता है मगर मिठास गजब की होती है उसमें। किसुनभोग दुलरुआ ठहरा, जरा-सी असावधानी से उसमें पिल्लू पड़ जाते हैं। गूदा कड़ा और काफी रहता है उसमें। शकल बिल्कुल गोल। कलकतिया गरीबों और साधारण जनता का प्रिय ठहरा। खूब फलता है और साल-साल। भादों तक टिकता है। माकूल मिठास और भरपूर गूदा। सुलभ और सस्ता। उसका नाम ही गरीबनेवाज रख दिया है लोगों ने। फजली का नम्बर किसी की राय में तीसरा और किसी की राय में चौथा है। शकल के ख्याल से इसका स्थान दूसरा समझना चाहिए। प्रथम स्थान दुर्गीलाल के केरवा को प्राप्त है। दुर्गीलाल का केरवा दो-दो सेर तक का देखा गया है परन्तु स्वाद में वह असाधारण नहीं होता। दड़मी, जर्दालू और साहपसिन (शाहपसन्द) यह तीनों सगे हैं। आकार में जर्दालू बड़ा और अन्दर से पीला होता है। सुकुल और सिपिया की आम के शौकीनों में काफी इज्जत है। सुकुल की गुठली धागेदार या

सनवाली होती है। घुला हुआ मुकुल चूसने की चीज है, दाँतों से छीलकर खाने की नहीं। सिपिया की शकल सीपी की तरह और स्वाद मनोरम होता है। कपुरिया और सिपिया मे केवल स्वाद का भेद है, आकार का नही। कपुरिया का स्वाद और गंध ठीक कपूरी मालूम होगा। बथुआ आसिन तक चलता है, स्वाद में साधारण। राढ़ी, भदई, अपने पतले छिलके और सुरभित माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है। उसका मौसम आधा सावन और भादो है। मोहर ठाकुर की भदई छोटी और नुकीली होती है। राढ़ी का छिलका पीला और गूदा थोड़ा लाल होता है···

कलमी आमों का यह परिज्ञान रत्ती को नाना की कृपा से हुआ था। बाग में मचान पर बैठे हुए नाना ने एक बार कहा था—"अब इन बातो का शौक लोगों मे रहा ही नहीं। देखो न, इतना बड़ा बाग है तो क्या आज का है ? तीन पुरखों की तपस्या का फल है। इसमे कितने ही पेड़ अब बूढ़े और रोगी हो गये हैं, साल-साल आँधी-तूफान मे दो-एक पेड़ जड़-मूल मे उखड़कर धराशायी हो जाते हैं परन्तु उनकी जगह नये कलम रोपने की चेष्टा कोई नहीं कर रहा। लड़के अहदी हो गये है। किसी की कोई सुनता नहीं।"

पुराने पेडो की जगह मे नये थाले पड़े अवश्य थे परन्तु उनकी संख्या कम ही थी। रुद्रधर पाठक को इतने मे भला क्या सन्तोष होता ?

कलमी आमो के इस बाग को छोड़ दें तो वहाँ बीजू आमों का एक दूसरा बाग भी था। बीजू आमों का बगीचा 'गाछी' कहलाता है। स्वाद के ख्याल से लोग कलमी आम पसन्द करते हैं, फायदे के ख्याल से बीजू। बीजू का दूसरा नाम शरही या तुख्मी भी है।

बगिया अब उजड़ रही थी। लकड़ी के अभाव में बड़े-बड़े गाछ कट रहे थे। डेढ़-डेढ़ सौ वर्ष की उम्र के विशालकाय वृक्षों के आम रत्ती को यहीं मिले थे। ये उसकी घिवही के परदादा थे ! रूप और गुण के अनुसार आमों के अलग-अलग नाम होते हैं। वहाँ सौ पेड़ बच रहे थे, सब के नाम याद रखना असम्भव है। कुछ नाम अब तक रतिनाथ को याद हैं—केरवा, परोडिया, बुनक्का, करिअम्मा, धुमनाही, लडुब्बा, केरवी, घिवही, रोहिणिया, बेलहा, चक्रपाणिभोग, रतुठिया (लाल होंठोंवाली) कठमिया, कोनैला, तिमरंगा, सिनुरिया, पहुनपदौना, अमतहा, सनहा, तमहा, चफेलवा, चक्रपाणिभोग और बङालेट करोड़ों की तादाद में फलते और आँधी-तूफान का मुकाबला करते झड़ते-झड़ते पकने के मौसम तक लाखों की तादाद में बचे रहते थे। बेल जैसे स्वाद के कारण बेलहा 'बेलहा' था। शकल में छोटा। चक्रपाणिभोग का छिलका बेहद मोटा और रस गाढ़ा था। मिठास उसमें खूब थी। बङालेट बड़ा रसीला ठहरा। शकल-सूरत में पहुनपदौना अद्वितीय था मगर चूसने के लिए मुँह लगाते ही आपकी नाक-भौं टेढ़ी हो जाती, जीभ विरस हो जाती और रोम-रोम सिहर उठता। हास-परिहास एवं छकाने की

नीयत से मनचले नौजवान यह आम पाहुनों को थमा दिया करते—पहुना, यह कपुरिया आम है; ऐसा स्वादिष्ट आम आपको कहाँ मिलेगा ! उल्लसित होकर पाहुन महानुभाव जब उसमें मुँह लगाते तो हे राम ! बेचारों का बुरा हाल होता ! खिलाने वाले ठहाका मारकर हँस पड़ते हः हः हः हः हिः हिः हिः हिः···

रतिनाथ कुछ दिन और रहना चाहता था मगर चाची का बुलावा आ गया।

पच्चीस

ससुराल में सत्रह रोज रहकर उमानाथ घर आया। रामपुरवाली ने अपने जमाई की जिस प्रकार धूम-धाम से विदा की थी, उमानाथ के सास-ससुर ने उस प्रकार अपने दामाद की विदाई नहीं की। काँसे की मामूली थाली, एक बड़ा और छः छोटे कटोरे। लोटा-गिलास। रसोई के साधारण बर्तन। कम्बल-दरी और चादर-तकिया। जूना छाता। दो जोड़ा धोती। एक चादर और पाग-दुपट्टा।

मगर चाची इतने में ही मग्न थी। केला, दही, चूड़ा, मिठाइयाँ, पकवान। गरी-छुहारे, मेवा-मखान। चाची ने कुछ नहीं रखा, सारा बँटवा दिया।

उमानाथ एक मास का अवकाश लेकर आया था। तीन सौ साथ लाया था। दो सौ माँ ने निकाले थे। शादी में कुल मिलाकर चार सौ रुपये उठे। मधुश्रावणी (तीज) में फिर वह ससुराल जा सकेगा, इसकी संभावना नहीं थी। फिर भी गौरी-पूजन और साधारण त्यौहार के लिए साड़ियाँ वगैरह महनौली भेजी ही जाएँगी, इसीलिए बाकी रुपये उसने माँ के ही पास रहने दिए।

उमानाथ कलकत्ता चला गया।

चाची के हृदय को एक बार फिर जोर का धक्का लगा। सोचा था, समाज जैसे पुरानी बात को भूल गया है वैसे ही उमानाथ भी भूल गया होगा। अपनी माँ की पहली और शायद आखिरी भूल को भूल गया होगा···मगर वह लड़के की रुखाई देखकर भीतर-ही-भीतर रो रही थी। उमानाथ जिस दिन जाने वाला था, माँ ने सहमते हुए पूछा—"भैये, अगहन में गौना करा लाना ठीक रहेगा न?"

लड़का कुछ बोला नहीं, जूते पहनकर फीता कस रहा था।

उत्तर के प्रति अवज्ञा की घोर भावना उमानाथ के चेहरे पर लाली बनकर छा गयी। आकृति का यह रूपान्तर देखकर चाची को साहस नहीं हुआ कि

दुबारा वही प्रश्न पूछे। चलते-चलते उमानाथ ने दिखावटी तौर पर माँ के पैर छू लिए। माँ की आँखें सजल हो आयीं, आहत मर्म की नीरव वेदना का वह प्रतीक—आँसू—लड़के ने देखना नहीं चाहा। उलटे, कड़ककर कहता चला गया कि चर्खा चलाकर तूने दुनिया-भर को बतला दिया—उमानाथ आवारा है, कलकत्ता में खुद तो मौज मारता है और घर पर माँ जुलाहिन हुई जा रही है। खबरदार! अब कभी चर्खा छुआ तो हाथ काट लूँगा···

उमानाथ आँगन से बाहर निकला और चाची सितलपाटी बिछाकर लेट गयी। आँखों में अश्रु का अविरल प्रवाह निकल चला। वह अब नहीं जिएगी, अवश्य मर जाएगी। इस जीवन मे मृत्यु लाख गुना श्रेयस्कर है। कुतिया से भी गयी-बीती हूँ मैं! चाची ने सोचा—रोज खाकर उठने के बाद अतूऽऽह अतूऽऽह अतूऽऽऽऽ की आवाज लगाकर उमानाथ कुतिया को बुलाता था और पूरा कौर भात खाने देता था। चुमकारता था, पुचकारता था। और, मैं तुम्हारी माँ हूँ उमानाथ! क्या मैं कुतिया से भी बदतर हूँ?

अवश्य तू कुतिया से भी गयी-गुजरी है—चाची के अन्तस्तल से आवाज आयी—तू जीने योग्य नहीं है। तेरे कलेजे में जितनी सुइयाँ चुभोई जाएँ उतना अच्छा। सिसक-सिसककर तू जितनी ही रोएगी, मेरा कलेजा उतना ही ठण्डा होगा। चुड़ैल, तेरा सत्यानाश हो। कुहर-कुहरकर मरे तू। तेरे अंग गलकर गिरें···

कि एकाएक उसकी आँखों के आगे किसी किशोरी की सौम्य, संयत प्रतिमा कहीं से अलक्षित ही आकर खड़ी हो गयी। चाची का रोम-रोम सिहर उठा··· यह उसकी कल्पना की पुत्रवधू थी। गद्‌गद होकर चाची ने आँखें मूँद लीं। उसे भान हुआ, वह नजदीक आयी है और अपनी तिनपढ़िया साड़ी के आँचल से सास के आँसू पोंछ रही है! आह! कितना शीतल स्पर्श है लाह की चूड़ियों और कंगन वाले इन मृदु-मांसल हाथों का! ओह!···अपनी नयी-नवेली पुत्रवधू का भला कौन-सा नाम मैं रखूँगी! पद्‌मसुन्दरी? जयमुखी? चन्द्रमुखी? नहीं, पद्‌मसुन्दरी ही ठीक रहेगा···

कोने में से निकलकर एक चुहिया घर में विहार करने जा रही थी। उसने चाची का ध्यान आकृष्ट किया। किसी घरेलू दुर्घटना में बेचारी की दुम थोड़ी कट गयी थी। बेहोश हालत में देखकर चाची ने जरा 'अमृतधारा' लगा दी थी। फिर क्या था? चार दिन में वह चंगी हो गयी और पहले के माफिक उछलने-कूदने लगी। वह इतनी ढीठ बन गयी थी कि चाची के पैर, हाथ, मुँह, सिर सूँघ जाती और चाची उसकी इस धृष्टता को उल्लसित होकर, स्मितमुखी होकर बर्दाश्त करती। आज उसे देखते ही उन्होंने विचारा—मनुष्य होकर जन्म लेना अच्छा नहीं है। हे भगवान्, अगले जन्म भले ही मैं चुहिया होऊँ, भले ही नेवला,

मगर चेतनामय इस मानव समाज में फिर कभी न पैदा होऊँ। ओह, जो औरतें किसी विषाद के कारण कुएँ में कूदकर या गले में फंदा डालकर अपने प्राणों का अन्त कर लेती हैं, अवश्य ही पुनः इस मानव-योनि में उनका जीव नहीं आता तो क्या मैं वैसा नहीं कर सकती हूँ? कुआँ में कूदना और कूदकर जान देना आसान नहीं है। लोग मानते नहीं, निकाल डालते हैं। हाँ, घर में फंदा लगाकर झूल जाने से ठीक रहेगा। जिस किसी के हाथ पड़ूँगी निष्प्राण, निश्चेष्ट, निष्पन्द शव के रूप में ही; जीवित नहीं।

तब फिर उमानाथ का ख्याल आया। विचार जब उड़ते-उड़ते आसमान को छू लेता है, अवश्य ही उस स्थिति में वह जोर का पलटा खाता है। हिचकी लेकर एक बार सिहर उठी। उसने सोचा—विधवा होकर मैं गर्भवती हुई और आठ मास का बच्चा कोख से निकलवाया। चमाइन उसे जगल-झाड़ी में फेंक आयी! ऐसी माता हूँ मैं! और, अब गले में फंदा लगाकर मरूँगी तो बेचारा (उमानाथ) सुयश का ऐसा भारी पहाड़ कैसे सँभाल सकेगा? ना, माँ को लेकर जितना यश उसे अब तक मिला है वही पर्याप्त है। फाँसी लगाकर, गौरी, स्वयं तो तू भवबन्धन से छुटकारा पा लेगी लेकिन उस अभागे का क्या होगा?

परन्तु जीवन की एकमात्र आशा— पुत्र जब इस प्रकार विमुख हो रहा है तब किसके बूते वह अपने दिन काटेगी? अपमान या आघात स्वजन की ओर से जब होता है तो उसकी असह्यता कई गुना अधिक होती है।

और समाज में कैसे विषधर छिपे पड़े हैं! जाने किसने उमानाथ के कान भरे थे! चाची की यह जरा भी खुशहाली जाने किसे चुभ रही थी!

चर्खा और तकली कातते-कातते चाची के हाथ में घट्ठे पड़ गये थे। सारा गाँव जानता था कि कितनी कड़ी मिहनत वह करती थी। आठ घंटा, दस घंटा? व्रत का दिन हो या उपवास का, पर्व का हो चाहे त्यौहार का। चाची का यज्ञ कभी समाप्त नहीं होने वाला था। बदले में वह पाती क्या थी? बीस-पच्चीस रुपये मासिक। कभी यह आमदनी तीस तक पहुँच जाती थी। अपने खाने में तो बहुत ही कम खर्च करती, दस से अधिक कभी नहीं। बाकी पैसे जमा रहते या घर के किसी काम में लगते। दस-पाँच उधार उससे कौन नहीं ले गया होगा? कभी चाची ने ना नहीं किया। सास-ससुर, बाप और पति की वर्षी में पाँच-सात ब्राह्मणों को बराबर वह खिलाती आयी थी। घर छवाने के लिए साल-साल फूस चाहिए, डोरी चाहिए, मजदूर चाहिए। एक दिन, दो दिन बाद देकर अतिथि-अभ्यागत आ धमकते. उन्हें दो मुट्ठी चावल का भात खिलाए बिना चाची स्वयं कैसे दाना-पानी मुँह में डालती? पर्व-त्यौहार साल में दसों पड़ते हैं, उन दिनों कुछ न करो तो देवता नाराज हो जाते हैं और लक्ष्मी चिढ़ जाती हैं··· यह सब आखिर कहाँ से होता था?

उमानाथ ने इतना भी नहीं सोचा कि शादी में जो चार सौ लगे हैं और सौ रुपया यह जो और जमा है सो यह कहाँ से आया ? तीन सौ उसकी कमाई के ठीक हैं; मगर बाकी दो सौ कहाँ से आया ? यह सब ओछे स्वभाव वाले उस नौजवान ने कुछ भी नहीं सोचा ! बस रामपुरवाली चाची की चुगलखोरी पर ही अपने सम्पूर्ण विश्वास को उसने टिका दिया ! माँ के प्रति तिलश: पुंजीभूत अश्रद्धा को प्रकट करने में क्या कोई दूसरा रास्ता नहीं था ?

चाची ने अपनी दृष्टि से भी सोचा और उमानाथ की दृष्टि से भी। फिर भी इस प्रकार तिरस्कृत जीवन की चरितार्थता उसकी समझ में नहीं आयी। कौन-सी भावना है जिसे वह जीवन की सार्थकता के प्रमाण में पेश करे ?

अगहन में उमानाथ गौना तो करेगा ही। चाची ने निश्चय किया, पतोहू का मुँह देखकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेनी चाहिए। फिर वही बात ? नहीं, वह बात नहीं। जीवनलीला के समाप्त करने में पल-भर भी लग सकता है, पहर-भर भी। मास, छै मास, साल-भर भी लग सकता है। अलक्षित रूप में अपने को बीमार कर लेना, दवा-दारू नहीं करवाना और लगातार कुपथ्य और असंयम करते चले जाना···इस तरह कोई मरता है तो घर वालों की बदनामी नहीं होती। और यहाँ तो टलती बला को जानकर कोई भी 'हाय, हाय' नहीं करेगा।

इस निर्णय से चाची की आँखें चमक उठीं और वह उठ बैठी। हाथ पर ठुड्डी टेककर उसने देखा—लाश तुलसी-चौरे के नजदीक पड़ी है। मुँह उत्तर की ओर है। रतिनाथ निकट ही बैठा है। उसकी आँखों से आँसू की धारा अविराम बह रही है···वहाँ और कोई नहीं है।

रतिनाथ।

हाँ, रतिनाथ ही अपने हाथ से मेरा अन्तिम संस्कार करेगा। वह मेरा मानस पुत्र है···चाची का चिन्तन-चक्र चलने लगा···रत्ती ने कुछ ही दिन पहले कहा था—'चाची, पता नहीं, माँ कैसी हुआ करती है ! मगर मेरे लिए तो तुम्हीं माँ हो। हो न चाची !'

और तब अपने उच्छ्वसित आवेश को छिपाने के लिए चाची ने उसके गाल पर हल्की-सी एक चपत जमा दी थी—दुत् पगले ! अप्रतिभ आँखों से लड़के ने चाची की आँखों में झाँका। इनमें छलकते वात्सल्य का तरल रूप पाकर रतिनाथ का चेहरा खिल उठा···उस समय तकली कात रही थी। डेढ़ सौ नम्बर का महीन सूत। अपने ध्यान को फिर से उसने एकाग्र कर लिया था। किन्तु वैशाख शुक्ल दशमी की चाँदनी रात क्या कम आकर्षक होती है ? रतिनाथ ऊपर निगाह किये गगन विहारी चन्द्रमा की ओर अपने को टिकाए हुए था। जहाँ तकली की कटोरी थी वहीं उसके सिर की छाया पड़ती थी। बस, आधे बित्ता का फासला हो तो हो। छाया में चाची ने देखा, उसकी ओर गर्दन को तिर्छी करके रत्ती ने

दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली मे चुटिया के लम्बे बालो को लपेट लिया है। थोड़ी देर बाद चुटिया के बालों से अँगुली छुड़ा ली और उसे इस भाँति हिलाने लगा मानो शून्य मे कुछ लिख रहा हो। अन्त में उसी अँगुली से उसने अपनी गर्दन को मानो रेतना शुरू किया। फिर एकाएक पूछ बैठा—'क्यों चाची, मुझे कोई जान से मार दे तो तुम बहुत रोओगी ?'

चाची ने उसे डाँट दिया—'भाँग तो नहीं पी आये हो ?'

वह झेप गया और सुजनी पर जाकर सोने की तैयारी करने लगा···

रतिनाथ के हृदय का पता चाची को खूब था। रत्ती भी चाची को खूब पहचानता था।

आज चाची ने भगवान् से प्रार्थना की कि उसका अन्तिम संस्कार रतिनाथ के हाथों ही हो। पुत्र को जब माँ पर इतनी घृणा है तो यह अप्रिय कार्य उसे न करना पड़े—यही एकमात्र कामना थी जिसने बार बार उस दिन चाची से हाथ जुड़वाये।

कालाजार और मलेरिया का शिकार बन जाना शुभंकरपुर वाले के लिए बड़ा आसान था। चाची को निश्चय था कि इस बार वह अपने को इस मोर्चे पर आगे कर देगी और फिर देखा जायगा।

दिन ढल गया था मगर चाची ने खाना नहीं खाया।

उमानाथ की ससुराल का सामान सहेज-सँभालकर एक ओर रख दिया। मन हुआ कि चर्खा तोड़कर फेंक दे। मगर नहीं। इसने पिछले पाँच साल से जीवन का साथ दिया है, अब उमानाथ के कहने मे वह उसको छोड़ बैठेगी ? ना, ऐसा नहीं हो सकता। उमानाथ चाहे चमारिन कहे, चाहे जुलाहिन, चाची चर्खा नहीं छोड़ेगी।

कि इतने मे बादल गड़गड़ा उठे। चाची बाहर निकल आयी घर से। देखा, पश्चिम का आकाश काली घनघटा मे छा गया है। उसे रतिनाथ याद आया। अभी रहता तो बाग की ओर दौड़ता। आँधी-तूफान के इस अवसर पर जो भी दस-पाँच आम होंगे सब गिर पड़ेंगे। फटे-फूटे कच्चे आमो का और क्या होगा ? अचार बनेगा। कमौझी बनेगी। अमचूर बनेगा, चटनी और कुच्चा। रतिनाथ के अभाव मे टोल-पड़ोस के और लड़के क्या बैठे रहेंगे ?

रत्ती आजकल तरकुलवा मे था। अब ननिहाल होगा या जाने वाला होगा।

दच्छिन वाला घर छवाई के अभाव में चूने की सूचना पहली बारिश में ही दे चुका था। यह तीसरा साल था। इस बार यदि नई फूस छप्पर पर नहीं पड़ेगी तो बरसात में समूचा मकान बैठ जायगा। चाची ने बड़े खेद के साथ उस घर की ओर देखा— रतिनाथ की माँ मर गयी, तभी से इस घर की शोभा चली गयी। चूहे, झींगुर और नेवले रहते हैं अब। मगर इस साल उनके भी रहने लायक नहीं

रह जायगा···

जयनाथ को कई पत्र चाची दे चुकी थी कि इस बार बरसात में घर बैठ जायगा। खुद न आ सको तो रुपये ही भेज देना। यहाँ सब ठीक हो जायगा। परन्तु किसी पत्र का उत्तर बडहड्‌वा से नहीं आया। रतिनाथ मोतिहारी से आया तो बाप की इस लापरवाही पर झुँझला उठा। निष्फल झुंझलाहट उपेक्षा की भूमिका होती है। पैसे तो बेचारे के हाथ थे नही कि छवाने का कोई प्रबन्ध करता। चाची ने कहा था—"बेटा, अपने हाथ से बाप को चार आखर लिख दो, शायद इससे उनकी नींद टूटे।" रतिनाथ को यह बात जँची नही।

छब्बीस

अगहन में नहीं, माघ में उमानाथ कलकत्ते से आया और महनौली से गौना करा लाया।

चाची चौमासा (बरसात) भर मलेरिया से खेलती रही। बेहद कमजोर थी; परन्तु खूब उत्साह से उसने पतोहू का स्वागत किया। लड़की सचमुच ही स्वस्थ और सुन्दर थी।

गहना के नाम पर माँ-बाप ने उसे कुछ नही दिया था। नन्द झा दरिद्र नहीं था परन्तु उसके चार लड़कियाँ थी। खेती-गृहस्थी मामूली ही थी। दो लड़के थे, दो बैल। साल-भर हड्डीतोड मिहनत करने के बाद कहीं घर का पूरा खर्चा जुटा पाता था। पाल-पोसकर चौदह साल की लड़की को किसी की 'गृहलक्ष्मी' के लायक बना देना ही क्या कुछ कम था?

इस अवसर पर उमानाथ ने प्रतिभामा को भी बुलवा लिया था। पति स्वयं ही उसे पहुँचा गया था।

रतिनाथ भी मौजूद था। पिछली गर्मियों में जब मोतिहारी से वह गाँव आया तब से लौटकर कहाँ वह दुबारा मोतिहारी गया। बात यह हुई कि नानी ने बड़ा ही आग्रह किया कि दरभंगा के विद्यालय में ही पढ़ो, सीधा-सामान या और जो भी कुछ लगेगा तुम्हारे मामा देने को तैयार हैं। नानी का यह मधुर आग्रह रत्ती टाल नहीं सका। दरभंगा की महाराजी पाठशाला (रमेश्वरलता संस्कृत विद्यालय) में वह भर्ती हो गया। पढ़ाई अच्छी थी, व्याकरण-मध्यमा का कोर्स उसका पूरा हो चुका था। दस-बारह साथी और मिले। छोटी छुट्टियों में ननिहाल

चला जाता। कभी-कभी चाची के पास भी।

ताराचरण की माँ, रामपुरवाली चाची, शकुन्तला और चाची—सबकी राय से दुलहिन का नाम पड़ा कमलमुखी बहुरिया। सास ने मधुबनी से पैंजनी मँगवा दी कि कमलमुखी ताल बाँधकर चलेगी। मगर वह ठहरी ठेठ किसान की बेटी, खेत में राख डाल आना, कंडे पाथना, तालाब और कुएँ से पानी भर लाना, मौका-बेमौका गाय-बैल चरा लाना—यही सब जानती थी। भद्र कुलवधुओं की चाल उसे अभी सीखना था। कमलमुखी के सम्बन्ध में शुभंकरपुर की औरतों का कहना था कि खेतिहर की बेटी है, मोटा-झोटा खाना दो और कसकर काम लो।

उमानाथ महीना-भर की छुट्टी ले आया था। इतने दिन काफी थे। सिखा-पढ़ाकर कमलमुखी को शेर बना गया।

आँगन के क्या कहने! जहाँ पहले चाची अकेले उदासी के तराने गुना करती, वहीं कई प्राणी अब और आ गये थे। कमलमुखी थी। प्रतिभामा थी। उसके दो बच्चे थे। बीच-बीच में रतिनाथ भी आ जाता।

चाची ने बड़ी कोशिश की, मन को इनमें उलझाये। मगर उमानाथ का बर्ताव उसे दिन-दिन असह्य लग रहा था। अपना हृदय उसने पतोहू के लिए खोल दिया, प्रतिभामा से अधिक वह उसे ही मानने लगी। परन्तु आखिर खरबूजे को देखकर खरबूजे ने रंग पकड़ ही लिया। कमलमुखी चाची की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने लगी। होली का त्यौहार आया। चाची का विचार था, कम-से-कम पाँच सेर आटा के लायक घी-गुड़ का प्रबन्ध करना चाहिए। कमलमुखी ने कहा—"नहीं, इतना क्या होगा? ढाई सेर आटा काफी रहेगा।" चाची बोली—"तुम नहीं समझती हो, इस बार भगवान की कृपा है कि आँगन भरा-पूरा है, तुम हो, प्रतिभामा है, बाल-बच्चे हैं! पूआ-पकवान कुछ ज्यादा ही बन जाएँगे तो क्या हर्ज है?"

इस पर कमलमुखी ने ठुमककर कहा—"मना कर गये हैं।"

चाची ने जोर दिया—"तो क्या हुआ?"

"ऊँ हूँ," पतोहू अचल होकर बोली। प्रतिभामा ने माँ को इशारा किया—"क्यों झगड़ती हो?" चाची इस घटना से टूट गयी। उसने कुछ नहीं किया—प्रतिभामा ने त्यौहार की तैयारियाँ कीं। सास-पतोहू दोनों अलग-अलग कोपभवन में पड़ी हुई थीं। लगता था कि वही मेहमान हैं और प्रतिभामा ही गृहस्वामिनी है। उसके दोनों बच्चे फुदक-फुदक कर मालपूआ खा रहे थे। रामपुरवाली चाची आई तो कमलमुखी की पीठ थपथपा गयी।

वैसी मनहूस होली चाची ने कभी नहीं बिताई।

जिस बात का सन्देह था वह सच निकली। पतोहू का स्वभाव पति की ओर झुका हुआ था। किसी नववधू का स्वभाव यदि पति की ओर अनुरक्त हो तो बुरा

है ? नहीं। पति में अनुरक्त होना और बात है मगर बात-बात में सास-सुसर को चिकोटी काटना और ही बात है। उमानाथ माँ के प्रति अपनी घृणा का कुछ अंश पत्नी के भीतर उँडेल गया था। औरत अब उसके लिए 'स्वजन' थी और माँ थी पराई।

चाची ने सिर झुकाकर परिवार की इस नई व्यवस्था को कबूल कर लिया। कमलमुखी को उन्होंने अपनी राह जाने दिया। प्रतिभामा तीन मास शुभंकरपुर रही, देवर बुला ले गया। स्वागत-सत्कार बहुत ही साधारण हुआ था बेचारी का। उमानाथ की प्रकृति में जिन गुणों का विकास हुआ था उनमें कृपणता का ही स्थान प्रथम था। कम-से-कम खाकर कम-से-कम पहन-ओढ़कर पैसे बटोरते चलो—सफल गृहस्थी का अपना यह मूलमंत्र वह कमलमुखी के भी कान में फूँक गया था। अपनी लड़की की विदाई में चाची ने अलग से पचीस रुपये खर्च किए। कमलमुखी ने उमानाथ को चुपचाप लिखवाया—"घर के काम में तो कुछ देती नहीं, मगर लड़की की विदाई के समय पचास जाने कहाँ से निकाले ? कितनी लम्बी है तुम्हारी माँ की आँत ?"

प्रतिभामा चली गयी तो चाची के लिए फिर एकान्तवास आरम्भ हुआ। कमलमुखी से वह कम ही बोलती थी। उसने भी अपनी सास से अधिक रामपुर-वाली चाची का ही आदर-सत्कार शुरू किया। क्यों न हो ? वह आकर दुनिया-दारी के नए पैंतरे बतलाया करती। टोल-पड़ोस की औरतों के गुन-औगुन ! यहाँ तक कि कमलमुखी को अपनी सास की वह कलंक-कथा भी मालूम हो गयी।

चाची को संग्रहणी हो गयी थी। चैत का महीना। ताराचरण की माँ ने कहा, कुछ दिन अन्न छोड़ दो; दही और उबला हुआ बेल खाओ।

परन्तु पथ्य का यह सिलसिला चार ही छः दिन चला। चर्खे में कूबत नहीं थी. वह अब सो रहा था।

रतिनाथ परीक्षा में मशगूल था। पन्द्रह अप्रैल को उसकी परीक्षा पड़ती थी। एक बार आकर वह दवा दे गया। परन्तु सेवा-सुश्रूषा और पथ्य-पानी कौन करे ? खाली दवा से क्या होता है ?

कमलमुखी सास की सेवा करती अवश्य थी परन्तु हृदय से नहीं। श्रद्धा-भक्ति से यदि आपको कोई विष भी देता है तो उससे आपके होंठ उल्लसित ही होते है। चाची का स्वास्थ्य दिन से दिन बिगड़ता ही जा रहा था। कमलमुखी का रूखापन उससे छिपा नहीं था। लगता था कि बेटा और पतोहू अब उस बुढ़िया को नहीं चाहते। एक ही आदमी था जिसे इस बुढ़िया की जरूरत थी। किसको ?

रतिनाथ को ?

हाँ, रतिनाथ को। उसे चाची की अभी जरूरत थी।

पिता के जीवित रहने से रतिनाथ को न हानि थी न लाभ। जयनाथ का था

भी एक ही काम कि अपना पेट पोसें। आज न रत्ती सोलह-सत्रह साल का हुआ है, बचपन में भी उसने अपने बाप के रंग-ढंग देखे है। जयनाथ को वह सदा कंकड़-पत्थर वाला चटियल मैदान ही समझता आया। इसके विपरीत, चाची उसे सदा-बहार बगिया प्रतीत हुई। सहज स्नेह की फुहियाँ बरसाने वाली यह बदली न होती तो रतिनाथ का कैसा बुरा हाल होता!

परन्तु यह बदली अब स्वयं ही पघरा रही थी। उसे धक्का पर धक्का लग रहा था। उसी वर्षण-क्षमता, उसकी प्रस्रवण-शक्ति, उस अमृतद्रव की वह सामर्थ्य अब क्षीण होती जा रही थी। इस बात का आभास रत्ती पा जरूर गया था किन्तु असहाय था बेचारा। उमानाथ को रास्ते पर ले आना उसके बूते की बात नहीं थी। महनौली वाली को समझाना वह बेकार समझता था। और जो लोग थे, तमाशबीन थे। वे यही चाहते थे कि उमानाथ की माँ अपनी पतोहू को खुलकर गालियाँ दे, झोंटा पकडकर घसीटे। झाड़ू-मूसर से मारे। बदले मे पतोहू भी उसको एक का दस सुनावे, झोंटा पकड़े…फिर बाकी औरतें पंच बनकर फैसला करें…परन्तु चाची ने यह सब होने का अवसर आने ही नहीं दिया। वह सारा विष स्वयं ही पीती गयी।

परीक्षा देकर रतिनाथ आया। पर्चे अच्छे बने थे। पास होने की पूरी उम्मीद थी।

उसकी इच्छा थी कि आषाढ की पूर्णिमा तक मन लगाकर चाची की परि-चर्या करे। परन्तु अब चाची का जमाना लद चुका था। कमलमुखी गिन-गिनकर चावल निकालती और पकाती। रतिनाथ का हिसाब वह मेहमान के तौर पर करने लगी। दो नही चार दिन रहो, चार नही दस दिन रहो; हमेशा के लिए यही पल्थी लगा लो सो नहीं होगा। ऐसा हो तो अपना घर है, खुद का कर-खा लो अपना।

रतिनाथ के लिए यह नई बात थी। जहाँ अपने घर की भाँति वह आज तक रहता आया वहाँ अब मेहमान बनकर रहना उसे अखरने लगा। पाँच ही सात दिन रहा, फिर अपने सहपाठी के यहाँ चला गया। तालाब मे साथ तैरने और मछली खाने का निमत्रण सहपाठी श्री धर्मनाथ सिंह ठाकुर की तरफ से पहले ही मिल चुका था।

मन परन्तु उसका चाची पर ही लगा रहता था।

वह बेहद कमजोर हो गयी थी। पतले-पतले वे सुन्दर होंठ फीके पड़ गये थे। कपार पर नीली नसें उभर आयी थीं। आँखें धँस गयी थीं, मानो दो कुओं में दो तारे टिमटिमा रहे हैं। छाती की हड्डियाँ बाँस की फट्टियों की तरह झकझक कर रही थीं। पेट और पीठ सटकर एक हो गये थे।

रत्ती ने पूछा था—"कलकत्ते लिखूं?"

"नहीं।" चाची ने सिर हिला दिया था। थोड़ी देर के बाद रत्ती के हाथ को अपने कमजोर हाथ में लेकर कहा था—"बबुआ, कहीं कुछ हो जाय तो इस मुँह में आग तुम्हीं देना, हाँ!"

रतिनाथ चुप ही था···

"अरे, क्या कहा मैंने? समझा नहीं?"

रतिनाथ मे फिर भी 'हाँ' कहते न बना।

चाची ने तीव्र स्वर में पूछा—"अरे, क्या कहती हूँ?"

इस बार रत्ती ने भीगी आँखों से चाची की ओर देखा।

"अरे! तू तो रोता है!" चाची ने फक् से हाथ छोड़ दिया और अपनी धोती के खूंट से लड़के की आँख पोंछने लगी।

रतिनाथ ने कहा था—"चाची, यह सब अभी तुम क्यों बोलती हो?"

मौन रहकर चाची ने अपनी गलती मान ली थी। और, रतिनाथ दौडकर गया था। तारा बाबा से एक यंत्र बनवा लाया था। चाची के वाम बाहुमूल में लाल धागे से उस यन्त्र को रतिनाथ ने अपने हाथ से ही बाँध दिया था।

चाची की इन सब बातों से सचमुच ही रतिनाथ खिन्न रहता था। चाहता था कि खुद बीमार हो जाय मगर चाची की तन्दुरुस्ती सुधर जाये। पर चाहने ही से कुछ थोड़े ही हो जाता है?

रत्ती की नानी पचहत्तर साल की थी, फिर भी अभी स्वस्थ थी। रतिनाथ सोचता था, क्यों न चाची भी उतने दिनों तक जिए? तरकुलवा में चाची की माँ सत्तर के अन्दर ही है, तो चाची इतनी कम उमर में मर जायगी?

परन्तु दीर्घ आयु का सम्बन्ध जिन परिस्थितियों से है क्या चाची उन्हीं परिस्थितियों मे अपना जीवन बिताती थी? ग्लानि और अपमान, तिरस्कार और उपेक्षा चाची ने बहुत सहा था किन्तु अब उमानाथ का बर्ताव और कमलमुखी की अश्रद्धा उस बेचारी को अधिक से अधिक यातना दे रही थी। इतने दिनों तक तो पुत्र की आशा से सब कुछ सहती आयी थी और अब आशा का वही केन्द्र निराशा का गड्ढा साबित हो रहा था। ऐसी स्थिति में निरानन्द और नीरस जीवन बिताने से लाभ?

रतिनाथ ने निश्चय किया, कहीं भी रहेगा दस-पन्द्रह दिन में एक बार शुभंकरपुर आकर वह चाची को देख आया करेगा।

ताराचरण बीच-बीच में आकर खबरें सुना जाते थे। हिटलर ने रूस पर हमला कर दिया था। इस अशुभ समाचार से चाची को खेद हुआ। वह बोली—"कैसा दिमाग है दरिद्दर का! मुदा बच्चा-बच्चा कट मरेगा तभी रूस दखल होगा! है न बाबू?"

ताराचरण का ख्याल था कि अन्त मे रूस हार जायेगा, लेकिन चाची का

कहना था—"मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ मगर इतना समझती हूँ कि पचीस साल से रूस वालों ने अपने यहाँ जो नया संसार बसाया है, उसके अन्दर जाकर राक्षसों की बड़ी से बड़ी फौज भी मात खा जायेगी···"

"देख लेना।" ताराचरण कहते।

"देख लूँगी, यदि जीती रही," चाची मुस्कुरा पड़ती। उसके चेहरे पर विश्वास की एक चमक कौंध जाती।

ताराचरण आजकल सार्वजनिक प्रवृत्तियों में ज्यादा दिलचस्पी ले रहे थे।

गाँव का किसान-भवन बड़ी बुरी हालत में था, ताराचरण ने इसकी मरम्मत करवाई। पंचायत के फैसलों से जुर्माने की जो रकम आती, वह अब उसी के जिम्मे रहती थी।

बरसात के दिनों में सड़क इतनी खराब हो जाती कि कीचड़ और बदबू के मारे नरक उसके सामने कुछ नहीं था। तकलीफ सब उठा रहे थे लेकिन उसको दुरुस्त करने के लिए आगे आनेवाला कोई नहीं था। शुभंकरपुर जैसा शिक्षित गाँव और उसका ऐसा हाल! मगर धिक्कार या फटकार आप किसे सुनाएँगे? एक भी शिक्षित व्यक्ति घर पर तो बैठा रहता नहीं, पाँख मजबूत होते ही वह चुगने के लिए बाहर निकल जाता है। हाँ, बाबू ताराचरण हैं जिन्हें गाँव के नाम पर कुछ लाज-शर्म है।

ताराचरण ने वैशाख मे मुसहड़ो को सड़क की मरम्मत में भिड़ा दिया। सबसे बड़ा काम था मिट्टी डालना। उधर ब्रह्मस्थान से लेकर इधर पलिवाड़ के पोखर तक, आधा कोस पड़ता है। इतनी दूर तक मिट्टी डलवाने में चालीस मजदूर लगे। ताराचरण आवश्यकतानुसार लोगों से अनाज या नगद लेते गये। 'कमाऊ पूत' कि जिनका नाम बाहर सम्मान से लिया जाता है, इस अवसर पर फिसड्डी निकले। उन सुशिक्षितों से मूर्ख और गँवार ही भले।

मिट्टी पड़ जाने से सड़क ऊँची हो गयी। कुछ लोगों ने अपने-अपने दालान के सामने सड़क की जमीन हद से ज्यादा दबा ली थी। ताराचरण ने नक्शा उठाकर रस्सी और जरीब से नये सिरे से पैमाइश की, इस तरह सड़क की मुनासिब जमीन निकल आयी। आधा धूर खुद उसके भी दालान के सामने दबी पड़ी थी।

चाची ने दो रुपये सड़क-सुधार के इस काम में देना चाहा, परन्तु कमलमुखी ने घोर आपत्ति प्रदर्शित की। चाची दम साधकर शान्त हो गयी। कमलमुखी ने हाथ चमकाकर रामपुरवाली चाची से कहा था—"यहाँ न माल न मवेशी, गाड़ी आवे न इक्का। सड़क खराब हो गयी है तो इसकी सजा हम क्यों भोगें?"

चाची ने चुपचाप कहला भेजा ताराचरण को—"अभी हाथ पर नहीं है।"

तीन पोखर बेकार हो गए थे, ताराचरण ने गर्मियों में उनकी सफाई करवा

दी। इसमें कुछ खर्चा नहीं पड़ा। शर्त यह थी कि मछलियाँ जो जिसके हाथ लगे वह उसी की रहे। फिर क्या था? अहीर, केवट, अमात, धानुख और बाभन, सभी भूत की भाँति तालाब की सफाई में लग गए। मछलियाँ भी उस दिन खूब निकलीं।

ताराचरण के रूप में नये नेतृत्व का उदय हुआ था। बूढ़े पहले कुछ दिनों तक उसे मान्यता देने को तैयार नहीं थे परन्तु बाद में उन्हें झुकना पड़ा। बूढ़े समाजपति पुराना अधिकार कायम रखने के लिए हाथापाई करके कई बार शिकस्त खा चुके थे। गत वर्ष कृष्णाष्टमी के अवसर पर उनका विचार था नटुआ (नर्तक) मँगवाने का। तरुणदल कीर्तन-मंडली के पक्ष में था। बूढ़ों ने असहयोग की धमकी दी। तुरन्त भगवान् कृष्ण नये अर्जुनों की बात में आ गए। दूसरी पराजय बूढ़ों की राजाबहादुर दुर्गानन्द सिंह के सम्बन्ध में हुई थी। राजाबहादुर के दामाद ने किसी देशी नाटक मंडली को बुलाया था। उनका विचार था कि शुभंकरपुर वाले भी आकर नाटक देखें, वे हमारी प्रजा हैं। उन्हें अलग से बुलावा भेजने की जरूरत ही क्या है? नवयुवक अड़ गए, बिना बुलावा के हम क्यों जाएँगे? इसमें बुजुर्ग लोग राजाबहादुर को पहले ही आश्वासन दे आए थे। अब उनकी नाक कट रही थी। ताराचरण ने कहा—"जमाना बदल गया है, हम जब अंग्रेजों की नाक में कौड़ी बाँधते हैं तो राजाबहादुर की क्या बिसात? उनका दामाद खुद आकर हमें लिवा ले जाय, तब चलेंगे।" अन्त में हुआ यही कि दो-एक बूढ़ों को छोड़कर और कोई नहीं गया।

सत्ताईस

परसौनी से हैजा शुरू हुआ। शुभंकरपुर, केरवनिगा, मकरंदा, दहौरा, पकड़िया, अमरितपुर इन आठ-दस गाँवों में फैल गया। वर्षा रुकी रही तो हैजा अपना नंगा नाच नाचता रहा।

चाची साल-भर से बीमार थी। उसका कमजोर देह हैजे का धक्का बर्दाश्त नहीं कर सका। संयोगवश रतिनाथ मौजूद था। उसने आखिरी हालत में उमानाथ को तार दिया, परन्तु अन्त समय में चाची अपने पुत्र का मुँह नहीं देख सकी। छत्तीस घंटे पाखाना-पेशाब रुका रहा। अन्तिमक्षण में रतिनाथ ने कहा—"चाची, सिमरिया घाट चलोगी?"

"नहीं।" हाथ से इशारा किया, चाची ने और नजदीक बुलाकर कहा—"यही आँगन मेरे लिए भागीरथी गंगा है।"

चाची की आवाज इतनी क्षीण हो गयी थी कि बड़ी मुश्किल से रतिनाथ समझ सका। कमलमुखी हलदी का चूरन और चावल का आटा एक महीन कपड़े मे बांधकर उस पोटली से अपनी सास के तलवे मल रही थी। चाची की बेचैनी अतिकोटि पर पहुँच गयी थी। उसने डाक्टरी दवा लेने मे इन्कार कर दिया था। अमृतधारा तक उसे मंजूर न थी। रतिनाथ को ऐसा लगा कि मरने का यह अवसर चाची अपने हाथ से जाने देना नहीं चाहती, वह इस जीवन से ऊब गयी है, अब विराम चाहती है। परिवार में एक भी ऐसा प्राणी नहीं है जिसे चाची का यह असमय प्रयाण सह्य नहीं हो।

आषाढ़ कृष्ण पंचमी के रात्रिशेष में जब ढिबरी की पीली लौ जरा देर के लिए फुरफुरा उठी तब रतिनाथ समझ गया कि चाची चलीं। उसकी आँखों से आँसू बह चले। कमलमुखी ने जोर से रोना शुरू किया। रत्ती ने दिल को कड़ा किया। तुलसी चउरा के नजदीक पहले मुजनी बिछा आया, फिर चाची को सँभालकर वहाँ उठा ले गया। वहीं तुलसी चउरा के नजदीक चाची ने एक बार जोर से ऊर्ध्वश्वास लिया और उनकी आँखों की पुतलियाँ पलट गयीं; मुँह से थोड़ा रक्त-मिश्रित कफ निकला और बस!

नागाचरण, घूटर, सुखदेव, गदाधर और रतिनाथ यही पाँचों जने अर्थी उठा ले गए। अपनी ही पुरानी अमराई में चिता तैयार हुई। ठीक उसी जगह, जहाँ थोड़ी-थोड़ी दूर के फासले पर उमानाथ के बाप-दादा, परदादा और दादी-परदादी आदि का अन्तिम संस्कार हुआ था। मृतक को नहलाकर नया कपड़ा पहना दिया गया और तब उसे चिता पर डाल आए। लम्बा पूला की तरह फूस का ऊक (उल्का) बनाया गया। साथ लाई आग को फूँककर रतिनाथ ने उस ऊक को धधकाया और चिता की परिक्रमा करके चाची के मुँह में अग्नि स्पर्श कराया। यह विधि तीन बार की गयी। अन्त में ऊक को चिता पर छोड़ दिया गया। आग लाश को पकड़ चुकी थी।

जलने में करीब दो घंटे लगे। सभी एकमत थे कि उमानाथ जान-बूझकर अपनी माँ को बीमार रखता आ रहा था, यद्यपि होनहार को भला कौन रोक सकता है! रतिनाथ बराबर गुमसुम रहा।

चिता उसी दिन बुझाई गयी। यह काम प्रथा के अनुसार तीसरे दिन हुआ। उस समय बची-खुची दो-एक हड्डियाँ सँभालकर अलग रख ली गयी और बाकी राख समेटकर उस पर छोटा-सा एक चबूतरा बना दिया गया। ऊपर से तुलसी का पौधा उस पर रोप दिया गया। हड्डियाँ ले जाकर समय और सुविधा के अनुसार गंगा में प्रवाहित करना था।

चौथे दिन उमानाथ आ धमका।

श्राद्ध साधारण रूप में ही हुआ। रतिनाथ तेरहो दिन उपस्थित था ही। जयनाथ को खबर कर दी गयी थी, फिर भी वह नहीं आए। कुल ढाई सौ खर्च पड़ा। एकादशाह को कच्ची रसोई का भोज था और द्वादशाह को चूड़ा-दही का। जयदेव का लड़का भवदेव विलायत से आया था, इसलिए समाज में दो गोल थे। उमानाथ विलायती गोल में था। यही कारण था कि किफायत में ही काम चल गया।

उमानाथ बीस दिन गाँव रहा। कमलमुखी गृहकार्य में खूब होशियार नहीं तो भोथड़ भी नहीं थी और अब तो सारी जिम्मेदारी उसी के कन्धे पर आ पड़ी थी। उसने अपने भतीजे को मँगवा लिया।

रतिनाथ ने काशी जाकर पढ़ना तय किया। नानी और नाना इस विचार से सहमत न थे, परन्तु रत्ती का मन अब बिल्कुल नहीं लग रहा था। चाची के अभाव में शुभंकरपुर अब उसके लिए श्मशान था। उस महिला को उसने तिल-तिल करके खपते देखा था। वह चाची की वेदना का हिस्सेदार था। चाहता था कि घर से दूर, खूब दूर रहकर वह वात्सल्य की उन स्मृतियों का उपभोग करे।

आषाढ़ की पूर्णिमा जब हो गयी तो एक दिन चाची की हड्डियाँ और राख लेकर रतिनाथ काशी पहुँचा। उसके जिम्मे कुल पन्द्रह रुपये थे। बचपन में बाप के साथ एक बार वह और काशी जा चुका था, परन्तु तब की देखी-सुनी अब किस काम की?

तारामन्दिर (क्षेत्र) के अध्यक्ष से रतिनाथ का दूर का एक रिश्ता पड़ता था। उन्होंने भोजन का प्रबन्ध अपने यहाँ कर दिया। पढ़ाई के लिए मीरघाट पर मारवाड़ी संस्कृत कालेज मानो उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

यह सब निश्चित हो चुकने पर रतिनाथ एक दिन प्रातःकाल नाव-भाड़ा करके मणिकर्णिका घाट के सामने बीच में गया और चाची की अस्थि को कम्पित हाथों तथा आर्द्र आँखों से प्रवाहित कर आया।

अस्थि गंगा में प्रवाहित करके लौटते समय रतिनाथ के हृदय में बार-बार यही बात उठ रही थी कि अमावस की उस रात को वह कौन था चाची? एक घनी और अँधेरी छाया तुम्हारे बिस्तरे की तरफ बढ़ आयी, वह क्या थी चाची? सदा के लिए तुम्हारे सिर पर कलंक का टीका लगा गयी, वह कौन थी चाची? शील और शालीनता की प्रतिमे? तुमने क्यों धूर्त का नाम नहीं बतला दिया?

□

नयी पौध

एक

जेठ का महीना था।

लगन के दिन थे। अबकी दो साल बाद ये दिन आये थे। इन दिनों का बाट जोहते-जोहते कई बुढ़ियों को उन्निद्र रोग हो गया था। कोई पोते की लड़की के दामाद का मुँह देखकर मरने की बात करती थी तो किसी का मनोरथ नतनी के बेटे की बहू का घूंघट हटाना-भर रह गया था। कोई परपोते का मूँड़न-छेदन देख लेना चाहती थी। किसी की परपोती छिकी पड़ी थी, वह उसका ब्याह देखकर ही इस धरा-धाम से विदा होने वाली थी। विधवा सहुआइन ने बड़े उत्साह से चभच्चा खुदवाया था, इन्हीं दिनों में वह उसका जग्ग करने वाली थी···

गरज यह कि लगन के दिनों की इन्तजारी में ढेर के ढेर काम रुके पड़े थे।

पण्डित खोंखाइ झा की नतनी काफी खूबसूरत थी। चौदह टपकर पन्द्रहवें में अभी उसने पैर रखा ही था कि यह जेठ का महीना आ धमका। अब उसकी शादी होने वाली थी। समूचा गाँव चौकन्ना था कि खोंखा पण्डित इस परी के लिए कैसा दूल्हा लाते हैं।

खोंखा पण्डित पर प्रजापति विधाता की बड़ी दया थी। सात लड़कियों और पाँच लड़कों के 'पूजनीय पिताजी' होने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त था।

पण्डिताइन का कद दिन से दिन नाटा होता गया और 'दैव की इच्छा' ही उसके तमाम दुःख-दर्दों की दवा थी। आँख-मुँह और कान-नाक का नक्शा अच्छा था, सूरत गेहुआँ थी। पण्डित की अपनी कान्ति साँवली थी तो क्या हुआ, बच्चों की शकल-सूरत पर माँ की ही छाप पड़ी थी। पण्डिताइन का शील-स्वभाव भी मीठा था, बोल भी उनके मीठे थे।

जथा-जाल मामूली था। पेशा था पण्डिताई का। जमीन इतनी ही थी कि चार महीने का बुतात उसकी उपज से निकल आता। विद्या से ही उनकी असल आमदनी थी। भागलपुर, मुंगेर, संथाल-परगना और पूर्णिया—इन चारों जिलों में खोंखा पण्डित का नाम था। आवाज सुरीली और मीठी होने से भागवत की उनकी कथा लोग कान पाथकर व मन लगाकर सुना करते। अब तो खैर सर्धा-

विश्वास कम हो गया, पहले मगर भागवत से काफी आमद थी। पुराने ढर्रे की शाहखर्ची और पास-पड़ोस के लोगों से यश पाने की भूख—इन दोनों लतों ने खोंखा पण्डित को तबाह कर रखा था। पहली लड़की की शादी अच्छे घर-बर देखकर की थी। सबने उस रिश्ते को पसन्द किया था। हिटलर की लड़ाई छिड़ने वाली थी। चावल रुपये का दस सेर और घी सवा सेर आता था। पूस में साल-भर का खेवा-खर्चा जुटाकर पण्डित घर में भर लेते और खुद निकल जाते जजमनिका में, पूरब या दच्छिन की ओर।

सौराठ[1] में शादी के उम्मीदवारों का जो मेला लगता है, पण्डित अपने बेटे को लेकर वहाँ पहुँच चुके थे। लड़की या लड़के का ब्याह ठीक कराने के लिए गाँव के और लोग भी सौराठ गये थे।

घर में ब्याह की पूरी तैयारी थी। महीन चावल, अरहर की दाल, गेहूँ का आटा, घी, तेल, कई किस्म के अचार, धोतियों के दो जोड़े, दुपट्टा, पगड़ी, सेहरा, दो साड़ियाँ, सुपारी और चीनी··· बिसेसरी की नानी ने तमाम जरूरी चीजें जुटा रखी थीं।

पण्डित ने स्वयं नतनी का नामकरण किया था—विश्वेश्वरी! भूल से भी उनके मुँह से 'बिसेसरी' नहीं निकलता। एक-एक अक्षर मानो प्रयत्नपूर्वक कण्ठ, तालू, होंठ और दाँत-जीभ से टकराकर निकलता। लोगों से शब्दों का शुद्ध उच्चारण करवाने का उनका उत्साह अब तो काफी ठण्डा पड़ चुका था, लेकिन पण्डिताइन को वह यदा-कदा फिर भी डाँट दिया करते थे—"क्या बिसेसरी, बिसेसरी करती हो! तुम्हारे पिता तो वैयाकरण केसरी थे न? बाप का सस्कार क्या कौड़ी-भर भी तुम्हारे हिस्से में नहीं पड़ा? हे राम!!"

ऐसे अवसरों पर पण्डिताइन गम खा जाती, बकर-बकर ताकती रह जाती अपने पतिपरमेश्वर के मुँह की ओर। बेचारी ने संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश के सम्बन्ध में अनेकों प्रवचन सुन रखे थे, लेकिन ऐन मौके पर मानो उनकी जीभ फिसल जाती—"बिसेसरी!"

आखिर एक दिन यह अफवाह उड़ ही गई कि आज सन्ध्याकाल खोंखा पण्डित सौराठ से दूल्हा ला रहे हैं···शकल-सूरत तो उसकी ठीक है मगर उमर अधिक है···बहुत बड़ा काश्तकार है···सीतामढ़ी से पच्छिम कहीं उसका घर है···यह पाँचवीं बार वह दूल्हा बन रहा है···

गाँव के सयानों ने अपने को इस पर परम गम्भीर बना लिया। इस अफवाह पर किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी करने से उन्होंने बिलकुल इन्कार कर दिया। मुँहफट लोग फूटे ढोल की तरह इधर-उधर बोलते फिरे, डोलते फिरे!

1. एक स्थान विशेष जहाँ ब्याह की बात पक्की होती।

औरतों की कानाफूसी पण्डिताइन के लिए दुश्चिन्ता का विषय बन गयी। रामेसरी को वह क्या कहकर दिलासा दे, कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

रामेसरी बड़ी लड़की थी और आज तेरह साल से विधवा थी। उसने बड़ी कोशिश की कि ससुराल में ही जमी रहे, लेकिन जेठानी और देवरानी ने बेचारी के खिलाफ एक अजीब संयुक्त-मोर्चा बना लिया तो भागकर माँ-बाप की छाया में आ गयी थी।

अपने पिता की इधर की गति-विधि से रामेसरी बड़ी शंकित रहती थी। शंकित होने का क्या कारण था ?

कारण यही था कि रामेसरी को छोड़कर बाकी छहो बेटियाँ खोंखा पण्डित ने बेच डाली थी।

महेसरी से उन्हे 1100) मिले थे।

भुवनेसरी से 800) मिले थे।

गुनेसरी से 700) मिले थे।

गुजेसरी से 1000) मिले थे।

वानेसरी से 700) मिले थे। और—

धनेसरी से 900) मिले थे। और अब बिसेसरी का नम्बर था। फसल तैयार खड़ी थी, कटने-भर का विलम्ब था !

रामेसरी अपने अभाग पर उतना कभी नही रोई जितना कि बहनों की बदनसीबी पर रोती रहती थी। सभी बहनें माँ-बाप को सराप दिया करती थीं। कोई गूंगे के पल्ले पड़ी थी तो कोई बौड़म के पल्ले। कोई तीन जिला पार फेंक दी गयी थी तो कोई पाँच सौ कोस पर। उनमें से चार को भाग्य ने वैधव्य के बीहड़ जंगल में डाल दिया था। एक पगली हो गयी थी, एक को उसके आदमखोर पति ने किरासन तेल की मदद से जलाकर खाक कर डाला था।

अपनी बच्ची के सौन्दर्य पर जहाँ उसे अभिमान था, वहीं अपने बाप के राक्षसी लोभ पर उसके मन में घृणा ही घृणा थी। कई बार वह सोचती कि बिसेसरी को कनेर की गुठली घिसकर पिला दे ! क्या करेगी जीकर बिसेसरी ? ऐसी जिन्दगानी से मौत लाख गुना बेहतर !! मगर, माँ का मोह रामेसरी के परिताप पर मानो चन्दन का लेप चढ़ा जाता। वह सोती हुई बिसेसरी को खींचकर अपनी छाती से सटा लेती। होठों को आहिस्ते से चूमकर गाल से गाल सटा कर अपनी बेचैनी पर हावी हो जाती। साँस अपनी स्वाभाविक गति पर आ जाती और फिर निद्रादेवी का दरबार बेचारी को अन्दर दाखिल कर लेता।

रामेसरी ने ममता का मक्खन और स्नेह की सुधा खिला-पिलाकर बिसेसरी को पाला-पोसा था। बड़े ही जतन से उसने लड़की को अपर प्राइमरी तक शिक्षा दिलवाई थी···

रामेसरी थोड़ी देर अकेले में जाकर चटाई पर औंधी लेट गयी, भाभियों की नजर बचाकर। वह कुछ सोचती रही—लड़की के जीवन को धूल में मिलाने का उसे क्या अधिकार है? बाबू (पिता) को यह हो क्या गया है? दूल्हे को आने दो, उस बुड्ढे के माथे पर अंगारे न डाल दूं तो रामेसरी मेरा नाम नहीं! एक बुड्ढा मेरी लड़की का सींथ भरेगा, मुँह झुलसा दूँगी मरदुए का!··· आवेश की भाफ निकल गई तो उसे अपनी सामर्थ्य का ख्याल आया···मैं कर क्या सकती हूँ! चीखूंगी और चिल्लाऊँगी और अपना सर पटकूंगी, पिताजी को असह्य होगा तो मुझे किसी कमरे में बन्द करके बाहर से साँकल चढ़ा देंगे; शादी तो होकर रहेगी··· या, माहुर का प्रबन्ध करूँ कहीं से और खिला दूं छोकरी को···

बेसुधी में रामेसरी की पलकें झपक आईं।

दो

ज्यादा तो नहीं, पाँच ही सात नौजवानों का एक गुट था गाँव में। सयाने लोग परिहास में इस गुट को 'बमपाटी' कहा करते। ऐसा कहलाना वे नवयुवक अपने लिए शान की बात समझते थे।

जबार में ही हाई स्कूल खुल गया था, मिडिल स्कूल तो खैर पाँच कोस के उस इलाके में अब तीन थे। गाँव में अपर प्राइमरी स्कूल था ही, संस्कृत पाठशाला भी थी। पढ़े-लिखे लोग नजदीक और दूर के शहरों में नौकरी कर रहे थे। महँगी के इस जमाने में समूचे परिवार को साथ रखना उन्हें अखरता था। दूसरी बात यह भी थी कि सबके पास दो-दो, चार-चार बीघा खेत थे, घर था, बगीची थी, आम के दो-चार, दस-पाँच पेड़ थे, मछलियों के लिए सामूहिक पोखरा था—गाँव की पुश्तैनी सम्पदा को छोड़ने के लिए आखिर कौन तैयार है? हाँ, तीन-चार ऐसे 'बड़े बाबू' भी थे जो अकबाली ससुरालवालों की मेहरबानी से सरकारी नौकरी पा गये थे और अब तरक्की करते-करते सेक्रेटरियट की अँगनई में दाखिल हो बैठे थे। उनकी दुनिया अब इस दुनिया से एकदम अलग हो चुकी थी। गाँववाले उनकी नजरों में अब उजड्ड व गँवार थे। दफ्तर का काम कर चुकने के बाद अधिकांश समय उनका अपने-अपने बँगले की बैठक में आरामकुर्सी पर कटता था। बैठे-बैठे थके-बूढ़े साँड की तरह अधमुँदी आँखों से वे जुगाली किया करते थे—श्रीकृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह, कृष्णवल्लभ सहाय, नेहरू, शेख अब्दुल्ला···ट्रूमैन और स्टालिन···डेमोक्रैसी, कम्युनिज्म, अमेरिका, रूस, चीन···डी-व्ही-सी, कोसी

प्रोजेक्ट···महँगाई, वेतन-वृद्धि, फैमिली प्लानिंग···अरविन्द और गोगिया पाशा ···लड़के को अमेरिका भेजवाना है···दामाद को टाटा में घुसाना है···

मगर मामूली नौकरी-पेशावाले लोगों के लिए तो यह सब सम्भव था नहीं, वे तो गाँव की अपनी दुनिया को बिल्कुल छोड़ नहीं सकते थे। घर-गिरस्ती की निगरानी के लिए इस श्रेणी के शिक्षित ग्रामीण अपने लड़के को घर पर ही छोड़े हुए थे। पास क स्कूल में ये पढ़ते भी और घर के कामों की व्यवस्था में परिवार की सहायता भी करते। मैट्रिक हो जाने पर इनमें से बहुतेरे मधुबनी या दरभंगा के कालेजों में आगे की पढ़ाई के लिए भर्ती हो जाते। तो भी अपने घर-गाँव से इनका सम्पर्क टूटने नहीं पाता।

इन्हीं युवकों ने गाँव में पुस्तकालय की स्थापना की थी। माँग-मूँगकर किताबें इकट्ठी की गई थीं, दो-तीन अखबार भी आने लगे थे। शाम को गाँव के बाहर मैदान में गेंद और कबड्डी खेलते जाकर।

समय की धारा से वे अपरिचित नहीं थे। बड़ों-बूढ़ों की कठोर से कठोर नुक्ताचीनी उनसे सुनी जा सकती थी। गाँव का मुखिया चीनी और मिट्टी का तेल कंट्रोल रेट पर और सो भी समय पर कम ही लोगों को देता था। अपने मकान के सामने उसने बीस गज लम्बी बाँस गाड़ रखी थी, जिसके छोर पर तिरंगा फहरा रहा था। कपड़े की परमिट में भी लाइसेन्सदार मारवाड़ी से साँठ-गाँठ करके मुखिया काफी कमा चुका था।

पिछले साल 'बमपाटी' वालों ने डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के पास दरख्वास्त दी—"हमारे गाँव का मुखिया चीनी और किरासिन के बँटवारे में धाँधली करता है, इस गड़बड़ी को फौरन दुरुस्त किया जाय।"

सप्लाई-इन्सपेक्टर आकर गवाही ले गया। दरखास्त पर नौ आदमियों के हस्ताक्षर थे। मुखिया के आतंक से इन्स्पेक्टर के सामने पाँच जने ही आये। उन पाँचों के नाम पर अलग-अलग कार्ड बना दिया, बस!

और तब से समूचे गाँव पर 'बमपाटी' वालों की धाक जम गई। गरीब-गुरबा बड़ों की आँख बचाकर इन नौजवानों से बात-विचार करने लगे।

इनका अड्डा दालानों पर या बैठकबाजी के लिए निश्चित खुली जगहों में न जमकर किसी प्राइवेट घर में अथवा गाँव के बाहर किसी बाग में, किसी बरगद या पीपर-पाकड़ के तले जमा करता।

गुट की गतिविधियों से परिचित दो-तीन बहू-बेटियाँ भी थीं गाँव में। एक नौजवान ग्वाला था।

बैठक या अड्डेबाजी के लिए 'एजेंडा' जैसी कोई चीज पहले से तय करके नहीं रखी जाती! जब जैसा मौका आया वैसी बात उठी और 'ऐक्शन' लेने या न लेने का फैसला ले लिया गया! यह गुट अपने-आप में दरअसल एक मौजी गिरोह

था। खेल-कूद, मनोरंजन, मामूली बात-विचार और छोकड़ों की आपसी शिकायतों को सुलझाने तक ही इसकी गतिविधि सीमित थी। लेकिन पिछले साल एक ऐसी घटना हो गई कि गुट को सयानों के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करना पड़ा और, तभी से चन्द किशोरों की यह छोटी-सी जमात 'बमपार्टी' जैसे गौरवपूर्ण नाम से भूषित-भाषित होने लगी। रोष, आवेश, व्यंग्य और चिढ़ के मारे खोंखा पण्डित ने ही इस गुट का ऐसा नामकरण किया था। क्यों ?

क्योंकि पण्डित के स्वार्थ पर गुट ने करारी चोट की थी।

चतुर्भुज भरी जवानी में इस धरती से उठ गया था। मूर्खता, गरीबी, दश कट्ठा ऊसर खेत और आठ विस्वांसी बासभूमि—विरासत में बाप-दादों से बेचारे को यही सम्पदा मिली थी। बारह साल की छोटी आयु में ही लहेरियासराय के किसी होटल में वह रसोइया की ट्रेनिंग लेने लग गया था, पीछे एक अच्छे रसोइये के रूप में वहीं उसका विकास हुआ। दो साल वहाँ और बारह साल मुजफ्फरपुर-पटना के कई एक छोटे-बड़े होटलों में कलछी-चम्मच माँजता रहा था, तब जाकर चार सौ रुपये हुए थे और शादी हो सकी थी।

चतुर्भुज का बाप खोंखा पण्डित का चचेरा था। वह भी कम उमर में मरा था। चतुर्भुज खोंखा पण्डित को फूटी आँखों भी नहीं सुहाता था। पण्डित की मन्शा रही कि परेशान होकर और तंग आकर यह कहीं जाय तो इसकी घराड़ी (बास-भूमि) पर अपनी दखल जमा लेंगे, उसमें भाँटा-भिंडी उपजायेंगे। मगर चतुर्भुज के जीते जी खोंखा पण्डित का वह मनोरथ पूरा नहीं हो पाया।

चतुर्भुज का बड़ा लड़का माहे बाप से चार कदम आगे था—समझ-सूझ में भी और जीवट में भी। वह हिन्दी मिडिल और संस्कृत प्रथमा पास करके कुछ दिनों तक कानपुर की हवा खा आया था। था तो खूबसूरत मगर कपार पर बाईं ओर घोड़े के खुर का निशान था, बचपन में चोट लगी थी। अठारह साल की उमर थी। खोंखा पण्डित की निगाहों में वह भले ही काँटा हो, दूसरे सभी उसे प्यार करते थे।

पिछले वर्ष पण्डित ने माहे के पिछवाड़े में दो हाथ चौड़ा, दस हाथ लम्बा और तीन हाथ गहरा गढ़ा खुदवा लिया।

इस गढ़े में कलमी आम के नये पेड़ों के लिए खाद तैयार करना है—यही कहना था पण्डित का। माहे ननिहाल गया हुआ था। उसकी माँ रिश्ते में खोंखा पण्डित की पतोहू होती थी, लेकिन गालियों की बौछार अधिक देर तक वह बर्दाश्त कहाँ कर सकी ? उसने आखिर अपना मुँह खोला। वह उन्हें एक के बदले चार सुनाने लगी तो भङ्ग पीसने का सोटा उठाकर पण्डित उस औरत पर बरस पड़े। स्वाद ले-लेकर दोनों तरफ की गालियाँ सुननेवालों को अब पड़ोसी की मर्यादा का ध्यान आया तो वे भी दौड़े और खोंखा पण्डित को सँभालने लगे। मगर बादल तो

बरस चुका था, रह गया था धुला-फीका आकाश !

माँ के बुलाने पर अगले ही दिन माहे ननिहाल मे दौड़ा आया। बड़ी देर तक वह माँ से घटना का विवरण सुनता रहा, शान्तिपूर्वक। फिर दोस्तों से मिलने गया। बिना उनकी राय लिए, कुछ निर्णय करना माहे के बूते की बात नहीं थी।

दिगम्बर मल्लिक माहे का दिली दोस्त था, नाइन्थ क्लास तक पढ़कर स्कूल छोड़ बैठा था। वह काफी चतुर तो था ही, धनी घर का लड़का होने से लोग उसे आदर और गौरव की दृष्टि से देखते थे। नौजवानों पर भी उसकी अच्छी धाख थी। धन या शिक्षा ने दिगम्बर के अन्दर घमण्ड उस मात्रा में नहीं भरा था जिस मात्रा में नम्रता। छोटी-बड़ी आयु के लड़के ध्यान से मल्लिक की बातें सुनते थे।

माहे की परेशानी दिगम्बर को अपनी परेशानी मालूम हुई। वह काफी देर तक इस पर सोचता रहा। नौजवानों का स्वयं-निर्वाचित नेता होने से एक साथी की समस्या को सुलझाना वह अपना फर्ज समझने लगा। सबसे पहले उसने मुखिया से भेंट की और अनुरोध किया कि वह खोखा पण्डित से कहकर माहे के पिछवाड़े का गढ़ा भरवा दे। मुखिया को सब बात मालूम थी, पण्डित की जोर-जबर्दस्ती का भी उसे अच्छी तरह पता था। तो भी कई दिनों तक वह टाल-मटोल करता रहा।

मल्लिक, माहे और दूसरे नौजवान चुप नहीं बैठे थे। एक कोतवाल (चौकीदार) को समझा-बुझाकर अपने साथ थाना ले गया। हेड कानिस्टबिल तिरहुतिया बाभन था और उस युवक की चाची के फुफेरे भाई का सरबेटा था। मय कोतवाल के बयान के; वह माहे का केस थाने मे दर्ज करा आया। पड़ोस के गाँव में एक नामी कम्यूनिस्ट लीडर थे, कामरेड तेजनारायण झा। माहे और मल्लिक खुद उनसे मिल आये। नजदीक के हाई स्कूल और मिडिल स्कूल के मास्टरों को भी समस्या की जानकारी करा दी गई। बूलो टेन्थ मे पढ़ता था, तुकबन्दी जोड़ने की अद्भुत सामर्थ्य थी उस छोकरे में। अगले ही दिन उसने एक फकड़ा तैयार किया और जमात के सामने लिखित रूप में उसे पेश किया। मल्लिक की आज्ञा से बूलो ने बाँचकर अपनी रचना सुनाई :

खोखा पण्डित बड़े सयाने
दच्छिन-पश्चिम गये कमाने
बेटा रोया, बेटी रोई
करम न इनसे छूटा कोई
चूहा मारो, करो पराश्चित
पाप हरेंगे खोखा पण्डित
रात बता देंगे यह दिन को
चूड़ा-दही खिलाओ इनको

माल मुफ्त का यदि पा जाएँ
फिर तो दुम दिन-रात हिलाएँ
पैसा पावें, गूह चाट लें
सूना पावें, गला काट लें
बड़े घाघ है पण्डित खोंखा
ईसर को भी देते धोखा

सुनते समय बीच-बीच में हँसी के फव्वारे छूटते रहे। फकड़ा लाजवाब बना था, इस पर सभी एकमत थे। माहे ने कहा :

" 'दच्छिन-पच्छिम' की जगह 'दच्छिन-पूर्व' कर दो क्योंकि हमारे खोंखा बाबा कमाने के लिए मुजफ्फरपुर से पच्छिम कभी नहीं गये हैं, हाँ, पढ़ने के लिए, सुना है कि काशी गये थे कभी !"

मण्डली फिर हँसने लगी। बूलो ने संशोधन पसन्द किया, लेकिन 'दच्छिन-पूर्व' नहीं क्योंकि एक मात्रा घटती थी; उसने 'दच्छिन-पूरब' करके समूचा फकड़ा एक बार फिर सुना दिया।

दूसरे दिन गाँव के लड़के इधर से उधर इन पदों को गाते फिरे। पण्डित भीतर ही भीतर बेहद चिढ़े। पण्डिताइन से सलाह ली। उसे नौजवानों के पण्डित-विरोधी इस आन्दोलन की गन्ध लग चुकी थी, इसीलिए दस-पन्द्रह दिनों के लिए कहीं पहुनाई मे चले जाने का परामर्श दिया।

खोखा पण्डित ने मिर्जई पहनकर, माथे पर पगडी डालकर दूसरे दिन अनगन्ने (सूरज उगने से पहले ही) इसटीसन का रास्ता पकड़ा था।

इधर पण्डिताइन ने लड़कों से बात-विचार करके उसी रोज गड्ढा भरवा दिया तो नयी पीढ़ी के लोगों को बड़ी खुशी हुई थी। तब से बड़े-बूढ़े और सयाने लोग नवयुवकों को प्रतिद्वन्द्वी दृष्टि से देखने लगे थे।

और आज समूचे गाँव की नाक कटनेवाली थी। पन्द्रह साल की बिमेसरी साठ वर्ष के चतुरानन चौधरी को ब्याही जानेवाली थी ! ! दिगम्बर ने यह खबर सुनी तो उसे ऐसा लगा कि किसी ने भर-भर कलछी खौलता हुआ कड़ुआ तेल बारी-बारी से उसके दोनों कानों में डाल दिया है !

मल्लिक का माथा जोरों से ठनकने लगा, सोचने की रत्ती-भर भी सामर्थ्य उसके दिमाग मे नहीं रह गई।

तीन

खोंखा पण्डित ने आधा घण्टा बातचीत कर चुकने पर पाया कि आदमी काफी अकबाली है। उमर जरा ज्यादा है तो क्या हुआ? कम उमर के लोग क्या नहीं मरते हैं? बाबा वैद्यनाथ की अनुकम्पा होगी तो इसी दूल्हे के घर विश्वेश्वरी की कोख से एक से एकइस सन्तान हो सकती है। 500 बीघा जमीन की मलिकाइन बनेगी हमारी विश्वेश्वरी! इहलोक और परलोक दोनो बन जायेगा। मेरे नाना के दादा ने इसी आयु मे विवाह किया था, लड़की का वयस बारह वर्ष का था और तब उन्हें चार बेटे और तीन बेटियाँ हुई थी—अर्जुन, भीम जैसे बलिष्ठ; द्रौपदी और सुभद्रा जैसी सुन्दर एवं सुगठित शरीरवाली! हाँ! नहीं, ऐसा अच्छा वर अब आगे ढूंढ़े नहीं मिलेगा; ऊँ हूँ···शुभस्य शीघ्रम्···गणेश गणेश, लम्बोदर करिवर-बदन!!

भावों का आवेग इतना बढ़ गया कि पण्डित सौराठ के उस अनुपम लोकारणय मे अपनी जगह छोड़कर इधर-उधर घूमने लगे। घटकराज[1] मटुकी पाठक पर पण्डितजी पूरी तरह निर्भर थे। उन्हीं महानुभाव ने विश्वेश्वरी जैसी कन्या-रत्न के लिए इस प्रकार का परम सुदुर्लभ वररत्न ढूंढ निकाला था। जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ—अब और क्या चाहिए? घटकराज पण्डितजी के सहपाठी थे। सुगौना-ड्योढ़ी के पुराने महाविद्यालय मे पचास वर्ष पूर्व दोनों जने साथ ही रहते थे। एक ही गृहस्थ-परिवार मे दोनों के भोजन का प्रबन्ध था। किसी कारण से पाठक की पढ़ाई छूट गई और अब वह घटकराज के रूप में प्रख्यात थे। रामेसरी को छोड़कर, बाकी लड़कियों के लिए वर खोजने का श्रेय आप ही को प्राप्त था। यह आप ही के शुभ परामर्शों का परिणाम था कि पण्डितजी चार हजार का कर्जा चुका सके और दो बेटों को शादी के बाद अपनी-अपनी विधवा सास की जायदाद हाथ लगी।

पण्डित ने घटकराज को तीन रोज से उस बूढ़े वर की अंतड़ियाँ उधेड़ने में लगा रखा था और निःसन्देह, इस साधना में साधकप्रवर पाठकजी महाराज को अनुपम सफलता प्राप्त हुई थी।

कितनी जमीन है?···

नगद कितना है?···

लहना-तगादा के हजार है?···

पिछली पत्नियों के कितने लड़के हैं?···

लड़कों के ननिहालवाले किस हैसियत के हैं?

---

1. ब्याह का सम्बन्ध पटानेवाला 'घटक' कहलाता है।

कोई रखेली तो नहीं है ?···

गोतियां हैं कि नही ?···

है तो किस हैसियत के हैं ?···

कागज-पत्तर, दस्तावेज-तमस्सुक, हैंडनोट वगैरह जिस सन्दूक में हैं उसकी चाबियों का गुच्छा किसके जिम्मे है ?···

असल आयु कितनी है ?···

साल में कै बार बीमार पड़ते है ?···

लड़कों से मनमुटाव तो नहीं है !···

बाप रे ! किसका मजाल है जो फलाँ बाबू के बारे में इतनी बात का पता लगावे ? लेकिन नही, है एक बहादुर ! घटकराज मटुकधारी पाठक ! ! अ हा हा हा ! ! !

—इस तरह गद्‌गद्‌हो कर पण्डितजी घटकराज का सुमिरन कर ही रहे थे कि संदेह पाठकजी महाराज जाने किधर से अलक्षित ही आकर सामने खड़े हो गये।

"आइए पाठकजी, आइए। आप ही को तो खोजने निकला हूँ। हः हः हः हः ! !"

घटकराज ने चट नसदानी निकाली—छोटे श्रीफल की चाँदी-मढ़ी डिबिया, चेन लगी हुई ठेपीवाली।

बाईं हथेली पर कौड़ी-भर नस निकालकर उसे पण्डितजी के आगे फैलाते हुए वह बोले—"सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थ सिद्धिः[1] ! आपका हृदय बड़ा ही पवित्र है खोंखाइ बाबू ! शुद्ध चित्त से आप यहाँ आये थे, बच्चो के लिए अखण्ड सौभाग्य की कामना बाबा कपिलेश्वरनाथ अवश्य पूर्ण करेंगे। पंजीकार से पता लगा आया हूँ, दोनों कुलों में विवाह सम्बन्ध का अधिकार होगा। कोई भी बाधा नही, शुभ शुभ शुभ···दुर्गा, माधव, गणेश···"

प्रसन्नता के मारे खोंखा पण्डित ने मुँह बा दिया, वह नस लेना तक भूल गये !

"ऐं सचमुच अधिकार हो गया ?"

"और नही तो क्या ?"

अन्दर से जनेऊ जरा निकालकर उसे अंजलि की दशों अँगुलियों में लपेटते हुए पण्डित ने कहा—"मैं आमरण आपका ऋणी रहूँगा पाठक जी ! आपने हमारी विश्वेश्वरी का उद्धार कर दिया, विश्वेश्वरी का ही नहीं, हमारे एकइस पुरखों का आपने आज उद्धार किया है···"

पण्डित की आँखें छलक आईं, इससे आगे उनके मुँह से एक आखर भी नहीं

1. सचाई और मेहनत से सब काम बनते हैं।

निकला। कृतज्ञता के भाव दिमाग की एक-एक रग को फुलाने लगे। इतने बड़े खानदान का प्रतापी मालिक आज मेरे दरवाजे को अपने पैरों की धूल से पवित्र करेगा। पास-पड़ोस के इलाकों में नौगछिया गाँव का नाम इन्द्रधनुष की तरह अब उजागर हो उठेगा! विश्वेश्वरी आज रानी बनेगी, वह ऐसे घर की मालकिन बनेगी जहाँ घोड़े हिनहिनाते हैं और हाथी झूमते रहते हैं··· फिर पण्डित की निगाहों में नौ अंक पर दो शून्य नाच उठे, बड़ी शकल में। नौ का वह अंक और उस पर के वे दोनों शून्य धीरे-धीरे बड़े होते गये, बड़े होते गये और बड़े होते गये—

घटकराज ने उनका हाथ पकड़ा—"चलिए खोखाई बाबू, शुभ कार्य में विलम्ब सर्वथा अनुचित होता है। आज ही रात को सिंदूरदान हो जाय।"

पण्डित नस के शौकीन नहीं थे। लेकिन आत्मीयता प्रकट करने के लिए वह इस काम में पाठकर्जा का साथ देते थे। सो, जरा-सी नस लेकर खोखा पण्डित ने अपने को संभाला।

लगन का वह अन्तिम दिन नहीं था, फिर भी पटापट सौदे पट रहे थे। लड़कीवाले और लड़केवाले, दोनों एक-दूसरे का शिकार कर रहे थे। कलकत्ते के रायल एक्सचेंज में, बम्बई के कालबादेवीवाले मुहल्लों में और दिल्ली के चाँदनी चौक की गलियों में सट्टेबाजी की हलचल देखी है कभी आपने? हाँ? तो बस समझ लीजिए कि मैथिल ब्राह्मणों की ब्याह की इस अनोखी मण्डी में कुछ वैसा ही चल रहा था! गजब की चहल-पहल थी। ऐसा लगता था कि समूची दुनिया के लोग इन चार दिनों के अन्दर ही क्वारों-क्वारियों का ब्याह करा डालेंगे! घटकों और दलालों की कुछ मत पूछिए, वे अँधेरे में ही निशाना साधते हैं। रिश्तों की तुक शायद ही कभी ठीक बैठती हो···

नौ सौ रुपये पर बात पक्की हुई थी, पचास रुपये घटकराज को मिले थे। ताड़ के लम्बे पत्ते पर लाल स्याही से पंजीकार ने सिद्धान्त[1] लिखा। वर—बाबू श्री चतुरानन चौधरी—की ओर से पंजीकार को दक्षिणा-स्वरूप एक दशटकही नोट मिला।

पिता की रुद्र प्रकृति से पूर्ण परिचित होने के कारण साथ के तीनों में से कोई बेटा इस कार्य में किसी प्रकार की आपत्ति प्रकट नहीं कर सका—एक था पितृ-भक्त संस्कृत अध्यापक, दूसरा मधुबनी अदालत में किसी वकील का मुहर्रिर था और तीसरा मैट्रिक तक पढ़ा था। गठरी-मोटरी, दरी-कम्बल-तकिया, लोटा-खड़ाऊँ ढोनेवाला सुवधा भला यह सब क्या जाने?

1. दोनों कुलों में ब्याह का रिश्ता कायम हो सकता है, वर-वधू का यह सम्बन्ध सर्वथा निर्दोष है···इस प्रकार का शास्त्रीय फर्मान।

नोट की गड्डी सँभालकर पण्डित ने दो टमटम ठीक किये। घोड़े तगड़े और तेज थे। रास्ता खूब अच्छा नहीं था और मौसम था बरसात का, नहीं तो चार कोस का यह फासला वे डेढ़ घण्टे में मार लेते ! खैर, अढ़ाई घण्टे तो तब भी काफी थे। ट्रेन से जाने पर कोई फायदा नहीं। और फायदा हो या न हो, अवध-तिर्हुत रेलवे (O. T. R.) ऐसे बड़े मेलों के अवसर पर भी सनातन प्रथा से ही काम लेती है ! न टिकट ही मिल पाता और न वे चढ़ ही पाते ट्रेन में ! मान लो, इन दोनों मोर्चों में फतह हासिल कर भी लेते तो क्या आधी रात तक नौगछिया पहुँच जाते ? नहीं, बिल्कुल नहीं।

तो खोंखा पण्डित ने पैसे का मोह छोड़कर दो टमटम जो भाड़े पर कर लिए सो उनकी समझदारी का ही सबूत था।

दूल्हे ने कहा, वह अपने घोड़े पर ही जाएगा। उनसे बाद को सौराठ से विदा होगा और तारसराय (स्टेशन) उनसे पहले ही पहुँच लेगा !

उसे अपने घोड़े पर अभिमान था, कत्थई रंग का औसत कद का वह जानवर वाकई बिजली का लम्बोतरा लट्टू था, जरूर जई और मक्खन खाता रहा होगा !

पण्डित को दुविधा में देखकर बुड्ढा विवाहार्थी बोला—"चिन्ता मत कीजिए रत्ती-भर, मैं अभी आया।"

यह कहकर उसने घोड़े की पीठ थपथपाई, हल्की हिनहिनाहट अभी-अभी उमड़ते आ रहे बादलों को मानो डाटने लगी। पच्छिम का आकाश अभी साफ था, सूरज तेजी से नीचे उतर रहा था। लोगों की भीड़ भी क्रमश: छँट रही थी। बदली के आसार देखकर वे पास-पड़ोस के गाँवों में 'रैन बसेरा' के लिए चल पड़े थे। नवजात धान के तोता-पंखी पौधों से लहलहाते खेतों की पगडण्डियाँ अपनी छातियों पर हजारों-हजार मानव-चरणों की धमक महसूस करके परम प्रसन्न हो रही थीं और सौराठ के उस महामेला को दुआ दे रही थीं। सौराठ है भी बसा ऐसी जगह जिसके सभी ओर कोसों तक खेत ही खेत फैले हैं—धनहर खेत; बरसात के मौसम में इनकी छटा बिल्कुल निराली होती है। ऐसे दृश्य से प्रभावित होकर मिथिला के किसी कवि ने कहा होगा—

हे हरित-भरित हे ललित वेश !
हे छोट-छीन मन हमर देश !!

दूल्हे का सामान, उसका भांजा, नौकर, खोंखा पण्डित के दो लड़के अगले टमटम पर थे। घटकराज, पण्डित, बड़ा लड़का, सुवधा और इन लोगों की गठरी-मोटरी पिछले टमटम पर।

टमटम चले तो घटकराज और पण्डित दोनों बुजुर्गों के मुँह से मंगल-पाठ का श्लोक निकलता रहा—

मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरुड़ध्वजः।
मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायतनो हरिः ॥

दूल्हे का भांजा भी आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण था, स्वस्तिवाचन के इस अवसर पर वही क्यों पीछे रहता ? गम्भीर स्वर में उसके मुँह से निकला—

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः।
येषां इन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥

और, टमटमवालों ने अपनी टिटकारियाँ भरनी शुरू कीं। घोड़े सरपट दौड़ने लगे।

पिछले कई दिनों की थकान, मानसिक द्वन्द्व और ऊब, और अब कामयाबी का हल्का-सा नशा—कुल मिलाकर खोंखा पण्डित को झपकियाँ आने लगीं। घटकराज ने महपाठी के सिर को पीठ का सहारा दे दिया। खुद वह नस की मस्ती में विभोर हो गये।

चार

आँखें खुली तो रामेसरी चट से उठी और देखने गयी कि बिसेसरी कहाँ है, क्या कर रही है।

घर के बड़े लड़के को पण्डित और पण्डिताइन 'बच्चन' कहते थे। परिवार के सभी लोग उसे यही कहकर पुकारते, बहुएँ ऐसा नहीं कर सकती थीं। बड़ी बहू तो खैर पति का कोई भी नाम क्यों लेने लगी ? बहुतों की तरह उसके भी दो नाम थे—बच्चन और गिरिजानन्द ! लाड़-प्यार, आवेग-आवेश के कारण दूसरा नाम दब गया था।

रामेसरी सन्तान में सबसे बड़ी थी। बच्चन उससे चार साल छोटा था। वह बत्तीस वर्ष की थी, बच्चन अट्ठाइस का। बाकी भाई-बहिनें ढाई-ढाई, तीन-तीन साल के दर्म्यान पैदा होते आये थे।

अभी जाकर रामेसरी ने बच्चन के घर में बाहर से ही झाँका, कोई नहीं था। फिर वह मँझली बहू के कमरे की ओर गयी, उधर से हँसने की मृदु-मन्द ध्वनि उठी।

'हाँ, यही होगी बीसो मेरी !'

रामेसरी बिल्कुल अन्दर आ गयी। बोलचाल बन्द, हँसी-ठिठोली सब बन्द।

तीनों बहुएँ घर के कामों में मशगूल थीं। एक के आगे सूप था, वह चलनी से आटा चाल रही थी। दूसरी के आगे तरकारी काटनेवाली हँसिया और परवल-आलू से भरी डलिया पड़ी थी, वह आलू के टुकड़े कर रही थी। तीसरी तिलों मे कंकड़ चुन रही थी।

रामेसरी ने देहली लाँघते-लाँघते ही पूछ दिया—"बिसेसरी कहाँ गयी? इधर तो नही आयी और माँ को भी तो नही देख रही हूँ कहीं!"

छोटी बहू के होंठ पटपटा उठे—"माँ तो मुखियाजी के घर गयी हैं···"

बीच मे ही इसके होंठ बन्द क्यो हो गये हैं?

रामेसरी को बडा ही अनुचित लगा। छोटी बहू आँखें नीचे करके तिल में से उसी तरह ककड़ चुन रही थी मानो उसने कुछ भी नहीं कहा है, वह कुछ भी नही जानती! बात क्या है आखिर?

तरह-तरह के तर्क-वितर्क रामेसरी के हृदय को मथने लगे। जी को उसने कड़ा कर लिया, फिर एक-एक करके तीनो बहुओ के चेहरे ताकने लगी। सब ऊमस के मौसम की झीलों का गहरापन लिये हुए थे! कोई लहर नही, तरंग और चंचलता का नाम नहीं! अगम, अथाह!

मँझली बहू पर नजरें गडाकर रामेसरी ने पूछा—"तुम भी नही जानती हो फूलकुम्मरि?"

परवल आधा ही खुभा था हँसिया के धार म, उसे आधा-आधा करके फूलकुँवरि ने घनी भौंहों वाले कपार पर बल डाला और बोली—"क्या?"

"अरे, यही · बिसेसरी कहाँ गयी है?"

"मैं क्या बताऊँ दइयनि?"

इतने में बडी बहू चलनी के चोकर को अलग रखी चँगेरी में डालती हुई बोल पडी—"ताश पीटती होगी रानीजी, ताश!"

"गे मइयो। ताश?"

"तो और क्या? सोने की कौडियाँ कहाँ से लावेंगी?"

हे भगवती! यह कैसी-कैसी बात आज रामेसरी को सुननी पड़ रही है! ना, यह नही हो सकता। बीसो किसी और काम से कहीं गयी होगी···

ताश खेलना रामेसरी की नजरों में एक भारी अपराध था, क्योंकि उसकी बालविधवा ननद को ताश की पत्तियों ने ले जाकर पेशावर पहुँचा दिया था! पड़ोस के एक नौजवान ने उसे 'मुँहझौंसी' के मन में 'कोटपीस' खेल का ऐसा चस्का डाल दिया था कि एक रात वह उसके साथ भाग खड़ी हुई! और न जाने क्या-क्या हुआ!

तो अभी इसी बात को लेकर बुरी आलोचना हो रही थी?

रामेसरी को अपनी बेटी पर गुस्सा आया—कहाँ जाकर बैठ गयी है

कलमुँही !

इतने मे पायल की रुनझुन रुन-झुन सुनाई पड़ी, बिसेसरी आ रही थी। रामेसरी घर मे निकल गयी और आँगन के बीचोबीच खड़ी हो गयी।

"कहाँ गयी थी ?"

"जरइलवाली काकी ने बुलाया था।"

"हूँ ! चल, इधर आ !"

बीसो अपनी माँ के पीछे हो गयी।

दोनो अन्दर आये, गुमसुम। रामेसरी पहियोंवाली पुरानी सन्दूक पर बैठी, बिसेसरी दोनों हथेलियाँ उलटकर उँगलियों की पीठ पर के सुनहले रोएँ देखती रही। माँ ने उसे बैठने के लिए नहीं कहा।

बीसो माँ की इकलौती लड़की थी। बेटा भी थी, बेटी भी थी। रामेसरी ने बड़े ही प्यार से पाल-पोसकर उसे बड़ा किया था। बड़ी उमर तक निपूती रहनेवाली स्त्री जिस नेम-निष्ठा से, जिस नेह-छोह से तुलसी के पौधे को पोसती है, उसी तरह रामेसरी ने बिसेसरी को पोसा था। कभी अवाच-कुवाच नही कहती थी। मारना-पीटना तो दूर, खीझ से भरकर कभी चपत तक नही लगाती।

रामेसरी का घरवाला अच्छा पण्डित था, नेकनीयत और मिठबोला। तीन वर्ष के उस छोटे से दाम्पत्य-जीवन मे रामेसरी पर उसने कभी हाथ नहीं उठाया, कभी गाली नहीं दी। अपने पति से रामेसरी ने रुपये-पैसे तो नही, दो-चार गुण अच्छी मात्रा मे पाये थे। पिता और पति के स्वभावों मे आकाश-पाताल का अन्तर था। विद्वान् तो दोनों ही अच्छे थे, लेकिन प्रकृति उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार की थी। माँ के बाद, पति ही वह व्यक्ति था जिससे रामेसरी के जीवन-तत्त्वों का निर्माण हुआ था।

बिसेसरी ऐसी माँ की बेटी थी। माँ के शील-स्वभाव का असर वह अपनी प्रकृति मे अच्छी तरह उतार ले आयी थी। अपर प्राइमरी तक पढ़ने का भी यह सुयोग जो उसे मिल सका सो अपनी माँ की बदौलत। नाना की कतई यह राय नहीं थी कि बिसेसरी पढ़े-लिखे। वह तो रामेसरी के लगातार आग्रह का ही यह फल था कि खोंखा पण्डित अपनी नतनी का स्कूल जाना बर्दाश्त कर सके।

बिसेसरी अपनी माँ से कोई बात छिपाती नहीं थी, दोनों मे अब मानो सहेलियों का-सा लगाव था। माँ ठहरी बाल-विधवा, बेटी ठहरी इकलौती—दोनों एक-दूसरी का सहारा थीं, अभिभावक भी थीं और साथिन भी।

थोड़ी देर अलग खड़ी रहकर बिसेसरी माँ के बिल्कुल करीब आ गयी। बाहर निगाहें फेंककर फिर अपनी नजरें उसने रामेसरी की आँखों में गड़ा दीं।

माँ भी बेटी की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखने लगी। अनमेल ब्याह के भयंकर परिणामों की कल्पना से उसकी रग-रग दहक उठी, रोंगटे खड़े हो गये। बेटी को

खींचकर माँ ने धड़कते सीने से सटा लिया, बिसेसरी का कोमल कलेवर रामेसरी की अधेड़ बाँहों के घेरे में कस गया। थोड़ी-थोड़ी देर तक एक-एक की गर्दन दूसरी के कन्धे पर पड़ी रही।

"माँ !"

"बीसो !"

"आज यह क्या हो गया है तुझे ?"

"एक बात बताऊँ ?"

"बोल !"

रामेसरी ने बिसेसरी को छोड़ दिया, वह सन्दूक से सटकर खड़ी हो गयी। साड़ी का पल्ला सँभालती हुई कहने लगी—"माहे भइया बता रहे थे, यह शादी हम नहीं होने देंगे।"

रामेसरी के कपार में तनाव पड़ गया, आँखें बड़ी-बड़ी हो गयी। बाहर की ओर एक नजर मारकर वह फुसफुसाई—"चुप ! चुप ! किसी ने सुन लिया तो पानी में आग लग जायेगी ! माहे तो पागल है, यों ही अल्लम-गल्लम बकता रहता है…"

"दिगम्बर भी तो था।"

"गे मइयो ! और, तू वहाँ यही सब सुनने गयी थी ?"

बिसेसरी बेखबर नहीं थी। उसे अच्छी तरह मालूम था कि नाना आज रात एक कसाई को ला रहे हैं, धूमधाम से अपनी नतनी का जिबह कराएँगे…जब से उसने बूढ़े दूल्हे की बात सुनी है तब से उसकी कलेजी भुन रही है। अब तक अपनी बेचैनी को वह जब्त किये हुए थी, इसके बाद धीरज ने जवाब दे दिया। तन-मन की समूची ताकत बटोरकर उसने पैरों को लड़खड़ाने से बचा लिया, यही क्या कम था ? बकोटकर आखिर उसने बाएँ हाथ से ठुड्डी और गालों को दबा लिया। जीभ, तालू, दाँत, मसूड़े, होंठ—सभी उस शिकंजे में कस गये। वह अपने-आपमें जूझने लगी कि बूँद-भर भी आँसू गिरने नहीं पाये !

खोपड़ी में मानो बीसियों तकलियाँ बिजली की गति से चल रही थीं—किर्र र्र र्र र्र र्र र्र र्र…

बीच ही में रामेसरी ने उसे झकझोरा और चुमकारा, ढाढ़स दिया—"पगली कहीं की ! ऐसा भी कहीं हुआ है ?"

संवेदना की इस चुमकार ने बिसेसरी के हृदय को मोम-सा पिघला दिया। दो बड़ी-बड़ी बूँदें आँखों का कूल-किनारा पार करके नीचे धरती पर गिर पड़ीं—टप टप !

अपनी साड़ी के आँचल के खूँट से माँ ने बेटी के आँसू पोंछ डाले। थोड़ी देर

के लिए उसे अकेली छोड़कर वह बाहर निकल आयी। माहे और दिगम्बर भला इस ब्याह को कैसे रोकेंगे, यही बात रामेसरी के माथे में घिरनी बनकर नाचने लगी। भला, जब दरवाजे पर दूल्हा आकर खड़ा हो जायेगा तो उसे कोई किस मुँह से लौटने कहेगा? ऐसा भी कहीं हुआ है? बाबू जब हाथ धरके किसी भल-मानस को उठा लाये हैं तो उसकी और अपनी लाज को अलग-अलग करके थोड़े ही देखा जाएगा?···

पिता की प्रतिष्ठा रामेसरी के संकल्प को जड़-मूल से हिला रही थी। बार-बार वह अपने पर घटाकर इस ब्याह के बारे में सोचने लगी—कैसी अच्छी जोड़ी थी हमारी। लेकिन वह तीन ही वर्ष जिये। माँ-बाप अपने जानते सन्तान को कुआँ में थोड़े ही फेंकते हैं? सुना है, धन-सम्पदा काफी है। रानी बनकर रहेगी मेरी बीसो···उमिर कुछ अधिक है तो क्या हुआ?

क्या हुआ! धन-सम्पदा ही क्या सबसे बड़ी चीज है? पन्द्रह साल की कच्ची छोकरी पचास साल के पकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी? हे राम!

···मगर, खान-पान, कपड़ा-लत्ता, गहना-गुड़िया, जर-जेवर···और अमार लगा रहता होगा उसके यहाँ! नहीं? ना, जरूर अमार लगा रहता होगा। वह तो अपने इलाके का राजा है!

फिर एक दफे रामेसरी की आँखों के आगे अपनी बेटी का मासूम मुखड़ा जोरों से नाच उठा और उसका सिर घूमने लगा, फिर एकाएक भवें तन गयीं। अपने-आप वह बुदबुदाई—"नहीं, नहीं होगा! नहीं होगा यह ब्याह!!"

तब रामेसरी को माहे और दिगम्बर की बात याद आयी···क्या कर सकते हैं वे?

उपेक्षा-भरी हल्की हँसी के सहारे अपनी याद को उसने उन नौजवानों की चंगुल से छुड़ा लेना चाहा कि माँ की आवाज सुनाई पड़ी—"बुच्ची?"

"आयी अम्मा!"

यह रामेसरी का दुलार का नाम था।

वह सँभली, पूरी तरह अपनी चेतना को उसने साकांक्ष बनाया और माँ के सामने जा खड़ी हुई।

माँ मुखिया के यहाँ से पेट्रोमैक्स लिवा लाई थी।

"इसे बरामदे में रखवा ले, चौकसी रखना। ऊधमी लड़के कहीं इस पर हाथ-वाथ न डालें।"

"अच्छा।"

रामेसरी ने उस बड़े लैम्प को माँ वाले घर के बरामदे में रखवा लिया। मुखिया का हलवाहा लैम्प रखकर चला गया।

इसके बाद रामेसरी को माँ का दूसरा आदेश मिला—"बिसेसरी के बाल सँवारने होंगे, चोटी काढ़नी होगी।"

पण्डिताइन ने इस बेबसी पर अफसोस जाहिर किया कि आज नतनी की कंघी-चोटी वह खुद अपने हाथों नहीं कर सकी ! बेचारी को बहुत सारे काम करने थे, अकेली राधा कितना नाचे ! बड़ी और छोटी बहू ने पिछले कई दिनों से सविनय अवज्ञाभंग आन्दोलन छेड़ रखा था एक प्रकार का। रसोईघर को रामेसरी सँभाले हुई थी। घर-आँगन का बुहारना-लीपना और अपने तीन बच्चों को सँभालना—मँझली बहू के जिम्मे काफी काम था। बड़ी के दो बच्चे बड़े हो चुके थे, दो छोटे थे; छोटी के दो बच्चियाँ थीं। दोनों अपने बच्चों में उलझी रहती, घर के सामूहिक कामों में जरा भी दिलचस्पी नहीं लेतीं। खाना तैयार हो जाने पर मेहमान की तरह जातीं और रसोईघर से खा आतीं, जीमने के बाद धुले हुए हाथ अपनी-अपनी कोठरी में ही आकर सुखातीं ! बच्चे तो खैर अपना-अपना थाली-कटोरा सँभाले दिन-भर पंगत जमाये रहते, उन्हें यही ट्रेनिंग मिली थी। मँझली अपने काम कर चुकने पर सास और ननद की जरा-मरा सेवा जरूर करती थी। बिसेसरी भी काफी काम करने को तैयार रहती, लेकिन रामेसरी को यह पसन्द नहीं था कि लड़की का इस जंजाल में अभी से जुत जाय। बाकी तीन लड़के थे जो परिवार के लिए बाहरी काम भी करते, थोड़ा-बहुत खेती भी और अपना पढ़ते भी।

पाँच

स्टेशन कोस-भर दक्खिन था, [illegible]। नौगछिया स्टेशन से सीधे उत्तर पड़ता था।

लेकिन शाम को जो दो टमटम गाँव के भीतर घुसे वे दक्खिन नहीं, उत्तर से आये थे।

ट्रेन से न आकर सड़क से आये थे, इसी से।

खोखा पण्डित ने उमर छिपाने की लाख कोशिश की मगर दूल्हे के भांजे ने इतना तो कबूल कर ही लिया कि मामाजी की आयु पचपन वर्ष की है। पण्डित की बात से तो यही लगता था कि अधिक से अधिक चालीस की उमर होगी वर की।

दूल्हा के आने में अभी दो घण्टे की देरी थी।

शुक्ल पक्ष था तो क्या, बरसात का मौसम शुरू हो चुका था। जेठ सुदी तेरस। ब्याह का लगन साढ़े दस बजे रात का था। ठीक उसी वक्त उस गाँव के भी दो ब्राह्मण-युवकों की शादी कहीं होनेवाली थी। इसके बारे में भी लोग बातें कर रहे थे। ताजा और गरम खबर लेकिन पण्डित की नतनी के लिए आनेवाले इस दूल्हे को लेकर ही उड रही थी।

साफ-साफ तो कोई किसी को बताता नहीं था। सभी कह रहे थे—"बड़ा अच्छा हुआ; घर भी ठीक, वर भी ठीक। बिसेसरी को जैसा चाहिए वैसा ही दूल्हा, भगवान ने जुटा दिया..." मुदा अन्दर-अन्दर कुछ दूसरी ही बातें सुनाई पड़ती थीं। जहाँ देखिए, दो-तीन जने खड़े हैं या बैठे हैं और फुसफुस चल रही है। चलिए, आप भी अपना कान कहीं भिड़ा दीजिए—

"देखा तो नहीं है अभी !"

"अरे, अभी आया ही कहाँ ?"

"दुपहर रात से पहले थोड़े ही आयेगा !"

"पण्डित तो बुड्ढा बैल पकड़ लाया है, राम-राम !"

"समूचे गाँव की नाक काट ली इसने तो ?"

"और नहीं तो क्या !"

"अच्छा, यह तो बताओ, कितना गिनाया होगा पण्डित ने ?"

"डेढ़ हजार।"

"धत् ! इतना कौन देता है ?"

"अजी नहीं, बड़ी चिड़िया फँसी है !"

"हजार से ज्यादा नहीं मिला होगा !"

"आठ सौ !"

मुखियाजी के दालान के सामने चार-पाँच जन बैठे थे। अलग एक ओर बम्बई आम का ढेर लगा था। चोरों के डर से तोड़ लिया गया था। अपनी बाड़ी में मुखिया के बाप ने चार पौधे कलमी आम के लगाये थे। दो बम्बई के, एक सफेदा का और एक कलकतिया का। अबकी मालदह (लँगड़ा) तो दगा दे गया था, बाकी तीनों पेड खूब फले थे।

"क्या होगा अधिक लेकर ?" मुखिया का भाई बोला। वह खैनी ठोककर फिर कहने लगा एक अधेड़ आदमी की ओर अपना रुख करके—"सुनते हैं फतूरी काका ?"

"कहो न !" फतूरी बोले और बगल में माथा झुकाकर निचले होंठ को दिये की शकल में कर लिया, बड़ी देर तक भीतर दबाकर रखा हुआ सुरती का जूम 'पिच्' से जमीन पर गिरा। लार की तार टूटी तो धोती के खूँट से होंठ पोंछकर

वह पूछने वाले की तरफ गदन बढ़ा चुके थे।

मुखिया का भाई भीमनाथ अपने खास श्रोता को सतर्क पाकर कहने लगा—
"क्या होगा इससे अधिक लेकर? देवता-पितर और बाल-बच्चों के लिए यही आम काफी है, एँ फतूरी काका? नहीं?"

हाथ फरकाकर फतूरी बोले—"दुर् बुड़बक कहीं के! आम से भी कभी किसी का मन भरा है?"

सवा पसेरी के वजन की बात सुनकर कमजोर दिलवाला भीम एकदम सिटपिटा गया। दबी आवाज निकली— "सो नहीं फतूरी काका! सो नहीं, मैंने सो कहाँ कहा है? कहा है कि इतना आम···"

"इतना आम फतूरी ठाकुर दो बैठक में चट कर जाएँगे।" अपना सीना ठोककर वह वीरपुगव गरज उठे।

हतप्रभ होकर भीम वहाँ से उठ गया, सुरती अभी तैयार नहीं हुई थी।

"कहाँ चले?" स्वर हल्का करके पूछा।

"कहीं नहीं, जरा बछड़े को देखता हूँ···बेचारे को डांस परेशान कर रहे हैं।" बाईं मुट्ठी मे चून-तम्बाकू दावे दाएँ हाथ से अंगौछी की गदा घुमाते हुए चले गये भीमनाथ, सामने जहाँ तीन-चार गाय-बैल बँधे थे।

तब तक कथा का सूत्र खोंखा पण्डित को छू चुका था।

"कैसे हो? यह सब क्या सुन रहे हैं?"

"बुड्ढा बैल यह कहाँ हाथ लगा पण्डित के?"

"जिसकी कहीं न पूछ, उसी के लिए तो सौराठ का मेला लगता है!"

"सुना है कि रतौन्ही है!"

"अजी, दाँत तो बत्तीसो झड चुके है!"

"सुनाई पड़ता है कि नहीं?"

"है मुदा भारी मातबर···"

"सो तो है!"

"दो हाथी भी हैं!"

"भारी मातबर है, कल यहाँ घर पीछू दो-दो रुपैया बाँटेगा, हाँ!"

"हाँ बाबू, खानदान बड़ा हो तो मुट्ठी भी खुली ही होती है।"

"दलिद्दर के दरवाजे पर इतना बड़ा आदमी आ रहा है, बात-व्यौहार में कहीं कुछ अलट-बिलट हो तो अपने नौगछिया की जगहँसाई होगी!"

"सो, मुखियाजी रहबे करेंगे।"

इस पर मुखिया भरियाकर बोला—"फतूरी काका भी रहेंगे ही!"

सभी ने एक स्वर से कहा—"फिर काहे की तरद्दुत!"

मुखिया के मकान के कुछ आगे बढ़ने पर छोटा-पुराना एक पोखरा था।

पचासों साल की लापरवाही का जीता-जागता सबूत। पनियाही घासों की हाथ-भर मोटी घनी तह छाई हुई थी, इस कछार से उस कछार तक। चौकोर गड्डे की छाती पर स्वयंभू घासों का वह अजीब मैदान जेठ के इस महीने में भी आँखों को अच्छा नही लगता था। बीचों-बीच लाट खड़ी थी, बीस-एक हाथ ऊँची रही होगी। अपने पुरखों की इस कीर्ति की ओर से मुखिया और उसके गोतिया लोग बिल्कुल उदास थे। भिड पर तीन तरफ केवटों और ग्वालों के घर थे, चौथी ओर गाव्हड, जामुन, बेल, खैर, जीमड़, पितौझिया का मामूली जंगल था। गाँव-भर की दिसा-फराकत का स्थान। उस ओर सड़क से बाहर का कोई अन्धा आता होता तो विकट दुर्गन्ध के मारे वह यों ही समझ लेता था कि गाँव पास ही है।

छेदी राउत के बथान की छोर उस पोखरे के भिड को छूती थी। वहाँ तीन-चार अधेड़ औरतें खड़ी थी। वही फुसुर-फुसुर चल रही थी—

"सुना है तुमने?"

"क्या, कुछ बतायेगी भी कि ऐसे ही?"

"खोंखा पण्डित की नतनी का ब्याह हो रहा है।"

"कहाँ का लडका है?"

"लड़का! हि: हि: हि: हि:···लड़का!!"

"ठूँठ पीपल की गाँठ उठा लाया है पण्डित।"

"भग्!"

"दुत्! सच कहती हूँ तेरी कसम!"

"खचिया-भर रुपैया गिनाया है पण्डित ने!"

"अगे मैंइयाँ! एको गो दाँत नहीं होगा उसके···"

"बिसेसरी कैसे बुड्ढे के साथ सोयेगी?"

"सोयेगी कपार? कमर कूटेगी।"

"बुढ़वा भारी मातबर है।"

"मातबर होगा तो अपने घर, हमें क्या? देगी पण्डिताइन एक छीमी केला भी हमे?"

दिगम्बर का बैठका सूना पड़ा था। तख्तपोश के नीचे सिलेबिया कुत्ता गोलियाकर बैठा हुआ था। आकाश में हल्के-फुल्के धुएँ-से बादलों मे तेरहीं चन्द्रमा की हाथापाई देखने लायक थी।

बूलो की भाभी बीच आँगन में पुराने कम्बल के टुकड़े पर बैठी हुई थी। सामने पूनियों स भरी डलिया थी, कटोरा था, तकली थी। गोदी का बच्चा सोने-वाला था। अभी वह एक थन को बाएँ हाथ से थामकर हौले-हौले पी रहा था, दाएँ हाथ की पहली-दूसरी उँगलियाँ दूसरे थन की घुण्डी पर यों ही फिर रही थीं। माँ तकली-पूनी परे करके अभी सोये बच्चे की पीठ और जाँघों पर अपना दाहिना

हाथ फेरने में मगन थी।

अन्दर, घर में लालटेन की हल्की मगर साफ रोशनी छाई हुई थी, वह प्रकाश चौकठ लाँघकर आँगन की बीचवाली दो हाथ जगह की परिधि को क्रमश: अधिक फैलाता हुआ चला गया था और सामने अमरूद की सादी हरी पत्तियोंवाली घनी टहनियों में उलझकर अपनी गति खो बैठा था।

हल्की-पतली फुसफुस !

मन की समूची शक्ति लगाकर सुनोगे तो भी पल्ले नहीं पड़ेगा कुछ, हाँ !

तो, भीतर बूलो किसी से सलाह-मशविरा कर रहा होगा ! क्यों, है न यही बात ?

अच्छा ? यह बात है !

बूलो, माहे, दिगम्बर···दो और अपरिचित चेहरे !

फुसफुस

"जल्दी करो !"

"हाँ माहे, देर हो रहा है !"

"माहे, तुम फौरन निकलो।"

"हूँ।"

"और तुम दोनों भी !"

"अच्छा !"

बूलो और दिगम्बर को छोड़कर बाकी तीन निकल गये, एक-एक करके।

अपरिचितों में से एक हेहुआ था, दूसरा गोनउड़ा। हेहुआ केवट था, गोनउड़ा था ग्वाला। दोनों नौजवान थे, मसें भींग रही थीं।

हेहुआ के चेहरे पर माई की गोटी के दाग थे। साँवली सूरत, डीलडौल का अच्छा। कद औसत। पहनावे में नौ हाथ धोती, बस ? नहीं, काले धागों में गुँथा हुआ तांबे का कण्ठा गले में और दाहिनी भुजा पर मूँगे का बड़ा-सा दाना—छेद के सहारे पीले धागों की तीन बारीक डोरियों में बँधा था···बस !

भूरे बालोंवाले श्री गोनउड़ राउत यादव भाई थे, सूरत गोरी-भूरी और आँखें बादामी। कद ऊँचा, चेहरा भरा हुआ। पहनावे में धोती। हाथ-गोड़[1] बड़े-बड़े।

वे दोनों निकल गये तो माहे जरा देर तक भाभी के पास बैठा रहा।

फुसफुसाकर वह बोली—"देखो बाबू, मार-पीट नहीं करना !"

माहे दाहिने हाथ की एक उँगली से बार-बार साफ-सुथरे आँगन की चक-चक करती हुई उस धरती पर 'माहेश्वर झा', 'माहेश्वर झा' लिखता-मिटाता था। अब मार-पीट की बात कान में पड़ी तो एक नजर में भाभी के मुँह की ओर देख

1. पाँव

लिया, फिर बोला—"सब कुछ करना होता है मौके पर रानीजी !"

"ऊँ ?"

"खेल नहीं है भाभी, एक लड़की के जीवन का सवाल है।"

भाभी चुप रह गयी, अपने आवेग को उसने रोक लिया। समस्या की गम्भीरता पर ध्यान जाते ही उसका चेहरा भारी हो उठा। गोदी का बच्चा सो चुका था। उठकर उसे सुलाने चली घर की ओर तो माहे से उसने पूछ लिया—"पानी पियोगे बबुआ ?"

"पिला दो।"

"अच्छा !"

माहे सोचता रहा, आज इसको भी नींद नहीं आयेगी। हर बात में भाभी हमारी तरफदारी करती है। हमारे खिलाफ जो भी शिगूफा छूटता है, उसमें यह हमारी ओर से वकालत करती है। हमें बढ़िया से बढ़िया सलाह देती है···और मोह तो देखो ! मार-पीट मत करना ! बिसेसरी की भलाई हम जितनी चाहते हैं उससे रत्ती-भर भी कम भाभी नहीं चाहती होगी, बल्कि अधिक ही कह लो। मगर हम किसी मुसीबत में पड़ जायँ, यह भी इसे बर्दाश्त नहीं है··· नहीं भाभी, हम नाहक मार-पीट नहीं करेंगे।

झकाझक करते हुए फुलही गिलास में लाकर भाभी ने पानी दिया माहे को। वह गट-गट करके एक ही साँस में सारा खींच ले गया भीतर। आँखें मगर भाभी के चेहरे पर नाचती रही थीं।

भाभी कोई ऐसी सुन्दरी नहीं थी कि लाख में एक हो। हजार में एक शायद रही हो वह। लेकिन थी दिलेर और दिलदार, इस दृष्टि से वह अवश्य ही लाख में एक रही होगी। बुल्लो की तो खैर वह अपनी ही थी, दिगम्बर और माहेश्वर और जो भी कोई उसके सम्पर्क में थे, सभी का मुँह टूटता था नेपाल तराई की इस किसान-कन्या की सराहना करते ! किसी दूसरे व्यक्ति की प्रशंसा से उनका जी भले ऊब उठता हो, भाभी के गुणगान से कभी उनका मन नहीं भरा ! ऐसी थी बुल्लो के भाई की यह घरवाली !

छः

नौ-दस साल की लड़की आयी और बिसेसरी के पास जाकर बैठ गयी। उसके बाल सँवारे जा चुके थे, चोटी गुँथ चुकी थी, आँखों में काजल लग चुका था।

गहने रामेसरी के अपने कम ही थे। अपनी हँसली दो साल पहले ही उसने बेटी के गले में डाल दी थी। पति की दी हुई नथ थी, कंगन थे और करधनी थी। सो, आज सन्दूक से निकालकर—खटाई से माँज-मूँजकर, सुखा-पोंछकर रखे हुए थी। मँझली बहू से चन्द्रहार ले आयी थी, छोटी बहू से झुमके। गले में डालने की चाँदी की चकतियाँ बड़ी बहू खुद ही निकाल लायी थी।

रामेसरी ने एक-एक कर बिसेसरी को गहने पहनाये। लड़की को बार-बार प्यास लगती थी, उसका मन परेशान था। दिल बुरी तरह धड़क रहा था। आज सभी उसे एक अजीब नजर से देख रहे थे। अँधेरे घर में साँप ही साँप! उसे बड़ा ही डर लग रहा था, अगले क्षणों में क्या होनेवाला है···दूल्हे के बारे में सही बातें बिसेसरी से अच्छी तरह छिपा रखी गयी थी। वह तो खैर बूलो की भाभी से सबेरे ही थोड़ा कुछ बेचारी को मालूम हुआ था। चतुरा चौधरी के पीछे पिछले तीन दिनों से पण्डित पड़ा था, रिश्ते की बात पक्की-सी हो चुकी थी और कल रात को जो लोग सौराठ से लौट आये थे, उनकी मेहरबानी से यह समाचार गाँव के वायुमण्डल में तभी से मँडरा रहा था। पहला आदमी खजन थी जिसके मुँह से बिसेसरी को यह बात मालूम हुई और तब बेचारी को जैसे साँप सूँघ गया! घायल हिरनी-सी दौड़कर वह बूलो के घर गयी और भाभी की गोद में बेसुध गिर पड़ी। अपनी नौकरानी भेजकर भाभी ने फौरन दिगम्बर और माहे को बुलवाया, बूलो मौजूद था ही। बिसेसरी उस गँवई 'बमपार्टी' की अनियमित सदस्या थी, पिछले छः महीने से। वे एक-दूसरे की दिक्कतों से पूर्ण परिचित थे। खेल-मनोरंजन, सोच-विचार, सुख-दुःख···कभी-कभी नाश्ता-पानी भी—बहुत-सी बातों में वे परस्पर आत्मीय बन चुके थे। आज दुपहर तक माहे और दिगम्बर भाभी के पास बैठे थे, यह तय करके ही उठे थे कि बिसेसरी का ब्याह उस बूढ़े से कदापि न होने देंगे। बिसेसरी गोकि पहले ही वहाँ से उठ आयी थी मगर मन उसका अच्छी तरह मान गया था कि मेरा गला ये लोग नहीं कटने देंगे···लेकिन यह तो दुपहर की बात हुई न? पहर-भर रात बीत गयी है, दूल्हे का सर-सामान और उसके आदमी बाहर बैठके में आकर जम गये हैं। नाना स्वयं अपने हाथों 'कन्यादान' करेंगे, सो, नहा आये हैं और सन्ध्याकालीन पूजा-पाठ से निबट रहे हैं। कुलदेवता के समक्ष मंगल-गान आरम्भ हो चुका है, बड़ी-बूढ़ी औरतें और नयी-नवेली बहू-बेटियाँ रस ले-लेकर गा रही हैं। नानी स्वयं पूड़ियाँ छानने बैठी है, माँ साधारण रसोई में। मुझे सजा-सँवारकर मौके के लिए तैयार कर लिया गया है—अब और मेरे सर्वनाश में क्या बाकी बचा है? वह देखो, नाई हवन की लकड़ियाँ ला रहा है, कुम्हार

हाथी-पातिल-पुरहड[1] और सकोरे वगैरह ले आया है। मँझली मामी आँगन के बीचोबीच ब्याह के लिए जगह लीप रही है। छोटी मामी कनेर के पीले फूलों की माला गूँथ रही है। बड़ी मामी का सारा ध्यान अपने बच्चों को धड़िया-धोती, अंगा-टोपी और आँगी-घघरा पहनाने में लगा हुआ है और दुलहिन यहाँ झख मार रही है! हे भगवान, कैसे मैं यह जहर पियूँगी ?

रह-रहकर बिसेसरी के मन में यही तरंग उठती थी कि कुएँ में जाकर कूद पड़े···बीच आँगन में खड़ी होकर चिल्ला पड़े—इससे अच्छा यही होगा कि भगवती दुर्गा की पीडी पर मेरी बलि चढ़ा दो···

उसे भाभी, माहे, दिगम्बर और बूलो आदि याद आये—वे बैठे नही होंगे; कुछ न कुछ मेरे लिए वह जरूर करेंगे। घुप अँधेरे में आशा की एक झलक बिसेसरी को दिखाई पड़ी और कमर सीधी करके एकाएक वह खड़ी हो गयी। गहनों के झंकार से बरसों का वह मौन टूट गया।

वह छोटी लड़की जो अभी तक चुपचाप बैठी थी, चट से उठकर आगे बढ़ी। उसने इधर-उधर देखा, वहाँ कोई नही था। सब आँगन या दूसरे घरों मे कुछ न कुछ कर रही थी। इस कोठरी में बिसेसरी को छोड़कर वह खुद ही थी।

मौका पाकर उसने बिसेसरी के हाथ मे एक पुर्जी गोंज दी और चली गयी।

इस घर मे एक ढिबरी जल रही थी, लालटेन सभी बाहर जगमगा रहे थे।

बिसेसरी निकलकर बाहर बरामदे तक गयी और झाँककर देखा, सब अपने-अपने काम मे लगी थीं। फिर वह अन्दर आ गयी। सन्दूक की आड़ में ले जाकर कोने के एक आले में ढिबरी रख दी, पुर्जी को खोलकर बाँचना शुरू किया।

"प्रिय बिसेसरी,

घबड़ाना नहीं। हमने तुमको जो वचन दिया; उसे पूरी तरह हम निभाएँगे। तुम जरा भी मत घबड़ाओ। तुम्हारी मदद की अभी तो कोई जरूरत नहीं है, आगे भी जरूरत नही पड़ेगी—ऐसी आशा है। सबसे बड़ी सहायता तुम हम लोगों की यहीं कर सकती हो कि अपने दिल को कड़ा किए रहना—13/6/50 दिगम्बर"

भरोसे की चन्द पंक्तियाँ बिसेसरी को संकट-मोचन का अमोघ आश्वासन प्रतीत हुई। एक, दो, तीन, चार जाने कै बार वह उन पंक्तियों को आदि से अन्त तक पढ़ गयी, फिर भी सन्तोष नही हुआ। देवी-देवता का फूल अन्दर डालकर लोग बड़े जतन से जन्तर मढ़वाते हैं ताँबे का, चाँदी का, सोने का, अष्टधातु का;

---

1. शादी के वक्त मिट्टी का पक्का हाथी सामने रखा रहता है। पातिल वह हँड़िया है जिसके अन्दर दिया जलाकर, ऊपर ढक्कन से आधा ढँका रहता है। पुरहड़ (पुरोघट)—मंगलकलश।

वे उसे बाँह में, गले में, कमर में बाँधते हैं कि हमेशा शरीर से लगा रहे। लेकिन बिसेसरी को इतने-भर मे कहाँ तसल्ली होती ? उसका वश चलता तो अभी छाती चीरकर इस पुर्जी को वह अन्तःकरण में सँभाल रखती !

पिछले आठ-दस घण्टो मे अपने इन बन्धुओं के मन की एक भी बात बिसेसरी तक नही पहुँची थी, पहुँचता रहा बस एक यही सुसमाचार कि रानी बनेगी बीसो —सोने के गहनो से लद जायेगी, हाथी पर चढ़के गौरी को पूजेगी !

अपने अन्दर आज उसे सचमुच नया खून महसूस हुआ। एक प्रकार की नयी चेतना मे उसके अंग-अंग में फुर्ती दौड़ने लगी—तो वह अकेली नहीं है। दिगम्बर और माहे, भाभी और बूलो गाल ही नहीं बजाते थे सिरिफ, वे कुछ कर भी सकते हैं।

मन हुआ कि एक-एक करके सब गहने उतार डाले और चुपके से भाग जाय। पिछवाड़े से दाईं तरफ माहे की बाँसों की वाड़ी है, आगे खेत शुरू होते है। काफी दूर तक गन्ने की खेती है···मगर इस तरह भागकर वह जायेगी कहाँ ?

बिसेसरी का दिमाग फिर चकराने लगा।

भीत के सहारे वह धम्म मे बैठी तो कागज का वही टुकड़ा ठुड्डी से छू गया। वह अब तक उसके हाथ में ही था। पुर्जो के स्पर्शमात्र से बिसेसरी फिर सँभल गयी।

ढिबरी को नीचे किये बिना ही वह पुर्जो को फिर बाँचने लगी, मन ही मन···

अपने को उसने फटकारा—घबड़ाती क्यों है ? सोचने का सारा ठेका तूने ही ले रखा है क्या ?

तब उसे ध्यान आया कि पेंसिल से चार आखर घसीटकर भाभी को भेजवा देती ! लेकिन, अब वक्त भी कहाँ है ? और ले भी कौन जायेगा आखिर !

कि इतने मे एकाएक आँगन की हलचल कई गुना बढ़ गयी !

यह क्या हुआ ?

आ तो नहीं गया वह कसायी ?

हे भगवान !

सचमुच यही बात थी। घोड़े की हिनहिनाहट ने बिसेसरी के दिल की धड़कन को और बढ़ा दिया। वह न उठी, न हिली। बाईं हथेली पर ठुड्डी टेके, रुक-रुककर चलती साँसों से घबड़ाहट को और परे धकेलने की कड़ी कोशिश में वह लग गयी।

बाहर बैठक में, कई तख्तपोशों पर कम्बल और जाजिम बिछे थे। छोटी चौकी पर ऊन का खूबसूरत आसन बिछा था। पास ही बड़ा लोटा, पानी-भरा ताँबे का घड़ा और पीतल की अढ़िया धरी थी।

दूल्हा बाबू के पैर धुलवाए गये, उन्हें भली भाँति पोंछवाया गया। इस ड्यूटी पर बूढ़े छकौड़ी खवास तैनात थे।

दूल्हा के बैठ चुकने पर घरवाले और गाँववाले भी बैठ गये। सब चुप थे, एकटक दूल्हे के चेहरे की तरफ देख रहे थे।

उमर उसकी साठ से कम की तो क्या होगी, दो-एक वर्ष अधिक ही होगी। चेहरा रोबीला था। कान छोटे-छोटे, आँखें बादामी। नाक न खड़ी, न पड़ी। होंठ पतले। बाल पके हुए। मूँछे बारीकी से छँटी हुई, दाढ़ी साफ। गालों में गढ़े पड़ गये थे। सिल्क का कुर्ता, टसर की पगड़ी, रेशमी चादर। सिकिया कोर की फर्स्ट क्लास धोती। हिना और केवड़े की तेज खुशबू से लोगों की नाक भर-भर उठती थी। गेहुआँ कपार पर गीले सेंदूर का गोल टीका पेट्रोमैक्स की तेज रोशनी में बड़ा ही भला लग रहा था।

पण्डित मय पाँचों पूत आगन्तुक की अभ्यर्थना में हाजिर थे।

बाकी लोगों में मुखियाजी थे, फतूरी ठाकुर थे, परमानन्द पाठक थे। जयनारायण मल्लिक, मधुसूदन कण्ठ, श्रीनारायण प्रतिहस्त, गाँव के स्कूल के चारों मास्टर, संस्कृत पाठशाला के जोतशीजी और बीसियों दूसरे लोग भी मौजूद थे।

रात पहर-डेढ़ पहर बीत चुकी थी। दस क्या, एगारह का अमल होगा। उमस काफी थी। पंखों के अभाव में बड़े-सयाने अँगौछी झुला-झुलाकर हवा ले रहे थे, लड़के हाथ झला-झलाकर। पेट्रोमैक्स ने गर्मी की मात्रा कई गुना बढ़ा दी थी। कीड़ा-फतिंगों को झुलस-झुलसकर मरने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ था।

चर्चा चली कि पाकिस्तान जोर मार रहा है, काश्मीर में फिर घमासान मचेगा···बात का छोर कांग्रेसी शासन से छू गया तो खोखा पण्डित बीच में ही टप-से बोले—"अंग्रेज बहादुर ही अच्छे! इनसे तो हम भर पाये···बिना राजा के कहीं कोई राज चला है?"

छकौड़ी खवास बैठक से हटकर अँगनाई में बैठा था। तमाकू खोंट रहा था, खैनी मलने के लिए। वह बोला—"अंग्रेज लहू पीता था, ई लोग हड्डी चबाते हैं पण्डितजी!"

इस पर मुखियाजी कड़वाहट से भर गये, कहा—"धन्य कांग्रेस सरकार कि हमारी-तुम्हारी इज्जत-आबरू बची हुई है! दूसरे की हुकूमत होती तो आजकल केला-थम्भ की छाल इसी भाव से खरीदते लोग और सो भी कहाँ मिलती?"

फतूरी ठाकुर ठीक इसी वक्त कपड़ा कंट्रोल की शिकायत करने लगा—"जवाहिरलाल का भला इसमें क्या कसूर है! अफसर साले घूस खाते हैं, दुकानदार उनको चाँदी सुँघा देता है बस···"

दूल्हा भला क्यों पीछे रहने लगा? बोला—"सरकार मलेच्छों के प्रभाव में

है, हम हिन्दू अगर आपसी भेद-भाव भूलकर एक हो जाएं तो कल ही रामराज स्थापित हो जाय।"

"दैहिक दैविक भौतिक तापा
रामराज काहुहि नहि व्यापा।"

बाबा तुलसीदास की बात एकता और धर्म के बिना कैसे अमल में आयेगी !

कि बूंदाबांदी शुरू हुई।

बादल उमड़-घुमड़कर तो नहीं आये थे। दो-चार खण्डमेघ आकाश में मटरगश्ती कर रहे थे, अब ठीक माथे पर पहुँचकर अलसा गये तो ढीले पड़ने लगे। बूंदों की पटापट सुनकर बैठक मे बैठे हुओं के कान गुदगुदा उठे, देह में हल्की सिहरन हुई।

छकौड़ी ने जल्दी में मुरती ठोंकते हुए कहा—"देखना हो इन्नर महाराज, सुभ काज में बिघन मत डालना !"

फिर उसे कुछ याद आया—

"मालिक का घोड़ा कहां है पण्डितजी ?"

"अरे हाँ, घोड़ा कहाँ है बच्चन ?"

पेट्रोमैक्स की लाइट जहां सबसे अधिक पड़ रही थी वहीं बैठकर बच्चन जनेऊ मे गाँठ दे रहा था, सामने चँगरी मे तीन-चार जोड़े जनेऊ पड़े थे—पीले रंग के। और तानियों में गाँठ पड़ चुकी थी, यही एक तानी गँठियाने को रह गयी थी। एक तानी मे इतना लम्बा धागा रहता है कि तीन फेरों की जनेऊ होती है, आमतौर पर लोग छः फेरों की दो जनेऊ धारण किए रहते हैं कि एक-आध धागा कहीं टूट-टाट गया तो तन-मन की शुद्धि बनी रहेगी। सो, आज बियाह-संस्कार के समय कई जनेउओं की जरूरत थी। बच्चन जल्दी-जल्दी जनेऊ गठिया रहे थे। गाँठ डालकर जनेऊ को उन्होंने समेटा-गोलियाया और बोले—"घोड़ा तो पोखर पर है, पीपल की जड़ से बंधा है। दो टोकरे हरी घास डाल दी गयी थी उसके आगे, खा-वाकर आराम कर रहा होगा बैठ के।"

पण्डित ने यह सुना तो उनका मन थिर हुआ, हल्की-सी हुँकारी भरकर रह गये।

तब तक बूंदा-बाँदी खतम हो चुकी थी।

छकौड़ी ने तैयार सुर्तीवाला दाहिना हाथ सलीके से आगे बढ़ाकर दूल्हे के भांजा से कहा—"लिया जाय हजूर !"

उसने डबल जूम तमाकू छकौड़ी की तलहथी पर से उठाकर निचले होंठ और दांतों के दर्म्यानी गढ़े के हवाले किया और बैठने की मुद्रा बदल ली। पालथी मार

कर बैठा था सो अब चुक्कीमाली[1] हो गया।

खबास ने फतूरी ठाकुर को भी सुर्नी दी, बल्कि हाथ बढ़ा के लेने को कहा।

रही-सही खैनी उसने आप फांक ली तो बरामदे से नीचे उतरकर अँगनाई में जीमड के अधबीजू खूँटे से पीठ टिकाकर आ बैठा...

कटी-टूटी बातें पंखहीन तितलियों-सी बैठके में अब भी रेंग-रेंगकर चल ही रही थी।

छोटी जात का एक छोकड़ा दूल्हे के पास खड़ा था और किनारीदार बड़ा पंखा चला रहा था, पुराना और पीला पड़ गया हुआ ताड़ के पोढ़ पत्ते का पंखा—लम्बी-मोटी डण्ठलवाला।

बीच ही में मुखिया ने मँगवा लिया था, दादे के अमल का अपना पंखा। गाँव की इज्जत को ऊँची बनाये रखने में मुखिया अपना-पराया सब भूल जाता था!

कितना बड़ा मातबर आदमी आज नौगछिया आया था!

फिर भी जाने क्या बात थी कि दूल्हा रह-रहकर कछमछा उठता था। वह इधर-उधर नजर घुमाकर फिर-फिर अपनी बाईं कलाई उठाता था।

कै बज गये?

पौने बारह!

देर क्यों हो रही है?

कुछ नहीं, दूसरा मुहूर्त पौने एक बजे पड़ता है जो कि साढ़े दस वाले से कहीं तगड़ा और महाशुभ है।

अच्छा, तो यह बात है!

मगर बड़ा ही विलम्ब होगा।

हटाओ भी, मंगलमय परिणामों के लिए हमारे पूर्वज कठोर से कठोरतर साधना कर गये हैं, हम रात-भर जाग भी नहीं सकते? छि:!

दूल्हे की कमर सीधी हो गयी, वह तनकर बैठा।

1. मुड़े घुटनों को पीठ के सहारे अंगौछी से तनिक ढीला-ढीला-सा बाँध लेते हैं, इससे बिना उठे भी अपने-आप एक सहारा हो जाता है।

सात

बिसेसरी को लेकर सधवा औरतें गाँव के बाहर आम और महुआ के पेड़ पुजवाने गयी थीं।

बाहर बैठक में तो रौनक थी, लेकिन आँगन मानो खाली था। रामेसरी और मंझली बहू, बस दो ही जने रह गये थे घर में। बाकी सब—बच्चे तक—पेड़पूजन के निमित्त जो शोभायात्रा निकली थी अपने आँगन से, उसी में शामिल होकर बाहर निकल गये थे। टोला की अपनी पुरानी कुतिया तक उस जुलूस में साथ गयी थी···वह बिल्कुल स्वस्थ रही हो ऐसी बात नहीं, तो भी बेचारी साथ गयी थी—बारह साल के पिछले जीवन में उसका बिसेसरी से अटूट सखीभाव चला आ रहा था, आज ही भला वह क्यों पीछे रह जाती?

रामेसरी और मंझली बहू अपने कामों में मशगूल थीं।

बैठक के कोने पर एक छोटा दरवाजा था, वह अन्दर घर की ओर खुलता था। यों तो समूचा ही बैठका भीतरी मकान का बाहरी हिस्सा था, लेकिन था वह बिल्कुल स्वतन्त्र। बैठके के दोनों छोर कक्ष थे, कमरे थे दो छोटे-छोटे। उन्हीं में से एक कोठरी का लगाव अन्दर हवेली से था।

रामेसरी झाँक-झाँककर दूल्हे का चेहरा-मोहरा देख चुकी थी। वह बहुत उदास थी। शकल-सूरत तो आदमी की कोई उतनी बुरी नहीं थी, हाँ, पकी उमर और तीन-चौथाई सफेद बाल बेचारे को बिसेसरी के अयोग्य घोषित कर रहे थे।

अभी वह वर-वधू के लिए खीर तैयार कर रही थी।

साधारण रसोई से अलग, मिट्टी के ताजे चूल्हे पर पीतल का मामूली तसला चढ़ा था। दो चैलियाँ, फटे-पुराने बाँस की फट्टी। मजे की आँच थी। खौलते दूध में चावल उबल रहे थे।

पास ही रामेसरी बैठी थी। आधी पल्थी, दूसरा घुटना उठा हुआ। दाहिने हाथ में पीतल की कलछी, बाईं हथेली पर ठुड्डी टिकी थी।

सामने की आँच की ओर एकटक निगाह।

"किस गुनधुन में पड़ी हो दइयन्नि?"

मंझली बहू के स्वर ने रामेसरी की अन्यमनस्कता से टक्कर ली, फल कुछ नहीं निकला। वह सूनेपन में छितरा गया।

मँझली बहू नजदीक आ गयी।

ननद की आँखों में झाँककर देखा।

अब भी रामेसरी खोई ही रही, मन की समूची शक्ति जाने किस झोंझ में उलझ गयी थी कहाँ जाकर! शरीरमात्र वहाँ पड़ा था।

तसले का गला खौलते दूध के फेन से लबालब भर आया। मँझली बहू रामे-

सरी के हाथ से कलछी लेकर उस ओर लपकी और खीर घोटने लगी।

मँझली बहू भी दूल्हा देखकर झँवा गयी थी। यह उसकी कल्पना से परे की बात थी कि बीसो जैसी सोनछड़ी को बूढ़े पीपल की डाल से लटका दिया जायेगा। वह स्वयं एक गरीब ब्राह्मण की बेटी थी। उसका बाप ईमानदार और निर्लोभी पण्डित था। पूर्वजों की अर्जित जमीन थी, पाँच बीघा। दो हट्टे-कट्टे बेटे थे। लग-भिड़कर वे धरती माता की उपासना करते थे। लड़कियाँ एक नहीं, तीन थीं। मुदा उनमें से एक की भी शादी में उस बाभन ने रुपैया नहीं बनाया। अपनी ही तरह के मामूली गृहस्थों के घर उसे पसन्द आये।

मँझली बहू की आँखें छलछला आयीं, गला भारी हो गया—"दइयानि ?"

उसने रामेसरी के कन्धे पकड़ लिए, उन्हें हल्का झकोरा दिया—एक बार, दो बार, और तीसरी दफे भी।

रामेसरी की चेतना लौट आयी। वह सँभलकर बैठी।

"हो गया फुलकुम्मरि ?"

"हाँ, डाला सज गया।"

"देखो न, खीर अब भी नहीं हुई है !"

"वाह ! हो गया, मैंने देख लिया।"

"सच ?"

"तो क्या झूठ ?"

"ऊँ।"

"तुम चलो दइयानि, आँगन में चलकर बैठो। मैं आँच हटाकर अभी आयी।"

रामेसरी उठी और जाकर बीच आँगन में खड़ी हुई।

"अरे, बूँदें पड़ी थीं !"

अधिक नहीं, दस ही पाँच बूँदें पड़ी हैं, यह जानकर रामेसरी को सन्तोष हुआ।

लिपे-पुते आँगन में सफेद अइपन चक-चक कर रहा था, गाड़ी का चाका जैसी गोल और बड़ी परिधि में कुईं के फूलों की माला आँकी गयी थी। मध्य में षोडश-दल कमल अंकित था।

अइपन पर ध्यान जाते ही रामेसरी को अपनी माँ के बारे में अभिमान महसूस हुआ—मेरी मइया कैसी गुनमती है ! लोढ़ा-सिल और चक्की-ऊखल तो सब चला लेती हैं, यह विद्या सबके बस की नहीं।

सारी तैयारी पूरी हो चुकी है—रामेसरी अपने-आप बुदबुदाई। दूल्हे की शकल-सूरत न याद आ जाय, इसी से वह कुछ न कुछ बुदबुदाती रही। उसका मन इस अप्रिय स्मृति से बेहद कतरा रहा था।

'जो होना है, जल्दी हो जाय !'

'तो अब देर ही क्या है ?'

'गे मइयो, अभी क्या हुआ !'

'नाहक ही मत घबड़ा तू !'

'कहाँ घबड़ाती हूँ···'

कमर सीधी करके खड़ी हो गयी रामेसरी, जैसे ट्रेनिंग के समय रंगरूट को हवलदार ने कह दिया हो—हो शि या र !

घर मे मँझली बहू निकल आयी।

पास आकर ननद से उसने कहा—"दइयनि, और सब तो ठीक है, मेघो का विश्वास नहीं।"

"नही, अभी बरखा-तरखा नहीं होगी।"

"और अभी-अभी जो बूंदें पड़ गयी सो ?"

"बस, इतना-भर बरसना था।"

आकाश की ओर दाहिना हाथ उठाकर रामेसरी ने कहा—"दो-तीन टुकडे बादलों के वह देखो पच्छिम तरफ भाग चुके हैं। पछिया हवा होती तो तुम्हारा डर ठीक था, यह तो पुरवइया मिहक रही है···"

"भगवान करें !"

इसी बीच बाहर, बैठके की ओर से दुतर्फा आवाज आने लगी। स्वर साधारण नही था, उसमे झगडे की धसक थी। ऐसी कि मेड़ के दो ओर खड़े होकर दो खेतिहर आधा बित्ता जमीन के लिए तकरार कर रहे हो आपस मे।

स्वर की तिखाई एकाएक बढ़ गयी। एक आवाज थी खोंखा पण्डित की, दूसरी माहे की।

दूसरी आवाज में तिखाई उतनी नहीं थी जितनी कि दृढ़ता···

"फुलकुम्मरि, तुम इधर देखती रहो। मैं तनिक उधर देखूं।"

रामेसरी दौड़कर पछवरिया घर के ओसारे में आयी और दाहिनी तरफ से होकर उस कोठरी मे घुसी जिसका अगला दरवाजा बैठके की ओर खुला था! उसकी कोंढ़-करेज केले के नये पत्ते की तरह काँपने लगी थी···क्या होनेवाला है !

रामेसरी छाती पर दोनों हाथ रखकर किवाड़ी की आड़ में खड़ी हो गई। झाँककर देखने का साहस उसमें बाकी नहीं था। खतरे की प्रतीक्षा में निश्चेष्ट खडी रही वह।

"बाप चूल्हा फूँकते-फूंकते मर गया और तू हमारे घर में आग लगाने आया है ?" माहे की ओर हाथ बढ़ा-बढ़ाकर खोंखा पण्डित चिल्ला रहे थे। वह चुप था, निगाहे मगर दूल्हे पर गड़ी हुई थीं।

"जाता है कि नहीं यहाँ से, सूअर कही का !" पण्डित फिर चिल्लाए।

माहे ने मजबूती से कहा—"मैं जाने के लिए नहीं आया हूँ पण्डित बाबा, आपसे तो मैंने कुछ कहा भी नही है···"

"आग तो लगा दी है, कहेगा क्या !"

"मुझे आपसे कुछ मतलब नहीं है···"

माहे ने दूल्हे के भांजे को सम्बोधित किया—"आप तो, सुना है, पढ़े-लिखे हैं। क्यों न अपने मामा को समझाते हैं ? साठ साल की उमर, पाँच-पांच जवान बेटों के बाप···छी-छी-छी-छी ?"

खोंखा पण्डित ने यह सुनते ही माहे पर अपनी एक खड़ाऊँ फेंकी, वह वार को बचा गया। जाकर जरा अलग खड़ा हुआ और मुस्कराता रहा।

बच्चन अपने बाप को सँभालने में लगा था। दूसरे बेटे किंकर्त्तव्यविमूढ़ खड़े थे। पण्डित दाँत पीस-पीसकर मुँह टेढ़ा कर-करके अनाप-सनाप अपना बके जा रहे थे; दाहिने हाथ की मुष्टिमुद्रा बना-बनाकर और बायाँ हाथ से उसकी हत्थड़ पकड़-पकड़ के वह माहे को कह रहे थे—केला लेगा, केला? भोस और बाड़नर[1] ? अपनी माँ के···

उधर फतूरी और मुखिया दूल्हे से बातें कर रहे थे। उसका भगिना भी उन्हीं बातों में अपना कान-मुँह भिडाये हुए था।

पण्डित का चौथा लड़का—टुनाई—इस साल मैट्रिक में था। उसकी आयु बिसेसरी से डेढ़ साल बड़ी थी। उसका भी मन इस प्रकार के दूल्हे के पक्ष में नहीं था।

माहे का रुख देखकर टुनाई को यह समझते देर नहीं लगी कि गाँव-भर के नौजवान इस ब्याह के खिलाफ है, यह विरोध प्रदर्शन न तो अकेले माहेश्वर की ओर से है और न असंगठित ही है।

टुनाई स्वयं भी समझदार था और बहुत-सी बातों मे वह नवयुवकों का साथ देता। पिता की संकीर्ण मनोवृत्ति का शिकार वह खुद भी कई बार हो चुका था, बहनों की दुर्दशा उसे रह-रहकर कोंचती थी।

इस समय भाइयों को चुप पाकर टुनाई ने समझ लिया कि सिवाय बाबू (पिता) के यह दूल्हा किसी को पसन्द नहीं है; माँ और बहन डर के मारे कभी कुछ बोलती नहीं; जो मन में आता है बाबूजी वही करते हैं···देखो न, माहे बेचारा नाहक इनकी गालियाँ सुन रहा है, क्या बुरा कहा है उसने ? दूल्हे की क्या कमी है, एक नहीं एकइस मिलेगा···

वह चट से माहे के पास गया।

दोनों अलग जाकर सिदुआर की झाड़ियों की आड़ में फुसफुसाने लगे।

1. मोटे-मोटे केलों की दो जातियाँ।

"अब क्या होगा ?"

"वापस जाएगा बुड्ढा, और क्या होगा ?"

"लोग क्या कहेंगे ?"

"और, ब्याह हो जाने पर दुनिया क्या कहेगी ?"

....

"एक काम करोगे ?"

"क्या ?"

"अभी बिसेसरी गयी है आम-महुआ के पेड़ पूजने, लौट आए तो कहना—खूब पानी पी ले और मुँह में उँगली डाल-डालके कै करे···"

"फिर ?"

"फिर तुम बैठके में आकर सबके सामने यह खबर सुनाओ कि बिसेसरी की तबियत एकाएक खराब हो गयी है, उसे तीन कै और दो दस्त हुए हैं···"

"अच्छा।"

अब टुनाई ने माहे के बाएँ कन्धे पर अपना दाहिना हाथ धर दिया और पूछा—"तुम अब क्या करोगे ?"

"देख लेना," अपने कन्धे पर से उसका हाथ हटाकर माहे बोला।

टुनाई इधर आया, माहे उधर गया—पोखर की तरफ।

आठ

रात अधिक हो गयी थी।

बहुतेरे दूल्हा के पास तनिक देर बैठकर चले गये थे कि सेंध में सेंदुर पड़ेगी और फेरे पड़ेंगे तब आयेंगे और दूल्हा-दुलहिन को आशीर्वाद दे जाएँगे।

फतूरी, मुखिया और संस्कृत पाठशाला के जोतखीजी और छकौड़ी खवास—बस, गाँव का और कोई नहीं था। जो थे सो सब घरवैया ही थे, पण्डित और उनके बेटे। बाकी, दूल्हा बनने का मंसूबा बाँधकर जो आये हुए थे वह बाबू श्री चतुरा चौधरी तो विराजमान थे ही, भगिना भी था उनका। अलग, फटी दरी पर अधेड़ उमर का टहलुआ था बैठा हुआ। उसकी आँखें अपनी नींद-लदी पलकों से जूझ रही थीं।

ऐसे ही समय माहेश्वर आकर महफिल में मानो बम फोड़ गया था, धुआँ से

सबका दिमाग भारी और बेकाम हुआ जा रहा था। घायल दो जने हुए थे।

भावी दूल्हा बुरी तरह घायल हुआ!

खोंखा पण्डित का हाल तो और भी खराब था।

भारी-भारी रुँधी-रुँधी बातें होती रहीं।

मुखिया बोला—"अपने गाँव के छोकड़ों का मिजाज सनक गया है, इनका इलाज होना चाहिए फतूरी काका!"

मुँह की खैनी थूक करके फतूरी ने कहा—"चारों चरन कलजुग इसी नौगछिया बस्ती पर छा गया है···"

मगर जोतखीजी ने जो बात कही इस पर, उससे सवाल का रुख ही पलट गया।

गेहुँआ खाल से मढ़ा हाड़ों का कमजोर ढाँचा। फाँक-सी आँखें। नुकीली नाक। बड़े-बड़े कान। पतली मूँछ, चिकने गाल। पहनावे में मामूली धोती, कन्धे पर गमछा चारखाना।

भीत से पीठ टिकाकर बैठे थे वह।

उन्होंने कहा—"अगहन में ब्याह के अच्छे दिन पड़ते हैं, लगन के वैसे बढ़िया योग इधर कई वर्षों मे नहीं आये···"

फतूरी ठाकुर छूटते ही बोले—"अगहन! आहा! मेरा ब्याह अगहन में ही हुआ था, हम दोनों कभी बीमार नहीं पड़े।"

पण्डित को धर-पकड़ के लड़के अन्दर ले जा चुके थे। उधर से फिर कौन क्या बोलता! दूल्हे के भांजे को बातचीत के इस नए रुख मे आज का लगन टालने की गन्ध आयी तो चट से उसने कहा—"नहीं, अभी वाला लगन भी बेजोड़ है।"

"होगा!"

जोतखी नकियाकर बोले।

फतूरी का मन कर रहा था कि प्रधान पाहुने की चुप्पी टूटे। लेकिन वह तो एकदम हतप्रभ और मौन बैठा था. पालथी पर केहुनी थी और बँधी मुट्ठी पर ठुड्डी टिकी हुई थी। दृष्टि सामने जीमड़ के खूँटे पर।

कुछ देर तक फिर वातावरण गम्भीर हो गया। कोई कुछ नहीं बोल रहा था बीच-बीच में गमछे से पीठ झाँटने की आवाज। पेट्रोमैक्स की लाइट के कारण इधर-उधर उड़ने वाले कीड़े पीठ पर बैठते थे और गमछे की चोट खाकर सद्गति प्राप्त करते थे।

दूल्हे के लिए जो खास पंखा आया था, वह भी अब आराम कर रहा था। टट्टी फिरने जाने का बहाना बनाकर पंखा झलनेवाला छोकरा कब का जा चुका था।

इस तरह महफिल पर मुर्दनी छा रही थी।

वह तो मुखियाजी मुस्तैद थे, नहीं तो हवा के अभाव में पेट्रोमैक्स भी अपना काम तमाम कर चुका होता !

छकौड़ी अँगनाई में, जीमड़ के उसी खूंटे से पीठ टिकाये झपकियाँ ले रहा था।

"इधर आइए मुखिया काका !"

अन्दर से निकलकर टुनाई ने जोर से पुकारा तो मुखिया चिहुँक उठा—"क्या बात है हो ?"

"बिसेसरी के दो दस्त हुए हैं और तीन बार कै !"

"अब क्या हाल है ?"

"हाल क्या पूछते हैं, दाँती लग गयी !"

"जाओ, हमारे घर से पुदीना का अरक और अमरितधारा लेते आओ।"

टुनाई मुखिया के मकान की ओर गया।

फतूरी और मुखिया धड़धड़ाकर अन्दर घुसे।

दूल्हा का धीरज अब जवाब दे गया। वह तख्तपोश पर से उठा। नीचे अँगनाई में आकर चहलकदमी करने लगा। उसे नौ सौ रुपये डूबने की उतनी पर्वाह नहीं थी जितनी कि बे-आबरू होकर वापस जाने की। थोड़ी देर वह अकेले टहलता रहा, फिर भगिने को बुला लिया।

दोनों फुस-फुस करते हुए चहलकदमी करते रहे।

छकौड़ी भी भीतर चला गया था, बिसेसरी को देखने।

चतुरा चौधरी का नौकर अपना उसी तरह ऊँघता रहा। मालिक किस मुसीबत में यहाँ आके फँसे है, इसका ज्ञान उस अलबौक को था ?

नहीं था।

नहीं था क्योंकि चौधरी का अपना आदमी किसी फौजदारी मामले का हाजती कैदी था आजकल, लहेरियासराय जेल में बन्द। जरूरत थी तो मालिक इसी मतगुन्न को पकड़ लाए थे। तीन बार कहोगे तो बात इसके माथे में घुसेगी। डेढ़ सेर चावल का भात दोनों साँझ ठूँसेगा, कुम्भकरन की तरह सोएगा···लाद-बोझ दो तो पक्का ढाई मन बोझा ढोएगा, चार लात लगाओगे तो पीठ झाड़कर और दाँत-मुँह चियारकर चला जाएगा; फिर बुलाओगे तो बिना चीं-चपड़ के वापस आएगा !

नाम क्या है ?

बड़ा अच्छा नाम है, ढहलेलवा !

इससे बढ़िया नाम उसका और होगा ही क्या ?

मालिक का कण्ठ सूख रहा था।

तीन बार आवाज देने पर आदमी बोला—"आँ ?"

"प्यास लगी है !"

"आँए !"

"पानी रे बैल, पानी चाहिए !"

'ओं; पाइन मालिक ?"

"मर माले !"

आखिर ढहलेलवा उठा और पानी लाकर अपने मालिक को उसने ठण्डा किया।

कहने पर भगिना बाबू को भी वह पानी दे आया, अपनी ऊह होती तो पूछ भी लिया होता !

पानी पीकर मामा-भगिना दोनों फिर बैठने को हुए···

"ठहरो, लघुशंका कर आऊँ—" कान में जनेऊ लपेटकर मामा बोले।

भगिना बाबू के लिए मामा का सक्रिय समर्थन मानो आवश्यक था, कान पर जनेऊ चढ़ाते हुए बोले—"मैं भी मामा !"

दोनों पेशाब कर आये पानी लेकर।

तख्तपोश पर बैठते हुए मामा ने फुसफुसी आवाज में कहा—"देखा कुछ ?"

"क्या !" विस्मय से आँखें फैल गयीं भांजे की।

"अरे, उधर पीपल के तले पाँच-छ: आदमी खड़े थे !"

"यही लोग होंगे ?"

"तो, और कौन ? '

दुर्गा ! दुर्गा ! काली ! काली !!

भांजा पण्डित था, सीधा-साधा संस्कृत पण्डित। उसका हृदय एक अज्ञात आशंका से कम्पित हो उठा। वह सोचने लगा···मामाजी के माथे पर ब्याह का यह कौन-सा भूत सवार है, यह इनको चौपट करेगा एक-न-एक दिन ! फिर उसे याद आयी अपनी दिवंगत मामियाँ, एक-एक करके याद आई। ममेरे याद आये, अपने पिता के प्रति उन लड़कों की जो कुढ़न थी सो याद आई···अपने ननिहाल के बहुतेरे दृश्य उसकी आँखों के सामने नाचने लगे। किस चक्रव्यूह में आज मामा फँस गये हैं !·· यह सोचते ही बेचारे का चेहरा भारी हो उठा। उसे लच्छन अच्छे नहीं नजर आ रहे थे। यह विश्वास उसका संशय के भँवर में ऊब-डूबकर रह गया था कि सकुशल यहाँ से लौटेंगे और घर पहुँचेंगे।

बाबू चतुरानन चौधरी भी गुमसुम थे। इस तरह की पशोपेशी में वह भी कभी कहाँ पड़े थे ? पहला ब्याह तो खैर सत्रह साल की ही आयु में हुआ था, मुला बाकी तीनों शादियाँ चालीस के ऊपर की थीं उन्होंने। क्या मजाल, कहीं किसी

ने चूं तक किया हो ! और, आज क्या इस छोटी-सी बस्ती के ये मामूली छोकरे शेर की मूँछें नोच डालेंगे ?

खानदानी शान-शौकत की याद आते ही मालिक की रीढ़ तन गयी, चेहरे पर तेज छा गया और आँखों की चमक चौगुनी हो गयी । मन ऐसा ताजा हो उठा कि पान के चार स्पेशल बीड़े एक ही बार मुँह में डाल लेने की इच्छा होने लगी ! लेकिन अब तो वह 'दूल्हे के रूप में' छिक चुके थे, जब तक ब्याह नहीं हो लेगा तब तक सिवाय पानी के और कोई भी वस्तु मुँह मे नही डालने देंगे लोग !

किसकी मजाल है कि अब इस ब्याह को रोके ?

छोकरे ऐसी-वैसी हिमाकत करेंगे, चाबुक से एक-एक की पीठ फोड़ दूंगा, हाँ !

मैं कुजड़े के खेत का मूली-बैंगन नहीं हूँ, मानिकपट्टी-मढ़िया के चौधरी-खानदान का पट्टीदार हूँ ?

शेर शेर हैं, गीदड़ गीदड़ ही रहेंगे···

···दूल्हे ने दिमागी मैदान में स्वाभिमान का घोड़ा छोड़ दिया था, टापों की कल्पित आवाज से मन-प्राण उसके भर-भर उठे थे ।

घटकराज ने आते ही भंग छानी थी, मामूली कुछ खाकर जलपान किया था और बैठके की दूसरे छोरवाली कोठरी में खिड़की के सामने चारपाई पर तनकर सो गये थे । अभी तक उनकी योगनिद्रा पूर्ण नही हुई थी । कड़ी हिदायत थी कि उन्हें कोई उठाए नहीं । हाँ, सिंदूरदान के पश्चात् उन्हें अवश्य ही उठा दिया जाय—वर-वधू के मस्तक पर दूध और अच्छत डालकर आशीष देंगे, अपने ही घर का तो काम है वह !

बीच में इतना बड़ा कुकाण्ड मच जाने पर भी घटकराज की नीद नहीं टूटी थी, अब भी ऋषभ-स्तर मे वह अपनी नाक बजाये जा रहे थे—ठर्र र्र र्र र्र र्र··· ठोोोो·· ठर्र र्र र्र र्र र्र··· बड़ी पुष्ट और लयबद्ध ध्वनि थी, ऐसी कि सुनने पर कान तिरपित हो उठते और हृदय का अँतराकोना गुदगुदा जाता !

घटकराज की इस सुख-समाधि पर दूल्हे का भांजा मन ही मन ईर्ष्यालु हो रहा था, उसे पिछली रात भी अच्छी नीद नही आई थी ।

ढहलेलवा बैठके के छोर पर खंभेली से अपनी पीठ टिकाये नीद के झकोरे लेने लग गया था, फिर निचले होंठ का मध्यप्रदेश तार-तार लार टपका रहा था उसका । जाँघ पर की धोती भींग रही थी ।

हवा की कमी से पेट्रोमैक्स की रोशनी मद्धिम पड़ती गई । अन्त में लाइट बिल्कुल कम हो जाने पर प्रकाश का वह यन्त्र फप्-फप् करने लगा !

फिर भी किसी का ध्यान उस ओर नहीं आकृष्ट हुआ !

रोशनी बिल्कुल ही कम हो गई । लगा कि आखिरी हिचकी लेकर पेट्रोमैक्स अब अपनी इहलीला का संवरण कर लेगा ।

इतने में चट् से दो युवक आये, एक नीचे ही खड़ा रहा और दूसरा मिट्टी की दो सीढ़ियाँ टपकर बैठके में आ धमका।

उसने फुर्ती से पेट्रोमैक्स में हवा भरनी शुरू की। मैंटल एकबारगी भभक उठा, फिर घुप्प ! और फिर झकाझक लाइट से समूचा दालान जगमगा उठा···

अब वह युवक नीचे आ गया अँगनाई में।

दूल्हा और उसका भगिना—दोनों सँभलकर उन अपरिचित चेहरों की ओर घूरने लगे।

भगिना ने चतुराई की, बोला—"आइए, नीचे कब तक खड़े रहेंगे आप लोग ?"

"आइए न !" दूल्हे ने शंकित स्वर में भांजे की बात का अनुमोदन किया।

दोनों चुपचाप आकर फर्श पर बैठ गये।

पूछने पर साँवली सूरत और फैली-फैली आँखोंवाले युवक ने कहा—"मेरा नाम है दिगम्बर मल्लिक और इनका बलभद्र मिश्र। मैं घर का काम-काज करता हूँ, यह नाइन्थ क्लास के विद्यार्थी हैं···"

थोड़ी देर तक दोनों ओर चुप्पी।

इसी बीच में पुदीना का अर्क और अमृतधारा लेकर टुनाई लौटा, उसके पीछे माहे था।

टुनाई अन्दर चला गया, माहे आकर मल्लिक के पास बैठा।

मल्लिक गौर से दूल्हे के मुँह की ओर देख रहा था इतनी देर तक। अब गम्भीर स्वर में उसने कहा—"बाबू साहेब, हम आपसे फिर प्रार्थना करने आए हैं। ब्याह का यह आग्रह आप छोड़ दें···"

"ऐं क्या कहा !"

बुड्ढा बमक उठा, पागल और घवहा कुत्ते की तरह वह भौंकने लगा—"तुम लोग गुण्डई पर उतर आये हो ! सारी काबिलियत घुसाड़ दूँगा। देखो तो भला, सावन जनमा गीदड़ और भादो आई बाढ़ और गिदड़वा चिल्लाया बाप रे ! ऐसी बाढ़ कभी न देखी। बच्चू, अभी तो कुल चार रोज के होवे किये हो, नाभी की नार तक नहीं कटी है अभी ! अभिए चले हमें सबक सिखाने ? चार अच्छर पढ़ लिये हो तो क्या बूढ़-पुरनिया लोगों की गंजी चाँद पर चप्पल मारोगे ?···"

गुस्सा के मारे कपार की नसें उभर आई थीं उसके तो ! आँखों के कोए लाल-लाल डोरों से सुर्ख हो चले थे, मुँह से अबरक का चूरन उड़ रहा था ! नाक की नोक पर पसीने की बूँदियाँ हीरे की कनियों को मात दे रही थीं। बारी-बारी से हाथ फड़क और सिमट रहे थे।

हल्ला-गुल्ला सुनकर खोंखा पण्डित निकले, हाथ में मोटी लट्ठ थी।

माहेश्वर उनका निशाना था।

पण्डित ने भरपूर वार की थी, इस दफे भी माथे को उसने बचा लिया मगर कमर में काफी चोट आई। वह लट्ठ का छोर पकड़कर वहीं बैठा रहा।

बलभद्र (बूलो) पण्डित को ढकेलकर अन्दर दे आया और इधर से साँकल चढ़ा दी उसने।

"आप यों नहीं मानेंगे !" दिगम्बर ने मुँह में दो उँगलियाँ डालकर जोर की सीटी बजाई।

सीटी बजते ही पाँच-छ: जवान सिंदुआर की झाड़ियों की आड में से परगट हुए, सबके अपनी-अपनी लाठी थी। पीछे से एक आदमी दूल्हे का घोड़ा लेकर आया।

"लीजिए, यह आपकी सवारी आई, आप फौरन चल दीजिए।"

"बाकी सामान कल चला जायेगा।"

"फिर इस बस्ती में आप कभी मत आइएगा।"

"पाँच लड़कों का बाप, साठ वर्ष की उमर और दूल्हे की यह साज-सिंगार ! छी-छी-छी ! !"

"डूब मरने को पानी क्या गाँव में नहीं मिला जो इतनी दूर आये ?"

"सूरत-सकल तो देखो !"

"कहाँ का छछूँदर यह हमारी बस्ती में आ गया !"

आदर-सम्मान की यह तैयारी देखकर चतुरा चौधरी की सारी हेकड़ी भूल गई। इस समय उसे फतूरी और मुखिया का अभाव खटका।

फतूरी ठाकुर और मुखियाजी रंग में भंग देखकर किसी बहाने खिसक चुके थे, जोतखीजी बीच में ही उठकर चल दिये थे, जबकि मालिक और भगिना बाबू पानी पी-पीकर आप ही अपना दिमाग चाट रहे थे।

पण्डित को अन्दर दो बेटों ने पकड़ रखा। बच्चन और टुनाई आँगन के सदर रास्ते से बाहर आये और पूरी पल्टन को मुस्तैद पाकर बेहद घबड़ाये।

मोटी आवाजवाले दूल्हे की गर्जना सुनकर टोले-मुहल्ले के लोग जग गये थे। अपने-अपने घर से उचक-उचककर सभी पेट्रोमैक्स के जगमगाते प्रकाश में हो रहे उस नाटक का आस्वाद ले रहे थे, संशय और कौतुक का मिश्रित भाव सबके चेहरों पर छाया हुआ था।

अन्दर, रूम में कैद पण्डित ताबड़तोड़ गालियाँ बके जा रहा था।

बचवन और टुनाई को सामने पाकर दूल्हा के बोल फूटे—"कहिए बच्चन बाबू, आपकी क्या राय है ?"

माहे को चोट तो काफी लगी थी, फिर भी उसने तड़ाक से कहा—"चुपचाप घोड़े पर चढ़िए, सीधे चले जाइए दरभंगा !"

गुर्राकर चतुरा चौधरी बोला—"मैंने तुमसे नहीं पूछा !"

"तो, बच्चन बाबू की भी यही राय है।"

दिगम्बर अधिकारपूर्ण टोन में बोला और बच्चन की ओर देखने लगा।

"हाँ बच्चन बाबू ?"

....

बच्चन की मानो घिग्घी बँध गई हो! एक शब्द क्या, एक अक्षर भी उसके मुँह से बाहर नहीं आ रहा था।

दूल्हे का भगिना खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर लोगों से कहा उसने—"आप सब कब तक खड़े रहेंगे ? आइए, बैठ जाइए···"

"हम बैठने नहीं आये हैं।" एक बोला, शायद गोनउड़ा था।

"तो, लो फोड़ दो ! यह रहा मेरा सिर !" आवेश में भरकर दूल्हा बोला और माथे को जरा आगे बढ़ा दिया।

"राम राम राम राम !!" बच्चन बोला।

दिगम्बर ने कड़ाई से कहा—"बच्चन बाबू, यह बाबू साहेब जितनी देर लगाएँगे, अशान्ति उतनी ही बढ़ेगी। आप यह गाँठ बाँध लीजिए कि गाँव का एक-एक नौजवान पिटते-पिटते बिछ जायेगा मगर यह ब्याह नहीं होने देगा। यह बहुत बड़े आदमी हैं, इलाके-भर में नामी है। इनके दो लड़के पटना और मुजफ्फरपुर में प्रोफेसरी करते हैं, एक लड़का लहेरियासराय में वकालत करता है···लाज-शरम को धो-धाकर यही पी गये है तो क्या हम भी बेहया बन जायें ? पण्डितजी लालच के मारे उठा लाये हैं इन महाशय को, उनकी बात छोड़िए। बिसेसरी जैसी तो इनकी नतनी-पोती होगी···यह अभी सीधे नहीं मानेंगे तो बाँध-बूँधकर और खटोले पर ढोकर इन्हें कल तक फिर सौराठ पहुँचा दिया जायेगा, इन्हीं के खिलाफ कल नौजवानों का हम एक जुलूस निकालेंगे। समझ क्या रखा है इन्होंने आखिर ? खुद ही बाबू साहेब अपनी बेइज्जती करा रहे हैं ! ठीक है, अक्लि भी सठिया गयी होगी !"

बच्चन बुत बना खड़ा रहा।

टुनाई का भी वही हाल था।

अन्दर भूँकते-भूँकते पण्डितजी का गला अब अजीब आवाज निकाल रहा था। उधर बाहरवाली एक कोठरी में घटकराज की नाक बदस्तूर अपनी तरन्नुम में थी।

ढहलेलवा बैठा था, शोरगुल ने उसकी तन्द्रा को तोड़ दिया था। अब वह लोगों की ओर मुलुर-मुलुर देख रहा था।

दूल्हा का माथा चक्कर खा रहा था। जिन्हें उसने महज छोकरे समझ रखा था, उन्होंने अब उसकी बोलती बन्द कर दी थी। वृद्ध-विवाह के विरोध में इस प्रकार का संगठित मोर्चा ! इस बात की तो बाबू चतुरानन चौधरी ने स्वप्न में भी

कल्पना नहीं की थी कभी ! काल बली जो न दिखावे, जो न सुनावे।

"उठो, चलें !" बाबू चतुरानन चौधरी ने भांजे से कहा और माथे पर पगड़ी डालकर उठ खड़े हुए। हाथ से नौकर को चलने का इशारा दिया। तखतपोश से नीचे उतरे, जूते पहनकर अँगनाई में आये।

भगिना ने पहला काम यह किया कि तखतपोश के नीचे से जीन ले जाकर घोड़े की पीठ पर डाल दी। लगाम बाबू साहेब ने घोड़े के मुँह में खुद ही डाला।

सब चुप थे। भीतर खोखा पण्डित भूँक रहे थे। बाहर कभी-कभी वह कुतिया भूँक उठती थी।

उचककर बाबू चतुरा चौधरी घोडे पर चढ़ गये और वह चल पड़ा। उन्होंने न किसी से कुछ कहा और न बच्चन के नमस्कार का ही प्रत्युत्तर दिया। हाँ, भगिना से कहते गये--"धीरे-धीरे आओ तुम दोनों, तारसराय मे मिलेंगे···"

भावी दूल्हा के भगिना बाबू और गठरी-मोटरी का भार सँभालकर ढहलेलवा खबास उधर चले तो इधर पेट्रोमैक्स भी अन्तिम साँस ले रहा था।

नौ

थोड़ी रात थी तो एकाएक बादल उमड़ आये और डबल अछार[1] बरखा हुई।

रात की घटना को भूलकर लोग अपने-अपने काम में लग गये थे।

हलवाहे बैलों को आगे किये कन्धे पर हल सँभाले अपनी-अपनी दिशा में जा रहे थे। हेहुआ भी उनमें था, वह बूलो का अपना हलवाहा था।

खोखा पण्डित, घटकराज और बच्चन पौ फटने से पहले ही घर से निकल गये थे। हवेली का लच्छन ऐसा लग रहा था कि ऊपर महामारी भँडरा रही हो। उत्साह और जीवन का एक भी निशान बाकी नहीं था। वर्षा की चोटें खाकर भी बीच आँगन का वह कलात्मक अइपन मिट बिल्कुल ही नहीं गया था। घर से निकलते समय पण्डितजी खीझ के मारे खुद ही उसे एँड़ी घिसकर मिटा गये थे। अपने हाथों मे अंकित किये हुए मांगलिक चित्र का इस प्रकार अवसान देखकर पण्डिताइन देर तक रोती रही थीं, रोती-रोती बरामदे की भीगी सतह पर ही बेचारी सो गई थीं।

1. तोड़, वर्षा की एक मात्रा।

बिसेसरी को बुखार चढ़ आया था, रामेसरी संज्ञा-शून्य होकर बेटी के गायताने औंधे मुँह लेटी हुई थी।

बच्चे रात देर तक सो नहीं सके थे, वे अब तक बेसुध सोये पड़े थे।

बड़ी और छोटी बहुएँ अपनी-अपनी देहरी पर चौकठ से पीठ टिकाये और कमर टेढ़ी किये बैठी थीं, बाईं हथेली पर बायाँ गाल थामे। मँझली रसोईवाले घर के ओसारे में झाड़ू दे रही थी। चेहरा उसका भी फीका ही नजर आ रहा था।

टुनाई और छोटा लड़का बुदुर बैठक में अभी तक सो रहे थे। मँझला सबेरे उठकर, दिसा-फराकत से निपटकर मधुबनी की छबज्जी गाड़ी पकड़ने इसटीसन जा चुका था। यों भी वह अपने वकील साहेब से आज हाजिर होने की बात करके आया था। सजला बगीची की ओर इस मतलब से निकल गया कि तीन-चार गाही आम तो जरूर अपना हिस्सा हुआ होगा।

दालान में पेट्रोमैक्स अब तक उसी तरह लटक रहा था। तख्तपोश पर कम्बल, दरी और उलैच ज्यों के त्यों बिछे पड़े थे। मुखियावाला बड़ा पंखा उस पर उसी भाँति पड़ा था, भीत से टिका हुआ।

माहे पर पण्डितजी ने रात जो खड़ाऊँ फेंकी थी, उसे अँगनाई से उठाकर और जोड़ी से मिलाकर छकौड़ी ने तखतपोश के नीचे रख दिया था, वे भी वहीं पड़ी थी।

चाँदी की डिबिया[1] में सँभालकर रखे हुए पान के आखिरी दो बीड़े यहाँ आने पर चतुरा चौधरी ने मुँह के भीतर डाले थे, ऊपर से किमाम और पतिनजार[2] डाला था। फिर थोड़ी देर बाद गाढ़ी पीक की जो पिचकारी बाबू साहेब ने छोड़ी थी, वह अँगनाई की उस ठोस सतह पर अब भी अमिट थी—रात्रिशेष की घन-घोर-घटाओं के प्रबल आघात कुछ भी कहाँ बिगाड़ सके थे उसका?

दिन काफी चढ़ आया तो टुनाई की भी नींद टूटी, उसने बुदुर को झकझोरकर उठा दिया।

दोनों मिलकर फर्श, दरी, कम्बल वगैरह समेटने लगे। किसी को तो आखिर समेटना ही था। लगन के दो दिन बाकी थे। इस बार जो नाटक होना था हो चुका था। अब इन दो दिनों में बिसेसरी के लिए दूसरा दूल्हा कहाँ से आयेगा? अगहन में अगर उसके भाग ने अपना जोर दिखाया तो मिल जाय शायद कोई ठौर-ठिकाने का आदमी!···यही सब सोच रहा था टुनाई और बुदुर को भी हिदायत दे रहा था काम की और खुद भी कर रहा था।

···कहाँ मिलते हैं अच्छे लड़के? लड़की का ब्याह बड़ा मुश्किल काम है! रामजी के हाथों शिवजी का भारी धनुष तोड़ा जाना उतना कठिन काम न भी

1. पान के बिड़े रखने की डिबिया। 2. बनारस का मशहूर और महँगा जर्दा।

हो मगर सीता के लिए अच्छा लड़का मिल जाना अब उतना आसान काम नहीं रहा। रामजी सैर करते हुए मिथिलापुरी में दाखिल हुए, सीताजी के अभिभावकों को लड़का पसन्द आ गया। गुरु विश्वामित्र भी चट से राजी हो गये! धनुष पीछे उठा था न, बातचीत तो पहले ही उठी थी!···दिगम्बर और माहे ला देंगे कहीं से कोई दूल्हा हमारी भांजी के लिए? जिसकी अपनी बहन क्वाँरी बैठी हो, वह दूसरे की लड़की-भांजी की शादी के लिए कहाँ से आदमी गढ़ेगा?···

टुनाई का ऐसा सोचना गलत थोड़े ही था?

मल्लिक की बहन शकुन्तला सत्रह साल की थी, अब तक उसका ब्याह न हो पाना नौगछिया के सयानों-समझदारों की भलमनसाहत पर एक करारा तमाचा था, जमाना उनकी मूँछों को मानो चैलेंज दे रहा था!

दिगम्बर को लेकिन इस फिक्र ने कभी परेशान नहीं किया। बूढ़ी या अधेड़ किसी स्त्री ने साहस करके अगर उससे कभी पूछ ही लिया तो चट से जवाब मिलता—क्या जल्दी पड़ी है अभी चाची? आदमी का बचपन तो बीस साल की उम्र तक चलता है! चार दिन और खा लेगी, खेल लेगी। तब तक अपना कुछ सीख-साख भी लेगी ही।

ऐसा जवाब पाकर औरतें दिगम्बर का मुँह ताकती रह जातीं। उनकी समझ में आता ही नहीं कि यह कैसा भाई है। सास-ननद और घरवाला खुद जितना सिखाता है, उतना भला और कोई क्या सिखलावेगा? धाखड़ दीखती है शकुन्तला, बाँह ऊपर करती है तो छप्पर छू जाता है और अपने भाई के लेखे अभी छोटी है? हुँह!

नुक्ताचीनी के इन उड़ते रेशों से दिगम्बर कभी नहीं घबड़ाया। बड़ी लगन से वह शकुन्तला को पढ़ा रहा था। प्राइवेट तैयारी से मिडिल करवा दी थी। आजकल साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा का कोर्स ले दिया था, थोड़ी-बहुत अंग्रेजी भी चल रही थी।

दिगो खुद कहानियाँ लिखता था, अब तक चार-छः से जादा नहीं लिखी होंगी। यों अधूरी तो दसियों पड़ी थीं, फुटकर कागजों और स्कूली कापियों के बाकी बचे पन्नों में बिखरी हुई थीं—कुछ एक पेन्सिल की धुँधली-मिटती लिखावटों और कुछ एक नयी-पुरानी निबों की पतली-मोटी व हल्की गाढ़ी नीली-बैंगनी लिखावट में। वे किसी साहित्यकार तक बेशक नहीं पहुँची थीं, लेकिन बूलो और माहेश्वर ने और अपने गँवई स्कूल के उठती मूँछों वाले दो छोटे मास्टरों ने दिगम्बर मल्लिक की एक-एक कहानी ध्यानपूर्वक सुनी थी, अपना-अपना परामर्श भी दिया था। अनेकों सुझाव दिगम्बर को पसन्द आये थे, उन्हें वह अमल में ला चुका था।

दिगम्बर का पिता नीलकण्ठ मल्लिक बिहार बैंक (पटना) में असिस्टैंट

एकाउंटेंट था। कुल जमा 210) मिलते थे उसे। '30-'32 के राष्ट्रीय आन्दोलन में हाई-स्कूल की मास्टरी छोड़कर और नमक बनाकर नीलकण्ठ बाबू जेल चले गये, साल-भर की सजा हुई थी। छूटकर आये तो पिता का देहान्त हो चुका था— दिगो के दादा मुंशी बिदेश्वर मल्लिक बरह-गोड़िया के खरौड़े-खानदान में अपने अन्तिम दिनों तक एकाउंटेंट थे। उन्ही की अरजी हुई सम्पदा पर यह मल्लिक परिवार नौगछिया के उन पाँच-सात सुखी परिवारों में से एक था। दो लड़के, दो लड़कियाँ—बस, नीलकण्ठ की औलाद की सीढ़ियाँ यही आके ठमक गयी थीं। महिलाओं की मण्डली जुटती और सन्तान का प्रसंग छिड़ता तो ललाइन दच्छिन तरफ हाथ-मुँह उठाके कहा करतीं—दुहाई गंगा मइया की, अपने तो यही चारों जियें और अच्छे दिन देखें-दिखलावें! खाँचा-भर घी-पूत लेके क्या करेंगे?··· बात की यह आखिरी कड़ी पण्डिताइन जैसी बरियार कोखवाली सुहासिनों के मरम को आर-पार छेद डालती थी, उनके लिए फिर वहाँ बैठना कठिन हो जाता!

गणित में कमजोर था, नाइन्थ में दो बार फेल हुआ। और तब से दिगम्बर घर पर ही रहने लगा। बाप ने भी छोड़ दिया। उनका ध्यान अब छोटे पर पड़ा, क्योंकि वह हिसाब में तेज था और अंग्रजी में भी—लम्बोदर को नीलकण्ठ बाबू अब साथ रखने लगे। बाकरगंज (पटना) में सात साल पुराना अपना डेरा था; दोनों बाप-बेटे साथ रहते। खाना तिरहुत भोजनालय में।

प्रख्यात कांग्रेसी नेता गुणवन्त लाल दास की मेहरबानी से यह नौकरी नीलकण्ठ बाबू स्वदेशी शासन के पहले दौर ('37-'40) में पा गये थे। थे भी गणित में तेज। स्कूली जीवन में गणित का ही अध्ययन इनके जिम्मे पड़ता था।

उनके अपने ही कहने के मुताबिक दिगम्बर की हिसाबी कमजोरी पैतृक नहीं, मातृक थी। उसके नाना यानी नीलकण्ठ बाबू के ससुर श्री यदुनन्दन लाभ मैथली और पुरानी हिन्दी (ब्रजभाषा-अवधी) के सुकवि थे, आप 'ललितकिशोर' उपनाम से अपने इलाके में प्रसिद्ध रहे—उन दिनों बिहार बंगाल के अन्दर था, युनिवर्सिटी कलकत्ते में ही थी, लाभजी तीन बार मैट्रिक में फेल हुए ··तीनों बार गणित में ही गिरे थे। तभी से अपना मन दूसरे विषयों से हटाकर वह कविताएँ लिखने लगे और 'ललितकिशोर' नाम रखा; घर-गिरस्ती का भार आ पड़ा तो भी 'ललितकिशोरजी' की प्रतिभा कुण्ठित नहीं हुई। सो, दिगम्बर ने अपने नाना की विरासत सँभाली थी · पिता को मालूम हो चुका था कि कहानियाँ लिखता है।

ललाइन को इन बातों से कोई मतलब नहीं था। वह थीं तो साक्षर मगर हनुमान चालीसा, नागलीला, दानलीला, घरेलू काज-परोजन के गीत, मुसाइ

ठाकुर की नचारियाँ—इनसे अधिक कुछ नहीं बाँचती थीं···जरूरत भी क्या थी !

आज दिगम्बर दिन-भर सोता रहा !

सबका यही हाल था—बूलो, उसकी भाभी···डेढ़ पहर दिन-उठे खा-पीकर जो सोए सो घड़ी-आध घड़ी दिन बाकी रहा तभी जाके उठे थे। हाँ, भाभी को बच्चे ने उतना नहीं सोने दिया जितना वह चाहती थी।

माहेश्वर पर लाठी की चोट पड़ी थी, माँ ने घरेलू उपचार किया था। वह भी दिन-भर आराम करता रहा।

साँझ तक जब खोंखा पण्डित और बच्चन नहीं लौटे तो पण्डिताइन का जी धक्-धक् करने लगा···

कहीं फिर दूल्हा न आ जाए आज भी !

सौराठ जाकर दूसरा दूल्हा भी तो ला सकते हैं !

बुढ़वा अपना रुपैया वापस ले लेगा !

अभी तो आ सकते हैं, अबेर थोड़े हुआ है ?

तरह-तरह के तर्क-वितर्क पण्डिताइन के मन को झकझोर रहे थे। रात को खैर तूफान आ ही गया, आज दिन में भी बेचारी से कुछ खाया नहीं गया। पानी ढकोस-ढकोसकर अपने मुँह का स्वाद फीका कर लिया सो अलग। रात जो खीर पकी थी। दूल्हा-दुल्हिन के लिए, वह सबेरे बच्चों ने खाई। उमस के कारण भात-दाल खाने के काबिल नहीं रह गये थे, उन्हें फेंक दिया गया। दाल थोड़ी ले गई सुबधा की माँ; भात बिल्कुल गल गया क्योंकि शाम को उसे उतरे चौबीस घण्टे हो गये थे। बड़ी और पकौड़े दिन में तो कुछ बच्चों ने खाये थे; कुछ सँझला भाई, टुनाई और बुदुर ने। बहुओं ने भी थोड़ा-कुछ खाया ही होगा।

रामेसरी ने तीन बार पानी पिया था, बस। बिसेसरी का बुखार अब उतर चुका था। नानी संझा-बाती के बाद छोकरी का कपार छूकर बोली—"जर उतरा नहीं, भितरा गया है। खाने को कुछ नहीं, पीने को औंटा हुआ पानी मिलेगा···"

"किसने खाना माँगा है ?" बिसेसरी रुआँसी होकर बोली और करवट फेर-कर लम्बी तन गई। रामेसरी बरामदे में बैठी थी सो उठ आई और बेटी से सटकर बैठी, और हाथ फेरने लगी उसकी पीठ पर।

माँ चली गई तो पूछा—"कैसा मन है ?"

बिसेसरी कुछ नहीं बोली।

रामेसरी ने अपनी दाहिनी हथेली पहले तो उसके कपार पर रखी, फिर छाती के बीच ले गई। फिर उसकी एक हथेली को अपने कपार से लगाया और बोली—"नहीं री ! कौन कहता है कि बुखार भितराया हुआ है !"

हथेली छोड़ दी उसने।

थोड़ी देर चुप रही, विभोर होकर बेटी के उतरे चेहरे को देखने लगी!

कुछ छन बाद उसकी ठुड्डी छूते हुए पूछ दिया—"भूख लगी होगी बेटा!"

लड़की ने इनकारी में आहिस्ते से माथा हिला दिया।

"गाय का गरम दूध थोड़ा जरूर पीना पड़ेगा, हाँ!"

जवाब में फिर उसी तरह सिर हिला।

"तो मैं भी कुछ नही खाऊँगी!"

अब लडकी की भौहें तन गईं, कड़ककर उसने कहा—"मैं कोई निरी बच्ची हूँ? दुधमुँही? क्या समझती हो मुझे?"

रामेसरी अकबका गई, कौन-सी ऐसी बात उसके मुँह से निकली जिससे बीसो के जी को आघात पहुँचा है? निगाहों को सामने की सादी भीत पर टिकाकर वह सोचने लगी···

थोड़ी देर बाद रामेसरी ने बेटी के मुँह की तरफ अपनी नजर फेरी तो उसके गालों पर आँसू के टघार ढिबरी की धुँधली रोशनी में भी चमक रहे थे!

वह दंग रह गई, अब भी अपनी भूल उसकी समझ में नहीं आई।

एक अपराधी की कातर दृष्टि से माँ अपनी बेटी की तरफ देखने लगी।

आँचल के पल्ले से स्वयं ही अपनी आँखें पोंछती हुई बिसेसरी बोली—"माँ, मुझे किसी काम के लिए मजबूर मत करो!"

रामेसरी धीरे से बाहर निकल गई।

दस

तारसराय स्टेशन के प्लेटफार्म पर कम्बल बिछाकर चतुरा चौधरी लेटा हुआ था, भगिना भी उसी मुद्रा में था। गठरी-मोटरी का बाकी सामान सिरहाने सहेज लिया गया था।

ढहलेलवा को बैठे ही बैठे ऊँघ आ रही थी। वह कुछ हटकर बैठा हुआ था।

पौ फटने को थी। अभी-अभी बादल बरस चुका था, इसी से हवा में कुछ ठण्डक थी। पेड़ अपनी-अपनी पत्तियों से अब भी मोटी-मोटी बूँदें टपका रहे थे। सूखी धरती ने दिल खोलकर वर्षा का स्वागत किया था। जहाँ-तहाँ मेढक पुलकित हो-होकर ऋतु की रानी की जयजयकार कर रहे थे। ऊसर खेतों की बलुआही

मिट्टी पर से नंगे पैरों चलना बड़ा अच्छा लग रहा था।

खोंखा पण्डित आपे मे नहीं थे। ऐसा लग रहा था उन्हे कि खोपड़ी के भीतर कोई मानो फरही भून रहा है। रात-भर खीझ और लाचारी के मारे वह कबाब की तरह सिकते रहे थे।

घटकराज का भी जी बेचैन था। इतने ब्याह आज तक उसने ठीक किये थे, ऐसी दुर्घटना तो कभी हुई ही नही थी ? मुट्ठी-भर छोकड़ों ने सयानो की नाक में कौड़ी बाँध दी। लेकिन गाँव के लोगों ने लापरवाही क्यो दिखलाई ? मुखिया क्यों नहीं आगे आया ?

बच्चन भी बहुत चिन्तित था। अब बिसरी का क्या होगा ? क्या बुरा था, यह शादी हो जाती तो निश्चिन्त हो जाते ! वह पहले ही शंकित था कि गाँव के नौजवान कोई खुरापात न खड़ा करें, सो आखिर वही हुआ···

दूर मे ही घटकराज ने आवाज दी—"चौधरीजी !"

"आइए, आइए !" उधर से जवाब आया।

यह स्वयं मालिक का स्वर था।

वह उठकर बैठ गया था। भांजे को उसने पड़े ही छोड़ दिया। क्या आवश्यकता थी आखिर बेचारे को उठाने की ? पास ही लोटा रखा था, पानी से भरा। मालिक ने गर्दन फेरकर वही कुल्लियाँ कीं, मुँह-आँख-नाक-कान-कपार पोंछ और छाटका अँगोछा खोजने लगा। नहीं मिला तो नौकर को आवाज दी—"गमछा कहाँ रखा रे ?"

"ङ् !" भगिना नींद-भरे स्वर में ही बोला और पीठ के नीचे हाथ डालकर गमछा निकाला, मामा ने थाम लिया। गमछा से हाथ-मुंह पोंछकर चतुरा चौधरी पल्थी मारके बैठा। तब तक वे भी नजदीक आ गये थे।

कम्बल पूरा बिछा था। अभी बैठने को भी काफी जगह उस पर थी। काली ऊन का आठ हाथ लम्बा, चार हाथ चौड़ा नेपाली कम्बल। सभी बैठ गये। बच्चन ने छाता और गठरी एक ओर रख दिये।

बातचीत के सिलसिले को पहले बच्चन ने ही चालू किया !

"इधर तो वर्षा हुई नहीं मानो ! प्लेटफार्म गीला-भर दीखता है !"

चौधरी ने कहा—"आपके तरफ काफी हुई होगी ?"

"हाँ," घटकराज ने अपना मुँह खोला—"वायुदेवता का खेल है ! एक गाँव में मेघ बरसता है और आधा कोस हटकर दूसरे गाँव में धूल उड़ती है। सब परमात्मा की कृपा है !"

परमात्मा का नाम सुनकर पण्डित ने ज़ोर की साँस ली।

घटकराज ने बच्चन से पूछा—"मधुबनी कै बजे जाती है ट्रेन ?"

"छऽ बजने में दस मिनट रहता है तब।"

"अभी क्या टैम होगा ?"

"ठहरिए, स्टेशन से घड़ी देख आऊँ !"

"जाओ !"

खोंखा पण्डित अपने को महा-अपराधी समझ रहा था। वह किस मुँह से बाबू श्री चतुरानन चौधरी के सामने अब कुछ कहे ? नजर मिलाने तक की हिम्मत नहीं हो रही थी ! अपना बस चलता तो लौटाकर चौधरी को अभी घर ले चलते और आज दुपहर को ब्याह हो जाता···

"पाँच बजे हैं अभी," बच्चन ने वापस आकर कहा—"अभी देर है !"

"यह लोटा लो, तुम तब तक डोल-डाल से हो आओ।" पण्डित ने लड़के से कहा तो वह मतलब समझ गया।

लोटा के सामने पराये के आगे झुकना कैसा-कैसा बुझाता था।

लोटा लेकर बच्चन चला गया तो हाथ जोड़कर पण्डितजी बोले—"बाबू-साहेब, यह जो कुछ हुआ है सो सब मेरे ही पापों का फल समझिए ! अवश्य ही पूर्वजन्म में मैंने कोई भारी प्रत्यवाय किया होगा···"

गला रुँध आया खोंखाई झा का, आँसू उमड़ आये ! चौधरी का चेहरा साफ-साफ नहीं दीख रहा था। कपार की नसें उभर आईं।

"ओह ! रोते हैं आप ?" घटकराज ने पण्डित का कन्धा झकझोरा।

"आपका नहीं पण्डितजी, जुग का दोख है यह !" चौधरी बोले—"इसमें भला रोने की क्या बात है ?"

पण्डित ने स्वयं ही धोती के खूँट से अपनी आँखें पोंछी और खखारकर गले को साफ किया, बगल में झुके और बाएँ हाथ की पहली-दूसरी उँगलियों से नाक के पूड़े को दबाकर पानी निचोड़ा। धोती के पल्ले से नाक और उँगलियाँ पोंछ ली।

घटकराज ने अपनी नस निकाल रखी थी बाईं हथेली पर और नाक के दोनों पूड़ों में एक-एक बार डाल भी चुके थे शायद। नस-भरी चुटकी को नचाकर वह बोले—"समझा चतुरानन बाबू, काम तो यह होकर रहेगा ! स्वयं विधाता भी इस कार्य को रोक नहीं सकते। चार दिन के लिए तिथि समझिए कि आगे को घिसक गई है, बस इतना-भर विधाता अड़ंगा डाल सकते थे सो हो गया; उनकी भी बात रह गई। आप नाहक ही उठ आये, काम तो आज होके रहता यह···"

"इसमें भी क्या सन्देह की कोई गुंजाइश थी ?" पण्डित टनमना[1] कर बोले।

चतुरा चौधरी अब भी गम्भीर बना रहा। उसे दिगम्बर का तमतमाया चेहरा बार-बार याद आ रहा था। आज क्या, कभी भी यह नौजवान अब अपने

1. फुर्तीला होकर।

गाँव में इस तरह की शादी नहीं होने देगा। हाँ, यह दूसरी बात है कि लड़की दूसरी जगह पहुँच जाय और वहाँ जैसे-तैसे उसकी सेंथ में सेंदुर डाल दूं···लेकिन ये छोकड़े लड़की पर निगरानी नहीं रखेंगे क्या ?

चौधरी को चुप पाकर पण्डित बोले—"हमने सोच लिया है। बच्चन समस्तीपुर के मारवाड़ी हाईस्कूल में संस्कृत पढ़ाते हैं। अब कुछ महीनों के लिए परिवार को भी साथ रखेंगे। विश्वेश्वरी भी साथ रहेगी। अगहन में वहीं यह कार्य सम्पन्न होगा···"

फिर घटकराज की ओर मुँह करके कहा—"ठीक है न मटुकी बाबू ?"

"सोलहो आना दुरुस्त !" घटकराज ने समर्थन किया।

थोड़ी देर चुप रहकर चतुरानन चौधरी ने कहा—"पहले गाँव के लड़कों को तो समझा लीजिए !"

खीज-भरी आवाज में पण्डित बोला—"सब अवारा हैं बाबू साहेब ! और दिगम्बर ? उसे तो गाँव से निकाल बाहर न करूँ तो आप मेरे नाम पर काला कुत्ता पोस लीजिएगा !"

नस की डबल चुटकी नाक के दोनों पूड़ों में ठूंसकर घटकराज ने खोंखा पण्डित की ओर अपनी गर्दन लम्बी की—"बाप क्या करता है इसका ?"

"पटने मे नौकरी करता है।"

"कितना पाता है ?"

"अढ़ाई सौ।"

"यह छोकड़ा घर बैठे-बैठे यही सब करता रहता है ?"

"घर का काम देखता है, बाप ने छुट्टा छोड़ रखा है।"

इस पर चतुरा चौधरी छँटी मूँछों पर हाथ फेरने लगा। उसे अपने गाँव के दो नौजवान याद आये जो डकैती के झूठे मामले में छः महीने की कड़ी सजा पाकर आजकल जेल की हवा खा रहे थे। यह दिगम्बर वगैरह कहीं उसके गाँव में होते तो इन्हें भी वह आसानी से किसी केस में फँसा सकता था। छिः, नौगछिया भी यह कोई बस्ती थी ! हिजड़ों का रैनबसेरा !! एक भी चेहरे पर पानी नहीं, किसी की आवाज में कड़क नहीं !

दूसरा विकल्प यह भी उठा कि बैदनाथ धाम या काशी में क्यों न किया जाय ब्याह का प्रबन्ध। तीर्थ के बहाने लड़की, उसकी माँ और नानी वगैरह का वहाँ पहुँचना कठिन नहीं होगा। चौधरी के लिए भी सुभीता रहेगा। इस दृष्टि से समस्तीपुर कहीं ज्यादा असुविधाजनक स्थान है······

बच्चन दिसा-फराकत से लौटे तो उन्होंने भी इसी विचार को पसन्द किया। इस तरह के काम घर से जितनी अधिक दूर किए जायँ, उतना अच्छा।

घण्टी बजी तो सबको समय का ज्ञान हुआ। दरभंगा से ट्रेन छूट चुकी थी।

लेकिन चौधरी ने कहा—"हम सौराठ जाकर अब क्या करेंगे, सीतामढ़ी न लौटना है हमें ? मैं तो खैर घोड़े पर जाऊँगा। ये दोनों ट्रेन से दरभंगा और वहाँ से सीता-मढ़ी आ जायेंगे।"

घटकराज को तो मधुबनी की ट्रेन पकड़नी ही थी। सौराठ का दंगल अभी दो रोज और था, तब यह कैसे होता कि घटकराज कहीं दूसरी जगह जाते ?

पण्डित का मँझला लड़का तब तक दिखायी पड़ा। उसे भी तो इस ट्रेन से जाना था।

घटकराज का भी टिकट वही कटा लाया।

बच्चन को लौटकर घर आना था, लेकिन वह भी चौधरी के भगिना बाबू के साथ दरभंगा तक जाने की बात करने लगा।

खोंखा पण्डित और घटकराज चौधरी को तनिक अलग ले गये और कहा—"बाबू साहेब, यह भवितव्य था। हमारी आत्मा तो तब तक शान्ति नहीं प्राप्त करेगी जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं हो जाएगा। अगहन में यह होके रहेगा।"

चौधरी ऊपर-ऊपर मुस्कुराया।

ट्रेन आयी, सौराठ जानेवाले मुसाफिर डिब्बों में तो ठुँसे थे ही; पावदान पर खड़े—बाहरी हैंडल पकड़े भी सैकड़ों लोग थे। सौ-पचास तो छत पर भी बैठे थे, गठरी-मोटरी समेत !

घटकराज को पावदान पर एक पैर टिकाने-भर जगह मिली, सो भी लड़-झगड़कर ! पण्डित का मँझला बेटा कछौटा बाँधकर छत पर चढ़ गया, वह वहीं बैठा।

इतने में पूरब (सकरी) से भी ट्रेन आती दिखायी पड़ी। पण्डित ने कहा—"बच्चन, एक टिकट मेरा भी ले लेना हड़ाही[1] का।"

बाबू साहेब खुद घोड़ा कस रहे थे।

पूरब की ट्रेन आयी तो उसमें उतनी ठसमठस नहीं थी। चौधरी का भांजा, ढल्लेलवा, पण्डित और बच्चन—चारों अच्छी तरह जगह पा गये।

ट्रेनें चली गयी तो चतुरानन चौधरी ने भी घोड़े को पच्छिम-उत्तर की ओर मोड़ा। एँड़ का इशारा पाते ही वह हवा हो गया।

दिन आधा पहर चढ़ गया था। आसमान साफ था, धूप अपना सुनहलापन झाड़कर तेजी को पकड़ने लगी थी।

1. दरभगा जंक्शन का देहाती नाम।

ग्यारह

लगन के दिन जैसे आये, वैसे ही चले गये।

नौगछिया के दो लड़कों की शादी हुई थी ! लड़की का ब्याह एक पहले ही हो चुका था, घर-कथा से ही।

सहुआइन ने पिछले साल अपनी संचित निधि में से 2500) की रकम लगवाकर कट्ठा-भर जमीन में छोटा-सा चभच्चा खुदवाया था, सो अभी तक क्वाँरा ही था। जेठ की पुरनिमा के दिन बेद और कर्मकाण्ड जानने वाले दो पण्डितों को बुलवाकर विधिपूर्वक बुढ़िया ने जग्ग करवाया, साथ ही फल-फरहरी का ब्रह्मभोज भी हुआ। पड़ोस के मशहूर बढ़ई छेदी ठाकुर का तैयार किया हुआ लाट खड़ा किया गया, चभच्चा के बीचोबीच। लाट के सिरे पर लोहे का मामूली मोर क्या ही अच्छा लग रहा था, नीला रंग लोहिया कालेपन को लील गया था और मोर की खूबसूरती कई गुनी बढ़ गयी थी। भिंडे पर, अलग लकड़ी का छोटा थम्भ गाड़ा गया था जिस पर जलाशय की मलिकाइन का नाम और यज्ञ की तिथि वगैरह मोटे-सीधे ढंग से खोदे हुए थे। थम्भ का सिर दाढ़ीवाले चउमुँहा ब्रह्मा की तरह था। सहुआइन ने समूचे गाँव के ब्राह्मणों को भर-भर अँजुरी साबित सुपारी दी थी; पानवान तो खैर तेलिन के यहाँ लेता ही कौन ?···सभी की ज़ुबान पर सहुआइन चढ़ी रही चार-छै दिनों तक। चार-चार, छै-छै साबित-सुपारी किसको नहीं मिला था ? जर-जवार के बिरादरी के अपने भाई लोगों का भारी भोज हुआ—दाल, भात, चार तरकारियाँ, बड़ियाँ, बड़े, आम और आँवले का अचार, दही, चीनी, पके हुए शरही और क़लमी आम···थई-थई मच गयी; लोग धन्न-धन्न कर उठे।

जहाँ देखो, सहुआइन की चर्चा !

"बड़ी भगतिन है।"

"जनकपुर और सिमरिआ तो किसी साल नहीं छूटता।"

"पिछले ही बरख बदरीनराएन हो आई है बुढ़िया ! गोड़ में घाव लेकर लौटी थी।"

"अपने तो धरमतमा है; बेटा मुला बड़ा परपंची है कि नाही बहिना ?"

"सो तो हइए है, गे !"

"पहिली उमिर में देवर को रखे थी।"

"अपना आदमी बड़ा सीधा था, बिल्कुल गऊ !"

"लडके तीनों अच्छा कमाते हैं।"

"कमाएँगे नहीं ? मुखिया का अउर इन तीनों का पेट एक ही है···मटिया तेल चीनी, कपड़ा···सभी कुछ तो भकोसते हैं !!"

"पुतोहू बुढ़िया का मान-दान करती है ?"

"छोटकिन ही। सिरिफ !"

"गे मइयो !!"

फतूरी जाकर सहुआइन को कभी-कभी नचारी सुना आते, बदले में वह लड़कों की नजर बचाकर सरइसा की नामी तमाकू के दो बढ़िया पत्ते थमा देती; वह सँभालकर फिर ले आया करते।

सहुआइन के इस शुभ कार्य पर अपने विचार व्यक्त करने के अनेक अवसरों का उपयोग वह कर चुके थे, तथापि मुखियाजी के दालान पर अगली ही दुपहरिया को उन्हें पंचमुख होना पड़ा।

प्रसंग में ताप की मात्रा पराकाष्ठा पर तब पहुँची जबकि भीम ने कहा—"सुपारी तनी दब थीं, मधुबनी के सेठ सागरमल के गोदाम में जैसी बढ़िया सुपारी मिलती है वैसी भला और कहाँ मिलेगी ? तिरपितवा महाकंजूस है···"

तिरपित सहुआइन का बड़ा लड़का था, घर का मालिक।

मुखियाजी बोले—"हाँ हो ! सहुआइन का भी इसमें इशारा रहा होगा ! बाभनों को देना था न ?"

फतूरी काका इस पर बमक उठे—"जमाना कैसा है सो नहीं देखते हो बाबू ? अगले ही बरस तो लड़कों का जनेउआ करोगे, देखूँगा, कैसी सुपारी आती है तुम्हारे यहाँ और कै-कै ठो देते हो लोगों को ! हाँ ! बीस-पचीस साल हुए, बिंदेसर मल्लिक ने अपनी माँ के श्राद्ध में भर-भर पल-बट्टा साबित सुपारी सबको दिया था। गिरी-ऐसी दमदार थी कि पावभर तौलते तो छः से जास्ती सुपारी नहीं चढ़ा पाते तराजू पर ! उसके बाद अब सहुआइन का ही यह साहस है कि सुपारी के इतने अच्छे दाने भर-भर अंजुली मिले हैं। ये भी भेड़-बकरी के लेंड़ी जैसे थे क्या ? तौल-कर देख लो, आठ-दस चढ़ाओगे तो पउआ ऊपर जाएगा सीधे, हाँ !···"

फतूरी कुछ और बोलते अभी मगर मुखिया ने बीच मे ही उन्हें शान्त करने की चेष्टा की। उसने अनुनय के स्वर में कहा—"नही फतूरी काका, सुपारी बड़ी ही अच्छी थी। बड़ी बाजार (दरभंगा) में सबसे अच्छी दुकान है बाबूराम ढनढनिया की। तिरपितवा वहीं मे सुपारी लाया था। अपनी दुकानदारी के लिए तो वह जहाँ-तहाँ से लाया करता है, मुदा यह तो धरम-पुन्न का काम था न···?"

फतूरी की भौंहें ढीली पड़ चुकी थीं, भीमनाथ को हिकारत की निगाहों से देखते हुए उतरते सुर में वह बोले—"और बेचारी सहुआइन का क्या कसूर था इसमें ? वह खुद तो सौदा करने गयी नहीं ! ऍं।"

होंठों के छोर कुंचित कर लिए और दाँतों को ड्योढ़ा-सवाया करके नपुंसक टोन में भीम बुदबुदाया—"सो कहाँ, फतूरी काका ! सो कहाँ **कहता हूँ मैं—हूँ हूँ हूँ, ओं ओं ओं···मैं तो, मैं तो ऽऽऽ···"**

"जाओ भीम, तुम भी बोका ही रह गये !"

फतूरी को अब जाके हँसी आई और मुखिया भी उधार की मुस्कान ले आया कहीं से '

तिरपित साहु अपर प्राइमरी पास करके पढ़ना छोड़ बैठा था। बाप की अकाल मृत्यु ने कच्ची उमर में ही डण्डी-तराजू पकड़ने को मजबूर कर दिया। दोनों भाई अभी बहुत छोटे थे। वह तो माँ थी कि दुकानदारी की लढ़िया चल निकली—दोनों माई-पूत सेर-बटखरे पर हावी रहते।

सहुआइन बड़ी लछमिनिया थी। जब से विधवा हुई तब से तो उसके भाग मानो खूल खेलने लगे। तिरपित का बाप सुचित छुटपन ही से छोटी-छोटी बीमारी का हमेशा शिकार था, मिजाज का चिड़चिडा और अपने को सबसे बढ़कर बुधियार समझने वाला। जीते-जी सुचिता ने अपनी घरवाली कीए क नहीं चलने दी थी।

सुचिता मर गया तो सहुआइन रोई तो काफी मगर भीतर-भीतर उसे उतना अपसोच नहीं हुआ—सोना और रूपा की काठी के जैसे तीन-तीन पूत थे, चार बीघा उपजाऊ जमीन थी, मजबूत कोल्हू और मुठिया सींगवाले दो नाटे सिलेबिया बैल थे, भीतवाले दो मकान थे और दुकानवाली बैठक थी। बाँहों और जाँघों का अपना भी पौरुख था। क्या नहीं था, सब कुछ था !

राम जाने देवर से सहुआइन का क्या सम्बन्ध था !

अमरितवा उसके घरवाले का सगा भाई हो सो बात नहीं, मगर दोनो में बड़ा ही नेह-छोह रहा। वह सुचित साहु का दूर का चचेरा होता था। पडोस के एक गाँव से जब-तब आकर चलते कोल्हू के पट्टे पर इस भाभी के पास वह बैठ जाया करता···

सहुआइन भउहें चढ़ाकर पूछती—"कौन-सा पंचमेल मिठाई धरा है वहाँ रजउली में जो कूकुर की तरह बार-बार दौड़े जाते हो ?"

अमरितवा गर्दन झुकाकर चक्कर खाती हुई धरती पर अपनी निगाहों को जमाने की विफल कोशिश करता।

सहुआइन बीच-बीच में पट्टर बंधी आँखोंवाले बैल को टिटकारती जाती, वह नाटा-सँवलिया बैल अपनी द्रुत-विलम्बित गति में अविराम चलता होता।

"अच्छा, बाबू, तुम तनी सँभालो कोल्हू, मैं कुछ ले आऊँ पानी-वानी···"

"नहीं भाभी, रहने दो। खाके तो आ रहा हूँ !"

"फिर झूठ ! फिर !"

हल्की-मीठी एक-एक चपत देवर के दोनों गालों पर पड़ जाती, सिनेह और ममता का भूखा बाईस-चौबीस साल का अमरित इस पर भाभी के सामने अपने को बिछा देता···कोल्हू चलने की आवाज—ढें ˜˜˜˜˜ च्चोंीींीं चींीींीं

···और भाभी की प्यार-भरी दुत्कार और दुधमुँहे भतीजे की किलकारियाँ···

अमरितवा चलते कोल्हू के खिसकते पटरे पर आँखें मूँदकर निश्चेष्ट बैठा रहता। बैल अपनी मद्धिम चाल पर पहुँचकर मशीन की तरह एकरस अविराम घूमता होता उसी चक्करदार परिधि में···

टाड़ा कब का भर चुका है, उसकी गोल-मटोल ग्रीवा को नहलाता हुआ तेल अब धरती को स्निग्ध बना रहा है···

"मइया री मइया!"

सहुआइन की चीत्कार अमरित को सतर्क कर देती। अपनी भूल समझकर वह सन्न रह जाता। भाभी दौड़कर कोल्हू के नजदीक पहुँचती, उकड़ूँ झुक जाती, भरा टाड़ा हटाकर अलग रख लेती और खाली टाड़ा कोल्हू की ठोरी से लगा देती। इतने में बैलवाले जुए का लम्बा डण्डा ऊपर से गुजरकर आगे बढ़ चुका होता और सहुआइन चक्करदार घेरे से बाहर निकल आती।

मुस्कुराती हुई कहती—"इसी से तो सतमाय तुम पर बिगड़ी रहती है! जाओ, इतना तेल हमारा धरती को चटा दिया तुमने!"

फिर एक-एक बड़ी चपत।

"भाभी, एक-एक चपत और!"

सहुआइन को बरबस हँसी आ जाती। वह इस दुलरुवा देवर के अनुरोध को बेकार थोड़े जाने देगी!

'लो!"

एक-एक और मीठी चपत!

"अब तो हुआ?"

"ऊँ!"

"जाओ, मछरी का तनिक भुर्ता और मुट्ठी-भर भात छिपिया मे निकाल आई हूँ, पानी भी लोटा में करके रख दिया है।"

और, अमरित साहु जाकर भाभी का पर्साद पा आते!

पीछे यही अमरितवा अपनी सौतेली माँ का साथ छोड़कर नौगछिया ही रहने लग गया। सुचित उससे कसके काम लेता, परन्तु भाभी की ममता ऐसी थी कि दो दिन के लिए भी कहीं दूसरी जगह जाना उसे बुरी तरह अखरता।

तिरपित, मीतन और जुग्गी—तीनों लड़के सहुआइन के अमरित साहु की ही गोद गरमा-गरमा कर उभरे थे। घरों के दो छप्पर उसकी कारीगरी के सबूत थे। सुचित मरा, पीछे साल-भर से अधिक अमरित सहुआइन के यहाँ नही रहा। हमेशा के लिए कहीं चला गया था।

खोंखा पण्डित के लिए धोतियों का बढ़िया जोड़ा पीले रंग में रँगाकर सहुआइन ने जाने कब से सँजो रखा था। पण्डित होते तो पहनकर बाहर के दोनों

पण्डितों के आमने-सामने बैठने और सहुआइन के इस शुभ कार्य की देख-रेख करते···माहे और दिगम्बर ने ऐसा खुरापात मचा दिया कि बेचारे गाँव छोड़कर चले गये थे।

जग-जग्ग, धरम-करम, पूजा-पाठ, भोज-भात···इन सब कामों से सहुआइन जब निबट चुकी तो एक रोज तिपहरिया वह पण्डिताइन के पास पहुँची। बाँस की रँगी खपच्चियों की डलिया में सेर आधेक सुपारी और धोतियों का पीला जोड़ा लेती आई थी।

डलिया को सरकाकर पण्डिताइन के पैरों के करीब पहुँचा दिया और भूमि को छूकर मिट्टी माथे से लगाती हुई बोली—"असिरबाद दो बुच्ची की अम्मा, यह चभच्चा जुग-जुग कायम रहे ! पानी कभी न तो घटे और न खराब हो ! हाय, सालों-भर पण्डितजी गाँव रहे और अब मेरे ही किसी पाप से यह सब खुरपात उठ खड़ा हुआ ! पण्डितजी बाहर चले गये !! बड़ी लालसा से यह धोती मँगवाई थी, अपने हाथों से रँगकर—छाँह में सुखाकर और चुनियाकर रखी थी कि पहनकर पण्डितजी उस रोज चभच्चे का जग्ग करावेंगे सो दैव को मंजूर नहीं था·· बुच्ची की अम्मा, मैं उन्हें भला कुछ देने लायक हूँ ? तुम्हीं बताओ ?"

"भगवान ने तुम्हारा काम पारघाट लगा दिया, वह गाँव से बाहर हैं इसमें तुम्हारा क्या दोख ? बिसेसरी का कपार फूट गया नहीं तो वह कहीं क्यों गये होते !"

पण्डिताइन का स्वर दर्द में डूबा हुआ था। चार-पाँच दिन बीत जाने पर भी लगता था कि बेचारी का कलेजा अब भी उबल रहा है। आँख के संकेत से उसने मँझली बहू को बताया कि डलिया उठा ले जाय अन्दर और अपने को जरा सँभाल-कर बोली—"मेरे परदादे ने तालाब खुदवाया था और दादा ने उसका जग्ग किया। उसके बाद, सहुआइन, तुम्हें ही देख रही हूँ यह सब करते ! तुमने अपना इहलोक-परलोक दोनों बना लिया ! हम क्या तुम्हें असिरबाद देंगे ! हमारा तो अपना ही करम फूट गया है···"

सहुआइन समझ गयी कि पण्डिताइन का जी अभी तक बेकाबू है।

थोड़ी देर वह बैठी रही, बहुओं से इधर-उधर की बातें करती रही। फिर उठकर वापस चली आयी।

बारह

बर्खा समय-समय और हिसाब से होती आयी थी अबकी खेती के रंग-ढंग अच्छे थे।

आधा सावन बीतने न बीतते लोग अपने-अपने खेत आबाद कर चुके थे। धान के हरे-हरे पौधों से एक-एक मैदान, एक-एक पाँतर हरियाली का समुद्र हो रहा था। बयार सिहकती तो इस समुद्र की हरित-नील-लोल लहरियाँ सातों सागर की तरंगित सुषमा को मात कर जातीं; खेतिहरों के मन-प्राण धान के लहराते पौधे देख-देख लहराया करते और भविष्य की सुनहली जालियाँ बुनने में उनकी आत्मा विभोर हो जाती। जनपद की शस्यश्यामला प्रकृति-सुन्दरी अपनी ओर देखते रहने वालों की बाहरी और भीतरी जलन छन-भर के लिए तो अवश्य ही मिटा डालती···

तीज का त्यौहार आया और पण्डिताइन को रुलाकर चला गया। बिसेसरी की शादी हुई होती तो घर-आँगन गीत और उछाह में आज फिर गनगना उठता—मुदा विधाता ने ही जब इस छोकरी का कपार जला रखा है तो फिर नानी-नाना, मामी-मामा आखिर क्या करेंगे!

अपने दुखी मन को बहलाने के लिए बिसेसरी ने घर के पिछवाड़े की तरफ वाली खाली जमीन को खुरपी से खोद-खोदकर तैयार किया। उसमें लकेस, तारा, मधुरी और गेंदा के पौधे लगाए।

रामेसरी ने बाड़ी में तरकारियों के पौधे लगा रखे थे—भिंडी, तरोई, बैंगन, नेनुआ। अरुई और सूरन आप ही आप उग आए थे। दो पुश्त से इनकी खेती थोड़ी-कुछ पण्डित की बाड़ी में होती आयी थी। सो, बीज न डालने पर भी बरसात के आरम्भ में सूरन और अरुई की पेंपी यों ही निकल आती।

तगर, कुमुदनी (छोटा कचनार), थलकमल, इन्द्रकमल, अड़हुल, कनेर, करबीर आदि कुछ झाड़ तो पण्डित के दालान के आगे ही थे और कुछ बाड़ी वाली बगिया के अन्दर।

खोखा पण्डित का खानदान धर्मभीरु और पूजा-पाठ परायण विद्वान ब्राह्मणों का खानदान था। यह कुल कभी तो शक्ति का उपासक रहा होगा, अब लेकिन पंचदेवता[1] का उपासक था। कुलदेवता इन लोगों की भगवती उग्रतारा थी। इसलिए रंग-बिरंग फूलों की आवश्यकता पड़ती ही रहती। किसी ऋतु में फूलों की कमी न पड़ जाय, इस दृष्टि से भी फूलों के अधिक से अधिक झाड़ लगाए जाते रहे होंगे।

मन्दार पहाड़ से पण्डितजी का पत्र आया था, वहाँ वह नवाह[2] भागवत पर

---

1. सूर्य, गणेश, दुर्गा, विष्णु और शिव। 2. नौ दिनों तक चलने वाला।

बैठ गये थे। भादों में गोड्डा के आसपास किसी गाँव में भागवत का एक पारायण और होनेवाला था। आसिन की दुर्गा-पूजा के दिनों में भागलपुर का कोई लखपति मारवाड़ी सप्तशती चण्डी का सम्पुट पाठ करावेगा, कातिक में डुमरिया की रानी साहेबा कातिक महात्म सुनेंगी···टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में खोंखा पण्डित ने यही सब लिखा था।

चिट्ठी बँचवा के आदि से अन्त तक सुना तो पण्डिताइन को बड़ा ही परितोख हुआ। वह भर के बोली—"अब बूढ़ा अगहन तक आवें तो आवें। इस बार गिरस्ती का सारा भार बच्चों के कन्धे पर पड़ा। और तो कुछ नहीं, टुनाई की पढ़ाई में थोड़ी-बहुत बाधा होगी।"

"होगी ! हो रही है कि ?" रामेसरी ने कहा तो माँ ने साँस खींची।

ओसारे पर बैठकर टुनाई भुना हुआ चिउड़ा तली हुई टेंगरा मछली के सहारे फाँक रहा था। आधा भरे मुँह से गलगलाती आवाज में बोला—"इस बार मैं पास नहीं करूँगा !"

"अशुभ बातें क्यों निकलती हैं तेरे मँह से ?"

पण्डिताइन ने बेटे को फटकारा।

"तो होठों को सिलाकर गूँगा बन जाऊँ ?"

तीखे स्वर में पण्डिताइन ने फिर डाँट बताई—"फिर अलच्छ बात ! क्या हो गया है तुझे आज ?"

उड़द का बेसन लगाकर अरुई के पत्तों को लपेट रही थी रामेसरी, काट-काटकर चक्का बनाना था और धूप में उन्हें तनिक सुखा भी लेना था। माँ की फर्माइश थी, आज रात की रसोई में इसी का तीमन बनेगा। सो वह पत्तों को डण्ठल काटती हुई बोली—"होगा क्या, गौरी तो कुछ करते-धरते नहीं, सारा काम टुनाई को करना पड़ता है।"

गिरिजानन्दन, दुर्गानन्दन, श्रीनन्दन और यदुनन्दन···सँझला था गौरी। श्रीनन्दन था टुनाई का नाम और बुद्दुर का यदुनन्दन। बच्चन (गिरिजा) समस्तीपुर हाईस्कूल में संस्कृत पढ़ाते थे। दुर्गानन्दन मधुबनी अदालत में किसी वकील का मोहर्रिर था। गौरी मैट्रिक तक पढ़ा हुआ और अब होमियोपैथी के माथे पर अपना हाथ रखने जा रहा था। टुनाई टेन्थ में और बुदुर मध्यमा के द्वितीय वर्ष में था।

बनिहार खोजना, बैलों को खिलाना-पिलाना, खेत में काम की निगरानी, काम पर कलेवा पहुँचाना, सुबह-शाम खेती को देख आना—किसी काम में गौरी हाथ नहीं बँटाता था। उस पर डाक्टर बनने की धुन सवार थी। ससुराल से हिन्दी मैटेरिया मेडिका उठा लाया था। दवाओं का एक छोटा-सा बक्सा कहीं हाथ लग

गया। अब क्या था ? छाती और पीठ की धड़कन बनाने वाली छुच्छी[1]-भर चाहिए थी, बस ! मनीआडर से फीस भेजकर घर बैठे डिप्लोमा मिल ही जाएगा। प्रैक्टिस अपने हाथ की बात थी। बैद बनना कोई कठिन नहीं, लेकिन चूरन और बड़िया तैयार करना भारी झंझट का काम मालूम पड़ा। हटाओ बखेड़ा, होमियोपैथी ठहरी चिकित्सा की रानी···गौरी इसी को सिद्ध करने में लग गया। नतीजा वही हुआ कि खेती-बाड़ी का सारा भार बेचारे टुनाई के कन्धों पर आ पड़ा। और वर्ष इन दिनों पण्डित खुद मौजूद रहते थे तो लड़कों पर यह बोझ नहीं पड़ता था।

पण्डिताइन बिजनी में किनारी लगा रही थी। मुईवाला हाथ उठाकर बोलीं—"कल से टुनाई अपना पढ़े-लिखें मन लगा-लगाकर, देखती हूँ कैसे नहीं गौरी घर का काम करते हैं।"

अपने पति के बारे मे यह ऐलान सुनकर छोटी बहू का मन छोटा हो गया। और तो कुछ वह कर नहीं सकी, खाना के लिए मचलनेवाले ढाई साल के बच्चे को रोष-भरी भंगी में ठुनका दिया और बोली—"खा मेरा कप्पार !"

बच्चा रो पड़ा।

उधर से सास बोली—"मउगी का मिजाज सनक गया है ! उठकर लड़के को खाने को देती कुछ सो तो हुआ नहीं, ठुड्डी मे जोर का एक ठूनका[2] दे दिया !"

टुनाई नाश्ता कर चुका था। बाहर निकल आया। बुदुर पहले ही निकल चुका था।

गाँव के बाहर मैदान में लड़के गेंद खेल रहे थे। जो गेंद खेलने में भाग नहीं ले पा रहे थे, उनकी कबड्डी चल रही थी। तमाशबीन उतने नहीं थे जितने खेलने-वाले।

टुनाई को आते देखकर माहे खेल से हट आया। नजदीक आकर बोला—"आज कई दिनों से मैं तुम्हें खोज रहा था। बड़ा जरूरी काम है। जल्दी में तो नहीं हो ?"

'ऐसा कौन जरूरी काम आ पड़ा ?' टुनाई के दिमाग का कलपुर्जा गार्ड की सीटी के बाद इंजन की तरह छुस-छुस कर उठा। दो महीने हुए, वे आपस में बोले नहीं थे। भेंट हुई हो और जान-बूझकर न बोले हों या एक-दूसरे से मुँह फेर लिया हो, बात ऐसी नहीं थी। खेती-गिरस्ती के दिन थे। माहे भी अपने कामों में पिशाच की तरह पिला पड़ा था। वह सिर्फ मैदानी खेतिहर नहीं था। अपनी किसानी से भी गाँव के लिए उसने नया आदर्श कायम किया था, नयी परम्परा स्थापित की थी। धरती को माहेश्वर ने तन और मन की समूची क्षमता लगाकर पकड़ रखा था। चार कट्ठा भीठा खेत थे उसके पास, ग्वालो की टोली के नजदीक। तीन वर्षों से

1. स्टेथस्कोप।
2. पहली-दूसरी उँगलियों के सहारे हल्का घूंसा।

जमीन के उन तीन टुकड़ों पर माहे ने मनों पसीना बहाया होगा, उपज भी खूब हो रही थी—आलू और तम्बाकू। उन फसलों से दो-ढाई सौ की सालाना आमदनी थी। यह रकम घर के फुटकल खर्च के लिए काफी होती। घर के पिछवाड़े जो बाड़ी थी उसमें तो चार-चार, पाँच-पाँच फसलें उगाता था। उसकी रसोई में दाल का खर्च नहीं, प्रतिदिन साग-सब्जी—तीमन-तरकारी। झिङनी (तरोई), रमझिङनी (भिंडी), भाँटा (बैंगन), मूर (मूली), कोबी (गोभी), करेला, अरुई, ओल (सूरन), आलू, हरी मिर्च···क्या खरीदना पड़ता था उसकी माँ को? एकको चीज नहीं। चार-छै थम केला के लगा रखे थे सो उनका भी वंश-विस्तार होता ही आया था। धान के अपने खेत दो ही बीघा थे माहे के पास—चालीस मन से कम तो कभी नहीं उपजाया उसने, कभी साठ और कभी पचास मन···प्रसंग छिड़ने पर दर्द-भरी आवाज में वह कह उठता—सिंचाई और निकासी का इन्तजाम यदि कांग्रेसी सरकार कर दे तो इन्हीं चार कट्ठा खेतों में 125 मन धान उपजाकर दिखला दूँ मैं!···काम लेते समय मजदूरों को अच्छा कलेवा देता था। मजदूरी में उसके यहाँ से कभी घटिया किस्म के दाने नहीं दिये गये। एक बैल और एक गाय रखे हुए था, वे अपनी तन्दुरुस्ती के लिए नौगछिया की समूची बस्ती के मवेशीवालों लिए नमूना थे। हलवाहा, हल और बैल एक दूसरे किसान के साथ भाँज[1] में चलता था।

सो, टुनाई ने सोचा—ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी है कि माहे खेल छोड़कर उससे बातें करने आया है?

टुनाई ने कहा—"जल्दी में होता तो इधर क्या करने आता?"

माहेश्वर के होंठों पर मुस्कान उभर आई, दाँतों की अगली कोर दिखाई दे गई।

टुनाई का बदन खाली था। माहे की देह पर अधबहियाँ बनियायन थी। दो-एक दिन पहले ही बदली हुई पीली जनेऊ गले से लिपटी हुई थी। कपार पर बाईं ओर घोड़े के खुर का वही सनातन निशान था, बचपन की किसी दुर्घटना का स्मारक।

टुनाई के कन्धे पर माहे ने अपना दाहिना हाथ डाल दिया और ले चला उसे मैदान के छोर की तरफ।

आगे दूब पर बैठ गये दोनों।

एक दूब नोचकर माहे ने उसकी दो पोर खोंट ली नाखूनों से, उसे उसने मुँह में डाल लिया। चबाता हुआ बोला—"बिसेसरी के बारे में क्या सोच रहे हो तुम लोग?"

---

1. बारी, सहभाग।

"क्या सोचेंगे ! सोचने और होने में भारी अन्तर है माहे, कि नहीं ?"

"सो तो हइए है !"

"तो फिर ?"

"आखिर इस झंझट से छुटकारा पाने का कोई रास्ता तो निकलना ही चाहिए, कि नहीं ?"

"नहीं कौन कहेगा इसमें ?"

"तब ?"

टुनाई चुप हो रहा था। वह क्या जवाब दे माहे को ? परिवार की गतिविधि नियमित करने में अभी उसका क्या हाथ होता है ? कुछ नहीं।

इतना टुनाई को अच्छी तरह मालूम हो चुका था कि बिसेसरी का ब्याह अब कोई आसान काम नहीं रह गया है। चतुरानन चौधरी की तरफ से इधर लोगों में यही बात फैलाई गई थी कि वह नौगछिया से शादी कर आये हैं, अगहन में गौना होगा। इस प्रचार का फल यह हो रहा था कि टुनाई के बड़े और मँझले भाइयों ने रिश्ते के लिए फिर से जहाँ-जहाँ बातचीत शुरू की थी, बाद को उन सभी जगहों से जवाब का बँधा-बँधाया गोला छूटने लगा—ब्याही लड़की को दुबारा ब्याह कर अब और कितना कमाएँगे पण्डितजी ? जो बात कहीं नहीं हो पाई वह अब नौगछियावाले करने जा रहे हैं ?···

बीच मे टुनाई किसी काम से दरभंगा गया था। वापस आते समय दरभंगा प्लेटफार्म पर एक आदमी से अकस्मात परिचय हुआ तो वह मानिकपुर-गढ़िया का निकला। हास-परिहास की मुद्रा मे उसने पीछे कहा—"चलिए, पान खा आवें बाहर से। आप तो हमारे चतुरा बाबू के कुटुम्ब-नारायण ठहरे ! पचास-साठ वर्ष बाद यह रिश्ता हमारे और आपके बीच कायम हुआ है। महारानी जनक-लली की अनुकम्पा से ही यह काम हुआ समझिए ···" उसने टुनाई का हाथ पकड़ा और पुल की ओर खींच ले जाना चाहा। टुनाई दुहरे संकट में पड़ गया ! पिता का नाम क्यों बता दिया ? मगर इस पर चुप रह जाना भी बउड़मपना होगा और बाहर चलकर इस आदमी के दिये हुए पान के बीड़े स्वीकार करना तो बेवकूफी की हद हो जायेगी ! कैसा रिश्ता और कुटमैती ! ··

टुनाई पहले खुद सँभला, पीछे कड़ी आवाज़ में उस आदमी को झाड़ दिया—"भंग तो नही पी आये हैं आप ! किसने बताया कि चतुरा चौधरी की शादी हमारे घर हुई है ? मेरे पिताजी उन्हें ले जरूर आये थे, पर घर के और लोगों को वह जँचे नहीं। हमारे गाँव के पढे-लिखे नौजवानों ने समझा-बुझाकर चौधरीजी को विदा कर दिया, उधर लड़की की तबियत एकाएक खराब हो गई थी। कई कारणों से यह ब्याह हुआ नहीं, टल गया।"

दाँत चियारकर वह टुनाई का मुँह ताकता रहा थोड़ी देर तक, फिर हँसने

लगा—"ही ही ही ही हू हू हू हू हू हू ?"

छन-भर बाद बोला—"चलिए पान तो खा आवें ! छिलका छुड़ाने से बात यह पतली थोड़े हो जायेगी ? ब्याह अभी नहीं हुआ है तो आगे होके रहेगा, या कि नहीं ?"

उस सनकी से बहस करना बेकार था। टुनाई उसकी नजर बचाकर दूसरी ओर जाकर ट्रेन की प्रतीक्षा में खड़ा हो गया था।

इस प्रकार की बातें गाँव के और कई लोगों को सुननी पड़ी थीं। इस तरह की अफवाहें चतुरा चौधरी के आदमी खूब फैला रहे थे।

टुनाई का समूचा परिवार इससे घबड़ा उठा था। औरत-मर्द सभी हाथ जोड़-कर भगवान से मनाया करते कि चाहे जैसे भी हो, बिसेसरी का ब्याह अगहन के लगन में अवश्य हो जाय। पण्डिताइन ने आँचल पसार कर और मत्था टेककर जोड़ा पाठा कबूला था दुर्गामाई के आगे। बच्चन ने सत्यनारायण भगवान की पूजा का सकल्प लिया था। रामेसरी की मनउती थी गंगाजल भरकर पैदल पहुँचेगी और अपने हाथों मे बाबा बैदनाथ को नहलायेगी।

कुछ मनउती बिसेसरी की भी थी क्या ?

थी कि ! अवश्य थी !

नही भला कुछ कैसे होती ?

तो क्या थी बीसो की अपनी मनउती ?

बिसेसरी की मनउती यही थी कि आनेवाले अगहन में अगर कोई बीस या बाईस-साला दूल्हा उसके लिए मिल गया और शादी हो गई तो वह चाँदी की छोटी-सी खूबसूरत बसुली गढ़वायेगी सुनार से और बाँके बिहारी कुँवर कन्हैया के हाथो मे थमा देगी···

टुनाई देर तक चुप रहा। पारिवारिक मुसीबत के बीसोवाले पहलू पर बार-बार सोचता रहा। यह संकट उससे छिपा हो सो बात नही थी। माँ की तन्दुरुस्ती इधर गिर रही थी। बहन के व्रतो उपवासों की संख्या बढ़ गई थी। बिसेसरी के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ा था इन बातों का···

टुनाई माहे की ओर बीच-बीच मे देख लेता था। वर्षा के पानी का रेला दूब की गुच्छियों में खर के कुछ टुकडे कभी उलझा गया था, वे अब भी जस-तस उनमें फँसे-अटके पड़े थे। खर का एक छोटा टुकड़ा उठाकर टुनाई ने हथेली पर उसे फिराया, मिट्टी झर गई तो वह उससे कान खोदने लगा।

"कब तक कान खोदोगे ?"

टुनाई जवाब में फिर कुछ नहीं बोला। उसकी यह स्थिति देखकर माहे ने तय कर लिया कि अभी नयी योजना की भनक टुनाई के कानों में न पड़े तो अच्छा। यह मूर्ख कुछ का कुछ समझ लेगा।

"चलो टुनाई, अभी हम लोग कबड्डी खेलें। बातें फिर कभी कर लेंगे। बात कोई खास तो थी भी नहीं···"

माहे ने टुनाई का हाथ पकड़ा। दोनों उठ गये।

तेरह

पण्डित का दूसरा लड़का दुर्गानन्दन था तो एक मामूली वकील का मोहर्रिर मगर समझदारी उसकी काफी तेज थी। वह ताड़ गया था कि चतुरा चौधरी भीतर ही भीतर बेहद खीझ गया है। बिसेसरी का ब्याह किसी और दूल्हे से न हो, उसकी कोशिश रहेगी। झख मारकर हम अपनी भांजी को चतुरा चौधरी के चरणों में अर्पित कर दें—मनिकपुर-गढ़ियावाले तो यही चाहेंगे!

टुनाई की तरह दुर्गानन्दन की भी चौधरी के किसी गाँववाले से भेंट हुई थी। शादीवाली बात दुर्गा ने चुपचाप सुन ली थी। कहनेवाले तो ऐसा कहते ही, किसका मुँह वह मूंदता फिरता?

पेशा उसका ऐसा था कि रोज सैकड़ों नये चेहरे नजर आते। जान-पहचान भी उसकी खूब बढ़ी हुई थी। पढ़ा-लिखा तो मामूली था, चतुर खूब था। पचाढ़ी महन्थ के विद्यालय में रहकर और वैरागी पंघत का खाना खाकर दुर्गा ने व्याकरण की मध्यमा पास की थी। एक सहपाठी का बड़ा भाई मधुबनी कोर्ट में किसी वकील का मोहर्रिर था। वह एक बार अपने भाई से मिलने आया तो दुर्गानन्दन की बातों से बड़ा ही प्रभावित हुआ। घर की स्थिति से परिचित हो उसने दुर्गा से कहा—"क्या करोगे शास्त्री और आचार्य की परीक्षाएँ पास करके? अब तो जमींदार पण्डितों को वर्षभिक्षा[1] भी नहीं देते! जहाँ के लोग पहले भागवत की कथा सुनते थे, वहाँ वाले नजदीक के शहरों में आकर सिनेमा देख जाते हैं। पण्डितों की क्या कमी है? गेहूँ सस्ता होता है तो घर-घर सतनराएन भगवान की पूजा होती है। सो, पण्डित सस्ते हो गये हैं तो ज्ञान से लोगों को अरुचि हो गई है। चलो, तुम मेरे साथ महीना-भर रहो, फिर देखना। अपना खरच छोड़कर बीस-पचीस तो अगले ही महीने बचाने लगोगे, हाँ!···" यह सुनते ही दुर्गानन्दन की

1. हर साल एक मुश्त दी जानेवाली भिक्षा की रकम जो कि बड़े दरबारों में पण्डितों के नाम बँधी होती थी।

मगजी उलट गई। घर का हाल खस्ता था ही। पूरा दिन पूरी रात वह सोचता रहा—क्या बुरा है, खा-पीकर पन्द्रह रुपैया भी यदि हर महीना घरवालों को वह देने लगे तो यह भारी काम होगा। जिस परिवार में पन्द्रह प्राणी खानेवाले और कमानेवाले हों बस दो जने, उसे भगवान ही सँभालें तो सँभाल ले जायँ! आदमी के बूते की बात नही है यह···अगले ही दिन दुर्गा अपने सहपाठी के बड़े भैया के डेरे पर पहुँच गया और तब से वह मधुबनी में डटा था। खा-पीकर तीस-पैंतीस बचा लेता था, कभी-कभी चालीस तक। दो वर्ष हो रहे थे उसे इस पेशे में, अब तो खैर फर्राट हो गया था। मुख्तार का हाता कूदकर वकील के हाते में आ चुका था। दुर्गानन्दन का विश्वास पक्का हो चला कि यह काम बाबू (पिता) और बच्चन से नहीं होने का। बाबूजी पैंसठ से ऊपर की उमिर के हो गये, जमाने की रफ्तार को पकड़ पाना उनके लिए असम्भव है। भइया ठहरे ठेठ पण्डिताऊ ढंग के आदमी। उनकी भी अकिल 'गजः-गजौ-गजाः' और 'गच्छति-गच्छतः-गच्छन्ति' से आगे नही बढ़ पाती। गौरी अभी बछेड़ा है। टुनाई और बुदुर छोटे हैं···तो फिर बिसेसरी का ब्याह कैसे होगा? ऊँ हूँ! दुर्गानन्दन को स्वयं मुस्तैद होना पड़ेगा। अगले अगहन मे यह काम जरूर हो जाना चाहिए।

दुर्गानन्दन नयी उमर के लोगों पर टोह-निगाह रखने लगा। अंग्रेजी पढ़े लड़के कीमत में छेत्तर[1] के पट्ठे को मात कर रहे थे, यह तो उसने सौराठ मे आँखों देखा था। साधारण पढ़ा-लिखा हो और डेढ़-दो बीघा जमीन का किसान हो, मुखड़ा अच्छा हो और उमिर पच्चीस से जास्ती न हो···बस, अपन तो ऐसा लड़का चाहते हैं! दस-बीस रुपया देना भी पड़े तो भी ऐसे युवक को उठा लायेंगे।

'बाप और भाई की राय नहीं लोगे?'

'और ऐन मौके पर लड़के का गार्जियन भड़क गया तो?'

'तुम्हारे दरवाजे पर फिर कौन अपनी इज्जत गँवाने जायेगा?'

'दिगम्बर और माहे वगैरह से क्यों नहीं इस काम में मदद लेते हो?'

'अरे हाँ, इनसे हमारी क्या दुश्मनी! उस रोज दिगम्बर और माहे ने जो कुछ किया सो अपने लिए थोड़े किया?'

'गाँव-भर की नाक कट रही थी, साबित रह गई!'

'दिगम्बर और माहे हमारी बिसेसरी के लिए कुछ न कुछ जरूर सोच रहे होंगे कि नहीं?'

'सोच रहे होंगे कि!'

दाहिनी कनपटी के ऊपर पीतल की घिसी निबवाला उखड़े रंग का होल्डर खोंसे बाबू दुर्गानन्दन मोहर्रिर यही सब सोच रहे थे।

1. हरिहर क्षेत्र (सोनपुर, बिहार) हाथियों का सबसे बड़ा मार्केट है।

भीतर दोएम मुंसिफ का कोर्ट।

बाहर बरामदे में खचाखच भीड़। दो-ढाई हाथ अन्दाज रास्ता के लिए जगह छूटी हुई।

बरामदे पर लम्बाई में दोनो ओर मोहर्रिर और स्टाम्प बेचनेवाले अपनी-अपनी दरी बिछाये हुए। बीच-बीच में कहीं एक-आध छोटी तख्तपोश भी। किसी पर लुढ़की स्याही का धुँधला निशान तो किसी के छोर पर बारीकी से खिंची हुई चाकू की छोटी-छोटी घनी लकीरें—मुवक्किल या गवाह ने तम्बाकू के सूखे-बड़े पत्ते को खैनी बनाने के लिए काटा होगा, पास ही चूना का भी चिन्ह मौजूद था। अपनी छाती पर कत्था-चून से लिभड़ी हुई उँगलियों का छापा लिये हुए पावे पान के शौकीनों को फिर भी घूर रहे थे। शोरगुल और मिश्रित ध्वनियों की एक अजीब गूँज अदालत को अनाज और तिलहन की मण्डी बनाये हुए थी। सियाराम-कीर्तन, विदेसिया नाच, हनुमान चलीसा, भरथरी चरित्र, नागलीला, दानलीला, किस्सा तोता-मैना, किसा सवाचार यार, सत्यनारायण कथा, दुर्गा सप्तशती, श्रीमद्भगवद्-गीता, सुन्दरकाण्ड रामायण (तुलसीदास), मैथिल श्राद्ध-विवाह-पद्धति, जतरा-सगुन विचार, पहाड़ा (बाराखड़ी)···वगैरह बेचने वाले दो-तीन छोटे बुकसेलर जूट के छोटे टाट पर अपनी-अपनी दूकान सजाये बैठे थे। दो-एक ऐसे भी दूकानदार थे जो चाकू-कैंची, अलीगढ़ के ताले, सुइयाँ, बटन और धागों की गोलियाँ जैसी चीजें फैलाये हुए थे। बीचो-बीच रास्ते के लिए जो जगह छूटी हुई थी, उस पर से तरह-तरह की सूरत-शक्ल वाले गुजर रहे थे। सामने दाढ़ी-मूँछ सफाचट या फिर बड़ी-बड़ी मक्खियों जैसी मूँछोंवाले मगर पीछे चुटिया की ढाई-तीन तोला गाँठ लटकाये हुए; तेल में चपचप करती हुई छँटे बालों की सतमहला पट्टियाँ और नाक पर से लेकर कपार के ऊपरी छोर तक पीली मिट्टी का लम्बा उँगलिया रेख और गले में सरसों जैसे बारीक दाने वाली वैष्णवी कण्ठी; दाढ़ी नहीं लेकिन मूँछें मशीन से छँटी हुई और कपार में सेंदुर का गीला टीका; नेपाली बकरी जैसी पतली-लम्बी दाढ़ी, मूँछें छँटी हुई और दुपलिया टोपी माथे पर; चोटीविहीन, खाली सिर, दाढ़ीमूँछ सफाचट—पैंट लेकिन सबके थे। बाकी कोई चपकनधारी तो कोई कोटधर···ये लोग मधुबनी अदालत के वकील थे। मुख्तारों की आमदनी बहुधा वकीलों से कम हुआ करती है, इसका असर उनकी शान-शौकत पर पड़ता है। यहाँ भी मुख्तारों का वही हाल था।

कि इतने में मोकिल आकर दुर्गानन्दन से अपने मुकदमे की अगली पेशी का दिन पूछने लगा।

एक बार पूछा, दो बार पूछा। तीसरी दफे मोकिल भभाकर हँस पडा।

जोर की हँसी ने मोहर्रिर का ध्यान भंग किया तो वह बोला—"क्या पूछते हैं?"

मोकिल अधेड़ उमर का गोरा-छरहरा मुसलमान था। उसने मुस्कुरा के कहा—"अपने मुकदमे की अगली पेशी की तारीख मैं किससे मालूम करूँ ? यहाँ तो डूबा हुआ है लैला की याद में मजनू···हः हः हः हः !"

"नहीं शेखजी !" दुर्गानन्दन झेंप गया।

"तो क्या सोच रहे थे आप ?"

"एक घरेलू झमेला आ पडा है, शेखजी !"

"तिरिया चरित्तर का झमेला न ?"

"मखौल नहीं शेखजी, अपनी कसम !"

मुवक्किलों से मुहर्रिरों का हास-परिहास कोई अनहोनी बात तो थी नहीं। यही तो चीज है जिससे अदालत की मनहूसी फटती है। पेशेवर एकरसता को जिन्दगी का रंगीन और जायकेदार मिक्श्चर इस तरह कभी-कभी खुशगवार न बना ले तो दुनिया नरक ही नरक रह जायेगी।

दुर्गानन्दन की चेतना ने स्फूर्ति हासिल की शेख की इस टॉनिक से। पाकिट से गीता प्रेस वाली डायरी निकालकर वह बोला—"20 अगस्त, सोमवार···और जरा पहले आ जाइएगा। वकील साहब को उस रोज बहुत-सारे काम करने हैं; चार केसों में उस तारीख को उनकी बहस होनेवाली है···और हाँ···"

शेख ने एक चवन्नी अपने मोहर्रिर की मुट्ठी में गोंज दी।

"आज के लिए थोड़े कहा है ?" मोहर्रिर बोला और मुस्कुराने लगा।

"तो ?"

"अजी, अगली पेशी के दिन से मेरा मतलब था।"

"समझ गया।"

"हूँ ! खलास बैटरी से काम नहीं चलेगा उस रोज। मसाला भरा रहे; हाँ शेखजी, समझे न ?"

शेख का चेहरा भारी हो उठा तो मोहर्रिर की टोन बिल्कुल बदल गई—"अजी, जास्ती नहीं। बीस-पचीस में उस तारीख का सारा काम निबटा दूंगा, आप कुछ फिकिर मत कीजिए।"

"अभी तो समन तक नहीं पहुँचा है गवाहों के पास !"

"यह बात है ?"

"और नहीं तो ?"

"निकालिए ए'गो रुपइया ! सिरिस्तेदार और समन ले जानेवाला सिपाही—दोनों को अठन्नी और चवन्नी चटानी पड़ेगी, मैं कई बार जा-जाकर उन्हें ताकीद करूँगा। तब कहीं समन बरामद होंगे और गवाहों तक पहुँचेंगे। कितनी दौड़-धूप मुझे करनी होगी ! चाहिए तो डेढ़ रुपइया, मगर निकालिए आप एक ही कलदारम्···"

"मेरे पास तो अब लारी का भाड़ा-भर रह गया है !"

"ऊँ हूँ ! फिर कैसे होगा ?"

"तो किसी पड़ोसी या जान-पहचान के आदमी को देखता हूँ···दुर्गा बाबू, आप ही कोई इन्तिजाम कर लीजिएगा, अल्ला की कसम ! मैं दे दूँगा पीछे···"

"नहीं जहदल्ली शेख, इस बखेड़े में मैं नही पड़ूँगा। किस-किस मोकिल के लिए मैं उधार पैसा माँगता फिरूँ और अमूल-तहसील का एक नया खाता खोलूँ ! न हो तो आज रहने दीजिए, चार रोज बाद आइयेगा, काम हो जायेगा।"

शेख उठा झख मारकर आखिर।

दुर्गानन्दन भी उठे। ऊपर सीध में उठाकर बाँहों का झटका दिया, साँस को थमकाकर समूचे बदन को कड़ा किया और जँभाई ली। फिर पान की दूकान की ओर बढ़े।

तिर्छे टँगे आदमकद आईने में साँवली सूरत का जो चेहरा दिखाई दिया उससे दुर्गा को अचरज हुआ।

अरे, यह तो दिगम्बर है !

नजदीक आकर दुर्गानन्दन ठमक गया। पान के चार बीड़े मुँह में कोंचकर ऊपर से जर्दा डालके दिगम्बर ने निचली जेब से चमचमाती अठन्नी निकाली। उधर नजर पड़ते ही तमोली मुस्कुराया, होंठों को ड्योढ़ा करके इन्कारी मुद्रा मे उसने भारी-सा माथा हिलाया।

"नहीं है चेंज !"

"वाह, क्यों नहीं है !" अकस्मात् पीछे से एक हाथ बढ़ आया आगे, तमोली के सामने झकाझक पीतल मढ़ी छोटी चौकी पर एक धूमिल मगर अनघिसी दुअन्नी रख दी गई···खट्ट।

दिगम्बर ने गर्दन घुमाई, दुर्गानन्दन से आँखें मिलते ही मुँह से निकला—"पर्नाम दुर्गा बाबू।"

"दिगो, यहाँ कैसे रे ?"

"गिलसेन[1] में कुछ सामान लेना है।"

"क्या-क्या ?"

"उड़द, लाल मिर्च, काली मिर्च, जीरा···"

"अब आज नहीं जाने दूँगा, कल सवेरे [illegible]पीके अपना चले जाना !"

"अंदेशा के मारे माँ जो परान तेआग देगी।"

"नहीं रे दिगो ! राम के लिए कौसल्या की जान जब नहीं निकली तो तेरी माँ का क्या होगा ?"

1. ग्रियर्सन मार्केट (मधुबनी)

यह कहते-कहते दुर्गानन्दन को भी हँसी आ गई और दिगम्बर के रँगे होंठ दुहरे-तिहरे हो उठे।

तमोली तब तक दुर्गा को भी पान दे चुका था।

दुर्गानन्दन ने दिगम्बर के कन्धे पर अपनी एक बाँह डाल दी और चलते-चलते गाँव-घर के हालात मालूम करने लगा···गोनउड़ा की दादी मर गयी थी···चोर फतूरी काका की बाड़ी से तीन कटहल तोड़ ले गये थे·· रामेसरी को हल्का-सा बुखार आया था···गौरीनन्दन लहेरियासराय से होमियोपैथी की दवाएँ खरीद लाये हैं···।

उस रोज सनीचर था, अदालत कुछ पहले ही उठ गई। अपनी जगह पर आकर दुर्गानन्दन कुछ देर दिगम्बर से इधर-उधर की बातें लड़ाता रहा। इसी बीच वह जहदल्ली शेख चुपचाप एक रुपइया दे गया। कुछ कहने लगा था कि दुर्गानन्दन ने नजर मारकर इशारा किया—सब ठीक हो जायेगा अब; और बाईं हथेली उठा—फैलाकर बेफिक्र रहने का आश्वासन दिया।

"इसी के लिए मैं रुका था दिगो !"

"तो चलिए न अब !"

दुर्गानन्दन ने बस्ता लपेटा। अलग एक टटऊ[1] घर में कुछ बेढंगी सन्दूकें पड़ी थीं, एक को खोलकर उसमें अपना बस्ता रख दिया। दफ्तियोंवाली छोटी फाइल साथ रख ली। बोला—"अब चलो भइया !"

सूड़ी स्कूल के पास दुर्गानन्दन के वकील साहब का डेरा था। बैठक वाले बाहरी हिस्से में दो कोठरियाँ थीं। एक पर दुर्गा का कब्जा था। यों तो इस रूम में भी फूटे शीशोंवाली दो बूढ़ी आलमारियाँ थीं, उनमें बँधे-बेबँधे कानूनी पोथे अव्यवस्थित रूप में पड़े थे। फिर भी दुर्गानन्दन ही इस कोठरी का सर्वाधिकारी था, क्योंकि ताला लगाकर दो-दो तीन-तीन दिन मधुबनी से बाहर रह सकता था।

बरामदे में कुछ कुर्सियाँ पड़ी थीं। बाजार के लिए कोठरी से बाहर निकलते समय दुर्गा ने हाथ बढ़ाकर कहा—"यहाँ, दिगो, वकील साहेब बैठते हैं।"

बाजार जाकर दोनों सौदा कर आये, दुर्गा ने नहीं माना···आग्रहपूर्वक हलवाई की एक दूकान में ले आकर जब बैठा ही दिया तो बाबू दिगम्बर को नाश्ता करना पड़ा। टकही कचौड़ियाँ मुरमुराते हुए दिगो ने कई बार कहा—"क्यों इतना खर्च करते हैं दुर्गा भैया ?"

"अरे, तुम क्या रोज आते हो ?"

ऊपर से चार-चार बीडे पान के।

1. भीत की जगह बाँस की फट्टियों की बनी आड़वाले

ऐसा नहीं कि पण्डित दुर्गानन्दन झा ने साथ नहीं दिया हो ? साथ दिया और हँसते-खेलते !

लौटकर डेरा पर आये। बातें होती रहीं, फिर बीच में उठे दोनों जने और जाकर खा आये बूधन झा के होटल से। दुर्गा इस होटल का माहवारी मेम्बर था ही। दिगम्बर मल्लिक थे गेस्ट।

बरामदे में अपनी कोठरी की ओर ही कम्बल बिछाया गया, फिर दरी।

"तकिया एक है तो क्या हुआ ? मैं अपने लिए कपड़े डालकर झोले को ठीक कर लेता हूँ, तुम तकिया पर माथा रखकर आराम से सो जाओ !"

"नहीं, दुर्गा भाई ! ऐसा भी कहीं होने का ?"

दोनों अगल-बगल लेटकर देर तक बातें करते रहे।

आज बिसेसरी के बारे में चिन्ता के दो पृथक् सूत्र एकजुट हो गये थे। आगे क्या रास्ता है, इस पर खुलकर गप्प हुई थी।

अगहन में जैसे हो बिसेसरी की शादी होगी ही। बिसेसरी के लायक दूल्हा नहीं मिलेगा ! मिलेगा क्यों नहीं ? और चतुरा चौधरी ? अरे, उस दुमघिसे गीदड़ की बात छोड़ो। वह भूँक-भूँककर अपनी माँद में सर पटकता रह जायेगा···

चौदह

आसिन का महीना !

पितरपच्छ के दिन आ गये थे।

आज मातृनवमी थी। अपनी-अपनी माँ, नानी, सास, दादी और परदादी के निमित्त सबको एक-एक ब्राह्मण चाहिए था। इतने ब्राह्मण कहाँ से आवे ?

माहेश्वर का नौ घरों में न्योता था। बूलो का सात घरों में। गौरीनन्दन, टुनाई, बुदुर—किसी को भी पाँच-पाँच से कम घरों मे नहीं जीमना था।

पण्डिताइन ने अपनी नानी, सास और सौतली सास के लिए चार ब्राह्मणों को न्यौता दिया—चारों छोकरे बाभन थे क्योंकि सयानी मूर्तियों के लिए भोज्य वस्तुएँ काफी और अच्छी अपेक्षित होतीं। शास्त्र में कहीं ऐसा तो लिखा है नहीं कि भूख से कुलबुलाते अधेड़ ब्राह्मण के समक्ष तीन-तीन पत्तलों की खाद्य-सामग्री एक ही पत्तल पर परोस देनी चाहिए, अन्यथा पितरों की तृप्ति नहीं होगी। गले में जनेऊ रहनी चाहिए, फिर उमर यदि पाँच की भी हो और जन्म हुआ हो ब्राह्मण

वंश में तो देवता और पितर लाख झख मारें, आपको ब्रह्मभोज में सम्मिलित होने का पूर्ण अधिकार है।

बूलो की भाभी ने अपनी माँ और सास के निमित्त पकी उमर के दो ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया था और ताकीद कर दी थी कि वे पहले उसी के घर जीमेंगे। जिमाये ब्राह्मण बटुकों को जैसे-तैसे जिमाकर पितरों को ठगना बूलो की भाभी ने कहाँ सीखा था ? नहीं सीखा था !

रामेसरी ने अपनी सास के निमित्त फतूरी काका को न्योता दिया था। वह चर्खा चलाकर दस-बारह रुपये महीना अपना कमा लेती थी। अन्न-वस्त्र के लिए अभी माँ-बाप जीवित थे। लड़की के लाड़-प्यार के लिए और दूसरी जरूरतों के लिए सूत बेचकर हासिल की हुई यह रकम काफी थी। अपने पति और सास की बर्खी के अवसर पर वह सात या पाँच ब्राह्मणों को अवश्य जिमाती। ब्राह्मणों की संख्या भले थोड़ी रहे, सामग्री मगर अच्छी होनी चाहिए—इस ओर रामेसरी बराबर सतर्क रहती। हाँ, माँ-बाप और भाइयों को वह उनकी धारणाओं के मुताबिक ही चलने देती।

छोटी बहू के नानी नहीं थी, सो उसके नाम पर फतूरी का नौ-साला लड़का पित्तो जीमने आया।

चन्द घण्टों के अन्दर ही जिन्हें कई घरों के पितरों को अकेले-अकेले तृप्त करना था, वे उस रोज सबेरे ही नहा-धोकर और चन्दनटीका लगाके तैयार हो गये थे।

माहे रात से ही पेट को हल्का किये हुए था, उसे नौ पत्तलों से निबटना था न ! मुखिया के घर चूड़ा-दही में पितरपच्छ के ब्रह्मभोजी मैदान में वह जो कूदा सो बाबू नीलकण्ठ मल्लिक के यहाँ पूड़ी-तरकारी का पारायण करता हुआ बाहर निकला···बीच-बीच में कहीं भात-दाल-तरकारी, कहीं चूड़ा-दही और कहीं फिर भात-दाल-तरकारी और कहीं फिर चूड़ा-दही ! आधा पहर दिन उठे पहला पत्तल सामने आया था और आखिरी दो बजे। बाकी दिन-भर वह बूलो के दालान पर चित्त-पट होता रहा और पानी पीता रहा।

बूलो का खुद का भी यही हाल था। माहे की माँ के यहाँ से शुरू करके परमानन्द पाठक के घर उसने अन्तिम बार हाथ-मुँह धोये थे ! माहे की माँ को भी खिलाने-पिलाने का आवेश काफी था और पाठक लोगों का खान-पान तो गाँव-भर में मशहूर था ही।

दिगो के दालान पर उस रात पचीसी[1] खूब जमी थी। माहे और बूलो नहीं आ सके थे, बाकी सभी आये थे। दिगो और गौरी दोनों गुइयाँ थे, दो बार हारे थे और एक बार इनकी गोटियाँ लाल हो गई थीं— जीत गये थे।

दुर्गानन्दन और दिगम्बर ने मधुबनी में जाने क्या-क्या बातें की थीं कि आपस का तनाव बिल्कुल हट गया था अब। जन्माष्टमी की छुट्टी में दुर्गा घर आया और बूलो के घर जाकर बड़ी देर बाद बाहर निकला था। अपनी माँ और बहिन से भी उसने काफी एकान्ती की थी।

दूल्हा जब से भगा दिया गया था तब से दिगम्बर-बूलो-माहे आदि के परिवारों से पण्डित-परिवार का मेल-जोल एकदम टूटा हुआ था, सो अब एकाएक जुड़ गया—मुखिया और फतूरी वगैरह इसे उच्चाटन और वशीकरण का कोई तान्त्रिक प्रयोग समझने लगे, या क्या सो वही जानें! हाँ, अचरज के मारे आँखें उनकी कपार पर जरूर उठ आई थीं। मुखिया ने दो दिन बाद, पोखर के पथराही घाट पर गीली धोती बदलते हुए फतूरी की ओर भोरे-भोरे आँखें फाड़-फाड़कर देखा। खुद दिसा-फराकत हो आया था। हाथ मटिया चुका था, अब सिलवर का बनारसी लोटा मिट्टी से मल रहा था। घाट के नजदीक पानी के बलुई कछार पर एँड़ियों के सहारे बैठा था। बाईं ओर गर्दन घुमाके थूक फेंकी और बोला—"खोंखा पण्डित का समूचा घर बूड़ गया फतूरी काका!"

"कहते क्या हो!"

फतूरी चौंके। हथेलियों में फुर्ती आ गयी तो कमर से सूखी धोती का कोर-किनारा चट्ट से गोलाई में लपट गया और सड़ाक से लाँग मानो आप ही पीछे की ओर होकर खुँस गयी।

धोती का बाकी हिस्सा उन्होंने पीठ पर डाल लिया तो वह गर्दन का चदरऊ घेरा बन गया।

झुककर गीली धोती पर हाथ डालते हुए फतूरी ने मुखिया को फिर टोकारा दिया—"उँ?"

घुटने-भर पानी में जाकर मुखिया जोर-जोर से लोटा खँगार रहा था और फतूरी काका बीच में टूटे हुए श्लोक की कड़ी को फिर जोड़ रहे थे।

1. चौपड़ की तरह का एक खेल—आठ कौड़ियों के सहारे खेला जाता है; खाने बिल्कुल चौपड़ के गोटियाँ चार होती है। मुट्ठी में लेकर भाँजने पर चित और पट पड़नेवाली कौड़ियों के क्रम से लोग अपनी-अपनी गोटी की चाल बढ़ाते हैं। खेलनेवाले भी चार—आमने-सामने दो-दो, जो गोधियाँ (गोइयाँ साथी) कहलाते हैं।

"प्रथमस्तु महादेवो द्वितीयस्तु महेश्वरः !
तृतीयः शंकरः प्रोक्तश्चतुर्थो वृषमध्वजः !!
पंचमः कृत्तिवासाश्च···"

मुखिया ने ताबड़तोड कुल्लियाँ की, वहीं पानी के अन्दर ही गर्दन को तनिक दाहिनी ओर घुमाकर—पानी लेकिन चुल्लू से सामने की तरफ से लेता था।

पानी से बाहर निकलकर वह गमछे से हाथ-मुँह पोंछने लगा। फतूरी तब तक पानी के अन्दर जाकर धोती खँगारने लग गये। पाठ का एक टुकड़ा खतम हो गया और धोती भी निचोर ली उन्होने !

"क्या कह रहे थे तुम मुखिया ?"

"खोंखा पण्डित का पलिबाड़ बूड़ गया !"

"कुछ कहबो करोगे कि !"

"वह छउँड़ी फिर गाँव-भर में कुदान मारने लगी फतूरी काका !"

"कौन हो ? बिसेसरी ?"

"तो और कौन !"

"चार महीने हुए, मैंने तो उस लड़की को नही देखा है कहीं आते-जाते।"

"आपको, फतूरी काका, घर की खबर तो रहती ही नहीं, फिर गाँव का हाल क्या जानने गये आप ?"

इस पर फतूरी काका तनिक बिलमे।

ऊपर से ताजी-चिकनी मिट्टी ले आये कौड़ी-भर, लोटा को हल्के हाथ से माँजते हुए कहा—"जाने भी दो बासकीनाथ, धी-बेटी ठहरी। नानी ने या मामी ने किसी काज से इधर-उधर दौड़ा दिया होगा। बहिकिरनी[1] किसके घर क्या काम करती है ? गया वह जमाना बाबू, मुट्ठी-भर जूठे भात की आस लगाए हमारी-तुम्हारी देहरी के सामने अब कौन निगोड़ी खड़ी रहती है ? और फाजिल भात ही अब किसकी हँड़िया में पड़ा रहता है ? बोलो न ?"

"सो मैं कहाँ कहता हूँ कि नहीं, मुदा···"

बात को बीच ही में निगलकर मुखिया कछार से ऊपर जा पहुँचा और भिड[2] पर एँड़ियों के सहारे बैठ गया। साहड़ की हरी-ताजी छरहरी टहनी तोड़ लाया था सो वहीं पड़ी थी। अण्टी से चाकू निकाली जो कि अपनी नफासत व तेज धार के लिए मौजा नौगछिया में मशहूर थी—छोटी-सी चमचम करती हुई रेजिस चाकू ! पहले उसकी फली खोलकर धार को धोती के खूँट से पोंछा, फिर दतवन बनाने लगा। अपनी इस चीज पर हाथ पड़ते ही मुखिया को कलकत्ता की याद हो

1. गृहदासी।
2. तालाब या चभच्चा का बंध।

आती थी। दो साल पहले माँ और स्त्री को साथ लेकर वह जगन्नाथ की यात्रा कर आया था, लौटते समय दो रोज कलकतिया हवा खाई थी। यह चाकू वही डेढ़ रुपया मे ली थी···

एक हाथ में भीगी-निचुडी धोती, दूसरे मे पानी-भरा लोटा सँभाले फतूरी भी घाट छोडकर ऊपर आए। तनिक ठमक गये।

"और, क्या-क्या बात थी ?"

दातून चबाता हुआ मुखिया बोला—"रामसरी माहे की माँ से पहर-पहर गप्पें लड़ाने लग गयी है। मानिकपुरा-मढ़िया वाला बुड्ढा जब से मुँह की खाकर गया तब से इन लोगों मे बोल-चाल, मेल-जोल सब बन्द था। अब एकाएक रातो-रात यह क्या हो गया फतूरी काका, कि गंगा-जमुना की धार एक ही नहर में आकर बहन लगी है फिर ?"

"क्या बुरा है ! तुम्हें इसमें प्रपंच की गन्ध तो नहीं लग रही है ?"

हतप्रभ होकर मुखिया ने आँखें नीचे की ओर कर ली तो फतूरी ने घर का रास्ता पकड़ा।

तो, उतनी बड़ी दुर्घटना के तीन ही महीने बाद बिसेसरी फिर टोला-मुहल्ला मे कुदान भरने लगी थी ?

अरे, कुदान भला क्या खाकर भरती बेचारी ! दरभंगा की महारानी की कोख से ना नही पैदा हुई थी वह; या कि हुई थी ?

नहीं, बीसो बेचारी एक गरीब घर की पितृहीन लड़की थी जिसे निठुर गोतियो न अपनी विरासत से महरूम करके दूर—बहुत दूर खदेड दिया था, बदनसीब नाना-नानी की दरिद्रता के दहकते हुए अग्निकुण्ड मे धकेल दिया था।

इस उमर में बेफिक्र होकर कुदान वह भरे जो हँसी-खुशी से दमकते चेहरो वाले खानदान में पैदा हुआ···उसी मे पला-पुसा हो या फिर जिस छोकरी का बाप मिनिस्टर हो कहीं का या फिर लखपती-करोड़पती हो··

बिसेसरी या उसकी बेवा माँ रामेसरी के लिए कुदान भरने की कल्पना तब तक एक असम्भावित स्वप्न था।

हाँ, बिसेसरी दो-तीन जगह अब जरूर जाने लगी थी। तरुणाई की सहज चुस्त चाल अगर किसी खूसट की निगाहों में खटके तो इसमें भला अबोध बिसेसरी का क्या कसूर ?

खंजन के घर जाती थी, बूलो की भाभी का आँगन फिर उसकी मुस्कानों से घुलने लगा था और कभी-कभी तिरपित साहु की दूकान भी जाना पड़ता था। बस एतावद्ध रामायणम् ! (इतनी-भर रामायण ! बाकी कुछ नहीं !)

खंजन उसकी मुँहलगी और हमदर्द सहेली थी। आयु में चार महीने छोटी। क्वाँरापन उसका भी अब तक टटका था। वह परमानन्द पाठक की भतीजी थी।

पिछले जेठ में ठीक दूल्हा आने के दिन, दुपहर के वक्त उसे बुखार आ गया था। सो, अब बीसो उसके घर आने-जाने लगी थी।

बूलो की भाभी के घर चउड़-चन[1] के दिन ढाई-तीन महीने बाद वह आई थी। कितनी खुश हुई थी भाभी ! पकवान छानना छोड़कर उठ आई और कसके बीसो के गाल चूम लिए थे, एक नहीं अनेक बार ! और उधर कड़ाही में पक रहीं गुझियाँ लहक उठी थीं; धुआँ उठने लगा था उनसे !!

पन्द्रह

दिगम्बर का ननिहाल—पदुमपूरा—खजउली स्टेशन से कोस-भर पच्छिम था, पक्का कोस नहीं कच्चा कोस···डेढ़ माइल का फासला था।

ऐसे तो छठे-छमाहे दिगो को पदुमपूरा जाना ही पड़ता था, क्योंकि नानी संग्रहणी का शिकार थीं बहुत दिनों से। उनके लड़के थे तीन मगर लड़की यही एक थी—दिगम्बर की माँ मात्र, सो भी पहली सन्तान। नाना अथबल हो चुके थे, आधा लेटे-लेटे दिल-दिमाग की खुरचन कागज पर उतारा करते थे। इधर पण्डिताऊ ढंग पर नाटक लिखने की धुन सवार थी 'ललितकिशोर' जी पर, पौराणिक कथानकों का आधार लेकर अब तक आप अठारह रूपक तैयार कर चुके थे। नाना और इस नाती में खूब घुटती थी। घण्टों बैठकर दिगम्बर सूत्रधार— नट-नटी-विदूषक के कथोपकथन सुना करता नाना के मुँह से। फुलिस्कप साइज का बादामी कागज : सौ-सौ पेज की दसियों कापियाँ ! ब्लू ब्लैक स्याही और पीतल की मोटी निब की सुडौल और पुष्ट लिखावट में बड़ा ही भव्य—अत्यन्त मनोरम लगता था दिगम्बर को यह सब देखने में। नाना की यह साधना किशोर नाती के रोम-रोम में स्फूर्ति का संचार करती थी। सुनाते-सुनाते ललितकिशोरजी लेखक की मर्यादा का उल्लंघन करके कब नाटकीय परिधि में अपने स्वरों और मुद्राओं को दाखिल कर लेते, पता नहीं। यदा-कदा बल्कि बहुधा योग्य आगन्तुकों को वह अपनी ये कृतियाँ बाँच-बाँचकर आग्रहपूर्वक सुनाया करते। इससे हुआ यह था कि अधिकांश कथोपकथन उन्हें कण्ठस्थ हो गये। यह सब बुढ़ऊ के लिए भी मामूली मनोरंजन ही था।

1. भाद्र शुक्ल की चौथ, नैवेद्य-निवेदनपूर्वक भादों की चौथ के उगते चाँद को देखने का त्योहार।

दिगम्बर के तीन मामा थे। एक जिला सहरसा में किसी हाईस्कूल का हेडमास्टर था, एक मुक्तापुर की जूट-फैक्टरी में असिस्टेंट एकाउंटेंट और तीसरा मैट्रिक पास कर चुकने पर जो खेती-गिरस्ती में जुता सो अब घर का मुखिया बन बैठा था।

नानी थी, नाना थे, तीन मामियाँ और उनके सात बच्चे थे, एक नौकरानी थी, एक चरवाहा था—सबसे ऊपर परिवार-भर की देख-रेख करने वाले बाबू जयनन्दनलाल दास तो थे ही। यही दिगो के 'छोटका मामा' थे।

परिवार के महामुखिया बाबू श्री गुणवन्तलाल दास 'ललितकिशोर' अब घर के किसी काम में दखल नहीं देते थे। स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ, श्रीमद्भागवत, देवी भागवत, कृत्तिवास का बँगला रामायण, काशीराम दास का बँगला महाभारत, मासिक कल्याण, सूरसागर, विनयपत्रिका, ब्रज-माधुरीसार···और अपनी साहित्य-साधना···वह निष्काम कर्म के कायल थे। अपनी कृतियों के पुलिन्दों की गट्ठर को देख-देखकर आप ही पुलकित होते और बुदबुदा उठते :

"कृष्णाय वासुदेवाय
हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेश नाशाय
गोविन्दाय नमोनमः।।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय
गोब्राह्मण हिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय
गोविन्दाय नमोनमः।।"

अन्तिम कड़ी पर पहुँचते-पहुँचते भावावेग के मारे उनका मस्तिष्क एक अजीब तनाव का अनुभव करता और साँस घुटने-सी लग जाती; मानसिक आकुलता से घिग्घी बँध जाती तो स्वर के क्रम अर्धरोदन एवं उच्छ्वास मे सघटित होने लगते—प्रभो ! प्रभो ! त्राहि माम् मधुसूदन ! मो सम कौन कुटिल खल कामी !···और फिर—मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई···कम्पित स्वर-लहरी आत्मनिवेदन की सहज-स्निग्ध कमनीयता के अगवाह रास्ते को अनायास ही पकड़ लेती। विभोर हो-होकर और तालियाँ पीट-पीटकर गाये जाने वाले मीरा के वे अनमोल पद बहुधा दिगम्बर को अपनी लय में बहा ले जाते थे। भक्ति और भावना की विह्वलता के आगे बूढ़े गले का वह फटा-फूटा खुरदरापन बिल्कुल ही दब जाता था। आवेग की भाफ निकल जाने पर 'ललितकिशोर' जी के मुँह से निकलता :

"कर्मण्येवाधिकारस्ते
मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफल हेतुर्भूः
मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥"[1]

भक्ति की इस सगुण धारा ने उन्हें धीरज की नैया दी थी, सन्तोष की पतवार दी थी। लिखित वस्तुओं का प्रकाशन उनकी दृष्टि में उतना महत्त्व नहीं रखता था जितना कि लिखना—लिखते चले जाना और पाण्डुलिपियों का ढेर लगा देना। आगे का काम तो लीलाधर-नटनागर गोवर्धन-गिरिधारी-वृन्दावनबिहारी-कुब्जाविलासी-गोलोकवासी-कालिय-नागनथैया-कुँवर कन्हैया के कृपा-कटाक्षों पर निर्भर था न !

दिगम्बर जब ननिहाल रहता तो दिन-भर में एक-आध बार आकर नाना के नजदीक बैठ जाता और वह अपनी कृतियाँ नाती को प्रेमपूर्वक सुनाते।

नये ढंग से लिखी गयी कविता या कहानी को वह समय एवं प्रतिभा का दुरुपयोग बताते। इसी से दिगम्बर नाना के सामने कभी नहीं खुला। लिखता तो आखिर वह भी था न !

नानी को सींकों से पंखी-विजनी, पान-सुपारी रखने का डिब्बा, पउती, बिड़हाड़ा, रिकाबी, डलिया, चँगेरी, फुलडाली बनाने का भारी शौक था। अब तो खैर देर तक एक आसन मे बैठना उनके लिए असम्भव था।

दिगम्बर का मन नानी के कला-कौशल पर उतना फिदा नही था जितना कि छोटी मामी की सीने-पिरोने की हुनरमन्दी पर। ठिगने कद की यह साँवली औरत स्वेटर-मोजे तो बुनती ही थी मगर बातें भी बड़ी नफासत से बुनती थी—सच पूछिए तो इसी एक कारण से दिगम्बर बाइससाला छोटी मामी के चंचल नैनों को अपना दिल रेहन किये हुए था। नाम हू-ब-हू उसकी प्रकृति और आकृति पर फिट बैठता था···सलोनी देवी ! चाल-ढाल और रंग-ढग परख कर सब कुछ भाँप लेनेवाला जाने वह कौन था जिसने छोटकी मामी का ऐसा बढ़िया नामकरण किया ? सलोनी ! और अब सलोनी देवी ! !

बाकी दो मामियाँ वैसी ही थीं, मामूली घरों में जैसी और जनीजात होती हैं—नितान्त साधारण किस्म की; नाक-नक्शा, चेहरा-मोहरा, शील-स्वभाव किसी भी दृष्टि से अतिशय सामान्य।

यह तो था दिगो का मातृकुल ननियाउर कह लीजिए या ननिहाल···माँ का खानदान।

पदुमपुरा के पास ही एक गाँव था मढ़िया। अपने मिडिल स्कूल के लिए आस-

---

1. काम करना भर तुम्हारा हक है, परिणामों पर तुम्हें कदापि अधिकार नहीं। काम के नतीजों को निमित्त मत बनाओ, निठल्लेपन से कभी तुम्हारा वास्ता पड़े ।।—गीता

पास के इलाकों में यह बस्ती बहुत दिनों से नामी थी।

मिडिल के दो साल दिगम्बर यहीं का विद्यार्थी रहा। यों तो कई साथी थे उन दिनों के, मगर बाचो से घनिष्ठता जो हुई सो हद को पार कर गई थी। अलग रहने पर भी वर्षों तक दोनों में पत्र-व्यवहार चालू था।

वाचस्पति और दिगम्बर—दोनों ने '42 में सातवाँ दर्जा यानी अंग्रेजी-मिडिल पास की थी। बाचो को स्कॉलरशिप मिला था, पन्द्रह रुपये मासिक; मैट्रिक तक लगातार (चार साल) वह मिलता रहा, ग्यारहवें दर्जे तक। '46 में वाचस्पति ने मैट्रिक की, डिवीजन अबकी फस्ट नहीं सेकण्ड आया था। दिगम्बर तो खैर '44 में ही फेल होकर पढ़ना छोड़ बैठा था। मित्रता फिर भी दोनों तरफ उसी तरह अटूट बनी रही। हाँ, वाचस्पति के पास कई कारणों से उतना वक्त नहीं बचता था जितना कि दिगम्बर के पास। अपने दोस्त के लम्बे-लम्बे खत का जवाब देना वाचस्पति के लिए हमेशा बड़ी विकट समस्या रही। छठे-छमाहे आठ-दस लाइन घसीटकर अपने को वह जैसे-तैसे तसल्ली दे लेता।

वाचस्पति झा वाट्सन हाई-स्कूल, मधुबनी का प्रतिभाशाली और गम्भीर छात्र था। मैट्रिक के बाद पढ़ाई उसकी जो छूटी सो छूट ही गई। अब वह छः लाख की आबादीवाले तीन-तीन थाना की जनता की तरफ से इन छः-सात वर्षों के अन्दर नौ दफे जेल जाकर थाली-कटोरा बजा आया था।

वह सोशलिस्ट था।

'43-'44 में एक अण्डरग्राउण्ड सोशलिस्ट लीडर का सम्पर्क पाकर रातो-रात वाचस्पति के जीवन ने त्याग और तपस्या की यह कँटीली पगडण्डी पकड़ ली थी। दो महीना जाते न जाते वह मधुबनी के विद्यार्थियों का अगुआ बनकर राजनीति की सतह पर जोरों से उभर आया था।

और, रात-दिन पॉलिटिक्स की धमाचौकड़ी यह तभी से चली आ रही थी। पढ़ाई में पग-पग पर अड़चन पड़ने लगी। हेडमास्टर पहले 'बेटा' और 'लाल' जैसे पगे-भीगे सम्बोधनों से पुकारा करता, अब वही नजर मिलते ही अपने गालों को आगरे के गोल-गप्पे बनाकर मुँह फेर लेता। समझाते-समझाते न जाने कै कटोरा कीमती पसीना अपना वह चुआ चुका था।

साथियों ने भी कम कोशिश नहीं की थी—मगर वह नहीं सँभला और बकौल अपने हिन्दी टीचर पं० श्री ब्रजवल्लभ त्रिपाठी 'विधुवलय' के एक उदीयमान नक्षत्र घनघोर घटाओं की अटपटी अटारियों पर उठा और चिरकाल के लिए चौपट हो गया!

बाप का देहान्त तभी हो चुका था जब बाचो नौ वर्ष का रहा होगा। माँ, छोटी बहन और खुद तीन ही जने थे। पाँच बीघा बढ़िया जमीन विरासत में मिली थी। माँ लहेरियासराय से पच्छिम के एक ऐसे गाँव की लड़की थी जो अपनी

सामाजिक और राजनीतिक प्रगति के लिए बिहार भर में मशहूर था।

पिता पं० श्रीपति झा काव्यतीर्थ पहले सिंहबाड़ा और पीछे पुपड़ी (जनकपुर रोड) हाईस्कूल में हेडपण्डित रहे। प्राचीन परम्पराओं के प्रति आस्थावान् होते हुए भी, नये युग की ओर उनका दृष्टिकोण असहिष्णुता का शिकार कदाचित् ही हुआ हो।

माँ अपर प्राइमरी पास थी। '38 में मढ़िया के राजपूत काश्तकारों ने डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चेयरमैन को बस्ती के अन्दर कन्या पाठशाला खोलने पर राजी कर तो लिया, पर उन्हें महीनों तक मास्टरनी ही नहीं मिली। मजूरी लोअर प्राइमरी स्कूल की हुई थी। मिडिल न सही, अपर प्राइमरी जिसने पास की हो ऐसी तो होनी ही चाहिए मास्टरनी। आखिर 'ललितकिशोरजी' के कानों तक बात पहुँची तो उन्होंने वाचस्पति की माँ से कहवाया था और वह दो दिन तक सोचती-विचारती रही, तीसरे रोज अपनी स्वीकृति जतला भेजी थी।

समाज की नकेल जिन चन्द हाथों में थी, उन्हें बाचो की अम्मा का पड़ोस की बस्ती में जाकर यह पढ़ौनी करना बड़ा ही अखरा था। सारा कसूर 'ललितकिशोर' की बुढ़ौती पर ओढ़कर नाराजी के अपने-अपने दहकते अंगारों को जैसे-तैसे उन्होंने बुझ जाने दिया था, जीभ की जड़ें उलट ली थी।

गुरुआनी को मढ़ियावालों ने रहने की भी जगह दे रखी थी। दो कोठरियाँ, छोटा-सा आँगन, तुलसी का चउरा, तनिक-सी बाड़ी, अमरूद के दो और नींबू का एक झाड़···और चाहिए ही क्या !

माँ लेकिन मढ़िया के अपने उस क्वाटर में लगातार महीना-भर भी शायद कभी रह पाई हो। अब तो खैर बिल्कुल अकेली थी, लड़की का ब्याह और गौना हो चुका था। वह ससुराल बस रही थी।

बेटे को लीडरी से फुर्सत मिलती तब न !

इस बार साल-भर बाद दिगम्बर की वाचस्पति से भेंट-मुलाकात हुई थी और इसी आशा से दिगम्बर पदुमपुरा आया हुआ था। पाँच रोज दोनों साथ रहे।

मास्टरनी लड़के को मना-मनाकर हार बैठी थी, वह शादी के लिए तैयार ही नहीं होता था। एक दिन दिगो के सामने एकान्त में पहले, अपने दोनों हाथ जोड़कर पीछे उसकी ठुड्डी छूकर वह बोली—"बबुआ, अब तेरा ही भरोसा है। अपने मीत को समझा-बुझाकर तू नहीं तो और कौन राजी करेगा? तीन बरस से माथा पटकते-पटकते मर गई कि बेटा, मुनिया ससुराल चली गई, मैं अकेली इस घर में कैसे रहूँगी? बहू ला दे लल्लन !···मगर, एक भी मेरी कहाँ सुनता है? नहीं सुनता है दिगो !"

विह्वलता में उसका गला रुँध-रुँध आया। दिगम्बर के कन्धे पर दाहिना हाथ रखकर रुक-रुक के वह फिर कहने लगी—"बेटा, उसे क्या फिकर है ! कौन-सा

पहाड़ उठानेकहती हूँ मैं ! बहू आ जायेगी तो दो मुट्ठी भात और कलछी-भर दाल का कहीं टोटा पड़ेगा भला घर मे ? राम ! राम ! राम ! ! छोकरे की अक्ल पाटीवालों ने चाट ली है, कुछ भी नहीं समझता है मेरा बेटा ! पढ़ाई-लिखाई छोड़कर रने-बने भटकता फिरता है, क्या तो किसान-मजूर का राज कैम करेंगे, सबको जमीन मिलेगी, सबको काम मिलेगा ! कप्पार मिलेगा !! टिटिया के मर जाओगे, कुछ नहीं होगा ! देख तो रही हूँ पाँच बरस से, कौन-सा लड्डू-पेड़ा, मोहनभोग-मालपुआ हाथ लगा है ?…"

दिगम्बर बकर-बकर ताकता रहा और कान पाथकर सुनता रहा अपने मित्र की माँ का उलाहना—आधी आयु की उस महिला पर दिगो को दया आ गई। वह बोला—"मुझे तो तुमने कहा नहीं था यह सब कभी ? अब मैं बाचो को जरूर समझाऊँगा।"

इस बातचीत के अगले ही दिन वाचस्पति आ गया।

बडी बातें हुईं दोनों में। बिसेसरीवाली दुर्घटना और उसके प्रतिरोध का समाचार सुनकर वाचस्पति ने दिगम्बर की पीठ बार-बार ठोकी, फिर उछलती-सी आवाज में कहा—"शाबश !"

"नहीं बाचो, इतने-भर से काम नहीं चलेगा।"

"तो ?"

वाचस्पति ने देखा, दिगम्बर एकाएक गम्भीर हो गया है। पीठ ठुकवाते समय खुशी की जिस उबाल को वह मुँह के अन्दर दबाये हुए था, सो अब बिल्कुल गायब थी। आँखों के फैले हुए कोण सिमट आये थे, साँस की गति मद्धिमतर हो गई थी, नाक के पूड़े स्पन्दन खो बैठे थे।

"क्या करना होगा ?"

……………………।

"अरे, कुछ कहोगे भी तो !"

"आगे का काम…"

अब दिगम्बर ने मुँह खोला। निगाहें उसकी वाचस्पति की आँखों पर गड़ी हुई थीं। वाचस्पति के मन-प्राण की समूची शक्ति मानो आँख-कान के भीतर बटुर आई थी।

"…तुम्हारी मदद के बिना आगे का काम नहीं होगा बाचो !"

वाचस्पति ने दिगम्बर का कन्धा थपथपाया—"कहो न ?"

"तुम्हें बिसेसरी का दूल्हा बनना होगा !" कमाण्ड की जमी टोन में दिगम्बर ने कहा।

वाचस्पति की पलकों में तनाव आ गया, दाँतों ने मसूड़ों का दबाव महसूस किया।

अपने को सँभालकर वह बोला—"दूल्हा ठीक कर दूँ यही चाहते हो न ?"

"तुम्हें आखिर क्या एतराज है ?"

"मेरी तो शादी करने की इच्छा नहीं है।"

"इच्छा की भी तुमने खूब कही ! बता दो, उतार लाऊँगा ··कहाँ टाँग रखी है अपनी यह पोटली तुमने ?"

इस पर वाचस्पति को थोड़ी हँसी आ गई तो दिगम्बर भी तनिक मुस्कराया। फिर कहा—"सारी बात खुलकर मैं तुम्हें बता चुका हूँ। जिन्दगी-भर तो अनब्याहा तुम रहोगे नहीं, शादी एक-न-एक रोज करबे करोगे। बिसेसरी बड़ी समझदार और बहादुर लड़की है। बोझा बनकर तुम्हारी गर्दन नहीं तोड़ेगी वह। साथ रखोगे और माकूल ट्रेनिंग दोगे तो अच्छी से अच्छी साथिन बनेगी···हम गाँव-गँवई के लोग ठहरे, समाजसुधार की भी हमारी रफ्तार मद्धिम ही होगी। ऐसा नही कि किसी मद्रासी या पंजाबी सोशलिस्ट जवान को लाकर तुम हमारे सामने खड़े कर दो और कहो, यह रहा बिसेसरी का दूल्हा ! ऊँहूँ, अभी यह कहाँ चलेगा ? नहीं चलेगा। तुम्हें दो रोज का मैं बखत देता हूँ, सोच लो बाबू अच्छी तरह !"

वाचस्पति उठकर चहलकदमी करने लगा, दिगम्बर बैठा ही रह गया। धोती के घुटनोंवाले छोरों पर चोरकाँटी लग गई थी, एक-एक करके वह उन्हें छुड़ाने लगा।

टहलते-टहलते बाचो बोला—"अगर गोत्रों और वंशों के रिश्ते आपस में टकराते हों तो ?"

दोस्त की ओर नजर फेंककर दिगम्बर ने कहा—"तुम भर मुँह एक बार 'हाँ' तो कह दो, फिर सब ठीक हो जायेगा।"

"माँ से पूछ लूँ, इसकी भी इजाजत नही दोगे ?"

"पाँच साल से यह जो सोशलिज्म का पापड़ बेलते आये हो सो सब माँ से पूछ लिया था न ?"

वाचस्पति के होंठों पर हँसी तैर आई, मन-ही-मन उसे एक प्रकार की गुदगुदी का अनुभव होने लगा। ब्याह के नाम पर अब तक उसने एक मक्खी तक को अपनी पीठ पर बैठने नहीं दिया था। पिछले पाँच-छः वर्षों में जाने कितने लड़की-वालों ने उसके लिए चक्कर काटे थे और लौट-लौटकर वापस गये थे ! माँ उसे मनाते-मनाते हार गई थी।

लेकिन बिसेसरी की शादी का सवाल कोई मामूली सवाल नहीं था। बित्ता-आधा बित्ता-भर की छाती नहीं, गज-भर का सीना चाहिए था उसे हल करने के लिए !

तरुण वाचस्पति के प्रफुल्ल होंठों ने दिगम्बर को पुलकित कर दिया। फौरन

उठकर उसने अपने साथी को छाती से लगा लिया।

सोलह

दुर्गानन्दन एक दस्तावेज पढ़ने में मशगूल था।

दो-तीन मुवक्किल उसे घेरकर बैठे हुए थे।

आसिन का महीना। दुपहर का वक्त। कड़ाके की धूप···दिगम्बर स्टेशन से सीधे कचहरी आ गया था।

कुछ देर बाद अलग खड़ा रहा वह आशा में कि पहले नजर दुर्गानन्दन की ही उस पर पड़े। मगर सो जब नहीं हुआ तो हारकर वह बरामदे पर पहुँचा।

"परनाम दुर्गा भइया !"

"दिगो ?"

पहले मुँह खुला, आँख पीछे उठी दुर्गा की। बड़ी हलनलबी थी। होल्डर उठाकर पास ही बैठ जाने का इशारा किया और निगाह फिर घसीटकर लिखी मुशियाना सतरों पर रुक-रुक के रेंगने लगी।

"क्या हाल है गाँव-घर का ?"

उसी मुद्रा में दुर्गानन्दन ने पूछ लिया।

दिगम्बर उस छोटी-सी चौकी पर किसी प्रकार बैठने की जगह बना चुका था, बोला—"सब ठीक-ठाक है दुर्गा भैया ! लेकिन इस वक्त मैं नौगछिया से कहाँ आ रहा हूँ ?"

जिज्ञासा में दुर्गा की भौंहें चौडी होकर ऊपर खिच गईं···निगाह पर अब भी दस्तावेज का ही कब्जा था !

दिगम्बर कभी दस्तावेज की ओर, कभी मुवक्किलों की ओर, बहुत करके गउँआ की ओर देख रहा था।

कैसी अच्छी खबर वह लाया था !

कितना बडा काम वह कर आया था !

उसने धीरे से कहा—"मातृक से आ रहा हूँ···"

"नानी का कुशल-समाचार कहो ?"

"बखत किसी तरह खेप रही है।"

"मुझे घण्टा-भर लगेगा इस काम में, तुम तब तक टहलो-बूलो। उधर भालू

नाच रहा है, एक जादूगर भी आया है···सो सब देखो जाकर। पानी चाहो तो उधर ट्यूबवेल है, पी आओ। चाह पीछे पियेंगे दोनों जने साथ चल के···"

दिगम्बर को हँसी आ गई, बोला—"इतमीनान से आप अपना काम कीजिए दुर्गा भइया ! यहाँ कोई हड़बड़ी नही है···बल्कि अपनी कोठरी के ताले की कुंजी दे दीजिए, जाकर वही आराम करूँगा।"

दुर्गानन्दन ने कुर्ते की जेब से निकालकर चाबी दिगम्बर को थमा दी—"जाओ।"

दिगो डेरे पर आया। कम्बल बिछाकर कोठरी के अन्दर ही लेट गया।

जैनगर की ओर से आनेवाली ट्रेन मे दरअसल आज भारी भीड़ थी। दिगम्बर को बैठने की जगह कहाँ मिली थी ? वह तो घुटनों पर खड़ा होकर मधुबनी तक आया था—खजउली से राजनगर, राजनगर से मधुबनी···तीन स्टेशनों के बीच दो फासले मानो टँग करके पार किये थे। बारी-बारी से दाहिनी और बाईं बाँह उठा-उठाकर ऊपर की उन चौड़ी छड़ों को थामता आया था, जो दूरगामी पैसेंजरों के सामान की अधिकता से लचक रही थी—डब्बे के नीचे की हिलती धुरियो मे तुक मिला रही थीं। बातचीत, शोर-गुल, छीक-खाँस, धक्कम-धुक्की, भीडभाड़···दिगो की तबियत भारी-भारी-सी हो रही थी, घडी-दो घड़ी वह घोर निर्जनता मे बिताना चाहता था।

तन्हाई के लिए उसकी रूह मानो तड़प रही थी। सो, अपेक्षित एकान्त स्थान अब आकर दिगम्बर को मिल गया तो बड़ी खुशी हुई।

मिनटों में उसकी पलकें थकान से तनी नसों के भुलावे का शिकार बन गईं—तकिये पर माथा, गाल तले हथेली।

बाबू दिगम्बर मलिक सो गये।

सपने में उन्होंने बिसेसरी के ब्याह का आयोजन देखा···

वाचस्पति को कई आदमी भड़का रहे थे, यह भी देखा···

फिर आधी नींद पूरी नींद मे बदल गई।

साढ़े चार बजे दुर्गानन्दन लौटे तब भी दिगम्बर सो ही रहा था।

"उठ दिगो, कितना सोता है !"

"वँऽऽऽउँ···"

दिगम्बर ने करवट बदल ली और माथे को तकिये मे गोज लिया !

जूते खोलकर दुर्गानन्दन ने एक ओर रख दिये, कुर्ता निकालकर दीवार में ठुँकी कील से लटका दिया। फिर कम्बल पर आकर दिगम्बर से बिल्कुल सटकर बैठा और आधी धड़ का बोझा उसकी पीठ पर डालकर स्वयं दिगो के चेहरे पर झुक गया।

"उठता है कि नहीं ?"

"उठ तो गया हूँ !"

"ऊँ हूँ, अभी कहाँ उठा है ?"

"यह लो !"

दिगम्बर ने फिर करवट बदल ली तो दुर्गानन्दन हँस पड़ा। बोला—"वाह रे मल्लिक ! अहदीपन की यही पूँजी लेकर तुम मुखिया से मोर्चा लोगे ? हि हि हि हि···"

अब वह दिगो के एक गाल पर निहायत हलकी-फुलकी चपतें लगाने लगा !

दिगम्बर के हाथ में हरकत आई, अपने गाल पर से दुर्गा की हथेली हटाकर वह छाती के पास ले आया। आँख मूँदे ही पंजा लड़ाने लगा।

"अच्छा ! मस्ती चढ़ी है बाउ रे ?"

अपनी उँगलियाँ कड़ी करके दुर्गानन्दन ने पंजे को पहले खींचा, पीछे कसकर मरोड़ा।

दिगम्बर 'ईस-ईस' करके उठा और बैठ गया।

दुर्गानन्दन था भी दिगो से डबल न !

"आँख-मुँह पोंछो, चलो चाह पी आएँ।"

"चलिए, लेकिन चाय नहीं।"

"तो फिर कलाकन्द खायेगा ?"

दुर्गानन्दन ने परिहास किया तो दिगम्बर बुजुर्गी टोन में बोला—"काम तो मैं आपका ऐसा कर आया हूँ कि बंगाली केबिन का रसगुल्ला खिलाइए चल के···"

बिसेसरी के मँझले मामा की आँखें चमक उठीं। खुशी के मारे रबड़ के बच्चकानी गेंद की तरह उछलकर मुँह के जंगले से निकला—"सच ?"

दुर्गानन्दन की खोपड़ी के भीतर मानो कुल्फी-मलाई का लड्डू नाचने लगा। दिगम्बर को भर पाँज पकड़ लिया उसने। प्रसन्नता की मात्रा इतनी अधिक थी कि बोल नहीं फूट पा रहा था। आज दिगो दुर्गा को मामूली कायस्थ युवक दिगम्बर मल्लिक नहीं, संकट-मोचन बजरंगबली हनुमानजी का अवतार प्रतीत हो रहा था—शारीरिक बल में न सही, सूझ-बूझ की दृष्टि से तो वह अवश्य ही दुर्गानन्दन के लिए संकटहरण अंजनीनन्दन साबित हुआ था।

दिगम्बर बाहर जाकर पेशाब कर आया। लोटा में पानी था ही, आँख-मुँह पोंछकर बैठा।

धीरे-धीरे उसने दुर्गानन्दन को सारी बातें बतला दीं।

"दिगो, अब चाह पी आएँ चल के !"

"नहीं, कहीं चल के पहले यह तो मालूम करें कि वाचस्पति और बिसेसरी की आनुवंशिक परम्पराएँ इस ब्याह के प्रतिकूल तो नहीं पड़ेंगी। अब इसी बात पर हमारी सारी उछल-कूद निर्भर है दुर्गा भइया !"

दुर्गानन्दन का चेहरा भारी हो आया, साँस की धौंकनी फूलने लगी। ठोर हौले-हौले पटपटा उठे—"बाबा कपिलेश्वर ! तुम्हारा ही आसरा है; देखना हो बम्भोलेनाथ ! !"

कुछ देर बाद एकाएक उसे कुछ याद आया, बोला—"अच्छा, अपने दोस्त के माँ-बाप की पहली पीढ़ियों के नाम लिख लाये हो ?"

"हाँ, और अपनी भांजी का तो यह सब आपको मालूम होगा ही।"

मंजूरी मुद्रा में दुर्गा ने माथा हिला दिया।

"यह लीजिए।"

कमीज के पाकेट से निकालकर बादामी कागज की एक पुर्जी दिगम्बर ने दुर्गा की ओर बढ़ा दी। कागज के उस टुकड़े पर पेंसिल से लिखा हुआ पहला वाक्य था : वाचस्पति झा, पिता श्रीपति झा, गोत्र वत्स···

"दिगो, गोत्र तो बिल्कुल ठीक है। हमारी बहन का गोत्र काश्यप पड़ता है··· इतना तो मुझे भी मालूम है कि वत्स और काश्यप गोत्रों में ब्याह होता है।"

गोत्र का झमेला हटा तो दोनों की आधी फिकिर मिट गई !

"अपने वकील साहेब के बूढ़े पिताजी इन बातों के भारी जानकार है। पक्षाघात ने पस्त कर रखा है बेचारे को। यही अन्दर एक कोठरी में पड़े रहते हैं। जाकर मैं उन्हीं से क्यों न पूछ आऊँ !"

"जाइए-जाइए, फौरन पता लग जायेगा।"

दुर्गानन्दन अन्दर गये, दिगम्बर साँस टाँगकर परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा।

पाँच-एक मिनट हुए होंगे कि दुर्गानन्दन हुलसा हुआ चेहरा लेकर बाहर निकला।

दिगम्बर का भी मुखमण्डल उद्भासित हो उठा।

दोनों ने बेताबी से एक-दूसरे को बाँहों में कस लिया। किसी के मुंह से बोल नहीं निकल रहा था। खुशी की बाढ़ में उतराते हुए दो दिल उछल-उछल के एक-दूसरे को बधाइयाँ दे रहे थे।

थोड़ी देर बाद दोनों डेरे से निकले और उनके पैर उसी रास्ते पर बढ़ने लगे जिधर बगाली हलवाई का 'सुभाष केबिन' था।

सत्तरह

दुर्गापूजा के दिन थे।

कहीं से ढोल और पिपही की आवाज आ रही थी। बूलो अपने घर में भाई-भाभी के बड़े पलँग पर टाँगें फैलाकर तिरछा लेटा था।

पिपही पर ढोलिया क्या गा रहा है ?

जिज्ञासा में बूलो की आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं। मन के करेंट को उसने कान की कटोरियों से छुआ दिया और सुनने लगा—

"काली कमलीवाले तुझको लाऽऽऽखो पर्नाम !

लाऽऽऽखो पर्नाम !

लाखोऽऽऽखो पर्नाम !

तुझकोऽऽ।"

धत् तेरी ! सौ साल का पुराना गीत गा रहा है साला। सीसम की टहनियों से सर्द ढोल पीट-पीटकर 'टापर-टुपुर' 'टापर-टुपुर' की आवाज निकालनेवाले इन बजवैयों से भला और आशा ही क्या रखते हो ? 'पीं-पीं' करने वाली अनगढ़ पिपही से भला और कौन-सी लय निकलेगी ?

'अजी, लय तो इस पर भी अच्छी-से-अच्छी निकाली जा सकती है ! गाने-बजाने का शऊर भी तो हो !'

अपने गाँव के दोनों ढोलियों को गालियाँ देता हुआ बूलो आखिर खुद ही सीटियाँ बजा-बजाकर गाने लगा :

"चुपके-चुपके बोल मैना !

·· चुपके !

री चुपके !

ओ चुपके !

तू चुपके !

री मैना, तू चुपके-चुपके बोऽल !"

सीटियाँ छूट गईं तो सिसकारी शुरू हुई—अब बूलो सिसकारियों से अपनी मैना को चुप करा रहा था··· आँखें मूँदकर समझा रहा था, उँगली उठा-उठाकर।

बिल्ली की तरह पैर मारकर बिसेसरी अन्दर आई और आहिस्ते से अपनी हथेलियाँ बूलो की मुँदी पलकों पर डाल दीं···

तोता चुप हो गया।

मैना दम साधे हुए थी।

बूलो के हाथ आगन्तुक की कलाइयाँ टटोल रहे थे।

"भाभी ?"

मुलायम हथेलियाँ, पतली-पतली कलाइयाँ, रस्सी की तरह के मरोड़दार कंगन···लाख की बूटेदार चूड़ियाँ, चार-चार···नहीं, यह भाभी तो नहीं हो सकती !

और सब ठीक, चूड़ियाँ काँच की कहाँ गईं ?

तो फिर कौन होगी यह ?

बूलो भारी असमंजस में पड़ गया।

क्या बढ़िया मौजी मूड में बेचारा अपनी मैना से निबट रहा था, एकाएक यह कौन आ गई ? क्यों आ गई ?

नहीं रहा गया, आखिर खिलखिला पड़ी बिसेसरी भी !

"बीसो !"

बूलो चीख उठा।

"अब क्यों नहीं पहचानोगे ?"

हथेलियाँ हटा ली थीं बिसेसरी ने। बूलो भी उठ बैठा, पराजय की हल्की-सी भावना आँखों को भली भाँति चमकने नहीं दे रही थी।

इतने में किसी काम से भाभी भी घर के अन्दर आ गई।

"यह चुप्पी किसलिए ?"

भाभी के इस कौतूहल का समाधान देवर की ओर से होता। सो नहीं हुआ तो बिसेसरी मुस्कुराने लगी और बोली—"मैना को चुप करा रहे थे बूलो, मैं आई तो निगोड़ी अपनी चुप्पी इन पर लादकर खुद फुर्र से उड़ गई !"

इस पर तीनों हँस पड़े।

छिक्के पर छोटी-सी हँडिया टँग रही थी कोने में। भाभी ने उचककर उसमें से लाल मिर्चें निकाल लीं और उस घर से बाहर निकल गई।

"···इस बार मिर्जापुर (दरभंगा) से दुर्गा आई है, दस रुपये लगे हैं। प्रतिमा बड़ी अच्छी है। तुम नहीं गये हो, मैं तो देख आई हूँ···सिंहवाहिनी की मूर्ति है···दस बाँहोंवाली !"

बिसेसरी एक साँस में इतना कुछ बोल गई तो बूलो माथे पर दोनों तर्जनियाँ उठाकर सींगों की मुद्रा बनाकर पूछ बैठा—"और महिषासुर कैसा है बीसो ?"

होंठ और ठुड्डी बिचकाकर वह बोली—"धड़ तक भैंसा, गर्दन से लेकर माथा तक दानव···और कैसा रहेगा ? उसके बारे में क्या पूछना !"

"मुझको तो महिषासुर देखने में बड़ा ही अच्छा लगता है बीसो !"

"उँह ! मुझे तो यह कभी नहीं सुहाया !"

"अच्छा, कितनी चंदा उठी होगी इस बार ?"

"जानो तुम लोग !"

"क्यों बीसो ?"

"यह सब पता रखना मर्दों का काम है।"

बूलो तनिक चुप हो गया। फिर बोला—"कई ऐसे घर हैं जहाँ के मर्द हमेशा परदेश रहते हैं या मर गये हैं, वहाँ भीतर-बाहर के सारे काम औरतें ही सँभालती हैं। सो यह कैसे होता है?"

बिसेसरी को हँसी आ गई। चतुर बुजुर्ग की तरह माथा हिलाने लगी। कहा—"ठगो मत मुझको बूलो! सब समझती हूँ मैं···"

आगे की बात सुनने की उत्सुकता से बूलो की आँख के दोनों खुले कोए दुगने फैल गये। पसरी हुई उसकी वह निगाह बिसेसरी के चेहरे को मानो पी रही थी।

"सब समझती हूँ मै! सोराज हुआ होगा डिल्ली और पटना में। यहाँ जो ग्राम-सरकार कायम हुई है, उसके एगारह ठो मेम्बर हैं। जनानी एक्को गो है बूलो?"

क्या जवाब देता इसका? बूलो को कुछ नहीं सूझा, वह कान पर जनेऊ लपेटता हुआ बाहर निकला—सचमुच पेशाब लगी थी या बहाना था सो राम जाने!

बिसेसरी भी निकल आयी।

इस बार धान की फसल खूब अच्छी थी।

हरे-हरे पौधों के बादामी-भूरे-धूलिया शीश निकल आये थे।

धान के फूलों की भीनी और जमी खुशबू बीतते क्वाँर की सलोनी सिहरन में शरद की अनमोल ताजगी भर रही थी।

किसान मस्त होकर सवेरे-शाम अपने-अपने खेतों की परिक्रमा कर आते थे। निचली जमीन में खेसाड़ी और मटर की बुवाई चल रही थी। ऊपरले खेतों में लोग जौ-चना, मसूर-तीसी वगैरह बो रहे थे।

बूलो के पास रबी की फसल के लायक जमीन नहीं थी—नहीं के बराबर। पाँच-सात कट्ठा जमीन भी क्या लेखा-लायक जमीन कहलाएगी?

आज सबेरे बूलो चार-पाँच कबई मछली मार लाया था।

ओसारे में दोचुल्हिया[1] पर एक ओर भाभी कबई तल रही थी, दूसरी ओर दाल चढ़ी थी।

घर से निकलकर बिसेसरी ओसारे में बैठ गयी तो भाभी ने पूछा—"क्यों बीसो दाइ, तुम्हारे मामा भी तो खूब कबई लाते होंगे? उनके कई खेतों में सुना है मछलियाँ चलबल-चलबल करती रहती हैं—कबई, सिंगी, माँगुर, गरइ[2]···"

---

1. दो मुँहोंवाला चूल्हा (मिट्टी का)।
2. मछली की जातियाँ।

"आदुर ! किसने कहा है भाभी आपसे यह सब ?"

"माहे बतला रहे थे।"

"उँह् ? वो तो भारी गप्पी हैं भाभी !"

"दिगम्बर भी गप्पी हैं ?"

दिगम्बर के नाम पर बिसेसरी चुप हो गयी।

उसके टुनाई और बुदुर मामा तीन-चार बार मछलियाँ लाये थे। दो-एक बार बुदुर के मुँह से बिसेसरी यह भी सुन चुकी थी कि भीम तालचर के पास जो चार कट्ठा धानवाला खेत है, उसमें अबके जाने कैसे इतनी मछलियाँ आ गयी हैं। चर[1] के उस ओर दुसाधों और मुसहरों की एक बस्ती है मुसाईपट्टी। वहाँ वाले रात को आकर मछलियाँ मार ले जाते हैं…कौन रखवाली करे इन मछलियों की !

कुछ हो, माहे मामा ने जरूर बढ़ा-चढ़ाकर कहा होगा !

"खक्खक्खखा ऽ ऽ ऽ ऽ खा क्खा ऽ ऽ…"

गला साफ करने की यह बूलो की आवाज थी।

बिसेसरी चकुआई—"हैं कहाँ यह ?"

भाभी ने हँसकर कहा—"खानदान ही यह हनुमानजी का ठहरा ! वह देखो, अमरूद की डाल पर लंगूर बैठा है !"

नाक के पूड़े, होंठ के कोर और ठुड्डीवाला गढ़ा—सबको सिकोड़कर मुस्कान को दबा लेने की चेष्टा की बिसेसरी ने; कि उधर बूलो अमरूद की डाल पर से कूदा, धम्म !

"लो, मैं कहती थी न !"

भाभी खिलखिला उठीं, बिसेसरी ने खुलकर साथ दिया।

भर फाँफड[2] अमरूद थे। बूलो ने बरामदे पर उझल[3] दिया। एक बड़ा-सा उठाकर उस पर वह सामनेवाले चार-चार दाँत गड़ा चुका तो पलकों के इशारे बिसेसरी पर पड़े—लो, तुम भी अमरूद खाओ !

एक पीला-सा डम्भक अमरूद उसने हाथ बढ़ाकर उठा लिया। धीरे-धीरे खाने लगी।

पहला अमरूद खा चुका तो सहज लहजे में बोला, बूलो—"भाभी, दिगो ननिहाल से आ गये हैं…"

जिज्ञासा की अधिकता के कारण भाभी ने मुँह बा दिया।

आधा खाया हुआ अमरूद, आधी उठी हुई हथेली…बिसेसरी का स्तम्भित

1. बरसाती झील।

2. मर्दानी धोती का आँचल।

3. डाल दिया, धर दिया।

शरीर किसी वस्तुवादी मूर्तिकार के शिल्प का सुन्दर नमूना बनकर रह गया।

अब आगे बूलो के मुँह मे क्या निकलेगा ?

भाभी का दिल धड़क रहा था।

बिसेसरी काठ की तरह निश्चेष्ट हो रही थी।

दूसरे अमरूद पर हाथ डालते हुए बूलो बोला—"भारी काम कर आये हैं दिगो। सब ठीक हो गया। अगहन सुदी दशमी के दिन लगन तक ठीक कर लिया गया···दुर्गा चाचा की राय से सब कुछ हुआ है···"

"हऽ!"

भाभी ने फक् से निसाँस छोडी।

फूल-सा हल्का माथा लेकर बिसेसरी वहाँ से उठी और आँगन से बाहर निकल गयी।

अट्ठारह

दुर्गानन्दन दुर्गापूजा की छुट्टी में चार रोज के लिए घर आया था।

माँ और बहन से उसने सारी बातें बता दी थीं। दोनों खुश हुई और आतुर होकर भगवती दुर्गा से प्रार्थना की – जल्दी से-जल्दी पार घाट लगाओ मइया !

समस्तीपुर जाकर दुर्गा बच्चन से भी स्वीकृति ले आया। भला, इसमें असहमत होने की क्या बात थी ? हाँ, अन्त में बच्चन ने कहा—"बाबूजी को सूचित कर देना क्या बुरा होगा ?"

"बुरा तो नहीं होगा, मगर अड़चन जरूर पड सकती है फिर !"

"तो, रहने दो !"

बस··

दिवाली के दिन दिगम्बर और दुर्गानन्दन पदुमपुरा पहुँचे। वाचस्पति को पहले ही खबर कर दी गई थी, वह घर पर ही मिला।

एक मित्र की तरह खुले दिल से उसने दुर्गानन्दन का स्वागत किया। दोनों देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे।

वाचस्पति का बर्ताव दुर्गानन्दन को बड़ा ही मोहक लग रहा था। बाचो ने खुद ही वह बात छेड़ दी—"आप लोग सामाजिक विषमता के कारण जिस मुसीबत में फँस गये थे, उसके बारे में दिगम्बर से मेरी काफी चर्चा हो चुकी है और

हमने जो फैसला किया सो आपको मालूम हो गया होगा…"

"तभी दौड़े आये हैं ! जो समूचे देश की दुर्दशा पर दुखी रहता हो और देश की भलाई के लिए खुद फकीरी-भेस धारण किये हुए हो, उससे भला किसका क्या छिपा रहेगा और कब तक ?"

वाचस्पति ने कहा —"व्यक्ति का संकट ही समाज का संकट है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है । है न ?"

दबी हुई लिबलिबी टोन में दुर्गानन्दन ने कहा—"जी, बिल्कुल दुरुस्त है आपका कहनाम !"

खादी की धोती, सफेद-पीली-भूरी धारियोंवाली हॉफ कमीज…ऊपर सुराही-नुमा गर्दन पर गोल और मझोली आकृति का मस्तक । सूरत गेहूँआ, आँखें साफ और साधारण ढङ्ग की । नाक-कान-कपार भी इसी अनुपात मे पड़ते थे । बाएँ पैर पर घाव का गहरा निशान था । दोनों पैरों की दसों उँगलियों के बढ़े हुए नाखून तूफानी जीवन की अस्तव्यस्तता के सबूत थे ।

दुर्गानन्दन देर तक वाचस्पति की शकल-सूरत को देखता रहा ।

क्या उमर होगी इनकी ?

दिगो ने एकइस बतलाया था, बाइस होगी जास्ती से जास्ती…इससे अधिक तो एकदम नहीं । दिगम्बर की बीस है कि एकइस ? एकइस !

फिर तो हद से हद बाइस वर्ष के होगे यह बाबू साहेब…

कि इतने में अन्दर से घी मे तले हुए मखाना दुर्गानन्दन के सामने आ गये—फुलही तश्तरी में । लानेवाली थी आठ-नौ साल की एक लड़की । दूसरे हाथ में वह पानी ले आयी थी, अपखोरा[1] में भरकर ।

"नाश्ता कीजिए !"

"जी, इसकी मगर क्या जरूरत थी ?"

वाचस्पति को दुर्गानन्दन की तकल्लुफी पर हँसी आ गयी, लेकिन वह कुछ बोला नही ।

अब दिगम्बर उसी आँगन से बाहर निकला । बैठके में आकर बोला—"वाचस्पति, जाओ, तुम भी नाश्ता कर आओ !"

"और तुम ?"

"मुझे तुम्हारी माँ ने यों थोड़े फुर्सत दी है ?"

वाचस्पति आँगन की ओर गये ।

दुर्गानन्दन खूब प्रसन्न थे । वाचस्पति की माँ का क्या रुख है, यही जानना शेष था । सो बाबू दिगम्बर मल्लिक उस बेचारी का हृदय अच्छी तरह मालूम कर

1. काँसे की पुराने किस्म की गिलास, गोड़ीवाली ।

चुके थे । वह, उल्टे, दिगो को भर-भर सूप असिरबाद दे रही थी । कह रही थी—"तुमने मेरे लडके को कौन-सी जड़ी सुँघा दी है ? चार साल से मनाते-मनाते मैं हार गयी थी और तुम चुटकी बजाते-बजाते उसे रिझा बैठे ! इसको कहते है जादू···"

लडकी की शकल-सूरत और सील-सुभाव के बारे में मास्टरनी दिगम्बर से पहले भी सुन चुकी थी, इस तरफ मे वह बेफिक्र थी। दिगम्बर की बातों पर उसे पूरा विश्वास था ।

एक बात उसने बार-बार पूछी थी—"उमिर कितनी है लड़की की ?"

"चौदह ।" दिगम्बर ने कहा था ।

"मेरी कसम ?"

"हाँ, मामी, अपनी कसम !"

"अपनी नही, कहो, मेरी कसम !"

"आपकी कसम !"

तब जाकर वाचस्पति की माँ को तसल्ली हुई और वह भर मुँह बोली थी--"अगले साल बाबू तुम्हारा भी ब्याह होके रहेगा !"

"धत् !"

"गाँठ बाँध लो, न हो तो···"

पीढ़ा छोड़कर दिगम्बर उठ गया था, शरमा गया था न ! आँगन के बीचो-बीच थोड़ी देर टहलता रहा था तो मास्टरनी ने नाश्ता के लिए बुला लिया था···

दुर्गानन्दन नाश्ता करके पानी पी चुके तो दिगो बोला—"समय नहीं है अब, साढ़े चार बजे की ट्रेन पकड़नी होगी और मधुबनी उतरकर रामनगर जाना होगा पंजियाड़[1] के पास—"

जेब से छोटा सरोता और सुपारी निकालते हुए दुर्गानन्दन ने कहा-—"बात-चीत हो गयी, मैं बिल्कुल तैयार हूँ ।"

"ठहरिए, मधुबनी तक तो बाचो भी चलेगा ।"

"वाह ! वाह !! फिर क्या कहना !"

थोड़ी देर बाद तीनों स्टेशन आये, दस-पन्द्रह मिनट बाद ट्रेन आयी। भीड़-भाड़ मामूली थी। बैठने की जगह अच्छी तरह मिल गयी ।

बातचीत मे वाचस्पति ने इस मुद्दे पर जोर दिया कि फिजूल का आडम्बर न तो कन्यापक्ष करे और न वरपक्ष ही। निहायत सादगी से सारे काम निबटाये

1. पंजीकार (मैथिल ब्राह्मणों को शादी-ब्याह की लिखित अनुमति देने वाला रजिस्ट्रार) ।

जायँ···

दुर्गानन्दन को यह मानने में भला क्या आपत्ति होती ! बार-बार उसने भी कहा—"जैसा आप चाहेंगे, बिल्कुल वैसा ही होगा···"

मधुबनी स्टेशन पर तीनों उतर गये और चौराहे की पान की दूकान तक साथ गये।

चार-चार बीड़े पान सबने मुँह में डाले। दाम वाचस्पति देना चाहता था, परन्तु दुर्गानन्दन ने आग्रहपूर्वक उसे रोक दिया, खुद उसने कीमत चुकाई। टिकट लेते वक्त भी यही नाटक हुआ।

पान खाने के बाद दिगम्बर और दुर्गा उत्तरवाली सड़क पर आगे बढ़े, वाचस्पति ने अपना रुख पच्छिम की ओर किया।

उन्नीस

समय पर वर्षा होती गयी हो, बाढ़ और सूखा का हमला न हुआ हो तो अगहनी फसल कतकी नहान के बाद ही खलिहानों में पहुँचने लगती है। पण्डिताइन ने सूआपंखी धान का हरियल चूड़ा कुटवाकर सँभाल रखा—दस तामा याने कच्ची तौल से दो पसेरी।

कैसी भी सादगी से ब्याह होगा, दस सेर चूड़ा तो चाहिए ही। अगहन में शादी हो किसी के घर और अगता धान का चूड़ा न जुटे !

साठी, कतकी और असिनी—ये धान पहले ही तैयार हो जाते हैं··· अधिक तो नहीं, गौरी ने एक कोलो में कतकी रोप रखी थी सो काम आयी। नहीं तो, अधपकी फसल काटकर कौन किसी को धान देता है ?

जेठ में ब्याह नहीं हो पाया तो क्या अगहन की लगन भी खाली लौट जायेगी ? —गौरीनन्दन को लोग लाख कामचोर कहें, है मुदा भारी दूरन्देश ! उसी के पर्ताप से सूआपंखी धान का यह दस तामा चूड़ा जुटा पायी हूँ—पण्डिताइन बार-बार सोच रही थी और मन-ही-मन गौरी को अच्छा डाक्टर बनने का असिरबाद दे रही थी।

बात फैलने नहीं दी गयी, दिगम्बर और दुर्गानन्दन की कड़ी हिदायत थी कि जब तक दूल्हा बस्ती में आ नहीं ले तब तक होंठों को सिये रहना।

योजना यह थी कि लगन की निश्चित तिथि से एक दिन पहले ही दिगम्बर

वाचस्पति को अपने घर ले आयेगा। थोड़ी-बहुत फल-फलहारी, पान, मिठाई वगैरह सामग्री लाने की जिम्मेदारी टुनाई ने ली। पद्धति हाथ में थामकर पुरोहिताई का काम बच्चन के सुपुर्द; दो दिन का अवकाश लेकर वह ऐन मौके पर पहुँच जाएँगे। भाभी, माहे की माँ, मँझली बहू, खंजन, पण्डिताइन और रामेसरी और मुबधा की माँ—बस, इससे अधिक औरतों का जमावड़ा नहीं होने दिया जाएगा। बड़ी और छोटी बहुएँ किसी तरह की नुक्ताचीनी नहीं कर पाएँगी—दिन को नहीं, रात के वक्त शादी होगी। हेहुआ और गोनउड़ा सेवा-टहल या मेहनत-मशक्कत के कामों के लिए मुस्तैद रहेंगे—बिसेसरी को तैयार रखने का भार रामेसरी पर।

फिर भी, दो-तीन दिन पहले ही मुखिया को भनक मिल गयी। उसके जी में आया कि पण्डिताइन की बीमारी का एक्सप्रेस तार देकर खोंखा पण्डित को क्यों न बुला लिया जाय? दिगम्बर और दुर्गानन्दन की सारी होशियारी कोई आकर घुसाड़ दे तो क्या हर्ज है? पर, नहीं—पण्डित तो बहुत ही बुड्ढा हो गया है, दो नहीं चार साल अधिक से अधिक और जियेगा। तो, इन छोकरों से जिन्दगी-भर का बैर मोल लेकर अपने को आखिर क्या हाथ आयेगा? ठूँठ-ठूँठ है, बिरवा-बिरवा ही ठहरा। पुरानी पीढ़ी के उस खूसट का बस चले तो फिर बिसेसरी के लिए सत्तर साल का कोई मुर्दा आ जाय दूल्हा बनकर! छी-छी-छी-छी!...माहे और दिगम्बर ने उस बुड्ढे को खदेड़कर बिल्कुल ठीक किया था—

अपने दालान पर अकेला ही बैठा था मुखिया, तख्तपोश पर। पीठ देवाल से टिकी हुई थी।

तिपहरिया का ढलता सूरज!

छाँह में बैठे रहने पर भी तन-मन को हेमन्ती बयार अखर कहाँ रही थी? नहीं अखरती थी कि! तनिक भी नहीं।

मुखिया की पलकें पूरी खुलीं, निगाह का मगर थाह-पता नहीं था। मीठी चितवन, कपार पर तितलीनुमा टिकली, गीले सेंदुर की बारीक रेखा वाली सींथ—

यह कौन थी जो मुखिया के अन्तश्चक्षु पर हावी हो रही थी!

यह कौन थी जो मुखिया की समूची चेतना का प्रतिमा के अपने घेरे में खींच लायी थी?

यह कौन थी जो मुखिया को नयी पौध के प्रति अधिक-से-अधिक संवेदनशील होने के लिए बाध्य कर रही थी?

कान्ता थी यह, मुखिया की अपनी लड़की। अपने बाप की एकमात्र सन्तान—बेटा समझो तो यही और बेटी समझो तो यही! पिछले ही वैसाख में गौना हुआ था, आजकल ससुराल में थी।

बिना कान्ता के, समूचा घर आँगन मुखिया के लिए मसान था। मुश्किल से ये सात महीने कटे। माघ में आनेवाली थी। मुखिया को चिरौरी करनी पड़ी थी तब कहीं कान्ता के ससुरालवाले रुखसदी के लिए राजी हुए थे।

दामाद कलकत्ते में नौकरी कर रहा था, घड़ियों की किसी दूकान में किरानी का काम। गौना कराके ले गया सो पन्द्रह रोज ही घर रहा। अब होली की छुट्टी में आने वाला था।

तेईस-चौबीस साल की आयु, दुहरा बदन, बड़ी-बड़ी आँखों वाला गोल-मटोल चेहरा, गेहुँआ सूरत···काफी मेहनत के बाद ऐसा अच्छा दूल्हा हाथ लगा था—ससुराल में दस दिन-रात पति के साथ बिताकर कान्ता ने अपनी टेढ़ी-मेढ़ी लिखावट में जो पोस्टकार्ड भेजा था, उसका एक-एक शब्द मुखिया को याद आ रहा था इस वक्त।

आँखें तर हो आयीं तो ध्यान में कान्ता का वही मुग्ध मुखमण्डल चिकनी मिट्टी के पीताभ प्रलेप से पुतकर बिसेसरी का मुखड़ा बन गया।

—तू कौन है?

—मैं? कान्ता हूँ मैं, वाह? इतनी जल्दी भूल गये!

—नहीं, तू कान्ता नहीं हो सकती! हर्गिज नहीं!!

—नहीं? बाबा, मैं कान्ता ही हूँ···मगर—

—मगर?

—मगर, मैं अब तक क्वाँरी हूँ! दूल्हा होने को कोई राजी नहीं होता··· तुम लोग एक बुड्ढ़े को ले आये थे, छोकरों ने उस अहमक को खदेड़ दिया। अब वह घूम-घूमकर समूची दुनिया में कहता फिर रहा है : मुखिया की बेटी की सींथ में सेंदुर तो मैं भर आया, अब गौना हो, चाहे नहीं हो···जहाँ कहीं कोई मुझसे ब्याह करने को तैयार होता है, यह बुड्ढा जाकर उसे रोक देता है! एक-दो नहीं, चार-चार आदमी बुड्ढे के बहकावे में आ चुके हैं। बाबा, मैं जिन्दगी-भर अन-ब्याही रहूँगी?

मुखिया बुदबुदा उठा—नहीं-नहीं, बेटी, अबकी बड़ा अच्छा दूल्हा आ रहा है तेरे लिए! तू भला क्वाँरी रहेगी?···

उसने धोती के खूँट से आँखें पोंछ लीं। थोड़ी देर काठ-सा चेष्टाहीन बैठा रहा, फिर लेट गया।

पलकें झिप गयीं।

उधर खंजन—पाठक की भतीजी और बीसो की सहेली बड़ी चतुराई से दूल्हा के बारे में तमाम बातें मालूम कर आयी थी। कुछ तथ्य उसे दिगम्बर की अम्मा से हासिल हुआ था और बाकी बूलो की भाभी से।

नहाते समय जनाना घाट पर दोनों सहेलियाँ देर तक बैठने लगीं—दाउर[1] की जगह मोटे काठ की एक गाँठ पड़ी थी, घुटने-भर पानी में बाँस के दो छोटे खूँटों के सहारे बैठाकर अचल-अडिग कर दी गयी थी। भीगे कपड़ों की चोट खा-खाकर उसका सीना सपाट और चिकना हो गया था। सुख-दुख बतियाने का अनूठा मंच था वह औरतों के लिए।

ब्याह से पहले रोज की बात है :

खंजन ने आँखें नचाकर कहा—"ले, अब कितना उड़ेगी बीसो ?"

जवाब में एक जोड़ी संजीदा निगाहें उसकी ओर उठीं, उत्कण्ठा का आवेग दबाने में अच्छी सफलता हासिल कर ली थी उन्होंने।

खंजन तनिक मुस्कान उभार लायी अपने होंठों के बाँध पर, फिर बिसेसरी की आँखों में झाँककर देखा—छन-भर देखती रह गयी, तब जाकर बोली—"तेरा वो हिरामन तोता अपने मजबूत डैनों पर तुझे लिये-लिये उड़ता फिरेगा···"

"भग् !"

"मैं झूठ कहती हूँ ?"

"च्छी: !"

"फिर वही बात ?"

बीसो के कान इस प्रकार की चुहलबाजी से अब तक बिल्कुल अनजान थे। उसका दिल बुरी तरह गुदगुदा उठा।

अपनी लाज को ज्यादा बेपर्द होने देना उसे जाने कैसा-कैसा लगा, सो, बिसेसरी अंजुरी-भर पानी खंजन के सिर पर उछालकर भर-छाती पानी में कूद पड़ी—झपाक् !

पानी से माथा बाहर निकाला तो खंजन की खिलखिलाहट ने उसके कानों में फिर मीठी चुभन पैदा कर दी···

कुछ बोलना नही चाहती थी बीसो ! न हँसना चाहती थी, न मुस्कुराना। भर मुँह पानी था ! पीठ फेरकर वह गर्दन और छाती मलने लगी।

पीठ पर छितरे लम्बे, काले बालों से पानी अब भी गिर रहा था—गर गर गर गर गर···

अपने बहनोई के मीठे गले से गुनगुनाया हुआ विद्यापति का एक पद खंजन को याद हो आया। वह लय में गाने लगी—

1. दारु, काठ (कपड़ा धोने-पछीटने के लिए)।

"चिकुर गरए जल-धा ऽऽ रा ऽऽ !

मुख शशि-डर जनि रोअए अन्हा ऽऽ रा ऽऽ !"[1]

बीसो ने उस पद का मतलब नहीं समझा। अलापते समय खंजन की मुद्रा और लय के क्रम ऐसे थे कि अश्लील-से, अपरिचित-से भावों की उत्कट गन्ध मालूम पड़ी बिसेसरी को; नाहक !

इतने में नानी खुद इसी ओर आती दिखायी दी बीसो को। फिर तो दोनों शराफत की पुतलियाँ बन गयीं और उसी तरह चुपचाप पानी से बाहर आने लगीं, जैसे चरवाहे की उठी हुई लाठी देखकर भैंसें।

बीस

ब्याह की सभी विधियाँ बिना किसी अड़चन के पूरी हो गयीं।

गाँव के बड़े-बूढ़े वर-वधू के माथे पर दूब-अच्छत छींटकर आशीर्वाद दे गये थे—फतूरी मुखिया, परमानन्द पाठक, जोतखीजी, श्री नारायण प्रतिहस्त, जय नारायण मल्लिक, मधुसूदन कण्ठ, स्कूल के दो मास्टर···

तिरहुतिया ब्राह्मणों के रिवाज के मुताबिक, शादी के बाद की चौथी रात सुहागरात थी। आज ही दूल्हा-दुलहिन ने नमकीन खाना खाया था, आज ही वे साथ की सगत पाने वाले थे।

ब्याह के बाद भी तीन दिनों तक बिसेसरी मानो क्वाँरी ही रही, साड़ी का पल्ला माथे पर तो आज आकर पड़ा था !···

मँझली मामी ने बिसेसरी को दूल्हेवाले घर का दरवाजा टपाकर भीतर पहुँचा दिया, बाहर से किवाड़ उढ़का दिये और हट गयी।

दूल्हे की पलकें तनिक झिप आयी थीं, सो पायल की रुनझुन और गहनों की खनखनाहट से चंचल हो उठीं।

अगहन का उजेला पाख।

रात डेढ़ पहर से ऊपर नहीं हुई होगी।

बाहर साफ और सुहावनी अँजोरिया का राज था।

1. बालों से पानी की धारा गिर रही है। मुखचन्द्र के भय से मानो अन्धकार रो रहा है !

जंगले की किवाड़ियाँ ढेवढ़ लगी थीं, उनके फाँकों में से होकर हेमन्ती ओस की जूहिया नमी भीतर पहुँच रही थी—मिठास-भरी सर्दवाला तरुण समीर इस काम में उसकी मदद कर रहा था।

तख्तपोश पर आज बिस्तरा बाकायदा था।

नीचे काँसे की पीकदान थी।

सूरजछापवाले मटिया तेल से भरी नये मॉडल की लालटेन मद्धिम करके एक ओर रखी थी···

दूल्हा आहिस्ते से उठ बैठा, लेटा हुआ था न !

देखा, धानी रंग की रेशमी साड़ी में अपने को पूरी तरह ढँके हुए दुलहिन दरवाजे के करीब खड़ी है। घूँघट का झुका छोर बता रहा था कि वह माथा झुकाये खड़ी है।

दूल्हा बिस्तरे से नीचे उतरा, खड़ाऊँ नहीं डाली पैर में। जाकर पहले किवाड़ों का बिलइया लगा दिया, फिर बाँहों में थामकर दुलहिन को तख्तपोश के निकट ले आया। उसके कन्धे दबाकर फुसफुसाया—"बैठ जाओ !"

वह बैठ गयी। तब दूल्हा भी तनिक हटकर बैठा।

"अब इसकी क्या जरूरत है ?"

घूँघट हटा दी गयी तो दुलहिन ने अपनी नजरों को चुरा लिया, होंठों को जब्त किये रही।

"आखिर कब तक ?"

कुछ जवाब नहीं, इशारा तक नहीं। वह प्रतिमा की तरह बैठी रही। पैर तख्तपोश से नीचे लटक रहे थे।

"अच्छा, आओ, दो बाजी ताश खेल लें। सुना है, खूब खेलती हो।"

"ईह ! ताश है कहाँ ?"

"है कि !"

दूल्हे ने लाख कोशिश की मगर वह अपनी मुस्कान को पचा नहीं पाया, उसे मुस्कुराते देखकर दुलहिन शरमा गयी कि बिना 'मुँह-बजावन' के ही वह बोल पड़ी !

सिरहाने से ताश निकालकर दूल्हा पाल्थी लगाकर बैठा।

"आओ, आमने-सामने बैठो ! मैं पत्ती बाँटता हूं, तुम रंग बोलो !"

जादूगर की छोकरी-जैसी दुलहिन सामने हो गयी !

आधी पत्तियाँ ही बँटी थीं कि दूल्हे को कुछ याद आया। ताश छोड़कर वह तख्तपोश के नीचे झुका। अपना लीडराना अटैची खोलकर कोई चीज निकाली। फिर आमने-सामने होकर उसने दुलहिन का दाहिना हाथ माँगा कि देखेगा।

हथेली फैली तो उस पर दूल्हे ने सोने की एक अँगूठी धर दी···

बिसेसरी ने उठाकर गौर से देखा—'वाचस्पति' अंकित था नीले हरफों में मुंदरी के मत्थे पर···मुस्कुराकर बोली—"यही नाम है ?"

"हाँ, यही नाम है मेरा !" दुलहिन के गाल पर मीठी चपत लगाकर दूल्हा हँसा तो दुलहिन तनिक झेंप गयी ।

"लाओ, पहना दूं ! मगर अपना नाम बताओ···"

"बिसेसरी !"

लाज और संकोच से सम्पुटित मृदु-मन्द स्वर वाचस्पति के कानों को शीतल एवं सुखस्पर्श लगा ।

"घर के लोग क्या कहते हैं ?"

"बीसो ।"

"माँ क्या कहती हैं ?"

"कभी बुचिया, कभी बुच्चनि···"

वाचस्पति बिसेसरी के दाहिने हाथ की अनामिका उँगली में अंगूठी डालने की कोशिश कर रहा था ।

गोरी, छरहरी···नुकीली नाक, फाँक-सी आँखें, ढले-उभरे गाल, चौड़ा कपार, काले-लम्बे बालों का भारी जूड़ा···और ठुड्डी व होंठ दोनों तो साँचा पर से अभी-अभी निकले हैं···उम्र पन्द्रह होगी या सोलह ?

कैसी खूबसूरत जीवन-संगिनी मिली है उसे !

अंगूठी आखिर आ गयी उस अंगुली में—बीसो के काजलवाले वे नैन लालटेन की मद्धिम रोशनी में भी एक अनूठी चमक से जगमगा उठे ।

"लेकिन मैं तुम्हें बिस्सी कहा करूँगा !" वाचस्पति ने कहा तो बिसेसरी की आँखों में खुशी की झलक उफनने लगी···

□

उग्रतारा

युवक-कण्ठ की बुलन्द और भरी-भरी आवाजों से लाइन के क्वार्टर गूंज उठे। दोपहर का वक्त था, जाड़े का मौसम। सुहावनी धूप खुलकर फैली थी। सामने लाल ईंटों वाली ऊँची दीवार लम्बी चली गयी थी।

क्वार्टर निहायत मामूली किस्म के थे, चतुर्थवर्गीय सरकारी कर्मचारियों के क्वार्टरों की अपेक्षा कहीं अधिक फीके, कहीं अधिक बेडौल।

यह जेल के सिपाहियों का निवास-स्थान था। डिस्ट्रिक्ट जेल, रतनपुर।

"गिलाफ, कटपीस, ब्लाउज !" आवाज पिछवाड़े की तरफ से आ रही थी। फेरी वाला सामने की ओर आने ही वाला था। आवाज से उम्र का अन्दाज तो लगता था, चेहरे का नहीं। साफ था, ग्राहकों को अपनी ओर खींचने के लिए होंठों को काफी टेढ़ा कर लिया गया है।

उगनी सामने बर्तन फैलाये, काली हथेलियों को बार-बार देखने लगी। फेरी वाले की आवाज कानों से होकर मन-प्राण में धँसी जा रही थी। यह बिल्कुल ही नया फेरी वाला होगा। जाने क्यों इसकी स्वर-लहरी उगनी को उत्सुक बना रही है !

वह उठी, भारी पैरों से चार कदम चल के गयी। टंकी की टोंटी खोलकर हाथ धोये, जल्दी-जल्दी में आँचल से उन्हें पोंछा और अन्दर आकर दीवार की ओर आधी नजर आईने पर डाली।

दो लटें पेशानी से चिपक रही थीं। बालों के काले छल्ले चम्पई चेहरे पर बुरे नहीं लग रहे थे। वह खुद ही मन मे दुहराने लगी—'गिलाफ, कटपीस, ब्लाउज···ब्लाउज···कटपीस, गिलाफ···ब्लाउज···बिलाऊज···बिला···'

अब की फेरी वाले ने भी उसके मन की आवाज का साथ दिया—"ब्लाउज, कटपीस, गिलाफ···ब्लाउज···"

उगनी क्वार्टर की अपनी छोटी अंगनई को पार करके घेरे वाली किवाड़ों के बाहर झाँकने को हुई थी कि बाहरी चौखट की खुरदरी कील से पल्ला उलझ

गया। फेरी वाले को सामने पाकर भी उसके चेहरे को वह नहीं देख पायी।

पड़ोस के क्वार्टरों से निकलकर चार-पाँच औरतों ने फेरी वाले को घेर लिया था। वह सहजन के पेड़ के नीचे गट्ठर रखे बैठ गया था। वह उन्हीं औरतों को माल दिखाने लगा था। उसने उगनी की ओर बिलकुल ही नहीं देखा।

वह लेकिन उसको देखकर सन्न रह गयी ! फौरन किवाड़ें बन्द कर लीं और वापस कमरे के अन्दर आकर तख्त पर आधी उतान लेट गयी···

तो, इसने आखिर मेरा पता लगा ही लिया ! कहाँ रहा होगा इतने दिन ? भूल तो हम एक-दूसरे को सकते नहीं, मगर अब भी क्या मैं उसके लायक रह गयी हूँ···

उगनी पेट पर हाथ फेरने लगी। बड़ी-बड़ी मूँछों वाला अधेड़ सिपाही भभीखनसिंह सामने खड़ा मुस्कराता दिखायी पड़ा। क्षण-भर के लिए उगनी ने सोचा—अन्दर जो चार महीने का शिशु पल रहा है, उसकी भी मूँछें क्या ऐसी ही डरावनी होंगी ? वह भी क्या इसी तरह भारी बूटों वाले पैर पटकता हुआ सामने आकर खड़ा हो जाया करेगा ? वह भी क्या पचास साल की उम्र तक यूँ ही कुँआरा रह जायेगा ? वह भी क्या···

बाहर से उसी तरह मोल-भाव की आवाज आ रही थी। उगनी को लगा, पेट में दर्द उठा है। दर्द का यह एहसास और भी बढ़ता गया क्योंकि बाहर सहजन की पतली छाँहों के तले वह नौजवान आकर बैठ गया था, उगनी अपना दिल जिसके हवाले कर चुकी थी। फेरी वाला तो वह खास मतलब से बना है, दरअसल वह राजपूत नौजवान है। मढ़िया-सुन्दरपुर का रहने वाला कामेश्वरसिंह। वह उगनी को किसी भी हालत में छोड़ नहीं सकता।

तो, कामेश्वर क्या सचमुच उसी के लिए आया है ? क्या पता कोई दूसरा हो। कामेश्वर तो अभी जेल से छूटा नहीं होगा। नौ महीने की सजा हुई थी न ?

उगनी ने उँगली पर उँगली चलाकर हिसाब लगाया···जेठ, आषाढ़, सावन, भादों, आसिन, कातिक, अगहन, और यह पूस ! कितने हुए ? हुए न आठ महीने ! कामेश्वर माघ में छूटेगा। अभी कहाँ से आया कामेश्वर ?

उगनी को लगा, किवाड़ों को बन्द नहीं करेगी तो फेरी वाला अन्दर आ जायेगा। फेरी वाला यानी कामेश्वर, कामेश्वर यानी फेरी वाला। दो भी हो सकते हैं और एक भी। दूसरा भी तो हो सकता है। नहीं ?···

सोचते-सोचते माथा चकराने लगा और लगा कि अधिक वह सोच भी नहीं सकेगी। सोचेगी तो माथा फट जायेगा···

पलकें झिप गयीं।

जेल के दूसरे छोर पर हनुमान जी का एक मन्दिर था। छोटी-सी बगीची बिल्कुल पास थी। पाँच-सात पेड़ आम के थे, दो नीम के, एक आँवले का। सब्जी-भाजी उगाने के लिए दो क्यारियाँ।

मन्दिर का पुजारी बूढ़ा बाबाजी था, अपनी चतुराई के लिए पास-पड़ोस में काफी मशहूर। आसिन-कातिक में बहुत अच्छी रामलीला होती थी। बाकी सनीचर और मंगलवार की शाम को महावीरजी के दर्शनों के लिए थोड़े-बहुत लोग जुट जाते थे।

मन्दिर से जरा हटकर पुराना और पक्का कुआँ था। थलकमल, रजनीगंधा, बेला और हरसिंगार के झाड़ कुएँ की जगत को घेरकर जमे थे और हरे-भरे झुरमुट अपनी गोद में उस अमृतकुण्ड को छिपाये हुए थे।

दोनों आमने-सामने पत्थर पर बैठे थे। लगता था कुछ देर से बैठे हैं। उगनी की निगाहें झुकी थीं। कामेश्वर लगातार उसके चेहरे की तरफ देख रहा था।

गोल-मटोल, सुन्दर मुखमण्डल उतना चमक नहीं रहा था। फीकेपन की हल्की छाया उस छवि को उदास बना रही थी।···सुराही वाली खूबसूरत गर्दन पर उगनी का वह चन्द्रवदन आज उस तरह खिल नहीं रहा था।

कामेश्वर ने सोचा—कितनी मुसीबत झेलनी पड़ी है इसे! क्या बुरा किया? उस मुछन्दर अधेड़ से शादी करके यहाँ बैठ गयी, ठीक ही तो किया। और, मैं जो कुछ करने वाला हूँ, वह ठीक नहीं होगा क्या? मैं उगनी को इस नरक से बाहर निकाल ले जाऊँगा। यह चेहरा फिर उसी तरह खिला-खिला रहेगा। पूरे चाँद पर राहु की रत्ती-भर भी परछाईं मुझे चैन नहीं लेने देगी···

उगनी की निगाहों में कातरता छलक-छलक आती थी। अपराध की भावना खुलकर उसे कामेश्वर की ओर देखने नहीं देती थी। आठ महीने बाद दोनों ने इतने निकट से एक-दूसरे को देखा था मगर उगनी की तरफ से उमंग में उतना उफान कहाँ था! वह तो मिलना भी नहीं चाहती थी। कामेश्वर से इतनी जल्दी मुलाकात होगी, इतने पास आमने-सामने बैठना होगा, उगनी के दिमाग से इस प्रकार के ख्याल बिल्कुल धुल गये थे। उसने नयी परिस्थिति के सामने पूरी तरह आत्म-समर्पण कर दिया था। अब वह भभीखनसिंह की घरवाली थी। लाइन के क्वार्टरों में रहने वाले छोटी उम्र के सिपाही उसके देवर थे। ट्रंक पर लापरवाही से रखे हुए ऊनी मोजे अब उगनी के अन्दर विद्रोह नहीं जगाते थे। खूँटियों में टँगा हुआ खाकी लिबास अब उसकी निगाहों को चिढ़ाने की अपनी सामर्थ्य खो चुका था।

कामेश्वर ने कहा—"तू तो बदल गयी है। कितनी हँसती थी पहले! जेल के अन्दर मैं नहीं रह पाता अगर सूनी रातों में तेरी वह खिलखिलाहट सुनायी नहीं पड़ती। बालू और कंकड़ वाला जेल का खाना एक कौर भी गले से नहीं उतरता,

अगर तेरी चूड़ियों की खनक कानों का साथ नहीं देती और…"

सामने से मुलायम हथेली उठी और कामेश्वर के होंठों पर पड़ी। यह उगनी की पुरानी आदत थी। कामेश्वर के होंठों पर अपनी हथेली धर के वह उसकी आँखों में झाँकती रहेगी और मुस्कराती जायेगी और कामेश्वर को अपने मीठे बोल के लिए देर तक तरसायेगी।

उगनी की हथेली को आहिस्ता से हटाकर कामेश्वर बोला—"कुछ कहेगी भी! अकेला मैं ही बोलता जाऊँ?"

उगनी की आँखें गीली हो आयीं; होंठों का स्पन्दन भी दबा नहीं रहा। हटायी हुई हथेली को फिर से वापस लेकर कामेश्वर उसे सहलाने लगा। क्षण-भर बाद कहा, "देख, तुझे मेरे साथ चलना होगा। मैं तेरे बिना बिलल्ला होकर कब तक मारा-मारा फिरूँ?"

उगनी के गालों पर आँसू की रेखाएँ पश्चिम आकाश की धूमिल आभा में जगमगा उठीं। अब भी वह कुछ कह नहीं रही थी। अन्दर लेकिन तूफानी बादल गड़गड़ा रहे थे। बादलों के उस गरजन में भभीखनसिंह की बड़ी-बड़ी मूँछें दिशा-निर्देश के संकेत बनकर फहरा रही थीं। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या कहे, क्या न कहे।

"देख, मैं सब समझता हूँ। मैंने ढेर-ढेर-सी किताबें पढ़ी हैं। मैं दो साल कलकत्ते रहा हूँ। ऐसी हालत में पढ़कर लड़कियाँ क्या हो जा सकती हैं, इसका अन्दाजा मुझको है। तुझे मैं लेने ही आया हूँ। कोई भी बहाना नहीं चलेगा। हाँ, दो-एक रोज़ की छुट्टी मिल जायेगी।"

वह उगनी की हथेली को उल्टाकर दायें हाथ की बीच वाली अपनी तीन अँगुलियों से उसे सहला रहा था। उगनी की आँखों से अब भी आँसू बह रहे थे। इधर-उधर की ऊपरी बातें वह पहले ही कर चुकी थी। साथ चलने या न चलने के सवाल पर अपने होंठों को जब्त रखना ही उसे उचित जँचा। आँचल के छोर से चेहरा पोंछकर वह बोली, "कल मंगलवार है, यहाँ होगी भीड़। अब हमारी मुलाकात परसों होगी। जिस धर्मशाला में तुम ठहरे हो, वह बहुत बदनाम है। और कुछ नहीं, चोरी होती है। कहते हैं, जब से इधर बसों का अड्डा बना है, उचक्कों की तादाद बढ़ गयी है। सँभल के रहना।"

सामने सीने पर एक बटन लटक रहा था। कामेश्वर कमीज नहीं, कुरता पहनता था। उगनी के अन्दर ममता की कचोट उभरी। साँस खींच कर बोली, "हाय, मैं तुम्हारे लिए इतना भी नहीं कर सकती! सीने पर कुरते का बटन इसी तरह झूलता रहेगा। सूत और ढीला होगा, और ढीला होगा, छोर निकल आयेगा, इस बटन से भी तुम्हें छुटकारा मिल जायेगा!"

उसकी आँखें फिर सजल हो आयीं। सुबुक आवाज में उसने कहा, "मैं यहाँ

हूँ और तुम होटल में खाते हो। एक गिलास पानी तक मैं नहीं दे सकती। पिछले जनम में जाने कितने पाप किये थे···हे गंगा मइया···"

उसने चट से अपना रुख पश्चिम की ओर कर लिया, मानो गंगा के किनारे खड़ी है। भले ही गंगा यहाँ से पन्द्रह कोस पश्चिम में बहती हो, उगनी लेकिन पूर्व जन्म के अपने पाप के लिए गंगा जी से कैफियत तलब करेगी ही !

कामेश्वर ने उठते-उठते उसकी पीठ पर हाथ रखा। बोला—"पाँच साल की बच्ची नहीं हो ! क्यों इस तरह बात-बात में आँखें भिगोती हो। अगर मुझे पता होता तो तुम्हारे लिए मैं बुढ़िया का काजल लिये आता·· सुना है नाम बुढ़िया के काजल का ? एक बार लगा लोगी तो हमेशा के लिए आँसू सूख जायेंगे !"

इस विनोद ने उगनी के होंठों पर मुस्कान की बुकनी छिड़क दी, आँखो का गीलापन भी होंठों को खिलने से रोक नहीं पाया।

'छिनाल बन जाऊँगी'—इसी ने कहा था न ?···भभीखनसिंह उगनी की ओर देख रहे थे और सोच रहे थे। जब कभी वे उगनी की ओर देखते हैं और फुर्सत में होते हैं तो कानों में वह बात बार-बार गूँज जाती है—'मैं छिनाल बन जाऊँगी।'

सीधा-सादा अधेड़ सिपाही सोचता है—आखिर कैसे यह बोल इसके मुँह से निकला होगा। दूसरा कोई कहता, तो शायद ही उसकी बात पर भभीखनसिंह को यकीन आता। मगर, जब इन्हीं कानों मे यह बोल सुना है तो कैसे विश्वास नहीं करेंगे ?···तो, यह छिनाल बन जाती ?

आज उगनी भभीखनसिंह की निगाहों में 'खानदानी राजपूत की जनाना' है। उस दिन वह देहात की आवारा छोकरी थी। उस आवारा छोकरी को फिर से इज्जतदार घराने की मर्यादा देकर कितना बड़ा काम किया है भभीखनसिंह ने ! यह सोच-सोचकर उसका सीना फूल उठता है और हथेली की सुर्ती-चूने पर अँगूठे का वजन कई गुना अधिक हो उठता है। अब यह अच्छे-भले मर्द के काबू में है। रामजी की मर्जी होगी तो सोने जैसे बच्चे की माँ बनेगी···

ड्यूटी रात की थी, आठ बजे से। दोपहर का खाना दस बजे खा लिया था और चार-पाँच घण्टे की गाढ़ी नीद ले ली थी। अभी-अभी फाटक वाले घण्टे को चार बार ठोका गया है। लगता है, जाड़े का सूरज तेजी से धरती की ओर लुढ़क रहा होगा। भभीखनसिंह दिसा-फराकत से निबटकर आयेंगे, नहा-धोकर इसी तख्तपोश पर पालथी मार के बैठेंगे और आधा घण्टा रामायण बाँचेंगे—भाषा-टीका समेत तुलसीदासी।

उगनी कमरे की चौखट से सटकर बैठी हुई थी। सामने थाली में मसूर की दाल छितराकर कंकड़ चुन रही थी। गुलाबी चूड़ियों की खनक भभीखन सिंह के कानों को बुरी लग रही थी। मोरछाप नीले किनारों वाली गुलाबी साड़ी उगनी के

भरे-गदराये चम्पयी सूरत वाले शरीर पर खूब फब रही थी। थाली का गोल दायरा आँखों को बाँधे हुए था और एक-एक कंकड़ पकड़ में आ रहा था।

दो-तीन बार कंकड़ों के बदले दाल के दाने ही थाली से बाहर गिरे। अगले ही क्षण भूल का पता चल गया तो मन-ही-मन उगनी ने अपने को डाँटा और पलकें उठाकर भभीखनसिंह की ओर देखा।

वे कान पर जनेऊ लपेटकर भरा लोटा सँभाले बाहर निकलने वाले ही थे। पीछे लौटकर अस्पष्ट शब्दों में सुर्ती-भरे होंठों से बोले, "दो ठो पापड़ जरूर सेंक लेना !"

सिर हिलाकर उगनी ने प्रस्ताव का समर्थन किया। कल रात दाल मे नमक ज्यादा था। आज सवेरे आलू की भुजिया जल गयी थी। बर्तन माँजते वक्त पतीले की किनारी से उँगली कट गयी थी। नहाकर कपड़े बदल चुकी तो लगा कि दाहिनी बाँह पर बूंद-भर पानी नहीं डाला।

दरअसल उगनी को अपने-आप पर गुस्सा आ रहा था। वह झुँझला रही थी। इन चार-पांच दिनों के अन्दर कम-से-कम दस बार तो उसकी आँखें अवश्य गीली हुई होंगी। नींद का गाढ़ापन खत्म हो गया था। रात को बड़ी देर तक अनाप-शनाप सोचते-सोचते माथे की रग-रग सुस्त हो आती थी और उसके बाद कपार टनकने लगता था, फिर जैसे-तैसे पलकें झिप जाती थीं। मगर यह तो नींद नहीं कहीं जाएगी !

तख्तपोश के पास स्टूल पड़ा था। स्टूल पर जर्मन-सिलवर का भरा लोटा रखा था और उसमें से खण्ड-आकाश की बड़ी झांकी मिल रही थी। और, अब उसमें उगनी ने झाँका तो अन्दर कामेश्वर मुसकरा रहा था। सहमकर वह दो कदम पीछे हट गयी, मानो आग पर पैर पड़े हों—यह कामेश्वर पिछले कई दिनों से उसका पीछा कर रहा है। उगनी को आईने से डर लगने लगा है। भरी बाल्टी की परछाईं उसे आतंकित करती है। कमरे के अन्दर पुराना कैलेण्डर टँगा है। एक स्वस्थ, सुन्दर किसान युवक कन्धे पर हल सँभाले बैलों की जोड़ी को मैदान की ओर ले जा रहा है। उसकी नाक और होंठ कामेश्वर के से हैं। इधर बार-बार उगनी का जी करता है कि फिलहाल कैलेण्डर को उलट दे।

लौकी चीरने बैठी। यह तूम्बी वाली लौकी थी। जेल के कैदियों में से जाने कौन भगत निकल आया था कि तूम्बी वाली लौकी के बीज मँगवा लिए थे और अब के सब्जियों के इस मौसम में लगता था जेल के बगान हरी-हरी तूम्बियों से भरे पड़े हैं। पहली बार हरी तूम्बी आयी थी आज से पन्द्रह-बीस रोज पहले। तब मुँह पर आँचल का पल्ला रख के उगनी देर तक हँसती रही थी। आज लेकिन इस तूम्बी को देखकर वह बिलकुल नहीं हँसी। पहली बार उगनी ने हरी तूम्बी देखकर सोचा था कि अच्छा है, जेल के अन्दर भी भगत पैदा हो रहे हैं। चोरों और डकैतों

का मन भगवान की ओर मुड़ा है, तभी तो उन्होंने तूम्बी के बीज बोये थे। उस रोज उगनी ने सपने में देखा था कि कामेश्वर दोनों हाथों में बड़ी-बड़ी पकी तूम्बी लटकाये बढ़ा आ रहा है, बिलकुल पास आकर धीमी आवाज में कहता है, "एक गुरु महाराज के लिए है, एक अपने लिए।" यह सपना उगनी को अच्छा नहीं लगा था आज रात लेकिन इस तरह का सपना शायद उसे अच्छा लगे।

ऐसा न हो कि वह पापड़ सेंकना भूल जाए ! भभीखन सिंह महीने में दो बार पापड़ों की गड्डी जेल के अन्दर से टपा लाते थे। सिके हुए पापड तोड़-तोड़कर चबाते समय ठाकुर भभीखन सिंह की आँखें फैल-फैल जाती थीं। मन का हुलास अपनी घरवाली के सामने प्रकट किए बिना उनसे कैसे रहा जाता—मामूली पापड़ नहीं है, चम्पारन से आया है। पिछली दफा उरद के बेसन का था, अब की मूंग के बेसन का है। गोल मिर्च पड़ी है इसमें, हींग है···मँगरैला है···

'कपार है···' उगनी उस वाक्य को पहले भी इसी तरह मन-ही-मन पूरा करती थी। हाँ, पहले इसमें चुलबुलापन होता था। आज खीज है। मगर पापड़ उसे सेंकने हैं। इतना ही ध्यान रखना है कि झुलस न जायें। बहुत बड़ी रकम गबन करके पोस्ट आफिस का कोई बाबू इस जेल के अन्दर सजा काट रहा है। उसी के घर से पापड़ आते थे। पापड़ ही क्यों, अचार, मुरब्बे, अमावट, ताल-मखाना, मेवे-मिठाइयाँ···ढेर सारी चीजें इस बाबू के लिए बाहर से आती रहती हैं। जेलर से लेकर भंगी तक उस पतित का प्रसाद पाते हैं। उगनी इस भाग्यवान कैदी की घरवाली को पिछले महीने देख चुकी थी। गोल-मटोल चेहरे वाली नाटी-सांवली औरत। रेशम की साड़ी, कलाइयों में सोने के चार-चार छल्ले। पान से रँगे हुए पतले होंठ। जेलर ने पति-पत्नी को भेंट के लिए अन्दर ही इन्तजाम करवा दिया था। दो घण्टे बाद मुसकराती हुई बाहर निकली थी। गेट से काफी इधर नीम की छाँह में जीप उसका इन्तजार कर रही थी। पुलिस लाइन के क्वार्टरों के दरवाजे फुसफुसाहट से मुखर थे। लोग उस भागवन्ती को देख रहे थे और उसकी बातें कर रहे थे। उसने ड्राइवर की जगह बैठे हुए अपने रिश्तेदार युवक से कहा, "बस, छः महीने और रहना है।" और रँगे हुए होंठों को चाँपकर मुसकान पर हावी हो गयी थी···उगनी को यकीन ही नहीं आ रहा था कि सोने की चूड़ियों वाले उन्हीं हाथों ने ये पापड़ बेले होंगे।

कोयला सुलगाकर बाल्टी वाली अँगीठी दरवाजे से बाहर गली में रख आयी थी। सभी ऐसा करते थे। पास-पड़ोस के कमरों में जब बहुत अधिक धुआँ भर गया तो अँगीठियों को हँसी आ गयी और उनके चेहरे लाल हो उठे। सवेरे और साँझ का यह नजारा अब किसी को अखरता नहीं था। जितने दरवाजे उतनी अँगीठियाँ। कतारों में बैठकर उनका यों मुसकराना बड़ा ही आकर्षक लगता था।

भभीखन सिंह दिसा-फराकत से देर में लौटे। हाथ धोकर गली के नुक्कड़ पर

नल के नीचे नहाने बैठ गये। यह नहाना-धोना ठाकुर का बारहों महीने लगा ही रहता था। जाड़ा हो चाहे गर्मी, भभीखनसिंह अपने बदन पर चार-छः बड़ी बाल्टी जरूर उंडेलेंगे। नहाने का उनका प्रोग्राम कभी फेल नहीं होता। उनका कहना था, "जिस रोज नहाने को नहीं मिलेगा, उसी रोज मेरे लिए राम नाम सत्य होगा !···" उगनी को ठाकुर का ऐसा कहना अच्छा नहीं लगता था। कई बार इसके लिए वह उन्हें डांट चुकी है।

आमने-सामने दो बड़े-बड़े हॉलनुमा घर थे, लम्बी सीखचो वाले फैले-फैले जंगले उन्हें पिंजड़ों का आकार प्रदान कर रहे थे। अन्दर पक्का फर्श था, ऊपर खपरैल।

ऊँची दीवार के किनारे-किनारे छोटी कोठरियों की कतारें चली गयी थीं। बीच-बीच में पीपल और नीम के छायादार दरख्त थे। एक ओर हटकर छोटी दीवारों से घिरा हुआ किचन और उसका आँगन था।

यह जिला रतनपुर का जेलखाना था। चारों तरफ लाल ईंटों की ऊँची दीवारें उसे घेरे हुए थीं। पूरब की ओर लम्बा-चौड़ा गेट था। गेट के अन्दर दोनों ओर जेल के दफ्तर थे। जरा अन्दर स्टोर रूम, गोदाम आदि थे।

भभीखनसिंह पाँच मिनट पहले ही गेट के अन्दर आ गये। छोटे बाबू ने उनसे मखौल किया—"खिजाब की डिबिया मिलती है, ले क्यों नहीं आते बाजार से ?"

इस पर भभीखनसिंह खिलखिलाकर हँसने लगे। हल्की गुदगुदी से पेट फूलने लगा तो बेल्ट की तंगी खली। बोले—"खिजाब तो यहाँ रखा है बाबूजी!" दिल की ओर उँगली करके इशारा किया—"बाहर वाला रंग पक्का नहीं होता है।"

छोटे बाबू पिन से दाँत खोदने लगा। महीन मूँछों में मुसकराता हुआ पुराने जमादार ठाकुर भभीखनसिंह की निगाहों को तोलने लगा। सीधे-सपाट आदमी मजाक-मखौल भी ठिकाने से समझ नहीं पाते और कभी-कभी पासा उल्टा पड़ जाता है···

"एकाध बार देहात घुमा लाइए घरवाली को। देस-कोस चीन्हेगी तो और भी मन लगेगा। जितना अधिक मन लगेगा आपकी उतनी ही अधिक सेवा करेगी।"

"खूब मन लगता है बाबूजी उसका, बड़ी सेवा करती है। पीहर-ननिहाल का झमेला नहीं रहने से बिलकुल एकमुँहा रुख है···"

यह छोटे बाबू उम्र में भी छोटा था। दाढ़ी सफाचट, मूँछें बिलकुल महीन, होंठों की कगारों पर काली लकीर-सी भभीखनसिंह का भरा-भरा-सा मुछन्दर चेहरा उसे खुलकर बातें नहीं कहने दे रहा था। भभीखनसिंह ने शादी नयी-नयी जरूर की थी मगर आयु में छोटे बाबू का बाप जैसा लगता था। यह दूसरी बात थी कि

उगनी हू-ब-हू छोटे बाबू की साली-जैसी दीखती थी।

रजिस्टर के अन्दर कलम जमाते हुए छोटे बाबू ने उगनी की शक्ल को अपने ध्यान में जमाया और निगाहों को बिना ऊपर उठाए ही बोल गया—"एकमुँहा रुद्र खतरनाक होता है बाबू भभीखनसिंह ! आप ऐसा कीजिए कि महीने-दो महीने की छुट्टी लीजिए और उन्हें गंगासागर घुमा लाइए। बेचारी कहाँ देखेगी कलकत्ता-फलकत्ता !"

बगल में मूठ वाली लाठी सँभाले भभीखनसिंह दफ्तर से निकलकर अन्दर जेल के भीतरी फाटक की ओर बढ़े। बूटों की आहट से छोटे बाबू को लगा होगा कि वे अपनी घरवाली को गंगासागर नहीं ले जाएँगे। तब उसे वह मुहावरा याद आया होगा—'मन चंगा तो कठौती में गंगा' और वह मुसकराया होगा।

जिसकी ड्यूटी खत्म हो रही थी उससे चाबियों का गुच्छा लिया और सुरती फटकारते हुए आगे बढ़े।

जरा आगे बढ़ते ही पाकड़ का वह नौजवान पेड़ सामने आया, जिसकी छाँह में बैठकर कैदी लोग कीर्तन किया करते थे।

साल-दो साल के अन्दर ही उस पेड़ के इर्द-गिर्द सीमेण्ट का चबूतरा तैयार हो जाएगा। फिर रात की ड्यूटियों में सिपाही उस पर बैठकर अपनी थकान मिटाया करेंगे, दोहों और चौपाइयों से पाकड़ की एक-एक टहनी में पुलकन पैदा होगी। इन दिनों सवेरे की गुलाबी धूप में चम्पारन वाला वह बाबू तेल की मालिश करवाता है···भभीखनसिंह को लगा कि चलकर पहले उसी बाबू से मिलना चाहिए।

यह भाग्यवान कैदी छोकरा वार्ड में रखा गया। 'बी' डिवीज़न की सारी सुविधाएँ तो उसे हासिल थीं ही, अपनी चतुराई के चलते वह 'ए' क्लास की जिन्दगी बिता रहा था।

तख्तपोश पर मसहरी टँग गयी थी। लालटेन के प्रकाश में समूचा कमरा आलोकित था। आसन पर पालथी मारकर वह खाना खा रहा था।

"नमस्ते बाबू, क्या सब्जी बनी है?"

"आलू-गोभी···" दो शब्द आगे निकले, पीछे निकली खिलखिलाहट। खिलखिलाकर उसका वह हँसना भभीखनसिंह को बड़ा अच्छा लगता था। गोल-मटोल चेहरे की खूबसूरत नली में से होकर हँसी जब बाहर निकलती थी तो सुनने वालों को बड़ी लहरदार मालूम होती थी। इत्मीनान से कश खींचने पर छोटा हुक्का कितना अच्छा गुड़गुड़ाता है।

"भिंडी की भुँजिया भी तो है।" रसोइये ने कहा। यह रसोइया भी कैदी था और बाबू साहब की सेवा में बड़े जमादार की तरफ से नियुक्त था। उसको नौ बजे की छुट्टी मिली हुई थी। सारे कैदी सात बजे हॉलों के अन्दर आ जाते थे और

दो बार गिनती मिलाकर लोहे के जंगलेनुमा दरवाजों में ताले लगा दिये जाते थे। बाबू का रसोइया आगे बढ़ आया, रंगीन कागज में लिपटी हुई कोई चौकोर टिकिया उसने सिपाहीजी की तरफ बढ़ाई।

सिपाहीजी ने कागज खोलकर देखा और वापस लौटाते हुए हँसे—"धत्तेरे की, हम क्या कोई छोकरा हैं रे? हमको पेड़ा काहे थमाता है?"

रसोइया सकपका गया, कागज समेट टिकिया वापस लेकर पीछे हटा। बाबू अनुरोध के स्वर में खी-खी करके उधर से बोला—"मदरास का मिठाई है सिपाही जी! ले जाइए, घर में दीजियेगा···"

बायाँ हाथ मूँछों पर था, दायें हाथ मे लाठी ठोककर भभीखनसिंह बोले—"हमको पेड़ा-फेड़ा नहीं चाहिए, बस, महीने में दस ठो पापड़ जरूर चाहिए, समझा बाबूजी?"

खी-खी-खी-खी·· बाबूजी को दूसरे का दिल पढ़ने की विद्या बहुत अच्छी तरह आती है। अन्दर-ही-अन्दर इस भाग्यवान कैदी को उस सीधे सिपाही पर दया आयी। मन मे कहा—'यह आदमी जिन्दगी-भर गरीब बना रहेगा। दूसरों की दी हुई चीजें लेने में इतनी हिचक काहे की? इसी लेन-देन पर तो दुनिया टिकी है। कोई आपको कुछ दे रहा है, आप नहीं लेते हैं, मुँह टेढ़ा करके उसकी तरफ देखते हैं, इससे उसके दिल को कितनी चोट लगती है? पापड़ लेते ही हैं, पेड़े में क्या रखा है? हाथ तो आपका पकता नहीं?'

सिपाहीजी छोकरा वार्ड के दूसरे छोर पर पहुँचे। जेल के अधिकारियों ने हाल ही मे बिजली लगवायी है। अब रात की ड्यूटी में डेढ़ सेर की वजन वाली वह पुरानी लालटेन नही ढोनी पड़ती है। पहले सन्तरियो के दोनों हाथ फँसे रहते थे।

इस छोर पर मामूली ढंग का कमरा था। इन दिनों उसमें तीन छोकरे थे। एक गिरहकटी में पकड़ा गया था, दूसरा मालगाड़ी से कोयला गिराने में उस्ताद था और तीसरा छिनाल। बूटों की आहट पाते ही पटापट उन्होंने अपनी बीड़ियाँ बुझा दीं और होशियार हो गये। उनमें से एक इधर आकर सीखचों से सटकर खड़ा हो गया। ओट में से बाहर पहले परछायीं आगे बढ़ी, फिर सिपाहीजी नजर आये।

"सलाम सिपाहीजी।"

"यहाँ क्यों खड़ा है रे?"

"क्या करें सिपाहीजी, नींद नहीं आती।"

सिपाहीजी भी दरवाजे का एक डंडा पकड के खड़े हो गये। 'पिच' से होंठों की सुर्ती फेंकी। चालीस यूनिट का बल्ब सामने जल रहा था। बड़ी-बड़ी मूँछों को बिलकुल करीब पाकर छोकरे ने अपनापन महसूस किया और आहिस्ता से बोला—"बिलकुल ऐसी ही मूँछें मेरे नाना की भी थीं!"

सिपाहीजी की भौंहें कड़ी हो गयीं। छोकरे ने कहा—"नहीं सिपाहीजी, झूठ नहीं कहता हूँ! अपनी कसम सिपाहीजी, मेरा नाना फौज में रह चुका था···"

फौज की बात से इतना जरूर हुआ कि भभीखनसिंह को तसल्ली हुई, उन्होंने छोकरे के बयान को सही मान लिया।

"इसकी महतारी बीमार है, आज ही चिट्ठी आयी है।"

बैठे हुए छोकरों में से एक और उठकर इधर आ गया। उसने पहले छोकरे के कन्धे पर हाथ रखकर पूछा—"तेरी माँ तो पहले भी बीमार पड़ी थी न?"

भभीखनसिंह ने इस पर कहा—"ये औरतें बड़ी बीमार पड़ती हैं, इनको कुछ-न-कुछ लगा रहता है···मेरी भी माँ हमेशा बीमार रहती थी। लगता है, घरवाली भी बीमार पड़ेगी। चार दिन से सुस्त नजर आती है···"

सीखचों से सटकर दो नौजवान खड़े थे। आधी बाँह के धारीदार कुरते, वैसी ही धारीदार निकर। एक साँवला, दूसरा खुलते रंग का। एक की आँखें छोटी-छोटी, दूसरे की बड़ी-बड़ी।

भभीखनसिंह ने उनसे पूछा—"तुम्हारे तीसरे साथी को क्या हुआ है? वह बीमार है क्या?"

नाखून से नाखून का मैल निकालते हुए दूसरे ने कहा—"उसकी खेत में काम करने की आदत नहीं है सिपाहीजी! पिछले चार दिनों से उसके हाथों में कुदाल-ही-कुदाल रही है। देखियेगा बेचारे का हाथ?"

सुर्ती थूककर सिपाहीजी आगे चल पड़े, कुछ कहा नहीं। पीछे से साँवले छोकरे ने कहा—"परनाम सिपाहीजी!"

प्रणाम की ध्वनि सन्नाटे में डूब गयी, जवाब में एक भी शब्द वापस नहीं आया।

आगे जनरल वार्ड था। उधर कोने में जनाना वार्ड। कोने के इस ओर मुड़ने में वह कम्पाउण्ड पड़ता था जहाँ बीमार कैदियों की चिकित्सा होती थी।

राउण्ड में दो सिपाही हुआ करते थे। एक इधर से, दूसरा उधर से। दोनों बीच में जनरल वार्ड के करीब कहीं मिलते थे। रात की ड्यूटी में पहली राउण्ड के वक्त जनरल वार्ड के दोनों हॉल गुंजान रहते थे। आधे लेटे, एक-दूसरे से सटे हुए कैदी दुःख-सुख की आपसी बातों में लवलीन देखे जाते थे। दस-बीस सिलेटों पर खड़िया-पेंसिलें चलती रहती थीं। कहीं पर 'सारंगा सदाबृज', कहीं पर 'लोरिक उदयभान' और कहीं पर फिल्मी धुन। कहीं एक कहानी सुनाता होता, पाँच जने उसे घेरकर सुनते होते···

भभीखनसिंह जनरल वार्ड के पहले छोर पर पहुँचे। पीछे से आवाज आयी—"परनाम बाबा!"

चार कदम पीछे हटकर उन्होंने बड़े जंगले के पास खड़े हुए सामने अन्दर

वाले अधेड़ कैदी से पूछा—"क्या समाचार है जी ? कब छूट रहे हो ? सुना है कि अगले महीने तुम्हारी रिहाई होने वाली है । चिट्ठी-उट्ठी कोई आयी है ?"

लोहे की बड़ी-बड़ी सलाखें जमी थीं। पकी मूँछों वाला एक साँवला ठिगना कैदी दो सलाखों को पकड़े खड़ा था । उसने कहा—"महीना पीछे या महीना बाद छूटना होगा ही । जेल के अन्दर इतने सखा-सँघाती हो गये हैं कि बाहर अब मुश्किल से ही जी लगेगा । माल-मवेशी भी बथान बदलने से घबराता है । सात साल रह गये न इस दुनिया मे ?"

लाठी के सहारे खड़े होकर भभीखनसिंह कैदी की बातें सुन रहे थे । सोच रहे थे, जरूर यह फिर से वापस जेल के अन्दर आ जायेगा । जेल की भी दुनिया निराली होती है । चार-छह साल अन्दर रह जाओ, बाहर निकलने का मन ही नहीं करेगा···

सिपाहीजी ने हाफपैण्ट की पाकेट से तम्बाकू की पत्ती का टुकड़ा निकाला, दाहिनी हथेली पर रखकर उसे खोदने लगे तो कैदी ने आहिस्ता से फुसफुसाकर कहा—"बाबा, मेरे लिए भी !"

इस पर सिपाही ने जरा-सा टुकड़ा पाकेट से फिर निकाला । इतने में सामने से दूसरा सिपाही इधर बढ़ता हुआ नजर आया । कैदी ने कहा—"यह लीजिए, तिवारी बाबा भी आ ही गये !"

पास आकर दूसरा सिपाही भी उसी मुद्रा में खड़ा हो गया । भभीखनसिंह ने पूछा—"तुम्हारे लिए भी बनाऊँ ?"

तिवारी ने निचले होंठ को आगे बढ़ाकर अस्पष्ट शब्दो में कहा—"सुरती अभी-अभी फाँकी है ।"

"अजी, आज डण्डा-बेड़ी किसको पड़ी है ? तुम इधर सेल की तरफ गये थे ?"

सिपाही रामफल तिवारी ने कहा—"वही बदमशवा है न ? रूपनगर वाला ! बड़े जमादार को गालियाँ दी थीं ।"

इस पर सामने खड़ा अधेड़ कैदी भभाकर हँसा ।

तिवारी ने सुर्ती थूककर कहा—"नम्बरी है । कोई भी कुकर्म उससे छूटा नहीं होगा । एक गन्दी मछली समूचे तालाब को खराब करती है । साला, कई बार पकड़ा गया है···"

दाँत किटकिटाकर भभीखनसिंह बोले—"डण्डा-बेड़ी से क्या होगा, लोहा गरमा के देह दाग दो, तभी खचरा रास्ते पर आयेगा···।"

कैदी गम्भीर होकर कहने लगा—"बीमारी इलाज चाहती है बाबा ! डण्डा-बेड़ी से या देह दागने से तो उसका मन और भी जिद पकड़ लेगा !"

जोरों से खैनी मसलते हुए भभीखनसिंह ने कहा—"तुम नहीं जानते हो ! तेरहवीं विद्या सबसे बड़ी विद्या है । चार डण्डे पड़ेंगे तो होश ठिकाने आ जायेगा ।

भूत का इलाज पिटाई से बढ़कर और क्या है? अवगुन भी तो एक किसम का भूत ही है न?"

लगा कि इस पर सभी सहमत थे। कोई कुछ नहीं बोला। कैदी की हथेली पर चुटकी-भर सुरती थमाकर सिपाहीजी आगे बढ़े।

इस अधेड़ कैदी को भभीखनसिंह बहुत मानते थे। जमीन की बेदखली के खिलाफ उसने जमकर लड़ाई लड़ी थी। भूदान में मिली हुई ऊबड़-खाबड़ जंगली जमीन को उसने खेती के लायक बना लिया तो पुराने भूदानी की लार टपकने लगी। फिर से कहीं अलग रद्दी जमीन देकर वे उससे अच्छी जमीन छीनना चाहते थे। मार-पीट हुई, गँडासा चल गया। भूदानी बाबू के आदमियों में से एक को इतना गहरा घाव लगा कि अस्पताल पहुँचते-पहुँचते बेचारे के प्राण-पखेरू उड़ गये। मुकदमा चला, इसे नौ वर्ष की सजा हुई।

भभीखनसिंह के पैर तो जरूर आगे बढ़ रहे थे, मन लेकिन उसी कैदी के साथ था। सोच रहे थे—वह नहीं मानेगा। जरूरत पड़ी तो फिर गँड़ासा उठा लेगा। भला यह भी कोई कायदे की बात हुई? अपनी जमीन रद्दी-फद्दी जानकर विनोबा बाबा को दान कर दी और भूदान कमेटी ने उस जमीन को जोतन के हवाले किया। लिखा-पढ़ी पक्की हुई। जोतन ने हड्डी-तोड़ मेहनत की और उस जमीन का सोने का टुकड़ा बना लिया। तो अब आपके मुँह से लार क्यों टपकती है? यह आदत बहुत खराब है बाबू साहब, रद्दी-फद्दी औरों के लिए, माल-टाल अपने लिए… बड़े लोगों की नीयत इतनी छोटी क्यों होती है?

दाहिने पैर का बूट रोड़े में टकराया तो सिपाहीजी का ध्यान भंग हुआ। ठेकेदार के लिए एक वजनदार गाली मुँह से निकली और गुर्री थूककर बेल्ट को फिर से एडजस्ट किया। बड़ी नफ[illegible] है भभीखनसिंह को ठेकेदारों के प्रति। उनकी समझ में नहीं आता कि सरकार आँख-कान मूँदकर कैसे यह सब बर्दाश्त करती है। जेल के अन्दर सभी रास्ते कंकरीट वाले न[illegible]ीं हैं। जनरल वार्ड से जनाना वार्ड की तरफ जो रास्ता गया है, उसकी हालत अच्छी नहीं है। अस्पताल का पलस्तर तीन ही साल के अन्दर झड़ने लगा है। बारह हिस्सा बालू और चार हिस्सा सीमेण्ट मिलायेगा तो यही न होगा!…

जनाना वार्ड में छोटे-छोटे तीन कमरे थे। पहला खाली था, बाकी कमरे में पाँच-छह औरतें थीं। इन महिला कैदियों में से भभीखनसिंह की दिलचस्पी एक ही की तरफ थी।

वह अपने पति की हत्या करके आयी थी। सेण्ट्रल जेल भेजी जाने वाली थी। पतली-छरहरी। साँवली। बड़ी-बड़ी आँखें। नुकीली नाक। जिसका ऐसा लुभावना चेहरा होगा, कैसे वह किसी मर्द के प्राण लेगी। भभीखनसिंह ने छोटे बाबू से पूछकर मालूम किया था कि वह अपने पति की हत्या के अपराध में दस साल जेल

काटेगी। औरत होने का ही फायदा मिला है कि फाँसी पर नहीं लटकी।

सिपाहीजी ने कई बार कोशिश की मगर वह उनकी तरफ रुख करके ठिकाने से कभी बैठी तक नहीं। शायद कोई छोकरा सिपाही ड्यूटी में आता और रात का वक्त होता तो उसके सामने खुलती। मगर नहीं, उसके सामने भी नहीं खुलती शायद। क्या कभी एक बार भी पलकें उठाकर इसने भभीखनसिंह की ओर देखा है? क्या कभी जंगले से सटकर सीखचों के सहारे खड़ी हुई है?

उम्र तो पच्चीस-छब्बीस से ज्यादा तो क्या रही होगी! लेकिन उम्र से क्या आता-जाता है। पहले मिजाज का तो पता चले···सिपाहीजी ने अपने को सँभाला और अगले कमरों के छोर तक जाकर वापस आये और पहले कमरे के सामने ठिठककर खड़े हो गये···आहिस्ता से सीखचों वाले दरवाजे के पास आ गये। मोटी, लम्बी दो सलाखों को दोनों हाथों से थामे और लाठी को बगल में दबाये खड़े हुए। सामने ऊपर चालीस यूनिट का वैसा ही बल्ब प्रकाश बिखेर रहा था। भभीखनसिंह ने अपनी परछाईं पर निगाहें जमा दी। पगड़ी की झालरें फटी-फटी बारीक रेखाओं में अच्छी तरह प्रतिबिम्बित थीं——

(यहीं पहली बार मैंने उगनी को देखा था। दो हफ्ते बाद रात की ड्यूटी मिली थी। चर्चा लेकिन इन कानों तक पहले ही पहुँच गयी थी कि कोई खूबसूरत लड़की जनाना वार्ड में आयी है··· महीने-भर की सादी सजा थी। पन्द्रह-सोलह दिन गुजर चुके थे। चार-छह रोज और गुजर गये, मगर उगनी ने मेरी तरफ नहीं देखा। इस ओर पहली दीवार से सटकर बैठी रहती थी। छत की कड़ियों को टुकुर-टुकुर देखने में जाने मन को कौन-सा स्वाद मिलता था।

(जनाना वार्ड की कैदी महिला वार्डन ने बतलाया था——वह भाग के आयी है। जिसके साथ भागी थी उसको नौ महीने की सजा देकर गंगा के उस पार किसी जेल में भेज दिया गया है। बेचारी घर तो वापस जा सकती नहीं, रिहाई के बाद जाने कहाँ-कहाँ भटकना पड़ेगा!

(मेरे मन ने तभी कहा था, भटकना क्यों पड़ेगा? जब तक चाहेगी, भभीखन-सिंह अपने पास रहने देंगे···बेटी-भतीजी नहीं रहती हैं साथ?

(लेकिन उगनी की ठसक भी कमाल की थी। हिकारत की निगाह से एक बार देख लिया होता तो उसकी वह सूरत जिन्दगी-भर मैं नहीं भूलता।

(आमतौर से जेलों पर जनाना वार्ड की अन्दरूनी देखभाल की जिम्मेवारी महिला कैदी वार्डरों की रहती है लेकिन यह तो बहुत छोटा जिला है न! इसकी जेल भी बहुत छोटी है। कभी-कभी जनाना वार्ड के अन्दर गिलहरियों के अलावा और कोई नहीं दीखता। कभी-कभी दो ही एक औरत सजा काट रही होती है। कभी-कभी देख-रेख के लिए जनाना वार्डर नहीं भी होती है। जनाना-मर्दाना वार्डों के अलगाव का यह खटराग सेण्ट्रल जेलों में तो निभ जाता है, छोटी जेलों के

अधिकारी इस झमेले को सँभाल नहीं पाते। नतीजा होता है यही कि मेरे जैसे भगत सिपाही को जनाना कैदियों की देखभाल के लिए आगे कर देते हैं। आगे चलकर इस तरह की ड्यूटी के लिए किसी भभीखनसिंह की जरूरत नहीं पड़ेगी। सारा काम कुत्ता सँभाल लेगा। फर्श, फर्नीचर और कपड़ा सूँघकर ससुरा अपराधी को पकड़ लेता है; जेल के पहरे मे क्या रखा है ?

(उगनी अन्दर थी तो महिला कैदी वार्डर हफ्ते-भर के लिए बीमार पड़ी, उसे दस-बारह रोज अस्पताली वार्ड में रहना पडा। उसने पहले ही कहा था : सिपाही जी, यह जो नयी छोकरी आयी है, उसका आगे-पीछे कोई नही है। बिल्कुल उड़ाऊ माल है, जिसकी डाल में घोंसला होगा उसी पेड़ के हवाले कर देगी अपने को… तभी से मेरे मन में आशा का अंकुर उगा।

(रात के बाद रात गुजरती गयी और मेरे अरमान बढ़ते गये। उगनी ने अपना रुख नही बदला। पीछे मेरी तरफ एकाध बार देख जरूर लेती थी, बोलती नहीं थी लेकिन। दरअस्ल यह उगनी का कसूर नहीं था, उम्र का कसूर था। अकड़ नही हो तो जवानी क्या ? इस उम्र में कब, क्यों और कहाँ तुम किसी पर रंज हो उठोगे या खुश हो जाओगे, बतलाना मुश्किल है। जवानी खुद ही अपने आप में बहुत बड़ी पूँजी होती है। इस पूँजी का मालिक उमग में आकर किसी के पीछे अपने को लुटा भी दे सकता है, और उसे धक्के देकर निकाल भी सकता है। जी मे आयेगा तो तुमको अपने कन्धों पर बैठाकर नाचता फिरेगा, जी में आयेगा तो तुमको छुरा मार देगा …भई. मुझको तो जवान छोकरों और छोकरियों से बड़ा डर लगता है…

सर्राटे से दो बड़ी चमगादड़ें सींखचों से होकर बाहर निकल गयीं। सिपाहीजी को लगा, अपने घरवाले को यमलोक पहुँचाकर कैद की सजा भुगतने वाली वह साँवली औरत एकटक छत की ओर देख रही है। शायद उसी डायन की पैनी निगाहों से घबडाकर चमगादड़ें भागी है। अच्छा है कि वह मेरी ओर कभी न देखे।

लाठी का लोहे से मढ़ा हुआ वजनदार निचला छोर ठन से बोला और लाठी के साथ भभीखनसिंह आगे बढ़ गये। लाठी की उठती-पड़ती टनकारें बूटों की आहट में मिलकर ताल देने लगीं तो उधर से दूसरे सिपाही की लाठी भी ठनक उठी। ताल में बँधी हुई ठनकारों के जवाब में बाहर जेलर का कुत्ता गुर्रा उठा।

दो राउण्ड लगाकर दोनों सिपाही अस्पताली वार्ड के पास उस चबूतरे पर बैठ गये, जहाँ बाहर के बुढ़ऊ पण्डितजी आकर महीने में दो बार रामायण बाँचते थे। जनरल वार्ड मे कोई बिरहा गा रहा था। ऊँची दीवार के उस पार मैदान में लकड़ी चीरने का कारखाना था। बिजली की मशीन पर साखू का मोटा और लम्बा लट्ठ चीरा जा रहा है, आरी की सर्राहट बतला रही थी।

उजले झाग से भरा हुआ आधा चेहरा । शीशे के अन्दर आप ही अपने को देखना व्यक्ति के लिए भारी कौतुक होता है । मगर निगाहों में गम्भीरता आकर इस तरह जम गयी है कि रगों का तनाव कम नहीं हो रहा था । और वक्त होता तो वह अब तक कई बार मुसकरा चुका होता । भौंहें कड़ी करके, नथनों को फुला के खुद ही अपने को चिढ़ाया होता । अभी लेकिन अच्छी तरह आईने की ओर देख भी कहाँ रहा है !

पिछले पाँच-सात दिनों के अन्दर कामेश्वर ने मूँछें उगा ली थी । उगनी को बिना मूँछों का चेहरा अच्छा नहीं लगता था । इस समय शेव करते-करते बार-बार उगनी आ रही थी निगाहों में । लगता था, छोटा-सा चौकोर आईना उगनी के सुन्दर मुखमण्डल के प्रति न्याय नहीं कर सकेगा । बार-बार कामेश्वर की पलकें बन्द होती थी और अन्दर की आँखों के सामने वही प्रफुल्ल चेहरा आ जाता था···

जल्दी-जल्दी शेव करके कामेश्वर धर्मशाला के कुएँ पर से नहा आया । चारों ओर कमरे, बीच मे बहुत बड़ा आँगन । आड़े-तिरछे पतले तार टँगे थे मुसाफिरों की सुविधा के लिए कि वे आसानी से कपड़े फैलाएँ । कामेश्वर ने गीली धोती फैलायी । तौलिया फैलाते वक्त नीचे अपनी परछाईं पर दृष्टि पड़ी, लगा कि अब वह लम्बा नहीं रह गया ।

परछाईं पर पैर रखता हुआ आगे बढ़ आया । भूख लग आयी थी ।

धर्मशाला के बरामदों पर चारों ओर नये कलेण्डर टँग गये थे । दिसम्बर का अन्त था न ? इस विज्ञापनबाजी के लिए छोटी हैसियत वाले ट्रैवलिंग एजेण्टों ने धर्मशाला के निचले कर्मचारी को कैसे राजी कर लिया था, यह सोचकर कामेश्वर को फिर हँसी आ गयी । इन्हीं कलेण्डरों मे एक था 'बापू राष्ट्रीय भोजनालय' वाला तीनरंगा कलेण्डर । हाथ मे लड्डू लिये हुए बाल-गोपाल घुटनो के बल आगे सरकने की मुद्रा मे यशोदाजी को देख रहे थे । चित्र ही ऐसा था कि भूखे को और भी भूख लग आती थी । स्थानीय होटल वाले इस कलेण्डर के नीचे हाथ की लिखावट में ही एक वाक्य था—'बिलकुल करीब है ।'

बिलकुल करीब है, तो फिर वहीं चलना चाहिए—कामेश्वर ने तय किया । तैंतीस नम्बर वाले अपने कमरे में आकर कपड़े बदले । बालों पर कंघी फेरी । झूलते बटन वाला वह कुरता खूँटी से टँगा था । इसे देखकर उगनी की आँखें कैसे झलक आयी थीं ! आज वह दूसरा कुरता पहनेगा । धोती नहीं, पायजामा निकालेगा । मंगलवार है न ! शाम को आज वह भी हनुमानजी का दर्शन करने जायगा । उगनी ने कहा था, भीड़ होती है दर्शन करने वालों की । कामेश्वर लेकिन भीड़ में शामिल नहीं होगा । अलग हटकर बैठेगा, बगीची के अन्दर कल वाले पत्थर पर । अभी तो ग्यारह भी नहीं बजे हैं । अभी से क्यों हनुमानजी कामेश्वर को याद आ रहे है ?

धर्मशाला से निकलकर वह बाहर सड़क पर आ गया। पान वाले से पूछकर उस होटल का पता लगाया; सचमुच करीब था।

सड़क के किनारे छोटा-सा खपरैल का मकान। अन्दर जरूर काफी जगह होगी। साइनबोर्ड चटकीला नहीं था, लेकिन साफ था। नीचे ब्रैकेट में था 'केवल हिन्दुओं के लिए'। प्रवेश करने पर भीतरी दीवार ने इसलिए ध्यान आकृष्ट किया कि सफेदी पर नीली स्याही में तीन शब्द चमक रहे थे—'पवित्र, पुराना, निरामिष'। आगे बढ़ने पर गलियारा मिला। छोर पर सचमुच ही काफी बड़ा आँगन था, चारों ओर खपरैल कमरे थे। बरामदों पर पीढ़े फैले थे, बीसों हाथ यान्त्रिक मुस्तैदी से मुखों तक पहुँच रहे थे। पीतल की थालियों में लगता था, चमेली के सफेद-सफेद फूल खिले पड़े हैं। खुशबू इस रूप को महिमा प्रदान कर रही थी।

जूते खोलकर कामेश्वर खाली पीढ़े की ओर बढ़ा। बैठने पर महसूस किया कि यहाँ बेचारे बापू को खींचने की कोई जरूरत नहीं थी। बापू तो दाल-भात इस तरह बैठकर शायद ही कभी खाते हों। चित्र में बजरंगबली को देखकर उसने अपनी बाँहों की ओर निगाह डाली—बचपन में दूध-दही काफी मिला था, बनता तो देह जरूर बन गयी होती।

और कुछ स्वादिष्ट नहीं था, चावल अवश्य खुशबूदार थे। अलग से दही मँगवाकर पेट-पूजा की पूर्णाहुति करनी पड़ी। सड़क पर वापस आकर पान की दुकान के सामने दाँत कुरेदते हुए कामेश्वर ने मन-ही-मन गाली दी—साले ने समूचा रुपया ले लिया, अब मैं अगर उस कलेण्डर को फाड़ दूँ जाकर?

रात का खाना पंजाबी होटल में खाया था, बारह आने में कितना अच्छा खिलाया था! तन्दूर की रोटियाँ तीन से ज्यादा आप ले भी तो नहीं सकते। पुजारी बाबा ने मटर-भर भंग दी थी, सारी रात सोता रहा था कामेश्वर। स्वप्न-सुख से वंचित रहने का खेद उसे अवश्य हुआ। अक्सर सपने हमें अच्छे लगते हैं। वर्ष-भर की तीन सौ पैंसठ रातें अगर बिना सपनों का गुजर जायें तो कैसा लगेगा? ऐसा नहीं लगेगा कि समूचा वर्ष फीका गया? शाम को भी पुजारी बाबा उसे भंग देना चाहेंगे, लेकिन आज वह नहीं लेगा। आज वह रात-भर सपने देखेगा। कल उसने ठेठ दुपहरिया में फिल्म देखी थी। रील लम्बी थी, तीन घण्टे से दस-पन्द्रह मिनट ज्यादा ही वक्त गया होगा। पर आज रात जो छायाचित्र देखने को मिलेंगे उनकी रील दुगनी लम्बी होगी। यह कोई सेन्सर की हुई, नपी-तुली, कटी-छटी फिल्म नहीं होगी, इसमें ढेर सारे इण्टरवल होंगे। पात्रों की भीड़ नहीं होगी, एक ही हीरोइन रहेगी। साइडरोल में महिलाओं के और चेहरे हो सकते हैं। जरूरी नहीं है कि सुखान्त ही हो यह फिल्म। अन्त में रुलाई से भी नींद टूट सकती है···

अपनी इस कल्पना पर कामेश्वर आप ही मुस्करा उठा और डाकखाने की ओर चला गया।

कामेश्वर की शादी बीस वर्ष की उम्र में हुई थी और छः महीने बाद ही बहू का देहान्त हो गया था। बेचारी टाइफाइड का शिकार हुई। पढ़ाई छूट जाने से उन दिनों मन यूँ ही उचटा-उचटा-सा रहता था। पत्नी की मृत्यु ने उस उचाट को और गहरा बना दिया। घरवाले दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं लड़कियों का लेखा-जोखा लेने लगे। उन लड़कियों के पिता और चाचा घिराव डालने लगे। परिवार के और पास-पड़ोस के बड़े-बूढ़े कई गुनी अधिक दिलचस्पी लेने लगे।

यह खींच-तान चार-छः साल तक चली होगी लेकिन कामेश्वर ने किसी को अपनी पीठ पर हाथ नहीं रखने दिया।

जिसकी माँग में सिन्दूर भरा, वह तरुणी क्या बरसों तक दिल-दिमाग पर हावी रही?

अपनी रुचि की क्या कोई और लडकी कामेश्वर के हृदय में प्रवेश नहीं पा सकी थी?

छोटा-बड़ा ऐसा कोई संकल्प तो नहीं था, जिसके चलते कुछ अर्से तक वह अकेला रहना चाहता हो?

नहीं, ऐसी कोई बात नहीं थी।

पत्नी की मृत्यु के बाद शायद ही कभी उसने शोक-प्रदर्शन का अभिनय किया हो। स्नेहिल स्वभाव की सास मिली थी। उसने कहलवाया था—"बबुआ, आगे भी तुम मुझे अपनी अम्माँ ही समझना। विधाता से तुम दोनों की जोडी देखी नहीं गयी, इसमें मेरा क्या कसूर? कसूर तो मेरा अब होगा, अगर सामने बैठाकर उसी तरह पंखा न झला करूँ तुमको!" अलावा अम्माँजी के, एक सलहज थी और दो सालियाँ। उनके भी लाड़-प्यार का रंग कभी फीका नहीं पड़ा। तीसरे, परिवार की एक बुढ़िया ने छोटी साली से ब्याह के प्रस्ताव का इंगित कामेश्वर तक पहुँचवाना चाहा। बात बीच में ही काट दी गयी, इसलिए कि अम्माँजी को पसन्द नहीं था। बड़ी साली ने तो साफ-साफ कह दिया—"एक प्रतिमा की जगह दूसरी प्रतिमा मूर्तिकार ही बैठाते हैं। जीजा और साली के रिश्ते की भी आखिर कोई मर्यादा होती है न? हमारी बहन का खाली आसन किसी और लड़की के लिए मुबारक हो···" कामेश्वर को उन लोगों का यह रुख अच्छा लगा था। वह उनसे वर्ष में एकाध बार मिल आता था।

छोटी भाभी कामेश्वर को बहुत मानती थी। इतना अधिक मानती थी कि बड़ी भाभी ने एक बार कहा था—"दोनों पिछले जन्म की सहेलियाँ हैं। चाँदनी रात में आँगन के फर्श पर चाक से लकीरें खींचकर 'घर' बनाते हैं और घण्टों 'पचीसी' खेलते हैं। जाने कौड़ी खेलने में इन्हें क्या मजा आता है!" बड़ी भाभी की इस बात पर माँ खिलखिलाकर हँसती थीं। छोटी भाभी अपने लाड़ले देवर को बेहद प्यार देती थी, ठीक है। लेकिन उसे अपनी सीमाओं का ख्याल हमेशा रहा।

मैट्रिक में फल होने के बाद उसने तय किया था कि खेती-किसानी में भिड़ जाएगा। मैट्रिक में क्या रखा है ? बाप-दादों के खेत हैं डेढ़ सौ बीघे। आमों के बाग हैं। साखू, महुआ, शीशम, जामुन, बड़हल, तून के जंगल है। बड़े-बड़े दो पोखर हैं, जिनसे हर साल हजारों की मछलियाँ निकलती हैं। बाबूजी और चाचाजी को भी तो आखिर कोई असिस्टेण्ट चाहिए न ? साठ के हो चुके हैं, मन-ही-मन गालियाँ देते होंगे—'स्कूल-कालेज में पढ़ाओ तो हमेशा के लिए हाथ से निकल जाते है। माया नही, मोह नही, रत्ती-भर ममता नहीं ! इस जमाने के लिखे-पढ़े लड़के चाण्डाल होते है। मर जाओ तो मुँह में आग देन के लिए पटना, राँची तार ठोको। दो-दो दिन तक लाश पड़ी रहे और मक्खियों का भोज हो···' इन स्थितियों की कल्पना कामेश्वर ने बार-बार की थी और मन-ही-मन संकल्प लिया था कि परिवार के बूढ़ों का बोझा उठाने लायक अपने को बनायेगा।

पड़ोस के गाँव में एक लायब्रेरी थी। वहाँ हजारों की संख्या में नये-पुराने उपन्यास तो थे ही, पाँच-सात पत्रिकाएँ भी आती थीं। वहीं, करीब में हाई स्कूल था। आठवीं से ही कामेश्वर को लायब्रेरी का चस्का लगा। मैट्रिक की परीक्षा में असफल होने का दायित्व शायद इस पुस्तकालय का भी रहा हो। 'शायद' इसलिए कि कामेश्वर का कहना था —माँ तीन महीने बीमार रहीं और चाचाजी तीर्थयात्रा के लिए निकल गये थे। बाबूजी अकेले थे। कैसे देखा जाता उससे ? खेती-गृहस्थी के झमेले उसकी पढाई चाट गए··· मौका मिलते ही चट से लाइब्रेरी के अन्दर घुस जाना और अलमारी की ओट में स्टूल पर बैठकर घण्टों गुजार देना। उपन्यास और उपन्यास और उपन्यास। 'आर्यावर्त' और 'आज' और 'योगी' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'नवनीत' और 'सरस्वती' और 'नई धारा'··· 'बालक', 'किशोर' और 'चन्दामामा' और 'धर्मयुग'··· एक और दुनिया कामेश्वर के अन्दर आबाद हो गयी थी, किताबी पात्रों और घटनाओं की दुनिया। अन्दर वाला यह संसार कामेश्वर के लिए इतना प्रिय और ऐसा स्वाभाविक हो उठा कि परीक्षा की अपनी विफलता का दायित्व लायब्रेरी पर वह डाल ही नहीं सकता था।

कल्पना-जगत में किस प्रकार गाँव की एक बालविधवा आ गयी और धीरे-धीरे उसका अस्तित्व किस प्रकार कामेश्वर के लिए परम सत्य हो उठा।

किस प्रकार उस असहाय युवती का मूक क्रन्दन कामेश्वर के मन को मथने लगा और किस प्रकार और संकल्प उसे लेना पड़ा।

किस प्रकार सनातन रूढ़ियों की चट्टान एक सीधे-सादे ग्रामीण युवक की सहज सदिच्छाओं का सदा के लिए अन्त कर देना चाहती थी और किस प्रकार कामेश्वर ने उसका प्रतिरोध किया !

किस प्रकार बुजुर्गों ने एक मामूली घटना को अपनी मूँछों का सवाल बना लिया और किस प्रकार कामेश्वर को यह चैलेंज कबूल करना पड़ा !

उग्रतारा असल नाम था, मगर इस नाम से कभी किसी ने उसको पुकारा नहीं। कम-से-कम कामेश्वर के कानों ने तो नहीं सुना। ठीक है, सभी नाम ऐसे कहाँ होते हैं जो हमारी जीभो पर आसानी से फिसल सकें। उगनी, कैसा प्यारा और छोटा-सा नाम है। शक्ल-सूरत सामने न हो, नाम ही नाम आपने सुन लिया हो, तो भी क्या कानों को गुदगुदी नही लगेगी ?

कामेश्वर ने उगनी को देखा तो पहले भी कई बार था लेकिन दूर-दूर से, पास आने का कोई सवाल ही नही उठा। सुन्दरपुर-मढ़िया में एक नहीं, पच्चीस उगनियाँ थीं। नौजवान आपस में उनकी चर्चा करते थे। हर लड़की किसी-न-किसी नौजवान की बहन थी, हर नौजवान किसी-न-किसी उगनी का भाई था। उनके सुख-दुःख आपस मे गुँथे थे। एक के बदन पर चोट पड़ती थी तो दूसरे के बदन पर निशान उभर आते थे। इसका दिल दुखता था तो उसकी आँखें गीली हो जाती थी। उसका जी अघाता था तो इसके रोयें पुलकित होते थे। उगनी को अच्छा दूल्हा मिला था, नौजवानों को बड़ी खुशी हुई थी। स्टीमर दुर्घटना में उगनी के दूल्हे का देहान्त हुआ तो सुन्दरपुर-मढ़िया के अनेक तरुण कई दिनों तक कराहते रहे और उस आकस्मिकता को उन्होंने गाँव के लिए किसी भारी असगुन की काली छाया घोषित किया।

कामेश्वर को भली भाँति याद है, कैसे उगनी के दुर्भाग्य की बाते करते-करते तीन जने जाड़े की उस काली रात मे दो बजे तक जागते रह गये थे। कैसे नर्मदेश्वर की भाभी ने उगनी के भविष्य के बारे में विधायक सुझाव दिये थे। कैसे संकल्प का एक नन्हा-सा बीज कामेश्वर के हृदय में तभी पड़ा था···

नर्मदेश्वर की भाभी बड़ी दिलेर नवयुवती थी। ज्यादा तो नहीं, मैट्रिक तक पढ़ी-लिखी थी। उसके चाचा राजनीतिक पार्टी के अच्छे कार्यकर्ता थे। उन्होंने अपनी लाडली भतीजी के अन्दर युगोचित संस्कार काफी मात्रा में डाले थे। इस नवेली भाभी की बातें अर्से तक कामेश्वर के कानों में कुलबुलाती रहीं। भाभी ने दीप्त स्वर मे कहा—"सुन्दरपुर-मढ़िया के नौजवान गोबर हैं, ऐसा गोबर जिस पर उँगलियाँ रखो तो काठ बनेंगे, कण्डे नही !" नर्मदेश्वर और कामेश्वर न पलकें झुकाकर पैनी बात की वह चाबुक झेली थी। नर्मदेश्वर ने थोड़ी देर बाद पूछ लिया—"तो भाभी, तुम्हीं बताओ न, क्या किया जाए ? इन बड़े-बूढ़ों से कैसे निबटा जाए ?"

नर्मदेश्वर की भाभी चाबुक फटकारकर अपने देवर और उसके साथियो की चेतना को झकझोर देती थी, किन्तु अपना कोई निर्णय उन पर ठोकती नही थी बड़ी उम्र के दो छिनाल पुरुषों की करतूतों पर प्रकाश डालते समय नर्मदेश्वर एक बार बोला था—"भाभी, पिस्तौल का लाइसेंस लेना चाहता हूँ।" इस पर वह खिलखिलाकर हँसी थी। रुककर कहा था—"पिस्तौल का क्या करोगे ?

छिछोर-मन का इलाज कारतूस की पेटियों से नहीं होगा। स्त्री-पुरुषों में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और मनोरंजन के कई और साधन निकल आएँगे, तभी व्यभिचार घटेगा। देहात में खाते-पीते परिवारों के अधेड़ भारी मुसीबत पैदा करते है। उगनी जैसी लड़कियों के लिए ज्यादा संकट उन्हीं की तरफ से आता है। दूसरा सकट है डरपोक नौजवानों की छिछली सहानुभूति। इन सकटों का मुकाबला हम पिस्तौल से नही कर सकते···"

एक बार उसने कामेश्वर से अकेले में पूछ लिया—"कब तक अकेले रहिएगा बाबू साहेब? शादी नही कीजिएगा? अभी तो खैर दस वर्ष जवानी की उमंग में दूसरी शादी न करने का हठ भी निभा लीजिएगा, आगे चलकर आपके साथ भी वही मुहावरा जुडेगा कि गुड़ खाकर गुलगुले से परहेज···झूठ कहती हूँ?"

उगनी के बारे में कभी उसने कामेश्वर से यह नही कहा कि तुम विधुर हो और वह विधवा, दोनों एक-दूसरे को अपना लो। अर्से तक वह पसोपेश में रही। कामेश्वर का दिल थाहती रही, उसके साहस का अन्दाज लेती रही। उगनी नयी विधवा थी, उसकी माँ पुरानी विधवा थी। कहते हैं, दादी भी विधवा थी। कैसे वैधव्य का इतना लम्बा अभिशाप उस खानदान पर पडा था, यह रहस्य और आश्चर्य की बात थी। मढ़िया-सुन्दरपुर की खास घटनाओं में से एक यह भी थी। एक-एक बहू, एक-एक दामाद, जो गाँव के भीतरी जीवन में आके शामिल होते थे, उनके कानों तक यह विशेष घटना पहुँच ही जाती थी।

सौन्दर्य से उगनी के वैधव्य का अभिशाप और भी गहन हो उठा था। नर्मदेश्वर की भाभी को जब मालूम हुआ कि लड़की ककहरा भी मुश्किल से पहचानती है तो उसे भारी परिताप हुआ। उगनी की माँ से अनुमति लेकर उसने उसके लिए वर्ण-माला की रंगीन चार्ट मँगवायी।

यह भाभी उगनी की ही नही, बहुत सारी बहुओं-बेटियों की गुरुआइन थी। चौपाल पर बातूनी होंठ नर्मदेश्वर की भाभी को खीझ के मारे विधायिका जी कहा करते। उसने लेकिन इस उपाधि को मुस्करा के ही अपना लिया था। वह ऐसी विधायिका थी जिसे कभी किसी के सामने शपथ नहीं लेनी पड़ी। उसने एक बार खिलखिला कर कहा था—"मैंने जिसके सामने शपथ ली है वह यहाँ बैठा है···" उसने माथे पर उँगली ठोक ली थी। उसकी यह मुद्रा देखकर नर्मदेश्वर और कामेश्वर हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये थे।

उगनी ज्यादा नहीं लिख-पढ़ सकी। दस लाइन का खत लिखने में उसे एक घण्टा लगता है। इसका भी श्रेय उन्हीं भाभी साहिबा को है। कामेश्वर का रोम-रोम इसके लिए भाभी का कृतज्ञ रहेगा···

भाभी के प्रति कृतज्ञ रहने के लिए क्या यही एक उपकार उसे याद आता है? वस्तुतः भाभी के उपकार आधा दर्जन से कम तो क्या होंगे।

उगनी के मन से ग्लानि को धो-पोछकर साफ कर देना क्या मामूली उपकार था? माँ को समझा-बुझाकर लड़की को दूसरी शादी के लिए तैयार करना क्या मामूली उपकार था? पुरानी पीढ़ी की महिलाओं के संयुक्त मोर्चे में दरार डालना क्या मामूली उपकार था? स्वप्नदर्शी, भावुक किशोर मन को संकल्पशील दृढ़ युवक-मन में बदल देना क्या मामूली उपकार था?···

नर्मदेश्वर की भाभी घण्टों कामेश्वर के साथ रहीं—मन में छायी रहीं। डाकखाने के अन्दर, काउण्टर से जरा हटकर उसने तीन-चार चिट्ठियाँ लिखीं। लगता था, बीच-बीच में भाभी चिट्ठी पढ़ती जाती हैं। लगता था, छब्बीस वर्ष की उस भरपूर मुखर युवती का खिलखिलाना कानों को बार-बार गुदगुदा रहा है और बार-बार हिज्जे की गलतियाँ हो रही हैं।

(दुहाई भाभी अभी, परेशान मत करो।

[मैं कहाँ कुछ कर रही हूँ?

(अभी एक चिट्ठी मुझे और लिखनी है···

[किसको लिखना है अब और?

(तुम्हारे लाड़ले देवर को।

[तुम क्या मेरे कम लाड़ले हो?

(देखो भाभी, मुझसे उड़ो मत!

"क्या कर रहे हैं इतनी देर से यहाँ?"

"ओ, आप!"

कामेश्वर ने युवक की ओर मुस्कराकर देखा। वह कमरा नं० 34 का मुसाफिर था, तार देने आया हुआ था।

मन-ही-मन भाभी को प्रणाम करके कामेश्वर युवक के साथ पोस्टआफिस से बाहर निकल आया।

अभी-अभी घड़ियाल को दस बार ठोका गया था। जाड़े की रात। दस बजते-बजते सन्नाटा हो गया था। शहर के बाहर का यह इलाका दिन में भी गुंजान नहीं रहता था। इधर न तो रिहायशी मुहल्ले थे, न बाजार। हाँ, बस के अड्डे से जरा हटकर चार-पाँच मामूली दुकानें जरूर थीं। तीन दुकानें चाय की। दो होटल। पान की एक दुकान। कोयले का डिपो। दिन के वक्त एक मोची आके बैठ जाता था। यह सब लेकिन पिछले तीन वर्षों में ही हुआ था। जेल के मेन गेट से दाहिनी तरफ, दो फर्लांग हटकर बसों का यह अड्डा था। बसें ज्यादातर दिन को ही आती-जाती थीं, रात के समय अड्डा उदास रहता था। अड्डे की मुखरता या उदासी का कोई असर जेल गेट तक फटक नहीं पाता था। हाँ, जेल की पिछली दीवार के उस पार, मैदान में लकड़ी का एक कारखाना जरूर था, उससे चिराई की आवाज

रात के सन्नाटे को चीरती हुई गेट के इधर तक पहुँचती थी।

उगनी ने उठकर आधा गिलास पानी पिया। तबीयत नहीं हुई कि स्विच ऑन करे। हाल-हाल इन क्वार्टरों में बिजली लगी थी। छिपकली की आवाज पर स्विच ऑन करने में आलस नहीं अनुभव होता था। बच्चों और औरतों में बिजली की रोशनी के प्रति अपार उत्साह था। उगनी लेकिन अपवाद थी। यूँ भी वह बिजली कम जलाती थी और आज तो उसका जी ही इन्कार कर रहा था।

बल्ब भक् से जल उठेगा, आईने में अपनी शक्ल खुद को ही चिढ़ायेगी। कैलेण्डर वाला किसान युवक शायद मुस्करा उठे। मोरछाप नीले किनारों वाली गुलाबी साड़ी शायद सुलग उठे। आले में रखी बोतल का साफ तेल शायद बुल-बुले छोड़ने लगे···नहीं, वह स्विच ऑन नहीं करेगी···

चौथाई गिलास पानी लेकर उसने दुबारा पिया। पीने वाला पानी बाहर बरामदे के कोने में बाल्टी के अन्दर ढका रहता था। वहीं आले पर पीतल के दो गिलास पड़े रहते थे। पीतल का एक बड़ा लोटा, जिसे भभीखनसिंह ने अयोध्या से मँगवाया था; जर्मन सिल्वर का छोटा-सा दूसरा लोटा, जिसे उगनी ने किसी फेरी वाले से खरीदा था···रात के अँधेरे में और भी बर्तन चमक रहे थे, मगर इतने नहीं कि उस चमक में अपनी परछाईं नजर आये।

चार कदम चलकर वह आँगन के छोर तक गयी। वापसी में चौखट से दाहिने पैर का अँगूठा टकरा गया। ठेस अधिक नहीं लगी। फिर भी दर्द ने थोड़ी देर के लिए उसके मन को दूसरी ओर मोड़ दिया। अब वह स्विच ऑन करेगी।

अन्दर-बाहर दो ही बल्ब थे। अन्दर वाला पचीस यूनिट का लट्टू जल उठा तो उगनी ने दाहिने पैर को ऊपर तख्तपोश पर टिका दिया और अँगूठे को देखने लगी। नाखून की बगल में पहली पोर से नीचे लाली बटुर आयी थी··· यह लाली उसे बहुत अच्छी लगी। दो मिनट तक वह अँगूठे को सहलाती रही।

दर्द कम हो गया। अँगूठे की सहज गुलाबी वापस लौट आयी। अब फिर से लेट जायेगी। लिहाफ को कमर तक खींचकर लेटने को हुई कि याद आया, स्विच ऑफ नहीं किया है।

अँधेरा होते ही उगनी ने सोचा, ऐसे में नींद तो भला क्या आयेगी! सोचते-सोचते ही रात काटनी है! कटे रात सोचते-सोचते·· पेट पर हाथ फेरते-फेरते उसने महसूस किया, कल सारा दिन हल्का-हल्का दर्द उठा करेगा। बहुत परेशान तो नहीं करेगा लेकिन मन को अपने में टाँगे रहेगा। जोर से दर्द उठे और थोड़ी देर बाद मिट जाये तो क्या हर्ज ?

कौन है अन्दर ? लड़का है कि लड़की ? लड़की न हो तो अच्छा। लड़की होगी तो अपनी माँ की सारी मुसीबतें लेकर डोलती फिरेगी। इसी तरह उसे भी मायके से भागना पड़ेगा। इसी तरह अँधेरी रात में उस पर भी गाँव के भले

आदमी अपनी आशीष छिड़केंगे। इसी तरह न चाहने पर भी पचास साल का अधेड़ सिपाही उसे अपनी घरवाली बनाकर रखेगा। इसी तरह···

उगनी ने करवट बदल ली। बायी बाँह पर सिर रखा, अनजाने ही दबाव की मात्रा बढ़ी। पट्ट ! गयी···एक चूड़ी गयी। अभी चार रोज पहले गुलाबी चूड़ियों के आठ छल्ले लिये थे। ठीक है, थोड़ी देर बाद दूसरी भी टूटेगी। जरा देर बाद तीसरी और चौथी भी टूट सकती है···क्या रखा है इन चूड़ियों में ? बरसों उगनी ने इन चूड़ियों को पास फटकने तक नहीं दिया। रत्ती-भर भी मोह नही रह गया है उसके मन में इन चूड़ियो के प्रति।

बिस्तर को टटोलकर उगनी ने चूड़ी के टुकड़े बटोर लिये, उन्हें साड़ी के खूँटे में बाँध लिया—अभी कौन उठता है, कल फेंक आयेगी। माँ याद आ रही थी। उसने एक बार कहा था—चाँदी के चार बन्द बनवा ले, खाली कलाइयाँ मुझसे देखी नही जाती···भरी-भरी आँखों से माँ ने अपनी बेटी की तरफ देखा था, मिनटों तक देखती रह गयी थी। उसके बाद कैसे दो बड़ी-बड़ी बूँदें टपकीं और किस तरह धरती ने उनको सोख लिया ! उगनी को रत्ती-भर भी मोह नही है चूड़ियों का···लेटे-ही-लेटे उसने एक-एक चूड़ी निकाल ली, सूनी कलाइयों से सीना सहलाने लगी। वक्ष की कर्कशता ध्यान को फिर से अन्दरूनी भ्रूण की ओर खीच लायी।

यह भी बलात्कार ही था। ठीक है, भभीखनसिंह ने वैदिक विधियों मे शादी की थी। ठीक है, आधे घण्टे तक अग्नि में आहुतियाँ डाली गयी थी। ठीक है, हवन के धुएँ ने बहुतो की आँखें आनन्द के आँसुओं से गीली कर दी थीं। ठीक है, तोला भर सिन्दूर माँग के बीचोंबीच कई दिनों तक जमा रहा। सब कुछ ठीक है। लेकिन स्त्री-पुरुष के बीच उम्र का इतना बड़ा फासला किस तरह मखौल उड़ा रहा था विवाह के संस्कारों का ! बाबू भभीखनसिंह को कानूनी तौर पर इस बलात्कार का हक हासिल हुआ। अब उगनी उनकी सन्तान को अपने लहू से पुष्ट बनायेगी···कामेश्वर कैसे अब उगनी को स्वीकार करेगा ?

उसे नर्मदेश्वर की भाभी याद आयी। भाभी ने कहा था—"लुच्चे-लफंगे अपना ही मुँह काला करते है। हमारा-तुम्हारा मुँह तो शीशे से भी ज्यादा साफ रहेगा।" तेज-ओज की उस प्रतिमा को याद करके उगनी ने दोनों हाथ जोड़ लिये, जुड़े हुए हाथों को माथे से सटाकर उसने भाभी को प्रणाम किया। अँधेरे में भी उसे लगा कि भाभी सिरहाने खडी हैं। कह रही हैं—"कामेश्वर तुम्हें लेने आया है, तुम जरूर उसके साथ चली जाओ। वह तुम्हें भी स्वीकार करेगा और तुम्हारे शिशु को भी स्वीकार करेगा। कामेश्वर नये भारत का नया युवक है, पुराने ढंग का छिछोर नौजवान नहीं है वह···"

उगनी की आँखों से आँसू बह रहे थे। उसने फिर से एक-एक कर उन

चूड़ियों को पहन लिया···गुलाबी रंग की ये चूड़ियाँ कामेश्वर को बहुत पसन्द हैं। खुद उगनी ही कामेश्वर को क्या कम पसन्द है ?

उसने अपने अन्दर उमग-भरी फुर्ती महसूस की। भरोसे की भावना रग-रग में दौड़ गयी। और चट से उगनी बिस्तरे से उछलकर नीचे आ गयी। उसके हाथ अपने-आप गतिशील हो उठे, उँगली जाकर अपने-आप स्विच से छू गयी। कमरा आलोकित हो उठा।

कलेण्डर वाला वह किसान युवक उसी तरह कन्धे पर हल लादे बैलों की जोड़ी को आगे ले जा रहा था। लगता था, सवेरा हो चुका है। उसने बिलकुल करीब जाकर उस किसान युवक की आँखों में आँखें डाल दी। आहिस्ता से फुस-फुसायी—"तुम्हारी नाक और होंठ कामेश्वर से मिलते हैं न ?"

अरगनी पर लाल कोर की दूसरी साड़ी भी रखी थी। उगनी ने उसे पहन लिया। ब्लाउज बदला। बालों में कंघी फेरी। अब उसकी तबीयत हुई कि आईने में अपना मुँह देखे।

आईना बड़ा नहीं था। पड़ोस की एक युवती बार-बार उगनी को चिढ़ाती रही थी कि ठिकाने का एक शीशा तक वह अपने घरवाले से मँगवा नहीं सकती। उगनी ऊपरी मुस्कान के सहारे पड़ोसिन के उस उलाहने को अब तक टालती आयी थी। आज उसे पहली बार लगा कि आईना बड़ा होता तो ठीक था।

लेकिन इस तरह रात-रात जागेगी तो पागल नहीं हो जायेगी ?

नहीं, वह पागल नहीं होगी! कामेश्वर के बारे में सोचते-सोचते दस-पाँच रात क्या, उगनी सारा जीवन गुजार देगी तो भी पागल नहीं होगी। हाँ, भभीखनसिंह के बच्चों की माँ बनने के बाद पागल होने से उसे कोई नहीं रोक सकेगा।

बच्चे ! हुँह, बच्चे !···

अन्दर की उगनी मुस्कराने लगी। बाहर की उगनी लेकिन गम्भीर बनी रही। उसने आईने वाली उगनी को मुँह बना के चिढ़ाया—डूब मरना था तुझे तो ! बेहया की तरह हँस कैसे रही है ?

कानों में भाभी की खिलखिलाहट गूँज गयी। भाभी की ही आवाज में सुनायी पड़ा—इसमें भला डूब मरने की क्या बात थी ? यह तो आत्महत्या का विकल्प था।···

(हाँ भाभी, यह विकल्प ही था जिसे मैंने स्वीकार किया। भभीखनसिंह की घरवाली न बनी होती तो कामेश्वर किसको लेने आते ?

(और हाँ, यह विकल्प कबूल न किया होता तो ढाका या लाहौर पहुँच गयी होती, फिर तुम या कामेश्वर सर पटक के रह जाते, उगनी का पता न चलता।···

ऊपर से एक मोटी छिपकली गिरी और आईने के फ्रेम पर जीभ लपलपाने लगी।

सहमकर उगनी दो कदम पीछे हट गयी।

छिपकली अब भी जीभ लपलपा रही थी। मसूर-सी गोल-गोल उसकी आँखें उगनी को घूर रही थीं। दुम का अनवरत कम्पन अनन्त भूख का सबूत बनकर उसे और डरावना बना रहा था।

उगनी आतंकित होकर दो कदम पीछे हट गयी। उसने साफ-साफ देखा : यह वही जन्तु है जिसने अंधेरी रात मे उस पर हमला किया था। यह वही जन्तु है जो उसे उठाकर बाँसों के झुरमुट में ले गया। यह वही जन्तु है जिसने उसे बेहोश करके छोड़ दिया था। यह वही जीभ है जिसका खुरदरापन उसके तन-मन के लिए जहर बन गया था। यह वही घिनौना जानवर है जिसके बदन पर उसकी माँ ने रसोई की काली हाँडी दे मारी थी। यह वही राक्षस है···

उगनी को लगा कि वह खड़ी नहीं रह सकेगी। तख्तपोश के छोर पर बैठकर छिपकली को देखती रही।

उसे अपना शिकार मिल गया था। जीभ की लपलपाहट बन्द हो गयी थी। लट्टू के चक्कर लगाते-लगाते पाँच-सात कीड़े दीवाल को छू रहे थे, छोड़ रहे थे। उन्ही मे से एक नीचे आया था। अभागे के पंख छिपकली के जबड़ों से बाहर थे, शरीर समूचा अन्दर चला गया था।

उगनी की आत्मा त्राहि-त्राहि कर उठी। यह मर्मान्तिक दृश्य उससे देखा नहीं गया, आँखें मूँदकर उतान लेट गयी। एकाएक मन में आया कि ईंट का टुकड़ा उठाकर दे मारे छिपकली पर···और वह उठी भी। बाहर बरामदे के कोने में ईंट के टुकड़े जमा थे। एक वह उठा लायी। छिपकली आईने के फ्रेम से हटकर थोड़ा ऊपर चली गयी थी।

उगनी ने उसे गौर से देखा तो उसके क्रोध को उल्टा झटका लगा।

—हाय, यह तो खुद ही माँ बनने वाली है!

ईंट का टुकड़ा वह वापस रख आयी और बिस्तर पर बैठे-बैठे मादा छिपकली की ओर एकटक देखती रही। सोचती रही, राक्षसी माँ की कोख से राक्षस शिशु ही बाहर आयेगा, लेकिन इससे मातापन की महिमा घट जायेगी क्या? उसने कभी सुना था कि गर्भिणी बाघिन पर गोली चलाने से किसी शिकारी ने इन्कार कर दिया था···आज उसने भी मादा छिपकली पर ईंट नहीं चलायी···वह कामेश्वर के साथ भागने वाली है। बाबू भभीखनसिंह ने भागते हुए उसे पकड़ लिया तो क्या वे भी उसे क्षमा कर देंगे? मगर वह क्यों पकड़ी जायेगी? मान लो, पकड़ ही ली जाये···

स्विच ऑफ करके फिर से वह लेट गयी थी। फिर से माथे के अन्दर फिक्र

की चर्खी चलने लगी थी। छिपकली को भूलकर वह अच्छी तरह मन की गुत्थियों में उलझ गयी थी।

माँ कहती थीं, नींद न आये तो कपड़ा भिगोकर माथा पोंछ लेना चाहिए। हाथ-पैर, मुँह-कपार ठण्डे पानी मे पोंछ लो, तब भी पलकें झिप जाती हैं। उगनी सोचते-सोचते खीझ उठी। बाहर जाकर फिर पानी पी आयी। मुँह-कपार धो आयी।

चार बजेंगे तो सिपाहीजी लौटेंगे। बाहर साँकल खड़केगी, सीमेण्ट के फर्श पर लाठी बजेगी, 'ठन्न' से। उस वक्त उठकर उगनी ने अगर दरवाजा न खोला तो भभीखनसिंह की हल्की हुंकार सुनायी पड़ेगी।

कई बार सिपाहीजी ने कहा है—"तुम्हारी नींद क्या है, पहाड़ है! बाप रे, आदमी भी कहीं इस तरह सोया है? बूटों की धमक मे, लाठी की ठुगाठ मे और गले की खखास मे अगर तुम्हारी नींद नहीं टूटती है तो अब मुझे इसका कोई इलाज करना पड़ेगा।"

पिछली रात उगनी की नींद नहीं टूटी। आज रात भी उसकी नींद नहीं टूटेगी। सिपाहीजी सवेरे मोटी दातुन चबाते-चबाते उगनी को चार बातें जरूर सुना देंगे।

वह सब सुन लेगी। एक बार भी जुबान नहीं खोलेगी। इत्मीनान से पराँवठे पोती रहेगी, आलू तलती रहेगी। सिपाहीजी प्याज नहीं खाते हैं। उसने भी प्याज छोड़ रखा है। सिपाहीजी मांस-मछली का नाम तक सुनना पसन्द नहीं करते, उसने भी मांस-मछली को अपने चित्त से उतार दिया है। सिपाहीजी को सूजी का हलवा अच्छा लगता है, उसको भी सूजी का हलवा अच्छा लगने लगा है। सिपाहीजी को पीले रंग में रँगा हुआ कपड़ा पसन्द है, उसको भी वही पसन्द है। यह जो मोरछाप नीले किनारो वाली गुलाबी साड़ी है इसे बाबू भभीखनसिंह के भांजे ने अपनी नवेली मामी के लिए सौगात के तौर पर भेजा था। वह पूर्वी छोर पर पाकिस्तान की सीमा के पास किसी थाने में दारोगा है। मामा को चिट्ठी मे उसने लिखा था, मामी के लिए रेडियो का भी जुगाड़ करेगा। सिपाहीजी ने उस चिट्ठी का जवाब नहीं दिया। पड़ोसियों को यह बात जाने कैसे मालूम हो गयी। क्वार्टरों में हल्ला हो गया, भभीखनसिंह के यहाँ रेडियो आने वाला है। सिपाहीजी से भी लोग आकर पूछने लगे, कब आ रहा है रेडियो···सुना है अगले रविवार तक आ जायेगा···स्टेशन से मालगोदाम तक आ गया है···इस तरह के सवालों का जवाब देना बेकार था। रामायण की चौपाइयाँ गुनगुनाते हुए, हनुमान चालीसा का पाठ करते हुए या इष्ट-मन्त्र का जप करते हुए, सिपाहीजी मोटे तौर पर निषेध की मुद्रा में माथा हिलाकर रह जाते थे। उगनी ने लेकिन पड़ोसियों से एक दिन कह दिया—लिख दिया गया है; रेडियो नहीं आयेगा···

इससे उनके पूजा-पाठ में बाधा होगी। सिपाहीजी को अपनी घरवाली की वह चतुराई अच्छी लगी। मन-ही-मन वे बोले—तभी तो 'धरमपत्नी' कहा है। उगनी में उनको धर्मपत्नी के सारे लच्छन मिल रहे थे। यह दूसरी बात थी कि सिपाहीजी में उगनी को 'घरवाला' तो जरूर मिल रहा था, पति नहीं मिल रहा था।

वह सब कुछ सुन लेती थी। उसके इस गुण पर भभीखनसिंह फिदा थे। लेकिन रात को चार बजे पूस की सर्द हवा में पन्द्रह मिनट तक क्वार्टर के सामने बाहर खड़ा रहना सिपाहीजी को बेहद अखरता था।

उगनी चाहती थी, कैसे भी उसे नींद आ जाये; चार बजे साँकल खड़के तो उसकी आँखें जरूर खुल जायें।

तो क्या; चाहने से ही किसी को नींद आ जायेगी ?

उँह, कहाँ आयेगी नींद चाहने से ही किसी को !

एक पत्ता भी नहीं हिलता है चाहने से; नींद तो भला नींद ही ठहरी, वह कैसे आ जायेगी चाहने-भर से ?

उगनी को लेकिन नींद आ जायेगी। वह पलकें झपका रही है। उसे पिछली रात भी नींद नहीं आयी थी; उससे पिछली रात भी नहीं···आज जरूर आयेगी नींद ?

(सो जा, राजकुमारी, सो जा !

(धत् ! यहाँ राजकुमारी कहाँ से आयी ?

(लोकगीतों की दुनिया में उतरी है···सो जा, राजकुमारी, सो जा !

(लेकिन उगनी मामूली औरत है, उस पर लोकगीत की यह कड़ी कैसे लागू होगी ?

(देखो न, कैसे होती है लागू ?

(सो जा, राजकुमारी, सो जा···सो जाऽऽऽऽ !···जाने किस ममतामयी के मुलायम हाथों ने उगनी को थपथपाना शुरू कर दिया है···सो जाऽऽऽऽ, सो जाऽऽऽऽ ···सोऽऽ !

(हाँ, उगनी की आँखें झिप गयीं···

लो, उसे सचमुच नींद आ गयी !

बेसुधी में उगनी ने लिहाफ तक नहीं ओढ़ा। वह ऐसे ही सो गयी। अब चार-पाँच घण्टों तक निश्चय ही वह गाढ़ी नींद की गहरी मात्रा लेगी। यह मात्रा साठ-सत्तर घण्टों के बाद उसे मिली है। वह सपने नहीं देखेगी। स्वप्नहीन, अविराम और गाढ़ी निद्रा की झील में उसकी चेतना अपने पंखों को निस्पन्द बनाके पड़ी रहेगी। सर्दी महसूस होगी तो शायद आप ही, लिहाफ खींचकर बदन को ढक लेगी। शायद, थकान का गाढ़ापन सर्दी महसूस होने ही न दे और एक ही करवट

में चार बज जायें···

वक्त पर साँकल खड़की। लाठी बजी ठन्न से फर्श पर।

उगनी की नींद लेकिन नहीं टूटी।

दूसरी बार साँकल जोर से खड़की और देर तक।

इस बार उगनी ने करवट बदली। थोड़ी देर तक आँखें नहीं खुलीं, लेकिन लगा कि बाहर कोई साँकल खड़का रहा है। याद नहीं आ रहा था कौन साँकल खड़का रहा है। खुमारी में ही उसने अपने को बिस्तरे से उठाया। उल्टी दिशा में बढ़ी कि दीवार से छू गयी।

अब उगनी की चेतना साफ हुई। उसे साफ-साफ लगा कि देर से सिपाहीजी साँकल खड़का रहे हैं।

साँकल खुली। ओवरकोट से ढँका हुआ भारी-भरकम शरीर अन्दर आया।

इस बार शीत ऋतु में और वर्षों की तरह जमकर जाड़ा नहीं पड़ा। बसी बस मामूली किस्म की सर्दी रही। हल्का कम्बल और पतला लिहाफ काफी गर्माई पहुँचाते थे।

सभीखनसिंह ने यूँ ही ओवरकोट निकाला लिया था, वरना खाली स्वेटर ही गर्मी फूँकने के लिए काफी था।

सिपाहीजी ने कहा—"तुम सो जाओ, मैं दिशा-फराकत जाऊँगा तो बाहर से ताला लगाके जाऊँगा।"

वह कुछ बोली तो नहीं, अलसाये हाथों से आले पर माचिस टटोलने लगी। खड़खड़ाहट सुनकर सिपाहीजी ने समझा कि चूल्हा सुलगने वाला है। सिपाहीजी को सवेरे-सवेरे चाय जरूर चाहिए। साहब लोग सवेरे-सवेरे जिस तरह की चाय पीते हैं, उस तरह की नहीं। दूध वाली पंजाबी चाय, गिलास भर के। चीनी कम न हो।

सिपाहीजी उगनी को बहुत प्यार करते थे। जरा भी तकलीफ पहुँचाना उन्हें खलता था। इस वक्त सवा चार बज रहे थे। दो घण्टे बाकी थी रात। वे सचमुच ही घरवाली को परेशान नहीं करना चाहते थे। चाय तो खुद भी बना लेंगे। यह कोई नयी बात थी उनके लिए? चूल्हे से उनका पुराना रिश्ता था। सिपाहीजी और चूल्हा, चूल्हा और सिपाहीजी···बड़ा पुराना सम्बन्ध था। इधर ही कुछ महीनों से इस रिश्ते में ढिलाई आयी थी।

बाहर लट्टू सभीखनसिंह ने जला दिया था। पन्द्रह यूनिट की पतली रोशनी में उन्होंने उगनी की गोरी बाँहों को देखा, ढिलसे आँचल के छोरों से पीठ की झाँकी ली। एक प्रकार की तृप्ति का अनुभव करते हुए मूँछों पर हाथ फेरने लगे। सोच रहे थे, जब उठ ही गयी तो बिना चाय बनाये नहीं मानेगी। वह

जरूर अपने हाथों से उन्हें चाय का गिलास थमायेगी और जरा हटकर खड़ी रहेगी। दो चुस्कियाँ लेकर उसकी ओर देखेंगे। निगाहों से ही उसे पता लग जायेगा कि चीनी ठीक है···

कान में जनेऊ लपेटकर सिपाहीजी बाहर निकले। अब उगनी जग गयी है; चूल्हा सुलगायेगी। अब बाहर से वे ताला नहीं लगायेंगे। पहले सिपाहीजी ने बेल्ट खोला। फिर घुटनों के नीचे से ऊनी पट्टियाँ खोलीं। मोजे निकाले। हाफ-पैण्ट के बदले अब क्या लपटेंगे कमर में? लुंगी? नहीं, लुंगी सिपाहीजी को नापसन्द है। धोती का अद्धा अच्छा लगता है। कहते थे, लुंगी मुसलमानी लिबास है। पहन लो तो ऐसे ही लगोगे जैसे ढाके के बदरुद्दीन-फकरुद्दीन···

लुंगी के बारे में सिपाहीजी का ऐसा कहना उगनी को कभी अच्छा नहीं लगा। कामेश्वर लुंगी पहनता था न! वह तो कभी ढाके का बदरुद्दीन या फकरुद्दीन नहीं लगता था। और, अब तो बड़े-बड़े आफिसर अपनी कोठियों के हाते में लुंगी पहने दिखायी देते हैं।

भभीखनसिंह तरसते रह गये कि कभी उगनी अपनी तरफ से भी तो जुबान खोले, कुछ कहे, कुछ बतियाये, अपने-आप किसी को कुछ सुझाये। मगर उगनी अपनी तरफ से कभी कुछ नहीं बोली। सिपाहीजी को अखरता है। बटन दबाओ तभी मशीन के अन्दर हरकत पैदा होती है। उगनी भी तभी जुबान खोलती है जब उससे कुछ पूछो। जनाना न हुई, मशीन हुई। सिपाहीजी को बड़ा अखरता है। उगनी की यह आदत कभी-कभी उन्हें वरदान-सी लगती है। नहीं बोलती है, ठीक करती है। चपर-चपर बोलने वाली जनाना शीलवन्त नहीं होती है। और, जो शीलवन्त नहीं होगी उसे छिनाल बनने में कै दिन लगेंगे? अच्छा करती है उगनी, अपनी तरफ से कभी जुबान नहीं खोलती है।

लेकिन भभीखनसिंह को कभी-कभी यह सब अखरता इसलिए है कि पत्नी की इस आदत में उन्हें पति के अपमान की गन्ध आती है। औरों के साथ भले ही वह ऐसा ही बर्ताव करे मगर सिपाहीजी तो उसके अपने आदमी हैं। उनसे तो उसे बहुत कुछ कहने-सुनने का हक है। घरवाले से क्या घरवाली ठिठोली नहीं करेगी? छेड़-छाड़ नहीं करेगी? घर में हँसी-मखौल सब चलता है। छोटी-छोटी बातों में जीवन का सुख छलकता है। जरा-जरा से रंगीन इशारों पर स्वर्ग निछावर होता है···सिपाहीजी को कभी-कभी शक होता है कि उगनी अब तक उनसे दूर है, उसके दिल के अन्दर बहुत सारे फाटक हैं। दो-एक ही फाटक सिपाहीजी के लिए खुले हैं, बाकी फाटक बिल्कुल बन्द हैं···सिपाहीजी को उगनी से डर लगता है। वे उसे कभी-कभी सन्देह की निगाहों से देखते हैं। कभी-कभी यह सोचकर अपने को आश्वासन दे लेते हैं कि बच्चा पैदा होगा तो मन की गाँठें आप-ही-आप ढीली होती जायेंगी। तनाव आप-ही-आप कम होता जायेगा।

सिपाहीजी दिशा-फराकत से लौट आये। हाथ-मुँह धोकर देर तक मोटी दातून चबाते रहे। आज जाने क्यों, प्रवचन की उनकी आदत काबू में रही। चुपचाप दाँतों पर हरी टहनी की कूँची फिरती रही और उधर चाय की केतली खौलती रही।

सवेरे-सवेरे वह पापड़ नही भूनती थी, आज दो पापड़ भून लिये। यह सिपाही जी को अच्छा लगा। लगा कि वह उनकी रुचि का काफी ध्यान रखती है। शुरू-शुरू मे क्वार्टरो की इस दुनिया मे रहने वाले कुछेक प्राणियों ने अफवाह फैला दी थी कि उगनी का माथा खराब है··· माथा खराब नही होता तो ऐसी खूबसूरत लड़की मारी-मारी फिरती? फिर दूसरा शिगूफा लोगों ने यह छोड़ा कि उसे रोटियाँ सेंकना नहीं आता···रसदार भाजी नहीं बना सकती, नमक की मात्रा का उसको ज्ञान नही···सबकी जुबान धीरे-धीरे बन्द हो गयी। उगनी डेढ़-दो महीने के अन्दर ही घर-गृहस्थी के इम्तहान में पास हुई। अब पड़ोसिनें उससे अचार बनाने की विधियाँ सीख रही थी।

सिपाहीजी को एक बात और आज नजर आयी। हाथ-मुँह पोंछकर, चोटी-कंघी से फुरसत पाकर वह साथ ही चाय पीने बैठी थी। पापड़ भी उसके हाथ में था आज। आठ साल की छोकरी जिस तरह उछालकर पापड़ का टुकड़ा मुँह मे डालती है, उगनी उसी तरह पापड़ के टुकड़े मुँह के अन्दर ले रही थी। एक बार टुकड़ा अन्दर न जाकर बाहर गिरा, सिपाहीजी ने देख लिया और मुसकरा पड़े। इस पर उगनी भी मुसकरायी। देर तक मुसकराती रही। मुसकान की गहरी आभा उसके चेहरे को देर तक के लिए रँग गयी। भभीखनसिंह को यह दृश्य बड़ा अच्छा लगा। एकाएक मजदूर को महीने-भर का बोनस मिल जाये तो कैसा लगेगा उसे। वैसा ही आज भभीखनसिंह को लगा। उगनी आज पहली बार अपनी तबीयत से मुसकरायी थी। गले तक की रगें फड़क उठी थीं। आन्तरिक प्रसन्नता की यह दिव्य आभा उसे और अधिक आकर्षक बना गयी थी।

सिपाहीजी ने कहा—"इतनी अच्छी चाय कभी नहीं बनी।"

इस पर उगनी ने कुछ कहा तो नही, होंठों को चाँपकर मुसकराहट को दबाने की कोशिश जरूर की। चाय का गिलास लिये ही उठकर वह कमरे के अन्दर चली गयी।

क्षण-भर को कामेश्वर का ध्यान आया। जरूर अभी तक वे सोये होंगे। क्या पता, धर्मशाला मे तख्तपोशो की व्यवस्था है या नहीं! जाड़े की रात में नीचे फर्श पर बिना गद्दे के सोना कड़ी तपस्या होती है। क्या पता, किस तरह सोये होंगे! या उन्हे भी अच्छी नींद न आयी हो और रात के पिछले पहर में पलकें झिपी हों ···जरूर ही सपनों में उसे देखा होगा। नही देखा होगा। ऊँहूँ, देखा होगा। वह उन्हें सपनों में देखती रही है, वे क्यों नहीं उगनी को देखेंगे?

आगे बढ़कर एक नजर उसने आईने पर डाली। अँगूठी की शक्ल में बालों की एक लट ठीक भौंहों के बीच, ऊपर लटक रही थी···वे होते तो इस अंगूठिया लट को चूम लेते आगे बढ़कर।

अगले ही क्षण कमरे से निकलकर वह बाहर बरामदे में आ गयी। अरगनी से मर्दानी धोती उतार लायी थी। थोड़ी देर में सिपाहीजी नहाने जायेंगे। नहाकर लौटेंगे तो बाहर वाले तख्तपोश पर बैठकर 'रामायण' और 'विनय-पत्रिका' का पाठ करेंगे। 'हनुमान चालीसा' पूरे का पूरा उन्हें जबानी याद है। छः बजे पूजा-पाठ खत्म करके नाश्ते पर बैठेंगे, दो पराँठे और आँवले का अचार। बस और कुछ नहीं चाहिए। सुपारी का चौथाई टुकड़ा चबाते-चबाते क्वार्टर से बाहर निकलेंगे, आधा घण्टा लोगों से मिल-जुल आयेंगे। दूर नहीं जायेंगे, बहुत हुआ तो छोटे बाबू के क्वार्टर तक। छोटे बाबू के चाचा से सिपाहीजी की दोस्ती हो गयी है। रोज हिन्दी का अखबार उनके लिए मँगवाते हैं छोटे बाबू। बड़े ध्यान से अखबार देखते हैं, ज्ञान की जरा-सी प्रसादी सिपाहीजी तक बढ़ा देते हैं।

टहल-बूलकर आने के बाद सिपाहीजी कुल्ला जरूर करेंगे। सुर्ती खाते हैं न! बिस्तर पर लेटने से पहले मुँह जरूर साफ कर लेंगे। फिर, सात बजे से लेकर दस बजे तक गहरी नींद मारेंगे। साढ़े दस बजे दिन का खाना खाते हैं। दोपहर में डेढ़-दो घण्टा घर-गृहस्थी को देते हैं। राशन-वाशन, खरीद-फरोख्त, मरम्मत-फरम्मत कुछ-न-कुछ घरेलू काम निकल ही आता है।

आज स्टोव को बाजार ले जायेंगे, वह दस रोज से बेकार पड़ा है। घण्टाघर के पास बूढ़ा मिस्त्री अच्छी मरम्मत करता है। सिपाहीजी स्टोव को उसी के हवाले करेंगे।

बारह बजे से चार बजे तक फिर सोते रहेंगे। सात घण्टे नहीं सोयेंगे तो रात की ड्यूटी कैसे करेंगे?

खा-पीकर, बर्तन-बासन धोकर उगनी आज बच्चों वाली किताब लेकर बैठी। दूसरी कोई किताब मिली नहीं। चलो, इसी से मन को बहलायेगी।

कितने दिनों बाद किताब खोली थी उसने! एक युग बीत गया था। रात नर्मदेश्वर की भाभी जोरों से याद आयी थी, यह शायद उसी का नतीजा था। भाभी ने पहले-पहल अक्षरों का अभ्यास करवाया था न?

शाम को कामेश्वर से मुलाकात होगी। आज वह भाभी के बारे में जरूर पूछेगी। लगता है, कामेश्वर को खुद भी भाभी का पता नहीं है। आठ महीने जेल के अन्दर बन्द था। भाई-भाभी का उसे क्या पता? गाँव के साथियों में से कोई मिला हो और उससे मालूम हुआ हो?

कागज तो उगनी को मिल गया था, पेन्सिल नहीं मिल रही थी।

तिवारी की छोटी लड़की उमा से पेन्सिल मँगवाकर उगनी लिखने बैठी···

शुरू से नहीं लिखेगी···

तीसरा पाठ।

"मुनि अयोध्या पहुँचे।

" राजा दशरथ ने उनकी बड़ी आवभगत की।

" कुछ देर बाद दोनों हाथ जोड़कर पूछा···

" मैं आपकी क्या सेवा करूँ महाराज ?

" मुनि विश्वामित्र ने कहा —महाराज, अपने दोनों बड़े राजकुमारों को मेरे साथ बाहर जाने की आज्ञा दीजिए। राक्षस उपद्रव कर रहे हैं। मेरा यज्ञ अधूरा पड़ा है। आपके पुत्र राक्षसों से मुझे छुटकारा दिला··· "

"चाची !" गीता आकर सट के बैठ गयी, बोली—"तुम्हारी लिखावट कितनी अच्छी होती है !"

"···एँगे।" उगनी ने वाक्य को पूरा किया और गीता की ठुड्डी से पेन्सिल को छुआकर उसकी आँखों में देखा। दोनों खिलखिला के हँसी।

पिछले वर्ष शादी हुई थी। छरहरा कद। साँवली सूरत। नाक-नक्श दुरुस्त। आँखें बड़ी-बड़ी। बायीं कनपटी में घाव का पुराना निशान। उम्र अठारह की होगी। गीता तिवारीजी की बड़ी बेटी थी, बिल्कुल पड़ोस के क्वार्टर में यह लोग रहते थे।

"हाँ चाची, तुम्हारी लिखावट मुझे बड़ी प्यारी लगती है।" वह उगनी के गले में झूल गयी।

गीता अक्सर ऐसा करती थी और उगनी को यह सब बुरा नहीं लगता था। उसने अपने शरीर का आधा बोझा उगनी की गोद में डाल दिया, आँखों में आँखें डालकर देखती रही। फिर बोली —"आज किधर सूरज उगा है ?"

उगनी को हँसी आ गयी। सोचा, हाँ, सचमुच मैंने पहली बार आज कागज की गोद-गाद की है···

"तुम तो दरजा सात तक पढ़ी हो न !"

गीता ने नाटकीय शैली में माथा हिलाया और बोली—"बाबूजी का कहना है, लड़कियाँ ज्यादा पढ़ के क्या करेंगी !"

"और, तेरे उनका क्या कहना है ?" उगनी ने खिलखिलाकर पूछा और कागज-पेन्सिल को परे रखकर इत्मीनान से बैठी। बैठी क्या, पसर गयी। गीता के पतले बदन को अपनी दायीं जाँघ से चाँप लिया। दायें हाथ की उँगलियों से उसके जूड़े को सहलाने लगी। उगनी को पता था, गीता का पति कालेज की पढ़ाई छोड़कर कहीं चीनी मिल में 'छोटा बाबू' हो गया है। वह अपनी नवेली बीवी को साथ रखना चाहता है। घरवाले नहीं चाहते हैं। बस, मिल के हाते में न सही, आस-पास कहीं बाहर भी डेढ़-दो कमरे वाला खपरैल या खटछप्पर मिलने की कसर है। वह

गीता को जरूर ले जायेगा। अपनी कोयल को साथ रखेगा···उगनी को अच्छा लगेगा, गीता और उसके पति साथ रहेंगे।

कहने को चाची-भतीजी का रिश्ता था, दरअसल उनका आपस का बर्ताव सहेलियों का था। डेढ़-दो महीने के अन्दर ही दोनों काफी घुल-मिल गयी थीं। मजाक-मखौल खुल के चलने लगा था।

पिछले महीनों में गीता का घरवाला दो बार ससुराल आ चुका था। तिवारी जी की बीवी ने काफी जोर डाला, मगर भभीखनसिंह की घरवाली उसके दामाद के सामने नहीं हुई। भभीखनसिंह को अपनी बीवी से यही उम्मीद थी। तिवारीजी का दामाद भभीखनसिंह का भी दामाद था, इससे किसको इन्कार है? रिश्ते के मुताबिक उगनी उस लड़के की सास हुई। बूढ़ी होती तो सामने होने में कोई झमेला नहीं था। मगर जवान सास नयी उम्र के दामाद से खुलेआम नेह-छोह बढ़ायेगी तो अनर्थ नहीं होगा?···भभीखनसिंह को बड़ा अच्छा लगा कि उनकी घरवाली तिवारी के दामाद के सामने नहीं गयी। सुना कि लड़के ने काफी जोर लगाया था रात-दिन रटता रहा—चाची, चाची, चाची, चाची! लेकिन चाची का दिल बबुआ जी पर नहीं पिघला···

पति की बात आ गयी बीच में। गीता थोड़ा शरमाई। निगाहों से निगाहों को थाहा, फिर बोली—"चाची, जितना पढ़ लिया है, उतना ही काफी है। हुनर हो तो थोड़ी भी विद्या कम नहीं होती।"

उगनी ने प्यार के मारे गीता का कल्ला दबा दिया। कहने लगी—"तीसरी आँख होती है विद्या, समझी?"

चाची की गिरफ्त से छुटकारा पाने की कोशिश करते-करते गीता बड़ी-बड़ी आँखें नचाकर बोली—"तीसरी आँख लेकर कोई क्या करेगा? दो आँखें मिली हैं, वही क्या कम हैं? ठिकाने से काम लो तो यही बहुत हैं···"

गीता की इस बात पर खुश होकर उगनी ने उसे छोड़ दिया। पूछा—"छितौनी कब जा रही है रे?"

छितौनी के नाम पर गीता के कानों को गुदगुदी लगी। वह मुसकराई। बोली—"क्या पता, कोई ले भी तो जाये!"

"मैं पहुँचा दूँ?"

"धत्!"

"डर लगता है?"

"डर काहे का लगेगा?"

"मैं तुझे भगा ले जाऊँगी और···"

"और, और क्या करेगी चाची?"

"और, बेच आऊँगी कहीं पर···"

"मैं क्या कोई मैना हूँ ?"

"मैना नहीं, तू बुलबुल है···"

"अच्छा चाची, एक बात पूछूँ "

उगनी ने स्वीकार की मुद्रा में अपना माथा हिला अवश्य दिया किन्तु मन-ही-मन उसे डर लगा। गीता जाने क्या पूछ बैठे ? अब उसे पता चला कि भावावेश में आकर कितनी बड़ी भूल वह कर बैठी है। भागने-भगाने वाली बातों की क्या जरूरत थी ? गीता तो खैर अठारह वर्ष की छोकरी है लेकिन वह खुद तो अठारह वर्ष की नहीं है। बाईस पूरे करके अगले फागुन में तेईसवें में प्रवेश करेगी। उसकी समझदारी को अभी क्या हो गया था ? निश्चय ही गीता पूछेगी और घर से भागने के बारे में उसे कुछ-न-कुछ बताना ही पड़ेगा···नहीं, वह बिलकुल नहीं बतायेगी। चलो, बतला ही देगी। झूठ की चाशनी देकर ऐसी कहानी गढ़ेगी, ऐसी गढ़ेगी कि···

कि गीता ने खुद ही सवाल को बदल दिया। पूछा—"चाची, आज शाम को तुम उनसे मिलने नहीं जाओगी ?"

"अरे, मैं तो भूल ही गयी थी !" उगनी ने दिखावे के तौर पर विस्मय प्रकट किया। अन्दर-ही-अन्दर खुश हुई। गीता से ज्यादा उलझना नहीं पड़ा। पिछला सवाल वह भूल गयी थी।

"शाम को चलना जरूर !" उगनी ने गीता के हाथों को अपने हाथों में लेकर कहा। दोनों एक-दूसरे की ओर देख रही थीं। गीता का दाहिना हाथ उगनी के बाये हाथ को सहला रहा था। अनजाने ही चूड़ियाँ गिनकर वह बोली—"हाय, एक चूड़ी क्या हुई चाची ?"

उगनी ने उसकी ओर फीकी नजर से देखा। क्षण-भर बाद बोली —"रात टूट गयी !"

गीता ने भौहें नचाकर कहा—"यह बड़ा बुरा हुआ। मैं चाचा से कहूँगी। उनसे नयी चूड़ियाँ मँगवाऊँगी तुम्हारे लिए···"

उगनी ने गीता के होंठों पर अपनी हथेली रख के आगे बोलने से मना किया।

"क्यों ?" मुँह छुड़ाकर गीता चीखने लगी—"क्यों मना करती हो मुझे ? मर्द को क्या इतनी सजा भी नहीं मिलनी चाहिए ? जुर्माना तो चाचाजी को भरना ही पड़ेगा। मैं नहीं मानूँगी।"

उगनी हँसने लगी। हँसते-हँसते गीता को अपनी ओर खींच लिया। गालों पर एक-एक हल्की चपत जमाकर बोली—"मेरे लिए तू किस-किस से लड़ती फिरेगी ?"

वह तुनककर बोली—"अब तुम चाचा की तरफदारी न करो। मै मानूँगी नहीं, चूड़ियाँ जरूर मँगवाऊँगी।"

उगनी ने हँसकर कहा—"सुन रे पगली ! देख ले इन हाथों को···अभी तो खैर एक ही चूड़ी फूटी है, आगे सारी-की-सारी फूट जायेंगी। इनके फूटने न फूटने में क्या रखा है ? हाँ, भगवान करे, किसी की तकदीर न फूटे !"

गीता झुक आयी। कान में फुसफुसाकर कहा—"चाचा बड़े कंजूस हैं।" और आँखें नचाकर हाथों के इशारे से बतलाया—"इतना रुपैया गाड़ के रखा है··· सोने की हँसुली इनसे जरूर बनवा लो ! बेर-बखत पर काम आयेगी···"

उगनी उस छोकरी की इन बातों पर दंग रह गयी। मन-ही-मन उसने गीता को गालियाँ दीं—मन्थरा की नानी कहीं की ! ···अगले ही क्षण सोचा, इसमें बेचारी गीता का क्या कसूर ? कोई और घरवाली सिपाहीजी की होती तो जरूर ही चार तोले सोने की हँसुली बनवा लेती ! इस हँसुली के लिए वह क्या कुछ नहीं करती। अधेड़ मर्द के सामने नौ नखरे करती। उसके प्यार-भरे अनुरोध पर बाबू भभीखनसिंह अपनी बड़ी-बड़ी मूँछों को उस्तरे के हवाले कर देते, बालों को इतना महीन छँटवाते कि उम्र दस साल कम मालूम देती। सिपाहीजी की वह घरवाली उनके बदन का एक-एक रोआँ चूमती। उसकी इन अदाओं पर रीझकर सिपाहीजी उसके नाम पर डाकखाने में हिसाब खुलवाते। तीन चाबियों का छोटा-सा गुच्छा फिर जनेऊ में न बँधा होता···

"अच्छा चाची, तुम्हें अपनी माँ का चेहरा याद है ?" गीता ने प्रसंग बदलकर पूछा। उगनी क्षण-भर के लिए सहम गयी। उसने यहाँ सभी से कह रखा था कि उसके माँ-बाप पन्द्रह वर्ष पहले ही हैजे में मर गये थे। आधा झूठ, आधा सच। माँ थी, बाबूजी नहीं थे। बाबूजी का चेहरा ध्यान में आता जरूर था मगर धुँधला-धुँधला। लेकिन माँ तो छाया की तरह उगनी के साथ थी। माँ के बारे में गलत बतलाते समय उगनी के रोंगटे खड़े हो रहे थे। जैसे-तैसे अपने मन पर काबू रखकर उसने कहा—"हाँ, अच्छी तरह याद है माँ का मुखड़ा। बचपन में गले का आपरेशन हुआ था, दाहिने कन्धे के ऊपर बड़ा निशान था। मेरी आँखें गोल है, उसकी कमलपत्री आँखें थीं।

"अच्छा चाची···"

उगनी ने गीता के होंठों पर हाथ रखा—"अच्छा-अच्छा, रहने दे अब। दुपहरिया का अपना सोना मैं हराम नहीं कर लूँगी तेरे चलते···"

गीता ने तनकर कहा—"सच ? तुम्हें नींद आ रही है। पूस-माघ के दिनों मे तो बीमार लोग ही सोते हैं।"

"मैं भी बीमार हूँ।" उगनी मुस्करायी। उठकर आँगन के कोने तक गयी। जाड़े की धूप तिरछी सरक आयी थी। मर्तबान को उठाकर फिर से उगनी ने धूप में रखा। अन्दर नींबू भरे थे।

गीता भी खड़ी हो गयी थी। मालूम था कि चाचा आने वाले है, बाहर-साढ़े

बारह बजे वे जरूर सो जाते हैं। बरामदे से ऊपर दीवार पर उसकी दृष्टि पहुँची। सिन्दूरी लिखावट में दो पंक्तियाँ अब उतनी चमक नहीं रही थीं, लेकिन अभी काफी अर्से तक पढ़ी जायेंगी। इन्हें गीता ने ही लिखा था। मन-ही-मन वह दुहराने लगी···

अचल रहे अहिवात तुम्हारा।
जब तक गंग-यमुन की धारा॥

दुहरा गयी। एक बार, दो बार। लिखावट अपनी थी, मोह लग रहा था। इच्छा हो रही थी, सिन्दूर घोलकर इन पंक्तियों को एक बार और चमका दे···

आँगन में इस पार से उस पार तक पतला तार टँगा था। कपड़े सूख रहे थे। उगनी उन्हें सहेजने आयी। दूसरी बाँह से गीता को धकेलती हुई कमरे के अन्दर गयी।

"क्या देख रही थी रानी ?"

"और क्या देखूँगी !"

"अचल रहे अहिवात तुम्हारा ?"

"हाँ, जब तक गंग-यमुन की धारा !"

"झूठ !"

"नहीं चाची, झूठ नहीं···"

"क्या बकती है !"

"बकती हूँ ?"

"अपने चाचा की मूँछों को नहीं देखा है ?"

गीता उदास हो गयी। उसकी रग-रग डूबने लगी। वह सोचती रही, गंगा-यमुना चाहे मिलकर जोर लगायें तो भी चाचा की जवानी वापस नहीं लौटा सकतीं वे। क्या जरूरत थी शादी की ? हाँ, थी जरूरत ! छः महीने बाद चाचा किसी के पिता होंगे। शादी न होती तो कैसे पिता होते ?···

उगनी ने उसे सुस्त देखा तो बाँहों में ले लिया, मुँह बना-बनाकर हँसाने लगी। बोली—"अबके दूल्हाजी आयेंगे तो मैं उनसे खुद ही कहूँगी, हमारी गितिया को आप इतना क्यों तरसाते हैं ? आप उसे ले क्यों नहीं जाते ? कब तक अकेली रहेगी ? सीता का वनवास तो कानों से सुना था, गीता का वनवास अब आँखों से देख रही हूँ···"

गीता विनोद की बातों से खिल उठी। आँखों के कोये चमकने लगे। लाज की थिरकन से बेताब होकर अपने को उसने छुड़ा लिया। बाहु-बन्धन से मुक्त होकर वह भाग ही गयी।

"कल तो शाम को तुमने शिवजी की बूटी नहीं ली; आज लेकिन दोपहर का प्रसाद

ग्रहण करना पड़ेगा।" जब बूढ़े पुजारी बाबा ने कामेश्वर से यह बात कही तो समझ मे नहीं आया कि वह 'हाँ' करे या 'ना'···

पुजारी बाबा वैरागी साधु थे। उम्र पैंसठ से कम न रही होगी। जवानी में निश्चय ही खूबसूरत रहे होंगे। क्या वे हमेशा से यही जेल के पड़ोस में पड़े रहे? क्या वे बचपन में ही घर से भाग आये थे।

कामेश्वर के मन मे पुजारी के बारे में कई तरह के सवाल उठे, मगर उसने उन्हें दबा लिया। सोचा, इतने प्यार से बाबाजी भोग की सामग्री तैयार करेंगे और मैं ठाकुरजी का प्रसाद न लूँ तो उनको दुःख होगा। कहीं तो दोपहर का खाना खाऊँगा ही, बाबाजी की ही बात क्यों न रख लूँ?

प्रकट तौर पर उसने कहा—"बाबा, नाहक आप झमेले मे पड़ेंगे। एकाध बतासा मेरे लिए काफी रहेगा।"

बाबाजी बगिया मे धनिया की पत्ती खोंट रहे थे। क्यारी के बाहर कामेश्वर खड़ा था। बाबाजी बोले—"बतासा तो भारी पड़ेगा, तुलसी का दल ठीक रहेगा···" इस पर दोनो को हँसी आ गयी।

बाबाजी बोलते गये—"सबको मैं थोड़े कहता हूँ प्रसाद के लिए? तुमको उस रोज पहली बार देखा तभी सोचा, अच्छा लड़का होगा। शीलवन्त, पढ़ा-लिखा, खानदानी। सोचा, इस लड़के को पास बैठाकर मन को शान्ति मिलेगी। जरूर बोल मीठे होंगे···"

कामेश्वर को बूढ़े बाबा पर दया आयी। ये लोग जिन्दगी-भर पारिवारिक स्नेह के लिए तरसते रहते हैं। बुढ़ापे मे इनका आत्माराम प्यासा रहता है और छोटी उम्र के छोकरों को देखते हैं तो प्यार के मारे गीले हो उठते हैं। बेटा-बेटा, राजा-राजा कहेंगे, प्रसाद के नाम पर मेवा-मिठाई खिलायेंगे और पास बैठाकर देर तक देखा करेंगे, विभोर होकर। उनकी विह्वलता देखकर उन बेचारो पर दया आती है। उनका प्रसाद अस्वीकार कर दो तो वे रो पड़ेंगे—"रामजी को मंजूर नहीं था।"

कामेश्वर बाबा का प्रसाद अवश्य स्वीकार करेगा। दोपहर का खाना होटल में तो रोज चलता ही है; एक रोज हनुमानजी की मठिया का प्रसाद ही सही।

बाबाजी क्यारी से बाहर आये। झोले में बैंगन, मूली, गोभी के फूल और न जाने क्या-क्या भरा था। थोड़ी-बहुत सब्जी-भाजी वे मठिया की बगीचो में उगा लेते थे। कुएँ की वजह से पानी की सुविधा थी।

कामेश्वर ने कहा—"बाबा, ग्यारह बजे आ जाऊँगा।"

बाबा ने कहा—"बारह तक मैं तुम्हारी राह देखूँगा···मगर तुम जाते ही क्यों हो? यहीं स्नान करो; तेल, साबुन, कपड़ा, तौलिया—सबका प्रबन्ध हो जायेगा। तुम्हारे जैसे भक्त आते ही रहते हैं। यह मठिया जरूर है लेकिन थोड़ा-

बहुत आराम न मिले, ऐसी बात नहीं।"

क्या बात सूझी कि कामेश्वर ने एकाएक पूछ लिया—"यहाँ रामलीला होती है कि नहीं?"

"वाह, रामलीला ही नहीं होगी? आसिन-कातिक मे इधर आओ तो देखो।"

हाथ जोड़कर कामेश्वर वापस आया।

धर्मशाला के गेट पर पड़ोसी कमरे का युवक मानो उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह कामेश्वर को अपने कमरे के अन्दर ले गया और पाकेट से निकालकर तार आगे बढ़ा दिया।

पढ़कर टेलीग्राफ वाला कागज कामेश्वर ने जेब के हवाले किया और अपने कमरे के अन्दर आया। नर्मदेश्वर का तार था।

जल्दी-से-जल्दी कामेश्वर को लौटना चाहिए। और जीप का इन्तजाम चार दिन बाद होगा। क्या पता, पूरा सप्ताह और लग जाये।

कमरे के कोने मे कपड़ो का वह गट्ठर था, जिसे दो बार कन्धों पर लादकर कामेश्वर को पुलिस लाइन के इर्द-गिर्द चक्कर काटना पड़ा था। गट्ठर भारी नही था। पाँच-सात साड़ियाँ, चार-छः चादरे, ब्लाउज के लिए कटपीस वाले चन्द टुकड़े ···और कुछ नही था। सेठ सुगनचन्द के भतीजे से नर्मदेश्वर की गाढ़ी दोस्ती थी। उसने कहा था —'जरूरत पड़े तो वह दस गट्ठर माल फेरी के लिए देगा। यहाँ दस गट्ठर का क्या काम था? फेरी तो करनी थी नहीं, फेरी का नाटक करना था। यह नाटक कामेश्वर ने किया और अच्छी तरह किया। तीन साड़ियाँ बिकी, चादर का एक पल्ला खपा, कटपीस सारे निकल गये···

कामेश्वर को हँसी आ गयी। समूचा गट्ठर कटपीस का ही ले आता तो मुनाफे की बड़ी गुंजाइश थी। कैसे टूट पड़ी उन टुकड़ों पर! क्या बूढ़ी, क्या छोकरी, सभी लपक आयी और कटपीस के टुकड़ो को सीने से लगा-लगाकर एक-दूसरे को कैसे आँख मारने लगीं। फेरी वाले औरतो की इन कमजोरियों को अच्छी तरह जानते हैं···

कामेश्वर को उस रोज उगनी का वह झाँकना बड़ा अच्छा लगा था। दरवाजे से निकलकर एक युवती चार कदम आगे बढ़ी। कामेश्वर ने पहले चेहरे की ओर ध्यान नहीं दिया। गुलाबी साड़ी का मोरछाप किनारा पैरो तक फहरा रहा था और युवती का शरीर बीच में ठिठक गया। फेरी वाले ने क्षण-भर के लिए सोचा था, वापस लौटकर दाम ले आयेगी तब आगे बढ़ेगी। लेकिन नहीं, वह जैसी की तैसी ठिठकी रही। सहजन के तले माल फैलाकर सामने वाली औरतों से वह मोल-भाव कर रहा था। गुलाबी साड़ी का मोरछाप किनारा आगे नहीं बढ़ा तो फेरी वाले ने उस चेहरे की ओर नजर उठायी थी। उगनी ने उसे भली भाँति देख लिया था और फुर्ती से लौट गयी थी। सामने वाली औरतों में से एक छोकरी ने कई बार

आवाज दी थी—"चाची, चाची, अरे सुनो तो ! बड़े अच्छे पीस हैं, एक बार देख तो जाओ !" वह पीछे-पीछे पहुँचकर क्वार्टर के अन्दर से उसे शायद खींच भी लाती लेकिन सामने वाली बुढ़िया ने उसे डाँटा—"चाची-चाची मचाये रहती है ! एकाध अच्छा टुकड़ा मेरी पतोहू के लिए चाची छाँट देगी सो नहीं होगा !" निश्चय ही बुढ़िया की पतोहू मायके गयी होगी···

कामेश्वर को याद आया, वही लड़की तो उस रोज हनुमानजी की मठिया तक उगनी के साथ आयी थी। आज भी शायद उगनी उसी के साथ मठिया पहुँचेगी। लगता है, यहाँ भी उगनी ने दो-एक सहेलियाँ बना ली हैं। औरतें सहेली बनाने की कला में उस्ताद होती हैं। दो अपरिचित मर्द हफ्तों-महीनों आसपास रहेंगे, लेकिन एक-दूसरे के दिल में प्रवेश नहीं पा सकेंगे। औरतें घण्टों में ही यह काम कर लेती हैं।

कामेश्वर ने क्षण-भर के लिए आँखें मूँद ली। लगा कि गट्ठर को बाकी तीन साड़ियाँ उगनी एक साथ लपेट लेगी। वह नहाकर आयी है। कमर से नीचे सूखा पेटीकोट झूल रहा है। बालों में तौलिया लपेट रखा है। बिना बाँहों वाला चम्पई ब्लाउज सीने को और भी गरिमा प्रदान कर रहा है।

कमरा नं० 34 वाला नौजवान आवाज देकर अन्दर आ गया।

"आज आप नहायेंगे नहीं ?"

"चलिए आता हूँ।"

"हाँ, कुएँ पर अभी कोई नहीं है।"

"तेल होगा ?"

"आइए भी तो !—और हाँ, एक बात···"

कामेश्वर ने चलते-चलते अपना एक कान युवक की ओर बढ़ा दिया।

साथ खाना खाने का अनुरोध था। कामेश्वर ने मजबूरी जाहिर की। बोला—"शाम को नाश्ता-चाय साथ चलेगी।"

उगनी खाना तैयार करके रख आयी थी।

गीता ने आज भी चाची से पूछ लिया था और अनुमति मिल गयी थी।

मठिया में बाबाजी फूलों की माला गूँथ रहे थे। गीता प्रणाम करके सामने बैठी, उगनी बगीची की ओर चली गयी।

"लाइए बाबा," गीता ने हुलसकर कहा—"मैं भी माला बनाऊँ !"

बनावटी गुस्से में बाबाजी ने कहा—"बंदरिया कहीं की ! हट, तू क्या जाने माला-फाला···"

"नहीं महाराज···" मचल के बोली गीता—"मैं बहुत अच्छी माला तैयार करूँगी !"

"जा, हाथ धो आ !"

"अच्छा महाराज !"

आँखों के इशारे से बाबाजी ने गीता को बुलाया तो वह बिलकुल पास आ गयी। गीता को मालूम है, बाबाजी का यह अपना खास ढब है बातें करने का। कान के पास मुँह लाकर फुसफुसायेंगे। बात कोई खास नहीं रहेगी, लेकिन बाबाजी फुसर-फुसर करेंगे।

"तिवारीजी ठीक हैं न ?" गीता के दाहिने कान में फुसफुस हुई। उसने माथा हिलाकर 'हाँ' का संकेत दिया।

गीता ने कुछ और भी सोचा था। उसे लगा था, बाबाजी जानना चाहेंगे—'भभीखनसिंह की घरवाली से कौन आदमी बातें कर रहा है ?'

'चाची के मामा का लड़का है, कपड़े का धन्धा करता है।' गीता ने जवाब भी सोचकर रख लिया था। लेकिन, बाबाजी ने निहायत मामूली बात पूछी, उसके अपने पिता के बारे में। तो फिर वही क्यों न बतला दे ?

उसने धीमी आवाज में कहा—"महाराज आप जानते हैं न उनको ? वे चाचीजी के मामा के लड़के हैं, कपड़े की दुकान करते हैं, सेठ हैं···"

"तेरे लिए क्या लाये हैं ?"

"जब वे अपनी फुफेरी बहन के लिए कुछ नहीं ला सके तो आप क्या पूछते हैं ! शायद हनुमानजी को चढ़ावा मिला हो···"

"बड़ी चण्ट है तू ?"

"जरूर मिला है महावीरजी को कुछ ! है न ?"

"जा, भाग !"

गीता, तालियाँ पीटने लगी—"कर लिया मालूम ! कर लिया मालूम ! कर लिया मालूम !"···सामने, मठिया के आँगन में परले छोर पर पानी वाला पम्प था। गीता उधर हाथ धोने चली गयी।

बाबाजी इधर आरती का जुगाड़ करने लगे। सोच रहे थे, आखिर तिवारी की इस बच्ची ने मालूम कर ही लिया। दस ही तो मिले हैं, दस-बीस अभी और मिलेंगे···कैसी ममेरी और कैसी फुफेरी ! ऐसा नजदीकी रिश्ता था तो धर्मशाला में क्यों ठहरा है ? शायद, भभीखनसिंह से वह मिलना नहीं चाहता था। खानदानी ढंग से शादी हुई होती तो बात ही और थी···लेकिन लड़का मिठबोला भी है, समझदार भी। सेठ हो या अफसर, हमारा क्या बिगाड़ता है ? बहन से मिलने आया है, मिले। रामजी भला करें बेचारे का। बार-बार घेरने पर तो दिन का भोजन स्वीकार किया···आधा सेर दही और सेर-भर मिठाई बाजार से लाया था ! उदार आदमी छछून्दर स्वभाव का हो ही नहीं सकता। तबीयत तो लड़के ने ऐसी पायी कि···

कि गीता ने कहा उधर से—"मैंने तीन मालाएँ तैयार कर लीं बाबा ! अब लाइए रुई बढ़ाइए ! आरती के लिए दीपों की बत्तियाँ बँट दूँ। आज मेरा जी कर रहा है सेवा करने का, मगर यहाँ करने को कुछ हो भी तो !"

"रामायण बाँचकर हनुमानजी को सुना !" बाबाजी ने मठिया के अन्दर से आदेश दिया और मँझोली साइज की एक पोथी बाहर चौखट के पास बढ़ा दी।

गीता आसन पर पालथी मारकर बैठी और धीमी आवाज में पाठ करने लगी—

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥···

दोनों श्लोक याद थे, इसलिए कि तिवारीजी ने बचपन में ही बहुत कुछ रटा दिया था। गीता को इस बात का ही ध्यान अधिक था कि चाची को अपने भाई से गपशप करने का पूरा वक्त मिले।

चौपाइयों की वाटिका में उसका मन सैर करने लगा। बाबाजी आरती की तैयारी कर रहे थे।

यह मठिया कहने को छोटी थी, लेकिन डेढ़ सौ वर्ष पुरानी। इसका इतिहास जेल के साथ जुड़ा था। उन्नीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में जिला-जेल का परकोटा तैयार हुआ था। रतनपुर के देहातों में दस-पन्द्रह कोठी वाले अंग्रेज जमींदार जम गये थे, उनका आतंक 1920 तक बना रहा। लगभग सौ वर्ष उन्होंने गँवई जनता को खूब कसकर दूहा। मुगल सूबेदारों और नवाबों की हुकूमत अठारहवीं सदी के मध्य तक काफी शिथिल पड़ गयी तो 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के गोरे हाकिमों ने उत्तर बिहार के उन इलाकों में अपने हाथ-पैर फैलाने शुरू कर दिये। विरोध में जो भी कोई आवाज उठाता वह बागी करार दिया जाता···ठग, डाकू, चोर, बदमाश आदि भी गिरोह बनाकर घूमा करते थे और उनके अन्दर फिरंगियों के प्रति अपार घृणा सुलगा करती थी। उन्हीं का होश ठिकाने लाने के लिए इन जेलों की दीवारें खड़ी की गयी थीं। जेलर पढ़ा-लिखा होता था, मगर सन्तरी-सिपाही ठेठ किसान होते थे। लाठी, लाल-लँगोटा, ढोलक, मँजीरा, तुलसीदासी रामायण और हनुमानजी उनके सुख-दुःख के साथी थे। बजरंगबली

की यह छोटी-सी प्रतिमा रतनपुर जेल के उन्हीं आदिम वार्डरों की श्रद्धा का प्रतीक थी।

जेल के सिपाही हनुमानजी की इस प्रतिमा को अपना 'घरेलू देवता' मानते आये थे। बहुएँ और बेटियाँ घण्टों वहाँ गुजार देतीं, कोई उनसे पूछता नहीं था।

बगीची में बातचीत खत्म करके उठते-उठते कामेश्वर ने पूछा—"सिपाहीजी नहीं आते हैं यहाँ ?"

"सनीचर को।" उगनी बोली।

"और तुम ?" कामेश्वर मुसकराया।

उगनी ने कहा—"अक्सर मंगलवार की शाम को आती रही हूँ।"

"अब तक कितने लड्डू चढ़ा चुकी हो ?"

"ढाई सेर !"

"गिनती पूछ रहा था···"

उगनी हँसने लगी, बोली—"गिनती से क्या, भगत को तो प्रसाद चाहिए न ?"

कामेश्वर ने मुँह बनाकर कहा—"भगतिन की नानी कहीं की ! चल, बाबाजी से दो लड्डू लेकर दे मुझे ! प्यास लगी है···"

"बस ? सिरिफ दो ठो !"

"हाँ, दो ठो !"

"चाची।" उधर से गीता की आवाज आयी, "चलोगी नहीं ?"

"आयी !" आहिस्ते से उगनी बोली।

चलते-चलते उसने कामेश्वर से संकेत में आदेश की याचना की।

बाबाजी ने पुकारा, "आरती का नबेद लेते जाओ बबुआ !"

"रख दीजिएगा," कामेश्वर ने ऊँची आवाज में कहा—"निबट के आ रहा हूँ बाबा !"

मठिया के बरामदे से उतरकर गीता आँगन में आ गयी। उगनी से कहा—"नबेद लो चाची ! बतासा तो तुम लोगी नहीं, किसमिस मैं अपनी भी दूँगी···"

ज्यादा नहीं, लेकिन थोड़ा दूध उफनकर गिर गया था। नीचे सीमेण्ट का फर्श था, दूध फैलकर अपनी गाढ़ी सफेदी बिखेर रहा था···साँवली सूरत और लम्बी मुखाकृति वाली तिवारीजी की बीवी अपने को सँभाल नहीं पा रही थी। मुश्किल से गाय का यह आधा सेर दूध मिलता था, और उसमें भी अगर पाव-भर धरती माता ही सोख लेगी तो कैसे काम चलेगा ?

गुस्से का पहला उबाल खत्म हो चुका था, अब दूसरा उबाल आने वाला था। दो साल का दुलरुआ बेटा आकर गोद में बैठ गया। आँचल के अन्दर हाथ डालकर

धीरे-धीरे छाती टटोलने लगा तो खीझकर माँ बोली—"ले, पी ले ! अब और कुछ तो नहीं रह गया है। लड्डू जरूर मिलेगा। राक्षस कहीं का? घड़ी-आध घड़ी भी चैन से बैठने नहीं देता···"

जबरन उसने बच्चे की थुथनी को अपने स्तन से सटा लिया और सुलगती हुई बोली, "ले, प्राण ही पी ले मेरा ! जीके क्या करूँगी···"

आँगन के कोने में नौ साल की बिटिया बर्तन साफ करने में लगी थी। छोटी-छोटी दो पतीलियाँ, एक बटलोई, कडाही, तवा, थालियाँ, कटोरे···काफी बर्तन सामने पड़े थे। वह काले हाथों से अकेली जूझ रही थी, मन-ही-मन उसे बड़ी बहन पर गुस्सा आ रहा था। बीच-बीच में सहमी निगाहों से पीछे देख लेती, माँ की खीझ का अन्दाज लेते रहना जरूरी था।

दरजा आठ में पढ़ने वाला लडका बाहर था, अपने साथी से मिलने गया होगा। अभी दो रोज पहले आठवीं का इम्तहान खत्म हुआ था, पर्चे अच्छे हो गये थे। तिवारी की बीवी को बड़ा अभिमान था कि लड़का साइंस पढ़ रहा है। दुलार के मारे वह उसे काफी छूट देती थी, बहनों को भाई की आजादी अखरती थी।

लड़का सीटी में फिल्मी धुन बजाता हुआ अन्दर आया। माँ ने कड़ी निगाहों से उसे देखा। उलाहने की मुद्रा में दायीं बाँह उठाकर पूछा—"महारानीजी कहाँ गायब हो गयीं? एक पहर बीत गया, मठिया से नहीं लौटीं ! लगता है, कोई उठा के ले गया !"

सीटी बजाना भूलकर लड़का नयी परिस्थिति को भाँपने लगा। कोने में बैठी, ढेर सारे बर्तन सामने फैलाये रखने वाली छोटी बहन की ओर देखा। भारी बटलोई की काली पेंदी पर वह झुकी थी, छोटे इंजन की छोटी पिस्टन की तरह काली हथेली उस पर फिर रही थी। अभी छोटी बहन नहीं, उमा भाई को मशीन प्रतीत हुई।

सकपकाहट में देखकर माँ ने कहा—"जा, देख, मठिया में क्या देर कर रही है?"

"अकेली थोड़े गयी है !"

"हूँ, देवीजी साथ गयी हैं पड़ोस वाली।"

कण्ठ तक आकर एक गाली भी टकराई—'छिनाल कहीं की !'

तिवारीजी और भभीखनसिंह साथ ही ड्यूटी पर निकले थे। उसके बाद ही दूध में उफान आया था। गीता की माँ को सिपाहीजी की घरवाली पर ही गुस्सा आ रहा था। जी कर रहा था, आँगन से बाहर निकलकर पानी के बम्बे के नजदीक खड़ी हो जाये और चुन-चुनकर हजार गालियाँ सुनाये।

लड़का बाहर निकलने को हुआ।

माँ ने रोका—"आ ही रही होगी।"

"नहीं, मैं जाकर ले ही आऊँ।" लड़के ने कहा और आगे बढ़ गया।

तिवारी की बीवी सोच रही थी—सचमुच उसे रण्डी ही होना था। ऊपर से बड़ी भली बनती है, लेकिन अन्दर डूबकर पीने वाली भगतिन लगती है मुझे तो। यह टिकेगी नहीं, भाग खड़ी होगी। भभीखनसिंह सर पीटते रहेंगे। गीता क्यों इस चुड़ैल से सटने जाती है? जो खुद ही बहत्तर घाट का पानी पीके आयी है, वह किसी की लड़की-पतोहू को क्या सिखलायेगी?···ना गीता को मैं अब निकलने नहीं दूँगी, चाहे तिवारीजी मुझे फाड़ के खा जायें! कभी-कभार एकाध कप चाय भिजवा देती है, चस्का डाल दिया है न···

चाय की याद आते ही कप का ध्यान आया। कई दिनों से चाय का जूठा कप तिवारी जी के सिरहाने पलंग के नीचे पड़ा था। तिवारीजी की बीवी ने गोद के बच्चे को हिलाकर उठाया—"जा, उमा को वह प्याला तो देता आ, धो देगी।"

उधर से उमा ने माथा उठाकर ठुनकती आवाज में कहा—"अब मुझसे यह सब नहीं होगा। इतने सारे बर्तन माँजते-माँजते मेरी कमर टूटी जा रही है···"

नौ साल की उमा रो पड़ी। काली हथेली वाला एक हाथ उठाकर कुहनी से उसने आँसू पोंछे और फिर माथा झुकाकर बर्तन मलने लगी।

गोद का बच्चा प्याला लेकर आगे बढ़ आया था। इशारे से माँ उसे पास बुलाने ही वाली थी कि गीता ने अन्दर पैर रखे।

देर काफी हो गयी थी। माँ के चिड़चिड़े स्वभाव से गीता यों भी आतंकित रहती थी। आज उसने तय कर रखा था, चाची की खातिर सब कुछ चुपचाप सुन लेगी। छोटे भाई ने बड़ी बहन पर सहमी हुई नजर डाली। उमा उसी तरह सिर झुकाये अपना काम करती रही। माँ ने तो गीता की तरफ देखा तक नहीं।

कमरे के अन्दर जाकर गीता ने कपड़े बदले। बाहर आकर उमा के पास जा बैठी। माँजे हुए बर्तनों को धोने के लिए बाल्टी के अन्दर लोटा डुबोया कि उमा उस पर बरस पड़ी—"अब कैसे आयी है! जाओ, बैठो पलंग पर, उपन्यास पढ़ो! दाई-महरी का काम क्यों करने आयी हो?"

भरा हुआ लोटा उसने बड़ी बहन के हाथ से छीन लिया। इस तरह घूरकर देखा कि गीता सहम गयी। माँ से बीच-बचाव की कोई उम्मीद नहीं थी। बड़ी बहन ने झुकने में ही अपना कल्याण देखा। बोली—"उर्मिला, आज तू मुझे माफ कर दे!"

उधर से माँ गरज उठी—"ऐसे नहीं, उमा के पैरों पर नाक रगड़ो तभी माफी मिलेगी··"

गीता ने छोटी बहन के पैरों की ओर सचमुच ही हाथ बढ़ा दिये। किन्तु काली हथेली बीच में वर्जना की दीवार बनकर खड़ी हो गयी। उमा बड़ी बहन का इतना

अपमान कैसे होने देती ?

तिवारीजी की बीवी को क्रोध तो बेहद आ रहा था, लेकिन इस वक्त उसने अपने को जैसे-तैसे रोका। रोकती न तो क्या करती ? दीवार के उस पार दो सजग कान इसी ओर तो लगे थे।

गीता की माँ मन-ही-मन बोली—कहाँ से यह प्लेग का चूहा आ गयी ? इसे क्या हमारी छाती पर ही उछल-कूद मचानी थी ? एक शब्द भी मुँह से निकाला तो राँड़ सुन लेती है। कुछ न भी बोलो तो बच्चों से खोद-खोद के निकाल लेती है। भारी मुसीबत में पड़ी हूँ। कहीं दूसरी जगह डेरा भी तो नहीं मिलेगा। उनसे कहूँगी तो लाठी उठा लेंगे···

गीता भी जुट गयी। बर्तन जल्दी ही धुल गये। साड़ी के खूंट में बतासे बँधे थे। बडी बहन ने सभी को प्रसाद दिया। माँ ने लेकिन नहीं लिया। दोनों हाथ जोड़कर मठिया की तरफ मुँह किया, फुसफुसायी—"जय महावीर, बजरंगबली ! बच्चों को सुबुद्धि दीजिए। मैं आपसे और कुछ नहीं चाहती हूँ···"

और कोई वक्त होता तो बच्चे इस प्रार्थना पर शायद मुस्करा पड़ते। चाचा का कसूर है ?

—चाची से क्यों इतना अलगाव बरता जाता है !

—खूबसूरत होना ही पाप है ?

—औरत होना गुनाह है ?

—चाची को घर से कौन भगा लाया था।

—ऐसी अच्छी औरत को उसने भुला दिया ?

—चाची ने उससे शादी क्यों की ?

—वह क्या सचमुच ही नहीं रहेगी ?

—चाची का स्वभाव इतना अच्छा क्यों है ?

—वह भी गालियाँ क्यों नही बकती ?

इस तरह के बीसों सवाल थे और वे अठारहसाला छोकरी को घेर-घेरकर परेशान करते···

अठारहसाला छोकरी यानी तिवारीजी की बड़ी लड़की गीता। काफी पढ़ी-लिखी शहराती होती तो अब, ब्याह के बाद गीता पाण्डे कहलाती। मिस तिवारी के बदले मिसेज पाण्डे। पति को हस्ताक्षर का शौक था। उसने कई बार लिखवा-कर देख लिया था—श्रीमती गीता पाण्डे, श्रीमती गीता पाण्डे, श्रीमती गी···

अक्सर वह चाची के बारे में सोचा करती···पेट के अन्दर चार महीने से 'जीव' पल रहा है। अब कहाँ भागेगी बेचारी ? भागना होता तो जेल से रिहाई पाने के बाद उसी रोज न भाग गयी होती ? बाईस-तेईस वर्ष की लड़की पचास वर्ष के मुछन्दर सिपाही की घरवाली बनकर रहने को किस तरह तैयार हुई ?

तैयार क्या अपनी मर्जी से हुई होगी ? बेचारी के सामने और कोई रास्ता ही न रहा होगा ?···उसे पता है, माँ क्यों चाची पर इतना रंज रहती हैं। कई दिनों तक लगातार चाची से कहा गया, लेकिन वह दामाद की निगाहों के आगे खुलकर जाने को राजी नहीं हुई। माँ ने खीझकर अकेले में उस क्वार्टर वाली नानी से कहा था—छिनाल यहाँ भभीखनसिंह की रखैल बनके सती-सावित्री का नाटक कर रही है, मैं इन कलमुँहियों की रग-रग पहचानती हूँ···

(नहीं माँ, चाची को तुम इतनी गालियाँ न दो ! पहले जनम में बेचारी ने जाने किसका क्या बिगाड़ा था ! अब इस जनम में उसे तुम इतना सराप क्यों देती हो माँ ?

(जरूर चाचा ने चाची का रुख नापा होगा। चाचा ही नहीं चाहते होंगे कि उनकी घरवाली तिवारी के दामाद से बोले-बतियाये।

(माँ चाचा पर क्यों नहीं अपना गुस्सा झाड़ती है ?

(मर्द पर झाड़ेगी गुस्सा ? चबा जायेगा !

(मैं अपने मर्द पर नहीं झाड़ूँगी गुस्सा···

(चाची लेकिन सारा गुस्सा घोंट के पी गयी हैं, उनको कहाँ कभी रंज देखा है।

(उदास जरूर देखा है चाची को···

(मैंने चाची को रोते भी देखा है। रोती है तो उनका चेहरा लाल हो जाता है।

(हम अक्सर साथ-साथ सोते हैं। चाची को मैं गुरुभाइन मानती हूँ। लेकिन वे मुझे अपनी चेली नहीं मानती हैं। कहती है, सहेली के बिना दिन कैसे कटेंगे ! चार वर्ष छोटी हो तो क्या हुआ

(चाचा की मूँछों पर एक बार मैंने मुँह बनाया, बोली, मइया री ! इतनी भकरार मूँछें ! तुम्हें डर नही लगता चाची !

(उन मूँछों को छोटी करवा लो चाची ! तुम पीछे पड़ जाओगी तो सब हो जायेगा। तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन है जो चाचा को आदमी बनायेगा ?

बाहर बरामदे में तख्तपोश पर दोनों बहनें थीं। उमा कब की सो चुकी थी लेकिन गीता को नींद नहीं आ रही थी। पलकें झिपी थी, अन्दर अनाप-शनाप खयाल चक्कर लगा रहे थे। माँ, दोसाला छोटू और बारहसाला दिनेश अन्दर पलंग पर गहरी नींद में थे। सर्दी थी। बहुत नहीं, मामूली।

उमा ने करवट ली तो रजाई का आधा हिस्सा तख्तपोश के नीचे झूल गया।

नौ साल की छोटी बहन गाढ़ी नींद में सोयी थी। उमा की जाँघ पर हाथ फेरते-फेरते गीता सोचने लगी ··

(माँ क्यों तुम पर रंज हैं ?

(तुमने उसके स्वार्थ को धक्का पहुँचाया न !

(दामाद का मनोरंजन···मेरी और कोई सहेली होती तो यह काम माँ उसी के हवाले करती।

(चाची, अपना दिल तुमने किसी को दे रखा है ?

(मठिया से हम वापस आ रहे थे, तुम कितनी खुश थीं ! आज तुम्हारी खुशी दबाये नही दबती थी···

(यह क्या सचमुच ही तुम्हारे मामा का लड़का था ?

(नहीं ! अच्छा, न बताओ चाची !

(तुम्हें मेरी कसम ! बतला भी दो···

(देखो चाची, तुम मुस्करा रही हो···

(अब तू मुझे मुस्कराने भी न देगी ?

(क्यों नही चाची, खूब मुस्कराओ ! खिलखिलाकर हँसो न ? जरा-जरा-सी मुस्कान के भला क्या मतलब होते हैं ? खुलकर हँसो न ! खूब खुलकर, हाँ चाची ! इस तरह खिलखिलाओ कि चाचा के क्वार्टर की छत फट जाये।

(सच, इतना खुश तो मैंने कभी तुम्हें देखा नहीं !

(वह कौन था चाची ? मामा का लडका ? सच ?

(सच ! अपनी कसम गीता !

(नहीं, मेरी कसम खाओ चाची ! कहो 'गीता की कसम, वह मामा का लड़का था'···

(और मैं अगर झूठी कसम खा लूं गीता ?

(और मैं अगर बतला ही दूं कि···

(और मैं अगर···

(नही, चाची ! नही ! मत खाओ कसम···क्यों खाओगी कसम ? झूठी कसम तो बिलकुल मत खाओ ! यों भी कसम न खाओ···न अपनी, न मेरी, न उनकी, न इनकी···

(चाची एक बात पूछूं ?

(तुम डूब क्यों न मरी चाची ?

(नही डूबने दिया गया ? हाय राम, यह भी होता है चाची ? कोई डूबना चाहे और लोग उसे डूबने न दे ?···

दो-तीन बार करवटे बदली गीता ने।

तीसरी बार माँ ने उधर मे डाँटा—"सोती क्यों नहीं ?"

"सो तो रही थी।" गीता ने जवाब दिया।

माँ उधर से बोली—"रात को झूठ बोलती है, दिन को भी झूठ बोलेगी···"

"हूँ," गीता ने कहा, "तुमको सारा संसार झूठा-ही-झूठा नजर आता है

माँ !"

"कल दिन-देखार में लड़ लेना मुझसे," माँ ने कहा, "अभी तो सो जाइए महारानीजी !"

अब गीता ने उमा से कहा—"हट्, अपना सारा बोझ क्या मुझी पर डालेगी ?"

उमा ने उसके बदन पर से जाँघ तो हटा ली, लेकिन एक आदेश लाद दिया —"प्यास लगी है बहन, पानी पिलाओ···"

पाकड़ के नीचे किसी ने दो ईंटें रख दी थीं। एक पर एक।

भभीखनसिंह पहला राउण्ड मारने आये तो ईंट पर बैठकर पाकेट से तम्बाकू निकालने लगे। तम्बाकू की पत्ती का एक टुकड़ा हथेली पर रख के उसे खोंटने लगे। आज दोपहर को बाजार गये थे। घण्टाघर से पहले ही लहेरियागंज पड़ता है। सिपाहीजी का अपना एक पुराना सौदागर है, उसी से तम्बाकू के पत्ते लाते हैं। आज भी लाये थे। लेकिन अभी तम्बाकू के जिस टुकड़े को खोंट रहे थे, वह पन्द्रह रोज पहले लाये थे।

सुर्ती मसलते-मसलते सिपाहीजी को बूढ़े मिस्त्री का ध्यान आया···वह अच्छी मरम्मत करता है, स्टोव को इतना अच्छा बना देगा कि उगनी चाहे तो उसी पर खाना बनायेगी। उसकी दुकान में खम्भे में दीवालघड़ी टँगी है। छोटा काँटा सात पर था। सिपाहीजी ने मुस्कराकर मिस्त्री से पूछा था—कहाँ से ले आये हैं ? बड़ा अच्छा वक्त देती है !···मिस्त्री को भी हँसी आ गयी। दरअसल ग्यारह बजे थे। टार्च के स्प्रिंग को ठीक कर रहा था, निगाहें उसी पर भिड़ी थीं। मिस्त्री ने कहा —"सिपाहीजी, इस तरह हँसिएगा नहीं, नाराज हो जायेगी। बड़ी लाड़ली है, शहर के एक बूढ़े रईस की मुहब्बत में पगी हुई। पिछले बीस वर्षों से इन्हीं हाथों से इसका इलाज चलता रहा है···कल फिर इलाज के लिए आयी है···

मिस्त्री की उस बात पर इस वक्त भी भभीखनसिंह को हँसी आ रही थी। मिस्त्रीजी की उम्र और सिपाहीजी की उम्र लगभग एक-सी है। वह काम में तो उस्ताद था ही, बातचीत करने की कला का भी मास्टर था। सिपाही को बार-बार हँसी आ रही थी—कैसी चतुराई से उसने पुरानी घड़ी को बूढ़े रईस की रखैल बना के बात कही थी ! उसकी दुकान में दूर-दूर के ग्राहक पहुँचते हैं। स्टूल पर बैठकर मिस्त्री विधाता की अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद रहता है। इर्द-गिर्द दुनिया-भर का कबाड़ा जमाये रहता है। कोई भी शौकीन तबीयत का ग्राहक उसकी दुकान पर शायद ही जाता हो। बाबू भभीखनसिंह तो पुरानी लालटेन का बर्नर तक उसी से दुरुस्त करवाते थे। आज जाने कहाँ से उसकी दुकान में रेडियो की आवाज आ रही थी। सिपाहीजी ने पूछा तो बोला नहीं कुछ, बकरी वाली छोटी

दाढ़ी हिलती रही और वह मुस्कराता रहा। शायद उसकी दायीं ओर मटमैले तारों का जो गुच्छा उलझा पड़ा था उसी से रेडियो की आवाज निकाल रहा था।

खैनी मसलते-मसलते सिपाहीजी की आँख एक बार और चमकी। मिस्त्री खिजाब लगाता है—एक बार उसने सिपाहीजी से भी कहा था—जमादार साहब, दुनिया की निगाहों को जँचे तो हम कुछ भी लगा सकते हैं! जरूर उसने भी बुढ़ापे में शादी की होगी, पहले न सही।

भभीखनसिंह जान-बूझकर सुर्ती धीरे-धीरे तैयार कर रहे थे। तिवारी राउण्ड पूरा करके आने वाला था। यहीं बैठकर थोड़ी देर तक दोनों जने बात करेंगे और इत्मीनान से सुर्ती थूकते रहेंगे।

जरूर तिवारी जनरल वार्ड में नये कैदियों का हुलिया नाप रहा होगा। तिवारी की आदत है। एक भी नया कैदी सीखचों के अन्दर दिखायी पड़ा कि तिवारी उसकी जन्मकुण्डली के लिए बेताब हो उठता है। जनरल वार्ड में न सही, हाजत में कोई-न-कोई चूहा तिवारी को मिल जाता है···

तिवारी नहीं आया। भभीखनसिंह ने सुर्ती फाँक ली।

मौसम में आज पहली बार चाँद इतना फीका लगा था। कुहरा चाँदनी को खुलकर नीचे आने नहीं दे रहा था। पाकड़ के पत्ते बिजली की रोशनी में कल की तरह चमक नहीं रहे थे। साठ यूनिट के बड़े बल्ब के प्रकाश को जाने किसने डाँट-फटकारकर मद्धिम कर दिया था।

सामने जेल का गोदाम था। गोदाम की सफेद दीवार पर अपनी परछाईं देखकर भभीखनसिंह क्षण-भर के लिए रुके। गर्दन टेढ़ी करके परछाईं के अन्दर मूँछों को प्रतिबिम्बित होने दिया।

परछाईं में मूँछों की नोक देखकर उन्होंने हाथ उठाया ही था कि एक मोटा चूहा नजर आया। वह गोदाम की लम्बी दीवार से लगी हुई सूखी नाली में से होकर आगे बढ़ा था।

भभीखनसिंह ने लाठी सँभाली। फुर्ती से चूहे की ओर बढ़े। बिलकुल करीब पहुँचकर चूहे पर निशाना जमाया। लाठी के दोनों छोर लोहे के मोटे पत्तर से मढ़े हुए थे। निशाना ठीक जमा और चूहे की कचूमर निकल गयी।

भभीखनसिंह ने झुककर देखा, उसकी जीभ और दाँत निकल आये थे। छटपटा रहा था। गुस्से में सिपाहीजी चूहे को सम्बोधित करके बोले—"साला, पब्लिक का अनाज बर्बाद करता था! मैं अरसे से तेरी फिराक में था, चोर कहीं का।···अब कैसे दम तोड़ रहा है!"

समाज की सम्पदा को बर्बाद करने वाले उस दुष्ट प्राणी की कपाल-क्रिया करके भभीखनसिंह आगे बढ़े तो सीना तन गया था। अब वे इत्मीनान से मूँछों पर हाथ फेर रहे थे।

छोटा बाबू जाने क्यों आज ड्यूटी पर नहीं था। उसका विनोदी स्वभाव सिपाहीजी को बड़ा अच्छा लगता था। वह मखौल भी उनके लिए एक प्रकार का भोजन ही था। आज परिहास का यह 'उप-आहार' नहीं मिला था। बार-बार छोटे बाबू पर ध्यान जा रहा था···क्या पता, चाचा के साथ कहीं निकल गया हो छोटा बाबू। आज छोटे बाबू का अभाव भभीखनसिंह को पहली बार अखरा।

खाना पकाकर उगनी मठिया चली गयी थी। अकेले खाना खाते समय बार-बार उसकी याद आयी थी। खाते वक्त वह सामने मौजूद होती तो निश्चय ही डेढ़-दो रोटियाँ और खा गये होते। अब सिपाहीजी को लग रहा था कि भूखे हैं। छोटे बाबू की परिहास-प्रियता जो खुराक जुटाती थी आज वह भी नहीं मिली थी···कुछ भी हो, यह पढ़ा-लिखा नौजवान भभीखनसिंह की इज्जत भी तो करता था। मन-ही-मन उन्होंने हमेशा बेटा-भतीजा समझा।

पगला वार्ड में आज एक पागल कैदी लाया गया था। दो-चार दिनों के अन्दर ही उसे काँके भेजने वाले थे। एकाएक भभीखनसिंह के मन में यह बात आयी कि पगलवा से गप-शप करें।

अस्पताल वार्ड के निकट सेलों वाला वार्ड था। वहीं एक सेल के अन्दर उसे रखा गया था। दरअसल पागलों के लिए कोई अलग वार्ड नहीं था। पागल कैदी थे भी नहीं। कभी-कभार एक-आध पागल दो-चार रोज के लिए बन्द किया जाता था। उसकी मौजूदगी में कुछ लोग सेल को ही 'पगला वार्ड' कहते थे।

सेलों वाले गलियारे में चालीस यूनिट के दो बल्ब आमने-सामने लगे थे। एक छोर पर पागल था, दूसरे छोर पर कोढ़ी। इधर से पागल शोर मचाता तो उधर से कोढ़ी 'राम-राम' की गुहार करता!

सिपाहीजी सीखचों से सटकर खड़े हुए तो पगलवा कागजों के टुकड़े फैलाकर दीवाल की ओर मुँह किये बुदबुदा रहा था —थर्टीन, फोर्टीन, फिफ्टीन, सिक्सटीन ···कागज के टुकड़ों को इतने अधिक ताव से पटक रहा था मानो वे ताश की वजनदार पत्तियाँ हों।

भभीखनसिंह ने फर्श पर लाठी ठोंकी, कहा—"ऐऽऽ, क्या नाम है तेरा?"

उसने ठहाके लगाए। जरा देर के लिए आँखें फैलाकर सिपाहीजी को देखता रहा, फिर उठकर खड़ा हो गया। कैदियों वाले धारीदार ये कपड़े, निश्चय ही उसे आज ही दिन में दिये गये होंगे। कुर्ता इतनी ही देर में उसने फाड़ डाला था। सीने से नीचे दो हिस्सों में कुर्ता झूल रहा था। बाँहें लेकिन दुरुस्त थीं। पायजामा उधर कोने में पड़ा था। आदिमानव की सनातन भूमिका में वह भभीखनसिंह के सामने खड़ा था।

अपनी देहाती बोली में वह बोला—"वो देखो, सुपरिटेण्डेण्ट के लिए मैंने

अपना पायजामा उतार दिया है। तुम इसे लेते जाओ…"

पागल ने कोने में रखा हुआ पायजामा उठा लिया और उसे सीखचों के पास ले आया। लगता था, भभीखनसिंह को थमाकर ही दम लेगा।

"ससुर कहीं के !" भभीखनसिंह ने सुर्ती थूककर कहा तो उसने फिर ठहाके लगाये।

"ससुर नहीं, मैं तुम्हारा साला मानता हूँ अपने को। मेरी बहन भाग गयी थी, मैंने उसकी बड़ी खोज की। जरूर वह तुम्हारे साथ रहती है न ?"

यह सुनते ही भभीखनसिंह सुन्न पड़ गये। लगा कि काठ मार जायेगा। लगा कि लाठी हाथ से गिर पड़ेगी। लगा कि इतना पसीना छूटेगा, इतना छूटेगा कि खाकी कपड़े गीले हो जायेंगे, ऊपर का ऊनी स्वेटर भी भीग जायेगा। लगा कि भारी ओवरकोट जमकर पत्थर हो जायेगा…

और सचमुच सिपाहीजी ने पागल के चेहरे की ओर गौर से देखा…कहीं इसका चेहरा उगनी से तो नहीं मिल रहा है ? कहीं इसके शरीर का ढाँचा… मगर भाई-बहन भी तो अक्सर एक-से चेहरे वाले नहीं होते…

पागल ने फिर ठहाके लगाये और लोहे की सलाखों से आकर सट गया। दो छड़ों को दोनों हाथ से थामे, बड़ी-बड़ी आँखों से उसने भभीखनसिंह को देखा। वे चार कदम पीछे हटकर लाठी के सहारे खड़े हो गये थे। कैदी ने चुमकारकर उन्हें पास बुलाया। कहने लगा—"तुमने ठीक कहा था, मैं तुम्हारा ससुर ही लगता हूँ। मेरी बहन-वहन नहीं कभी भागी। बहन भागती तो मैं उसे गोली मार देता…" उसने बाँहें उठाकर हथेलियों को सिकोड़ लिया, उँगलियों की ऐसी मुद्रा बनायी मानो पिस्तौल चलायेगा।

सिपाहीजी ने सोचा, इसकी कौन बात सच थी। पहली या दूसरी।

फिर उन्होंने हनुमानजी की याद करके लाठी पटकी। मन के भ्रम को झाड़कर हल्के हुए—इस ससुर की बातों को सच मानना पागलपन होगा…

लौट पड़े। निश्चय किया, जब तक पगलवा रहेगा, इधर नहीं झांकेंगे।

लगता था कि अब वे भी जनरल वार्ड की ओर जायेंगे। लेकिन पैरों ने उन्हें जनाना वार्ड की ओर बढ़ा दिया। क्या पता वह हत्यारिन कल-परसों तक चली जाये !

बीच में ही तिवारीजी मिल गये। बोले—"गण्डक के किनारे डाका पड़ा था न ? उस मुकदमे में सोलह आदमियों को आज अदालत ने सजा सुना दी। सब के सब जनरल वार्ड में पहुँचा दिये गये हैं। मैं तुम्हें खोज रहा था भभीखन भाई, चलो उनकी बातें सुनें। मैं तो वहीं था। दो-चार तो उनमें से पढ़े-लिखे मालूम पड़त है·

भभीखनसिंह ने कहा—"तुम चलो, मैं दस मिनट में आता हूँ। बस, जनाना

वार्ड बाकी रह गया है।"

तिवारी ने डिबिया से तैयार सुर्ती निकाली। हथेली आगे बढ़ाकर लेने का आग्रह किया। भभीखनसिंह ने आगे बढ़कर चुटकी-भर खैनी उठा ली, उसे अपने होंठों के हवाले किया। आँखें नचाकर बोले—"नयी लाये हो न? मैंने पाकड़ के नीचे बड़ी देर तक तुम्हारा रास्ता देखा···"

फिर उन्होंने तिवारी से चूहे वाली बात बतायी। आँखें चमक रही थीं। साथी की इस खुशी को तिवारी ने उत्साह में नहीं लिया। बोला—"अपना क्या बिगड़ता था? नाहक तुमने एक जीव की हत्या कर दी!"

भभीखनसिंह की भौंहों में तनाव पड़ गया। चलते-चलते बीच में ही पैर ठिठक गये। सीने का पूरा बोझ लाठी पर डालकर उन्होंने तिवारी की ओर पैनी निगाहों से देखा। कहने लगे—"सुनो तिवारी, देश की दौलत को नुकसान पहुँचाने वाला हमारा वैसा ही दुश्मन है जैसा कि हमारी सीमाओं के अन्दर घुस-पैठ करने वाला। हम न उसको छोड़ेंगे, न इसको छोड़ेंगे।"

तिवारी ने अपनी लाठी को बाँहों के सहारे पीठ पर उलझा लिया और एक खास अदा में आगे बढ़ता हुआ बोला—"चूहों पर अपनी बहादुरी दिखाना बेकार है। कहते हैं, चूहो वाले घर में लक्ष्मीजी का निवास रहता है···"

"लक्ष्मीजी का नहीं, दलिद्रा का निवास रहता होगा!"

"कैसा भी कहो, तुमने अच्छा नहीं किया भभीखन भाई!" तिवारी ने थूकते हुए कहा। भभीखनसिंह ने उसकी ओर देखा। सोचने लगे—ऐसे लोगों का वश चले तो सारा देश चूहों के हवाले कर दें···!

इस सिलसिले में भभीखनसिंह को उगनी की वह बूटेदार चोली याद आयी जिसे चूहे ने काट दिया था। सुर्ख ग्राउण्ड पर सफेद बूटों वाली यह नफीस चोली मोरछाप नीले किनारों वाली गुलाबी साड़ी के साथ ही पाकिस्तान के पूर्वी सीमान्त के पास रहने वाले भानजे की तरफ से नवेली मामी के लिए आयी थी। उतनी अच्छी चोली छूकर भभीखनसिंह ने जीवन में पहली बार देखी थी और मन-ही-मन उसे बेहद पसन्द किया था। उगनी ने लेकिन दो ही चार बार वह चोली पहनी होगी। जाने कैसे चूहे ने उसे काट दिया! उगनी को इसका रत्ती-भर अफसोस नहीं हुआ। गीता ने अपनी ओर से इतना जरूर कहा था—"चाचा, घण्टाघर वाले मार्किट से चोली का कपड़ा चाची के लिए मँगवा दीजिए, वे खुद तो कहेंगी नहीं।" पतिदेव लेकिन इस इन्तजार में थे कि पत्नी अपने मुँह से कहेगी तो एक क्या, चार-चार चोली के लायक कपड़ा मँगवा देंगे, वही सफेद बूटों वाली सुर्ख ग्राउण्ड का कपड़ा···यह नहीं हो सका क्योंकि उगनी ने अपने मुँह से नहीं कहा था। बाकी दस औरतों ने जिस चोली की प्रशंसा की थी, उसी के बारे में उगनी की यह चुप्पी कभी भभीखनसिंह की समझ में नहीं आयी! जो

हो, चूहे बड़े बदमाश होते हैं। भभीखनसिंह का वश चले तो एक भी चूहा कहीं भी दिखायी न पड़े···!

तिवारी जेल की दीवारों के किनारे-किनारे अन्दर की पूरी परिक्रमा के लिए आगे बढ़ा। भभीखनसिंह चुपचाप जनाना वार्ड की ओर चले।

जूँओं ने उसे परेशान कर रखा था। जाने कब से बाल नोच रही होगी! फाटक की ओर रुख किये उकड़ूँ बैठी थी और दोनों हाथ बालों के जंगल में उथल-पुथल मचा रहे थे। दस में से एक भी उँगली आराम नहीं ले रही थी। दाँतों पर दाँत जमाकर वह उस मोर्चे पर भिड़ी थी।

भभीखनसिंह ने देखा तो उन्हें दया आयी उस पर। कहने को आमने-सामने बैठी थी, लेकिन परेशानी के मारे आपे में नहीं थी। दो-चार रोज बाद सेण्ट्रल जेल ले आयेंगे, तब शायद इसके बालों की सफाई का मौका आयेगा।

सिपाहीजी ने सोचा—सेण्ट्रल जेल का डाक्टर अगर हमदर्दी से न भी काम ले, खाली समझदारी का भी परिचय दे तो इस औरत को जूँओं से छुटकारा मिल जाये। तेल-साबुन के इस्तेमाल में झमेला रहेगा, इन बालों को कटवा ही दिया जाये! दस साल बाद रिहा होगी तो अपना शौक-सिंगार कर लेगी, चार-छ: महीने में बाल फिर बढ़ा लेगी और फैशन मारेगी।

कमरे में आधी दूर तक बिजली की रोशनी पहुँच रही थी! जहाँ अँधेरा था, उधर भी प्रकाश का आभास था। सलाखों की लम्बी परछाइयों को चीरते हुए दो झींगुर गश्त लगा रहे थे, भभीखनसिंह की निगाहों ने उनका पीछा किया। एक काला चींटा अँधेरे से आकर रोशनी की तरफ बढ़ा तो झींगुरों से उसका मुकाबला हुआ। चींटे की काली छाया सामने सरक आयी तो एक झींगुर क्षण-भर के लिए सहमा-सा रुका रहा, फिर बगल काटकर निकल गया। दूसरे ने भी वैसा ही किया।

भभीखनसिंह ने सोचा—जीव-जन्तु चाहे कितने छोटे हों, अपने काम लायक समझदारी उनमें जरूर रहती है। झींगुर चाहें तो चींटे को घेरकर परेशान कर सकते हैं। लेकिन उन्हें नाहक छेड़छाड़ पसन्द नहीं। बाघ भी भूखा रहता है तभी हमला करता है या फिर घबराहट में पड़कर पंजा मार बैठता है···झींगुर देर तक गश्त लगाते रहेंगे। चींटा उनके बीच से आता-जाता रहेगा। लगता नहीं है कि वे आपस में उलझेंगे।

पाकिट से तम्बाकू निकालकर वे उसे हथेली पर खोटने लगे। लाठी फाटक की बगल में दीवार से टिका रखी थी। उस औरत से उन्होंने पूछा—"नहाती क्यों नहीं? बालों में चिकनी मिट्टी मसल के कभी-कभी नहा लिया करेगी तो इस तरह सर नहीं खुजलाना पड़ेगा।···"

"ईह, जाड़े में इन्हीं के कहने से कोई नहा लेगी।" वह तुनक के बोली और

पलटके बैठ गयी।

"बड़े जमादार से कहकर मैं तेरे लिए पानी गरम करवा दूँ तो?"

इसका उसने कोई जवाब नहीं दिया। सिपाहीजी समझ नहीं पा रहे थे कि कैसे दस साल यह जेल मे रहेगी, निश्चय ही बीमार पड़ेगी और कमजोर होती जायेगी···टी० बी० भी हो सकती है, मर भी सकती है! नहीं, मरेगी नहीं। ऐसी औरतें भारी कठजीव होती हैं। सूखकर लक्कड़ बन जायेगी, फिर भी प्राण-पखेरू को साँसों में रोके रहेंगी। मर्द इतना नहीं झेल सकता, वह 'टन्न' से टूट जायेगा··· दस वर्ष बाद जब वह जेल से निकलेगी, दस-बीस बाल जरूर पक चुके होंगे। नहीं भी पक सकते हैं। भभीखनसिह को मौसी सत्तर पार कर गयी, उसके बहुत थोड़े बाल पके हैं। पचास की थी तब तो एक भी रुपहला बाल सिर पर नहीं था··· यह साँवली सूरत की पतली-छरहरी औरत है, इसके बाल पचास तक पकने लग जायेंगे। ठिगनी होती तो मौसी की तरह बुढ़ापे को साठ साल की उम्र तक अँगूठा दिखाती। तो जेल से निकलने के बाद इसका क्या होगा? यह अपने को गुण्डयों के बाजार में पहुँचा देगी? उमर ढल चुकी होगी, शादी तो कोई इससे करेगा नहीं!

भभीखनसिह के ध्यान में उगनी आ गयी थी! लगा कि पैंतीस-चालीस वर्ष की उगनी सामने खड़ी है, भीख माँग रही है। चेहरे का पानी उतर चुका है, आँखें धँसी हुई हैं। मैला-फटा आँचल फैलाकर वह कुछ माँग रही है···

कल्पना की यह उगनी सिपाहीजी को अच्छी नहीं लगी। भला, उगनी आगे संकट में क्यों पड़ेगी? भभीखनसिह के नाम पर पुश्तैनी जायदाद कम नहीं है। चार बीघा जमीन है, आम का बगीचा है, छोटा-सा पक्का कुआँ है, दो बैल हैं, एक भैंस है, खपरैल का मकान है···यह दूसरी बात है कि छोटा भाई खोटी तबीयत का है। भाई की नीयत नहीं है कि भभीखनसिह कभी गाँव आके रहें, अपने हिस्से की जायदाद सँभालें। लड़का हो चाहे लड़की, अगले आसिन में भरी गोद वाली उगनी को साथ लेकर वे अपने गाँव पहुँचेंगे और चार-छः महीने के लिए परिवार को वहीं छोड़ आयेंगे। अपने गँवई जीवन की भावी असुविधाओं पर सोचते-सोचते उन्होंने सुर्ती थूकी और लाठी उठाकर पाछे लौटे।

(छोटा भाई भारी दुष्ट है। उसने कहीं भाभी को अपनी मुट्ठी में कर लिया तो जुलुम होगा··· जनाना की जात, क्या ठिकाना है इनका? सिखाने-पढ़ाने पर अपने मर्द को उगनी जहर नहीं देगी?

(नहीं, उगनी जहर नहीं देगी। और चाहे कुछ करे, यह भभीखनसिह की जान नहीं लेगी। कोख में सात महीने का बच्चा लेकर वह भाग भले ही जाये मगर किसी को जहर नहीं खिला सकती। खुद जहर खाके हमेशा के लिए सो जायेगी, सो होगा···

(लेकिन उगनी को लेकर वे देहात जायेंगे ही क्यों ? क्या जरूरत है देहात लौटने की ? जमीन-जाल बेचकर रकम ले आयेंगे, दो कट्ठा जमीन यही कहीं आसपास खरीद लेंगे। आहिस्ता-आहिस्ता ईंटों का जुगाड़ होगा, ढाई-तीन कमरों वाला घर क्यों नहीं तैयार होगा ? ऊपर छत न सही, खपरैल ही सही।

(उगनी माँ बन जायेगी। भभीखनसिंह तीन चाबियों का गुच्छा अपने जनेऊ में नहीं बाँधेंगे, उसे वे अपनी घरवाली के हवाले कर देंगे। रामजी की दया होगी, दूसरी बार भी उगनी के पैर भारी होंगे और तीसरी बार भी···नहीं, ज्यादा बच्चे न हों ? एक लड़का, एक लड़की···और बच्चा तो बिलकुल नहीं चाहिए। दो से ही नेम-धरम निभ जायेगा।

(ज्यादा तो नहीं हैं, ढाई-तीन हजार रुपये जेल के खजाने में जमा कर रखे हैं। बेर-वक्त पर रकम काम आयेगी। उगनी आयी है तो खर्चा भी बढ़ा है। पहले तीस-चालीस में खींच ले जाते थे, अब उतनी रकम और लग जाती है। किसी महीने में पचहत्तर, किसी में सत्तर, और कभी-कभी अस्सी भी बच जाते हैं।

(तिवारी की बीवी ने कहलवाया था। उगनी अस्पताल जाएगी और पाँच-सात रोज वहाँ रहेगी, इसमें रोजाना दस रुपये का नोट जरूर उड़ेगा। जच्चा-बच्चा के लिए आगे भी महीनों तक पथ-परहेज और पुष्टई का काफी सर-सामान लगेगा···भभीखनसिंह अभी से तैयार हैं। मुट्ठी खोलनी होगी तो बिना किसी हिचक के खोलेंगे मुट्ठी। पिछले साल माँ मरी थी, श्राद्ध में पन्द्रह सौ लग गये। चार वर्ष पहले भानजी का ब्याह हुआ तब भी एक हजार का बोझा उठाना पड़ा था।···

बिजली की रोशनी में अपनी परछाईं से बातें करने का जी कर रहा था भभीखनसिंह का···एक उड़न्तू चिड़िया को पकड़ लाये थे, उसे घोंसले में डाल रखा था। वह अण्डा देने वाली थी···कहीं वह बीच मे ही फुर्र से उड़ तो नही जाएगी ? कहते हैं, अण्डा देना होता है तो चिड़िया घोंसला नहीं छोड़ती। उनकी गौरैया अब कहाँ जाएगी घोंसला छोड़कर ? उड़ना होता तो पहले ही उड़ चुकी होती···

भभीखनसिंह को याद आया : कैसे क्वार्टरों में अफवाह गर्म हो उठी···उगनी का माथा खराब है ! और कैसे, अफवाह अपने-आप ठण्डी पड़ गयी !

भभीखनसिंह को याद आया : कैसे महीनों तक वह काबू में नहीं आयी··· कैसे अगले दो दिन, दो रात उगनी रोती रही, भूखी रही दो दिन, दो रात ! और कैसे तिवारी की बड़ी बेटी (गीता) आरजू-मिन्नत करके उसे खाना खाने के लिए मना सकी !

भभीखनसिंह को याद आया : मठिया के बाबाजी ने कैसे जजमानिन के ग्रहों की शान्ति के लिए रामायण का 'नवाह' पाठ किया था ! और कैसे तिवारी ने आसिन की 'नवरात्रि' में दसों दिन चण्डी का पारायण करवाया था। और कैसे

हवन के अन्त में सिपाहीजी और उनकी घरवाली के हाथों पूर्णाहुति दिलवायी थी अग्निकुण्ड में !

भभीखनसिंह को याद आया : कैसे कातिक की पूरनमासी के दिन तिवारीजी की बीवी ने शुभ समाचार सुनाकर इन कानों में अमृत घोल दिया था ! और, कैसे वे घण्टाघर जाकर सेर-भर रसगुल्ले और गुलाब-जामुन उठा लाये थे···और कैसे उगनी ने मिठाई का एक टुकड़ा भी अपने मुँह के अन्दर जाने नहीं दिया था···

सोचते-सोचते माथा फटने लगा।

सिपाहीजी ने तय किया, आज अब राउण्ड नहीं देंगे। अस्पताली वार्ड के चबूतरे पर जाकर लेट जायेंगे। नींद नहीं भी आयेगी तो भी आँखें मूँदे पड़े रहेंगे।

सिपाहीजी को थकान महसूस हो रही थी। बम्बे से अंजुरी भिड़ाकर उसमें मुँह लगा दिया, जी-भर पानी पीकर अस्पताल वार्ड की ओर बढ़ आये। अभी-अभी घड़ियाल को एक बार ठोंका गया था।

ऊँची दीवार को पार करके मशीनी चिराई की अविराम सर्राहट हमेशा की तरह इस समय भी आ रही थी। मेलों की तरफ से कुहरे को चीरकर फिल्मी धुनों के मिक्सचर अभी-अभी तरंगित हो उठे थे, यह चमत्कार जरूर ही पागल के गले का था।

वह भी क्वार्टर था। यह भी क्वार्टर है।

वह क्वार्टर था, लाल ईंटों वाला। पुराने ढर्रे का। तंग। उसमें इतने बड़े-बड़े जंगले कहाँ थे। सीमेण्ट का ऐसा बढ़िया फर्श कहाँ था उसमें ! न नल था, न नहाने का घर, न पाखाना। पचास वर्ष पहले का बना होगा।

यह भी क्वार्टर है। बाहर सफेद, भीतर सफेद। नये ढर्रे का, खुला-खुला। खूब हवा आती है, धूप भी खूब आती है। फर्श इतना अच्छा, इतना चिकना कि तबीयत खुश हो जाती है देखते ही। पानी की इफरात। बढ़िया बाथरूम। फ्लश वाला पाखाना। हाल-हाल बन के तैयार हुआ है। चार ही छः महीने हुए हैं। भाभी की छोटी बहन के पति के नाम अलाट किया गया है। वह ओवरसियर है, ढाई सौ रुपये पाता है···

भाभी ने खिलखिलाकर कहा—"जंगल में नहीं भगा लायी हूँ। अठारह सौ क्वार्टर हैं। यहाँ इन्दिरा अकेली नहीं है। हजारों इन्दिराएँ बाल-बच्चों के साथ रहती हैं। मेरी बहन के तो एक ही लड़का है। वह तुम्हें परेशान नहीं करेगा। परेशान करेगा कामेश्वर···मगर कामेश्वर तो जेल से इन्सान बन के बाहर निकला है, वह क्या किसी को परेशान करेगा !"

उगनी बड़े गौर से भाभी की बातें सुन रही थी। आज चेहरा खिला हुआ था। रास्ते की थकान कल ही उतर चुकी थी। भाभी के हाथ में दातुन थी, वे उगनी के कन्धों पर झुक आयीं। बोलीं—"बाप रे ! परसों और कल कितना सोई हो तुम ! कुम्भकर्ण की तरह ! नहीं ?"

प्रश्न में भाभी की आँखें बड़ी-बड़ी हो गयीं।

"आज भी सोऊंगी," उगनी ने कुर्सी की पीठ के सहारे खड़ी भाभी को अपनी उल्टी बाँहों के घेरे में ले लिया और कहा—"सोती रहूँगी, शाम तक सोऊंगी। देखना मुझे कोई जगाए नहीं।"

उसके माथे पर अपनी ठोडी टिकाकर भाभी बोलीं, फुसफुसाकर—"कामेश्वरी को और कौन जगायेगा, कामेश्वर ही जगायेगा !"

"कामेश्वरी कहाँ, मैं तो उग्रतारा हूं !"

"एक देवी के सौ नाम, हजार नाम ! मेरे नाना भारी पण्डित थे, वही कहा करते थे…"

"नहीं भाभी, तुम लोग मुझे सीधी-सादी उगनी ही रहने दो ! न उग्रतारा, न कामेश्वरी, न देवी…"

"नाम में क्या रखा है पगली ?"

स्टोव पर केतली थी। चाय का पानी खौल रहा था। अलमूनियम की छोटी-सी परात पड़ी थी स्टोव के पास ही, गुंधा आटा ढका था भीगे कपड़े से।

पूस का सवेरा। जाड़े की धूप। दक्खिन रुख का बरामदा। नाश्ते की तैयारी।

सुबह-सुबह महरी आयी थी, बर्तन धो-पोछ के रख गयी, किचन और आगन का फर्श धो गयी है। उगनी छः बजे ही नहा चुकी थी।

भाभी बाथरूम के अन्दर से बोलीं—"कामेश्वर को देर भी लग सकती है, हम क्यों न नाश्ता कर लें ? तुमको भूख नहीं लगी है ? मुझे तो जोरों की लगी है। दो-चार परांठे तल लो। आले में मर्तबान होगा। मिर्च का अचार निकाल लो !"

उगनी स्टोव के पास बैठ चुकी थी।

पहला परांठा उतारा ही था कि बाहर खट-खट की आवाज हुई।

दूध वाला था। मूंछो वाला अधेड़।

उगनी पतीला लेकर आगे बढ़ी, ध्यान में बाबू भभीखनसिंह आ गये थे। सोचा, रोज दूध देने आयेगा और रोज ये मूंछें सिपाहीजी की याद दिलायेंगी। रंग लेकिन इसका साँवला है, सिपाहीजी का गेहुँआँ। उनकी डील-डौल भी अच्छी है, नाक-नक्श भी अच्छे हैं… भाभी ने कल ही इससे कह दिया है। हाँ, अभी सेर-भर दूध रोज देता जायेगा। जेठ के बाद बहुत दूध लेना पड़ेगा, महीने-दो महीने जच्चा

दूध-घी ही के सहारे तो रहती है···

दूध देकर ग्वाला चला गया तो उगनी ने फाटक बन्द किया। भाभी अब भी बाथरूम के अन्दर थी।

पराँठे और मिर्च का अचार। यह तो होगा नाश्ता, खाना क्या-क्या बनेगा? उगनी अपने मन से तय करेगी कि क्या-क्या बनेगा? नहीं, भाभी जैसा बतायेंगी वैसा किया जायेगा।

आलू और बैंगन कल के पड़े है। आज शायद भाभी गोभी का फूल पसन्द करें। उगनी को सेम की फलियाँ याद आ रही थीं, हल्के हरे रंग की छोटी-छोटी फलियाँ सेम की। पिसी हुई सरसों और आम की सूखी फाँकें डालकर। भारी बखेड़ा होगा लेकिन, सरसों कौन पीसेगा···?

भाभी नहा-धोकर निकल आयीं।

बालों को माथे पर लपेटकर जटा-जूट बना लिया था, बड़ी अच्छी लग रही थीं। उगनी ने क्षण-भर उन्हें देखा, बोली—"भाभी, इस वक्त तुम्हारे गले में रुद्राक्ष की माला होती तो···"

"तो मै गौरा पार्वती लगती न?" भाभी हँसीं।

"हाँ भाभी, मैं भी यही सोच रही थी!"

भाभी कपड़े पहन आयी, पीढ़ा खींचकर बोलीं—"भूख लग आयी मुझे तो!"

"तो लो न! कब से बुला रही हूँ···"

"रात लम्बी होती है। सवेरे-सवेरे पेट कुलबुलाने लगता है।"

"मेरा पेट कहाँ कुलबुलाता है सवेरे-सवेरे?"

"हूँ···"

भाभी मुसकरायी। उगनी समझ गयी। उसका पेट किसी और वजह से कुलबुलायेगा·

पहला पराठा खत्म करके भाभी ने पानी पिया।

"अभी दो और।"

"बस?"

"मगर तुम कामेश्वर को आने दो!"

"अच्छा भाभी! क्या-क्या बनेगा अभी?"

"गोभी का फूल आएगा, आलू है ही। भात-दाल सिझा लेना। रोटी अभी नहीं, रात को पकाना।"

"मिले तो आँवले मँगवा लेना भाभी!"

"चटनी के लिए न! तुम्हें तो इन दिनों चटनी-फटनी चाहिए ही···!"

अन्त में चाय का दौर चला। उसमें उगनी भी शरीक हुई।

भाभी 'आज' लेकर बैठी ही थीं कि कामेश्वर आ गया। झोले में सामान था।

उगनी को झोला थमाकर वह भाभी के सामने आ बैठा।

"पहले नहा लो !" भाभी बोलीं।

"बाद में नहा लूंगा।"

"नहीं, नहा ही लो बाबू !"

"लो अभी नहा आता हूँ !"

भाभी ने दोनों को आमने-सामने बैठा दिया। नीचे फर्श पर काला कम्बल बिछा था। दोनों एक-दूसरे की ओर रुख किए बैठे थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि भाभी यह कर क्या रही हैं !

इधर-उधर आठ-दस अगरबत्तियाँ सुलग उठीं। कमरे के अन्दर चन्दन का सौरभ फैलने लगा। जाड़े की खुशगवार धूप तिरछे पड़ रही थी और बन्द होने पर भी रोशनदान के शीशे अन्दर प्रकाश की परछाइयाँ बरसा रहे थे, साथ-साथ सुखद गर्मी भी आ रही थी।

ऊपर फ्रेमों में मढ़े तीन-चार फोटो टँगे थे। सभी-के-सभी भाभी की बहन और बहनोई के पारिवारिक चेहरे थे, इनमें से किसी को उगनी ने देखा नहीं था। दो खूबसूरत कैलेण्डर भी निगाहों को अपनी तरफ खींच रहे थे।

कामेश्वर ने हँसकर पूछा—"कौन-सी कसरत करवा रही हो भाभी ? बता भी तो दो !"

उगनी गम्भीर हो रही थी। उसने भी भाभी की ओर देखा।

सिन्दूर-भरी कटोरी सामने रखकर भाभी बोली—"आज यह विधि पूरी होगी। मैं पुरोहित हूँ। लो, चुटकी में सिन्दूर लो और उग्रतारा की सीथ भर दो बाबू ! उठो···"

कामेश्वर ने चुपचाप भाभी की आज्ञा का पालन किया।

उगनी की आँखों में इतने अधिक आँसू छलक आये थे कि बेचारी को कुछ भी दिखायी न दे रहा था।

दोनों ने उठकर भाभी को बारी-बारी से प्रणाम किया, अच्छी तरह पैर छूकर। भाभी ने आशीष दी—"दीर्घायुर्भव ! सौभाग्यवती भव !!" दाहिना हाथ उगनी और कामेश्वर की पीठ पर फिरता रहा।

जाने कहाँ से भाभी दो अँगूठियाँ निकाल लायीं, बोलीं—"एक-दूसरे को पहना दो !"

फिर मिसरी का एक-एक टुकड़ा थमा दिया।

"इसका क्या होगा ?" कामेश्वर ने पूछा।

भाभी ने कहा—"उसके मुँह में डाल दो !"

"वाह !" कामेश्वर विनोद में बोल गया—"यह कैसे होगा ? वह तो मिठाई का अपना हिस्सा चाँपे हुए है और मैं यह भी उसे दे दूँ ? अच्छा इन्साफ है आपका,

शाबास मेरी भाभी !"

कामेश्वर की यह शरारत भाभी को अच्छी लगी। खिलखिलाकर हँसती रहीं। बोलीं—"अच्छा हुआ ! लो, अब एक-दूसरे के मुँह के अन्दर मिसरी डाल दो। जल्दी करो···तुम्हें भूख भी तो लगी है ! उगनी तो खैर लड़की ठहरी, जुबान नहीं खोलेगी।"

उगनी सचमुच चुप रही।

उन्होंने एक-दूसरे के मुँह में मिसरी का टुकड़ा डाल दिया।

"अब जाओ, तुम लोग नाश्ता कर लो !" भाभी ने कहा—"आसन-वासन मैं उठा लेती हूँ।"

'ऐसी भी क्या हड़बडी थी कि तुम्हें शाम की ट्रेन से जाना ही था !···'

भाभी के बारे में सोचने से अपने को किस तरह रोके बेचारी उगनी ? आज ऐसी घटना घटी थी, जिसकी कल्पना का आभास तक उगनी को नहीं था ! आज एक पुरुष ने गर्भिणी नारी के सीमन्त में सिन्दूर भरा था ! धोखे मे ? नहीं, जान-बूझकर। उसके होशो-हवास दुरुस्त थे, विवेक सजग था, आवेग या आवेश चेतना पर हावी नहीं था। सभी बातें उसे मालूम थीं।

हाँ, सभी बातें मालूम थीं कामेश्वर को, फिर भी उसने उगनी की माँग में सिन्दूर भरा है !

कामेश्वर ग्यारह बजे तक जागता रहा। बातें करते-करते पलकें झिपने लगीं। उगनी ने कहा—"अब तुम सो ही जाओ ! सारा दिन भटकते रहे हो···"

उसकी एक हथेली को अपने सीने से लगाकर कामेश्वर ने आधी मुँदी आँखों से उसे देखा और आहिस्ता से कहा—"हाँ, नींद आ रही है। लड़के आँख खुल जायेगी तो मैं तुम्हें जगा दूँगा।"

"शायद मैं तुम्हें जगा दूँ !" उगनी ने कहा और मुसकराई। उसका माथा अपने तकिए पर आ गया और कामेश्वर को अगले ही क्षण नींद आ गयी।

नेपाली पहरेदार राउण्ड पर है। यह शायद दूसरी राउण्ड है। रात को कालोनी की हिफाजत के लिए यह व्यवस्था की गयी होगी। एक ही नहीं, कई नेपाली होंगे। उगनी का जी करता है कि पहरुआ ठीक उस जंगले के सामने से गुजरे। लेकिन वह इस ओर कहाँ आ रहा है ! नहीं, आ रहा है।

स्क्वायर के बीचोंबीच छोटी सड़कें एक-दूसरी को काटती आगे निकल गयी हैं। दूसरे स्क्वायरों का भी यही ढाँचा है। ईंट और कंक्रीट और। सीमेण्ट और लोहे की छड़ों के सहारे तैयार हजारों इकतल्ले क्वार्टरों की यह नयी आबादी गाँव नहीं है तो शहर भी नहीं है। उगनी के लिए यहाँ का सब कुछ नया है, पुरानी एक भी वस्तु यहाँ नहीं है। यहाँ की निर्जनता भी नयी है, सन्नाटा भी नया है। झींगुरों

की झंकार में गाढ़ापन भरने वाला वह अन्धकार कहाँ गया है ? अन्धकार में इंगित भरने वाला वह जुगनू कहाँ गया ?

आहिस्ता कुर्सी उठा लायी और जंगले के सामने बैठ गयी। उगनी को अभी काफी देर तक नींद नहीं आयेगी। वह चाहेगी कि बचपन से लेकर हाल तक बहुत कुछ सोच जाये अपने बारे में। शायद ही सोच पायेगी।

आज पिछली स्मृतियाँ उस तरह उगनी के मन में नही आ रही हैं, छिटपुट धब्बों की तरह उभरती हैं और अगले ही क्षण मिट जाती हैं। आगे की सुखद कल्पनाओं के रंगीन गुब्बारे ध्यान मे उभरते हैं, उभरते ही चले जाते हैं···नवजात शिशु के मुलायम हाथों की गुलाबी मुट्ठियाँ बहुत सारे सूतों को मजबूती से थामे हुए हैं, उन्ही के सहारे गुब्बारे हवा में फहरा रहे हैं···

जी कर रहा है, कालोनी मे थोड़ी देर के लिए अँधेरा छा जाये और जेल का घण्टा बजे—एक, दो···

(हाँ, एक···दो···तीन···चार···

(सिपाहीजी, आप उस रात चार बजे लौटे होंगे तो क्वार्टर के दरवाजे के सामने फर्श पर लाठी बजी होगी 'टन्न' से !

(दरवाजा नही खुला होगा···

(फिर बजी होगी लाठी···

(फिर आपने हुँकार भरी होगी, गले को साफ किया होगा···

(और अन्त मे झुँझलाकर अपने साँकल को टटोला होगा ! नही सिपाहीजी ?

(अलीगढ़ वाला वह ताला आपकी अपनी पसन्द का है, दस साल पुराना है। आपने तो नही, तिवारी की बीवी ने मुझे बतलाया था। दो चाबियाँ थी। उस रोज शाम को आपके ओवरकोट की पाकिट में एक चाबी मैंने डाल दी थी।

(परेशानी नही हुई न ? ताला नही न तोड़ना पड़ा ?

(देखिए सिपाहीजी, आपकी कोई चीज मैं नहीं लायी हूँ···

(मोरछाप नीले किनारों वाली वह गुलाबी साड़ी अब आप क्या करेंगे ?

(अगले सवेरे तिवारी को चाय नही मिली होगी और गीता बहुत रोई होगी !

(गीता मेरी, तू बहुत रोई न ?

[हाँ, चाची !···नही चाची, मैं तुमसे नहीं बोलूँगी ! कितनी निठुर हो तुम···

(हाँ, गीता, मैं बड़ी निठुर हूँ ! बड़ी बेरहम ! मैं तुझे अभी और रुलाऊँगी गितिया !

[जी नहीं भरा है ?

(जी भरेगा मेरा ? आँसुओं से ? इतनी जल्दी ? अच्छा भाई, गीता एक बात पूछूँ ?

[पूछो न चाची ! जरूर पूछ लो···मैं सब कुछ बतला दूँगी। मैंने कभी तुमसे

कुछ छिपाया नहीं चाची !

(तेरी माँ इन दिनों तुझसे इतना लड़ती क्यों है ? शादी के बाद उसका रवैया बदला है शायद !

[मैं क्या जानूँ !

(हुँ ··बाप तो बेटी की इतनी तारीफ और माँ इस तरह बेटी से लड़ती रहे ! मइया री !

[चाची, तुम क्या जानो पिता का प्यार !

(मगर मेरी माँ तो मुझसे कभी लड़ी नहीं···

[क्या कहा ? माँ ? तुम्हारी माँ जीती है ?

(हूँ, जीती है ! जरूर जीती है ! मैंने कब तुझसे कहा कि नहीं जीती है ?

[हाँ, कहा था !

(मुझे बहुत झूठ बोलना पड़ा···

[अब आगे झूठ नहीं बोलोगी ?

(अब क्यों झूठ का दामन पकड़ूँगी ?···

किचन के बर्तन गिरने की आवाज आयी तो उगनी का ध्यान टूटा।

जरूर बिल्ली अन्दर गयी होगी। मछली का सालन बना था। चितकबरी दीवार पर से शाम को भी कूदी थी। बिल्ली की वह छलाँग उगनी को अच्छी लगी थी। किचन में किवाड़ खुली रह गयी थी क्या ? हाँ, यही हुआ होगा। भाभी शाम की ट्रेन पकड़ने के लिए कामेश्वर के साथ स्टेशन रवाना हुईं तो उगनी क्वार्टर के बाहर रिक्शे तक गयी। रिक्शा चला तो अन्दर चली आयी। खिड़की से देखती रही।

बरामदे का स्विच ऑन हुआ।

बिल्ली भाग चुकी थी। उसे और तो कुछ मिल नहीं सका, काँटों पर ही खेल गयी होगी। हाँ, रेहू का आधा कंकाल अवश्य था जिसे भाभी ने चूस-चबाकर छोड़ दिया था। इससे चितकबरी का काम चला होगा।

उगनी ने किचन की किवाड़ी अच्छी तरह लगा दी।

पीतल की बाल्टी में पीने का पानी भरा था, बरामदे के कोने में। आधा गिलास पानी पिया। अन्दर पहले कमरे में पलँग के नजदीक गयी। बरामदे की बिजली का आलोक तो नहीं, उसका दबदबा अवश्य था अन्दर भी। उगनी ने झाँककर कामेश्वर के चेहरे को देख लिया, साँसों की रफ्तार सहज थी और नथुने मशीनी हरकत में फूल-सिकुड़ रहे थे।

उसने बार-बार कामेश्वर को देखा।

ऊनी कम्बल कमर तक थी। वह कुर्ता पहने ही सो गया था। जाकिट जरूर उतारकर खूँटी में टाँग दी थी।

उगनी उसके चेहरे की ओर देखती रही।

देखती रही, सोचती रही।

सोचती रही, देखती रही···

आज वह नये सिरे से सुहागिन बनी थी। उसकी माँग में आज नये सिरे से सिन्दूर भरा गया था। अपनी पसन्द का युवक ही उसका पति बना था आज। कल तक कामेश्वर उगनी का प्राणवल्लभ था, आज वह उसका सब कुछ था। अन्दर पल रहे चार महीने के भ्रूण को उसकी निश्छल आशीष मिल गयी थी··

मठिया की बगीची में बातें करते-करते दूसरी बार भी उगनी रो पड़ी थी। रोती रही थी। आंसू रुक ही नही रहे थे—

(तुम इन आँसुओं को पोंछते-पोंछते थक गये थे न ?

[कहाँ ! मैं कहाँ थका था ! तुम बड़ी मुश्किल मे चुप हुई !

(कितनी बडी बात कही थी तुमने ! कितना बड़ा दिलासा दिया था !

(अब यों घुल-घुलकर मुसकराओ नहीं ! उस रोज पछतावे की भट्ठी मेरे अन्दर कैसे धू-धू करके जल रही थी और कैसे तुमने उसे ठण्डा कर दिया था !···तुमने कहा था, गर्भ रह गया है ? कोई बात नहीं ऊगो ! मुझे तुम्हारा यह भ्रूण भी स्वीकार है। मेरे लिए इतना ही काफी होगा कि तुम उस शिशु की माँ रहोगी···• कितनी बड़ी बात कही थी तुमने ? कितना बड़ा आश्वासन दिया था !

(मेरे आंसू लेकिन और भी जोर पकड़ गये थे !

(इससे पहले शायद ही नारी को पुरुष ने भरोसे के ऐसे अनमोल वचन दिये होंगे। इससे पहले मैं कभी सोच भी नही पायी कि पुरुष इतना उदार भी हो सकता है।

(तभी तो पश्चात्ताप का वह पत्थर वहीं-का-वही पिघल गया था और आँखों के रास्ते जल्दी-जल्दी निकलने लगा था···

(कामेश्वर मैं तुम्हारी रिहाई के महीने गिन रही थी। मेरी समझ के अनुसार तुम मास के अन्त तक छूटकर आने वाले थे। तीन महीने माघ के वाद मैं भी तुम्हारा इन्तजार करती। फागुन, चैत, बैसाख। बैसाख बीतने पर आते तो अपनी उगनी को नहीं पाते। आठ-नौ महीने का बच्चा पेट के अन्दर मौजूद हो तब भी आत्महत्या की जा सकती है कामेश्वर ! नहीं !

(सिपाहीजी को मेरे मन ने कभी कबूल नहीं किया। भंग की बर्फी धोखे में खिला दी गयी थी, कामेश्वर ! तुम्हें मालूम है, मढ़िया-सुन्दरपुर के राक्षसों ने भी इस देह पर अत्याचार किये थे।

(हमें गिरफ्तार किसने करवाया ?

(क्या तुम सचमुच मुसलमान थे ?

(क्या तुम सचमुच मुझे भगाये लिये जा रहे थे और पाकिस्तान पहुँचाने

वाले थे ?

(क्या तुम ममनसिंह के रहने वाले कलीमुल्ला थे ?

(घर से सत्तर मील दूर, दूसरे जिले की सब-डिवीजन अदालत में पुलिस वालों ने हम पर किस तरह केस चलाया और एक ही पेशी में कैसे सारा खेल खत्म हो गया ! तुमने नर्मदेश्वर के नाम तार भिजवाया था न ? भाभी बतला रही थीं, तार तो पहुँचा ही नही !

(देहात मे रहना हो तो गुण्डा बनो कामेश्वर ! गुण्डों से दोस्ती करो, उन्हें खिलाओ-पिलाओ ! तुम उनका काम करो, वे भी तुम्हारा काम करेंगे···

(अच्छा, यह तो बताओ ! मुझे तीन महीने की सजा हुई, लेकिन जेल के अन्दर पैंतीस ही रोज रहना पड़ा, यह क्या बात हुई ? वक्त पर रिहा होती तो जरूर नर्मदेश्वर आकर मुझे साथ ले जाते ! बेचारे को पता ही नहीं चला कि जेल से छूट-कर उगनी गयी कहाँ ?

(वापस गाँव क्यों नहीं गयी ? वाह, गाँव कैसे वापस पहुँचती । गीध मुझे बीच में ही नोचकर खा नहीं जाते ? कामेश्वर, मैं एक बात तुमसे साफ-साफ कह देती हूँ : उगनी कभी मढ़िया-मुन्दरपुर नही जायेगी, उस गाँव की सीमा के अन्दर अपना पैर नहीं रखेगी उगनी ! तुम इसके लिए मुझे कभी मजबूर मत करना, समझे ?

(माँ ! माँ के लिए अब क्या रखा है उस गाँव में ? वह हमारे साथ रहेगी । हम उसकी सेवा करेंगे, वह हमारी सेवा करेगी । कितना अच्छा होगा !

(बहुत अच्छा होगा ऊगो !···

उगनी को लगा कि कामेश्वर करवट बदलने वाले हैं । आँखें तो अभी खुलनी नहीं चाहिए । गाढ़ी नींद में सोये हैं, सोते रहेंगे घण्टों । नींद का गाढ़ापन कम होगा तो टोह लेंगे साथ सोने वाली देह की । इसमें अभी देर है । कै बज गये ?

काठ के खोल में टाइमपीस रखी हुई थी । बहुत सारी किताबों के साथ अलमारी उसका भी भार सँभाले हुए थी । उगनी ने धीरे-से अलमारी खोली और टाइम देखा ।

डेढ़ बज रहा था ।

बरामदे का स्विच ऑफ करके वह फिर दूसरे कमरे में आयी और जंगले के पास उसी कुर्सी पर बैठ गयी ।

नेपाली पहरे वाला सामने आया ।

कमर के पास बेल्ट से खुखरी लटक रही थी । वह अपनी पहाड़ी धुन में कोई गीत गुनगुना रहा था ।

क्वार्टर से चार गज दूर ही छोटा रास्ता गुजरता था, उस पर मटमैले रंग की बजरी बिछी थी । किनारे-किनारे चारों ओर अड़तालीस क्वार्टर थे, बारह-बारह एक-एक ओर···

क्वार्टर के करीब आकर खिड़की की ओर नेपाली ने गौर किया। उगनी को देखकर बोला—"सलाम बीबीजी !"

"नमस्ते," उगनी ने कहा। फिर यों ही पूछ लिया—"कै बजा है बहादुर ?"

बहादुर ने कलाई उठाकर टाइम देखा। बोला—"एक बजकर चालीस मिनट हुए हैं बीबीजी !"

क्षण-भर रुककर उसने पूछा —"आप लोग नये-नये आये है न ? मिश्रा बाबू के रिश्तेदार होंगे ?"

"हाँ, रिश्तेदार लगते हैं। तुम मिश्राजी को जानते हो ?"

"वाह साहब, जानेंगे क्यो नहीं ? जब से फैक्टरी चालू हुई है तभी से मिश्रा बाबू यहाँ हैं···मैं भी तभी से हूँ बीबीजी ! ···आप लोग तो अभी रहिएगा न ? मिश्रा बाबू छुट्टी लेकर गया है, बीस रोज बाद आयेगा ।"

"हाँ, हम रहेंगे अभी। उनके आने पर जायेंगे।"

"मिश्रा बाबू का लड़का मुझसे खूब खेलता है बीबीजी ! उससे मेरी दोस्ती हो गयी है···आपका बच्चा तो अभी सोया होगा···हम कल शाम को आयेगा तो आपके बच्चे से दोस्ती करेगा··· बच्चा है कि बच्ची बीबीजी ?"

उगनी को नेपाली का यह सवाल अटपटा लगा। बोली—"किससे दोस्ती करोगे ? यहाँ न बच्चा है, न बच्ची।···तुम्हारे बीवी-बच्चे कहाँ है ? पहाड़ पर ?"

"अभी शादी कहाँ हुई !"

इस पर उगनी ने कुछ नही कहा। बहादुर की परछाईं आगे बढ़ गयी। कार्तिक की पूर्णिमा के चार-पाँच रोज बाद भभीखनसिंह को बुखार चढ़ा था। पूरे सात रोज चढ़ा रहा। दवा-दारू मंगवाने में जेल के हाकिमों तक खबर पहुँचाने में देवर-भाभी का यह रिश्ता उगनी के खूब काम आया था। हवलदार पाण्डे और रामजनम उपाधिया ने काफी दौड़-धूप की थी। सिपाहीजी ने उनकी सेवा मे खुश होकर खुद ही कहा था उगनी से---"इनसे काहे का पर्दा ! ये तो तुम्हारे लिए देवर से भी बढ़के है···देवर तो गाँव मे बैठा है, कभी झाँकता तक नही। भाई नही है, कसाई है मेरे लेखे··· अब यही पाण्डे, उपाधिया भभीखन के भाई-भतीजा हैं···समझी ?"

"समझी !" उगनी का ढका हुआ सिर हिला था।

और तभी से 'भाभी' 'भाभी' शुरू हुई थी। वे तो खैर बेहद लपकते थे, उगनी ने लेकिन अपनी मर्यादा कायम रखी। क्या मजाल कि उनके सामने कभी मुसकरायी हो !

बहादुर दूसरे छोर पर पहुँच रहा था। फिर से उसने उगनी की निगाहों को अपनी तरफ खींच लिया : नेपाली ईमानदार भी होते है और मेहनती भी। सिपाहीजी

बार-बार इनका जिक्र करते थे। कामेश्वर होटल का धन्धा करेंगे नर्मदेश्वर के साझे में। इधर आसपास नयी बस्तियाँ आबाद हो रही हैं। छह-सात कारखाने तो चालू हो चुके हैं, अगले वर्षों में पाँच-सात कारखाने अभी और चालू होंगे। छोटी लाइन और बड़ी लाइन वाली रेलगाड़ियों का भारी जंकशन ठहरा। यहाँ होटल का काम अच्छा चलेगा। चार नौकर रहेंगे, उनमें से दो तो नेपाली होंगे ही। मैं कामेश्वर से कहूँगी, नर्मदेश्वर से भी मनवा लूँगी। नहीं मानेंगे नर्मदेश्वर ? वाह, मानेंगे कैसे नहीं। भाभी का जो हुक्म होगा मानना पड़ेगा···

भाभी की याद आते ही वह प्रफुल्लित हो उठी। इन तीन दिनों के अन्दर कितना कुछ जुटा दिया था भाभी ने ! साड़ियाँ, ब्लाउज, तेल, साबुन, पाउडर, क्रीम से लेकर क्राकरी, बर्तन-बासन और राशन तक ! लगता है, वे यों ही नहीं गयी हैं। जरूर किसी जुगाड में गयी हैं। नर्मदेश्वर उसी रोज शाम को चला गया था मढ़िया-सुन्दरपुर। सुना है, इस बार धान की फसल अच्छी आयी है। दो मन पुराने चावल लाकर वह उसके हवाले कर देगा, आधा मन अरहर भी। पाँच सेर घी भी। जमी हुई गृहस्थी है, नर्मदेश्वर इतना कर सकते हैं। भाभी को तो उसके लिए आगे भी बहुत कुछ करना है···

(भाभी, तुम्हारी छोटी बहिन कैसी है ?

[जैसी तुम हो उग्रतारा।

(मैं ? उग्रतारा ? उहुँ, मैं न तो उग्र ही हूँ न तारा ही। जबर्दस्ती बचपन में किसी ने नाम रख दिया होगा, है न भाभी ?

[नाम की चीर-फाड नहीं करते मेरी रानी !

(हाँ, यहाँ तो देह की चीर-फाड करते हैं···

[मन की नहीं ?

(मन का हाल तुम जानो भाभी ! मैं तो यह भी नहीं बतला सकती कि अभी-अभी शाम की ट्रेन से तुम कहाँ गयी हो ! कहाँ गयी हो भाभी ? गाँव गयी हो ? मेरी माँ को लिवा लाने ? माँ को ले ही आओ ? वह अपनी उगनी के लिए कितना रोती होगी ! हाँ ? माँ को साथ लेकर लौट रही हो ?

(माँ, अब तुम वापस मत जाना !

(नहीं, अब कहाँ जाऊँगी ?

(रोते-रोते तुम्हारी आँखें लाल हो गयी हैं, पपोटे सूज गये हैं माँ !

(नहीं, नहीं, अब न रोओ माँ !

(हाय, तुम्हारे आँसू तो थमते ही नहीं···हाय, अब मैं क्या करूँ ?

[पगली, यह तो एक बीमारी है, आँखें हमेशा गीली रहती हैं, अक्सर पानी बहता रहता है इनसे···

(नहीं माँ, यह पानी नहीं है। आँसू हैं ये तो ! मैं दूध पीती बच्ची कहाँ हूँ, मुझ-

बहलाओ नहीं माँ ! पानी होता तो इतनी जल्दी सूख कैसे जाता ?···तुम्हारी उम्र क्यों आठ-दस महीनों में ही बीस वर्ष बढ़ गयी है । सूखी उमड़ी का यह फीकापन इन आँखों से नहीं देखा जाता माँ !···तुम्हें अपना यह दामाद याद आता है कभी ?

[तुझे आता है याद ?

(बिलकुल ! अच्छी तरह ! नाक पतली और खड़ी थी न ? बेहद शर्मीले थे। मैं पन्द्रह की, वह बीस के···कहने-भर को यह उनकी दूसरी शादी थी, पहली बीवी की मौत शादी के चार महीने बाद ही हो गयी थी। टाइफाइड उठा ले गया था बेचारी को। फिर ऐसी अफवाह फैली कि उस नौजवान का ग्रह खराब है, जो भी लड़की उसका हाथ पकड़ेगी, जियेगी नहीं। छह महीने के अन्दर मर जायेगी।··· कोई उसे अपना दामाद बनाने के लिए तैयार नहीं था। तभी तो इतनी आसानी से वह तुम्हें मिला था। कुल मिलाकर डेढ़-दो सौ खर्च आया था···कितना खर्च पड़ा था माँ ? फिर ! फिर रो पड़ी ! यह क्या हो गया है तुम्हें ? अब तो हम नदी पार करके इधर आ गये हैं माँ !

[मैं तुझे भर-पेट कभी खिला तक न पायी···

(तो अब उन दिनों की याद करके आँसू क्यों बहाती हो ?···भाभी, यह नहीं मानती हैं। तुम्हीं इसे समझाओ न ? मैं जाती हूँ, तुम मेरी माँ से अकेले में बात करो न···

[और तुम किधर चलीं उग्रतारा ?

(नींद आ रही है भाभी !

[ओह, तुम भी कभी सोती हो ! मैं तो समझती थी—'सदा भवानी जागती···'

(नहीं भाभी, अब और अधिक छेड़छाड़ न करो···

उगनी ने हल्की-सी जम्हाइयाँ लीं और कुर्सी से अपने को अलग कर लिया। इस अलगाव को खड़ा होना कहेंगे ?

कुर्सी की बाँहों-से-बाँहें अड़ाकर उसने अपने सीने को सीधा किया, दण्ड-बैठक की मुद्रा में। देर से बैठे-बैठे कमर अकड़ गयी थी। अब वह जाकर लेट जायेगी। अब नींद आयेगी।

तीन बजे थे।

···थोड़ी देर में चार बजेंगे। चार बजेंगे तो साँकल खड़केगी और बाहर सीमेण्ट वाली फर्श पर लाठी बजेगी ठन्न-से। भभीखनसिंह अन्दर आयेंगे। और—

और, जहन्नुम में जायेंगे भभीखनसिंह !···

उगनी ने अपने मन को डाँट-फटकार कर सीधा किया। अब तो वह जरूर सो जायेगी। अब नींद को उसकी पलकों पर उतरने से कौन रोकेगा ?

कम्बल के अन्दर आधा बदन लेकर उगनी सीधी हो गयी। हाथ और पाँव ढीले कर लिये। साँसों की गति को अनियन्त्रित छोड़ दिया।

आ गयी नींद उगनी को ?

हाँ अभी आयी···आ ही गयी !

न, कहाँ आयी ! जरा अलग हट गयी है···

पलकें पहले ही खुल चुकी थीं। मुश्किल से दो-चार मिनटों के लिए बन्द रही होंगी। खिडकियों के बड़े शीशे बाहरी प्रकाश को छानकर अन्दर पहुँचा रहे थे। उनका बन्द रहना ठण्ड को तो रोके हुए था, पर पार-भेदी आलोक की भास्वर छाया पर उनका प्रतिबन्ध नहीं था।

उगनी थोड़ी देर तक कामेश्वर के चेहरे की तरफ देखती रही। खड़ी नाक, भौंहें, बड़े-बड़े बाल साफ दीख रहे थे। छँटी हुई महीन मूँछों की काली लकीरें साफ दीख रही थीं। होंठ, ठुड्डी, दोनों कान···सब दीख रहा था। गालों का सपाटपन ही शायद उन्हें अच्छी तरह दीखने नहीं दे रहा था···

पलंग, खुली अलमारी, कपड़े टाँगने के लिए खूँटियों की पतली पट्टी दीवाल में, छत मे लटका हुआ पंखा और बल्ब···बस, यही कुछ था कमरे के अन्दर। पलंग के नीचे दो ट्रंक थे, जो दिखायी नहीं दे रहे थे।

अलार्म वाली घड़ी जागने में उगनी का साथ दे रही थी। टिक्-टिक्-टिक् टिक्-टिक्-टिक्-टिक्···उछलती हुई सैकण्ड वाली सुई उसके मन-प्राण को पुलकनों से भरती जा रही थी। कालचक्र की मुखर गति आज उसे बड़ी प्यारी लग रही थी। कामेश्वर की कलाई में घड़ी बँधी होती तो जरूर उगनी अपने कान को उससे लगा देती, देर तक भिड़ाये रखती अपना कान कलाई वाली घड़ी से···टिक्-टिक्-टिक्-टिक्-टिक्-टिक्···छोटी घड़ियों की टिक्-टिक् कितनी बारीक, कितनी पैनी लगती है कानों को !

गीता की छोटी बहिन उमा थी न ? वह एक बार अपने जीजा की कलाई-घड़ी उठा लायी और उगनी के कान से उसे सटा दिया। आँखें नचाकर बोली—"कितना अच्छा लगता है कानों को ! नही चाची ?···बोलो चाची कैसा लगता है कानों को ?"

उगनी ने आँखों के इशारे से बतलाया था, बहुत अच्छा लगता है। नौ साल की उमा के बाल-मन को वह मूक अनुमोदन बिल्कुल हलका जँचा था। उगनी की बाँह को दूसरे हाथ से झकझोरती हुई, खीझ-भरे स्वर में उमा ने पूछा—साफ-साफ कहो न, कैसा लगता है। इस तरह की महीन आवाज तुमने कभी सुनी है ? सच बतलाना चाची ?"

चाची को सच-सच बतलाना पड़ा। कई बार बतलाना पड़ा···उमा भला यों छोड़ती ?

अभी उगनी ने यों ही कामेश्वर की बायीं कलाई आहिस्ता से उठा ली है, अपना दाहिना कान उस सूनी कलाई से लगा लिया है ! हाँ, वह बारीक आवाज सुनना चाहती है ! महीन टिक्-टिक्—छोटी घडी की सबसे छोटी सूई के सूक्ष्म स्पन्दन कान के जरिये अपनी चेतना क अन्दर भर लेना चाहती है।

पाँच घण्टे की गाढ़ी नींद के बाद, लगता है, अब कामेश्वर की नींद पतली हो आयी है—अच्छा हो, थोड़ी देर अभी और सोते रहें कामेश्वर। अभी से उठकर क्या करेंगे, कितनी देर गपशप करेंगे ?

कलाई कान मे अलग कर दी गयी।

बहादुर के बूटों की आहट सुनायी पड़ रही है—खिड़की के सामने पहुँचकर क्षण-भर के लिए वह रुका है, लोहे की छड़ को अपने डण्डे से छू दिया है उसने, हल्की आवाज उठी है ठन् !

उगनी मन-ही-मन दुहराती है—ठन् !

बहादुर आगे बढ़ गया है, आहट दूर होती जायेगी।

उगनी बार-बार मन में दुहरा रही है—ठन् ! ठन् ! ठन् ! ठन् !

हाँ, अब बजे होंगे चार—

सिपाहीजी चाबियों का झब्बा अगले वार्डन को थमाकर जेल-गेट से बाहर आ जायेंगे। अपने क्वार्टर की तरफ रुख करके जरा देर के लिए खड़े रहेंगे। फिर बड़ी मुश्किल से अपने को आगे की ओर धकेल लायेंगे।

टटोलकर अलीगढ़ वाले पुराने ताले की सूराख मे चाबी डालेंगे। फाटक खुलेगा। अन्दर आकर बरामदे का स्विच ऑन करेंगे सिपाहीजी···इधर-उधर देखेंगे, भीतर वाला कमरा खोलने का जी नहीं होगा।

(आपका मैंने भारी नुकसान किया है, नहीं सिपाहीजी ?

(यह चौथी रात है !

(लगता है बिना खाये ही ड्यूटी पर चले गये थे ! बड़ी भूख लगी होगी ? बुढ़उती में सत्तू नही खाइएगा सिपाहीजी, मैं हाथ जोड़ती हूँ ! इधर देखिए, मेरी ओर। सुनिए क्या कहती हूँ ! खाना जरूर पका लिया कीजिए।

(मैं भाग आयी हूँ ! आपको कितना बड़ा धोखा दिया है मैने ! जानती हूँ, आपकी आँखें गीली नहीं हुई होंगी लेकिन अन्दर-ही-अन्दर कलेजी सूख गयी है आपकी, मैं साफ देख रही हूँ सिपाहीजी !

(मइया री ! इतना भारी घाव ! आपके सीने का घाव कैसे भरेगा सिपाही जी ?

(हत्यारिन कहीं की !···कैसे भागी है चोर की तरह !···

(सादगी और सिधाई के भी नखरे होते हैं न ?

(चुड़ैल ! अपनी कोख का बच्चा आप ही खाने वाली।

(किञ्चिन ! कच्चा मांस चबाने के लिए भागी है ?

(डायन ! एक इन्सान का लहू पीकर गायब हो गयी।···

(चुप क्यों हो गये सिपाहीजी ? अभी और गालियाँ दीजिए ! मैं सब सुनती जाऊँगी, ठण्डे मन से सुनूँगी। आपके विश्वास को किस बेरहमी से मैंने चूर-चूर कर दिया है ! यह मेरी मजबूरी थी सिपाहीजी, शौक नहीं था ! अब आप जितनी भी गालियाँ देंगे, सुनती जाऊँगी। जो भी श्राप देंगे, झेलूँगी सिपाहीजी। एक भोले-भाले अधेड़ खेतिहर ने खाकी लिबास पहन रखी है, भभीखनसिंह डरावना नाम जरूर है मगर पकी मूँछों वाले उस भारी खोल के अन्दर मुझे तो हमेशा अपने चाचाजी ही दिखायी पड़ते रहेंगे। सच सिपाहीजी, आपको सामने पाकर मैं और कुछ सोच ही नहीं पाती थी। मेरे पिताजी किसान ही थे। आज जिन्दा होते तो पैंतालीस की उम्र होती—

(अच्छा, एक बात पूछ लूँ सिपाहीजी ?

(आप रिटायर कब होंगे ?

(रिटायर होने के बाद कहाँ रहेंगे आप ?

(क्या मै आपकी सेवा का अवसर फिर कभी पाऊँगी सिपाहीजी ?

(कामेश्वर ? कामेश्वर कभी मुझे मना नहीं करेंगे सिपाहीजी ? उनका दिल बहुत बड़ा है सिपाहीजी !

(आपकी सन्तान आपको वापस मिल सकती है। यहाँ किसी को नहीं अखरेगा। न भाभी को, न नर्मदेश्वर को, न इन्हीं को। आपका बच्चा आपको वापस मिल जायेगा सिपाहीजी ! देख लीजिएगा—

अब उगनी मे रहा नहीं गया।

वह पलग मे उठ गयी, कमरे से बाहर बरामदे में आयी। चहलकदमी करने लगी।

उसका जी हल्का था। कितना अच्छा समाधान उसके चिन्तन को मिला था। बेचैन मन को और चाहिए भी क्या ? राहत मिल जाये तो दिल की धड़कने अपनी सहज रफ्तार वापस नही पायेगी ?

रात्रि-शेष का शिशिर-समीर दूसरे कमरे की खुली खिड़कियों से होकर अन्दर आने लगा तो उगनी के रोएँ कटकित हो उठे। वह शाल याद आयी जो भाभी उसके लिए परसा ही ले आयी थी। परसों शाम को घण्टे-भर के लिए उसे उगनी ने ओढ़ा भी तो था।

दूसरे कमरे के अन्दर तख्तपोश पर ढेर सारे कपड़े और दूसरे सामान भी रखे थे। भाभी खुद ही सहेजकर रख गयी थीं।

उगनी ने शाल निकाल ली।

पश्मीने की मुलायम शाल सिलेटी रंग की थी, उगनी की चम्पई सूरत पर खूब

खिलती थी। भाभी ने मुस्कराकर कहा था—"कामेश्वर को गुलाबी रंग पसन्द है। अगले वर्ष वह अपनी रुचि का ला ही देगा, अभी इसी से काम चलाओ।"

उगनी संजीदगी में डूबकर बोली थी—"नहीं भाभी, जाड़ों में सुबह-शाम मैं यही ओढ़ा करूँगी। पुरानी हो जायेगी तो भी—"

"यह भी तो एक तरह का मोह होगा न?" भाभी खिलखिलाकर हँसती रहीं।

शाल ओढ़ते समय, इस क्षण भी वह मोहिनी खिलखिलाहट उगनी के कानों को गुदगुदाती-सी लगी।

स्विच ऑन करके उसने अपने को भली भाँति देख लिया।

इतनी बढ़िया शाल जीवन में उसने पहली बार अपने कन्धों पर डाली थी···

मामूली खेतिहर की बेटी—जैसी-तैसी रजाई के साथ जाड़े कटे थे अब तक। पिछले कातिक में जब भभीखनसिंह ने उसकी पसन्द के लिए लिहाफ के चार-पाँच गिलाफ गीता की मार्फत अन्दर भिजवाये तो उगनी ने उस छोकरी से कहा—"तुम्हारे चाचा को जो जँच जाये, इनमें से वही वापस लेते आना।" सिपाहीजी ने बैंगनी किनारियों वाला पीला गिलाफ ले लिया था। उस रजाई को देख-देखकर गीता बेहद चिढ़ती थी। कहा करती थी—"चाची, तुम पक्की देहातिन हो! नहीं चाची, तुम देहातिन भी नहीं हो। देहात की औरतें तो अब ऐसा चटकीला माल छाँट के लेती है, ऐसा चटकीला, ऐसा चटकीला··

—तो इस शाल का रंग चटकीला है? नहीं, सिलेटी रंग को चटकदार भला कौन कहेगा!

—गीता को यह रंग फीका लगता···

—भाभी को लेकिन कोई भी देहातिन कहने की जुर्रत नहीं करेगा—

उगनी पश्मीने की कोमलता को बार-बार गालों से रगड़कर परखती रही। समझ नहीं पा रही थी कि यह पश्मीना आखिर होता क्या है। भाभी से पूछकर मालूम कर लेगी। उनको जरूर मालूम होगा।

पीले और नीले धागों में न जाने कौन-से फूल कढ़े हुए हैं लाल किनारियों पर!—वह क्या-क्या पूछेगी भाभी से? नहीं, किनारी के इन फूलों के बारे में उगनी भाभी से नही पूछेगी; भाभी की छोटी बहन इन्दिरा से मालूम करेगी।

भाभी ने बतला दिया है—"तुम्हारी उमर और इन्दिरा की उमर लगभग एक होगी। तुम फागुन में बाईस पूरे करोगी, वह बैसाख में।"

ले-देकर इन्दिरा ही तो यहाँ अपनी सहेली हुई। ये तो अपना धन्धा जमाने में अभी महीनों मशगूल रहेंगे। मैं बीच-बीच में आकर इन्दिरा से मिल जाया करूँगी। कभी-कभार भाभी भी तो देहात से आ धमकेंगी। नहीं आयेंगी? जरूर

आयेंगी। भाभी को अपनी सगी बहन के लिए उतनी फिक्र नहीं रहेगी, जितनी फिक्र अपनी चेली के लिए—

(भाभी असाढ़ में पूरा महीना तुम यहीं आके रहना ! माँ तो खैर रहेगी ही···

(तुम्हीं तो उस रोज कामेश्वर से कह रही थीं, यहाँ से ढाई-तीन मील दूर औरतों के लिए अच्छा अस्पताल बन गया है अब—

(मैं दस रोज पहले ही अस्पताल में भर्ती हो जाऊँगी भाभी !—

(वाह, अभी से तू हमारी बातें सुन रहा है ?—कौन है अन्दर ? लड़का है कि लड़की ?

(अभी से इतना हिलने-डोलने लगा है ?

(नहीं, मुन्ने ! नहीं, बिलकुल ही नही ! अभी से हमारी बातों में तू अपनी टाँग मत अड़ा भाई !

(क्या कहा ? नहीं मानेगा ? माँ की आँतों से खिलवाड़ करेगा ? ऊधम मचायेगा कलेजे से लटककर ?

(देख, बड़ी पिटाई पड़ेगी !

(अरे भाई, अन्दर कोई दीवार नहीं है ! क्यों नाहक अपना सर टकरा रहा है ?

(शैतान कहीं का। इतने जोरों से कान खींचूंगी, इतने जोरों से—इतने जोरों से —

(कि···कि···कि !! खबरदार, हटा ले अपना हाथ ! हटा ले ! हटा, अभी हटा—हटाता है हाथ कि नहीं ?

(मेरे बच्चे को पीटेगी तू ?

(कौन होती है तू भभीखनसिंह की सन्तान पर हाथ उठाने वाली ? खबरदार चमड़ी उधेड़ लूँगा, हाँ !

···बड़ी-बड़ी सफेद मूँछें निषेध की तीखी मुद्रा में फड़क उठी हैं। उगनी सहमकर कुर्सी पर बैठ गयी है, जी नहीं करता कि जंगले की तरफ नजर उठाकर सामने देखे।

दिल की धड़कन बढ़ गयी है।

इतना वह अवश्य करेगी कि उठकर स्विच ऑफ कर आयेगी, फिर निढाल होकर कुर्सी के हवाले कर देगी अपनी देह को।

पकी मूछों का आतंक कब तक यों पीछा करेगा उगनी का ?

उसने पलकों को मूंद लिया है। दहशत के मारे उसकी चेतना सिमट-सिकुड़कर अन्दर डूब-सी गयी है। एक-एक अंग सुन्न पड़ जायेगा क्या ?

बारी-बारी से कलाइयों में नाखून गड़ाकर उगनी ने अपने होश का अन्दाज

लिया। लगा कि रात-भर की थकान अब एकाएक दिल और दिमाग पर हावी हो आयी है। लगा कि अगले ही क्षण सिर में भारी दर्द उठेगा। लगा कि रग-रग सूखी लताओं की तरह कुरमुरा उठेगी। लगा कि लाख जोर मारेगी तो भी उठा नहीं जायेगा।

तन और मन दोनों पर अवसाद हावी हो गये थे। थकान की अति ने तन्द्रा को बुला लिया था।

मुँदी पलकों पर ऊँघ का छिड़काव होने लगा।

चौथाई नींद की हल्की मात्रा का उतना-सा प्रसाद भी अभी काफी रहेगा बेचारी के लिए। ऐसे में तो खण्डित सपनों के हमले तो होंगे ही···

(सिपाहीजी आप बीच में क्यों पड़ते हैं ?

(मैं उसकी माँ हूँ। पीटूँगी चाहे कान खींचूँगी, आप कौन होते हैं मना करने वाले ?

(मैं ? मैं छोकरे का बाप हूँ ? मेरा कोई हक नहीं है उस पर ?

(जी, आपका इस छोकरे पर कोई हक नहीं रहा ! आपका हक छोकरे की माँ के शरीर पर था जिसे भंग की बर्फी खिलाकर अपनी हविश पूरी की थी—सुनिए, सिपाहीजी ! घबराइए नहीं, पिता का पद आपसे कोई नहीं छीनेगा—पाल-पोसकर छोकरे को हम आपके हवाले कर देंगे सिपाहीजी !

(सिपाहीजी आप क्या करेंगे बच्चा लेकर ?

(उसे भी अपनी तरह हवलदार-जमादार बनाने की तालीम दीजिएगा ?

(हूँ ! मिलीटरी आफिसर बनेगा यह ?

(हूँ ! तीन-तीन फीतों वाला बैज लगावेगा ?

(फिर तो ठीक है, सिपाहीजी ! मानती हूँ आपका हक !

(फिर तो यह आपकी तरह डरावनी मूँछें नहीं रखेगा ?

(आप हँसते क्यों हैं सिपाहीजी ?

(खैर, अब आपके छोकरे पर पिटाई नहीं पड़ेगी···लेकिन है बड़ा शैतान ! आपने भी अपनी माँ को इसी तरह परेशान किया होगा···

(वाह, आप तो इस तरह खुलकर हँस रहे हैं कि···

(वाह, खुशी के मारे आपकी पकी मूँछें इस तरह थिरक रही हैं कि···

(वाह, बाप-बेटे दोनों ही मेरी सिधाई पर इस तरह मुस्करा रहे है कि···

(नींद आ रही है सिपाहीजी, इजाजत मिले !

(जाऊँ ? अच्छा, जाती हूँ।

(एक बात···

(आप मुझ पर अब भी रंज हैं सिपाहीजी !

(नहीं न ?

(देखिए, आपका बेटा आपके ही पास खड़ा है !

(देख मुन्ने जा रही हूँ मैं !

(कहाँ, तेरे उस पापा के पास, जिनके साथ तू अभी-अभी मढ़िया-सुन्दरपुर हो आया है···

कामेश्वर ने आकर आहिस्ता से कन्धे झकझोरे—"यहाँ क्यों सो रही हो ? इस तरह तो गर्दन अकड़ जायेगी ! चलो, उधर चलकर लेटो···"

कामेश्वर की नींद पूरी हो चुकी थी, वह बरामदे की रोशनी जलाकर बाथ-रूम के अन्दर चला गया।

उगनी ने कुर्सी से उठकर घड़ी देखी। साढ़े चार बज रहे थे। अब कौन सायेगा। छः पौने छः महरी आ धमकेगी।

ठण्डे पानी के छींटे आँखों पर डालकर उगनी हाथ-मुँह धो आयी। पलंग पर लेटकर कामेश्वर का इन्तजार करने लगी। चाहेगी तो अब नींद आ जायेगी उसको।

कामेश्वर बाथरूम से बाहर निकला।

लेटी हुई उगनी के शरीर पर अपना आधा बोझ डालकर वह उस पर झुक आया। बालों पर हाथ फेरता हुआ बोला —"लगता है तुम्हें आज रात नींद नहीं आयी। लगता है, रात-भर अनाप-शनाप सोचती रही हो !···"

उगनी मुस्कराती रही और उसकी आँखो में आँखें डालकर देखती रही।

एकाएक पूछ बैठा —"बतलाओ तो इसका क्या नाम ठीक रहेगा ?"

"किसका ?" उगनी हँसने लगी।

कामेश्वर मुस्कराकर होंठों को उसके कान से भिड़ाकर फुसफुसाया, "इसका और किसका ?"

उगनी बोली—"तुम बतलाओ !"

"मैं बतलाऊँ ?"

"जी, आपको ही बतलाना पड़ेगा···" उगनी मुस्कराती रही। वह विभोर होकर कामेश्वर की आँखों में आँखें गड़ाये पड़ी थी।

"अभी तुम जाओ, नाम फिर कभी बतला दिया जायेगा···" कुछ और भी कहने जा रहा था कामेश्वर कि उगनी की हथेली का स्टाम्प पड़ गया होंठों पर।

जरा देर बाद बोली—"नहीं, नाम तो बतला ही दो ! आखिर मालूम तो हो जाये कि उसे हम क्या कहके पुकारेंगे···"

कामेश्वर ने उगनी की वह हथेली अपने सीने पर ले ली। बोला—"उसका नाम होगा नवीनचन्द्र !"

"बड़ा ही प्यारा नाम होगा यह तो !···ओह, मैं तो सोच भी नहीं सकती

कि इतना अच्छा नाम भी किसी बच्चे का होगा…"

"खूब पसन्द आया ?"

"खूब भाई खूब !" कुछ देर तक वह चुप रही। जाने क्या सोचती रही।

"लेकिन," एकाएक उगनी ने निगाहों को आमने-सामने करके पूछा—"मान लो, लड़का न हुआ, लड़की हुई ?"

इस पर जरा देर कामेश्वर चुप रहा।

सोच-साचकर बोला—"नवतारा नाम कैसा रहेगा ?"

"उहुँ !" उगनी ने सिर हिलाया।

"फिर, किसी से पूछकर बताऊँगा !"

"भाभी से कहना !"

"अभी क्या जल्दी है ! लेकिन अब तुम थोड़ी देर के लिए सो जाओ !"

"महरी आयेगी न !"

"मैं जो हूँ…तुम सो जाओ !"

वह दूसरी तरफ रुख करके लेट गयी।

उसने कम्बल खींचकर उगनी के बदन को कन्धों तक ढक दिया।

दो रोज बाद, शाम की ट्रेन से भाभी लौट आयीं। साथ उगनी की माँ थी, नर्मदेश्वर था, छोटी उम्र की नौकरानी थी। अनाज की बोरी, घी की घड़िया, और कुछ दूसरी चीजें भी थीं।

माँ-बेटी देर तक गले से लगकर रोती रहीं।

आखिर भाभी ने उन्हें चुप किया, अपने आँचल के खूँट से उनके आँसू पोंछे और बोलीं—"अब क्यों रोती हो तुम लोग ? दुःख के बादल छँट चुके हैं, आकाश अपना नीला रंग वापस पा गया है…उठो चाची, मुँह-हाथ धो आओ ! नहाना चाहो, नहा लो ! नाश्ता मैं पन्द्रह मिनट के अन्दर तैयार कर लेती हूँ…उगनी, सब्जी क्या-क्या बनेगी ?"

माँ को बाथरूम दिखलाकर उगनी रसोईघर के अन्दर आ गयी। भाभी से कहा—"तुम थकी हो, जाओ, मैं कर लेती हूँ…"

भाभी बोलीं—"मैं नहा-धोकर ताजा हो गयी हूँ। आराम से ही तो आयी हूँ, कौन से चावल कूटती आयी हूँ गाड़ी में ? अब इसी वक्त मुझे अपने चौके के बाहर न निकालो। कामेश्वर को आने दो, उनसे भी पूछ लेना।"

उगनी को हँसी आ गयी।

बरामदे में सामान रख दिया गया था। किचन से निकलकर उसने बन्द बोरी का मुँह खोलना चाहा। भाभी ने उधर से कहा—"रहने दो, पीछे रखेंगे सहेजकर।"

वहीं नौकरानी बैठी थी, उम्र बारह से ज्यादा नहीं होगी। उगनी ने उससे पूछा—"क्या नाम है तेरा, रे ?"

"तीरा !" वह धीमी आवाज मे बोली।

उगनी ने मन-ही-मन दुहराया—तीरा !

तीरा एक फूल है। बरसात बाद शरदऋतु में खिलता है···कई रंगो वाले तीरा फूल उगनी के दिमाग में घूम गये : बचपन में तुलसी-चबूतरे के इर्द-गिर्द हर साल वह तीरा के बीज बोती थी। अगहन तक उसके फूल पूजा में काम आते थे···उगनी अगली बरसात में भी तीरा के बीज बोयेगी। बीज भाभी से मँगवा लेगी।

"तीरा, तुझे भूख लगी होगी !" उगनी ने उस छोकरी से कहा। उसने इस पर नयी मालकिन की ओर देख-भर लिया।

माँ ने पुकारा तो उगनी जाकर कपड़े दे आयी।

वह नहा-धोकर निकली तो थोड़ी देर तक दूसरे कमरे के अन्दर बैठकर माला फेरती रही।

माँ के दाहिने हाथ की उँगलियों मे लिपटकर ढीली चेन की तरह पुरानी माला का उस प्रकार नीचे-ऊपर होना उगनी की आँखो को हमेशा अच्छा लगा है। आज, बहुत दिनों के बाद यह दृश्य देखा तो उसका मन प्रसन्न हो उठा।

हलुआ बना था, पकौडे छाने गये थे।

भाभी ने मुस्कराकर कहा—"चाची तो चाय नहीं पीयेंगी !"

"नहीं," चाची बोलीं—"मैं चीनी घोलकर पी लूँगी !"

उगनी को तो नही, भाभी को हँसी आ गयी।

सभी ने नाश्ता किया। चाय की प्यालियाँ खाली की गयीं। नर्मदेश्वर आते ही कामेश्वर की खोज में निकल गया था। उन दोनों का नाश्ता ढककर रख दिया गया।

दूसरे कमरे के तख्तपोश पर माँ के लिए बिस्तरा लगा दिया उगनी ने। तीरा से कहा—"तू भी आज आराम कर।"

भाभी और उगनी उधर पलंग पर बातें करती रहीं। खाना पकाने की कोई हड़बडी नहीं थी। भाभी ने कहा था—"रात अपनी है, चाहे जब खाना पका लेना !"

पड़ोस के क्वार्टर से रेडियो की आवाज आ रही थी। फिल्म 'गंगा मइया' के गीत भाभी को अच्छे लगे थे, वे उन्हें बार-बार सुनना चाहती थी। उगनी ने दाहिना हाथ उठाकर कहा—"इस ओर से लेकिन हिन्दी गीत कम सुनायी पड़ते हैं···"

"मद्रासी होगे ये लोग !···अच्छा है, एक तरफ उत्तर के गाने सुनो, दूसरी

तरफ दक्षिण के !···" भाभी ने कहा, "हम तो घर पर विद्यापति और मीरा को सुनते हैं। बँगला समझती नहीं हूँ मगर आवाज कानों को मीठी लगती है। हमारी इन्दिरा खूब बोलती है बँगला। कह रही थी अपने लड़के के बारे में कि चुन्नू दक्षिण भारत के पच्चीस-पचास शब्द सीख गया है···लगता है, आगे बच्चे बड़े तेज निकलेंगे !"

कामेश्वर और नर्मदेश्वर काफी देर बाद लौटे।

कामेश्वर ने माँ के पैर छुये।

माँ ने उसे उठाकर उसका माथा चूम लिया। बेचारी की दोनों आँखें भर आयी थीं। दिखायी नहीं दे रहा था कुछ भी। वह देर तक कामेश्वर की देह पर हाथ फेरती रही। लाख कोशिश करने पर भी इस वक्त शब्द होंठों की हद से बाहर नहीं आ रहा था।

भाभी ने आकर कहा —"चाची, दिन-भर का थका होगा यह भी ! अभी इसे इजाजत दो। मुँह-हाथ धोयेगा, खाना खायेगा···"

उगनी की माँ ने सिर हिलाकर अनुमति दी।

खाना-पीना खत्म करते-करते ग्यारह बज गये रात के। नर्मदेश्वर उधर से आठ बीड़े पान लेता आया था, नहीं तो यहाँ, कालोनी की इस वीरान बस्ती में इस वक्त पान कहाँ से मिलता !

बारह बजते-बजते सभी सो गये। मर्द पहले कमरे में, औरतें दूसरे मे !

बाथरूम की बिजली जलती रह गयी थी। कामेश्वर उस स्विच को ऑफ कर आया और पानी पीकर फिर सो रहा।

जाने कैसे, ठीक सवा चार बजे उगनी की आँखें खुल गयीं। वह दो-तीन दिनों से अपने को तैयार कर रही थी कि एक पत्र लिखे, साफ अक्षरों में। रात को, सोते समय उसने अपने-आप निश्चय किया था कि तड़के वह सबसे पहले जग जायेगी और चिट्ठी लिख लेगी। अब उगनी अपने पर खुश थी कि नींद टूट गयी है···

कामेश्वर की पाकिट से फाउण्टेनपेन निकाल लायी, कागज कापी मे से लिया। बाहर, बरामदे में आसन बिछाकर बैठी और झुककर देर तक लिखती रही।

पत्र पूरा करके वह उसे मोड़कर कामेश्वर के सिरहाने रख आयी।

साढ़े छः तक सभी उठ गये।

थोड़ी देर बाद ही चाय आ गयी।

चाय पीकर वे उठने ही वाले थे कि उगनी ने अन्दर आकर कामेश्वर से कहा—"सिरहाने कागज रखा है, दोनों जने पढ़ लेना !"

कागज निकल आया।

कामेश्वर और नर्मदेश्वर दोनों ही उत्सुक हो उठे और पत्र पढ़ने लगे, "आदरणीय सिपाहीजी,

" मेरे अपराधों को आप कभी माफ नहीं करेंगे, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। दूर चली आयी हूँ, फिर भी इन कानों से आपकी गालियाँ सुनती रहती हूँ। मैं मना नहीं करूँगी, आप खूब गालियाँ दीजिये सिपाहीजी !

" आपकी सन्तान समय पर बाहर आयेगी। असाढ़ में उसका जन्म जरूर होगा, आप रत्ती-भर भी चिन्ता न करें। मैं उसको कहीं फेंक नहीं आऊँगी। पाल-पोसकर उसे सयाना बनाऊँगी।

" मैंने अपना सब कुछ जिसे सौंप दिया था, उसी के साथ गाँव से निकली थी। जिसके साथ गाँव से निकली थी, वही मुझे आपके क्वार्टर से निकाल लाया है। उस आदमी का दिल बहुत बड़ा है। पराये गर्भ को ढोने वाली अपनी प्रेमिका को फिर से, बिना किसी हिचक के, उसने स्वीकार कर लिया है। उसने मुझसे शादी कर ली है।

" वह इतना उदार है कि आपका बच्चा आसानी से आप तक पहुँचा देगा। मगर मैं वैसा नहीं होने दूँगी सिपाहीजी ! बच्चे पर आपका हक बहुत थोड़ा रहेगा, मेरा हक तीन-चौथाई से भी अधिक।

" बड़ा होगा तो मैं खुद ही उसे आपके पास भेजूँगी, अपने पिता से मिल आयेगा। स्कूल-कालेज में पढ़ेगा। पिता की जगह आपका ही नाम दर्ज करवाया जायेगा। आप विश्वास रखें सिपाहीजी ! मैं जिन लोगों के बीच रहने आयी हूँ, वे बिलकुल ही नये ढंग के लोग हैं। उनमें से कोई भी मेरे इन विचारों का बुरा नही मानेगा।

" असाढ़ के बाद अगर आपका जी करे तो अपने बच्चे को देख जाइयेगा। दूसरी बार पत्र लिखूँगी, उसमे यहाँ का पता रहेगा।

" आपकी छाया में आठ महीने रही हूँ। मन-ही-मन आपको पिता और चाचा मानती रही हूँ और आगे भी वैसा ही मानती रहूँगी। मैं मजबूर थी, इसी से आपको धोखा दिया। सिपाहीजी, आप मुझे सारा जीवन याद रहेंगे।

—उग्रतारा "

कामेश्वर पलंग से उछलकर नीचे फर्श पर आ गया। आवाज लगायी—"उगनी ! ओ उगनी ! कहाँ गयी तुम ?"

"आयी !" अगले ही क्षण वह सामने थी।

लपककर कामेश्वर ने उसे बाँहों में लेकर उठा लिया, बोला—"कितना अच्छा पत्र लिखा है तुमने ! इसे आज की ही डाक से रवाना कर दूँगा···"

भावावेग के मारे कामेश्वर से बोला नहीं जा रहा था। आँखें तरल हो आयी

थीं···

नर्मदेश्वर ने भी उगनी की पीठ ठोकी, कहा—"वाह, तुमने तो कमाल कर दिया ऊगो !"

भाभी अन्दर आयीं तो लपककर उन्होंने उस पत्र को तकिये पर से उठा लिया। जल्दी-जल्दी पढ़ गयीं। बोलीं—"शाबास !"

वह उगनी के कान को लाड़ में उमेठकर कहने लगीं—"बाप रे, कितना दौड़ता है दिमाग तेरा ! यह चिट्ठी पढ़ेगा तो सिपाही दंग रह जायेगा ! सोचेगा···"

उगनी ने अपनी हथेली से भाभी का मुँह बन्द कर दिया और भीगी निगाहों से नीचे फर्श की ओर देखती रही।

□

कुम्भीपाक

एक

आधा पूस गुजर चुका था।

पिछले दो दिनों से सर्दी बेहद बढ़ गयी थी। आसमान और धरती को कोहरा एक बनाये हुए था। बीच-बीच मे बूँदाबाँदी भी होती रही। जाड़ा लोगों की हड्डी-हड्डी में समा गया था। दाँत बज उठते और मौसम को गालियाँ सुननी पड़तीं।

और यह मकान!

लगता था कि सूर्य की किरणों के लिए कोई आकर लक्ष्मण-रेखा खींच गया है। दुपहर के बाद वे सहम-सहमकर अन्दर झाँकतीं। घड़ी-आधी घड़ी के लिए दरस दिखाकर लापरवाही में सिर के आँचल की तरह खिसकती जाती, पीछे हटती जातीं—क्वाँर की कछार मे नदी की लहरों की तरह।

चालीस प्राणी थे, किरायेदारो के छै परिवार।

सभी धूप के लिए तरसते थे।

मकान-मालिक को सभी कोसते थे।

सामने लेकिन कोई कुछ कहता नहीं था उससे। वह भारी हिसाबी था, बेजोड़ मिटचोता। मकान के अगले हिस्से में, सड़क के किनारे उसने दूकान के लायक तीन कमरे निकलवा लिए थे। एक में बुकसेलर, दूसरे में दर्जी, तीसरे मे प्राविजन स्टोर के प्रोप्राइटर के नाते वह खुद ही बैठता था। अन्दरवाली खोलियों से किराये के तौर पर दो सौ, और दूकानों से नब्बे रुपये हर महीने आते थे।

उसका अपना परिवार ऊपर के तिनतल्ले पर धूप की गर्माहट के मजे लूटता होता और पिछली खोलियों में बाकी 'प्रजा' उसको कोस रही होती।

मगर आज तो शिशिर की प्रकृति ने सभी के लिए साम्य योग उपस्थित कर दिया था:

कोहरा और बादल!

ठण्ड और गीलापन!

धुआँ और भाप!

सारा दिन यह हाल रहा और शाम होते ही बारिश टूट पड़ी।

ऊपरवाले कमरे में बच्चे ऊधम मचा रहे थे।

नीचे प्रतिभामा फुलके सेंक रही थी।

कि बिजली गुम हो गयी ··

बड़ा लड़का विभाकर टूटा छाता लेकर बाहरवाली दूकान से दो मोमबत्तियाँ ले आया तो माँ ने बेलनवाला हाथ उठाकर माचिस की ओर संकेत किया।

दीवारवाली आलमारी से माचिस लेकर विभाकर ने मोमबत्ती जला दी। दूसरी मोमबत्ती ऊपर के लिए थी।

रजाई में उलझकर छोटी बच्ची तख्त के नीचे गिर गयी और जोर-जोर से रोने लगी।

अप्पी और दामो खेल रहे थे, दोनों लपककर बच्ची को उठाने गये।

विभाकर ने मोमबत्ती जलायी तो हवा का झोंका उसे लील गया। खस-खस-खस···तीन तीलियाँ बेकार गयीं तो कन्धे पर का छाता उलटकर सीढ़ियों पर लुढ़क चला—भट-भट-भट !

कि रोशनी आ गयी।

कमरा जगमगा उठा, मगर बच्ची अप्पी की गोद में रोती रही।

छाता लेकर वापस आया विभाकर, उसे समेटकर बाहर खूँटी में लटका दिया। अन्दर होते ही सामने दीवार पर पिता के फोटो की तरफ निगाहें गयीं। क्षण-भर के लिए गौरव के अहसास मे सीना तन गया···कितना नाम है मेरे पिता का !

"भइया," दामो ने कहा, "हेम चुप नहीं होती है !"

"ला, मुझे दे ! तू नीचे जा, खाना तैयार है !"

"लो, यह तुमसे थोड़े चुप होगी ?"

"ला भी तो !"

"अप्पी ने मेरी गोली चुरा ली है, भइया !"

विभाकर ने दामो की इस शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह बच्ची को चुप कराने लगा—"आ आ आ आ, ओ ओ ओ ओ, ई ई ई ई, आ गे हेम ! चू ... प···"

कन्धे के सहारे सँभालकर लेने की वजह से नन्ही जान को आराम मिला और रुलाई सानुनासिक स्वर की प्रलम्बित मात्रा में बदल गयी।

"अब सोयेगी," नीचे से माँ ने कहा।

विभाकर कमरे मे घूम-घूमकर बच्ची को चुपचुपाता रहा। दामो और अप्पी भीगते-भीगते नीचे चले गये।

सीढ़ियों पर साया नहीं था, न रोशनी थी। सीढ़ियाँ हमवार होती सो भी नहीं। बच्चे ही नहीं, सयाने भी गिरते-पड़ते थे। मकान-मालिक किराया-दोहन

कला का आचार्य तो था ही, अपने को एक्जिक्यूटिव इन्जीनियरों का नाना समझता था।

अप्पी को भूख लग गयी थी। दिल सिकते हुए गोल-गोल फुलकों मे उलझ रहा था, नथनों में सेम-टमाटर-गाँठगोभी की तीमन महक-महक उठती थी। पिसी हुई सरसों और इमली का सौरभ मसाले को कई गुना अधिक स्वादिष्ट बना देते हैं, अपर्णा को इस तरह की तीमन बेहद पसन्द थी।

बेचारी के पैर चूक गये ठीक वहीं पर, जहाँ उत्तर से पूरब की ओर मुड़कर नीचे जाती थीं सीढ़ियाँ।

नगी-खुरदरी ईंटों से टकराकर माथा फूट गया। जोर की चीख निकली।

चूल्हे के पास से उठकर माँ दौड़ी, ऊपर से दौड़ा विभाकर।

वर्षा का वेग थम चुका था लेकिन बूंदाबाँदी जारी थी। अपर्णा को गोद में उठाकर प्रतिभामा ऊपर आ गयी ''लहू की लकीरे कनपटियो के नीचे आकर कन्धों पर फ्राक को भिगो रही थी। सख्त चोट ने लड़की को संज्ञाशून्य कर दिया था।

पड़ोस की स्त्रियाँ कमरे में इकट्ठी हो गयी।

विभाकर हकीम को बुलाने गया।

दामो छोटी बच्ची को सँभाले हुए था। इस तरह लोगों की भीड़ और उनका हल्ला-गुल्ला देख-सुनकर बच्ची पहले तो चकरा गयी, बाद को उसकी नन्ही चेतना पर आतंक छा गया और वह पूरी ताकत लगाकर रो पड़ी।

प्रतिभामा अप्पी के माथे का लहू आँचल के खूंट से बार-बार पोछती थी, लेकिन वह बन्द नहीं हो रहा था।

पड़ोसवाली औरत का घरवाला बड़े हास्पिटल में कम्पाउण्डर था। वह टिंचर का फाहा ले आयी। दाई झटपट आलू पीस लायी।

उर्म्मी की माँ ने लहू पोंछकर घाव पर टिंचरवाला फाहा रख दिया तो अप्पी दर्द की टीस से तड़प उठी।

बाकी औरतें मकान-मालिक और कार्पोरेशन को कोस रही थी।

हकीमजी आये तो औरतें हट गयी। प्रतिभामा उसी तरह बैठी रही।

देख-देखकर दढ़ियल बोला, "घाव गहरा है, लेकिन घबराने की बात नहीं। जाड़े का मौसम न होता तो अन्देशे की बात थी···"

फटी-फटी आँखो से हकीम का चेहरा देख रही थी, साँवली सूरत का लम्बोतरा चेहरा और तरतीब से तराशी हुई खिचड़ी दाढ़ी। बड़ी-बड़ी आँखें और चौड़ी पेशानी पर चमकता हुआ घाव का गहरा निशान। सिर पर काश्मीरी टोपी थी, ऊनी और रोएँदार।···प्रतिभामा की निगाहें गड़ी थी—ट्रेन में एक बार इसी से मिलता-जुलता चेहरा प्रतिभामा के कन्धे के करीब था, बिल्कुल

करीब···ठीक यही आँखें, ठीक यही नाक···। भीड़ की वजह से वे दूसरे-तीसरे नही, पाँचवें बर्थ की सीटों के छोर पर ऊपरी बर्थ की मोटी चेन के सहारे खड़े-खड़े झूल रहे थे। पिछली लड़ाई का जमाना था और इलाहाबाद-जंघई के दर्म्यान दौड़ रही थी उस वक्त वह ट्रेन, अपर इण्डिया एक्सप्रेस और तब हिलती-डुलती ट्रेन के मुताबिक छँटी दाढ़ीवाले का वह हाथ भी हरकत में था। बाँह के नीचे बगल के जिस्म से बार-बार हथेली सट रही थी और सहज शील-सकोचवाला लाजवन्ती का सनातनी संस्कार प्रतिरोध के नाम पर बस घुटकर ही रह गया था और उधर विभाकर के पिताजी ऊपरी बर्थ की मोटी चेन के सहारे खड़े-खड़े झूल रहे थे···

"चलिए," हकीम उठकर खड़ा हुआ और विभाकर से बोला, "साथ चलके मल्हम ले आइए और खानेवाली दवा भी मिलेगी···अन्देशे की कोई बात नहीं··· आप लोग इस मकान में शायद नये-नये आये हैं!"

"जी हाँ," विभाकर ने कहा, "चार-पाँच महीने हो रहे हैं मगर आपका नाम हम तक पहले ही पहुँच चुका था!"

बेटे की बात के समर्थन मे माँ ने भी माथा हिला दिया। हकीम साहब के होंठ खुशी में फैल गये। दाँतों की चमक ने मुस्कान को जाहिर कर दिया।

हकीम नीचे उतरा।

विभाकर पीछे-पीछे गया।

उम्मी की माँ आ डटी।

बगलवाली पड़ोसिन ने गर्दन बढ़ाकर हकीम की हिदायतों के बारे में जानना चाहा तो कम्पाउण्डर की बीवी ने नीचे से ही उसे सब कुछ बता दिया और आदत के अनुसार पूछ लिया, "समझीं भला ? कि नहीं समझीं ?"

"इत्ती-सी बात भला नहीं समझूंगी ?" दर्जा छै तक मिडिल स्कूल मे पढ़ी पड़ोसिन तमककर बोली, "और मेरा तो भाई ही डाक्टर है···पौने चार सौ पाता है।"

पौने चार सौ की इस बात पर कम्पाउण्डर की बीवी मुर्झा गयी। केतली में चाय का पानी खौल रहा था, बस उसे यों ही उतारकर छोड़ दिया। लिहाफ को ऊपर गर्दन तक खींच लिया। पचासी की तनखा पानेवाला 'कम्पोटर बाबू' मुंगेरीलाल जाड़े की रातों में भी साढे आठ-नौ से पहले शायद ही कभी घर आते थे। घर आकर वह कपड़े बदलते थे यानी कमीज-बण्डी निकालकर खूँटियों पर लटका देते थे और दो रुपये दो आनेवाली मद्रासी लुंगी माथा झुकाकर माला की तरह गले में डाल लेते थे, तत्पश्चात् कमर तक लाकर बेचारी को नीचे छोड़ देते···निबटने जायेंगे और पाखाने में दस मिनट बैठकर इत्मीनान से बीड़ी धूकेंगे, इसी से लुंगी में नाभि के नीचे हल्की गाँठ देकर खड़ाऊँ डालते थे पैरों में। फिर गुनगुनाकर अस्पष्ट ध्वनि में गाना शुरू करते थे, "आ रे बदरा आ···" शंकर

शैलेन्द्र का यह गीत बाबू मुंगेरीलाल को बेहद प्रिय था···तो सूती पाजामा तह करके तकिया के नीचे दबाकर वह कमरे से निकलेंगे। निबटकर तैयार होंगे तो टाइमपीस की मिनटवाली सुई काफी आगे बढ़ चुकी होगी और दूसरे ब्याह की इस नवेली का कर्कश स्वर मुंगेरीलाल के सींकिया पैरों में फुर्ती भर देगा, चूल्हे के करीब जाकर वह खुद ही पीढ़ा खींचकर बैठ जायेंगे!

बूँदाबाँदी थम चुकी थी।

मल्हम लगाते ही अपर्णा की आँखें मुँद गयीं।

प्रतिभामा ने उसे गद्दे पर लिटा दिया।

छोटी बच्ची को भी नींद आ रही थी। उसे गोद में लेकर उसने विभाकर से कहा, "क्या पता यह नट्टिन सो ही जायेगी, तुम और दामो नीचे जाकर खाना उठा लाओ। स्टोरवाला रूम बन्द करते आना···और हाँ, कटोरे में दूध होगा, लेते आना···"

दो

"लेमनजूस!"

"नहीं, मुझे बिस्कुट दीजिए!"

"और तुझे नहीं चाहिए बिस्कुट? सुबह का वक्त है, लेमनजूस भी ले और बिस्कुट भी। आरारोट का बिस्कुट खाने से ताकत बढ़ती है बेटी!···"

तीन बिस्कुट और दो लेमनजूस थमाकर बुढ़ऊ ने दोनों बच्चों को वापस रवाना किया, दुअन्नी कैश बाक्स के हवाले हो चुकी थी।

सामने चाय का प्याला था जिसकी नाक गायब थी।

मुंशी मनबोधलाल मकान-मालिक ही नहीं थे, सफल दूकानदार भी थे। बच्चों को लुभानेवाली जितनी भी वस्तुएँ हो सकती हैं, सबका संग्रह था उनकी दूकान में। बीडी-सिगरेट, लेमनजूस-बिस्कुट से लेकर लोटा-बाल्टी, गंजी-कमीज तक···क्या नहीं था उनकी दूकान में? लालटेन थी तो बिजली के बल्ब भी थे। कापी-पेन्सिल थीं तो मैट्रिक के गेस-पेपर भी थे।

आखिरी बार प्याला उठाकर वह चाय की शेष बूंद तक सुड़क गये और तृप्तिपूर्वक सामने सडक पर गुजरनेवाले राहगीरों को देखते रहे।

मुसल्लहपुर हाट से लौटते हुए रिक्शे सब्जियों के अधिकाधिक बोझों से लदे

होने के कारण यों भी अपनी तरफ ध्यान खींच लेते थे और यही हाल था उन बंगाली बाबुओं का जो हाथ में झोला लटकाये हाट की दिशा में जा रहे होते, आगे की तरफ से धोती का निचला छोर सँभाले और बीड़ी टानते हुए मासान्त के दिनों में उनका यह सब्जी-अभियान देखते ही बनता था !

मुंशीजी ने एक परिचित रिक्शावाले को आवाज दी, "ए सुनते हो जी !"

मैली-नीली बुश्शर्ट और खाकी हाफ पैण्ट···साँवली सूरतवाले उस नौजवान ने ब्रेक लगाकर रिक्शा रोका, रुकते-रुकते भी पहिये दस-पाँच गज बढ़ ही गये।

उतरकर रिक्शावाला दूकान के करीब आया।

"लो," मुंशीजी ने बीड़ी का बण्डल थमाया, "परसों ही आ गये थे, कहाँ गायब हो जाते हो तुम ?"

गायब हो जाने की कोई कैफियत उसने नहीं दी, मुंशीजी लेकिन हितैषी बुजुर्ग की तरह मुस्कराते रहे। जाने लगा तो बोले, "एक और न लेते जाओ ! खास जबलपुर का माल है, पटनिया माल भला इसका क्या मुकाबला करेगा ! दूँ न ?"

माथा हिलाकर नौजवान ने इन्कार किया।

उधर सब्जी के गट्ठरों से आकण्ठ ढकी हुई अधेड़ तरकारीवाली का गेहुँआँ चेहरा उतावली निगाहों मे दूकान की ओर घूम रहा था, खैर, रिक्शेवाले ने फुर्ती की और उसे कुछ कहने का मौका नहीं दिया।

मद्रासी लुंगी और गोलकट बनियान—बाबू मुंगेरीलाल कोयलेवाले की प्रतीक्षा मे खड़े थे। सम्पादकजीवाला 'आर्यावर्त' लेकर हॉकर अन्दर घुसने ही जा रहा था कि कम्पाउण्डर साहब ने हाथ बढ़ा दिया, "इधर लाओ न !"

अखबार देकर हॉकर ने अपनी साइकिल सँभाली।

इधर मुंगेरीलाल कागज में डूब गये।

"क्या हाल-समाचार है कम्पोटर बाबू ?" मकान-मालिक मे नहीं रहा गया।

मुंगेरीलाल छठे पेज पर रेलवे का विज्ञापन देख रहे थे—प्लेटफार्म पर केले के छिलके डाल देने से कितनी बडी दुर्घटना हो गयी ? पण्डित सोहनलाल धड़ाम से गिरे और माथा फट गया ··भारी भीड···स्ट्रेचर···खिन्न मुद्रा में स्टेशन मास्टर खड़ा है···

कम्पाउण्डर ने अखबार के पन्नों से निगाहें नहीं हटायी, विज्ञापन का आखिरी पैराग्राफ मन-ही-मन पढता हुआ बोला, "अम्बाला के पास इंजिन पटरी मे उतर गयी और आसाम मे औरत की कोख से बकरी का बच्चा पैदा हुआ है और नेहरूजी ने कहा है कि भारत कई मामलों मे सबसे आगे है···"

और मुंगेरीलाल आज का एक विशिष्ट समाचार मुंशी मनबोधलाल से छिपा रहे थे, यह बेईमानी उनके विवेक को खरोंचने लगी···विज्ञापन से तबीयत

उचट गयी, मन-मन्दिर के कोने में वह विशिष्ट समाचार गूँजने लगा—"बड़े अस्पताल में दवाओं की चोरी !"···"हजारों का माल गायब"···"डाक्टरों-कम्पाउण्डरों-नर्सों-कर्मचारियों का भ्रष्टाचार पराकाष्ठा पर"···"स्वास्थ्य विभाग के मन्त्री अविलम्ब पद-त्याग करें"···

यों, छिलकेवाली विज्ञापन-सामग्री भी कम्पाउण्डर के दिल को छू गयी थी क्योंकि सोनपुर के प्लेटफार्म पर उसके हाथों का फेंका हुआ छिलका एक घूंघटवाली नवेली के घुटनों को लहूलुहान कर चुका था। लेकिन, वह तो आठ-दस वर्ष पहले की बात थी न ? और, यह अस्पताल-काण्ड ! अरे बाप रे ! बिल्कुल ताजा मामला था यह तो !···

अखबार तहियाकर बाबू मुंगेरीलाल मकान के अन्दर आ गये और पुकारा, "विभाकर ! विभाकर ! ओ विभाकर !"

"जी, आया !" ऊपर की पीछेवाली खोली से आवाज आयी और अगले ही क्षण चौदह साला किशोर सीढ़ियों से उतरता दिखायी पड़ा।

अखबार लेकर और मन-ही-मन कम्पाउण्डर को कोसता हुआ विभाकर ऊपर अपने कमरे में वापस आया। उसे यह बात एकदम नागवार लगती है कि चालीस व्यक्तियोंवाले इस उपनिवेश के अन्दर खरीदकर अखबार पढ़नेवाला दूसरा कोई है ही नहीं ! कैसे है लोग ! अखबारों की चर्चा छिड़ने पर बोल उठते हैं, "हूंह, डेली ? हमारे दफ्तर में चौदह ठो दैनिक आता है ! सात ठो वीकली ! हम तो बस इत्मीनान से वही देखते रहते हैं···यहाँ तो हेड लाइन-भर झाँक लेते हैं···विभाकरजी, आपके पिता सम्पादक हैं फिर भी दो ही चार ठो डेली पेपर देख पाते होंगे मगर हमारे दफ्तर में···जरा देख आइये चलकर !"

विभाकर को इन लोगों पर अन्दर-ही-अन्दर गुस्सा आता है। इनकी सारी डींग उसे कोरी बकवास प्रतीत होती है। इस छोटी उम्र में भी वह समाचार पत्रों की अनिवार्यता भली भाँति महसूस करता था

कोयलावाले की मोटी आवाज गूँज उठी, "ल्ले···कोइला ह···लेक्···"

मुंगेरीलाल फिर बाहर निकल आये।

महीने का आखिरी सप्ताह था, पाँच सेर से ज्यादा लेने की गुंजायश थी नहीं। खुद ही वह ठेले पर झुक गये और पथरिया ईंधन के छोटे-छोटे हल्के डले उठा-उठाकर तराजूवाले पटरे पर डालने लगे।

कोयला वाला खुलकर हँसा और बोला, "घटिया माल नहीं रखता हूँ सरकार ! रुई की तरह फक-से आग पकड़ लेता है और एक बार सुलगा लीजिए फिर घण्टों जलता रहेगा···हार्डिंग रोड, बेली रोड, कदमकुआँ, बोरिंग रोड···हमीं लोग सबतर कोयला पहुँचाते हैं मालिक !···"

"बडे उस्ताद होते हो तुम लोग," मुंगेरीलाल ने हाथ से हाथ झाड़कर कहा,

"जरा-सी निगाह ओट हुई कि कोयले के बदले काले पत्थरों से ही तुम हमारी किचन भर दोगे ! दिन में दस दफे चूल्हा रूठेगा तो घर की मलिकाइन सर फोड़ लेगी···"

इस पर उधर मुंशी मनबोधलाल को हँसी आ गयी। प्राइमरी स्कूल का पड़ोसी लड़का बस्ता लटकाये पेन्सिल परख रहा था, दूसरी मुट्ठी के अन्दर से चवन्नी झाँक रही थी। ललचाई नजर से मुंशीजी ने मुट्ठी की तरफ कई बार देखा और अपने अबोध गाहक से कहा, "कापी नहीं लोगे ? अब की बड़ा उम्दा कागज है बबुआ···एक ठो जरूर ले लो।"

"नहीं, रहने दीजिए," लड़का बोला और पेन्सिल ले ली।

तब तक बाबू मुंगेरीलाल भी आ डटे।

"अभी आप मुस्करा क्यों रहे थे मुंशीजी ?"

"घर का मालिक कम्पोटर रहे और घर की मलिकाइन सर फोड़ लेगी !"

सर फोड़नेवाली बात सुनते ही कोयलावाला पास आ गया, बोला, "नहीं सरकार, हमारा कोयला खराब नहीं है। मलिकाइन को रत्ती-भर भी तकलीफ हो तो मेरे नाम पर आप कुकुर पोस लीजिएगा···"

मनबोधलाल मुस्कराते रहे।

मुंगेरीलाल रुपये की रेजगारी चाहते थे। एक हाथ दुकान की तरफ बढ़ा था, दूसरा भी अब ठेलावाले की ओर उठ गया। बोले, "बस, पैसे लो और भागो ! ज्यादा कानून मत बघारो···"

दुकानदार बनाम मकान-मालिक ने साढ़े पाँच आने कोयलेवाले के हवाले किये, बाकी रेजगारी कम्पाउण्डर को थमायी।

कोयलावाला ठेला लेकर आगे बढ़ा।

मनबोधलाल मुस्कराये और कहा, "दस पैसे का सौदा परसों अन्दर मँगवाइन थे···"

"सो सब पहली के बाद होगा···" मुंगेरीलाल ने मानो पीठ की तरफ से ही कहा, अन्दर आने की जल्दी थी।

उतावली में गू पर एक पैर पड़ गया जो कि उन्होंने स्वयं नहीं देखा। दरवाजे की चौखट लाँघकर भीतर अंगनई में दाखिल हुए तो पत्नी बोली, "हुँ हुँ हुँ हुँ, यह चन्दनवाला पैर तो धो आओ !···जाड़े का छोटा दिन और पानी की किल्लत···तुमने मेरा एक काम और बढ़ा दिया ! दाई अपनी क्या है, शैतान की साली है···! कुल्लम तीन बाल्टी पानी भरके भाग खड़ी होती है···हे भगवान, यह कैसा नरक-निवास लिखा था लिलार में···जाओ, सड़कवाले नल पर से पैर धो आओ···"

कम्पाउण्डर ने कोयलावाली टोकरी चूल्हे के करीब पटक दी। घिन और

गुस्सा···सिर से लेकर ऐड़ी तक सुलग उठा बदन। जोर-जोर से चीखने लगा, "सुअर के बच्चे ! जहाँ-तहाँ हगते फिरते हैं। कमीनों की औलाद···मैं साखू की कील ठोंक दूँगा, आखिर समझ क्या रक्खा है। लेंडी के पूत···"

पाँच मिनट तक कम्पाउण्डर गालियाँ बकता रहा।

जवाब में एक भी शब्द नही, कहीं से भी नहीं ! किसी ओर से भी नहीं।

मुंगेरीलाल के दिल का उफान बाहर निकल चुका तो वह मकान के सदर फाटक को पार करके बाहर सड़क पर आ गया।

पच्छिम की ओर तीन मकान आगे बायें हटकर फुटपाथ के कगार पर कारपोरेशन का नल था, बुढ़िया बंगालिन के मकान की दीवार से लगा हुआ। उसी के साथ-साथ खुला-फैला गन्दा नाला बह रहा था, सदाबहार गटर ! 4×2 वर्गफुट का सीमेण्ट का घिरावा नल के नीचे, नाले पर बिछा था। सड़क की तरफ से खुला होने के कारण आम जनता इस जलाशय का पूरा उपयोग कर लेती थी।

कम्पाउण्डर करीब आया तो देखा, पंकज प्रकाशनवाले नेपाली दरबान का नौजवान बेटा हाफ पैण्ट सबुना रहा है। जान-पहचान की मुस्कराहट उभरी तो लाल मसूड़ोंवाले दाँत मानो दुगुने सफेद होकर जगमगा उठे। उठकर वह खड़ा हो गया, फुटपाथ पर हट आया : बोला, "आइए हजूर !"

"बस, एक मिनट बहादुर ! सिर्फ पैर धोना है···"

"नहीं हजूर, हाथ-मुँह भी धो सकता है आप ?"

गिरते पानी की चोट में एक पैर का गन्दा तलवा अपने-आप साफ हो गया तो मुंगेरीलाल ने शुचिता के मानव सुलभ संस्कार की वजह से दूसरे पैर को भी नल के नीचे डाल दिया।

नेपाली ने पूछा, "गोबर लगा था हजूर ?"

"हाँ जी," आहिस्ता से कम्पाउण्डर कह गया।

ऐड़ियों से रगड़-रगड़कर पैर धो लिए तो सीधे-सादे नेपाली नौजवान की जुबान से एक बार और वह प्रिय सम्बोधन अपने लिए उसने निकलवा लेना चाहा।

कि आप ही बहादुर के मुँह से निकल आया, "हो गया हजूर ?"

मुंगेरीलाल की तबीयत खिल उठी। इस बार पूरा-पूरा स्वाद मिला हजरत को अपने व्यक्तित्व का।

फिर तो इस कदर फूले-फूले बाबू मुंगेरीलाल वापस आये कि मकान-मालिक से पड़ोसियों और उनके बच्चों के बारे में शिकायतें पेश करने का पूर्व-संकल्प तक खयाल से उतर चुका था।

तीन

सदर दरवाजे से आगे बढ़ते ही बायी तरफ एक बड़ा कमरा था। वह हमेशा बन्द रहता था। कमरे के ऊपर चौबारा खपरैलों से छवाया हुआ। अन्दर पिछले चार महीने से जो परिवार टिका था उसमें तीन प्राणी थे। एक अधेड़ औरत, एक अठारह साला छोकरी, और एक अधेड़ मर्द।

महिला को ल्यूकोरिया हो गया था, बड़े अस्पताल मे चिकित्सा चल रही थी। लड़की परिचर्या के लिए साथ आयी थी। मर्द चार-छै रोज दिखायी पड़ता फिर हफ्ता-भर के लिए कहीं चला जाता।

बीमार थी, सो बुआ होती थी। लड़की भतीजी।

कम्पाउण्डर की बीवी नई-नवेली तो थी ही, बेहद चुलबुली तबीयत की थी।

अक्सर दुपहर को, जब मर्द अपने-अपने धन्धे मे निकल जाते, कम्पाउण्डर की बीवी उस छोकरी के साथ गंगा जाती थी—कृष्णाघाट। उम्र मे चार-छै साल का ही अन्तर था, एक को दूसरी के दिल मे घुसने के लिए ज्यादा कसरत नहीं करनी पड़ी।

ऐसे ही वक्त एक बार कम्पाउण्डर की बीवी ने उस छोकरी से पूछ लिया, "तुझसे पहले बुआजी के साथ जो रहने आयी थी, कौन थी भुवन?"

"हमारे तीसरे चाचा की लड़की थी," भुवनेसरी ने जवाब दिया और बुआ की चोली में साबुन रगड़ती रही। क्षण-भर बाद ही जाने क्या बात दिमाग में आयी कि उलटकर पूछ बैठी, "क्यों जीजी, अभी वह क्यों याद आयी?"

इस पर मुस्कराती रही कम्पाउण्डर की बीवी, कुछ बोली नही।

भुवन को इस पर शक हुआ। लगा कि यह औरत कोई सूराख पा गयी है उनके गोरखधन्धे की।

साबुनवाला हाथ उठाकर भुवन बोली, "उसका माथा ठीक नही था, सुनती हो जीजी?"

इस पर भी कम्पाउण्डर की बीवी कुछ नहीं बोली। जोर से पति का कपड़ा पछीटती रही।

पीछे, नहाते वक्त बात चली तो प्रसग ही बदल चुका था।

भुवन ने कहा, "लाओ जीजी, पीठ मसल दूं।"

"बस! पीठ ही?" शरारत-भरी नजरों से कम्पाउण्डर की बीवी ने भुवनेसरी की ओर देखा और पीठ दे दी…।

"एक बात पूछूं भुवन?"

"एक ही क्यों, दो पूछ लो चाहे?"

"जाड़े की रात में अकेले कैसे नींद आती है?"

"बस, तुम तो जीजी एक ही सवाल जानती हो !"

"अपने तो बस एक ही सवाल जानते हैं ! माँ-बाप ने जब खूंटे से बांध दिया तो दुनिया-भर के खटराग क्या जानें : वर्ना हम भी सात घाट का पानी पीते, सौ किसिम के सुख लूटते···"

अब भुवनेसरी को यकीन हो गया कि जरूर यह औरत हमारी कार-गुजारियों के बारे में थोड़ा-कुछ जानती है···उसके कानों में गूँजने लगा, 'वाह रे चाचा, वाह री भतीजी, वाह री बुआ !'

पीठ मसलवाकर कम्पाउण्डर की बीवी ने कहा, "ला, अब तेरी पीठ का मैल छुड़ा दूँ···"

ना-ना करके भुवन छिटक जाना चाहती थी, मगर नहीं बच सकी। कम्पाउण्डर की बीवी ने उसे पकड़ लिया। पानी के अन्दर ही कमर को जाँघों की गिरफ्त में लेकर वह भवन को पीठ मलने लगी।

गौर से देखने पर छोकरी की पीठ पर तीन-चार लम्बे-पतले निशान दिखाई पड़े। पूछा, "ये कैसे दाग है ?"

भुवनेसरी ने सहज भाव में कहा, "पिटाई के निशान हैं।"

"पिटाई के ?"

"हाँ, बेंत के।"

"किस राक्षस ने पीटा था ?"

"राक्षस नहीं था जीजी, बहुत बड़े महात्मा थे वो तो···जितना ज्यादा खुश होते थे, उतनी ही अधिक पिटाई पड़ती थी ! मेरी पीठ पर बाईस बार बेंत बरसी थी न ? बेहोश हो गयी थी, मुझे मामा उठाकर ले आये थे···"

कम्पाउण्डर की बीवी ने कहा, "फिर तो तुझे बड़ा ही अच्छा दूल्हा मिला होगा न ? खूब मानता होगा और खूब···"

बालोंवाले अपने बड़े सिर की ओट में भुवन के होंठों को उसने जोरों से चूम लिया···

जरा हटकर एक बुढ़िया नहा रही थी, ऊपर दो औरतें कपड़े पछीट रही थीं ···भुवन बोली, "लोग क्या कहेंगे जीजी ?"

"जहन्नुम में जायें लोग !" उसने कहा और मुँह बना लिया।

गंगा से लौटीं वे तो डेढ़ बज रहा था :

सड़क पर, मकान के नजदीक, रिक्शा लगा था। हाथों में उर्दू का अखबार थामे एक सरदारजी बैठे थे रिक्शा पर, खिचड़ी दाढ़ी और छींट का साफा। खुले गले का कोट और पेशावरी स्टाइल का पाजामा। पैरों में नुकीली जूतियाँ।

दोनों अन्दर बुआ के सामने आयीं तो एक अपरिचित महिला बैठी दिखायी पड़ी। पहनावा पंजाबिन का, बोली बिहार की।

बुआ के आगे दो ठोंगे रखे थे, अंगूर और सेब के।

आँखों का इशारा पाकर भुवन और कम्पाउण्डर की बीवी इधर आ गयीं, उन्हें गुफ्तगू के लिए छोड़ दिया।

कम्पाउण्डर के कमरे में आकर भुवनेसरी ने पछीटे हुए कपड़े जीजी को थमा दिये। पलंग पर लेटती हुई वह बोली, "माथा भारी है, बुखार आये और मरूँ···"

"कैसी अलच्छ बात मुँह से निकालती है, भुवन !" कम्पाउण्डर की बीवी ने फटकारा और कपड़े डालने छत पर चली गयी।

वापस आकर थाली में अपने लिए उसने खाना निकाला।

मोटे चावलों का भात, बथुआ और बडी का तीमन, आँवले की चटनी।

मुँह के अन्दर पहला कौर ठूँस लिया और बोली, "तू तो यह खाना सूँघ भी नहीं सकती···क्या-क्या पकाया था ?"

भुवनेसरी ने कहा, "आलू-गोभी, टमाटर की चटनी···"

"और बुआ के लिए ?"

"दलिया और लौकी की भाजी और दूध···"

कम्पाउण्डर की बीवी ने पूछा, "अच्छा भुवन, यह जो अभी पंजाबिन बैठी थी बुआ के पास, वह भी तो रिश्ते की हो कोई होगी न ?"

भुवनेसरी ने कहा, "नहीं, रिश्ते की नहीं है यह। जान-पहचान की होगी। बात यों है कि हमारे फूफाजी पोस्ट मास्टर थे, दस-बीस शहरों में रहे थे। दो-दो वर्ष पर जगह बदल जाती थी। बिहार के अन्दर शायद ही कोई जिला-सबडिवीजन छूटा हो उनसे। बुआ हमेशा साथ रही। देखती नहीं हो कि किस ठाठ से पक्की बोली बोलती है !"

कम्पाउण्डर की बीवी ने दिल-ही-दिल में अपने से कहा, 'छिनाल कहीं की ! उड़ती चिड़िया की पूँछ में हल्दी लगानेवाली राँड ! किस कदर बात बनाती है ···फूफाजी पोस्टमास्टर थे ! मामा मिनिस्टर थे ! चुड़ैल कहीं की !···'

प्रकट तौर पर उसने कहा, "मैं ठेठ देहात की रहनेवाली मामूली औरत हूँ, पचासी रुपइया तनखा आती है घर में। घरवाला जास्ती पढ़ा-लिखा नहीं है··· इसी से अनाप-शनाप सवाल पूछती रहती हूँ तुझसे। रंज न होना भुवन !"

भुवनेसरी उठ बैठी और बोली, "तुम भी भला क्या बात करती हो जीजी ! बुआ के बारे में पूछती हो, ठीक ही करती हो। नेह-छोह न होता तो पूछा-पेखी नहीं न करती···"

मगर मन-ही-मन भुवनेसरी कहती गयी, 'और तेरे पास नित नये छैले आते हैं। ठिठोली और खिलखिलाहट···कमीज के कालर में सेन्दुर का दाग—इत्र की खुशबू और रेशमी रूमाल···गटर में चमकते हुए चूड़ियों के टुकड़े···'

"बुआ बुला रही हैं आपको," पड़ोस की बच्ची ने आकर कहा और

भुवनेसरी अपने बासे की तरफ गयी।

बुआ ने उसे दो नम्बरी नोट थमाये।

पूछा, "कुल कितने हुए ?"

"सात नम्बरी और पन्दरह दसवाले।"

"ले, यह भी लेती जा !"

सिरहाने में गद्दे के नीचे दस-दस के पाँच नोट रखे थे। बुआ ने निकालकर वह भी थमा दिया।

रुपये ट्रंक में रख आयी भुवनेसरी।

जरूर ही सरदारिन दे गयी होगी यह रकम ! किस मद के रुपये होंगे ! खरीदी जानेवाली किसी लड़की के लिए बयाने की रकम तो नहीं थमा गयी है ? ···साहस नहीं हुआ कि बुआ से इस बारे में कुछ पूछ लेती, आकर कुर्सी पर बैठ गयी भुवन। सोच रही थी कि स्टोव जलाये। तीन-चार के दरम्यान बुआ को चाय जरूर चाहिए।

बीमारी के चलते बुआ का बदन ढाँचा-भर रह गया था।

हथेली से बुआ ने इशारा किया।

भुवन तख्त पर आ गयी, सटकर बैठी बुआ से।

आहिस्ता से बोली, "बड़ी पाजी है, कम्पाउण्डर की बीवी से ज्यादा न सटना। जाने कैसे क्या निकलवा ले ज़ुबान से ! दुश्मन के आदमी पीछे लगे हैं। भले नो किताब पढ़ती रहती है···क्या बातें कर रही थी आज ?···ऊपरवाला लड़का नहीं लौटा है स्कूल से ? ढेर-सी किताबें हैं उसके पास—मैं तो वहीं से किताबें मँगवा लिया करती थी मगर पीछे पता चला कि बाप किसी अखबार में काम करता है, सम्पादक है। सम्पादक लोग बड़े शैतान होते हैं। भूल करके भी इन शैतानों से जान-पहचान नहीं करनी चाहिए। पीछे लगेंगे तो खोद-खादकर सारी बातों का पता लगा लेंगे, किसी-न-किसी बहाने तुम्हारी असलियत अखबार में छपकर लोगों के सामने आ जायेगी और तुम मुँह दिखाने लायक नहीं रह जाओगी।···"

"क्यों, मैंने क्या किया ?" लड़की चौकन्नी होकर पूछ बैठी, मानो सचमुच कोई सम्पादक उसके पीछे पड़ जायेगा !

"धत् !" बुआ को हँसी आ गयी भुवन के भोलेपन पर, "मैं तो बस बात कर रही थी कि दुश्मन हमारे पीछे लगे हैं···और तू जो नाहक चिहुँक उठी, पगली कहीं की !"

बुआ भुवनेसरी की पीठ पर हाथ फेरने लगी। चोटी झूल रही थी, अगले ही क्षण चोटी से खेलने लगी बुआ।

भुवनेसरी सोच रही थी, 'कौन, चालीस-पचास भी तो नहीं लगेंगे। मद्रासी

साड़ी के लिए कई बार कहा है मगर ध्यान नहीं देती हैं बुआ···कम्पाउण्डर की बीवी के पास तीस-तीस की दो साड़ियाँ हैं, बम्बइया छींट के सिल्कन ब्लाउज हैं तीन-चार डिजाइन के, कानों के टाप्स हैं और मगर की शकल के कुण्डल हैं··· लेकिन मेरे पास क्या है ? तीन-चार मामूली साड़ियाँ, दो ब्लाउज, रोल्ड-गोल्ड के ईयरिंग और···बुआ मुझे ठगती है···यह औरत सौ चुड़ैलों की एक चुड़ैल है। जाने कितनी छोकरियों का कीमा बनाया होगा। मुझे भी तल-भूनकर खा जायेगी। हम क्या हैं ? रकम बनाने की फैक्टरी के कलपुर्जे हैं ! देखे तो आके कोई, ममता का कुआँ बनकर कैसे हमदर्दी उड़ेल रही है इस वक्त।···'

"तो तू गुमसुम क्यों बैठी है ?" बुआ ने आँखों में आँखें डालकर जानना चाहा।

भुवन ऊपर-ऊपर से मुसकराई।

बुआ बोली, "शर्माजी आये तो कपड़े मँगवाऊँगी। एक भी ढंग की साड़ी नहीं है, तेरे पास। कपड़े तो निहायत जरूरी होते हैं न ? कभी याद भी तो नही दिलाती है। छोकरियाँ खुद गूँगी बन जायें तो दूसरा क्या करे ?"

भौंहें तानकर और आँखें नचाकर भुवनेसरी ने अपने पैरों की ओर देख लिया जो कि किचन की तरफ बढ़ गये थे।

बुआ ने कहा, "पालक के पकौड़े बना लेना।"

"डाक्टर ने मना कर रखा है न ?" जवाब आया।

"जहन्नुम में जायें डाक्टर-फाक्टर, जीभ को मैं पत्थर नहीं बना लूँगी। मन को रुलाऊँगी तो मन भी कलपता रहेगा। जा, तू मेरी बात सुन ! पालक के पकौड़े अच्छे रहेंगे।"

चार

बुकसेलर की दुकान-भर थी, रहने की जगह मुहल्ला महेन्द्रू मे थी। दर्जी का भी यही हाल था।

बुकसेलर ने अन्दर भी एक अँधेरा कमरा ले रखा था—गुदाम के लिए। बाहरवाले कमरे में तीन तरफ बड़ी-बड़ी रैक थीं। दरवाजे के पास काउण्टर था। दो ऊँची कुर्सियाँ थीं—बिकने के लिए रैकों में सजायी हुई किताबें स्कूली स्तर की थी या तो फिर जीवनी-सीरीज की छै आनेवाली साधारण पुस्तकें थीं।

साइनबोर्ड था—'साहित्य सौरभ ग्रन्थागार'।

बाहर से देखने पर लगता नहीं था कि किराये के भी पैसे वक्त पर दे पाते होंगे। मालिक का भाई और नौकर, बस। स्टाफ में तीसरा नहीं था कोई।

विभाकर के पिता, दिवाकर शास्त्री स्नेहपूर्ण इंगित पाकर कभी-कभी रुक जाते और पान के दो बीड़े ले लेते, बाकी उनका भी कोई रिश्ता नहीं था।

प्रोप्राइटर का नाम था तिलकधारी दास। वह प्रकाशन की कई संस्थाओं में काम कर चुका था। पुस्तकें मंजूर करनेवाली कमेटी के सदस्यों की पोल उसे अच्छी तरह मालूम थी। पाठ्य-पुस्तकों का अवैध व्यापार···विभिन्न जिला बोर्ड के स्कूलों में 'स्टेशनरी' के नाम पर रद्दी माल की सप्लाई···बुनियादी तालीम के क्षेत्रों में चर्खों और चटाइयों तक का आर्डर बटोर लाना···ग्रामोद्योग के नाम घी, तेल और खादी का धन्धा···बाबू तिलकधारीदास को जाने कितने कामों का तजुर्बा हासिल था। नेपाल से गाँजा कभी ला सके थे कि नहीं, पता नहीं।

लगातार तीन रोज तक नाश्ता कर चुके तो दिवाकरजी को लगा कि इस उदीयमान 'प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता' की कुछ-न-कुछ नीयत जरूर होगी वर्ना विशुद्ध श्रद्धा तो बेहद सूखी हुआ करती है।

आखिर शास्त्रीजी ने कहा, "दासजी, आप कुछ कहते क्यों नहीं? मेरे लायक कोई काम हो तो अवश्य कहें!"

दासजी ने रूमाल निकालकर मुँह पोंछा और बोले, "दो-दो फर्मे की आधी दर्जन किताबें तैयार कर दीजिए···आलू की खेती, आम का धन्धा, बाँस का व्यवसाय, बुनियादी तालीम, नदी नियन्त्रण, सोनपुर का मेला···बोर्ड की स्कूली लाइब्रेरी में इन किताबों की खपत निश्चित है। अगले महीने तक चाहिए।"

शास्त्रीजी रुचि के पत्रकार थे। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर निबन्ध लिखा करते थे। बाकी वक्त में अंग्रेजी-बंगला-उर्दू से कहानियों का अनुवाद। अभी आलू की खेती और आम का धन्धा आदि के बारे में सुनते ही कानों को बुरा लगा, उबलने की तबीयत हुई। किन्तु नकद रकम पाने की तत्काल सम्भावना के चलते मन काबू में रहा—साहित्यकार का स्वाभिमान एक तरफ और लाभ की आशा में झुलनेवाला हिसाबी विवेक दूसरी तरफ···दोनों में खींचतान होने लगी।

दासजी ने कहा, "कब तक देते हैं?"

शास्त्रीजी बोले, "अभी तो मुश्किल है, मगर···"

अन्दर-ही-अन्दर स्वाभिमान ने कहा, 'छिः, आलू की खेती पर किताब लिखोगे! लोग क्या कहेंगे?'

'लोग क्या कहेंगे! कुछ नहीं कहेंगे, हाँ, पैसा मिलना चाहिए,' गृहस्थी विवेक ने लाभवाले पक्ष का अनुमोदन किया। दासजी ने कहा, "अगर-मगर कुछ नहीं, आपको यह काम करना ही पड़ेगा, महीने-दो महीने बाद ही सही!"

फिर आहिस्ता से कह गया, "दो सौ फौरन मिल जायेंगे···"

दिवाकरजी ने संयम से काम लिया, हाँ या ना कुछ नहीं निकला उनके मुँह से। पान के बीड़े गालों के अन्दर ठूँसकर चुटकी-भर जर्दा फाँक गये। दुकान से बाहर निकलते-निकलते उँगली से चूना चाट लिया।

मनबोधलाल ने आवाज लगाकर कहा, "हजूर, एक मिनट !"

मकान-मालिक शास्त्रीजी को सामने पाकर बोला, "रुपये की किल्लत में पड़ गया हूँ सरकार, दो महीने पूरे हो गये हैं।"

"अगले सप्ताह मिलेंगे," दिवाकरजी ने कहा, "इस बार जरूर हिसाब साफ कर दूँगा मुंशीजी !"

और अब ध्यान आया कि अस्सी रुपये मकान-मालिक को देने होंगे, तो तिलकधारीदास का अनुरोध वरदान ही प्रतीत हुआ। सोचने लगे, 'सौ तिकड़म भिड़ाकर रकम बटोरता है तो क्या हुआ ? बेर-कुबेर मेरे जैसे बीस गरजमन्द आदमी उसके सामने जा धमकते हैं, वह किसी को निराश नहीं लौटाता। सौ नहीं देगा, मगर पचास जरूर देगा। पचास नहीं देगा, मगर बीस-पच्चीस जरूर देगा। दस नहीं देगा, पाँच जरूर देगा।···तुम्हारी गाड़ी नहीं अटकी रहेगी, अपना कन्धा लगाकर वह उसे आगे ठेल देगा !'

सोचते-सोचते शास्त्रीजी आगे चले गये।

तिलकधारीदास सहरसा और डाल्टनगंज वाले बुकसेलरों से निबटने लगा। दर्जा आठ और दर्जा नौ की अधिकांश किताबें टेक्स्टबुक कमेटी ने छापी थीं, लेकिन उनमें से कुछ-एक मिल नहीं रही थीं। दासजी इन अप्राप्त पाठ्य-पुस्तकों को दूर-देहात तक पहुँचा देने का इन्तजाम करते थे और नाटकीय ढंग से।

शास्त्रीजी का परिवार देहात जा चुका था। दो रूम और खाली हुए तो तिलकधारीदास ने उन्हें ले लिया था जिनमें दासजी की साली आ डटी थी। उसके दो जवान बेटियाँ साथ थीं। कहते थे कि ये लोग भी बड़े अस्पताल में इलाज करवा रही थीं···माँ का आपरेशन होना था और लड़कियाँ तीमारदारी में थीं।

ग्रामोद्योग भवन की कृपा से देहातिनें भी आधुनिकाएँ दिखने लगती हैं। विमला और शीला के साथ ठीक यही बात हुई। अशिक्षा या अल्पशिक्षा का पता जुबान खुलने पर ही लग सकता था ! पोशाक और चलने-फिरने के लिहाज से वे कालेज की छात्राएँ लगती थीं।

तिलकधारीदास इन दोनों पर काफी रकम खर्च कर रहा था। उन पर सान चढ़ा रहा था। कभी सलवार-कुर्ती, कभी फ्राक-जम्पर, कभी साड़ी-ब्लाउज···हर शाम वे बदली हुई भूमिका में नजर आतीं। कभी दासजी खुद और कभी उसका भाई छोकरियों को रिक्शे पर बाहर ले जाता। रात को लौटते-लौटते दस-ग्यारह का वक्त हो जाता, पड़ोसी सो चुके होते।

मीठापुर—कदमकुआँ—बोरिंगरोड—बेलीरोड—दिवाकरजी ने उन लड़कियों को बीच-बीच में कई जगहों में देखा था और उन्हें बड़ा ही विस्मय हुआ था।

पन्द्रह-बीस रोज बाद उन्हें लेने-छोड़ने के लिए जीप पहुँचने लगी··· आखिर एक शाम कार भी आयी और अगली शाम को छोड़ गयी।

मुंशी मनबोधलाल दुकान पर बैठे थे। लड़कियाँ अन्दर जाने लगीं तो पूछ लिया, "कहाँ हो आयीं तुम लोग?"

"राजगीर," उनमें से एक ने कहा। मुंशीजी दूसरा सवाल करने ही वाले थे मगर वे अन्दर चली गयीं।

कम्पाउण्डर बैठा था। उससे नहीं रहा गया। बोला, "रूपनगर की राजकुमारियाँ हैं, सीधे मुँह बात तक नहीं करतीं···"

मुंशीजी की ओर झुककर कान में कुछ कहने लगा कम्पाउण्डर। तनती-सिकुड़ती भौंहें और फैलती-सिमटती आँखें तथ्य की गहनता का आभास दे रही थीं···

कान हटाकर मुंशीजी ने कहा, "हमको यह सब नहीं मालूम था कम्पोटर साहेब, आज आप ही से सुन रहा हूँ···अगर ऐसी बात है तो इनसे मकान खाली करवा लेना है···मगर ये तो बड़े ही शरीफ खानदान की लगती हैं बाबूजी! आपको किसी ने इनके खिलाफ भड़का तो नहीं दिया है कहीं?"

"मैं दर्जा सात-आठ का स्कूली छोकरा नहीं हूँ मुंशीजी!" बाबू मुंगरीलाल ने तमककर कहा, "कि मामूली बुढ़िया पुराण और असली तिरिया चरित्र का फर्क नहीं समझूँगा। और, आप तो मकान-दुकान छोड़कर कहीं जाते-आते नहीं! हफ्ते में एकाध बार हाट-घाट हो आते होंगे, मानता हूँ। मगर मेरी साइकिल तो जुगाली नहीं करती है बैठकर।"

मुंशी मनबोधलाल उस वक्त तो चुप मार गये, अगले दिन दिवाकरजी से अकेले में पूछा।

दिवाकर को उतनी जानकारी नहीं थी, माथा हिलाकर बोले, "दाल में काला-काला कुछ नजर आता है जरूर! दासजी की माया दासजी ही जानें। रोज शाम को दो-चार घण्टे लड़कियाँ जाने कहाँ चली जाती हैं!·· क्या कीजिएगा, छोड़िए भी! किराया तो वक्त पर मिल ही जाता होगा?"

"इसी से तो चुप हूँ," मुंशीजी ने कहा, "इतना बढ़िया किरायेदार मुझे आज तक मिला ही नहीं शास्त्रीजी!"

शास्त्रीजी ने हँसकर कहा, "तो फिर जाने दीजिए, दुनिया को छेड़नेवाले हम-आप कौन होते हैं?"

"मगर कल कुछ हो जाये तो?" मकान-मालिक बोला।

"होगा क्या ?"

"मुझे तो शक हो गया है।"

"दो ही चार रोज की तो बात है, ये तो बस अब जाने ही वाली हैं।"

"तीन महीने के लिए लिया था मकान···"

"तो, मकान तो खाली भी रह सकता है न ?"

"मुंशीजी की समझ में यह पहेली समा नहीं रही थी और दिवाकर साफ-साफ कुछ बतला नहीं रहे थे। लगता था कि जानते हैं लेकिन बतलाना नहीं चाहते··· मनबोधलाल ने अपने को समझा-बुझा लिया और दुकान के अन्दर लौट आये।

चाय और लेमनड्राप खत्म हो रहे थे। नहाने का साबुन नहीं बचा था। अब की अच्छी क्वान्टिटी के तीन अलग नमूने मँगवाने की बात दिमाग में आयी। बिस्कुटों और चाकलेटों की खपत इधर दुगुनी हो गयी थी। सूती और ऊनी स्वेटर भी रखने लगे थे···महीने के आखिरी दिनों में देशी ब्लेडों की माँग बढ़ जाती थी।

माल की खपत का अन्दाज लेकर मनबोधलाल रोकड़-बही ले बैठे। हिसाब-किताब ठीक रखने में भांजा मदद करता था फिर भी एक बार रोज अपना बही-खाता आदि से अन्त तक देख जाना उनके लिए प्रमुख नित्यकर्म हो गया।

बारह बज चुके थे, भूख लग आयी थी। खाने के लिए ऊपर जाना ही चाहते थे कि एक बढ़िया कार आकर सामने रुक गयी।

ड्राइवर नजदीक आया। गौर से मुंशीजी की तरफ देखा और हुलसकर बोला, "प्रणाम मनबोधबाबू, जयमंगलसिंह का भतीजा हूँ मैं सुमंगल। मोतिहारी में एक ही कमरे में रहते थे हम लोग। याद है न ?"

पुराने परिचय की नयी झलक ने मुंशीजी के चेहरे को चमका दिया मानो। आँखें फैल गयी, होंठ के कोने फैल गये। लाल मसूड़ों में जमे हुए छोटे दाँतों की कतार खिल उठी।

"कब से पटना हो ?" मुंशीजी ने पूछा, "बिल्कुल बदल गये हो ! नहीं बतलाते तो पहचानना मुश्किल था सुमंगल !···गाड़ी किसकी है ?"

सुमंगल ने कहा, "यह मैं दूसरी बार गाड़ी लेकर आया हूँ, उस रोज तो रात का वक्त था। मुझे क्या पता कि यह औरंगाबादवाले हमारे उन्हीं मनबोध चाचा का मकान है कि जिनके साथ पन्द्रह वर्ष पहले मैं रहा था। दर्जा नौ के बाद ही स्कूल छूट गया तो चाचा ने मोटर चलाने की ट्रेनिंग दिला दी और तभी से मशीन का पुजारी हूँ। दो वर्ष हो गये यहाँ पटना में। हमारे मालिक हैं गंगापार के मशहूर जमींदार, दीघा में कोठी बनवायी है अस्सी हजार खर्च करके···फिर कभी आऊँगा चाचा, अभी जल्दी है···दासजी के रिश्ते की दो लड़कियाँ हैं न अन्दर ? उन्हें कोठी पहुँचाना है···कोइलवर में सोन के किनारे पिकनिक होगा, दो-तीन खेप में सभी वहाँ पहुँचेंगे···"

"ये लड़कियाँ क्या करेंगी वहाँ ?" मनबोधलाल ने पूछा। अन्दर-ही-अन्दर वह खुश हुए कि जानकारी के लिए अब सही सूत्र हाथ लगा है।

ड्राइवर बोला, "वाह ! सब कुछ इन्हीं पर तो है···इतना अच्छा गाती हैं कि···फिलिम के गीत···आपको नहीं सुनाया है कभी ?"

मुंशीजी ने मुस्कराकर कहा, "हमारे पास कार और कोठी कहाँ है सुमंगल !"

जवाब मे सुमंगल भी मुस्कराया।

मुंशीजी ने अन्दर उन लड़कियों को खबर करवा दी और इधर रामलीला के बारे में सुमंगल से सुनते रहे। सत्ता और अवसरवादी राजनीति ने जिन पर नयी कलई चढ़ा दी है, जमींदारों के वे वंशज किस किस्म का नैवेद्य किस तरह स्वीकार करते हैं और फिर भक्तजनों की कामना किस रूप में फलती है, सुमंगल की बातों से मनबोधलाल को इस सिलसिले में थोड़ा-बहुत मालूम हुआ।

कम्पाउण्डर ने ठीक ही बतलाया था कि इन्हीं लड़कियों की बदौलत तिलकधारीदास की दो-तीन किताबें मंजूर होने जा रही थीं।

पाँच

उम्मी की माँ सेकेण्ड हैण्ड सिलाई-मशीन रखे हुए थी। पास-पड़ोस के परिवारों से कपड़े बटोर लाती और सिल-सिलाकर वापस दे आती।

बड़े बालों वाला महिम कमर्शियल आर्टिस्ट था। पाँच-सात प्रेसों से उसका सम्बन्ध था और कूँची सधी हुई थी। स्कूली किताबों और बाल मासिक पत्रों के प्रकाशक उसकी कला पर मुग्ध थे। ढाई-तीन सौ रुपये कमा लेना कोई बड़ी बात नहीं थी। लेकिन पिछले कई वर्षों से महिम की तबीयत धन्धे से उचट गयी। बस, सौ-सवा सौ का काम करता था। बीच-बीच में सनक सवार हो जाती तो ज्यादा काम भी कर डालता। बाकी वक्त सिगरेट फूँकना, मित्रों की गर्दन तोड़ना, ब्रिज खेलना, सिनेमा देखना, जासूसी उपन्यास चाटना और···

और दो-एक ऐसे काम भी महिम का वक्त लेते थे जिनके बारे में न बतलाना ही अच्छा है। दो दिन जो महिम के साथ रह लेता उसकी निगाहों से यह तथ्य छिप नहीं सकता कि क्यों एक कलाकार की प्रतिभा गोबर हो गयी !

महिम ने निचले दो कमरे ले रखे थे, तीस रुपये भाड़ा देता था।

सुबह देर से बिस्तर छोड़ने की आदत थी।

उम्मी की माँ कपड़े पर कैंची चला रही थी, फ्राक तैयार करने थे।

महिम ने निन्दा से स्वर में कहा, "पीठ दर्द कर रही है मामी !"

कैंची और कपड़ा एक ओर सहेजकर उम्मी की माँ करीब आ गयी।

दोनों हाथों से पीठ चांपते बोली, "आठ बज रहे हैं, कब उठोगे? दानापुर जाना था न ?"

"दस बजे जाऊँगा।" महिम ने करवट बदलकर मुँह मामी की तरफ कर लिया और गुनगुनाने लगा :

"जनम अवधि हम रूप निहारल
तइयो नहि तिरपति भेल···।"

मामी को लगा कि उसके ही रूप की वन्दना कर रहा है महिम। चालीस की उम्र पार कर आयी है तो क्या, अब भी उसका मुखमण्डल भुलाने लायक नहीं है। एक बार दो-चार मिनट के लिए जो भी मर्द उम्मी की माँ के सामने हो लेगा, किसी-न-किसी बहाने वह बार-बार आयेगा···

मामी ने महिम के बालों में उँगलियाँ उलझा लीं। सीने की समूची ताकत से उसे दबा लिया।

अब दोनों के चेहरे आमने-सामने थे। होंठों के दर्म्यान बस चार अंगुल का फासला रह गया था। साँसें टकरा रही थीं आपस में।

उम्मी की माँ ने कहा, "दूध वाला आता होगा।"

महिम मुस्कराया, "आने दो···"

मामी ने होंठ बढ़ा दिये, "बस, इतना काफी है इस वक्त···लो, उठने भी तो दो।"

और वह सचमुच अलग हो गई···

"बड़ी पाजी हो !" महिम ने कहा।

"लो, अब इससे बातचीत करो !" मामी ने माचिस और सिगरेट लाके थमा दिया। पूछ लिया, "स्टोव जलाऊँ ?"

"दूध तो आ लेने दो रानीजी !"

उम्मी की माँ ने भौंहें चढ़ाकर महिम को देखा। मन-ही-मन लेकिन यह सम्बोधन घुलता रहा, गूँजता रहा, कानों के अन्दर···'रानीजी ! रानीजी ! रानीजी !'

उधर सांकल में खटका हुआ।

उम्मी की माँ ने जाकर दरवाजा खोल दिया। सामने कथाकार अशंकजी खड़े थे।

दोनों तरफ से मुस्कान और नमस्ते।

महिम ने कहा, "कहाँ मर गये थे !"

अशंक ने बतलाया, "नाना गये थे देह छोड़ने काशी ! बाबा विश्वनाथ की कृपा तो हुई किन्तु इसमें काफी विलम्ब हो गया···। कल ही आया हूँ तीन महीने बाद। किसी से नहीं मिला हूँ, तुम्हीं से मिलना था पहले···बताओ, अब अपना हाल-चाल···"

महिम अब तक पूरी सिगरेट फूँक चुका था। मामी से बोला, "चाय पीछे बना लेना, पहले चिवड़ा-मूँगफली तल लो। खाना भी इनका यहीं होगा, मैं जाके सब्जी ले आऊँगा।"

खाने की बात का विरोध किया आगन्तुक ने, "बहुत सारे काम हैं, खाना कभी फिर खा जायेंगे महिम।"

महिम ने दो सिगरेट निकालीं। माचिस की जलती तीली अशंक की ओर बढ़ाकर बोला, "तो शाम का खाना आज मेरे साथ खाना।"

"नहीं, आज नहीं।" अशंक ने मजबूरी जाहिर की।

"इतने में निबट आऊँ ?"

"हाँ, हाँ, हो आओ !"

"लो, तब तक लिटरेरी नाश्ता करो··"

महिम ने 'धर्मयुग', 'कहानी', 'दीपावली', 'सरिता' आदि कई पत्र-पत्रिकाएँ सामने रख दीं।

स्टोव में किरासिन डालते वक्त थोड़ा तेल नीचे गिरकर फैल गया था। महिम पाखाने से आया तो उधर नजर गयी।

वह मामी पर बरस पड़ा, "कैसी गधी हो, फर्श को चौपट कर दिया—हजार बार कहा कि सँभालकर स्टोव भरा करो मगर तुम हो कि कानों में रुई ठूँसे बैठी हो···"

मामी आहिस्ता से बोली, "फिनाइल से धो दूँगी फर्श···"

महिम का गुस्सा बेकाबू हो गया, "फिनाइल की नानी ! हटो सामने से ! खुदा बचाये ऐसी फूहड़ औरत से···"

अशंक महिम की इस अशिष्टता पर क्षोभ के मारे घुटने लगा—जरा-सा किरासिन फर्श पर गिर गया तो कौन पहाड़ फट पड़ा ? मूर्ख कहीं का !

स्टोव जल चुका था।

उम्मी की माँ ने पानी भरकर केतली चढ़ा दी।

महिम का गुस्सा अभी गया नहीं था। लात से उसने केतली लुढ़का दी। स्टोव की आँच सो गयी। बरामदे में पैर पटककर वह चीखा, "उल्लू की पट्ठी, मैं खुद ही चाय बना लूँगा···"

"क्या बात है महिम ?" उधर से अशंक ने टोका।

महिम ने कहा, "कुछ नहीं, तुम मैगजीन देखो···यह हमारा घरेलू मामला

है अपना···"

अशंक का मन अन्दर-ही-अन्दर बुलबुला उठा, 'ठीक ही तो कहते हैं लोग··· महिम-जैसा पतित पाटलिपुत्र की इस नगरी में दूसरा नहीं है। शराब और शराब और शराब···औरत और औरत और औरत···यह कौन होगी इसकी ? मामी ? सचमुच की मामी ? न, मामी नहीं होगी। इतना अपमान मामी तो नहीं बर्दाश्त करेगी !

अशंक उठकर बाहर आया, बोला, "मैं अभी आया महिम, बस दस मिनट लगेंगे।"

महिम नटराज की तरह मुस्करा उठा, "नहीं, तुम नहीं आओगे ! सच-सच बतलाओ, लौट आओगे दस-पन्द्रह मिनट में ?"

अशंक ने सिर हिलाया। महिम ने साँस खींचकर कहा, "अपना छकड़ा तो यों ही चलता है···अच्छा, तो फिर हो ही जाओ !"

और फिर कान में आहिस्ते से कहा, "मामी के लिए कोई काम खोज दो अशंक, नहीं तो यह मेरा दिमाग चाट जायेंगी।"

अशंक ने पूछा, "खादी का काम जानती हैं ?"

"करघा तो नहीं लेकिन चर्खा चला लेंगी।"

"पटना से बाहर पचास-साठ रुपये काम मिले तो रहेंगी ?"

"क्या बात करते हो यार ! क्यों नहीं रहेंगी ?"

अब की मुस्कराहट मे महिम के होंठ फैले तो लकीरनुमा मूँछों की इकहरी ब्रैकेट खिल उठी।

"अच्छा, देखेंगे।"

अशंक बाहर निकल आया।

बड़ी सड़क पर एक रेस्तराँ में बैठकर कचौड़ियों का आर्डर दिया।

दिमाग लेकिन महिम और उसकी मामी की बातों से ही उलझा रहा··· महिम कलकत्ता रहा था, बनारस रह चुका था, भागलपुर-मुजफ्फरपुर की गलियों से भी परिचित था। खाते-पीते परिवार का युवक। जिससे शादी हुई थी उस औरत को छोड़े कई वर्ष हो रहे थे। आठ-नौ साल का एक लड़का भी था। वे दोनों दादा-दादी के साथ रहते थे। महिम का मूड उनकी तरफ आइन्दा कभी मुलायम होगा, इसकी आशा नहीं रह गयी थी किसी को···सस्ती किस्म की दारू और ताड़ी पी-पीकर उसने अपनी तन्दुरुस्ती चौपट कर ली थी···आदर-सम्मान का तो सवाल ही नहीं उठता था···।

पीतल की छोटी थाली में चार कचौड़ियाँ, आलू-गोभी का साग···नेपाली छोकरे ने पूछ लिया, "अउर क्या लेगा बाबूजी ?"

अशंक ने कहा, "फौरन दो रसगुल्ले दे जाओ, चाय पीछे लाना !"

नेपाली दूसरे-दूसरे ग्राहकों को पूछता हुआ चला गया।

रसगुल्ले आये, फिर चाय आयी। अशंक ने सोचा, महिम के पास आधा घण्टा बाद जायेगा। इतने में दो-एक मित्रों से और मिल आयेगा।

रेस्तराँ से निकलकर पान के दो बीड़े लिये। ऐटमकुआँ के लिए रिक्शा लिया और पानवाले से पन्द्रह आने रेजगारी ली।

लौटने में कुछ देर हो गयी। महिम निकल चुका था।

मामी ने स्वागत किया। बोली, "चाय तो पी ही लीजिए।"

खौलने के लिए चाय का पानी स्टोव पर बैठाकर मामी नजदीक आयी। अशंक बाँहवाली आरामकुर्सी पर बैठा था। मामी बिना बाँहोंवाली कुर्सी पर बैठ गयी। संजीदगी से मुस्कराकर कहा, "आपकी कहानियों का वह संकलन मैंने देखा है जो इलाहाबाद में छपा था..."

"कैसी लगीं कहानियाँ?" अशंक ने पूछा।

"बहुत अच्छी," मामी बोलीं, "परिवार की हालत से चूर-चूर हुई औरतों के प्रति आपकी हमदर्दी मुझे बहुत अच्छी लगी। तब आप मुझे भी अपने पात्रों में शामिल कर लीजिए... लेकिन पात्रों के प्रति जब आपकी सहानुभूति इतनी गहरी थी तो जिन्दा पात्रों की दिक्कतें आपसे भला कैसे देखी जायेंगी? मैंने आपके बारे में महिम से काफी सुना है। मैं आपसे फिर मिलना चाहती थी। अभी देखा न? जरा-सी भूल हुई कि गधी-सुअर-उल्लू बना डाला। अब इनके साथ मेरा निभना नहीं। आप कहीं कोई काम दिलवा दीजिए..."

'धर्मयुग' के पन्ने पलट रहा था अशंक। तीनों-चार पेजों में घड़ियोंवाली एक मशहूर कम्पनी का चटकीला विज्ञापन था। निगाहें अड़ गयीं, लेकिन कान मामी की आपबीती सुनना चाहते थे। और सोचें तो उपयोगिता के हिसाब से ही इस कथावस्तु को तौलने जा रहा था।

निगाहें पन्नों से उठाकर स्थिर करते हुए अशंक कह गया, "एक बार आपने बतलाया था, गोरखपुर के देहात में आपका पूरा परिवार है। पति मौजूद हैं। तो फिर आप लौट क्यों न जाती हैं घर? महिम तो आपको लाये थे इलाज करवाने, आठ-दस महीने हो गये न?"

मामी स्टोव में हवा भर आयी। लगा कि थोड़ा-सा खुलना चाहिए। बोली, "अब आपसे क्या छुपाऊँ? सोलह वर्ष की लड़की थी। वही हुई मेरी मुसीबत की जड़। पड़ोस में दूसरी बिरादरी का एक नौजवान था, पढ़ाने आता था उर्मिला को। गुपचुप दोनों उलझ गये। सब कुछ हो गया। हमें क्या पता कि उम्मी माँ बनने को तैयार है। मैंने बड़ी कोशिश की कि दोनों ब्याह कर लें, नाहक एक जीव की हत्या तो न होगी। मगर लड़की के पिता ने नहीं माना, उन्हें बिरादरी का आतंक था। समझा-बुझाकर उम्मी को अस्पताल ले गये और पेट

साफ करवा लाये, फिर चार-छै महीने के अन्दर ही चालीस-पैंतालीस के एक अधेड़ को छोकरी के गले मढ़ दिया···मैं राजी नहीं हो रही थी तो मुझे डण्डों से पीटा गया, लगातार कई दिनों तक अँधेरी कोठरी में बन्द रखा गया। दाना-पानी बन्द, बातचीत बन्द। बोले, 'शोर मचाओगी तो गला घोंट दूँगा···।' अब सोचती हूँ कि मुझे खुद ही डूब मरना चाहिए था···और तब जो मैं बीमार पड़ी तो बदन हड्डियों का ढाँचा ही रह गया। दो-एक महीने बाद मर ही जाती मगर महिमजी पटना ले आये। पहले भी इस अभागिन पर इनका नेह-छोह था और पीछे तो जेठ की धरती पर आषाढ़ का बादल बनकर छा गये। रुपये-पैसे की किल्लत रहती है, आमदनी का रास्ता महिमजी के लिए सँकरा है। हाथ खाली हों और हमेशा खाली ही रहने लगें तो दिल-दिमाग को लकवा मार जाता है। दया-माया, नेह-छोह सब कुछ सूख जाता है अशंक बाबू ! देखा, कैसा चिड़चिड़े हो गये हैं !···मैं लौटकर देहात की ओर नहीं जाऊँगी। और यह भी नहीं चाहती कि जीवन-भर इनका बोझ बनी रहूँ···आप-जैसे सज्जनों की कृपा रही तो मैं धन्य समझूँगी अपने को···"

पानी खौल चुका था। चाय तैयार हुई।

मामी प्याला आगे बढ़ाकर बोली, "चीनी आप कम लेते है, मै भूली नहीं

अशंक ने मुस्कराकर कहा, "और महिम !"

"वो तो चाय के नाम पर दूध-चीनी का गरम शर्बत ही पीते हैं।" मामी को हँसी आ गयी।

छः

'30 से '59 तक···लगातार बीस वर्षों तक खादी पहनी थी और अब रत्ती-भर भी आग्रह नही रह गया था उसके लिए। देवताओं की पूजा के समय साधकगण रेशमी वस्त्रों का इस्तेमाल करते हैं, ठीक उसी तरह दिवाकरजी खादी को काम में लाते थे। मिनिस्टरों और ऊँचे अधिकारियो के यहाँ जाने से पहले खादी की याद आती थी। सभाओं-समारोहों में पुराने मित्रों के बीच खादी का पहनावा त्याग और गौरव का सौरभ फैलता था। गांधी-जयन्ती के अवसर पर अक्तूबर में फी रुपये इकत्तीस पैसे की छूट ध्यान को बरबस खादी की ओर खींचती थी···

और दो-एक कारण और थे : परिचय दस-बीस साल का पुराना था, इसी से खादी-भण्डारवाले उधार पर भी कपड़े दे देते थे, 'नुकसान माल' वाले स्टाक से ऊनी और अण्डी माल मेहरबान मित्रों की बदौलत घर आ जाते थे !

ग्रामोद्योग संघवाली दुकान से कश्मीरी पट्टी लेकर बंगाली दर्जी 'मित्रा एण्ड सन्ज' से कोट तैयार करवाया था। आज वही पहनकर निकले सम्पादकजी।

भारत काफे में मसाला-डोसा लिया, कॉफी पी।

पान के दो बीड़े और बेली रोड। रिक्शा बायीं ओर हाते के अन्दर आया।

क्यारियाँ क्या थी, धरती पर रंग-बिरंगे स्कार्फ फैले थे। अन्दर बंगले तक गोल रास्ता, लाल रंग की पथरी बिछी थी। चारों ओर बाग थे।

बरसाती के करीब रिक्शा रुका।

दुअन्नी के लिए रिक्शेवाले से झड़प हो गयी सम्पादकजी की।

आखिर दम आने मोटवाले गद्दे पर रखकर दिवाकर ने कहा, "अब और एक धेला भी नहीं मिलेगा···"

"तो यह भी लेते जाइए !" रिक्शावाला बोला। मगर दिवाकरजी तीन सीढ़ियाँ ऊपर चढ़कर बरामदे में दाहिनी तरफ पी० ए० (पर्सनल असिस्टैण्ट) वाले कमरे के अन्दर जा चुके थे।

रिक्शावाला नौजवान था। तैश में ऊपर चढ़ आया। कमरे के अन्दर झाँकने ही वाला था कि चपरासी ने रोक दिया, "नहीं-नहीं, इधर नहीं।"

"वाह, क्यों नहीं ! मेरी दुअन्नी नहीं मिलेगी ?"

चपरासी हाथ पकड़कर उसे बरसाती के बाहर ले आया। पीठ पर हाथ फेरता हुआ आहिस्ता से बोला, "नहीं देना चाहता है तो अब तुम उसका क्या कर लोगे ? मिनिस्टर की कोठी है, जोर-जबर्दस्ती नहीं चलेगी यहाँ···जितना मिला, उसी में सन्तोष करो बेटा।···जाओ !"

"सफेदपोश डाकू," रिक्शावाले ने थूककर कहा, "कसाई कहीं का ! किस सफाई से गरीबों का गला काटता है ! और, अन्दर कुर्सी पर बैठकर नानी को फोन कर रहा होगा···"

चपरासी उसे चुप रहने का और बाहर निकल जाने का इशारा दे रहा था मगर धोखा खाये हुए मजदूर की जबान रुकना नहीं चाहती थी। अधेड़ चपरासी को वैसे पूरी हमदर्दी थी रिक्शावाले के प्रति। वह चाहता था कि बात खत्म हो। उसने फुसफुसाकर कान में कहा, "सड़क पर कहीं दिखायी पड़े तो पकड़ना, यहाँ देखते हो न, मिलिटरी का पहरा है···"

रिक्शावाला गम्भीर स्वर में बोला, "मगर चाचा, यह तो भारी जुलुम है न ? कम-से-कम मिनिस्टर के यहाँ तो बेइन्साफी नहीं चलनी चाहिए !"

"अभी तुम बच्चा हो," चपरासी मुस्कराया, "अरे, इन्हीं कोठियों के अन्दर

तो अन्याय पनाह लेता है आकर ! सरकार अभी इन्हीं कोठियों और बंगलों में कैद है, उसे तुम तक पहुँचने में दस-बीस वर्ष लग जायेंगे अभी !"

समझा-बुझाकर और चुमकार-पुचकार कर चपरासी ने रिक्शावाले को रवाना किया।

सम्पादकजी मन्त्री महोदय से बातें कर रहे थे, ऊपर दुतल्ले पर। मुलायम कुर्सियाँ, गद्देदार कोच, मोटे कोचोंवाली गोल-गोल नफीस तिपाइयाँ। दीवार पर एक ओर बापू, दूसरी तरफ विनोबा। बाहर खिड़कियों और दरवाजों में काटेज इण्डस्ट्री के कीमती चटकीले पर्दे झूल रहे थे।

बातों का सिलसिला अयूब खां, दिल्ली की भारत प्रदर्शनी, राष्ट्रसंघ में मेनन का भाषण आदि को छूता हुआ पत्रकारिता पर आ गया। दो अंग्रेजी दैनिक थे राज्य में। एक सरकार का पूरा साथ दे रहा था, दूसरा तना हुआ था क्योंकि उसका दक्षिणी सम्पादक स्वाभिमानी था। मुख्यमन्त्री के गुटवाले उसे सनकी कहते थे।

दिवाकरजी अपने मतलब की बात पर आ गये, "आठों लेख छप चुके हैं, चार और ले आया हूँ। इन्हें बिहार के बाहर छपने के लिए लिखा है।"

टाइप किये हुए चारों लेख मन्त्रीजी के हाथों में आ गये। उन्होंने प्रसन्न आँखों से देखा, 'बिहार की सांस्कृतिक देन', 'बौद्धधर्म और बिहार', 'भारतीय दर्शन के विकास में बिहार का स्थान', 'संस्कृतियों का संगम-स्थान बिहार' चारों शीर्षक मन्त्रीजी को अच्छे लगे।

मन्त्रीजी ने लाल रंग की 'माउण्ट ब्लैंक' पेन निकाली और शीर्षकों के नीचे अपना नाम बैठा दिया" सोचा, कितने चाव से लोग इन्हें पढ़ेंगे ! इस राज्य के एक शासक की विद्वत्ता का लोहा उन्हें मानना ही पड़ेगा" और पाँच साल के बाद भी लोग मुझे याद रखेंगे"" कीर्तिर्यस्य स जीवति !

दिवाकरजी ने कहा, "बीस-पचीस हो जायें तो इनका संकलन पुस्तक के रूप में निकल आयेगा। प्रकाशक तो अभी से तैयार बैठा है। आप भी उसे पहचानते हैं।"

"कौन ?" मन्त्रीजी ने जम्हाई लेकर पूछा।

दिवाकरजी बोले, "तिलकधारीदास" और कौन है वैसा भक्त आपका ? मैंने तो कह दिया है कि अगले वर्ष मिलेगा। छपाई लेकिन कलकत्ते की रहेगी। मान गया है जानकी बाबू !"

आनरेबुल मिनिस्टर जानकी बाबू का चेहरा खुशी से चमक उठा, कहने लगे, "दिवाकरजी, आपने ठोक-पीटकर मुझे साहित्यकार बना दिया ! देखिए न, उत्तर प्रदेश की एक साहित्यिक संस्था ने अपने वार्षिक समारोह का उद्घाटन मुझसे करवाना चाहा है—उन्हें क्या पता कि जानकीनाथ साइन्स का स्टूडेण्ट था

···बतलाइए, अब मैं क्या करूँ ?"

"स्वीकृति का पत्र फौरन भिजवा दीजिए," दिवाकरजी ने चुटकी बजाकर कहा, "मैं नीचे सेक्रेटरी साहब से कह के अभी पत्र भिजवा देता हूँ···"

जानकी बाबू का माथा फिक्र में हाथ पर टिक गया। सोचने लगे, 'उद्घाटन-वाला भाषण दिवाकरजी पहले ही तैयार कर लेंगे और वह छपवा भी लिया जायेगा। लेकिन समारोह के समय वहाँ के साहित्य-प्रेमियों से मैं बातचीत क्या कर पाऊँगा ? राजनीति की तरह साहित्य की भी अपनी समस्याएँ होंगी और मैं उन्हें क्या समझूँगा ?··· लोग मुझे बौड़म कहेंगे !'

मन्त्री महोदय युवक थे और लाज-शरम अभी कुछ शेष थी, उन्होंने उद्घाटन-वाला निमन्त्रण कबूल नहीं किया। दिवाकर ने बहुत जोर दिया मगर वे राजी नहीं हुए।

दस-दस के बीस नोट मन्त्री ने थमाये तो दिवाकर की तबीयत खिल गयी। खानसामा दालमोठ-समोसे और रसगुल्ले रख गया था। मन्त्रीजी का इंगित पाकर दिवाकरजी उधर झुक गये।

जरा देर बाद कॉफी के दो प्याले आये।

कॉफी पीते समय बातें भी चलती रहीं। "लोगों में नैतिकता का अभाव हो गया है," दिवाकरजी ने कहा, "नैतिकता का रोना तो सभी रोते हैं किन्तु अमल के वक्त सबकी आँखें मुँद जाती हैं···"

जानकी बाबू बोले, "हमारी आँखें मुँदती तो नहीं लेकिन आँखें खुली रहकर भी बाज वक्त हम मजबूर होते हैं···"

"हूँ" दिवाकरजी ने अनमनेपन का अभिनय किया। मन-ही-मन बोले, 'मैं लेख लिखता हूँ, वे आपके नाम से छपते हैं और मैं आपसे रुपये पाता हूँ··· आपको भी अच्छा लगता है और मुझको भी अच्छा लगता है !'

"लेकिन दिवाकरजी," मन्त्रीजी ने बात की कड़ी जोड़ी, "तीसरी पंचवार्षिक योजना के सफल होते-होते हमारे देश की कायापलट हो जायेगी। आर्थिक विकास के बाद राष्ट्र का एक-एक व्यक्ति नैतिकता का प्रहरी होगा और तब हमारे सारे सपने पूरे होंगे···"

फोन की घण्टी बज उठी तो मन्त्री महोदय ने उधर हाथ बढ़ाकर रिसीवर उठा लिया···

राज्यपाल नेपाल-नरेश के सम्मान में चाय-पार्टी दे रहे थे परसों, उसी में शामिल होने का अनुरोध था···

जानकी बाबू ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया और फोन रख दी। पश्मीने का स्लेटी रंगवाला कुर्ता···चन्दन की मैसूरी बटन के चारों दाने···सोने की नगदार अँगूठी···नीचे पैरों के पास चीनी मॉडल की चप्पलें···कुल मिलाकर

मन्त्री महानुभाव अधिकाधिक भव्य लग रहे थे। पास वाली गोल तिपाई पर अंग्रेजी के पाँच-सात दैनिक पड़े थे। कोने के बुकशेल्फ पर अपनी क्लासिक मुद्राओं में 'तीन बन्दर' मानो इधर ही रुख किये हुए थे।

दिवाकर अभी कुछ देर और बैठते लेकिन उन बन्दरों ने ही शायद उन्हें मना किया। मन्त्रीजी को नमस्कार करके निकल आये।

बेली रोड के नुक्कड़ पर पान की दूकान थी। चार बीड़े पान, चुटकी-भर जर्दा और चूना···रिक्शा बिना बुलाये ही सामने आके खड़ा हो गया था।

दिवाकरजी लौटे तो मुंशी मनबोधलाल कुतिया के बच्चों की निगरानी कर रहे थे। दुकान के नीचे, सड़क के किनारे बोरी बिछा दी थी। दोनों पिल्ले आराम से लेटे थे और पूस की दुपहरी में धूप सेंक रहे थे। कुतिया आश्वस्त थी, पास ही खड़ी पूंछ हिला रही थी। बीच-बीच में ओठों पर पतली जीभ फेर लेती थी।

दिवाकर को यह दृश्य अद्भुत लगा, बरबस खड़े हो गये।

मुंशीजी ने कहा, "क्या देख रहे हैं, सम्पादकजी ?"

"नर्सरी देख रहा हूँ आपकी," दिवाकर बोले और मुस्कराते रहे। निगाहें बारी-बारी से कुतिया पर, पिल्लों पर और उनके आश्रयदाता पर पड़ रही थीं।

मनबोधलाल का भांजा दुकान के अन्दर से बोला, "यह एक अच्छा खटराग पाल लिया है मामा ने ! इन्सान भी जच्चा-बच्चा का इतना खयाल नहीं रखता है···बुढ़उती में मामा का दिल कितना मुलायम हो गया है !"

गर्दन सहलाते-सहलाते दिवाकर ने कुतिया की ओर दाहिना हाथ उठाया, कहने लगे, "यह तो साल-भर बीमार थी ! देखो न, समूचे बदन पर बाल नहीं उग सके हैं अब भी ! कुत्तों की बिरादरी में अगर कहीं कोई बदसूरत भिखारिन रही होगी तो बस वह यही है—मैंने समझ लिया था कि मर गयी होगी, गीध और स्यार नोच-नोचकर खा गये होंगे···लेकिन यहाँ तो ठूंठ में से कोंपलें निकल आयी हैं, वाह रे विधाता के चमत्कार !"

कुतिया पिल्लो को छेड़ना चाहती थी मगर मुंशीजी उसे रोक रहे थे। मकान के छज्जे की छाँह बोरी का पीछा कर रही थी लेकिन मनबोधलाल धूप की तरफ बढ़ा देते थे। लगता था कि कुतिया का पेट भरा हुआ है। वह पिल्लों को छोड़कर अलग जाना नहीं चाहती थी और न मुंशीजी ही उसे भगाना चाहते थे। शोख और सयानी बेटी की तरह कुतिया उनके इर्द-गिर्द मँडरा रही थी। वह बैठे हुए थे। मुँह के अन्दर सुपारी का टुकड़ा था, जबड़ों में हरकत थी। निगाहें ममता में डूबी हुईं। चेहरे पर स्वाभाविक खुशी और तरल गम्भीरता।

कुतिया अपने बच्चों के प्रति मुंशीजी की इस ममता को अच्छी तरह समझ रही थी। कृतज्ञता के तौर पर वह उनकी बाँहों को, घुटनों को, पीठ को, पैरों को सूंघ लेती थी रह-रहकर। एक बार उसने मनबोधलाल की कलाई चाट ली तो

बेचारी को झिड़की खानी पड़ी !

दिवाकर दस मिनट खड़े रहे दुकान के पास। मुंशीजी का भांजा उनसे बातें करता रहा।

अन्दर जाने लगे तो मुंशीजी ने कहा, "बच्चे तो सब के बराबर होते हैं न सम्पादकजी ? बस, दस-बीस रोज की कसर है। फिर तो दोनों पिल्ले खुद ही उछलते फिरेंगे। नहीं सम्पादकजी ? मैं ठीक कहता हूँ न ?"

भांजे को हँसी आ गयी, बोला, "और कुतिया को दोनों जून भात और मसूर की दाल खिलाते हो। लो, अब हर साल अगहन-पूस में खिदमत करते रहो साली की···ना, मैं नहीं चलने दूंगा मिशनरी का यह सेवाश्रम···नाव पर चढ़ाकर मैं इसको गंगा के उस पार सबलपुर के दियारे में छोड़ आऊँगा सम्पादकजी !"

"सुन ली मुंशीजी आपने ?" दिवाकर ने गर्दन घुमाकर कहा। उनका एक पैर मकान के सदर फाटक के अन्दर पड़ चुका था। भूख लग आयी थी लेकिन मनबोधलाल की ममता का जादू दिमाग पर छा गया था···यह मक्खीचूस और जाहिल आदमी अपने अन्दर ऐसा बढ़िया दिल छिपाये हुए है !—पथरीले मैदान के अन्दर मीठे पानी का यह स्रोत !···दिवाकर मनबोधलाल की ओर देख रहे थे।

भांजे की बात का जवाब नहीं दिया मुंशी ने और न घूमकर दिवाकर की तरफ देखा ही।

वे बारी-बारी मे पिल्लों की पीठ और गर्दन सहला रहे थे।

सात

कल देवर आया था और दिन में ग्यारह से चार बजे तक बातें करता रहा।

आज कम्पाउण्डर की बीवी बेहद खुश नजर आ रही थी।

मछली मँगवायी थी आधा सेर, डेढ़ रुपये की। मुंगेरीलाल को यह अच्छा नहीं लगा। बोला, "पन्द्रह तारीख के बाद बाजार से रुपये-दो रुपये की चीजबस्त मत मँगवाया करो, हाथ खाली रहते हैं न ?"

बीवी सरसों पीस रही थी, मछली के झोल में डालने के लिए। छमककर कहा, "अपनी जेब तो देख ली होती···किसी के पैसे नहीं छुए हैं मैंने !"

"अच्छा बाबा, जल्दी करो !" कम्पाउण्डर साइकिल की झाड़-पोंछ में लगा।

था, झल्लाकर बोला।

"कै बजे हैं?"

"सवा नौ। वक्त नहीं रह गया है अब।"

"तो आओ न!"

उसे मालूम था कि अभी इन्हें पन्द्रह मिनट लग जायेंगे, तब तक मछली का झोल तैयार हो जायेगा। पत्थर के कोयले की आँच में यही तो खूबी है कि पकने-सीझने में देर नहीं लगती।

रेहू मछली मुंगेरीलाल को प्यारी थी। खाने बैठे तो छै टुकड़े खा गये। भिण्डी की भाजिया थी, छुई तक नहीं।

पान की गिलौरी मुँह के अन्दर दबाकर साइकिल सँभाली और बाहर निकल आये बाबू मुंगेरीलाल।

घरवाले से फुर्सत पाकर कम्पाउण्डर की बीवी ने चूल्हे पर पानी-भरा पतीला बैठा दिया। कई रोज से नहायी नहीं थी और दो-तीन हल्के कपड़े भी साफ करने थे। पति की जूठी थाली में ही माछ-भात परोस लिया। साढ़े दस बजे यह उसका 'ब्रेकफास्ट' था।

भुवनेसरी आ धमकी, पूछा, "गंगा आज भी नहीं गयी जीजी?"

"काफी देर लग जाती है," भरे गालोंवाले मुँह से मोटी आवाज का जवाब आया। वह खा रही थी।

"तो हम साथ नहाएँगे!"

"इसी बाथरूम मे?"

"हाँ, इसी मे। क्यों, तुमको शरम लगेगी?"

"नहीं, छोटा है बाथरूम।"

"दिल में तो बैठा लोगी न?"

कम्पाउण्डर की बीवी को भुवन के इस सवाल पर शरारत सूझी। बायें हाथ से उसने भुवन को पास बुला लिया। कान से मुँह लगाकर कहा, "अच्छा होता कि मैं तेरा मर्द होती···"

"उँह···" भुवनेसरी ने उसके गाल में चिकोटी काट ली।

कम्पाउण्डर की बीवी खा चुकी थी। मछली का एक अच्छा-सा टुकड़ा बाकी बचा था। उसमें से आधा तोड़कर भुवनेसरी के मुँह में ठूँस दिया उसने, बोली, "ले, खा भी तो! यह चीज बैकुण्ठ में भी नहीं मिलती है भुवन!"

भुवन ने गर्दन घुमाकर दरवाजे की ओर शंकित दृष्टि से देखा, "नहीं, कोई नहीं देख रहा है। बुआ? बुआ तो सो रही हैं। वह यहाँ कहाँ से आयेंगी! कोई नहीं देख रहा है भुवन, बल्कि वह दूसरा आधा टुकड़ा भी ले सकती हो!···"

हाथ-मुँह धोते-धोते भुवन ने बतलाया, "मैं बचपन में मछली खाती थी, बाद

में उन लोगों ने कसम देकर छुड़वा दिया ।"

"ससुरालवालों ने ?"

भुवनेसरी चुप रही । उसे पछतावा होने लगा कि क्या निकल गया जुबान से ! बुआ ने मना किया था न ? ठीक ही मना किया था । ज्यादा मेल-मिलाप दिल को घुला डालता है···भुवनेसरी लाख अपने को समझाती है, लाख धमकाती है अपने को ! मगर मन नहीं मानता । कम्पाउण्डर की बीवी क्या कोई मामूली डायन है ? ऐसा जादू कर दिया है कि न मन को चैन न तन को चैन ! मदारी की तरह उसने भुवन को अपने काबू में कर लिया है, उसके बिना भुवन रह ही नहीं सकती···तो, आहिस्ता-आहिस्ता क्या वह भुवन की सारी बातें मालूम कर लेगी ?···डर के मारे भुवनेसरी को पसीना आ गया ।

पान की दो गिलौरियाँ बनायीं । एक अपने लिए, दूसरी भुवनेसरी के लिए । कम्पाउण्डर की बीवी पान की शौकीन तो थी ही, जर्दा भी फाँकती थी । घरवाला लेकिन सिगरेट धूँकता था ।

भुवनेसरी पर कम्पाउण्डर की बीवी को दया आने लगी थी । अब वह भुवन के मर्म तक पहुँचना चाहती थी, उसकी व्यथा के बारे में जानना चाहती थी । बुआ और चाचा के सिलसिले में उसने अब ज्यादा-से-ज्यादा सोचना शुरू कर दिया था । भुवनेसरी के प्रति अब वह ज्यादा-से-ज्यादा हमदर्द हो गयी थी । ईर्ष्या और द्वेष के बदले ममता और प्यार छलकने लगे थे ।

बुखार चढ़ा था तो भुवनेसरी खाना पका गयी थी । कम्पाउण्डर को होटल में नहीं खाना पड़ा था । सारा दिन इसी घर में रही थी, गिरस्ती के छोटे-मोटे सभी काम किए थे ।

दूसरे परिवार में इस तरह भुवन का घुलना-मिलना बुआ को पसन्द नहीं था ! लेकिन न तो कम्पाउण्डर की बीवी से रहा गया और न भुवन से । साधारण परिचय अब गाढ़ी आत्मीयता में बदल रहा था । कई बार दोनों साथ सिनेमा देख आयी थीं । बुआ ने भी टोकना छोड़ दिया था । उसे कम्पाउण्डर की बीवी घूस के तौर पर बाजार से चटोरी चीजें ला देती थी । घण्टों बैठकर गप्पें लड़ाती और पास-पड़ोस के बारे में गलत-सही सूचनाएँ पहुँचाती ।

भुवनेसरी के पीठ के निशानों के बारे में कम्पाउण्डर की बीवी ने फिर पूछ दिया, "महात्मा ने पीटा था या राक्षस ने ?"

आज वह कुछ नहीं बोली, चुप रह गयी । सोचने लगी, 'अब खुलने में कोई हर्ज नहीं है ।'

सहानुभूति से लगातार सींचा हुआ हृदय ही वह भूमि है जहाँ विश्वास का अंकुर फूटता होगा···

बाथरूम से पेटीकोट पहने बाहर निकल चुकी थीं दोनों । कम्पाउण्डर की

बीवी ने ट्रंक से दो साड़ियाँ निकालीं। एक साड़ी मद्रासी थी, दूसरी बंगाल के हैण्डलूम की। मद्रासी साड़ी भुवन को थमाती हुई वह बोली, "मेरी कसम, ना मत करना ! बस पहन ही ले ! मेरे कोई बहन नहीं थी, अब आज से तू बहन हुई मेरी ! समझी न ?"

ऐसा अपनापा ! इतना प्यार !···भुवनेसरी की आँखें गीली हो आयीं, होंठ फड़कने लगे। एक भी अक्षर मुँह से निकल नहीं पाया। विह्वल मुद्रा में वह दो मिनट खड़ी रह गयी।

कम्पाउण्डर की बीवी का मायके का नाम था निर्मला। प्यार में लोग 'नीरू' कहते थे। यह सब एक बार वह भुवन को बता चुकी थी। इस समय लेकिन वह दीदी की विशुद्ध भूमिका में विराजमान थी—सगी बहन की गाढ़ी ममता उसकी निगाहों में छलक रही थी।

भुवन को पशोपेश में देखकर वह आगे बढ़ आयी, बाँहों में लेकर छाती से लगा लिया। भीगी आवाज में कहने लगी, "ठीक है कि मैं तेरे लिए ज्यादा कुछ कर नहीं सकती, मामूली हैसियत है हमारी। लेकिन तुझे मैं सगी बहन का प्यार जरूर दे सकूँगी···जाने किन मुसीबतों ने तुझे यहाँ तक पहुँचाया है ! जाने किस्मत तुझे कहाँ-कहाँ भटकाएगी ! एक बार बिछड़कर फिर दुबारा जाने हम कब मिल पायेंगे !···"

नीरू ने ठुड्डी उठाकर भुवन का चेहरा देखा। उसकी आँखो से आँसू बहे थे। हाथों से साड़ी थामे थी, जिसकी ऊपरी तह जगह-जगह भीग गयी थी···लम्बी छरछरी सुडौल देह, गोल गर्दन, गठी हुई बाँहें···घुटी हुई रुलायी ने चौड़े कन्धों में सिकुड़न पैदा कर दी थी···

अपनी साडी के पल्ले से भुवन के आँसू पोंछते-पोंछते बोली, "पगली कहीं की, इस तरह रोया नहीं करते ! कभी कुछ बताया भी तो नही तूने ! चाहे कैसी भी है, मेरी बहन है तू···"

सूखने के बदले आंसू और भी वेग में आ गये। अब तक की घुटी हुई रुलाई हिचकियों के रूप में फूट निकली। भुवन ने निढाल होकर अपना सिर नीरू के कन्धे पर डाल दिया।

नीरू ने ले जाकर उसे पलंग पर बिठाया और दरवाजा बन्द कर आयी।

भुवन ने उठकर साड़ी पहन ली। मुँह धो आयी और दीवार की खूंटी में लटकते आईने के सामने खड़ी हुई। बड़ी-बड़ी आँखें आँसू बहाते-बहाते सुर्ख हो गयी थीं। बरौनियों के छोटे-छोटे मुलायम बाल बड़े और कड़े दीख रहे थे। पपोटों पर बारीक नसें उभर आयी थीं। कपार की मोटी नसों में कम्पन मौजूद था। चेहरे का रंग मानो अब तक चिढ़ा था।

कंघी ले आयी और बाल सँवारने लगी।

निर्मला ने कहा, "ला, मैं सँवार दूँ!"

भुवनेसरी ने माथा हिलाकर इन्कार किया, बोली, "लपेटकर बाँध लूँगी।" क्षण-भर बाद गम्भीर हो गयी। पलकें उठाकर कहा, "दीदी, तुम मुझसे अलग ही रहतीं तो अच्छा था। मैं अभागिन हूँ, जीवन-भर अभागिन ही रहूँगी। अन्देशा इसी बात का है कि मेरी बदनसीबी कहीं तुमको भी न छू ले।···जिसे भुवन कहती आयी हो वह भुवन नहीं, इन्दिरा है। पिताजी ने इन्दिरा रखा था मेरा नाम··· दीदी, तुम मुझे इन्दिरा ही कहा करो। बोलो, कहोगी न इन्दिरा?"

"हाँ, अब से इन्दिरा ही कहा करूँगी।" नीरू बोली।

"लेकिन अकेले में।"

"हाँ, अकेले में।"

"दीदी भी अकेले में?"

"हाँ अकेले में।"

खट्-खट्-खट्-खट्।

"देखती हूँ, कौन है···इन्दिरा, तू जल्दी में तो नहीं है?"

"नहीं दीदी, देखो कौन है।"

कम्पाउण्डर की बीवी ने दरवाजा खोला। सामने डाकिया खड़ा था। बगल में चमड़े का थैला···आँखों पर चश्मा, कान की जड़ में पीली पेन्सिल लगी थी।

"रजिस्ट्री है···बाबू मुंगेरीलाल—दसखत करके आप ले लीजिए, दसखत नहीं करेंगी तो कैसे मिलेगा?"

वह वापस अन्दर हुई, भुवनेसरी से पूछा, "कर दूँ दसखत?"

"तो क्या हर्ज है इसमें!" भुवनेसरी ने भौंह कड़ी करके उसका साहस बढ़ाया, "एक-आध हरफ की गलती हो फिर भी दस्तखत करके रजिस्ट्री ले लो, जरूरी है तभी तो रजिस्ट्री आयी है दीदी!"

आखिर कम्पाउण्डर की बीवी ने एक्नौलेजमेण्टवाली स्लिप पर हस्ताक्षर किया···निर्मला देवी। डाकिया मुस्कराया, "देवीजी ने अपने नाम में 'नि' के बाद आधा 'र्' छोड़ दिया था, जल्दबाजी में।" खैर, रजिस्ट्री चिट्ठी मिल गयी।

खोलकर देखा, मायके का खत था। फागुन सुदि पंचमी बुधवार···छोटे भाई की शादी है···

"जाना ही पड़ेगा," नीरू बोली, "इन्दिरा, तू भी चलना साथ। तेरी तबीयत बहल जाएगी और तेरी वजह से मैं जल्दी वापस आ सकूँगी।"

भुवन ने कहा, "और बुआ?"

"झाड़ू मार इस बुआ को!"

"सच! वह मुझे जाने देगी?"

"तू हाँ तो कर पहले!"

"मेरे हाँ करने से क्या बनेगा दीदी ?..."

"और तेरी दीदी क्या कोई तदबीर नहीं भिड़ा सकती ?"

भुवनेसरी को ध्यान आया, दीदी ने दरवाजा खुला ही छोड़ दिया है। वह जाकर साँकल चढ़ा आयी। कम्पाउण्डर की बीवी ने आदि से लेकर अन्त तक कई बार खत को पढ़ा। फिर भी तसल्ली नहीं हुई तो बोली, "ले इन्दिरा, सुना तो पढ़कर !"

समूची चिट्ठी सुनाकर भुवनेसरी ने कहा, "वाह, लिखावट कैसी बढ़िया है ! किसने लिखा है दीदी ? तुम तो जरूर पहचान गयी होंगी..."

"लो, मैं ही नहीं पहचानूँगी..." दायें हाथ की दूसरी उँगली को ठोड़ी में धँसाकर वह बोली, "मँझले भइया की घरवाली दर्जा दस तक पढ़ी-लिखी है न ! माँ ने उसी से लिखवाया है। मेरे मायके में इतनी अच्छी लिखावट किसी की नहीं होती, एक नागेसर को छोड़कर। और वह नागेसर ? पढ़ा-लिखा है लेकिन गाँव नहीं छूटता है उससे। पार्टी का काम करता है। घर में एक पैसा भी नहीं दिया है आज तक। आदमी लेकिन हीरा है...इन्दिरा, मैं तुझे उससे जरूर मिलाऊँगी, जरूर।"

आठ

बी० एन० शर्मा।

हाँ, फाटकवाले दरवाजे पर चाक से यही नाम लिखा था किसी ने। और भुवनेसरी का 'चाचा' सचमुच इसी नाम से हस्ताक्षर करता था—बी० एन० शर्मा—उसका पूरा नाम क्या है, सबको मालूम नहीं था। लोगों से मिलना-जुलना भी उसका कम ही था। हाँ, तिलकधारीदास की दुकान उसके लिए अपरिचित जगह नहीं थी। दासजी के साथ रिक्शे पर भी शर्मा को कभी-कभी देखा जा सकता था।

मुंशीजी अपने इस किरायेदार के भी प्रशंसक थे। किरायेदार की भलमनसाहत का एक ही मापदण्ड मनबोधलाल का था : ठीक दूसरी तारीख को पूरी रकम थमा दे। बेशक, ऐसा वही करेगा जो सरकारी सर्विस में होगा। यूनिवर्सिटी, हाईकोर्ट, दरभंगा के महाराजा का 'इण्डियन नेशन' वाला दफ्तर...वक्त पर वेतन देनेवाली संस्थाओं में इनकी भी अच्छी शुहरत थी। बाकी जगहों में काम

करने वाले लोगों के बारे में मुंशीजी को तसल्ली नहीं थी। इसीलिए कमरा या खोली देने से पहले किराएदार से वे बीस किस्म के सवाल करते थे। पत्रकारों, कलाकारों, कवियों, साहित्यकारों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं से कतराना मनबोधलाल का स्वभाव हो गया था।—ठीक वक्त पर किराया देनेवाले उनकी निगाहों में शराफत के पुतले थे। और जो दो-दो, तीन-तीन महीनों का एडवान्स थमा दे, वह तो मनबोधलाल का मसीहा था। शर्मा और दासजी मामूली किरायेदार नहीं थे, सर्वगुण-सम्पन्न मसीहा थे उनके लिए।

शर्मा अभी पन्द्रह-बीस रोज बाद वापस आया था। साथ एक युवती और थी, शकल-सूरत से नेपाल की लगती थी लेकिन मैथिली सर्राटे से बोलती थी।

भुवनेश्वरी को समझते देर न लगी कि रिश्ते की यह 'बहन' किस मतलब से लायी गयी होगी। वह नेपालिन से अकेले में मिलना चाहती थी, बातें करना चाहती थी। मगर मौका ही नहीं मिलता था। हमेशा उसे बुआ की निगरानी में रखा जाता था।

कमरे थे तीन, बरामदा एक था। नीचेवाला एक कमरा बुआ ने दखल कर रखा था। ऊपर शर्मा खुद रहता था। बायीं तरफ वाले कमरे में घरेलू वस्तुएँ रखी रहती थीं। अनाजों से भरे कनस्तर, ट्रंक, पुराने जूते, आलू-प्याज का टोकरा, चलनी वगैरह। शर्मा का कमरा बन्द रहता, अनुपस्थिति में चाबी बुआ के जिम्मे होती।

पिछली रात टेबुल लैम्प ऊपर देर तक जलता रहा था।

आज सवेरे ही बुआ ने भुवनेश्वरी से कहा, "दादा दो-एक रोज के लिए बाहर जा रहे हैं, तू भी जायेगी साथ।"

जिज्ञासा-भरी दृष्टि से भुवन बुआ की ओर देखती रही, हाथ पापड़ों को एक-दूसरे से अलग कर रहे थे। बुआ बोली, 'हाँ, गाड़ी एक बजे जाती है।"

भुवन का माथा ठनका, 'मुझे आज बेचने तो नहीं जा रहे हैं? मनोरमा को भी इसी तरह कहीं छोड़ आये थे···अच्छा जजमान कोई फँसा होगा··· कितने में बेचेंगे मुझे? तीन हजार में? पन्द्रह सौ में? पच्चीस सौ में?···इसीलिए शाम को कल दो नफीस साड़ियाँ आयी हैं! चमकीले ब्लाउज···नकली हीरे के टाप्स··· नेल पालिश··· लिपस्टिक··· स्नो और पाउडर···' सिर चकराने लगा भुवन का।

खाना तैयार हो चुका था। बुआ पहले खा लेगी, चाचा पीछे बैठेंगे खाने। भुवन पापड़ सेंकने लगी तो पहला पापड़ जल गया। लगा कि किसी ने चिमटे से पकड़कर उसे ही भट्ठी के अन्दर लटका दिया है और वह जल रही है··· चट्-चट्-चट्···जलते हुए कच्चे मांस की तीखी गन्ध···हुँ···आतंक की कल्पित अनुभूति तीव्रता के छोर पर आ गयी तो दूसरा पापड़ भी चिमटे से छूटकर दहकती सिगड़ी के अन्दर जा पड़ा।

जलते पापड़ की सोंधी-तीखी गन्ध बुआ तक पहुँची, नथुने फड़क उठे। चीख पड़ी, "क्या हो रहा है भुवन, पापड़ों से ही हवन कर रही हो? किससे सीखा है यह मन्त्र ?"

भुवनेसरी कुछ नहीं बोली, सँभल जरूर गयी। फिर दो-तीन पापड़ सेंके।

बुआ के सामने थाली रखकर बोली, "कम्पाउण्डर की बीवी के पास अपनी दो किताबें, स्वेटर की एक बांह और क्रोशिए पड़े हैं, ले आऊं जाकर।"

सिर हिलाकर बुआ ने मना किया। कौर निगलकर कहा, "लौट ही तो आयेगी कल···जाके वापस आना है, बस !"

लड़की को बुआ की इस बात से जरा-सी तसल्ली हुई और माथा हल्का हुआ।

माथा तो हल्का हुआ लेकिन मन का खटका लगा रहा, नहाने गयी तो देर तक धार बम्बे से गिरती रही और भरी बाल्टी का पानी उमड़-उमड़ कर नीचे फैलता रहा।

भुवन जाने कब तक बाथरूम में बैठी रह जाती अगर नेपालिन आकर टूटी किवाड़ न खटखटाती·· नहाने का घर क्या था माचिस की डिबिया थी। एक किवाड़ नदारद, दूसरा किवाड़ टूटा हुआ···अन्दर चौखटे की दोनों ओर किसी पुण्यात्मा ने कीलें ठोंक दी थीं, उन्ही कीलों में चादर उलझाकर पर्दा कर लिया था भुवनेसरी ने। गर्दन लम्बी करके मात्र सिर बाहर निकाला, बोली, "बस दो मिनट और !"

नेपालिन वापस गयी।

कपड़े बदलकर चौखटे की कीलों से पर्दावाली चादर उतारने ही वाली थी, कि कम्पाउण्डर की बीवी ने झांका। उसके हाथ काले थे। पलकें झपकाकर मुसकरायी, कहा, "हाथ ही धोने हैं, तुम इत्मीनान से नहाओ !"

"आओ। आओ !···" भुवन ने फुसफुसाकर लेकिन बेचैन मुद्रा में कहा, "बस आज तो तुम्हारी इन्दिरा का···"

आगे शब्द नहीं थे लेकिन गला काटने का संकेत साफ था—दाहिनी हथेली को गर्दन से भिड़ाकर रेतने का इशारा !

कम्पाउण्डर की बीवी अनहोनेपन की दहशत के मारे दो कदम पीछे हट गयी। समझ में नहीं आया कि आखिर हुआ क्या ! भुवन ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और अन्दर बाथरूम में खींच लिया। कान में बोली, "अभी मुझे वह बाहर ले जा रहा है। शायद कोई खरीदार मिल गया है···"

"हाय !" कम्पाउण्डर की बीवी के मुँह से निकला, "पहले क्यों नहीं बतलाया इन्दिरा, अब इस वक्त मैं क्या करूँ ?"

"मै कल लौट आऊंगी दीदी !"

"सच इन्दो ?"

"चुड़ैल कह तो रही थी।"

"मगर तूने पहले क्यों नहीं बतलाया ?"

"मुझे खुद भी मालूम नहीं था···लेकिन हाथ तो धो लिए होते !"

निर्मला ने हाथ आगे बढ़ा दिये। इन्दिरा मग से पानी डालती रही। नीरू की आँखों में एकाएक चमक आ गयी। तेज निगाहों से उसने इन्दिरा की आँखों में देखा। उन आँखों में बुझती आशा का अथाह सूनापन लहरा रहा था, भविष्य की अनिश्चितता का कुहासा।

भुवनेसरी की कलाई पकडकर कम्पाउण्डर की बीवी ने दृढ़तापूर्वक कहा, "अब तुझे कोई बेच नहीं सकता, न खरीद ही सकता है कोई। तुझ पर तो अब मेरा ही हक है। मैंने तुझे अपना दिल देकर खरीद लिया है। देखूँ, कौन मेरी बहन का गला काटता है !···"

"लेकिन···" कलाई छुड़ाते हुए भुवन कुछ कहने लगी तो कम्पाउण्डर की बीवी ने बायाँ हाथ उसके मुँह पर रख दिया और झल्लाकर कान में कहा, "लेकिन-फेकिन नहीं सुनूँगी इस वक्त ! निकल यहाँ से, चल मेरे साथ।···"

भुवन का हाथ पकड़कर वह उसे रहने के अपने हिस्से में ले आयी। अन्दर सोने के कमरे में डाल दिया। बोली, "घबड़ाना नही इन्दो, आज से तेरी नयी जिन्दगी शुरू हुई···उन शैतानों से मै निबट लूंगी, तू रत्ती-भर फिक्र न कर···" पीठ पर हाथ फेरकर कम्पाउण्डर की बीवी ने भुवन को चूम लिया।

और भुवन रो रही थी, शब्दों का मानो उसके लिए कोई अस्तित्व ही नही रह गया था। उसका क्या होने वाला है ? कौन-सा तूफान आनेवाला है आगे ? एक कम पढ़ी-लिखी औरत, जो खुद ही किसी अधेड़ मर्द की दूसरी बीवी है, उसके लिए भला क्या कर सकेगी ? शर्मा क्या भुवन को यों ही छोड़ देगा···? एक साथ ही बीसो सवाल भुवन के दिमाग को भूनने लगे और वह रो रही थी।

कम्पाउण्डर के कब्जे में दो कमरे थे, बरामदा था, छोटा-सा आँगन था। सोनेवाला कमरा मकान-मालिक के उस हाल से लगा हुआ था, जिसमें वह अनाज और सीमेंट की बोरियाँ रखा करता था। टूटे फर्नीचर भी उसमें पड़े थे। गर्मियों में तरावट रहती थी, बैसाख-जेठ की झुलसती दुपहरिया मुंशी के परिवार को नीचे खींच लाती थी। अन्दर-ही-अन्दर ऊपर का रास्ता था।

कम्पाउण्डर की बीवी अपना दरवाजा तो बन्द कर ही आयी थी, अब कमरे की भीतर वाली खिड़की से कूदकर उस तरफ हाल में चली गयी। सीढ़ियों से ऊपर पहुँचकर मनबोधलाल की पतोहू से सारी स्थिति संक्षेप में बतलायी तो उसने कहा, "मुझे क्या पता था कि कसाई आ गया है इस मकान में ? यह तुमने अच्छा किया कि भुवनेसरी को उसके चंगुल से निकाल लायी···लेकिन, अम्माँ और

बाबूजी इस झमेले में नहीं पड़ना चाहेंगे। अपने घर वाले से पूछ लिया था?"

"नहीं, किसी से नहीं पूछा था," कम्पाउण्डर की बीवी बोली, "पूछने-पाछने का मौका ही कहाँ था? और इस वक्त भी ज्यादा सोचने का मौका नहीं है चुन्नू की माँ!"

चुन्नू की माँ धूप में बैठी थी, गोद में दो महीने का बच्चा दूध पी रहा था··· फड़कते गाल और अधमुँदी आँखें···खुराक की मिठास और धूप की गर्माहट··· बस, वह सोने ही वाला था।

कम्पाउण्डर की बीवी बच्चे पर झुक गयी। प्यार-भरी नजरों से क्षण-भर देखती रही शिशु की ओर···

मनबोधलाल की पतोहू ने जाने का इशारा करके उसके कन्धे पर हाथ रखा, कहने लगी, "चलो, इसे सुलाकर आती हूँ। तुम इतने में भुवनेसरी को इधर हाल के अन्दर ले आओ, फौरन वापस जाकर खिड़की में अपनी तरफ से ताला लगा देना···सर्दी के इन दिनों में हमारे यहाँ का कोई भी हाल के अन्दर नहीं झाँकता है···अम्माँ और बाबूजी प्रयाग से दस रोज बाद लौटेंगे। इनको तो खैर मैं मालूम होने ही न दूँगी···लेकिन तुम लाली को रखोगी कहाँ?"

"अब यह सब फिर सोच लिया जायेगा," कम्पाउण्डर की बीवी ने सीढ़ियों से उतरते-उतरते कहा और अदृश्य हो गयी अगले ही क्षण।

खिड़की में ताला लगाकर वह खाने बैठी ही थी कि दरवाजा खटखटाया किसी ने। उठ गयी, बायें हाथ से उसने साँकल खोली। सामने नेपालिन थी।

भुवनेसरी के बारे में पूछे जाने पर कम्पाउण्डर की बीवी ने बतलाया, 'मैंने सुबह से तो उसे नहीं देखा है, बाथरूम में होगी···"

नेपालिन के चेहरे पर परेशानी थी, उदास स्वर में बोली, बाथरूम में तो मैंने ही देखा था। पछीटे हुए कपड़े, बाल्टी, मग, साबुन···सारा कुछ बाथरूम में पड़ा है! आप भी आके देखिए न?"

कम्पाउण्डर की बीवी नेपालिन के पीछे-पीछे बाथरूम तक आ गयी। विस्मय की मुद्रा में मुँह बनाया और पाखाने की ओर हाथ उठाकर कहा, "उधर देख आयी हो?"

"उधर? हाँ, उधर भी देखा है।"

"इधर?"

"जी, इधर भी।"

कम्पाउण्डर की बीवी ने महिम और दिवाकरजी वाले निचले-उपरले कमरों की ओर इशारा किया था। नेपालिन की परेशानी में वह भी हिस्सा बँटा रही थी कि शर्मा और बुआ भी बाहर निकल आये।

बुआ कम्पाउण्डर के आँगन में आ गयी। बरामदा देखा, दोनों कमरे देखे।

बिना कुछ बोले ही वापस चली गयी।

शर्मा दो-तीन बार नीचे-ऊपर देख आया। विभाकर स्कूल गया हुआ था। शास्त्रीजी गये थे भागलपुर। मर्दों में से अकेले महिम था।

शर्मा ने तीसरी बार महिम से पूछा तो उसने कड़ी आवाज में कहा, "माथा तो नहीं खराब हो गया है आपका ?"

सभी को पता था कि महिम शराब पीता है। शर्मा का लेकिन इस समय सचमुच दिमाग चकरा रहा था। सामने मुसीबत जो थी, वह इकहरी नहीं, दुहरी थी।

उम्मी की माँ और वह दूसरी पड़ोसिन बुआ को राय दे रही थीं कि शाम तक लड़की वापस नहीं आती है तो पुलिसवालों की मदद लीजिए। समय-साल ठीक नहीं है, जाने कौन उचक्का बेचारी को बहका ले जाये और कहीं की न रखे।

कम्पाउण्डर की बीवी नेपालिन से बार-बार बतला रही थी, "कल भुवन ने कई दफे गंगा चलने के लिए कहा था, आज सुबह भी कह रही थी। नल में नहाने से उसको सन्तोष नहीं होता है। शायद गंगा चली गयी होगी···"

और नेपालिन का कहना था, "भला गंगा कैसे गयी होगी, सब कुछ तो यहाँ पड़ा है बाथरूम में ?"

बुआ की तो मानो जीभ ही अकड़ गयी थी, एक भी शब्द निकल नहीं रहा था मुँह से।

नौ

विभाकर ने कहा, "दीदी, आज रातवाली गाड़ी से मुझे वापस जाने दो। स्कूल में गैरहाजिरी बढ़ती जायेगी न ?"

"ज्यादा नहीं रोकूँगी," इन्दिरा बोली, "कल जाओगे। आज शाम को भइया, भाभी और बच्चे नाव से राजघाट जायेंगे, वापस भी आयेंगे उसी नाव से। मुझे भी साथ जाना है और तुम्हें भी जाना होगा···कहते हैं, नाव से काशी की शोभा देखते ही बनती है और मैंने तुम्हारी तरफ से भी हाँ कर दी थी न !"

"कल भी तो न रोकोगी ?" विभाकर ने मुस्कराकर पूछा।

इन्दिरा ने कहा, "नहीं विभू, कल क्यों रोकूँगी !"

विभाकर के सामने 'आज' का रविवासरीय परिशिष्ट फैला था। पाँच साल की बच्ची करीब ही खेल रही थी··· धुला चटकीला फ्राक, गेहुँआँ रंग का सुन्दर मुखड़ा, चोटियों में पीला रिबन···प्लास्टिक का बेबी था सामने, उसकी बाँहों को कसरत करवाने में मशगूल थी :

विभाकर ने उसे छेड़ा, "दीदी, यह तो कल पटना जायेगी मेरे साथ··· मुगलसराय में इसको अमरूद खिलाऊँगा। क्यों री कुन्तल !"

कुन्तल इन्कारी मुद्रा में माथा हिलाती रही, बेबी को अब उसने गोद में लिटा लिया था। एक नजर विभाकर की ओर डालकर बोली, "पटना नहीं जाऊँगी, अमरूद आप यहाँ भी खिला सकते हैं···"

"पेटू कहीं की !" अन्दरवाले कमरे से माँ की आवाज आयी तो बच्ची शरमा गयी और खिलौने को अलग रख दिया।

इन्दिरा ने उलाहने के स्वर में कहा, "आप भी खूब हैं भाभी ! एक-आध अमरूद आपको भी तो आखिर मिल ही जाता ! नहीं मिलता ?"

"वो ढेर-से अमरूद रखे हैं," कुन्तल की माँ ने खाने की मेज की ओर हाथ उठाकर कहा, "मुझे तो जुकाम हो गया है मगर तुम क्यों नहीं लेती हो ?"

महरी को इशारा मिला मालकिन का। अगले ही क्षण अमरूदोंवाली चंगेरी इन्दिरा के आगे थी। नमक और काली मिर्च की बुकनी भी आयी।

इन्दिरा ने एक बड़ा-सा अधपका अमरूद उठा लिया, चाकू से चार टुकड़े किये। नमक-मिर्च मिलाकर पहला टुकड़ा बच्ची को थमाने जा रही थी लेकिन माँ की ओर देखकर उसने इन्कार कर दिया।

बेटी के स्वाभिमान पर ध्यान गया तो माँ बोली, "अब लेगी भी कि नही ? कौन-सी बात मैंने कही थी !"

कुन्तल चुपचाप बाहर खिसक गयी तो भागते-भागते छोटे साहब आये और अमरूद के दो टुकड़े चट से उठा लिये !

सभी हँसने लगे। छोटे साहब के गाल अमरूद की पिसायी कर रहे थे, निगाहें लेकिन हँसने वालों के चेहरे तोल रही थीं। मुँह आधा खाली हुआ तो जैसे-तैसे बोले, "क्या किया है मैंने ? क्यों हँस रही हैं आप लोग ?"

और तीसरा टुकड़ा भी छोटे साहब ने उठा लिया, चौथा भी।

इस पर फिर हँसने लगे तीनों। माँ बोली, "राजीव, लगता है तू कई दिनों का भूखा है···"

चार फाँक करके दूसरा अमरूद भी इन्दिरा ने राजीव की ओर बढ़ा दिया मगर उसने कहा, "नही बुआ, अब वो दीजिए चित्तियोंवाला ! दाँतों से काट के खाऊँगा···"

"बन्दर !···" माँ ने कहा। उसकी निगाहें लाड़ को नहला रही थीं।

विभाकर और इन्दिरा ने तीन-चार अमरूद खाये। उधर राजीव रेडियो खोलकर मद्रास से टैस्ट मैच की कमेण्ट्री सुनता रहा। भाभी सुई और धागों में उलझी रही, लैस तैयार होना था पेटीकोट के लिए।

विभाकर पान खाने के लिए गली के नुक्कड़ की ओर निकल गया। इन्दिरा कहानी की कोई पत्रिका ले बैठी।

सदानन्दलाल : निर्मला की अपनी मौसी का लड़का। पिता से बचपन में ही हाथ धोने पड़े। दर्जा आठ के बाद ही कलकत्ता पहुँचकर उसने अपने को जनसमुद्र के ज्वार-भाटे में डाल दिया···ट्यूशन और ट्यूशन और ट्यूशन···अपना खर्चा, माँ का खर्चा, पढ़ाई का खर्चा···श्रवणकुमार ने वर्षों तक अपंग माँ-बाप को ढोया था। खाँचों में बैठे-बैठे देश-दर्शन तो उनके लिए सहज था ही, सेवा भी सुलभ थी··· माँ जब तक जिंदा रहीं, सदानन्दलाल श्रवणकुमार की तरह उनकी खिदमत में जुटा रहा। कलकत्ते के लोकारण्य में यह श्रवणकुमार किसी दशरथ के शब्दवेधी बाण का शिकार नहीं हो पाया।···

स्वस्थ-सुन्दर युवती। लड़कियों के गैर-सरकारी माध्यमिक स्कूल की अध्यापिका। रूढ़ि के बाड़े से बाहर निकलकर संघर्ष की भट्ठी में तिल-तिल करके तपनेवाले माँ-बाप की सन्तान। बी० ए०, बी० टी० करके दो वर्ष अध्यापन। सदानन्द से परिचय···प्रोफेसर श्री सदानन्दलाल। ब्राह्मण की लड़की और कायस्थ का लड़का·· दोनों में घनिष्ठता···इलाहाबाद के आर्यसमाज मन्दिर में शादी···

जिला बनारस की किसी तहसील इण्टरमीडियट कालेज की सर्विस स्वीकार करके भूल नहीं की थी सदानन्द ने, क्योंकि वहीं कुमारी रंजना ओझा से उसका प्रथम साक्षात्कार हुआ था···

ब्याह के आठ-दस साल गुजर गये, नये नागरिकों का छोटा-सा परिवार काशी के मुहल्ला तुलसीघाट में जम गया है। सदानन्द अब विश्वविद्यालय में इतिहास पढ़ाते हैं, रंजना है लड़कियों के इण्टरमीडियट कालेज में। दो बच्चों के बाद तीसरी सन्तान न हो, इसलिए दोनो ने सन्तति-निरोध के तरीके अपना लिये हैं। राजीव और कुन्तल की शिक्षा कन्वेण्ट में हो रही है।···

बरामदे में दोपहर की गुलाबी धूप फैली थी।

बीचों-बीच बड़े तख्त पर गद्दा और चादर। रंजना को आलस्य आ गया, तकिया खींचकर लेट गयी।

राजीव रेडियो बन्द करके वहीं बैठक से कैरम-बोर्ड उठा ले गया, और विभाकर के साथ खेलने लगा।

सुई-धागे और जाली परे हटाकर रंजना ने अच्छी तरह पैर फैला लिये। मुँदी आँखों की पलकों से ऊपर पपोटों की बारीक रगों में सूक्ष्म स्पन्दन गौर करने

लायक था।

इन्दिरा अन्दर से शाल ले आयी, पैरों की तरफ से भाभी को कमर तक उढ़ा दिया। दुबारा फिर कहानी की पत्रिका लेकर नहीं बैठी, विभाकर और राजीव का कैरम-मैच देखने चली गयी।

रंजना सो रही थी—

स्वप्न की इन्द्रधनुषी दुनिया···

बड़ी-बड़ी आँखोंवाली एक हिरन बेतहाशा भागी जा रही है···छोटी-छोटी झाड़ियोंवाली तलहटी का ऊबड़-खाबड़ इलाका। कहीं-कहीं टेकरियों पर पुराने किले नजर आ रहे हैं। टेढ़ी-मेढ़ी नदी दूर से ही चमक रही है। लगता है कुबेर के खजाने की चाँदी बन्दी यक्षों की जलन से अन्दर-ही-अन्दर पिघलकर बह निकली—प्यासे जानवर अलग से ही गर्दन लम्बी करके चाँदी की नदी के प्रवाह पर प्यास बुझाने के लिए झुक पड़े हैं। दो घूंट पीकर ही ऊपर आकर कगार पर खड़े होते हैं और मनुष्य की आवाज में ललकारने लगते हैं भागते हिरन को ! जो भी जानवर चाँदी की उस धार में मुँह लगाता है वह आदमी की बोली में भागते हिरन को आवाज देने लग जाता है···

वह बार-बार कँटीली झाड़ियों में उलझती है, खड्डों में लुढ़कती है बार-बार। पैंतरे बदलकर आगे-पीछे से और अगल-बगल से वे जानवर उस बेचारी को बार-बार घेरते हैं, हमला करते हैं, जमीन पर गिरा देते हैं···लो, गये गरीब के प्राण ! मार डाला ! अब वे उसे नोच-नोचकर खा जायेंगे···

मगर नहीं, वह तो भागती-भागती चाँदी की धार के पास पहुँच गयी···तो वह भी गर्दन लम्बी करके अपनी प्यास बुझायेगी और आदमी की बोली में हमला-वरों को ललकारेगी ? नहीं, नहीं, वह इस तरह अपनी प्यास नहीं बुझाएगी। देखो न, किनारे-किनारे भागी चली जा रही है···तीर लग गया पुट्ठे में, खून की लकीरें नजर आ रही हैं लेकिन भागने की रफ्तार तो और बढ़ गयी।

"अरे ! यह तो अपने हाते के अन्दर आ पहुँची ! अब मैं क्या करूँ ?"

"करोगी क्या। पाल लो इसे, कैसा खूबसूरत हिरन है, वाह !···बदन में दस-पाँच घाव हैं, भर जायेंगे। तबीयत बहलाने के लिए ऐसा सजीव और वफादार खिलौना और कहाँ मिलेगा ?"

"चुच्···चुच्···चुच्···चू ! आ मेरे पास तो आ !···"

"प्यासा है ? पानी पियेगा न ! खायेगा नहीं कुछ ?···अरे राजीव, गोभी के पत्ते पड़े हैं ढेर-से किचन के बाहर···ले आना बेटी ! अपना हिरन बड़ा भूखा है···"

क्या खूब। यह तो अच्छा जादू रहा !

आँखें-भर उस हिरन की रह गयी हैं, मुखड़ा तो इन्दिरा का है यह ! शक्ल-

सूरत, चाल-ढाल, सब कुछ इन्दिरा का···

दीवाल पर से आँगन में बिल्ली कूदी—धम् !

रंजना के स्वप्न में विराम पड़ा। आँखें तो बन्द ही किये रही, लेकिन करवट बदलकर पीठ को आँगन की ओर कर लिया। कुन्तल आकर साथ लेट गयी और नाक को नाक से भिडा दिया।

निद्रित स्वर में रंजना बोली, "चुपचाप लेट, परेशान मत कर !"

कुन्तल बित्ता-भर अलग हो गयी, उँगलियों-में-उँगलियाँ उलझाकर अपने आप खेलने लगी।

सपनों की कड़ी टूट गयी थी, रंजना को अखर रहा था।

लाख कोशिश की, सपनों का तार फिर नहीं जुड़ सका। थोडी देर तक लेटी रही और इन्दिरा के बारे में काफी कुछ सोचा। तय किया कि इस लड़की को प्राइवेट तौर पर पढ़ायेगी, अगले वर्ष प्रवेशिका (एडमिशन) का इम्तहान दिला देगी।

निर्मला ने विभाकर को सदानन्द का पूरा पता दिया था, चिट्ठी दी थी। स्टेशन से तुलसीघाट तक पहुँचने में जरा भी दिक्कत नहीं हुई, सुबह का वक्त था। पत्र देखकर सदानन्द ने इन्दिरा की पीठ पर हाथ रखा, बोले थे, 'पिछली बातों को बिलकुल भूल जाना ! सोचो कि फिर से जन्म हुआ है···यहाँ आराम से रहो। पढ़ो और लिखो, बच्चों के साथ खेलो ! बहुत सारी सहेलियाँ मिल जायेंगी यहाँ तुम्हें'···और तभी से भाई साहब ने इन्दिरा को ममता के दायरे में समेट लिया।

और भाभी ? भाभी ने तो संजीदगी और स्नेह का अनूठा परिचय दिया था पिछले कई दिनों के अन्दर। रंजना ने इन्दिरा को इस तरह अपना लिया जिस तरह गंगा यमुना को अपनाती है। पिछले जीवन के बारे में एक भी सवाल नही पूछा था उसने···खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने की रुचि के सिलसिले में लेकिन कई बातें पूछ ली थीं।

निर्मला ने पत्र में जो कुछ लिखवाया था, रंजना ने वह चिट्ठी ड्रेसिंग टेबुल की दराज में रख ली थी। इन्दिरा अपने बारे में नीरू का वह पत्र इन तीन दिनों के अन्दर पाँच-सात बार पढ़ चुकी थी और अब भी बार-बार पढ़ना चाहती थी।

भुवन मर चुकी थी इन्दिरा का जन्म चिता-भस्मावली की उस वेदी पर हुआ था···इन्दिरा के लिए जीवन की पिछली बातें 'आख्यान'-भर थीं। दस रोज पहले वह क्या थी, इसका ध्यान आते ही लड़की को रोमांच हो आता था।

तो फिर उस चिट्ठी को बार-बार इन्दिरा क्यों पढ़ती थी ?

अपने मनोबल को परखने के लिए पढ़ती थी।

मुसीबतों ने उसकी आत्मा को इस तरह कुचल दिया था कि अपनी सहज

सूझ-बूझ को भी वह धोखे की टट्टी मानने लगी थी। अपने बारे में सोचना उसकी राय में सबसे ज्यादा खतरनाक काम था। निर्मला ने हिम्मत न की होती तो इन्दिरा का उस नरक से निकलना असम्भव ही था।

बाल्टी में बच्चों के स्वेटर भीग रहे थे। रंजना बाथरूम जाते-जाते बोली, "तीन बजनेवाले हैं, स्वेटर खींच लूँ। इतने में तुम कुन्तल के कपड़े बदलवा दो। चार बजे चाय का पानी चढ़ा देंगे। पाँच बजे निकलना है, सदानन्द दशाश्वमेध आ जायेंगे।"

इन्दिरा कुन्तल को खोज लायी बाहर से।

ड्रेसिंग टेबुल के करीब खड़ी हुई तो कुन्तल को जैसे कुछ याद आ गया। आँखें फैलाकर बोली, "फिर वक्त नहीं मिलेगा बुआ, सुबह स्कूल के लिए कापियाँ और किताबें सहेज लूँ!"

"जल्दी आओ लेकिन।" इन्दिरा ने कहा।

बच्ची दूसरे कमरे की तरफ चली गयी तो इन्दिरा ने दराज खींचकर पत्र निकाल लिया·· स्टूल पर बैठकर पढ़ने लगी :

"भइया के चरणों में निर्मला का प्रणाम।

" एक अनाथ लड़की आपकी शरण में जा रही है। मुझे पूरा भरोसा है कि आप और भाभी इस लड़की को अपने परिवार में शामिल कर लेंगे।

" भइया, आपने बहुतों का उद्धार किया है। आपका हृदय विशाल है···मैं बचपन से ही आपके स्वभाव को जानती हूँ। किसी कारण अगर अपने परिवार में इस समय इस लड़की को जगह न दे सकें तो कोई दूसरी व्यवस्था करेंगे।

" इन्दिरा नाम है, उम्र है उन्नीस की। जिला मुंगेर की किसी मशहूर बस्ती में पैदा हुई थी, घराना ऊँची नाकवालों का। पन्द्रह की उम्र में शादी हुई। दूल्हा पाइलट था, उसी वर्ष हवाई दुर्घटना में जान गँवा दी। इन्दिरा का फिर वही हाल हुआ, घुटी हुई तबियत के युवकों और आदर्शहीन अधेड़ों के बीच एक विधवा तरुणी का जो हाल होता है।

" गर्भ चार महीने का हुआ। एक अत्याचारी रिश्तेदार डाक्टरी इलाज के बहाने इन्दिरा को आसनसोल ले गया और धर्मशाला में अकेली छोड़कर खिसक आया। तब से दो वर्ष इन्दिरा के कैसे कटे हैं, यह बात धरती जानती होगी या आसमान जानता होगा···हम-आप तो अन्दाज भी नहीं लगा सकते भइया!

" लड़कियों और औरतों की खरीद-बिक्री जिनका धन्धा था, ऐसे ही एक राक्षस के चंगुल से आपकी छोटी बहन इन्दिरा को छुड़ा लायी है—झपट्टा मारकर चील की तरह छीन लायी है···

" आप मेरी पीठ ठोकेंगे और भाभी मुझे इनाम देंगी।

" छोटे भइया की शादी के मौके पर आप दोनों गया जरूर आयेंगे।

" भाभीजी को प्रणाम··· चिरंजीव राजीव और कुन्तल को प्यार···
नीरू, आपकी छोटी बहन।"

जिसके हाथ की लिखावट थी वह विभाकर बाहरवाले कमरे में कैरम खेल रहा था।

इन्दिरा को लगा कि इस पत्र को फाड़कर चूल्हे के हवाले कर देना था। वह अपने अन्दर अब नयी चेतना महसूस कर रही थी। जीवन के इस नये प्रवाह का स्वाद कैसा अनूठा था।···दोनों हाथ जोड़कर उसने भइया और भाभी के फोटो को प्रणाम किया···जिसका फोटो बाहर नहीं था, बल्कि अपने दिल की दीवार से टँगा था, उस निर्मला को तो इन्दिरा ने कई गुना अधिक श्रद्धा से प्रणाम किया।

नृत्य की भंगिमा में उछलती हुई कुन्तल आयी, सामने खड़ी हो गयी!

दस

शर्मा और दासजी के सामने आमलेट की एक-एक प्लेट थी, बुआ के आलू-चाप था।

सोनपुर रेलवे स्टेशन का रिफ्रेशमेण्ट रूम।

बाहर लखनऊ और पहलेजा घाट जानेवाली ट्रेनें खड़ी थीं। प्लेटफार्म पर दोनों ओर काफी चहल-पहल थी। अन्दर चाय और नाश्ता के लिए पाँच-सात टेबुलों पर मुसाफिर जमे थे। भीड़ नहीं थी। बैरे इत्मीनान से उन्हें सर्व कर रहे थे।

काले रंग का ओवरकोट, पश्मीने का कश्मीरी मफलर स्लेटी रंग का।···शर्मा ने निचली पॉकिट से गोल्ड फ्लैक का पैकेट निकाला और बैरे को माचिस के लिए संकेत किया।

एक सिगरेट दास को थमाता हुआ बोला, "इस लड़की ने तो मुझे ऐसा छकाया कि···"

"बड़े खानदान की थी न!···" बुआ ने आहिस्ता से कहा। टमाटर की मीठी चटनी उँगली से चाटती रही और शर्मा की ओर देखती भी रही।

सिगरेट एक तरफ रखकर तिलकधारीदास चार अण्डों के उस बड़े आमलेट में भिड़ा था। चाकू सहित दाहिना हाथ उठाकर बोला, "कई रोज हो गये न? कहाँ

गयी होगी भला ?"

बैरे ने आकर सिगरेट सुलगा दी···धुएँ के छल्ले ऊपर उठकर धीर-ललित भंगिमा में मंडराने लगे तो बुआ ने गर्दन ऊँची की, देख लिया उन्हें। बुआ को पहाड़ी शरद के कुन्तल मेघ याद आ गये।

शर्मा ने जलती सिगरेट को राखदानी के कन्धे पर रख दिया। बोतल का लेबुल देखकर जरा-सा सिरका उँड़ेल लिया प्लेट में···बुआ ने हाथ बढ़ाकर शीशियों से नमक और काली मिर्च की बुकनी छिड़क दी आमलेट पर···चाकू और काँटे में हरकत आयी।

कुछ देर तक वे नहीं बोले।

शर्मा ने आमलेट खत्म किया। पानी पीकर सिगरेट की ओर दृष्टि डाली और वह राख हो चुकी थी।

दास ने अपनी माचिस निकाली। सिगरेट का धुआँ फिर ऊपर उठा।

बुआ ने पूछा, "ट्रेन छूट नहीं जायेगी ?"

"छूटने दो !" शर्मा बोला। दास ने घड़ी देखकर कहा, "बीस मिनट बाकी हैं—वो चाय आ रही है। इस स्टीमर को छोड़ देंगे तो दूसरा स्टीमर छह बजे से पहले नहीं मिलेगा। लेकिन आप तो शर्माजी मुजफ्फरपुर जा रहे हैं न ?"

"हाँ," शर्मा ने कहा, "आप इनको धर्मशाला पहुँचा दीजिएगा !"

"जरूर पहुँचा दूँगा। और, आप वापस कब आ रहे हैं ?"

"कल शाम तक। देर हुई तो परसों जरूर पहुँच जाऊँगा।"

"हाँ, मकान के लिए कहा था न ? 'पत्थर की मस्जिद' से आगे मिले तो लीजिएगा ?"

"दूर पड़ जाता है।"

"आपके लिए तो फिर भी ठीक ही रहेगा।"

"लेकिन बाँकीपुर में भी खोजना चाहिए।"

"बेशक !"

बुआ बोली, "पटना बड़ा ही रद्दी शहर है दासजी, झूठ कहती हूँ ?"

"झूठ ! बिलकुल झूठ !" तिलकधारीदास ने कहा और बूढ़ी उँगली के नाखून से ठनकाकर चाँदी का रुपया बजाने की मुद्रा दिखलाते हुए बात पूरी की, "इधर देखिए देवीजी, यही एक ऐसी चीज है जिसकी बदौलत रद्दी-से-रद्दी जगह शानदार हो उठती है ! इसके बिना स्वर्ग नरक बन जाता है। आपको लगता होगा पटना रद्दी शहर, मेरे खातिर तो वह इन्द्रपुरी है···"

शर्मा आँखें फैला-फैलाकर तिलकधारीदास की बातों का अनुमोदन कर रहा था। पटना की कृपा से उसके दर्जनों रिश्तेदार मालामाल हो गये थे। जान-पहचान के पचासों युवक सेक्रेटेरियट में सरकारी फाइलों पर पद्मासन लगाये बैठे थे। इन

दस-बारह वर्षों में क्या-से-क्या हो गया था। हुकूमत की बागडोर अपने आदमियों के हाथों में आ गयी थी। छोटा भाई सन् बयालिस में चार-छह महीने के लिए जेल हो आया था, कांग्रेस की मेहरबानी हुई और अब वह नयी दिल्ली पहुँच गया था। जिला के हाकिम सलाम ठोकते थे।···सूझ-बूझ होनी चाहिए तुम्हारे अन्दर, जरा-सी हिम्मत से काम लो और फिर देखो कि कहाँ पहुँच जाते हो?···दास की बातें अच्छी लगी शर्मा को।

चाय पीते-पीते शर्मा ने बुआ से कहा, "मैं मानता हूँ, पटना में गन्दगी बहुत है, कार्पोरेशन लँगड़ा है। रहने लायक मकानों की कमी अखरती है। मनबोधलाल अकेला नहीं है, सैकड़ों मनबोधलाल हैं और कार्पोरेशन की छत्रछाया में किरायेदारों का सत निचोड़ते जाना ही उनका खास पेशा है···"

"लेकिन यही सब कुछ नहीं है," चाय खत्म करके तिलकधारीदास ने शर्मा की बात मुँह से छीन ली, "बोरिंग रोड और कदमकुआं-जैसी साफ-सुथरी बस्तियाँ भी इस शहर के अन्दर हैं। निकट भविष्य में ही नगर का कायापलट हो जायेगा। आज के सड़े-पुराने मकानात साफ-सुथरे और आरामदेह काटेजों में तबदील हो जायेंगे।"

शर्मा ने बिल चुकाया, बैरे को पचीस पैसे 'टिप' में दिए।

तीनों बाहर प्लेटफार्म पर आ गये।

बुआ को लगा कि नाहक उसने पटना को रद्दी शहर कह दिया, दासजी बुरा मान गये।

पहले जानेवाली ट्रेन में इंजन लग चुका था। सेकेण्ड क्लास के कम्पार्टमेण्ट में बुआ को बैठाकर दोनों पान की दुकान के सामने आ गये।

आईना काफी साफ और बड़ा था। उड़ती निगाहों से चेहरा देखा। शर्मा का दिमाग परेशानी का शिकार था, होंठों पर मुसकान कहाँ से उभरती? दासजी ने भी अपनी संजीदगी बरकरार रखी।

शर्मा ने दास की ओर घूमकर कहा, "मुझे तो भई कम्पाउण्डर की बीवी पर शक है!"

"धत्···!" दास बोला और आईने में शर्मा का चेहरा देखता रहा।

पानवाले ने चार बीड़े थमाये।···जर्दा और सुपारी के टुकड़े।

चूना के लिए हाथ बढ़ाकर शर्मा ने आँखें नचायीं, "आपको किस पर शक है?"

"छोकरी खुद ही क्या कम चालाक थी?" दासजी ने कहा।

चूना चाटकर क्षण-भर बाद बोला, "जादूगर की डिबिया कहीं से हाथ लग गयी हो और बाथरूम से उठाकर भुवन को उसी में रख लिया हो···"

"आप तो मखौल उड़ाने लगे मेरी बात का!"

"नहीं शर्माजी, आपके इस शक की कुछ बुनियाद भी तो हो आखिर ?"

"हमारी बहन का भी उसी औरत पर शक है।"

"मगर वो बेचारी भुवन को गायब करके क्या पा गयी ?···मान लीजिए कि कम्पाउण्डर की बीवी ने उस लड़की को कहीं छिपा दिया···किसी अदृश्य सुरंग के रास्ते, बाहर सुरक्षित स्थान में कहीं रख आयी होंगी···समझ में आ नहीं रही है बात शर्माजी !"

शर्मा ने दासजी के कन्धे पर हाथ रख के कहा, "शक तो फिर शक हुआ ! मैं यह कहाँ कह रहा हूँ कि उसी ने भुवन को गायब कर दिया। मकान-मालिक का भीतरी गोदाम कम्पाउण्डर के कमरे से मिला हुआ है, बीचोंबीच दीवाल है। दीवाल में खिड़की है। दोनों तरफ से ताला लगा रहता है। इस तरह हमारा उस पर सन्देह करना ठीक नहीं जँचेगा। लेकिन कम्पाउण्डर की बीवी को छोड़कर उस मकान के अन्दर और कौन थी जिसमे भुवन का इतना अधिक प्यार था ? राय न भी ली हो, बतलाकर जरूरी गयी होगी···"

तिलकधारीदास ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, यह बात समझ में आती है।"

इंजन ने सीटी दी। शर्मा ने कहा, "अब आप ट्रेन में बैठ ही जाइए।···चम्पा बेहद घबडा गयी है, आप कल उसे अपने परिवार में ले जाइए। दिन-भर उन लोगों के साथ रहेगी, बच्चों से मन बहलेगा। औरतें चाहे कैसी भी परेशान हों, वातावरण उनके लिए टानिक साबित होता है।"

तिलकधारीदास ट्रेन के अन्दर दाखिल हुए कि इंजन हरकत में आया।

ट्रेन सरकने लगी। शर्मा ने बुआ से कहा, "चम्पा, कल तुम दासजी के बासे पर हो आना।"

चम्पावती सिर हिला रही थी, कम्पार्टमेण्ट आगे सरक गया।

पन्द्रह मिनट बाद ही सबलपुर का दियारा था सामने। बलुआही मैदान ककड़ी-खरबूजा और परबल की बेलों से चितकबरा लग रहा था। माघ की पूर्णिमा गुजर चुकी थी। हवा में खुनकी थी तो धूप में तीखापन आ रहा था। सूर्य की किरणों में गंगा की धार चमक रही थी, उस पार बाँकीपुर के बिल्डिंग जगमगा रहे थे।

स्टीमर में भीड़ नहीं थी और वक्त पर खुला था।

दासजी ने कैण्टीनवालों को मक्खन-रोटी और चाय के लिए आर्डर दे रखा था। सेकेण्ड क्लासवाले गोल केबिन में दोनों आराम से बैठे थे।

चम्पा ने मुस्कराकर कहा, "आपको बन्द केबिन में यों बैठना अच्छा लगता है, मुझे तो यह अच्छा नहीं लग रहा है···!"

"अच्छा तो मुझे भी नहीं लगता है," तिलकधारीदास ने अखबार के कालमों से नजर बिना उठाये ही कहा, "मगर यहाँ बैठने का आराम था न !···चाय पीकर बाहर डेक पर खड़े होंगे।"

चम्पा ने खिड़की से उचककर देखा : बालूवाले किनारे तेजी से पीछे खिसक रहे हैं।···नीली जलराशि के मोटे हिलकोरे झूलों की तरह स्टीमर को झुला रहे हैं और अब किनारा छोड़कर जहाज पटना की ओर होने लगा···इस पार से उस पार क्या आमने-सामने जा लगेगा?···पानी में कहीं-कहीं खूंटा गड़ा है, रहनु-माई के लिए!···दाहिनी ओर बीच में ही छोटा-सा दियारा निकल आया, ढाई-तीन बीघे की पट्टी होगी नाव की शकल की। फूस की दो छोटी झोंपिड़ियां दिखायी पड़ीं···लँगोटी सूख रही है, सन्तमहात्मा ने आसन जमा रखा होगा।

चम्पा की इच्छा हुई कि वह भी इसी दियारे पर रह जाती···शर्माजी को यह अच्छा लगेगा? नहीं अच्छा लगेगा। मैं खुद ही चार रोज से ज्यादा रह लूंगी इन झोंपड़ियों में? सैर-सपाटे के लिए दो-एक दिन बीहड़-वीरान मे भटक लेना और बात है—स्वर्ग में भी मुझे अकेले रहना पड़े तो थाइसिस हो जायेगी···भरे-पूरे परिवार में पैदा हुई थी न? आलू का भर्ता और भात पर ही बचपन नहीं गुजारा था मैंने···मीठा-तीता, तीखा-चरपरा, खट्टा-सोंधा वह कौन-सा रस है भला, जिससे जीभ अघा न चुकी हो?···पहनने के लिए बित्ते-भर चौड़ी दो लँगोटियां, ढाई-ढाई गज के दो टुकड़े! और क्या होगा झोंपड़ीवाले के पास? अपने तो ट्रंकों में तीस-चालीस साड़ियां होंगी···

शान्ति-निकेतनी स्टाइल की किनारियोंवाली चम्पई रंग की रेशमी साड़ी और उसी से मैच करती ब्लाउज पहने एक बंगाली लड़की डेक पर रेलिंग से लगी खड़ी थी! उधर नजर उलझी तो चम्पा को अपनी जवानी के दिन याद आ गये।

कैण्टीन का बैरा ट्रे रख गया था।

दासजी ने मक्खन लगाकर पहली स्लाइस चम्पा को थमा दी, दूसरी को भी उसी के लिए रख दिया। बाक़ी दो अपने मुँह में।

चाय बनायी चम्पावती ने।

पापड़वाला दिखायी दे गया, दो पापड़ लिये गये।

चम्पा बोली, "महेन्द्रू घाट और पहलेजा घाट के दर्म्यान जहाज की आधा घण्टावाली ट्रिप मुझे बड़ी अच्छी लगती है। मैं तो महीने में एक-आध बार यों भी आ जाती हूँ।"

"फिजूल भटकना पागलपन है देवीजी!" दास ने कहा।

चम्पा चुप रह गयी।

अगले ही क्षण केबिन से बाहर आकर वह डेक की रेलिंग के सहारे खड़ी थी। लेकिन गंगा की मुख्यधारा अब पीछे छूट गयी। महेन्द्रू घाट करीब आ रहा था।

पीछे-पीछे तिलकधारीदास भी डेक पर आया।

उतरने के लिए मुसाफिरों में सुगबुगाहट आयी। देहाती लोग गट्ठर सिर और कन्धों पर लादे अभी से खड़े हो गये।

दासजी ने चम्पा से पूछा, "चलिए न आज ही हमारे डेरे पर ! धर्मशाला में अकेले क्या कीजिएगा ?"

"नेपालिन इन्तजार कर रही होगी, आज तो मुझे धर्मशाला ही पहुँचा दीजिए। कल जरूर आ जाऊँगी···" चम्पा को मनबोधलाल वाला मकान याद आ गया···कैसे-कैसे अजीब लोग उस कबाडखाने में रहते हैं ? अच्छा हुआ, छुटकारा मिला।

जेटी से जहाज आ लगा। दोनों बाहर निकल आये।

ग्यारह

आधा सेर हरे चने लिये थे, चूसने के लिए लाल गन्ना लिया था। गोभी, आलू, धनिया के पत्ते, हरी मिर्च, अदरक, आँवले···सब्जी वाला थैला भर चुका था। कम्पाउण्डर की बीवी की नजरें अब बेर खोज रही थीं।

उम्मी की माँ ने बैंगन-मूली, आलू-गोभी, सेम और धनिया के पत्ते लिये थे।

अब दोनों यों ही मुसल्लहपुर हाट के चक्कर लगा रही थीं।

उस भारी भीड़ मे बदन-से-बदन छिलता था। सुबह पाँच बजे से दिन के नौ बजे तक रोज-रोज का यह नजारा था। पाँतों के दर्म्यान ज्यादा-से-ज्यादा जगह छेंक लेने की होड़ के लिए दूकानदारों के लाभ-लोभ जिम्मेदार न थे। नागरिक सहयोगिता के युग-सुलभ संस्कार का अभाव ही इसके लिए जिम्मेदार था।

किसी के बूट से पैर की उंगलियाँ दब गयी तो कम्पाउण्डर की बीवी ने चट-से उसकी मफलर पकड़ ली, डाँटकर कहा, "अन्धे तो नहीं हो !"

"क्या हुआ !···क्या हुआ ?···" कई तरफ से आवाजें उठीं।

कम्पाउण्डर की बीवी मफलर का पल्ला छोड़कर बोली, "जाओ, तुमने मेरा पैर कचर दिया !···नाल ठुँकवाकर भीड़ के अन्दर क्या करने आये हो ?"

भीड में से हँसी की मिश्रित आवाज उठी और वह मुच्छड़ जवान माथा झुकाकर आगे बढ़ चुका था।

कम्पाउण्डर की बीवी के कान में उम्मी की माँ ने कहा, "और अगर वह अड़ जाता ?"

"तो मैं उसे दो थप्पड़ लगाती," कम्पाउण्डर की बीवी बोली, "लेकिन वह समझदार था। शर्म के मारे चुपचाप आगे बढ़ गया। देखा ?"

उम्मी की माँ आगे बढ़ती हुई सोचती रही···'बलिहारी है जीवट की। तुम्हारे माँ-बाप स्वाभिमानी, मस्त और दबंग किस्म के लोग होंगे···झिझक, तंगदिली, डर और उदासी तुम से भागे-भागे फिरते हैं। खुशी और मस्तानापन तुम्हारे कदम-कदम पर निछावर हैं। मुर्दा के अन्दर जान फूंक दी तुमने···भुवनेसरी लाश नहीं तो और क्या थी। चुटकी बजाकर उस मैना को उड़ा दिया तुमने ! और एक मैं हूँ, रोज लात खाती हूँ···कभी इन रगों में भी ताजा लहू दौड़ता था, अब तो बस दुर्गन्ध और बासी पानी भर गया है इनमें—उस हुक्के का पानी जिससे कई होंठ अघा गये हों !···'

"किस गुन-धुन में पड़ी हो !" कम्पाउण्डर की बीवी उम्मी की माँ का हाथ पकड़कर आगे बढ़ी, "और अब क्या लोगी दीदी ? क्या देख रही थीं ठिठककर ! लहसन ? चौलाई के दाने ? भिण्डी और तुरई के बीज ?···देखो, भीड़ छटने लगी न ? आज उन्हें किसी दोस्त के यहाँ दावत है। हरे चने की घुघनी तलूँगी अपने लिए और दुपहर में चुन्नू की माँ के पास छत पर बैठकर गँडेरियाँ चूसूँगी···दीदी, तुमको अच्छा नहीं लगता है गन्ना ?"

उम्मी की माँ कमजोर थी। हाट से बाहर निकलते ही उसकी निगाहें रिक्शा के लिए चौकने लगीं। कम्पाउण्डर की बीवी के लिए तो मील-दो मील का फासला कुछ भी नहीं था लेकिन उम्मी की माँ के लिहाज से रिक्शा कर लेना जरूरी था।

घर लौट आयीं दोनों।

उधर महिम फट पड़ा, "हजार बार कहा कि मुझसे बिना पूछे यों निकल जाने की लत छोड़ो लेकिन कानों की लम्बाई के अन्दर बात जाये भी तो !···"

फीकी नजरों से उम्मी की माँ ने महिम की तरफ देख लिया। दबी जुबान में बोली, "जरा-सी देर हो गयी। आप कपड़े साफ करोगे और नहाओगे, इतने में खाना पक जायेगा···"

महिम ने गुस्से में कहा, "अच्छा, यह तो बतलाइए कि बड़ी चम्मच कहाँ फेंक आयी ? मर्तबान के अन्दर हाथ ही डालना पड़ा !"

सब्जीवाला थैला नीचे रखकर उम्मी की माँ ने दीवालवाली खुली अलमारी को उचक-उचककर देखा, आलों पर टोह ली, कहीं नहीं मिली चम्मच। उदास आवाज में बोली, "ट्रंक में एक और है, निकाल लूँगी···"

महिम ने पैर पटककर कहा, "जहाँ मिले, खोज लाओ ! तुम फेंक आती हो, चोट्टे उड़ा ले जाते हैं—आइन्दा मेरी एक भी चीज मत छूना···"

कमरे के अन्दर और बरामदे में महिम चक्कर काटता रहा। फिर जाने क्या सूझा कि स्टोव से माचिस की तीली छुआ दी। पूछा, "क्या-क्या लायी हो ?"

उम्मी की माँ ने थैला फर्श पर उलट दिया।

बैंगन, मूलियाँ, आलू, गोभी, सेम, धनिया के पत्ते सामने फैल गये—सीमेण्ट का पक्का फर्श भभाकर हँस रहा था।

कलाकार का दिल नाच उठा। आँखें खुशी में फैल गयीं। उम्मी की माँ के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "जियो रानी! तुम कितनी अच्छी हो मामी! कई दिनों से सेम याद आ रहे थे। महिम के मन की बात तुम्हारे सिवा और कौन समझेगा?"

अब मामी भी मुस्करायी। चाकू लेकर सेम तराशने बैठी। महिम के नहाने के लिए पानी गरमाना था। स्टोव जल चुका था, पतीला चढ़ा दिया।

"तुम नहीं नहाओगी?"

"पहले आप नहा लीजिए।"

"दोनों साथ नहीं नहा सकते!"

"तुम तो बच्चों जैसी बात करते हो!"

"तो मैं क्या बहुत बूढ़ा हो गया हूँ?"

"नहीं तो!"

"जानती हो, क्या उम्र है मेरी?"

"बतलाओ भी।"

महिम की पलकें शरारत में झिप गयी, बोला, "सोलह की।"

दोनों हँसने लगे कि पड़ोसिन की बच्ची प्याज माँगने आयी। महिम ने घूरकर छोकरी की ओर देखा और मामी की नजर बचाकर बायीं आँख दबायी। वह लेकिन महिम का इशारा पी गयी और मामी की ओर देखती हुई खड़ी रही।

दस साल की साँवली-सलोनी देह—चेहरा साधारण। सिर के बाल घोंसले की याद दिला रहे थे। जाने कब से उनमें तेल नहीं पड़ा था। गर्दन में मैल की तह जमी थी। बड़े-बड़े गन्दे नाखूनोंवाले हाथ-पैर खरोच के निशानों की बदौलत ही ध्यान खींच रहे थे। बदरंग खाकी निकर और मर्दों के पहनावे की पुरानी बनियान पहने हुए थी।

महिम ने कहा, "अन्दर उस कमरे में तख्तपोश के नीचे पड़े हैं प्याज, जा, ले आ!···"

वह कमरे की ओर जाने लगी तो मामी ने आँख से महिम को इशारा किया, "जाओ, देखो!"

महिम उसके पीछे कमरे के अन्दर गया।

बाहर निकली, हाथ में अच्छा-खासा बड़ा-सा प्याज था। मामी की भौंहों में बल पड़ गये—और, प्याज के नीचे लड़की की हथेली पर दस पैसे का सिक्का मुस्कराता रहा!

लड़की चली गयी तो मामी ने कहा, "बचपन में ही भीख माँगने की ट्रेनिंग

ले रही है।"

"क्या बुरा है ?" महिम बोला, "इस युग में हर भले आदमी की इज्जत भीख पर टिकी है। तरीके बदल गये हैं, भिक्षावृत्ति की व्यापकता तो कई गुना अधिक बढ़ गयी है—और मामी, मुझे बड़ी खुशी होती है कि ब्राह्मणों का हमारा यह शानदार पेशा हमारी सरकार तक ने अपना लिया है—पड़ोस की बच्ची तुम से प्याज या हरी मिर्च माँगने आती है और तुमको बुरा लगता है ! हमारी सरकार के कर्णधार छोटे-छोटे मुल्कों की सरकारों के सामने हाथ फैलाते हैं जाकर, सोचो तो उनको कैसा लगता होगा ?"

पहले तो इस प्रवचन का मतलब उम्मी की माँ की समझ में नहीं आया, थोड़ी देर बाद उसी कमरे के अन्दर घी लेने गयी तो अच्छी तरह सब कुछ समझ में आ गया। मुसल्लहपुर के देशी शराबखाने की 75 पैसे वाली वह बोतल अभी आधा घण्टा पहले ही खाली हुई थी और इस वक्त कोने में पुरानी ट्रंक से उठंगकर ऊँघ रही थी।

इस तरह की सैकड़ों बोतलें सीढ़ियों के नीचे वाली खाली जगहों में पड़ी थीं। कई बार मामी के मन में उन बोतलों को बेच देने का ख्याल आया था लेकिन शर्म के मारे असमंजस में पड़ी थी—लोग क्या कहेंगे ? खरीदार ही भला क्या समझेगा ?···आहिस्ता से उसने बोतल उठा ली, बाहर उन्हीं बोतलों के ढेर पर डाल दिया उसको। लगा कि दारू की बोतल नहीं, छछून्दर की लाश फेंक आयी है, नफरत के मारे मामी का रोम-रोम झनझना रहा था। साँस यों घुट रही थी मानो नाक के छेदों में एक-एक छटाँक ब्लीचिंग पाउडर ठूँस दिया गया हो !

नशे की हालत में महिम को घर के अन्दर अकेले नहीं छोड़ती थी वह। सारी-सारी रात, सारा-सारा दिन अगोरती थी। बाहर नहीं निकलने देती थी। गालियाँ और पिटाई झेलकर भी उसको बहलाने की कोशिश करती थी। इसी साधना में एक बार सिर फट गया था और दूसरी बार दो दाँत टूट गये थे।

आज का नशा हल्का था। फिर भी मामी ने सोचा, "खिला-पिलाकर सुला दूँगी. गनीमत है कि बड़ी बोतल नहीं उठा लाये ! नहा रहे हैं ? अच्छा है, माथा ठण्डा होगा···कमजोर भी तो हैं···खाँस रहे हैं, ज्यादा तो न नहा लिया ?···ले ही आऊँ बाथरूम से।"

महिम नहाकर आ गया। कपड़े बदले।

कुर्ता उल्टा ही डाल लिया था। मामी को हँसी आयी, बोली, "ठीक से पहन लीजिए।"

खाना तैयार था। सेम और आलू की साग, पराँवठे और धनियाँ-हरी मिर्च की चटनी।

खाकर वह बाहर जाना चाहता था, पान खाने। मामी ने नहीं जाने दिया।

खुद जाकर ले आयी दो बीड़े। बोली, "जर्दा नहीं लायी हूँ। पिपरमिंट डलवा दिया है···।"

जर्दा का अभ्यास नहीं था, शौकिया तौर पर महिम जी कभी-कभी ले लेते थे। नशे की स्थिति में लेने पर कै निश्चित था।

जरा देर कविताएँ गुनगुनाते रहे फिर नींद आ गयी।

स्नान-ध्यान, चौका-चूल्हा···सबसे निबटकर उम्मी की माँ बाल बांधने बैठी, आईना सामने रख लिया था।

तेल से तर उँगलियाँ सूखे बालों में चिकनापन ला रही थीं।

आँखें आँखों से भिड़ती थीं बार-बार और बार-बार स्मृति के तारों में कम्पन पैदा होता था। आपबीतियाँ फिल्मी रील की तरह दिमाग के प्रोजेक्टर पर घूमने लगीं···

[चौबीस-पचीस की उम्र का स्वस्थ-सुन्दर युवक। चेहरा बिल्कुल महिम का है···मोटे फ्रेमवाला वही चश्मा, वे ही घुंघराले बाल, कालरवाला वही कुर्ता, चमड़े का वही फोलियो···

[आओ! आओ! अन्दर आ जाओ! मैं अर्से से जिसका इन्तजार कर रही थी तुम वही हो न? हो न वही? सिर तो हिला दो, हाँ, वही हो! और मैं तुम्हारी हूँ···तुम्हारे लिए ही मेरा जन्म हुआ था। तुम मुझसे आठ वर्ष बाद पैदा हुए थे न? तो क्या हुआ? वासना की कोई उम्र नहीं होती। जो प्यार को आयु के गज से नापते हैं उन जैसा कूढ़मग्ज दुनिया में भला और कौन होगा?]

[जिस व्यक्ति ने इस माँग में सिन्दूर भरा था, अपना कलेजा किसी और डाल में टाँगे रहता था। मैं उसके लिए मशीन थी, वंशवर्धन-यन्त्र!···तीन बच्चे हुए। लडकी है, सोलह साल की ··बाकी दोनों लड़के हैं···लड़की अभी-अभी तुम्हें झांक गयी है, नागिन-सी छरहरी और खूबसूरत है। मैं भी कभी इसी कद-काठी की थी। आँख-नाक-होंठ-गाल, सब कुछ तो मिलता है। हाँ, ठुड्डी पर गौर करोगे तो बाप ही की बेटी साबित होगी।]

[दस रोज : बीस रोज : महीना : दो महीने···तीन, चार, साढ़े चार, साढ़े चार महीने···तुम साथ रहते हो। चार-चार सौ, छः-छः सौ रुपये कमा लेते हो··· सारी-की-सारी रकम मुझे थमा देते हो। बाबा रे बाबा, ऐसा भी क्या किसी ने आदमी देखा होगा? खुद अपने पर पचास रुपये भी नहीं लगाता है? गाँव के रिश्ते में वो तुम्हारे मामा निकल आये, तो लो, अब मैं तुम्हारी मामी हुई! हुई न मामी? नहीं हुई?]

[मैं तुम्हारे साथ देवघर की एक धर्मशाला में हूँ···हफ्ता-भर बाद पण्डाजी ने हमारे लिए अलग मकान ढूंढ़ दिया है···छोटा लड़का और नौकर साथ है···

बदहजमी थी न ? अपना वह डाक्टर भी क्या हीरा आदमी है ! बाबूजी (पति) ने लिखा है, "डाक्टर की राय है कि तुम दो-ढाई महीना और रहो···" पत्र पढ़कर तुम मुस्करा उठे हो और मैं गालों पर तुम्हारे लिए एक-एक चपत का इनाम रख रही हूँ ! देवघर का पहाड़ी इलाका : चैत की चांदनी रात : तुम और मैं···!

[हाय ! यह तुम्हें क्या हो गया है ? उचाट हो गये हो मुझसे ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं कहो ! मैं तो बस खत्म ही हो जाऊँगी···मामी की अर्थी में कन्धे भी नहीं लगाओगे ? इस तरह ऊब गये हो ? ओह, अब मैं क्या करूँ ? कैसे बाँधूं तुम्हारे इस मन को ? उम्मी को कर दूँ हवाले ! वो शायद तुम्हें काबू में ले आयेगी ! मैं ठूंठ हो गयी हूँ न ? तो लो, मेरी कोंपल से अपनी तबीयत बहलाओ ! ···बहरहाल, मुझसे पिण्ड नहीं छूटेगा तुम्हारा !

[उम्मी और महिम : महिम और उम्मी···रिक्शा पर साथ बैठते हैं, जाते हैं और आते हैं। नदी में तैरते हैं, सिनेमा देखते हैं, बाजार घूम आते हैं। पिता ने भी काफी छूट दे रखी है। कहते हैं, "देखो, हमारी उम्मी महिम से पेण्टिंग सीख रही है···ला बेटा, कापी तो लेती आ ! देखा, कैसा कमाल कर रही है हमारी उम्मी ? बतख, मोर, उल्लू, मैना···गुलाब, कमल, कनेर, चम्पा···हाथी, ऊँट, बिल्ली, सूअर—मकान, जंगल, इन्द्रधनुष, नाव···रेखाएँ उम्मी की हैं तो रंग महिम के, उम्मी के रंग तो रेखाएँ महिम की !···और मैं उम्मी से जलने लगी हूँ।

[लो, उम्मी का महिम से सब कुछ हो गया ! छै-सात महीने बाद उम्मी माँ होगी, तब मैं नानी कहलाऊँगी ?···बिना शादी के ही वह माँ बन जायेगी ? राम ! राम ! लोग क्या कहेंगे ?

[भागलपुर में गंगा-किनारे बाबा बूढ़ानाथ के मन्दिर की अँगनई में उम्मी और महिम का ब्याह हो रहा है···वो इसके खिलाफ थे, उनसे झगड़कर उम्मी को ले आयी हूँ। माँग में सिन्दूर पड़ जायेगा तो नाहक एक जीव की हत्या तो न होगी ! कितना सीधा है महिम, शादी के लिए चट से तैयार हो गया !

[महिम ने शुजागंज से रेलवे लाइन से दच्छिन भाड़े पर मकान लिया है लेकिन उम्मी अकेले कैसे रहेगी ? एक दिन के लिए भी कभी अकेली रही नहीं आज तक !···मैं साथ रहने लगी हूँ···महिम और उम्मी और माँ यानी मैं··· उम्मी का सुहाग मेरे धैर्य को चुनौती दे रहा है। रात को बगल के कमरे में वे दोनों जागते होते हैं, मैं चूड़ियों की खनखनाहट सुनती हूँ और मेरे अन्दर की प्यासी चुड़ैल का जंगली नाच शुरू हो जाता है···मैं घात लगाये रहती हूँ। उम्मी के सोते ही महिम को खींच लाती हूँ अपने बिस्तरे पर···फिर क्या होता है ? वासना की विकट आँच में झुलसती हुई राक्षसी उस मर्द को मथने लगी है···मथकर छोड़ देती है।···अतृप्त लालसा की यह ताण्डव लीला हर रात चलती है !

[एक रात उम्मी यह सब देख लेती है ! माँ के प्रति बेटी की रग-रग में

घृणा का जहर फैल जाता है और अगले ही दिन वह पिता के पास वापस आती है···महिम के लिए जो भी कुछ स्नेह था, वह पूरी तरह फट चुका होता है।

[पिता उम्मी की चिकित्सा करवाता है : माँ बनने का खतरा टल गया : स्वास्थ्य-लाभ, धूमधाम से अपनी बिरादरी में प्रकट तौर पर शादी !

[उम्मी, तूने यह अच्छा बदला लिया !···अब मैं भला वापस जाती···? महिम, तुम्हारे बिना मैं कैसे जिन्दा रहती ? दुनिया जो चाहे कह ले, मैं नहीं छोड़ती तुम्हें ! ना !···सास-दामाद का रिश्ता तो महज दिखावे का रिश्ता था हमारा, दरअस्ल हम पिछले जन्म के पति-पत्नी थे ।]

कम्पाउण्डर की बीवी ने आकर याद दिलाया, "गन्ना नहीं चूसना है दीदी ? ···आऊँ, मैं बाँध दूँ बाल ? कब से बैठी हो···।"

"नहीं ।" उम्मी की माँ बोली, "कई रोज से बालों में साबुन नहीं लगा सकी हूँ, कल आधा घण्टा माथा मल के नहाऊँगी । तुम चलो, मैं आती हूँ···"

बारह

छोटी साली का ब्याह था। पत्नी और बच्चे उसमें शामिल होनेवाले थे। दिवाकर को पाँच सौ रुपये का नोटिस प्रतिभामा की तरफ से मिल चुका था।

अतिरिक्त आय का कोई और सिलसिला दिवाकर के लिए रह नहीं गया था। गुप्ता ब्रादर्स, श्यामलाल एण्ड सन्ज, साहित्य सदन, किताबकुंज आदि जितने भी प्रकाशक थे, स्कूली किताबों के पीछे पागल थे। उनका यह पागलपन औरों की निगाह में भले ही पागलपन हो, अपने लिए तो 'लाभ-शुभ' का नाटक था, लक्ष्मी का वरदान ! प्रतिभाशाली युवक साहित्यकारों की किताबें अव्वल तो वे लेते ही नहीं थे और यदि लेकर छाप भी लेते तो अँधेरे गुदामों में उन किताबों की रूह दस-दस साल तक घुटती रहती—मंजूरशुदा स्कूली किताबें इन प्रकाशकों के लिए खड़ी फसल थीं और उस फसल को हथियाने के लिए वे क्या नहीं करते थे ? 'शह और मात' का उनका यह आत्मघाती खेल आपस में तो चलता ही था, दूसरे धन्धों में लगे हुए लोग भी उनकी तिकड़मों का शिकार होते थे। कभी-कभी पासा पलट भी जाता था, शकुनि और दुर्योधन खुद ही पिट जाते थे। इन प्रकाशकों में से दो-एक की दिवाकर से अच्छी घनिष्ठता थी।

'34 से '46 तक—तेरह वर्ष साप्ताहिक 'शंखनाद' निकाला, चार बार जेल

गये, एक दिवंगत क्रान्तिकारी मित्र की पत्नी का हाथ पकड़ा और द्रौपदी बनाकर छोड़ दिया···दो मिनिस्टरों के लिए अभिनन्दन-ग्रन्थ तैयार करवाये, एक वयोवृद्ध प्रकाशक की स्वर्ण जयन्ती मनवायी—कैंची और गोंद और रद्दी-पुरानी रीडरों से इन कई वर्षों में पचासों रीडरें औरों के नाम से तैयार कीं, प्रकाशकों से रुपये लिये···पिताजी और बड़े भाई की मृत्यु के बाद पालिटिक्स छूट गया। पटना आकर एक दैनिक समाचार-पत्र के टेबुल पर झुक जाना पड़ा···नौकरी और अटरम-शटरम दोनों साथ-साथ चलते आये। पीछे सरकारी सूचना विभाग में पैम्फलेट एडिट करने का काम मिल गया···दिवाकरजी की कमायी कम नहीं थी मगर खर्चा भारी था। परिवार का पिछला कर्ज चुकाया था, गाँव में पक्की ईंटों के खपरैलोंवाले दो मकान बनवा लिये थे, भतीजे को परचून की दुकान खुलवा दी थी। बड़ा लड़का एम० ए० के बाद दो साल हाई स्कूल की मास्टरी करता रहा और पब्लिक सर्विस कमीशन के अखाड़े में उतरा तो पहली बार नहीं, दूसरी बार छत्तीसवाँ पोजीशन पा गया और अब जिला सहरसा के किसी थाने में ब्लाक डेवलपमेण्ट आफिसर था। अब समय आ रहा था कि दिवाकरजी नौकरी छोड़कर फिर से सक्रिय राजनीति में कूद पड़ें और दो-ढाई साल की कसरत के बाद विधान सभा की उम्मीदवारी के लिए कांग्रेस में किसी-न-किसी गुट के जरिये अपने नाम की सिफारिश हाईकमाण्ड तक पहुँचवा दें और नयी दिल्ली के नये देवाधिदेव शायद द्रवित भी हो जायें!···

इस तरह की बातें दिमाग में आतीं तो दिवाकर शास्त्री अपने अन्दर एक अद्भुत प्रकार की मादकता महसूस करते और अगले ही क्षण उनका पार्थिव ढाँचा रिक्शे पर लदकर कॉफी हाउस की ओर जा रहा होता।

बी० एन० कालेज के सामनेवाला कॉफी हाउस···भुने हुए नमकीन काजू··· पानी का गिलास···सिगरेट का धुआँ और दिवाकरजी।

दिवाकर शास्त्री एम० एल० ए०···दिवाकर शास्त्री एम० पी०···दिवाकर शास्त्री एम० एल० सी०···काजू के दाने और पानी का घूंट! पानी का घूँट और सिगरेट का धुआँ!···सिगरेट का धुआँ और कॉफी की चुस्की!···कॉफी की चुस्की और काजू के दाने···

"ए जी, सुनते हो!"

"क्या चाहिए?"

"काजू थोड़ा और ले आओ!"

"अच्छा!"

"अच्छा!···" दिवाकर के होंठ बुदबुदाये···अच्छा! अच्छा!···कान जाने कौन-सा शब्द सुनना चाहते थे, जाने किस प्रतिशब्द का मिठास—किस प्रत्युत्तर की तरावट कानों को दरकार थे!···रेस्तराँ और होटलों में उत्तर भारत के बैरे

जिस तरह मेजों पर ग्राहकों के सामने 'हजूर-हजूर', 'सरकार-सरकार' की झड़ी लगाये रहते हैं, दक्षिण भारत में वैसा रिवाज नहीं है। कॉफी हाउस के उस कर्मचारी के मुंह से शायद इसी प्रकार का कोई शब्द दिवाकर के कान सुनना चाहते होंगे ! नहीं ? कॉफी का गिलास खाली नहीं हुआ था लेकिन दिवाकर के दिमाग से राजनैतिक भविष्य की खुमारी का गुलाबी झाग गायब हो चुका था। मन में सन्तुलन का कांटा सही नुक्ते पर आ लगा तो शास्त्री को साफ-साफ दिखाई पड़ा : 15 अगस्त, '47 से पहले का वह राजनीतिक मैदान बहुत बदल गया है। दांव-पेच बदल गये हैं। बोली बदल गयी है। इशारा बदल गया है। खिलाडियों की नीयत बदल गयी है···पहलेवाला वह लक्ष्य जाने किधर ओझल हो गया ? ऊसर जमीन की मिट्टी घोलकर नमक बनाते-बनाते हजारों सत्याग्रही पुलिस की लाठियाँ खाते थे, विदेशी माल की खरीद-फरोख्त के खिलाफ दुकानों के समक्ष धरना देते थे, किसानों-मजदूरों और मध्यवर्ग के दीन-दुखी लोगों को मुसीबतों से छुटकारा पाने का आश्वासन मिलता था···उन दिनों राजनीतिक मैदान बिल्कुल सपाट था···और आज ? खाइयाँ हैं, टीले हैं, बालू है, दलदल है, दरारें हैं, जहरीली घास है, कँटीले झाड़-झंखाड़ हैं···आगे बढ़ने का मनसूबा तोड़ने के लिए वह कौन-सी अड़चन है जो इस मैदान के अन्दर नहीं है ?···हाँ, इतना तो है कि हर बुरे-भले काम में महाप्रभुओं का साथ देते रहोगे तो भौतिक लाभ अवश्य होगा। लड़का डिविजनल आफिसर बन जायेगा, भतीजे को भारत सेवक समाज की ओर से ठेकेदारी मिल जायेगी, छोटा भाई मुखिया होगा और भांजे को चीनी मिल में क्लर्की मिलेगी !···अब और क्या चाहते हो दिवाकर ? जिला बोर्ड के चेयरमैन बनोगे ? शास्त्री की डिग्री है, ग्रेजुएट तो हुए हो ! तो फिर बिहार विश्वविद्यालय की सीनेट मे नहीं आ सकते ?···

कॉफी हाउस का बिल चुकता करके दिवाकर बाहर आ गया। पान के दो बीड़े लिये। निगाहें गांधी मैदान की तरफ उठीं, कानों के अन्दर लेकिन फिल्मी धुन घुस आयी···

"मैंने जीना सीख लिया
पाप कहो या पुण्य कहो
मैंने पीना सीख लिया···"

[और, पीने के लिए उकसानेवाली इस कड़ी ने उसके ध्यान में महिम को लाके खड़ा कर दिया : हाँ, महिम ने पीना सीख लिया···अब तुम चाहे इसे पाप कहो या पुण्य कहो, महिम तो शराब नहीं छोड़ेगा ! छोड़ देगा ? अजी नहीं तुम्हें अँगूठा दिखला-दिखलाकर पीता रहेगा।···महिम लेकिन दो-चार वर्ष से अधिक जियेगा नहीं ! उसे देखकर दिल को झटका लगता है, सीने की हड्डियाँ गिन सकते हो। हँसता है तो आँखें भयानक हो उठती हैं और गालों के गड्ढे देखकर पीले पत्तों के

दोने याद आते हैं। कल शाम को ही तो मिला था महिम। अंजुमन इस्लामिया हॉल के हाते में और अन्दर कर्घा उद्योगवाली को-आपरेटिव यूनियन द्वारा आयोजित प्रदर्शनी का आखिरी दिन था। मैं अन्दर गया और शंकरजी घूम-घूमकर मुझे नुमाइश का अलग-अलग हिस्सा दिखलाने लगे। इसी बीच कब और कैसे महिम चुपचाप मेरे पीछे लग गया, राम जाने ! देख-भर लिया होता तो ठीक था, लेकिन उसे टोककर भारी मुसीबत बुला ली···महिम की बकवास भड़क उठी :

["दिवाकर भाई, पता है आपको ? अभी-अभी थोड़ी देर पहले महामहिम राज्यपाल यहाँ आये थे। आप बतला सकते हैं, क्यों आये थे राज्यपाल ? नहीं बतलायेंगे ? तो मुझसे सुन लीजिए···। वो आये थे हमारी जनता की जहालत और गरीबी को दुआ देने ! आज के हमारे ये श्रीमन्त महानुभाव नहीं चाहते कि विज्ञान के सूर्य की एक भी किरण दूर-देहात के उन कुटीरों तक पहुँचे···बड़े शहरों के अन्दर बिजली की बदौलत ग्रामोद्योग की तथाकथित सफलताओं का यह दिखावा धोखा है दिवाकर भाई, बिल्कुल धोखा।···

[मैंने महिम के मुँह पर हथेली रख दी, खींचकर हॉल के पिछवाड़े ले जाने लगा। बीस-पचीस आदमी इकट्ठे हो गये थे। श्रोताओं की उत्सुक आँखें और चेहरों पर तत्परता के भाव उसकी बकवास को भड़का रहे थे। हाथापाई करके महिम मुझसे छुटकारा चाहता था, उसे इतनी अधिक तादाद में मुस्तैद श्रोता जो मिल रहे थे।···मगर मैंने उसकी एक नहीं मानी, खींच-खाँचकर हॉल के पिछवाड़े ले आया। शंकरजी पीछे-पीछे दौड़े आये। उसने कहा, "महिम के लिए नाश्ता और चाय मँगवा लीजिए।" महिम के कान से होंठ सटाकर बोला, "देखो, रसगुल्ले आ रहे हैं तुम्हारे लिए !"

["सन्देश नहीं ? खीरमोहन नहीं ?"—आँखें नचाकर महिम ने कहा, "मैं अकेले नहीं खाऊँगा दिवाकर भाई। आपको भी साथ देना पड़ेगा···भाग तो नहीं जाइयेगा ?"

["सब कुछ आ रहा है।" मैं बोला, "साथ ही नाश्ता करेंगे !"

[···इस तरह बड़ी मुश्किल से कल मैंने महिम को काबू में किया। खिला-पिलाकर वापस ले आया मकान में।···]

दिवाकर मैदान की परिक्रमा करते रहे और दुनिया-भर की बातें सोचते रहे। थकावट महसूस हुई तो रिक्शा लेकर स्टेशन चले गये, बुक-स्टाल से पत्र-पत्रिकाएँ लेनी थीं।

शाम को तिलकधारीदास से मुलाकात हुई। उसने पूछा, "शास्त्रीजी, बाकी दो किताबें कब दे रहे हैं ?"

"होली के बाद लीजियेगा।" दिवाकर ने कहा।

दिवाकर की तरफ पान के बीड़े बढ़ाता हुआ वह मुसकुराया, कहने लगा, "साहित्यिकों से बड़ा डर लगता है शास्त्रीजी ! जाने कितनों की एडवांस रकम पचाकर साहित्यकार 'विशुद्ध साहित्यकार' बनता है !—जाने कितनी पाण्डुलिपियाँ आप लोगों की कृपा से प्रकाशक की दराज में अधूरी पड़ी होंगी !"

पान लेकर दिवाकर ने माथा हिलाया। बोला, "साहित्यकार को भी ठीक इसी तरह प्रकाशकों से बड़ा डर लगता है। प्रकाशकों के प्रति उसकी भी सौ शिकायतें हैं···लेकिन मैं आपसे एक बात पूछता हूँ···आप इस धन्धे में आखिर आये ही क्यों ?"

दासजी हँसने लगा, बोल गया, "मैं इस धन्धे में नहीं आता तो आपसे इतनी किताबें भला और कौन लिखवाता ?"

दिवाकर को भी हँसी आ गयी।

हाल की छपी एक किताब का कवर देखता रहा, फिर अच्छी छपाई और कागज के अकाल पर बातें होती रहीं।

थोड़ी देर बाद नेपाली नौकर ने आकर कहा, "हजूर, खाना तइयार है।"

दिवाकर तिलकधारीदास से एक बात और पूछना चाहता था। नेपाली से कहा, "चलो, आता हूँ।"

उठते-उठते दासजी से दबी आवाज में पूछा, "उस लड़की का पता चला ? आपकी तो शर्माजी से मुलाकात होती होगी !"

तिलकधारी ने कहा, "वह तो भागलपुर मामा के पास है। चिट्ठी आयी है।"

"चलिए, अच्छा हुआ। फिक्र थी।"

"फिक्र की तो बात ही थी न !"

"लेकिन इस तरह बिना बतलाये क्यों चली गयी ?"

"क्या बतलाया जाये ?"

दासजी को यद्यपि स्वयं ही नहीं मालूम था कि भुवन कहाँ है। दिवाकर से यों ही कुछ बतला रहे थे। कपार छूकर उँगली को नचाया। दिवाकर ने इस पर कहा, "नहीं, नहीं, उसका माथा खराब नहीं था ! हाँ, किस्मत खोटी हो सकती है।"

"किस्मत क्यों खोटी रहेगी ?"—तिलकधारीदास बोला, "शर्माजी की हैसियत मालूम नहीं है आपको ?"

शास्त्रीजी चुपचाप दुकान से नीचे उतर आये, शर्माजी की हैसियत के खिलाफ कुछ भी कहना असंगत और अनावश्यक लगा।

तेरह

संजीवन-आश्रम।

"सपरिवार ठहरने का स्थान और भोजनालय। अनाथ महिलाओं द्वारा संचालित"—बाहर तख्ती पर छोटे अक्षरों में लिखा था।

पटना सिटी और गंगा का किनारा··· नगर के उत्तरी छोर पर घनी आबादी वाला मुहल्ला। बाढ़ से सुरक्षा के लिए बँधे हुए पक्के घाट, नीचे उतरने के लिए सुन्दर सीढ़ियाँ।

उत्तर तरफ सामने मुँह करके देखने पर जौ-गेहूँ की पक्की फसलों से सुनहली दियारा···जरा हटकर गंगा की पतली धारा।

बाँकीपुरवाली उस धर्मशाला से हटकर बुआ और नेपालिन संजीवन-आश्रम आ गयी थीं, शर्माजी पहुँचा गये थे। यह कोई नई जगह नहीं थी उनके लिए, कई बार आ चुके थे, रह चुके थे।

स्त्रियों की तादाद ज्यादा थी, मर्द कम थे। शक्लें नयी-नयी दिखायी पड़ती थीं। मकान पुरानी किस्म का दुतल्ला था। ऊपर दस कमरे, बीच की खाली जगह छोड़कर चारों तरफ बरामदा था। नीचे गुदाम के लिए बड़े-बड़े हॉल थे, बीच में पक्की फर्श वाला आँगन। आँगन के एक कोने में नीम का पुराना पेड़ था। पेड़ की जड़ में तीन-चार पत्थर···गोल-गोल लोढ़ानुमा। एक त्रिशूल गड़ा था। हनुमान की मूर्ति थी जिसका सिन्दूर फीका पड़ गया था और झरे हुए सूखे पत्तों से पैर ढक गये थे।

पहचान की तीन औरतें बुआ से बातें कर रही थीं। उनमें से एक युवती सुन्दर और स्वस्थ थी, सुन्दर नहीं तो असुन्दर भी नहीं। दूसरी थी भुवनेसरी की तरह कम उम्र की और खूबसूरत। तीसरी अधेड़ थी, साधारण।

कम उम्रवाली लड़की ने पूछ लिया, "बुआ, भुवन अब नहीं लौटेगी?"

बुआ तो चुप रही, युवती ने तड़ाक् से जवाब दिया, "वो तेरा खसम होती थी? जा, नहीं लौटेगी।"

"साथ सोती थी एक-दूसरी से चिपटकर"—जो अधेड़ थी वह बोली और दाँत निकालकर खि-खि-खि करने लगी।

छोकरी ने कहा, "भुवन का मन नहीं लगता था यहाँ···।"

युवती ने भौंहें नचाकर कहा, "तेरा मन लगता है?"

अधेड़ औरत हँसने लगी, "क्यों नहीं लगेगा मन? नया-नया मर्द मिलता है, नयी-नयी बोतल और नया-नया पानी···।"

छोकरी ने उसके चेहरे की ओर देखा, तमककर कहने लगी, "तेरी तो तबियत मर्दों से अघा गयी है न? उस रोज शाम को छँटी दाढ़ीवाला बुड्ढा जमादार कहाँ

लिये जा रहा था टमटम पर बैठाकर ? और उस रोज गंगा की रेती पर धूप में किसकी मालिश कर रही थी ? और···।"

नजरों के इशारे से बुआ ने डाँटा, छोकरी चुप हो गयी।

नेपालिन चाय ले आयी। सिर्फ बुआ के लिए एक कप।

दो घूँट पीकर बुआ ने युवती से कहा, "बात कूटने से क्या होगा ! जो जहाँ है, गर्दन तक कीचड़ में धँसा है। रण्डियाँ नहीं होंगी तो भी उनका धन्धा जिन्दा रहेगा। हमने बड़े-बड़े ज्ञानी देखे हैं। वे बातें तो इतनी अच्छी करते हैं कि सुन-सुनकर निहाल हो जाओगी, लेकिन···"

"सब समझती हूँ चम्पा बहन," युवती ने बीच में ही कहा और कप की ओर उँगली उठाकर चाय की याद दिलायी—"ठण्डी हो जायेगी !"

चम्पा चाय पी चुकी तो पान लिया। क्षण-भर बाद गम्भीर होकर कहने लगी, "मर्द और औरत एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकते। एक की बोली दूसरे के लिए शहद है। एक की चितवन दूसरे के लिए बिजली है। उसकी गन्ध इसके लिए चन्दन है। यह छू देगी तो उस ठूँठ से टूसे निकल आयेंगे।"

युवती हँसकर बोली, "तुम्हारी यह बात कानों को तो बहुत अच्छी लगती है मुदा दिल इस पर क्या कहता है, बतलाऊँ ?"

"बतलाओ कुन्ती, जरूर बतलाओ !" चम्पा ने कहा।

कुन्ती कहने लगी, "अगर ऐसी बात है तो क्यों औरतें बिकती हैं ? क्यो उन पर डाक बोली जाती है ? क्यों उन्हें बाड़े के अन्दर कैद रखा जाता है ? मामूली भूल-चूक पर औरतों को क्यों घर से निकाल देते हैं। चम्पा बहन, हम क्या अच्छे घर की अच्छी बहुएँ नहीं होतीं ? मुझे और तुम्हें किसने बर्बाद किया ? अच्छा चम्पा बहन, तुम अपने इस जीवन से खुश हो ?"

चम्पा ने माथा हिलाकर कहा, "नहीं, खुश नहीं हूँ। कोई भी औरत खुश नहीं है कुन्ती। अच्छे घर की अच्छी बहुओं से जाकर पूछो, वे भी खुश नहीं हैं। हाँ, हमारी घुटन और किस्म की है तो उनकी घुटन और ही किस्म की होगी···!"

वह अधेड़ औरत इन बातों में दिलचस्पी नहीं ले सकी, उठकर चली गयी। लड़की अन्दर कमरे में जाकर नेपालिन से बातें करने लगी। चम्पा ने इधर-उधर देखा, कोई नहीं था। आश्वस्त होकर कहा, "अब तुमसे मैं क्या छिपाऊँ, भुवनेसरी हमेशा के लिए चली गयी। शर्माजी ने उसके लिए बड़ी अच्छी जगह ठीक कर दी थी। मालदार आदमी था। पत्नी चल बसी थी, दो छोटे बच्चे थे। उनकी और अपनी देखभाल के लिए उसको किसी सयानी औरत की आवश्यकता थी। बच्चे बड़े हो जाते तो पाँच-सात वर्ष बाद वह उसी स्त्री से शादी कर लेता। बाप ने तीस साल तक स्कूली किताब छाप-छापकर लाखों की रकम बटोरी थी, एक बड़े शहर में कई किता मकान थे। शर्माजी बात पक्की कर चुके थे। नुमायश घूमते समय

अलग से आकर एक बार वह भुवन को देख भी गया था···अब इसको क्या कहोगी ! हाथों में अमृत का घड़ा लेकर विधाता सामने खड़ा था और तुम झाड़ू मार-मारकर उस बेचारे को खदेड़ आयीं।"

कुन्ती मन-ही-मन बोली, 'शाबास भुवन, शाबास ! उस खूसट को तुमने बड़ी सफाई से अँगूठा दिखा दिया, बलिहारी है ! शर्माजी भी खूब छके ! बड़े आये बाप और चाचा बननेवाले !···इस बुड्ढे की नाक में छल्ला डालकर, भुवन, तुमने अपनी ही नहीं बल्कि सभी औरतों की नाक रख ली !···'

प्रकट तौर पर उसने कहा, "मैं तो भुवन को चालाक समझती थी, वो तो भारी गधी निकली चम्पा बहन !"

फिर कान के पास मुँह ले जाकर बोली, "मेरे लिए भी शर्माजी से कहो न ? तंग आ गयी हूँ इस आश्रम से ! गंगाजी में छलाँग लगाये बिना क्या छुटकारा नहीं मिलेगा दीदी ?"

चम्पा ने ढेर-सी साँस छोड़ी, गर्दन उठाकर देखा। नील-निर्मल आकाश और विराट् सूनापन, चम्पा को लगा कि यह उसकी ही रिक्तता असीम और नीलाभ बनकर ऊपर छाई हुई है। दिन का वक्त है। ढलता सूरज पश्चिम की तरफ मकान की ओट में चला गया है। तारे नहीं हैं तो नीलिमा और सूनापन दिल पर और भी गहरा असर डालते हैं···कुल मिलाकर कितना अच्छा लगता है···खो गयी चम्पा ! गर्दन उसी तरह ऊपर की ओर थी, आँखें उठी हुईं !···दिल के अन्दर किसी खोह से आवाज आयी : चली गयी, भुवन तुमने ठीक ही किया ! मालदार तो मतलब का ही सौदा करता है···तुमसे तबियत भर जाती तो दूसरी का सौदा करना ! पेट भरा हो और टेंट में काफी रकम हो तो हरी-हरी चरना चाहेगा आदमी···नहीं, तुमने अच्छा किया भुवन ! इस कुम्भीपाक से निकल भागी, खूब किया !···

कुन्ती ने कन्धे पर हाथ रखकर चम्पा को हिलाया।

"क्या सोच रही थीं ?"

"कुछ नहीं।"

"नहीं बतलाओगी दीदी ?"

"बात भी तो हो कुछ !"

"आसमान की ओर मुँह करके क्या देख रही थीं ?"

"कुछ नहीं कुन्ती, आसमान में भला क्या देखूँगी ?"

"छिपाती हो मुझसे ! कोई याद आ रहा होगा···।"

चम्पा को हँसी आ गयी, बोली, "कुन्ती, भारी शैतान है तू !"

कुन्ती ने खिलखिलाकर कहा, "इस मकान में रामजी की दया से देवी और शैतान दोनों साथ रहते हैं। वे एक ही चौके में खाना खाते हैं, एक ही नल का पानी

पीते हैं। दोनों का दिल एक है···।"

चम्पा ने उसके सिर पर हल्की चपत बैठायी, "पाजी कहीं की !"

कुन्ती ने कहा, "चलो, अन्दर ताश खेलें !"

"नहीं, अभी नहीं।" चम्पा बोली, "कुछ काम है कुन्ती !"

"अच्छा !" मुँह बनाकर कुन्ती ने कहा और चौके की ओर चल पड़ी।

रसोइया नौजवान था। अच्छी शक्ल-सूरत वाला। बीच में आकर चाबी ले गया था। दुबारा आकर चम्पा से पूछने लगा, "रात क्या तरकारी बनेगी ?"

चम्पा ने कहा, "आलू और गोभी का फूल ले आओ, बथुआ मिले तो रायता बना लेना।"

"अच्छा हजूर !"

"कुन्ती से नहीं पूछ लिया ?"

"पूछा तो था, आपके पास भेजा है···।"

रसोइया चला गया।

चम्पा के दिमाग में भुवन घूम रही थी। बरामदे में तख्त तो था, गद्दा नहीं था उस पर। लेटने का जी कर रहा था। वह अन्दर कमरे में गयी कि नेपालिन से कहकर गद्दा डलवा लेगी बाहर।

लेकिन उस दूसरे गद्दे पर नेपालिन और वह लड़की सो रही थी, गपशप करती-करती जाने कब सो गयी थीं !

चम्पा को कुछ याद आ गया, ट्रंक खोलकर तीनों लिफाफे निकाल लिये जिनके अन्दर बहुत सारे फोटो रखे थे !

मोढ़ा खींचकर बैठ गयी और फोटो देखने लगी।

बड़ी आँखोंवाली युवती : चेहरा बड़ा ही आकर्षक है···मनोरमा, तू जालन्धर पहुँच गयी न। तेरा मर्द सरदार है। कलकत्ते में बारह वर्ष टैक्सी चलायी है। पहले लाहौर और जमशेदपुर रह चुका है। सरदार ने कई जगहों पर औरतें खोजीं, छाँटकर आखिर तुझे ले गया। हमारी माँग ढाई हजार की थी, सरदार ने अठारह सौ दिये···शर्माजी को डेढ़ सौ का सूट दिया और मुझे सौ की साड़ी दी थी। सलवार और कुर्ती—साटन के उस सूट में तू कितनी जँच रही थी !

खूबसूरत जवान : बाल कितने अच्छे हैं···ब्रजनन्दन, तुम मुझे कितना प्यार करते थे ! हमारा रहना होता था उन दिनों पूर्णिया के भट्ठा बाजार में, तुम कटिहार से आकर अक्सर मिल जाते थे। समस्तीपुर से बदलकर कटिहार आये थे न ? पार्सल क्लर्क की ड्यूटी थी···कपड़े, चीनी, फल, मेवे, बिस्कुट के डिब्बे, लालटेन, टार्च···तुम कितनी चीजें लाते थे ? तुम्हारी दी हुई टार्च तो बल्कि आज भी मेरे पास है ! तुम्हारी बीवी आ गयी फिर हमारा मिलना-जुलना बन्द हो गया। दरअसल वह बड़े ही शक्की स्वभाव की औरत थी। पिछले साल सोनपुर में तुम

दिखायी पड़े। दस वर्षों में क्या से क्या हो गये हो ! पूछा तो बोले—सात बच्चों का बाप हूँ, जिन्दगी-भर क्या वही कन्दर्पनारायण बना रहूँगा ? और, भाभी तुम भी ढल गयी हो, आईना नहीं देखा है ?···हाँ, ब्रजनन्दन देखा है आईना। रोज देखती हूँ और रोज याद आते हो। तुम मेरे लिए सखा भी थे, सखी भी थे ! झूठ कहती हूँ ? उकड़ूँ होकर और पीठ पर झुककर बाल नहीं सँवारते थे मेरे ? जूड़ा नहीं बाँधते थे ? चोटी नहीं गूँथते थे ? बँगला नाटकों के लिए ग्रीनरूम में अभिनेत्रियों का केश-विन्यास तुम्हारे ही हाथों सम्पन्न होता था···लेकिन यह भागलपुर की बात है और तब तुम कालेज के छात्र थे···ओह, हम एक-दूसरे के दिल में कितना अधिक धँस गये ! कितना अधिक मालूम कर लिया था हमने एक-दूसरे के बारे में !

औरतों के तीन चेहरे : अकेली मन्नो से जितना लाभ हुआ, उतना भी इनसे नहीं हुआ···एक को बनारस में किसी संन्यासी के हवाले किया, दूसरी वहीं एक खत्री की रखैल बन गयी और तीसरी कलकत्ते में है एक अफगान के पास। पन्द्रह सौ भी आये होते !

एक नेपाली परिवार के साथ : दार्जिलिंग···सहेली के भाई की शादी में पहाड़ पर गयी थी। विराटनगर ससुराल था, दार्जिलिंग मायका।

दो छोटे बच्चे : दार्जिलिंगवाले उसी परिवार के दोनों बच्चे हैं···बटन-जैसी छोटी आँखोंवाला यह बच्चा कितना हिल-मिल गया था मुझसे ? देखते ही लपकता था !

छोटा कुत्ता : विराटनगर···सहेली के ससुरालवालों का कुत्ता। इसे उन लोगों ने किसी भोटिया ब्यापारी से खरीदा था···नवाबजादे मेरी गोद में सो जाते थे आकर !

शर्माजी : जयनगर···अनाथ औरतों की खोज-खबर लेने का प्रयास आपने यहीं से आरम्भ किया। जयनगर के नजदीक भारत-नेपाल सीमा से लगी हुई एक बस्ती थी जो शर्माजी की बहन के अधिकार में थी। इनकी जवानी बहन की जमींदारी का इन्तजाम करने में गुजरी। जिला का सदर मुकाम होने की वजह लहेरिया सराय जाना-आना लगा ही रहता था। बीस रुपये पर तीन कमरे ले रखे थे। भूली-भटकी और शरण में आयी हुई औरतों के लिए पहला विश्राम-केन्द्र उन्हीं कमरों को बनाया गया···'अनाथ महिला सेवासदन' मुहर बन गयी, साइनबोर्ड टँग गया···मुहर तो अब भी कहीं पड़ी होगी !

वर-वधुओं के दो जोड़े : आर्यसमाज मन्दिर···ये विवाह शर्माजी ने करवाये थे। दान के तौर पर संस्थाओं को पाँच सौ की रकम दिलवा दी थी। स्त्रियाँ समाज से बहिष्कृत और आश्रयहीन थीं, पुरुष सिन्ध और पंजाब के थे, जिनका उधर कहीं ब्याह नहीं हो सका था···हवनशाला के इर्द-गिर्द पत्तों और कागज की झण्डियों–

वाली रस्सियाँ टँगी हैं, बीचों-बीच हवन-कुण्ड दिखायी पड़ रहा है।···

शर्माजी का बड़ा लड़का : सूट-बूट डाटकर इण्टरव्यू के लिए जा रहा है··· आजकल छोटानागपुर के किसी थाने में दारोगा है।

कालीमाई की प्रतिमा और भैरवी : बागबाजार के पास हुगली के किनारे···। शोभाबाजार में वासा था। जाड़े की धूप में अक्सर मैं नहाने निकल जाती थी। कातिक से लेकर चैत तक हुगली का पानी खूब साफ रहता है, हरा और निर्मल। जीभ निकाले काली मइया और जटाओंवाली आनन्द भैरवी···रेलवे लाइन से जरा हटकर पीपल के नीचे धूप में बैठकर अपने बदन को तेल से चुपड़ा करती थी, कमर से पतला गमछा लिपटा रहता था, सारे अंग दिखायी पड़ते थे। इक्के-दुक्के अधेड़ और युवक करीब में खड़े होकर रेलिंग से लगे-लगे इस भैरवी की तरफ देख लेते थे। मुझसे बातें करती थी। वह बँगला बोलती थी, मैं हिन्दी। बीच-बीच में चीख पड़ती—माँ काली, रोक्खे कोरो···साँवली सूरत, गोल चेहरा, छोटी-छोटी आँखें, सामनेवाले दो दाँत बाहर निकले हुए थे। भाल पर सिन्दूर का बड़ा टीका। एक रोज एकान्त पाकर बोली, "तुम्हारी तो अभी चढ़ती उम्र है, आनन्द के समुद्र में गोते लगाने की उम्र। माँ काली के चरणों की छाया में एक-से-एक रत्न चमक रहे हैं। बेटा, तुम उनसे खेलो···रत्नों की चमक से तुम्हारे दो काम होंगे, शोभा भी बढ़ेगी और तरावट भी पहुँचेगी। मेरे साथ घर चलो, वहाँ माँ काली की पुरानी प्रतिमा है। हमारी अपनी माँ ! एक बार तुम चलो तो, दर्शन तो करो एक बार ! ···" मैं गयी जरूर भैरवी के पीछे-पीछे लेकिन चुड़ैल ने बेहद परेशान किया। बासा पर बक्से में गहने कितने हैं, रकम कितनी है, रिश्ते के कै ठो मर्द यहाँ कलकत्ते में रहते हैं, माँ काली के उसके अपने भक्तों से रात को मैं किस तरह और कब-कब मिला करूँ, भक्तों से मिलना अस्वीकार कर देने पर माँ मेरा कितना अहित कर सकती हैं···आदि-आदि बीसियों बातें भैरवी ने समझाने की कोशिश की और दो घण्टे तक मेरे माथे का गूदा चाटती रही ! डर के मारे भैरवी के हाथ का न कुछ खाया, न पिया। मूर्ति मामूली थी और मकान भी मामूली था। एक कमरे के अन्दर चटाइयों से घेरकर माँ की कुटिया तैयार की गयी थी। मुझे उस वक्त दिन के एक बजे भक्त या रत्न तो न दिखायी दिये, हाँ डाकिनी-शाकिनी कोटि की चार-छै औरतें अवश्य झाँक गयीं। गाँठ में दो-ढाई रुपये थे, फूल और माला के नाम पर भैरवी ने ले लिये···चलते वक्त जरा-सा प्रसाद और यह फोटो मिला। पीछे पता चला, वह तो रण्डियों का मुहल्ला था। ठेठ सोनागाछी।

पिछले दस-बारह वर्ष के अपने भी कई फोटो थे। शर्माजी के दो-तीन फोटो और थे। तीन-चार फोटो सरदारों के थे। पूरी डील और भरे चेहरेवाले दो फोटो एक अलग कवर में नजर आये···इतने में घिसा हुआ एक पुराना फोटो सामने आ पड़ा : बी० ब्रह्मचारी : पीठ पर नाम लिखा था।

बी० ब्रह्मचारी : डरावनी आँखें, मोटी लम्बी नाक, चौड़ी पेशानी। गया जिले में पुश्तैनी जमीन से किसान बेदखल किये जाने लगे तो उन्होंने सामूहिक सत्याग्रह का रास्ता अपनाया। यह आन्दोलन जमींदारों के खिलाफ तो था ही, सरकार के भी अनुकूल नहीं था। शासक बातें तो किसानों के हित की करते थे, अमल में लेकिन जमीदारों को नब्बे प्रतिशत समर्थन हासिल था। दमन की दुहरी चक्की में पिसते-पिसते धीरज का बाँध टूटा तो देहात का एक युवक कानून का रास्ता छोड़कर हमेशा के लिए फरार हो गया और डाके डालने लगा··· गया, आरा और डाल्टनगंज के जिलों के अन्दर जहाँ कहीं डकैती होती थी, बी० ब्रह्मचारी का नाम उस सिलसिले में जरूर लिया जाता। दस वर्ष पहले यह कैसा भोला-भाला युवक था ! स्वामी सहजानन्द वाली किसान रैली में शामिल होने के लिए टेकारी से आया, पचीस-तीस किसान साथ थे। बाकी लोग तो लौट गये, ब्रह्मचारी लेकिन किसी काम से रुक गया था। शर्माजी के छोटे भाई से जान-पहचान थी। जेल में वे साथ रहे थे। हमारे साथ वह चार ही रोज रहा···गाता कितना अच्छा था। फोटो ठीक नहीं है, उचक्का-जैसा लगता है। अपनी गीता के साथ वह पुरानी निशानी भी हमारे लिए छोड़ गया था। दो-तीन वर्ष पहले की बात होगी, एक डकैती में ग्रामीणों से घिर गया और गुत्थम-गुत्थे में जान गयी। अखबारों में खबर छपी तो हमें मालूम हुआ···कैसा अनाड़ी था, सुअर की तरह भाले से घायल होकर प्राण गँवाये।

लड़की की आँखें खुलीं तो हड़बड़ाकर वह उठ बैठी, नेपालिन को भी उठा दिया।

बुआ की तरफ देखकर नेपालिन बोली, "अन्दर आकर जाने कब से बैठी हैं, बताया भी नहीं।"

लड़की बाहर की ओर देखने लगी।

बुआ ने फोटो सहेजते हुए कहा, "देखती क्या हो, दिन डूबने ही वाला है।"

नेपालिन ने लड़की के कन्धे पर हाथ रखा। पूछा, "मीना, चाय पियोगी ?"

मीना ने कहा, "चलो उधर, रसोई में बनवाते हैं।"

नेपालिन बुआ की ओर देखती रही। बुआ बोली, "तबियत सुस्त है मेरी। खाना नहीं खाऊँगी, दूध पी लूँगी।"

"अभी चाय तो पीयोगी ?" मीना ने पूछ लिया।

बुआ ने माथा हिलाकर हामी भरी और ट्रंक बन्द किया।

शाम को आश्रम का मैनेजर चम्पा से मिलने आया।

इधर-उधर की साधारण बातचीत के बाद चम्पा ने कहा, "इस तरह बैठाकर औरतों को कब तक खाना देते रहियेगा ? इनसे कुछ-न-कुछ काम भी तो लीजिए !"

"औरतें आखिर औरतें ही ठहरीं," मैनेजर बोला, "इनसे नाव की रस्सी तो नहीं खिचवायेगा कोई ? आपने इस बारे में काफी कुछ सोचा होगा, कुछ बतलाइए न !"

चम्पा ने कहा, "आप पढ़े-लिखे लोग जब चुप्पी साधे हुए हैं तो मुझ-जैसी जाहिल औरत क्या सोचेगी ? मर्द जो भी लीक खींच देते हैं, हमारे लिए वही वज्रलेख हो जाता है। हमारी अकल गौरैया की तरह फुदक सकती है, दूर की उड़ान नहीं भर सकती।"

"क्या कीजियेगा ऊँची उड़ान भर के ?" मैनेजर ने चश्मा को फिर से एडजस्ट किया और कहने लगा, "हवाई दुर्घटनाएँ बढ़ गयी हैं। गरुड़ के पंख झुलस जायेंगे तो भगवान की क्या गति होगी ?"

चम्पा ने महसूस किया, मैनेजर बाबू मुंद्रिकाप्रसाद विनोद के मूड में हैं। मीना का गाना सुनने या कुन्ती से गप्पें उड़ाने आये होंगे। मन की सुस्ती हो तो आदमी सोचना भी पसन्द नहीं करता।

प्रसंग बदलकर मैनेजर ने पूछा, "शर्माजी कब तक आयेंगे ?"

"दस-बारह रोज लग जायेंगे।" चम्पा बोली। कुछ रुककर कहा, "नेपालिन का जी उचटा-उचटा-सा रहता है, उसके लिए जल्दी कोई प्रबन्ध करना चाहिए।"

"दिल्ली जाना पसन्द करेगी ?"

"क्यों नहीं पसन्द करेगी, रिश्ता अच्छा होना चाहिए।"

"ठेकेदार है, अच्छी तरह रखेगा।"

"रह लेगी।"

"चार रोज के बाद भाग तो नहीं आयेगी ?"

"मार-पीट करेगा तभी भागेगी। औरतें सहारा पा जाती हैं तो उसे आसानी से छोड़ना नहीं चाहती हैं।"

"मीना क्यों भाग आती है बार-बार ?"

"उसे इसके लिए तैयार किया गया होगा···।"

"लेकिन आश्रम की बदनामी होती है, अधिकारियों को बार-बार खेद प्रकट करना पड़ता है।"

चम्पा चुप हो गयी। नाटे कद की सुडौल देह, गेहुँआ सूरत और चाँद-सा मुखड़ा···कमलपत्री आँखें, नुकीली नाक, पतले होंठ, साँचे में ढले हुए गाल··· माथे पर माँग के करीब दस-बीस बाल सफेद पड़ चुके थे। मुँह खोलती थी तो छोटे-छोटे मोतिया दाँत जगमगा उठते थे। उम्र पैंतीस से ज्यादा नहीं होगी।

कुछ सोचकर बोली, "कोई समझदार और सुन्दर नौजवान मीना को मिल जाता तो भागने की नौबत शायद ही आती !"

मैनेजर ने रसोइया को पान के लिए आवाज दी और सिर के अधपके बालों पर हाथ फेरता हुआ कहने लगा, "समझदार और सुन्दर नौजवान कारखाने में नहीं ढलते हैं देवीजी ! समाज जिनको वापस लेने के लिए तैयार नहीं होता उन लड़कियों के लिए दुनिया गेंद का मैदान है, सौ ठोकरों के बाद भी निश्चय नहीं कि गोल पर पहुँच ही जायेंगी ! हमारी तो कोशिश है कि वे सही ठिकाने पा जायें, किसी-न-किसी सहारे पर टिक जायें···आश्रम हमेशा घाटे में रहता है, दस-बीस सज्जनों की मेहरबानी है और दान मिल जाते हैं वरन दम घुट गया होता संस्था का।"

चम्पा के होंठ बन्द थे, खिड़की से आसमान की ओर देखती रही। मन-ही-मन उस धूर्त व्यक्ति को जवाब देने लगी : संस्था का दम क्या घुटता ? दम हो भी तो आखिर ? हाँ, तुम्हारा और रायसाहब का और महाशय मन्नूलाल का और बैजनाथ शर्मा का दम जरूर घुट जाता। आश्रम के दरवाजे सदा के लिए बन्द हो जाते। कुन्ती और चम्पा-जैसी औरतें सड़क के किनारे फुटपाथ पर बैठकर पकोड़े छानतीं, बड़े घरों में महाराजिन या आया का काम करतीं, अपनी पसन्द के मुताबिक किसी चपरासी या ड्राइवर या पुलिसवाले या किरानी के साथ रह जातीं···। तुम्हारे-जैसे दलालों की जूतियाँ चूसने की अपेक्षा फिर भी वह जीवन कहीं बेहतर होता, कहीं ताजा !···

रसोइया पान दे गया। मैनेजर ने कोट की पाकिट से जर्दा की शीशी निकाली। कमरे की दीवारों पर गौर किया, तीन कलेण्डर टँगे थे। नया एक ही था, साहित्य सौरभ ग्रन्थागारवाला। बाग मे हरी घास पर पैर के बल आधी लेटी हुई तरुणी गुलाब की पंखुड़ियाँ गिन रही थी, पैरों के नजदीक छोटा-सा एक खूबसूरत कुत्ता हवाई चप्पल से खेल रहा था···अमलतास और गुलमुहर के पेड़ों की कतारें दूर तक जाकर क्षितिज में खो गयी थीं। पुराने कलेण्डर अर्धनारीश्वर और राधा-कृष्णवाले थे। कलेण्डरों के अलावा खूँटियों पर कपड़े टँगे थे। खूब साफ और बड़ा आईना लटक रहा था।

उठकर मैनेजर आईने के सामने खड़ा हुआ, अपना चेहरा देखने लगा। बाल गंगा-जमनी हो रहे थे, चाँद गजी थी। कानों की कगारों पर चार-चार बाल थे, वे भी पक रहे थे। उम्र पचास-साठ के दर्म्यान की होगी, स्वास्थ्य अच्छा था।

उधर से हार्मोनियम की आवाज आने लगी। मैनेजर चम्पा की ओर मुखातिब हुआ, बोला, "अभी तो इजाजत दें !"

चम्पा ने कहा, "मीना इधर अच्छा गाने लगी है, सुना है ?"

मैनेजर हँसने लगा, "फिल्मी गीत अच्छा गाती है।"

"नहीं, मैं तो भजन सुनती हूँ उससे।" चम्पा बोली।

मैनेजर ने आँख दबाकर कहा, "शर्मा को नहीं सुनवाया है भजन ?"

चम्पा गम्भीर हो गयी, आहिस्ते से बुदबुदायी, "कई बातों में आपकी और शर्माजी की रुचि मिलती है।"

मैनेजर मुस्कराता हुआ कमरे से बाहर निकला।

रात का खाना सचमुच ही चम्पा ने नहीं खाया। थोड़ा-सा दूध पीकर लेट गयी। दिन में सोई नहीं थी, जल्दी ही पलकें झिप गयीं।

नेपालिन को लगा कि बुआ सारी रात अच्छी तरह सोयेगी, बीच-बीच में न तो उसे उठना ही पड़ेगा और न बकवास ही सुननी पड़ेगी। वह खुद दिन में दो घण्टे सो चुकी थी। रात का खाना खाकर उसने बुआ की मशहरी तान दी और स्विच आफ करके मीना से बातें करने चली गयी।

दो घण्टे तक नींद का गाढ़ापन बना रहा फिर वह पतली हो गयी क्योंकि साथवाले कमरे से मीना के ठहाकों की आवाज आयी थी। आँखें मूँदे रहने पर भी अब चम्पा उस तरह सो नहीं सकी और मन विगत जीवन की गलियों में भटकने लगा :

लाड़-प्यार में पला हुआ बचपन। मामूली पढ़ाई-लिखाई। शादी और शादी के दो साल बाद पति का देहान्त। कभी माँ और सास के साथ रहना, कभी देवर और देवरानी के साथ। तरुणाई के शुरू में जीजा ने छू दिया था। पहले दिल को, फिर देह को।···बाद में तीन साल का बच्चा छोड़कर जीजी का चेचक की बलि चढ़ना। जीजा और उनकी बूढ़ी माँ—मेरी सास और माँ ने जीजा का अनुरोध मान लिया।

बच्चे की देखभाल के लिए मैं जीजा के साथ रहने लगी हूँ···

मैं जीजाजी को मौके-बेमौके छेड़ देती हूँ···

जीजा हँस पड़ते हैं लेकिन बढ़ावा नहीं देते हैं।

ड्यूटी के बाद ओवरटाइम खट के वह वापस आते हैं। नाश्ता और चाय के बाद लेट जाते हैं। मैं उनकी पीठ, कमर और जांघ चांपती हूँ। मेरे हाथ कमर और जांघ के बीच ही लौट आते हैं बार-बार, जीजा लेकिन मेरा हाथ खींचकर बार-बार अपनी पीठ की तरफ कर लेते हैं···।

जाने उन्हें क्या अनुभव होता है कि फुर्ती से उठ बैठते हैं।

इशारे से पानी मांगते हैं पीने के लिए। लाकर पानी का गिलास थमाती हूँ, चार-छै घूंट लेकर जीजा मेरी आँखों में देखते हैं।

मैं नजरें झुका लेती हूँ, लाज की हल्की लाली शायद गालों पर उभर आयी हो !

"चम्पा !"

"जी !"

"एक बार इन बाँहों के अन्दर लेकर मैंने तुम्हें चूम लिया था, याद है ?"

मैं कुछ नहीं बोलती हूँ। जीजा की ओर देख भी नहीं रही हूँ।

"नहीं याद है ?"

मैं माथा हिलाकर स्वीकार का इंगित देती हूँ।

वह पानी पीकर गिलास पलंग की पाटी पर रखते हैं, कहते हैं, "चार-पाँच वर्ष हो गये न ? तुम्हारी शादी नहीं हुई थी और बातें करते-करते अक्सर मेरे हाथ बहकने लगते थे···तुम्हारी आंखों में प्रतिरोध की चिनगारियाँ छिटक उठतीं और मैं सकपकाकर हाथ हटा लेता था ! याद है चम्पा ?"

"जी, सब याद है।"

"लेकिन अब स्थिति बदल गयी है !"

"मैं समझी नहीं जीजाजी !"

वह गम्भीर हो गये हैं, मैं उनकी ओर देख रही हूँ।

"बताइए न !"

"कोई खास बात तो है नहीं, चम्पा !"

"आपके लिए न भी हो, मेरे लिए तो होगी।"

"तो सुनो···"

"आलोक कहाँ है ?"

"बाहर पड़ोस में खेल रहा होगा···।"

"और माँ ?"

"चौके में। आग सेंक रही हैं।"

"माँ ने शादी के लिए कई बार कहा है···इस बारे में तुम्हारी राय जानना चाहता हूँ···"

मेरी छाती धड़कने लगी है। आशा-मिश्रित कौतूहल मेरी साँसों को भारी बना रहा है, "जीजा, क्या इस धुली माँग में फिर सिन्दूर डालेंगे !"

"अगर माँ का डर न होता तो निश्चय ही मैं तुमसे शादी कर लेता। माँ को मैं ईश्वर से अधिक मानता हूँ चम्पा, माँ की रुचि और अनुकूलता पर मैंने अपनी पसन्द को कभी नही लादा···"

मैं चुप हूँ। आशा गायब हो चुकी है, कौतूहल शेष है, नाखून-से-नाखून खरोंच रही हूँ। जीजाजी दीवाल से पीठ टिकाकर बैठ गये हैं और लगातार मेरे चेहरे की ओर देख रहे हैं, मैं लेकिन आधी-तिरछी नजर से ही उनकी मुखमुद्रा बीच-बीच में भाँप लेती हूँ····"ऐसी क्या ऊटपटाँग बात मैंने कर दी ! अच्छे-भले तो लेटे पड़े थे, जरा देर और चाँप देती तो बदन हल्का हो जाता···"

"तुम मेरा बदन चाँपती हो, रंग-रंग की मालिश हो जाती है चम्पा ! बड़ा ही सुख मिलता है। काश, मैं तुम्हारी माँग में फिर से सिन्दूर भर सकता !"

"अब समझी ! आपको अपने पर भरोसा नहीं है जीजाजी ? चाँपते समय

मेरे हाथ बहक जाते हैं ?···अच्छा, अच्छा ! मैं आपके मन की शान्ति नहीं छीनूँगी जीजाजी, परेशान नहीं करूँगी आपको ! अभी और कै वर्ष जियेगी आपकी माँ ? बाद में पत्नी के तौर पर मुझे स्वीकार कीजियेगा न ?"

"नहीं। स्वर्ग में तब भी बुढ़िया का दिल दुखेगा ?"

"माफ कीजिए जीजाजी, आप पहले दर्जे के डरपोक हैं ! कायर हैं ! शहद मिलाकर इस ईमान को चाट जाइए !"

"चम्पा, मैं तुम्हें फुसलाकर खाई के अन्दर ढकेल दूँ ? जवानी की तुम्हारी इस कसमसाहट को बढ़ावा दूँ ? मैं भी विधुर हूँ, तुम्हीं बिधवा नहीं हो चम्पा ! अपने पर अंकुश दो, काबू में रखो अपने को !"

"जी, महात्माजी ! चार वर्ष पहले गर्मी की उस दुपहरिया में अपना यह अंकुश कहाँ भूल आये थे आप ? मैं क्वाँरी थी, मुझे पता नही था कि वासना का स्वाद क्या होता है !···"

जीजा पलंग से उतरकर मेरे पैर पकड़ लेते हैं।

"क्षमा करो चम्पा, मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकूँगा !"

मैं पैर छुड़ाकर दो कदम पीछे हट जाती हूँ···कायर कहीं के !···उस व्यक्ति के प्रति मेरे अन्दर घृणा उबल पड़ती है। वहीं कोने में थूककर बाहर निकल जाती हूँ···।

अगले ही रोज माँ के पास चली आती हूँ।

दो महीने बाद सिलीगुड़ी।

एक खटिक नौजवान मुझे भगा लाया है।

[आम का बाग···आधा हिस्सा चाचा का था। हमारा हिस्सा अपने नौकर अगोरते थे। चाचा ने अपना हिस्सा खटिकों को बेच दिया था, टिकोरे थे तभी। वैशाख की दुपहरी परिवार के लड़के-लड़कियाँ वहीं बाग की तरावट मे गुजारते थे। खटिकों में से एक नौजवान अच्छी डीलडौल का और बेहद खूबसूरत था। जालिम बाँसुरी कितनी बढ़िया बजाता था। एक रोज शैतान ने काले-काले जामुन क्या खिला दिये, मुझे खरीद ही लिया ! हम मौका निकालकर अकेले में मिलने लगे···।

[मैमनसिंह, ढाका, राजशाही···बिहार के हजारों मुसलमान इधर आकर आबाद हो गये हैं। खेती-बाड़ी, होटल, पुलिस, मिलिटरी, हाट-बाजार, प्रेस, अदालत-कचहरी और सरकारी सेक्रेटेरियट···पूर्वी पाकिस्तान मे कहाँ नही बिहार की कच्ची उर्दू गूँजती है !]

सफदर ने होटल खोल लिया है। दो नौकर रख लिये हैं। रहने के लिए अलग मकान मिल गया है। आमदनी बढ़ती गयी तो मेरे गहने भी बढ़ते गये।···सफदर की माँ आयी है और मैं भी तो माँ हो गयी हूँ ! बच्ची का नाम सफदर ने सकीना

रखा है मैं लेकिन उसे शकुन्तला कहती हूँ।

रकम की गर्मी और दोस्तों की मोहब्बत···सफदर खूब ढालने लगा है। माँ मना करती है तो उसे गालियाँ देता है···गिन-गिनकर नोटों की गड्डियाँ बनाना और झूमना और गुनगुनाना—

'रोते भी रहे, हँसते भी रहे,
हम तुमसे मुहब्बत करके सनम
रोते भी रहे, हँसते भी रहे!
इक दिल के टुकड़े हजार हुए
कोई यहाँ गिरा, कोई वहाँ गिरा···'

बच्ची के बाद बच्चा पैदा हुआ है। सफदर ने नाम रखा रुस्तम, लेकिन मैं उसे विजय ही कहूँगी!—नशे में धुत्त होकर एक बजे रात को घर लौटता है और पीटने लगता है मुझे। कभी-कभी तो बेदम कर डालता है···हे भगवान, कौन-सा पाप किया था पहले जन्म में कि इस राक्षस के साथ भाग आने की कुबुद्धि मन में आयी!

चौथे साल सफदर का नाना मरता है। थाना इस्लामपुर जिला पटना से तार पहुँचता है। हिन्दुस्तान आने की वीसा मिल जाती है, बच्चों को लेकर महीना-भर के लिए हम ढाका छोड़ते हैं।

कटिहर जंक्शन में छह घण्टे का वक्त मिलता है। सफदर एक दोस्त से मिलने बाजार गया कि मेरे दिमाग में बन्धन से छुटकारा पाने की लालसा काँप उठती है।

—बच्चों का क्या होगा?

—उन्हें छोड़ दूंगी।

—छोड़ दूंगी?

—नहीं···हाँ!

—कैसा पत्थर का दिल पाया है! छि:!

—मगर अब की लौटकर जो पाकिस्तान गयी तो सफदर फिर कभी लौटने नहीं देगा।

—पीट-पीटकर दुम्बा बना डालेगा?

—बस, ज्यादा मत सोचो! भाग चलो चम्पा···

—लेकिन बच्चों को छोड़कर एक माँ के पैर उठेंगे?

—जहन्नुम में जाओ!

—बच्चे···शकुन्तला और विजय!

—मेरी कोख जल नहीं गयी है, बच्चे फिर हो जायेंगे—हिन्दुस्तान में रहूँगी तो कभी उस गाँव की मिट्टी छू सकूँगी जहाँ जन्म हुआ था।

समय नहीं है। मैं जल्दी करती हूँ।

सफदर की माँ दोनों बच्चों को सँभाले हुए है। मैं पाखाना जाती हूँ और नहीं लौटती हूँ।

तीसरे दिन शाम को हावड़ा, बिना टिकट आयी हूँ न ! जगह-जगह उतरती आयी हूँ···

जय काली माई !

भीख से पेट नहीं भरता है। माँ, तुम्हारी लम्बी जीभ ने लोगों की दया-माया भी पी ली है न ?

—ओए, तू भीख क्यों माँगती है ?

—यह उम्र तेरी माँगने की नहीं है···

—तो क्या करूँ सरदारजी ?

—खाना पकायेगी ?

हामी भरी और पीछे-पीछे आ गयी सरदारों के। बालीगंज में बोण्डेल रोड से जरा हटकर एक पुराने मकान में सरदारों का अड्डा। बाहर एक-न-एक टैक्सी खड़ी रहती है।

बहुत आराम से हूँ। एक नहीं, तीन-तीन सरदार मुझ पर कुर्बान हैं ! इस निगोड़ी देह को मानो भालू ने ही फूँक मार दी है—स्वास्थ्य में ऐसा निखार कभी नहीं आया था। पता नहीं, भाग्य में क्या बदा है ! फूलकर मैं भैंस तो नहीं हो जाऊँगी ?

जापानी रेशम की सलवार और कुर्त्ता, मखमल की ओढ़नी···चम्पा, तूने कड़ा भी पहन लिया है और कृपाण भी लटका ली है। अमृतसर की सरदारनी बन गयी है, शाबास चम्पा !

—होटल चला रही है तू ?

—शराब और कवाब और···

—हाँ, सब कुछ···

—तीन बंगाली लड़कियाँ भी रख ली हैं न ?

—तो क्या हुआ !

एक मद्रासी ऐंग्लो-इण्डियन छोकरा···।

एक नेपाली युवक···।

उत्तर प्रदेश का एक अधेड़···

क्लर्क, व्यापारी और शिक्षक—हुस्न की झील में तीनों गोते खाने लगे। सरदार की ओर से हरी झण्डी का सिगनल मिला, तू आगे बढ़ी चम्पा ! दो साल के अन्दर उनका काफी सत निचुड़ गया। नेपाली की खुखरी मद्रासी के गले पर खेल गयी। शिक्षक ने व्यापारी को चकमा दिया और सरदार को नयी छोकरी

मिली। खुखरीवाला फरार होकर नेपाल भाग गया। मुकदमा चला तो शिक्षक को दो वर्ष की सजा हुई और तुझे छह महीने की—बंगाली छोकरियों में से दो को पुलिस ने अपनी तरफ न मिला लिया होता तो तू अदालत के कटघरे से बेदाग निकल आती चम्पा! पन्द्रह-बीस हजार जमा हुए थे, सारी रकम लेकर सरदार चम्पत हो गया···चल, यह भी अच्छा ही रहा!

जेल से रिहा होने पर मास्टरजी से मिलती हूँ।

मास्टरजी मुझे शर्माजी का पता देते हैं।

हावड़ा में शर्माजी का घी का कारोबार है। मैं उनसे सलकिया में मिलती हूँ। शर्माजी जेल-गेट पर जाकर मास्टर जी से मिलने जाते हैं और मेरे बारे में पूछ-ताछ कर आते हैं। मैं शर्माजी के साथ रहने लगी हूँ।

[यह आठ साल पहले की बात है, अब तो घी का धन्धा शर्माजी का भतीजा सँभालता है। खुद वह आजकल कोई खास काम-काज नहीं करते हैं। बीच-बीच में ठेकेदारी के लिए दो-एक टेण्डर जरूर भर देते हैं। टिप्पस भिड़ती है और काम बन जाता है।]

लोगों को मेरा परिचय वह 'रिश्ते की एक बहन' के तौर पर दिया करते हैं। यों मुझसे उनकी उम्र दस-बारह वर्ष ही ज्यादा होगी और वह विधुर नहीं है। साथ रहते-रहते नेह-छोह हो ही जाता है, मैं अपने प्रति शर्माजी के अन्दर गाढ़ी ममता पाती हूँ। उन्हें प्राणेश्वर या जीवन-धन तो मैं शायद ही कभी कह सकूँ किन्तु मेरे आश्रयदाता और प्रतिपालक अवश्य हैं। मैं बहुत भटक चुकी हूँ, अब विश्राम चाहती हूँ। तन-मन लगाकर शर्मा जी की सेवा मैं करती रहूँगी···

[साल-डेढ़ साल हम कलकत्ता और रहे। फिर बिहार रहने लगे। बिहार का शायद ही कोई जिला छूटा हो। पूर्णिया, सहरसा, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, मोतिहारी, छपरा, राँची, हजारीबाग, जमशेदपुर, पटना···कहाँ नहीं रहे हैं शर्माजी? नेपाल के विराटनगर, जनकपुर, वीरगंज भी उनकी प्रिय जगहों में से रहे हैं। पश्चिम में काशी और प्रयाग, पूरब में कलकत्ता···अनाथ औरतों के सिलसिले में शर्माजी ने एक बार कहा था : पहले इस काम के पीछे मेरी कोई कमजोरी भी रही होगी, अब लेकिन मैं इस काम को 'अत्यन्त पवित्र एक राष्ट्रीय कर्त्तव्य' मानता हूँ चम्पा! मेरे लिए यह एक ऐसा हाबी है जिसके साथ सामाजिक दायित्व भी जुड़ा है···और कितनी तत्परता से शर्माजी इस काम को करते आये हैं!]

—वो देखो, शर्मा की नयी रखैल···

—अच्छी चिड़िया फाँस लाया है पट्ठा···

—चाल तो देखो, रूपनगर की रानी लगती है···

—बच्चू की मौसी है, इलाज कराने आयी है···

—हाँ भई, शर्मा खुद ही भारी डाक्टर हैं न !

—उसकी अपनी डिस्पेन्सरी है···

—पेटेण्ट दवाइयों के उसके पार्सल कहाँ-कहाँ नहीं जाते !

—लेकिन यह हिरनी किस जंगल की है ?

—पुट्ठे पर सील-मुहर होगी, देख के बतलाऊँगा···

—चल-चल, यह मुँह और मसूर की दाल···

—इसे मैंने किसी फिलिम में देखा है···।

ये तो मर्दों के रिमार्क हैं ।

औरतें क्या कहती हैं मेरे बारे में ?

—सोनागाछी से आयी है···

—छूत की बीमारी है, इससे अलग ही रहो दीदी !

—देखना, यह राँड कहीं तुम्हारी मुन्नी को न फुसला ले !

—आँख है कि चित्ती कौड़ी है···

—डायन कितनों की कलेजियाँ चबा गयी होगी···

—कैसी बहन है कि भाई को ही खसम बना रखा है···

—ऐसा न कहो, बड़ी देर तक पूजा-पाठ करती है ।

—पाठ दिन को, पूजा रात को !

[शर्माजी की घरवाली तक मेरी शिकायत पहुंची । बड़े घराने की उस चतुर महिला ने ननद की मार्फत पति को कहलवाया : गाँव-घर से दूर दुनिया-भर की खाक छानते-छानते जीवन गुजर गया, देह की मशीन को आराम भी मिलना चाहिए और तेल-पानी—मुसीबत की मारी एक भली औरत छाँह में आ गयी है तो अब उससे दुराव रखना ठीक नहीं, साथ रहती है तो रहे···लेकिन विधवा है, माँग में सिन्दूर न डलवा ले आप से !]

तो, सिन्दूर क्या मैं खुद ही नहीं अपनी माँग में भर ले सकूँगी ?

विधवा तो मैं कभी रही नहीं ! पति के बाद मन-ही-मन जीजा के प्रति समर्पित हो गयी । जीजा ने जवाब दे दिया तो सफदर पर फिदा हुई, उसने चम्पा को कुलसुम बना लिया···कानों में छल्ले डलवा दिये चाँदी के···छेदों के निशान नहीं हैं इन कानों में ?

कुलसुम के बाद ? सतवन्त कौर ? हाँ, सतवन्त कौर । सरदारों ने मुझे यही नाम दिया था ।—सतवन्त कौर ने दम तोड़े तो चम्पा फिर से जी गयी···शर्माजी ने पहली बार पूछा तो चट् से मैंने अपना नाम बतलाया, चम्पा । अब मैं जिन्दगी-भर 'चम्पा' ही रहूँगी या फिर यह नाम बदलना पड़ेगा ।

—हाँ, मैं विधवा नहीं हूँ। सपने में भी अपने को मैं विधवा नहीं मानती। शर्माजी पति नहीं हैं मेरे, उनका आसरा है मेरा पति। बच्चे नहीं होंगे, मैंने आपरेशन करवा लिया है न? शर्माजी मुस्कराकर कभी-कभी कह देते हैं : चम्पा, तुमने प्रकृति के नियम का उल्लंघन किया है !···कुदरत के अनुशासन में नश्तर मारा है··· तभी तो बीमार रहती हो···मैं गलत कहता हूँ चम्पा ?

—आप भला गलत कहेंगे शर्माजी ? नहीं शर्माजी, नहीं ! आप बिलकुल ठीक कहते हैं···मगर मै भी गलत नहीं कहती शर्माजी, आपरेशन करवा लिया, अच्छा किया मैंने। नहीं ? अच्छा नहीं किया ?

मैं हँसती हूँ, शर्माजी गम्भीर हो जाते हैं।

शर्माजी हँसते हैं, मैं गम्भीर हो जाती हूँ।

[अब रत्ती-भर भी अभिलाषा माँ बनने की रह नहीं गयी है मेरे अन्दर। क्या होगा माँ बनकर ? बालीगंज में थी तो एक बच्चा हुआ था, आठ महीने जिया··· अच्छा हुआ कि नहीं रहा। बच्ची नहीं हूँ कि फिर वैसी गलती करूँगी। उस ऐंग्लो-इण्डियन मद्रासी छोकरे ने एक बार कहा था : जिन्दगी का कोई सिलसिला जम जाये तभी बच्चा पैदा करो, बच्चे को किस्मत के भरोसे छोड़ दोगी तो वह छछूँदर या लोमड़ी की तरह मारा-मारा फिरेगा तो फिर गालियाँ तो डार्लिंग तुम्हीं सुनोगी न ?]

शर्माजी जिम्मेवार आदमी है। मेरे बच्चे को या बच्ची को पाल-पोसकर और पढ़ा-लिखाकर वह आदमी जरूर बना देते···मगर उसके लिए सामाजिक सम्मान कहाँ से खरोद लाते शर्माजी ?

शर्माजी मुझे उदास देखते है। सोचते है, बच्चा होता तो उसमें उलझी रहती।

मैं उन्हें गम्भीर पाती हूँ। सोचती हूँ, इनकी यह छिछली भावुकता इन्हें ही मुबारक हो ! मैं खिलखिला उठती हूँ, कहती हूँ—तबियत बहलाने के लिए गुड्डा ला देंगे प्लास्टिक का ?

वह उठकर चल देते है। रंज हो गये ?

—बड़ी निठुर हो तुम चम्पा !

—निठुर ? क्या किया है मैंने आपका ?

—मेरे लिए नहीं, खुद अपने लिए निठुर हो तुम !

—आपके सिर पर अखरोट फोड़ूँ तो कहना···

—अपना सिर लहूलुहान किये बैठी रहोगी सो मुझसे देखा जायेगा ?

—लेकिन, प्लास्टिक का गुड्डा आप जरूर ले आइए ! चाबी से चल-फिर सके, हँसे-बोले और आप बाहर से आयें तो दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते करे !

शर्माजी बाहर निकल जाते हैं।

तुम शर्माजी का मखौल उड़ाती हो चम्पा ? यह अच्छा नहीं है चम्पा !

बुजुर्ग की मूंछों के बाल दुधमुंहे बच्चों की खातिर खेल में आ सकते हैं, तुम उन्हें मत नोचो चम्पा ! यह लत महँगी पड़ेगी रानीजी···तुम्हारी जैसी तो लड़कियाँ हैं शर्माजी के—एक-एक की शादी में पन्द्रह-पन्द्रह हजार खर्च हुए हैं, तुमने समझ क्या रखा है ? एक दामाद डाक्टर है, एक इंजीनियर···

और लड़कियाँ दोनों क्या हैं ?

दर्जा सात और दर्जा छः तक पढ़ी हुई हैं···सीना-पिरोना और स्वेटर बुनना जानती हैं। आड़ी-तिर्छी पंक्तियों में और लँगड़ी भाषा में अपने-अपने पति को पत्र लिखती हैं···

[मैं भी अपने पति को अशुद्ध भाषा में पत्र लिखा करती थी, पंक्ति टेढ़ी और अक्षर बदसूरत···जो दस हजार देकर खरीदा गया था मेरे लिए। उस नौजवान को इस फूहड़पन पर बड़ी खीझ आती थी। वह खुद पढ़ाकू लड़का था, परीक्षाओं में हमेशा प्रथम श्रेणी पाता था। चाची से मेरे बारे में एक बार उसने कहा था : यह मेरे क्या काम आयेगी। मैं यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर रहूँगा। दूसरे प्रोफेसर साथी और उनकी शिक्षित पत्नियाँ हमसे मिलने आयेंगे, यह ठीक से बातचीत भी तो नहीं कर पायेगी ! कम-से-कम मैट्रिक तक भी पास करवा दिया होता···अपनी लड़की चाहे गोबर हो, लड़का लेकिन हीरा चाहिए !···]

नींद आने लगी तो मीना ने नेपालिन से कहा, "जा, अब तू भी सो !"

नेपालिन भी कई बार जम्भाइयाँ ले चुकी थी, बोली, "खूब हँसाती है न ! तेरे पास सारी रात बैठी-पड़ी रहूँ तो भी उठने का जी नहीं करेगा। तुझे जोरों की नींद आ रही है न ?"

आफिस की बड़ी घड़ी ने दो बजाये—टन, टन !

"हाँ, जा, अब सो जा ! सवेरे मुझे उठा देना आकर !"

"लेकिन मेरी नींद कैसे टूटेगी मीना ?"

"बुआ स्टोव जलायेगी न।"

"हाँ, वो तो तड़के ही जग जायेगी। आठ ही बजे सो गयी थी···"

लेकिन नेपालिन ने नजदीक आकर देखा, बिजली जल रही है। बरामदे की ओर रोशनदान था, तिर्छे शीशे से होकर आधी रोशनी तो साफ आ रही थी और आधी छनी हुई।

आहिस्ता से किवाड़ें ठेलकर वह अन्दर आ गयी।

किवाड़ों को भिड़ाकर साँकल चढ़ाने लगी कि बुआ ने कहा, "रहने दो, बाहर जाऊँगी। तुम सो जाओ।"

फर्श पर गद्दा बिछा था, नेपालिन लेट गयी। उसे आश्चर्य था कि बुआ अब तक जगी थी···पूरी नींद के बाद शायद अभी-अभी आँखें खुली होंगी !

नेपालिन को पाँच मिनट बीतते-न-बीतते नींद आ गयी।

चम्पा की तबियत बिल्कुल बिखर चुकी थी। दिमाग भारी हो आया था। बिस्तरे से उठकर सुराही के पास आयी, स्टेनलेस स्टील के उस नफीस गिलास में लेकर पानी पिया और बाहर निकली।

फागुन की पूर्णिमा दो रोज बाद ही पड़ती थी। नीम के नीचे चितकबरी चाँदनी का अल्पना आँखों को बड़ा ही प्यारा लगा। इस दुतल्ले पर बरामदे चारों तरफ से घिरे हुए थे, रेलिंग काठ का था। बीच की आँगनवाली जगह ऊपर के असीम आकाश को नीचे अपनी चौकोर परिधि में लेकर नीम के उस विशाल वृक्ष की महिमा और भी बढ़ा रही थी।

बुआ देर तक रेलिंग से लगी खड़ी रह गयी। उसे उस समय बार-बार भुवन की याद आ रही थी··· कम्पाउण्डर की बीवी, उम्मी की माँ, तिलकधारीदास, मुंशी मनबोधलाल और वह संजीदा छोकरा विभाकर याद आ रहे थे। बड़े बालों वाला वह खाँसता हुआ चेहरा···महिम! कत्थई रंग के गन्दे दाँतों वाले वह सज्जन···दिवाकर! बदसूरत कुतिया और दोनों पिल्ले। मुंशीजी का भांजा, निगाहों के भद्दे इशारे···भोली-भाली भुवनेसरी!

कहीं दूर से होली के गीतों की मोटी और आवेगपूर्ण ध्वनि आ रही थी, सोई रात का सन्नाटा मृदंग की थापों से टूक-टूक हो गया था···एक मोटा चूहा निचले तल्ले के एक कमरे मे निकला और आँगन को बीचोबीच पार कर गया। बुआ ने आँखें मली, जम्भाई लेकर चेहरे पर वही हाथ फेर लिया और कमरे के अन्दर आ गयी। भुवन साथ-साथ अन्दर आयी, वह बुआ के दिमाग पर जाने कब तक हावी रहेगी। बेचारी को सोने नहीं देगी क्या?

चम्पा ने आहिस्ते से सादी कापी निकाली, पेन हाथ में लेकर कागज पर झुकी। वह भुवन को पत्र लिखेगी।

"प्यारी भुवन,

पता नहीं, तुम कहाँ हो—"

लेकिन पत्र का होगा क्या? अचार-मुरब्बा तो नहीं बनेगा, न सब्जी ही बनेगी? तो फिर क्या होगा पत्र लिखकर? भुवन तक कैसे पहुँचेगी चिट्ठी? छोकरी का पता भी तो मालूम हो···चम्पा की कलम रुक गयी थी, आगे नहीं बढ़ रही थी। वह अजीब पशोपेश में पड़ गयी। तकिये पर बायीं केहुनी और उसी हथेली पर गाल टिकाकर निगाहों को छत की कड़ियों में उलझाया ही था कि कम्पाउण्डर की बीवी मुस्कराकर सामने खड़ी हो गयी।

—तुम जानती हो भुवन का पता?

—मेरा पत्र भुवन तक पहुँचा दोगी?

—माथा हिला रही हो, तुम्हें भी भुवन का पता नहीं है ?

—उहुँ, तुम उसका पता जरूर जानती हो !

—मैं पाँव पड़ती हूँ तुम्हारे, यह पत्र भुवन तक पहुँचा देना ! इतना-सा काम तो कर ही दो···मैं क्या करूँगी उसका पता-ठिकाना मालूम करके !

चम्पा के दिमाग पर कम्पाउण्डर की बीवी जमी रही। अब वह उस तरह मुस्करा नहीं रही थी, चेहरा संजीदगी में डुब चुका था और आँखें झुकी थीं।

—तुम भुवन को मेरा पत्र जरूर पहुँचा दोगी !

—यह पत्र उसे बिना पहुँचाये तुमसे रहा जायेगा ?

—मैं किसी से नहीं बतलाऊँगी, मुस्करा रही हो, तुम्हारे होंठ हिल रहे हैं।

—तो, अब तुम भुवन तक मेरा पत्र पहुँचा ही दोगी।

—मैं पूरा लिख तो लूँ···

"प्यारी भुवन,

" पता नहीं, तुम कहाँ हो !

" इधर कई दिनों से बार-बार तुम्हारी याद आ रही है। दो महीने हो गये हैं, साठ दिन और साठ रातें। झूठ नहीं लिखूँगी कि तुम पर गुस्सा नहीं है मेरे अन्दर। क्रोध के साथ किन्तु ममता भी कम नहीं है भुवन, तुम्हारे प्रति अपने अन्दर मैं कभी कठोर और निठुर न हो पायी।

" शर्माजी की और उनके मित्रों की निगाहों में तुम्हारी तरुणाई के लिए कैसी ललक छलका करती थी। अच्छा हुआ कि इसका आभास तुम्हें नहीं हुआ भुवन। लेकिन मुझे तो पहरा देना पड़ा था, शिकारियों की टपकती लारें मैं कैसे भूल जाऊँगी ?

"मेरा मन मुझ से बार-बार कहता है कि हमारी मुलाकात होगी और जरूर होगी। धरती छोटी नहीं है भुवन, और समय असम्भव भी को सम्भव बना डालता है ! आज के बिछुड़े हुए कल नहीं तो परसों और परसों नहीं तो चार दिन बाद मिलते हैं। नहीं मिलते हैं ?

" घबड़ाकर शादी न कर लेना भुवन, न किसी आश्रम में भर्ती होना। मुझे लगता है कि तुम समाज की इस सड़ाँध से—इस कुम्भीपाक नरक से निकलकर नयी दुनिया के समझदार लोगों के बीच पहुँच गयी हो···वहाँ, जहाँ के नर-नारी मिल-जुलकर आगे बढ़ते है, जहाँ कोई किसी की बेबसी का फायदा नहीं उठाता, कोई किसी को चकमा नहीं देता, जहाँ पुरुष बल होगा तो स्त्रीबुद्ध होगी, स्त्री शक्ति होगी तो पुरुष ज्ञान। भुवन, तुम निश्चय उसी संसार में पहुँच गयी हो !

" जी करता है, तुम्हें बेटी कहके पुकारूँ और तुम अगले ही क्षण सामने आके खड़ी हो जाओ ! मुझे माँ कहने में तुम शायद हिचक उठोगी भुवन ! नहीं, मैं उतनी बुरी नहीं हूँ, बेटा ! देखना, मैं भी इस नरक से बाहर निकलूँगी···

" मैंने तुम्हें एक अच्छी साड़ी तक न दी ! टालती रही हमेशा, बहाने बनाती रही। लेकिन अब सोचती हूँ, महँगी साड़ियों का चस्का न लगाकर मैंने तुम्हारा भला ही किया···रेशम की साड़ियाँ और सोने के गहने जाने कितनी मुसीबतों के बीज अपने अन्दर छिपाये रहते हैं।

" उस दिन बाथरूम से तुम गायब हो गयीं, बिल्कुल ठीक किया तुमने भुवन ! आधा घण्टा बाद शर्माजी तुम्हें साथ लेकर निकलनेवाले थे न ? जिसने भी तुमको भागने की सुबुद्धि दी थी, उसे मैं सारा जीवन धन्यवाद देती रहूँगी।

" तुम तो बेहद सीधी हो, बड़ी समझदार। मुझे क्षमा मिलनी चाहिए भुवन, सामने आ जातीं, तो अवश्य ही मैं तुम्हारे पैर पकड़ लेती···।

चम्पा,
तुम्हारी वही बुआ "

पत्र लिखकर चम्पा ने कागज को चारो तहों में मोड़ लिया और सँभालकर सिरहाने के नीचे रखा। स्विच आफ कर आयी। माथा हल्का हो चुका था। कुछ देर में नींद आ गयी।

चौदह

कम्पाउण्डर की बीवी मायके गयी, अब तक लौटी नहीं थी।

चैत खत्म हो रहा था। धूप बर्दाश्त नहीं होती थी। पछिया के झोंके लोगों की गालियाँ सुनने लग गये थे। बुढ़िया बंगालिन के हाते के अन्दर छोटा-सा बाग था। केलों के पत्ते चहारदीवारी पर से बाहर लटके रहते थे मगर हवा के थपेड़ों ने बुरा हाल कर रखा था उनका, हरी झालरों के धनुष बन रहे थे और निगाहों को चिढ़ाते थे !

महिम की बीमारी का हाल सुनकर उसकी माँ, बीवी, बच्चे, छोटा भाई आ पहुँचे।

महिम की बीवी पढ़ी-लिखी नहीं, समझदार और मीठे स्वभाव की थी। उसने मामी का दिल जीत लिया। एक दिन मुस्कराकर बोली, "हम आपको भी देहात ले चलेंगे मामी, यहाँ अकेली रहकर क्या करेंगी आप ? दो महीने बाद फिर इनके साथ ही वापस आ जाना···हमारे उधर आमों का मौसम अच्छा रहता है।

कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली कहाँ नहीं जाते हैं तिरहुत के आम ।"

उम्मी की माँ का ननिहाल सीतामढ़ी के पास था, फैली-फैली आँखों से हुलास उँडेलती रही और कहा, "गयी हूँ उधर । दरभंगा, समस्तीपुर, सीतामढ़ी, रक्सौल, सब देखा है बहू !"

"अब हमारे साथ चलियेगा । आप पास रहेंगी तो इनका भी मन लगेगा । परदेश में आपका ही तो सहारा था । बिल्कुल बच्चे का स्वभाव है मामी, इनको सँभालना मुश्किल हो जाता है !"

"मैं वैशाख में चार रोज के लिए आ जाऊँगी बहू !"

"नहीं मामी । आप नहीं आएँगी !"

"कोई दुश्मनी है कि नहीं आऊँगी !"

बाहर से उछलता-कूदता बच्चा आ गया । इशारे में अपनी माँ से खाने के लिए कुछ माँगने लगा ।

आठ-नौ वर्ष के उस खूबसूरत बच्चे को मामी ने पास बुलाया, कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "चल, मैं देती हूँ ।"

कमरे के अन्दर ले जाकर चार बिस्कुट और रामदाने के दो लड्डू दिये ।

उम्मी की माँ को आज अपने दोनों लड़कों की याद आ रही थी । छोटा तो बार-बार दिमाग में आ रहा था । अब तो चौदह का हुआ, कितना बड़ा हो गया होगा··· बुरी तरह मन कचोटता रहा··· बड़े की याद आयी··· उम्मी की याद आयी तो दिमाग ने झटका खाया ।

इतने में महिम की माँ ने बुला लिया ।

इधर वह ज्यादा खाँसने लगा था । दिवाकर को और अशक को शक हो रहा था टी० बी० का मगर एक्स-रे और मल-मूत्र-खून आदि की अलग-अलग जाँच के आधार पर डॉक्टर सेन ने अपने चैम्बर में महिम के शरीर की आधा घण्टा तक परीक्षा-निरीक्षा की और टी० बी० की शंका को निर्मूल घोषित किया । प्रिस्क्रप्शन में स्थान-परिवर्तन और पौष्टिक खुराकवाले निर्देश तो थे ही, दो-तीन प्रकार की दवाओं के बारे में भी लिखा था ।

नेह-छोह, अनुनय-विनय, हठ और आँसू, अन्त में अपनी जान दे देने की धमकी··· माँ ने बड़ी मुश्किल से महिम को गाँव चलने के लिए राजी किया । उम्मी की माँ अपना जोर अलग डालती रही । अकेले में महिम को उसने बार-बार समझाया था । वस्तुत: उम्मी की माँ ने अद्भुत त्याग और संयम का परिचय दिया । यदि वह जरा-सा भी प्रतिकूल इंगित देती तो महिम माँ की बात नहीं मानता !

कल सुबह 5.45 वाले स्टीमर से वे महिम को ले जानेवाले थे ।

चार पर अलार्मवाली सुई लगाकर सभी सो गये । माँ, बीबी, छोटा भाई और

बच्चे गहरी नींद में थे।

महिम ने आहिस्ते से मामी को जगाया।

दोनों फुसफुसाकर बातें करने लगे।

"अब भी वक्त है, तुम कहो तो न जाऊँ!"

"ऐसा पागलपन न करना महिम!"

"और अगर मैं चार-छै महीने न लौट सकूँ..."

"मैं ही पहुँचकर मिल आऊँगी।"

"लेकिन जाने ही क्यों देती हो?"

"वहाँ जल्दी तन्दुरुस्त हो जाओगे महिम!"

"मन तो नहीं लगेगा मामी!..."

महिम का हाथ अपने हाथ में लेकर मामी बोली, "अब इस मन का भी इलाज करना होगा!"

"मन का इलाज?"—विस्मय में डूबकर महिम ने जानना चाहा!

"हाँ, मन का इलाज!"—मामी बोली।

महिम उसके चेहरे की ओर देख रहा था। दोनों तखतपोश पर बरामदे में बैठे थे। बाहर आँगन में चैत की चाँदनी फैली थी। उजलेपन का भास्वर परिवेश बरामदे के अन्धकार को धो रहा था। दीवारों की सफेदी तो उसे और भी पतला कर रही थी। महिम के बालों के लच्छे मामी को साफ-साफ दीख रहे थे। सोच रही थी : कल इस वक्त काले बालों वाला यह सुन्दर मुखड़ा यहाँ से पचास कोस दूर होगा और मैं इसी घर के अन्दर सोई रहूँगी...!

महिम ने कहा, "तुम इतनी निर्मम हो मामी!"

"हाँ महिम।"—मामी गम्भीर होकर बोली, "लेकिन, मेरी इस निर्ममता से कई प्राणों में जीवन का रस छलकेगा! कई सूखी नदियों में पानी के रेले आ जायेंगे! देखा नहीं है, पिछले दस-बारह दिनों में तुम्हारी माँ के चेहरे की रंगत कितनी बदल गयी है! बहू की आँखों में ठण्डक नहीं देखी है? बच्चों का उल्लास नजर नहीं आया है? प्रीति में पगी हुई अपने भाई की आवाज नहीं आयी है कानों के अन्दर? बार-बार परोसन माँगकर तुम माँ के हाथों का पकाया खाना खाते हो, अच्छा नहीं लगता है? कल सौंफ और पुदीना के पत्ते पीसकर बहू ने सर्बत तैयार किया था और तुम तीन गिलास पी गये थे। बारह साल की अपनी बिटिया सन्ध्या ने दो रंग के धागों से रूमाल के कोने में तुम्हारा नाम काढ़ लिया था, वह सफेद रूमाल अभी तुम्हारी पाकिट में होगा। अब दिन-रात तुम इन्हीं के बीच रहोगे, तुम्हें प्रसन्न देखेंगे तो इनकी ममता धन्य-धन्य हो उठेगी। इनका रोआँ-रोआँ मुझे आशीर्वाद देगा। ढेर-ढेर दुआ हासिल होगी तो शायद मेरे भी दिन लौटें...।"

महिम का हाथ नीचे पाकिट की ओर गया।

मामी ने कहा, "लौंग डालना चाहते हो मुँह के अन्दर? ठहरो, ला देती हूँ!"

लौंग लाके दिया।

महिम चुप था। मामी भी चुप थी।

अन्दर बच्चे ने बच्ची की देह पर लात रख दी, नींद में ही सन्ध्या ने एतराज किया··· क्यों प्राण लेता है शेखर!

मामी अन्दर गयी, दोनों को अलग-अलग कर आयी।

बोली, "देखो महिम, बिना बाप के बच्चे बिलल्ला हो जाते हैं। बाप का अभाव माँ भला कैसे पूरा करेगी?"

महिम ने पूछा, "और माँ के बिना बच्चों का क्या हाल होता होगा?"

इस वक्त उम्मी की माँ को यह सवाल अच्छा नहीं लगा। कुछ नहीं बोली।

महिम ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "देखो मामी, तुम्हारी राय मानकर मैं देहात लौट रहा हूँ। स्वास्थ्य सुधर जायेगा, यह प्रलोभन नहीं है मेरे मन में। तुम्हारे आदेश को मैं सभी प्रलोभनों मे ऊपर रखता हूँ। डेढ़-दो महीने के अन्दर ही पटना आ जाऊँगा। यो तुम्हारी तबियत ऊबे तो तीन लाइन का एक पोस्टकार्ड डाल देना, चट से हाजिर हो जाऊँगा।"

उर्म्मी की माँ ने कहा, "पोस्टकार्ड नहीं पहुँचेगा, मैं ही पहुँचूँगी महिम! तुम्हारी माँ और बहू की ऐसी छाप मेरे दिल पर पड़ी है कि जिन्दगी-भर के लिए मैं उनकी अपनी हो गयी।"

"माँ भी तुम्हारी तारीफ करती है।"

"बहू नही करती है तारीफ?"

"हाँ, वह भी तारीफ करती है।"

"इन्हें मेरे बारे में ज्यादा न बताना महिम!"

"नहीं बतलाऊँगा···"

"नूनू का तिलक चढ़ेगा जेठ में। उम्मी मेरे लिए शायद किसी को भेजे···"

"जरूर चली जाना!"

"देखा जायेगा···"

"नहीं, ऐसे शुभ अवसर पर तमाम रिश्तेदार इकट्ठे होंगे। लड़के की माँ का गैरहाजिर रहना सभी को अखरेगा।"

"कोई आ ही जायेगा तो तुमसे पूछ लूँगी लिखकर।"

"इसमें पूछना क्या है!"

मामी गम्भीर हो गयी। कन्धे हिलाकर महिम ने कहा, "क्यों, चुप क्यों हो गयीं?"

मामी आहिस्ते से बोली, "उम्मी के सामने कौन-सा मुँह लेकर जाऊँगी ? वह कभी मुझे क्षमा नहीं करेगी महिम ! मैं बाबूजी (पति) से उतना नही डरती हूँ जितना इस छोकरी से···सुना है कि पिछले वर्ष बी० ए० पास किया है, अब तो मेरे प्रति घृणा और भी गहरी हो गयी होगी···"

महिम ने आँखों में आँखें डालते हुए कहा, "कितना गलत सोचती हो मामी ! इस जमाने की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ ईर्ष्या और घृणा का सिरका नहीं तैयार करती हैं, उनका तुम्हारे युग की उस सड़ाँध से कोई वास्ता नहीं होता। उनके अन्दर छिछोरापन और थोथी भावुकता नहीं हुआ करती।···भूलों की सम्भावना के आतंक में वे मुर्दा होकर पड़ी नहीं रह जाती हैं, पिछली भूलों के पछतावे में सुलग-सुलगकर राख भी नहीं होती हैं। आगे बढ़ना जानती हैं तो मौके पर पैंतरे बदलकर पीछे हटने का गुर भी उन्हें मालूम है। तुम क्यों डरती हो उम्मी से ? पुरानी कमजोरियाँ तुम्हारा क्या बिगाड़ लेंगी ? हाँ, उनकी याद डायन बनकर अब भी तुम्हारी रगों का लहू चूसती रहेगी ! देखना, उम्मी तुम्हें यों नहीं छोड़ देगी, वह जरूर ही तुम्हारी खोज में लगी होगी···"

मामी की आँखों से आँसू बहने लगे।

महिम ने कुर्ते की छोर से उन्हें पोंछा लेकिन वे रुके नहीं, बहते ही रहे। मामी ने महिम का हाथ परे कर दिया; उठकर दरवाजे की ओर चली गयी।

महिम ने सोचा, रोकर जी हल्का करेगी। कुछ देर बैठा रहा, फिर थकान मालूम हुई और बिस्तरे पर जाकर लेट गया।

मामी भी बाहर से लौट आयी। महिम ने पूछा, "प्यास तो नहीं लगी है ?"

"आधा गिलास दे दो"—महिम ने धीरे-से कहा।

"क्या है बेटा ?"—उधर से माँ ने टोका, नींद टूट गयी थी।

"प्यास लगी है माँ !"

"कै बजे हैं ?"

"एक।"

"आप भी पानी पियेंगी ?"—उम्मी की माँ ने महिम की माँ से पूछा।

"नहीं"—वृद्ध स्वर खाँसता रहा।

"मामी, माँ से बातें करोगी या सोओगी अभी ?"—महिम बोला।

मामी ने कहा, "सोऊँगी।"

पन्द्रह

रंजना ने कहा, "अच्छा किया, आ गयी। अब आठ-दस रोज बाद ही वापस जाना। बनारस तो पहली बार देखा है न? यों तो हर शहर की अपनी एक खूबी हुआ करती है लेकिन इस काशी नगरी की एक नहीं अनेक विशेषताएं हैं निर्मला! बाबा विश्वनाथ और हिन्दू विश्वविद्यालय से लेकर सिल्क की साड़ियों और चादरों तक..."

"हां, मैं घूम-घूमकर देखूंगी," कम्पाउण्डर की बीवी बोली, "आपको तो फुर्सत नहीं मिलेगी, भुवन को साथ कर लूंगी।"

भुवन को इस प्रस्ताव से खुशी तो हुई मगर अगले ही क्षण वह गम्भीर हो गयी। मुद्रा में परिवर्तन देखकर रंजना ने पूछा, "क्यों, अब चेहरा क्यों उतर गया इन्दिरा?"

"मैं सारा शहर कैसे दिखला सकूंगी भाभी? खुद ही देखना बाकी है तो इसको क्या बतलाऊंगी?"

"तुम्हारे भाई साहब होस्टल के किसी लड़के से कह देंगे, साथ रहेगा।"

निर्मला ने हँसकर कहा, "अब इन्दिरा ही कौन-सी लड़की रह गयी! यह तो लड़कों के कान काटती है, सवेरे आज तैरने लगी तो गंगा में कितनी दूर निकल गयी!"

"बैडमिण्टन भी अच्छा खेलने लगी है"—रंजना कहने लगी, "पड़ोस में साइन्स कालेज के प्रोफेसर रहते हैं, कुलकर्णी। मिसेज कुलकर्णी अपने छोटे भाई के साथ एक तरफ होती है, प्रोफेसर और इन्दिरा दूसरी तरफ...कभी-कभी इन्दिरा और मिसेज कुलकर्णी का भाई ही आमने-सामने डट जाते हैं। वे तीनों इसकी तारीफ करते हैं।"

"स्वास्थ्य अच्छा हो गया है।"

"हां, वजन आठ पौण्ड बढ़ा है।"

"गर्मी की छुट्टियां कहां गुजारोगी भाभी?"

"हम तो कहीं नहीं जायेंगे। सदानन्द डेढ़ महीने के लिए कलकत्ता जायेंगे, नेशनल लाइब्रेरी में कुछ किताबें देखनी हैं। वह लौट आयेंगे तब दो-तीन रोज के लिए मैं पटना जाऊंगी, मामा से मिलने।"

कम्पाउण्डर की बीवी बच्चों की तरह खुशी के मारे तालियां पीटने लगी, कहा, "फिर तो इन्दिरा भी पटना पहुंच सकती है साथ-साथ!"

"नहीं, कोई जरूरत नहीं है," रंजना बोली, "इन्दिरा पटना क्या करने जायेगी?"

कम्पाउण्डर की बीवी ने याद दिलाया, "बुआ का खत गया में मैंने तुम्हें भी तो

दिखलाया था ! मैं सोचती हूँ, इन्दिरा एक बार बुआ से मिल लेती···"

रंजना ने तमककर कहा, "क्या होगा उस औरत से मिलकर ?"

कम्पाउण्डर की बीवी ने देखा, इन्दिरा नहीं है। बीच में ही उठकर चली गयी थी। उधर बाहरवाले कमरे में राजीव और कुन्तल के साथ खेल रही थी। कम्पाउण्डर की बीवी आहिस्ते से बोली, "देखो भाभी, बुआ से मिलना इन्दिरा के लिए जरूरी नहीं है मगर इन्दिरा का मिलना बुआ के लिए जरूरी है। इन्दिरा जिस नरक से बाहर निकल आयी है, बुआ अब तक उसी कुम्भीपाक में गोते खा रही है। वह इन्दिरा को सामने देखेगी तो अपने अन्दर दुगुना साहस महसूस करेगी भाभी, दलदल से बाहर निकलने का उसका संकल्प और भी तीव्र हो उठेगा। अँधेरी रात में बीहड़ पाँतर से होकर कभी निकली हो भाभी ? अँधेरे में भटकता मुसाफिर यदि दूर कहीं ज्योति का आभास भी पा जाता है तो उसके पैरों में बिजली की फुर्ती आ जाती है।"

रंजना ने कहा, "हमने तय कर लिया है, इन्दिरा बी० ए० करके ही पूरब की तरफ किसी शहर में पैर रखेगी।"

"तुम्हारे साथ जायेगी और लौट भी आयेगी साथ।"

धागे का छोर होंठों में दबाकर रंजना कम्पाउण्डर की बीवी को देखती रही। वह मचलकर बोली, "हाँ कर दो न भाभी !"

रंजना बरामदे में तख्त पर बैठी थी। धुले कपड़ों का ढेर सामने था। राजीव के निकर में बटन टाँकती हुई कहने लगी, "दो रोज के लिए पटना हो आयेगी मेरे साथ, इसमें तो कोई हर्ज नहीं किन्तु मैं नहीं चाहूँगी कि इन्दिरा उन जगहों में जाये या उन व्यक्तियों से मिले जिनकी स्मृतियाँ पल-भर के लिए भी उसके दिल को दुखाएँ···झुलसे हुए पौधे को ताजा पानी पिला-पिलाकर तुमने हरा कर लिया, दो दिन अब उस पर गरम पानी छिड़कोगी निर्मला ?"

निर्मला यानी कम्पाउण्डर की बीवी चुप रही। हाथों में कुन्तल का फ्राक लिये हुए थी, पीली अरगण्डी पर लाल और काले छींटे अच्छे लग रहे थे। उलट-पलटकर दो-तीन बार देख लिया, उसे रखकर फिर दूसरा फ्राक उठाया। गुलाबी ग्राउण्ड और हरे-हरे पत्ते खूब खिल रहे थे।

"भाभी, कौन-से पात हैं ?" निर्मला ने पूछा, "छितवन के ?"

"अखरोट के पत्ते हैं।" रंजना बोली।

कुर्ते के लिए दो सफेद बटन खोजने लगी, नहीं मिली तो डिब्बी ही उलट ली···छोटी-बड़ी बटनें, पुराने ब्लेड, सेफ्टीपिन की नयी किस्में, सुइयाँ, पेन्सिल के टुकड़े···नुमायश लग गयी।

निर्मला ने छोटी सेफ्टीपिन उठा ली, बोली, "ले लूँ ?"

"वाह ! पूछकर ?" रंजना हँसने लगी।

निर्मला सोचती रही : मैं भी तो पढ़-लिख सकती थी। मैं भी तो भाभी की तरह लड़कियों के किसी इण्टर कालेज में प्रोफेसर हो सकती थी और···

बोली, "माँ दो रोज से ज्यादा नहीं रुकेंगी, वहीं से रट लगाये हुए थीं कि ग्रहण नहाकर अगले दिन लौटेंगी। भइया भी जल्दी वापस जाना चाहते हैं।"

"कल और परसों तो अवश्य रुक जाओ !"

"परसों क्यों ?"

"हमारी उस दिन पूरी छुट्टी है, खूब बातें करेंगे।"

"हाँ भाभी, शादी में दो दिन के लिए तुम गयीं भी तो भीड़-भाड़ में हम आधा घण्टा के लिए भी इत्मीनान से बैठ नहीं सके !"

"मैं तो थी फुर्सत में, तुम पर बोझा था।"

"अब यहाँ होंगी बातें।"

"लेकिन तुम तो भागी जा रही हो निर्मला !"

निर्मला ने हँसकर कहा, "मैं कहाँ, माँ भाग रही है। भारी जिद्दी है···।"

रंजना ने नजर मारकर कमरे की ओर संकेत किया।

कमरे के अन्दर निर्मला की माँ सो रही थी।

हथेली के इशारे से उसने निर्मला को और पास बुला लिया। धीमी आवाज में पूछा, "इन्दिरा की पीठ पर निशान कैसे हैं ?"

"बेंत की पिटाई के निशान हैं भाभी," निर्मला कहने लगी, "एक गुण्डे की करतूत थी यह। छै महीने इन्दिरा को भिखमगों की टोली मे रहना पड़ा, वहां से धनबाद के गुण्डे इसको उचकलाये थे। गुण्डों ने चार-पाँच महीने इन्दिरा को बेहद परेशान किया···फजीहत, पिटाई, बलात्कार, तनहाई, भूखो तड़पाना···क्या नही किया उन्होंने ? आखिर उन्ही में से एक का दिल पिघला तो इन्दिरा उस नरक से छुटकारा पा सकी। हजारीबाग में उस गुण्डे की प्रेमिका रहती थी, इन्दिरा को उसने छिपाकर वहीं रख दिया···"

"फिर क्या हुआ ?" रंजना ने सुई-डोरा सहेजा, आगे की बात जानना चाहती थी।

निर्मला बोली, "गुण्डे की प्रेमिका ने इन्दिरा को बड़े जतन से दो-तीन महीने रखा। वह इसको बहुत प्यार करती थी। एक बड़े डाक्टर के परिवार में काम करनेवाली आया से उसका अच्छा परिचय था, इन्दिरा को डाक्टर की बीवी तक पहुँचने में जरा भी दिक्कत नहीं हुई। वह गुण्डा और उसकी प्रेमिका, दोनों इस लड़की का भला चाहते थे···"

"प्यार और सहानुभूति कब किसके हृदय में छलकने लगेंगे, कहा नहीं जा सकता !" रंजना ने कहा, "तुम्हीं क्या कम शैतान हो ? और, तुम्हारे अन्दर इन्दिरा के लिए कैसी करुणा छलकी थी !"

अपनी प्रशंसा अपने ही कानों के अन्दर आयी तो कम्पाउण्डर की बीवी का मुख-मण्डल चमकने लगा, कहने लगी, "भाभी, मैंने क्या किया ? कुछ नहीं किया मैंने ! वह तो भगवान की मर्जी से हुआ सब कुछ। मैं क्या जानती थी कि अगले क्षण क्या से क्या हो जायेगा ? मैं तो हाथ धोने निकली थी, बाथरूम में इन्दिरा दिखायी पड़ी और उसने बतलाया : दीदी, आज मेरा गला कटेगा। मैं तो हक्का-बक्का रह गयी सुनकर, पल-दो पल कुछ सूझा ही नहीं भाभी ! मगर फौरन दिमाग में यह बात आ गयी कि इन्दिरा को गायब कर दो···और मैंने इसे मकान-मालिक के गुदाम में छिपा दिया !"

रंजना बोली, "इतना तो इन्दिरा ने भी बतलाया था। हाँ, तुम अब हजारीबाग की बात कहो···।"

"बतला ही तो रही थी," निर्मला ने कहा, "डाक्टर बंगाली था, चटर्जी या भटर्जी···!"

"भटर्जी नही, भट्टाचार्य !"

"हाँ, भट्टाचार्य ही था। लेकिन वे बड़े ही अच्छे लोग थे। इन्दिरा जब तक उनके बीच रही, खूब आराम से रही। बदली हुई तो डाक्टर साहब आ गये। इन्दिरा भी परिवार के साथ आ गयी।"

"गया के बाद ?"

"शर्माजी। डाक्टर का खानदान मुजफ्फरपुर का है। कई पीढ़ियों से वे वहाँ जमे हुए हैं। डाक्टर के पिता नामी वकील थे, उनसे शर्माजी की अच्छी जान-पहचान थी। डाक्टर से भी जब तब मिलते ही रहते थे। दो वर्ष के लिए डाक्टर विलायत जाने लगे, बीवी ने अपनी माँ के पास बर्दवान जाने का निश्चय किया। इन्दिरा को शर्माजी पटना ले आये कि बेटी-भतीजी बनाकर रखेंगे और शादी करवा देंगे।"

"डाक्टर इन्दिरा को नर्स की भी ट्रेनिंग दिलवा सकता था ?"

"विलायत नही गया होता तो इसके लिए कोई-न-कोई रास्ता वह जरूर निकालता भाभी।"

अब मेज पर नाश्ता आनेवाला था, चाय आनेवाली थी।

निर्मला, उसकी माँ, इन्दिरा और बच्चे सैर के लिए निकलनेवाले थे। सदानन्द और रंजना को किसी गोष्ठी में जाना था, एक उपन्यासकार के सम्मान में पचीस-पचास साहित्य-रसिक जुटनेवाले थे।

सोलह

पिछले दो महीने के अन्दर चम्पा ने कई काम किये : आश्रम के टाइपराइटर पर प्रतिदिन घण्टा-डेढ़ घण्ट अभ्यास किया और हिन्दी में टाइप करना सीख लिया। मुंशी मनबोधलाल को समझा-बुझाकर उसने छोटा-सा कमरा सस्ते भाड़े में ठीक किया। बाहर एक तख्ती वहीं सड़क की ओर लटका दी—'गृह शिल्प कुटीर'। ड्राइवर सुमंगल को बुलवाया, नेपालिन का उससे परिचय करवा दिया, दोनों के सामने शादी का प्रस्ताव रखा। लेन-देन का कोई सवाल ही नहीं था, पसन्द की बात थी। दोनों अकेलेपन से ऊबे थे और घर-गिरस्ती बसाकर साधारण सुख का जीवन बिताने की लालसा रखते थे। चम्पा का आदेश वरदान ही था दोनों के लिए। तय हो गया कि अगले महीने शादी हो जायेगी।

साढ़े पाँच हजार की रकम चम्पा के नाम से सेविंग बैंक में जमा थी। चार हजार रुपये निकालकर उसने शर्माजीवाले खाते में डाल दिये। इसकी सूचना जब चम्पा ने शर्मा को दी तो वह रंज हो गया।

ब्लडप्रेसर का दौरा आता था। गुस्सा चढ़ने पर आँखें लाल हो जाती थीं, लगता था कि आँसू छलकने ही वाले हैं। होंठ फड़क रहे थे।

बोला, "पागल हो गयी हो चम्पा ! इससे तो बेहतर था, तुम मुझे चार जूते लगातीं···"

चम्पा कुछ नहीं बोली, बेल का शर्बत तैयार कर रही थी।

उसकी चुप्पी ने शर्माजी के क्रोध को और भड़का दिया, चिल्लाने लगे, "तुम मुझे कहीं का न रखोगी ! तुम मुझे बे-आबरू कर दोगी ! मेरी नाक में कौड़ी किसी ने नहीं बाँधी थी, यह श्रेय भी तुम्हीं को हासिल होगा चम्पा !"

शीशे के गिलास में शर्बत भर के अलग एक ओर रख लिया चम्पा ने। उसने सोचा, अभी दूँगी तो गिलास पटक देंगे। गुस्सा ठण्डा होगा, तब दूँगी।

लेकिन शर्माजी का प्रकोप तोड़फोड़ के लिए बेचैन था। वह उठे, इधर से शर्बत-भरा गिलास लिया और कमरे से बाहर जाकर मोरी में उँडेल दिया। अन्दर आकर गिलास को चम्पा की ओर फेंका तो वह झनझनाकर चूर-चूर हो गया।

काँच का एक पतला टुकड़ा उचटकर चम्पा के माथे में लगा, दूसरा टुकड़ा दाहिनी केहुनी में···

सिर का लहू बहकर नाक पर आने लगा।

अब भी कुछ नहीं बोली।

टिंचर का फाहा लेकर आईने के सामने खड़ी हुई।

शर्माजी चुपचाप बरामदे में कुर्सी पर बैठे रहे।

नेपालिन कहीं गयी थी, वापस लौटी। चम्पा के सामने, आईने के नीचे लहू की बड़ी-बड़ी बूँदें देखकर वह घबड़ाई।

"क्या हुआ बुआ ?"

"कुछ तो नहीं।"

"कहाँ चोट लगी है ?"

"कहीं नहीं..."

होंठ से उँगली छुआकर चम्पा ने इशारे में बतलाया कि बाहर शर्माजी बैठे हैं, पीछे बतलाएगी।

दस मिनट बाद शर्माजी सचमुच ही बाहर निकले।

खून तो टिंचर के फाहे से बन्द हो ही गया, चम्पा की तबियत लेकिन काबू में रही।

दूसरे दिन शाम को चम्पा रायसाहब से मिलने दानापुर गयी। रायसाहब आर्य-समाजी संस्कारों के धर्मभीरु सज्जन थे। संस्थाओं को उदारतापूर्वक दान देते रहते थे। परिवार के कई स्त्री-पुरुष शिक्षित थे। सम्पत्ति तो थी ही, अब आधुनिकता भी प्रवेश कर रही थी।

चम्पा पहले उनकी बेटियों और बहुओं से मिली। उनमें दो तो कन्यागुरुकुल (देहरादून) की छात्राएँ रह चुकी थीं। उन्होंने चम्पा से खुलकर बातें कीं और सहायता का आश्वासन दिया।

रायसाहब ध्यान से चम्पा की बातें सुनते रहे। अन्त में कहा, "तो मुझसे क्या चाहती हो बेटी ? मैं तो अब बूढ़ा हुआ ! मेरे नाम पर कौन कहाँ क्या करता है, मुझे बिल्कुल पता नहीं चलता। और, पता चल भी जाये तो क्या ? कौन मेरी सुनता है ! मैं तो जीवन-भर इसी सूत्र को मानकर चला हूँ कि आप भला तो जग भला..."

"आप आश्रमवालों को फटकार तो सकते हैं, चाचाजी !" चम्पा बोली।

रायसाहब ने गम्भीर होकर कहा, "मेरी फटकार वे चुपचाप पी जाते हैं और समय-समय पर माफी माँग लेते हैं किन्तु करेंगे वही जो उनका स्वार्थ कहेगा। मैं तो वर्ष में दो ही एक बार उनके साथ बैठने जाता हूँ..."

"और यही चाहते हैं आश्रमवाले"—चम्पा ने कहा।

रायसाहब का स्वर धीमा हो गया, "गत वर्ष मैं अध्यक्षता स्वीकार नहीं कर रहा था तो शर्माजी और महाशय मन्नूलालजी यहाँ आकर रोये, गीली आँखें मुझसे देखी नहीं गयीं बेटी !"

"हाँ, चाचाजी, इसी तरह रो-रोकर स्वार्थी और चालक आदमी नेहरू से भी अपने कई काम करवा लेते होंगे न ?"

"करवाते हैं। नेहरू ही नहीं, देश के पचासों बड़े नेता धूर्तों की विनयपत्रिका के शिकार हैं। बिना कड़ाई के, बिना दृढ़ता के नियमों का पालन हो ही नहीं सकता चम्पा ! इस आश्रम की इतनी अधिक पोल तुम्हें मालूम है कि भारी पोथा हो जायेगा अगर लिखवाओ ! यह सब कहीं अखबारों में छपने लगे तो उनकी बिक्री बढ़ जाये।"

"चाचाजी, आप अपने को हटा लीजिए इस आश्रम से।"

रायसाहब कुछ सोचकर बोले, "अभी पाँच की कमेटी है, इसे सात की कमेटी बनाकर उसमें चार महिलाओं को लाना चाहिए। एक तो तुम ही रहोगी, रहोगी न ?"

चम्पा फैली हथेलियों को देखती रही। नाखून एक-दूसरे को खरोंच रहे थे। संजीदगी में डूबकर कहने लगी, "इस 'आश्रम' शब्द से मैं बहुत घबराती हूँ। रही होगी इसके पीछे कभी कोई अच्छी भावना, अब तो ये आश्रम अनैतिकता के अड्डे हैं—स्वार्थियों के अखाड़े ! हमारी-जैसी मूक असहाय बकरियों की ही नहीं, आप-जैसे आदर्शवादी धर्मभीरु बैलों की भी बलि इन आश्रमों के अन्दर चढ़ती आयी है। अब वक्त आ गया है कि इन आश्रमों के ढाँचे हम बदल डालें…"

घण्टी बजाने पर आदमी आया तो रायसाहब ने उसे चाय के लिए कहा। चम्पा के चेहरे की ओर गौर से देखकर बोले, "तुम्हे भूख भी तो लगी होगी बेटा ?"

"नहीं"—सिर हिलाकर चम्पा ने कहा, "अन्दर अभी-अभी तो उन्होंने नाश्ता करवाया है।…"

कुछ रुककर वह बोली, "मैं तो यों भी आपका साथ दूँगी लेकिन आपको भी कुछ कष्ट उठाना होगा। संस्था का नाम बदल जायेगा, अधिकारी बदल जायेंगे, ढाँचा बदल जायेगा। अब वह आश्रयहीन महिलाओं का सहयोगी श्रमकेन्द्र हो सकता है।"

"बिल्कुल ठीक"—रायसाहब ने कहा।

"और मैं अपने लिए आपसे कुछ सहायता चाहती हूँ।"

"कहो !"

"किस्त पर एक टाइपराइटर दिलवा दीजिए, सिलाई-मशीन तो मेरी अपनी है ही…"

"क्यों, अब शर्मा के साथ नहीं रहोगी ?"

"नहीं। फिर भी तो मैं उनसे मिलती रहूँगी। कई बातों में मेरी और शर्माजी की राय नहीं मिलती है। किन्तु इस जीवन में उन्हें भूल नहीं सकती मैं—जब मैं टूट चुकी थी और आत्महत्या के अलावा और कोई रास्ता सूझ नहीं रहा था, उस

समय शर्माजी ने ही मेरी बाँह पकड़ी थी।"

चाय आ चुकी थी।

कप में होंठ लगाकर रायसाहब ने चुस्की ली। चम्पा से भी पलक के इशारे से चाय पीने के लिए कहा। क्षण-भर बाद बोले, "चीनी और मँगवा लो, मैं डाइबिटीज का गुलाम हूँ।"

"ठीक है, अब और नहीं चाहिए चीनी !"

"तो, टाइपराइटर हिन्दीवाली होगी ?"

"जी, अंग्रेजी तो नहीं जानती हूँ न !"

"पढ़ाने का काम करोगी ?"

"मैट्रिक भी तो होती···"

"खैर, कोई बात नहीं।"

"मैं कोशिश करूँगी कि अगले वर्षों में मैट्रिक की तैयारी करूँ !"

"सब कर सकती हो तुम, बहादुर लड़की हो !"

"आपकी आशीष बनी रहे चाचाजी···"

"कहाँ रहोगी, जगह ठीक कर ली है ?"

चम्पा ने अपने रहने की व्यवस्था के बारे में संक्षेप में बतला दिया। मुंशी मनबोधलाल और दिवाकर शास्त्री के नाम बतलाये। शास्त्री को रायसाहब जानते थे, कई बार साहित्यिक समारोहों के लिए चन्दा ले गये थे।

चाय खत्म करके चम्पा उठने ही वाली थी। रायसाहब का भी कप खाली हो चुका था।

वह बोले, "दस मिनट और बैठो।"

चम्पा ने कहा, "देर हो जायेगी।"

"हमारी गाड़ी है, छोड़ आयेगी···इन आश्रमों पर तुम्हारा गुस्सा वाजिब है चम्पा ! मैं सब जानता हूँ बेटी ! जिस तरह कांग्रेस बुढ़िया हो गयी है, उसी तरह देश की और भी बहुत सारी संस्थाएँ पुरानी पड़ गयी हैं···सेवा-समिति, विधवाश्रम, अनाथाश्रम, महिलाश्रम, हितकारिणी सभा···इस तरह के सैकड़ों साइनबोर्ड फीके पड़ चुके हैं। इनमें से दो-एक संस्थाएँ कहीं जिन्दा हैं भी तो गुटबाज लोग गीधों की तरह उन्हें नोच-नोचकर खा रहे हैं।"

फिर आवाज धीमी करके झुकते हुए कहा, "हमारा आर्यसमाज, देवसमाज, बंगालियों का ब्रह्म-समाज, बम्बईवालों का प्रार्थना-समाज···ये संगठन भी कमजोर हो गये हैं। अब तो राजनीति के मैदान में भी नयी पार्टियाँ ज्यादा चमक रही हैं। अपनी सत्तर साल की उम्र है बेटी, इस उम्र तक आते-आते साइन्स का प्रोफेसर भी अगली पीढ़ी का विरोध करने लगता है। सत्तर-पचत्तर वर्ष का चीफ मिनिस्टर अठारह-बीस की उम्र के छोकरों पर गोलियाँ चल चुकने के बाद कहता है :

हुल्लड़बाजों को सबक सिखाया, ठीक किया।

तश्तरी में अलग-अलग कटोरियों के अन्दर इलायची, सौंफ और सुपारी धनिया के दाने रखे थे। चम्पा ने सौंफ और सुपारी लेकर मुंह के हवाले किया। बोली, "चाचाजी, अपने बिहार में औरतों की स्थिति पिछड़ी हुई है, क्या कारण है इसका ?"

रायसाहब ने कहा, "बिहार में ही क्यों, हिन्दी बोलनेवाले बाकी जो चार प्रदेश हैं, वहां भी स्त्रियों का यही हाल है !—बंगाल, महाराष्ट्र, आन्ध्र, केरल, मद्रास, मैसूर, पंजाब, गुजरात—इन प्रदेशों में स्त्रियों का सामाजिक दर्जा कहीं ऊंचा है। पिछले दो सौ वर्षों में समाज का सुधार करनेवाले ऐसे महापुरुष हिन्दी भाषावाले प्रदेशों में दो-चार ही हुए जिनका सम्पर्क बाहर के देशों से रहा हो। कालेजों से पढ़-लिखकर लड़कियां निकलती हैं और पुराने समाज के जंगल में खो जाती हैं। हर विवाहित पुरुष के लिए पत्नी को साथ रखना अनिवार्य होना चाहिए, काम-काज के साथ ही फेमिली क्वार्टर की भी व्यवस्था होती। सहायक धन्धे के तौर पर परिवार की प्रत्येक महिला के लिए कोई-न-कोई काम मिलता तो कितना अच्छा था। पति की मृत्यु के बाद युवती का ब्याह फिर से करवा देना समाज के चौधरियों का काम है। शिक्षा, चिकित्सा आदि कई विभाग हैं, जिनमें स्त्रियां अपनी योग्यता के प्रमाण पेश कर चुकी हैं। शासन और निर्माण के कुछ ही क्षेत्र होंगे जिनमें स्त्रियां काम नहीं कर सकती। दरअसल हम ही उन्हें रोके हुए हैं।"

चम्पा कहने लगी, "देहात में या शहर में मजदूर लोग अपनी औरतों को बहुत आजादी देते हैं। गिरस्ती की गाड़ी को मर्द-औरत उस वर्ग में बराबर-बराबर खींचते हैं। वह हल चलाता है तो यह ढेला फोड़ती है। वह दीवार जोड़ता है, तो यह ईंटें ढोती है। आश्रम के मेहतर का कहीं पैर कट गया, दो महीने काम पर नहीं आया। मैंने मेहतरानी से पूछा, कैसे चलाती हो ? झाड़ू दिखाकर ठसक-भरी आवाज में बोली— यही मर्द है मेरा, अपने बच्चों को मैं इसी की कमाई खिलाती हूँ बहिनजी ! वो साल-भर भी बिस्तर पकड़े रहेगा तो भी हाय-हाय नहीं मचाऊँगी···"

रायसाहब ने उल्लसित होकर कहा, "बस, बस, यही आत्मविश्वास मैं स्त्रियों में देखना चाहता हूँ चम्पा ! हम बड़ी जातवालों ने महिलाओं को पंगु बना रखा है, जीवन का सारा रस निचोड़कर सिट्ठी बनाकर छोड़ दिया है···अपवाद हो सकते हैं लेकिन वह तो दूसरी बात हुई न ? कालेज से निकलते ही लड़कियां बहू बन जायें और लेटी-बैठी सारा-सारा दिन उपन्यास पढ़ती रहें, रेडियो सुनती रहें, तो वह आत्मविश्वास कहां से आयेगा ? श्रम, प्रज्ञा, सहयोग, विवेक और सुरुचि —सभी आवश्यक हैं चम्पा ! जीवन में इन पांचों का समन्वय करना होगा। पुरुषों

की ही बपौती नहीं है, स्त्रियों का भी साझा है इनमें।"

चम्पा बोली, "पहले तो खैर स्त्रियों को इतनी भी आजादी नहीं थी, रामायण-महाभारत और उपनिषदों की बात नहीं लेती हूँ। आगे उद्योग-धन्धे बढ़ेंगे, खेती-बाड़ी बढ़ेगी, जहालत और गरीबी हटेगी, साधारण जनता का जीवन सुखमय होगा···तब स्त्रियाँ भी इस दुर्दशा से छुटकारा पायेंगी, नहीं चाचा?"

"अवश्य पायेंगी छुटकारा," रायसाहब ने जम्भाई लेकर कहा, "बल्कि यों कहो कि आज भी स्त्रियों को साथ लिये बिना हम आगे नहीं बढ़ेंगे। धूर्तों ने 'त्याग की देवी' और 'प्राणेश्वरी' आदि कहकर स्त्रियों की भावुकता को अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए हमेशा उकसाया है। अब यह सब नहीं चलेगा चम्पा।"

"दोष स्त्रियों का भी तो है!"

"स्त्रियों का नहीं, उनकी मूर्खता का···"

चम्पा हँसने लगी। रायसाहब ने आँखें नचाकर कहा, "हँसती हो? मैं बिल्कुल ठीक कहता हूँ चम्पा, तुम चाहे जितना हँसो! मैं बहुत घूमा-फिरा हूँ, सभी प्रान्तों के स्त्री-पुरुष देखे हैं। उनके बीच रहने का अवसर मिला है बार-बार। बातें की हैं, सुख-दुख में उनके मूड मालूम किये हैं। और, इसीलिए अपने यहाँ की त्रुटियाँ अधिक अखरती हैं चम्पा!"

उसने माथा हिलाकर हामी भरी। क्षण-भर बाद संकोच के स्वर में बोली, "अभी मैं जाऊँगी।"

रायसाहब ने घण्टी बजाकर नौकर को बुलाया। उससे कहा, "ड्राइवर से कहो कि गाड़ी निकालें, चम्पा को बाँकीपुर छोड़ आना है।"

दोनों हाथ जोड़कर चम्पा ने कहा, "नमस्ते!"

"नमस्ते!"—रायसाहब ने कहा, "टाइपराइटर अगले सप्ताह तक तुम्हें मिल जायेगी!"

सत्तरह

निर्मला साढ़े तीन महीने बाद लौट आयी तो मुंशी मनबोधलाल को बड़ा ही अच्छा लगा। पहले कहा करते थे, कम्पाउण्डर की बीवी के बिना हमारा मकान सूना पड़ गया है। निर्मला के कहकहे, उसकी मीठी खिलखिलाहट, बातचीत की आवाज

मुंशीजी के कानों को बड़े प्रिय थे। कई बार वह कम्पाउण्डर से कह चुके थे : आपकी घरवाली बड़ी गुनमन्त है, जुबान से इमरित टपकता है···

बाबू मुंगेरीलाल को अपनी औरत का गुणगान पसन्द नहीं था, यह सोचना गलत होगा। लेकिन गोद जो सूनी थी। आठ-दस वर्ष की दुनियादारी के बाद भी गृहलक्ष्मी की कोख परिवार का मनोरथ पूरा न कर सके तो? वंश-बेल की गाँठ में टूसे न दिखलाई पड़ें, कलियों के गुच्छे न फूट निकलें तो?···बस, एक यही बात थी जो निर्मला के बारे में कम्पाउण्डर को खटकती थी।

दिवाकर शास्त्री इस दृष्टि से भाग्यवान थे। चार-पाँच महीने बाद प्रतिभामा वापस आयी तो चेहरे का रंग बदला हुआ था।

पड़ोसवाली ने मुस्कराकर पूछा, "कै महीने हुए हैं?" जवाब में बायें हाथ की तीन उँगलियाँ उठीं।

निर्मला वहीं थी। सोचा—भगवान की लीला अद्भुत है! कहीं ढेर-का ढेर, कहीं अन्धेर-का-अन्धेर!

पड़ोसवाली अब इसके चेहरे की ओर देखने लगी।

निर्मला को लगा कि दुनिया की पैनी नजर भाले की नोक बनकर उसकी कोख के अन्दर धँसी चली जा रही है···

प्रतिभामा की गोद में सत्रह महीने की हेम थी। लालच-भरी निगाहों से बच्ची ने माँ की छाती को देखा और एक नन्ही हथेली ब्लाउज के अन्दर होती हुई स्तन तक पहुँच गयी।

"शैतान की नानी!"—प्रतिभामा ने बच्ची को गोद से ठेलकर नीचे कर दिया और खीझकर बोली, "कंस की बेटी, दिन-रात मुझे चबाने के फेर में रहती है।—अप्पी, ओ अप्पी, कहाँ मर गयी?"

"आयी अम्मा!"—अपर्णा की आवाज निचले तल्ले से आयी।

"ले जा इसको, अकेले क्या खेलती है!"

"आ तो रही हूँ!"

छै साल की अपर्णा आकर हेम को जैसे-तैसे उठा ले गयी।

अब प्रतिभामा ने एक बार कम्पाउण्डर की बीवी को देखा और फिर पड़ोसवाली को। बोली, "इस बेचारी का क्या कसूर है बहिना, मर्द ही ध्यान नहीं देता है।"

होंठ सिकोड़कर पड़ोसवाली ने माथा हिलाया, कहने लगी, "अकेले मर्द ही क्या कर लेगा? औरत को भी तो हाथ-पैर दे रखे हैं रामजी ने! मगर, अकिल न हो तो हाथ-पैर चलाकर भी कुछ नहीं होगा बहन! पुनपुन नदी के किनारे यहाँ से छै-सात कोस पर सन्तों की जमात टिकी हुई है। सोमवार को वहाँ भारी भीड़ जुटती है। मन्त्र पढ़ के भभूत चटा देते हैं और काम बन जाता है। चलना हो तो

चले, मैं साथ ही जाऊँगी···"

निर्मला ने गरम होकर कहा, "ऐसी जगहों में कौन-से मन्त्र पढ़े जाते हैं और कैसी भभूत चटाई जाती है, मुझे मालूम है, विभाकर की माँ। सभी सन्तान के लिए यही सब करना होगा तो मैं टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर नहीं चलूँगी, सीधी सड़क पकड़ूँगी। आप मेरा मतलब समझ गयी होंगी। इस तरह की बातें सुनना मुझे पसन्द नहीं है···"

"लो, तुम तो बुरा मान गयीं!"—पड़ोसवाली नरम होकर बोली।

प्रतिभामा ने कहा, "बहिना, तुम्हारा दिल साफ है! जो बात गले तक आ जाती है, कह डालती हो! तुम्हें मालूम नहीं था न? निर्मला ने बड़े बहन के लड़के को गोद ले रखा है, पाँच वर्ष का हो जायेगा तब साथ रहने लगेगा। कौन अपना और कौन पराया, मन मान ले तो तुम किसी की भी माँ बन सकती हो! किस्मत खोटी हुई तो अपनी कोख का लड़का ही तुम्हारी झुकी कमर पर चार लात नहीं जमा देगा?—लेकिन, मुझे ले चलो उन सन्तों के पास! देखती नहीं हो, किस तरह तंग आ गयी हूँ बच्चों से? मैं कोई ऐसी भभूत चाटना चाहती हूँ जिससे अब आगे बाल-बच्चे पैदा न हों, जो हैं वे स्वस्थ-प्रसन्न रहें और बड़े होकर हमारी खोज-खबर लेते रहें। बहिना, बतलाओ, कब मुझे ले चलोगी?"

पड़ोसवाली गर्दन के पीछे बाल खुजलाने लगी और निर्मला मुसकराती हुई उठ गयी।

उम्मी पिछले सप्ताह आयी, समझा-बुझाकर माँ को ले गयी। वही दो कमरे खाली हुए तो उनमें से एक बुआ को मिल गया था। तिलकधारीदास वाला सड़क की तरफ का बाहरी रूम भी खाली हुआ था। किताब की दुकान के लिए दासजी को 'अशोक पथ' पर इधर एक बड़ा अच्छी जगह मिली थी। बुआ ने 'शिल्प-कुटीर' के लिए बीस रुपये भाड़े पर वह खोली भी ले ली।

टिन के छज्जे से नया साइनबोर्ड टँग गया : शिल्प-कुटीर। पाँच अक्षर दुरंगे और मोटे थे। नीचे पतली लिपि में लिखा था—'अचार, मुरब्बे, पापड़, बड़ियाँ। बेल-बूटे, झालर, रूमाल, मेजपोश, मोजे, स्वेटर।' एक और पंक्ति थी—'हिन्दी में टाइप करवाइए : स्त्रियों और बच्चो के कपड़े सिलवाइए।'

बुआ अब वह बीमार और मरियल औरत नहीं थी, जिसे निर्मला ने कई महीनों तक देखा था। पीछे भुवन के प्रति हमदर्दी पैदा होने के बाद, मन-ही-मन उसने इसी बुआ को बार-बार कोसा था।

निर्मला को अब बुआ के पास बैठना अच्छा लगता था। कम्पाउण्डर ड्यूटी के लिए निकल जाता तो दुपहर के बाद दो-तीन घण्टे वह दुकान के अन्दर आकर स्टूल पर जम जाती। मदद के लिए एक नेपाली नौजवान को रख लिया गया। सामने काउण्टर नहीं, मेज थी छोटी-सी। दोनों ओर दो शो-केश निहायत

मामूली ढंग के। पीछे चार रैक, मझोले आकार के। ठेठ काठ की दो कुर्सियाँ। सामग्री अभी शुरू-शुरू में ही कम थी। नेपाली को दुकान का काम समझा दिया था। खुद टाइपराइटर खटखटाया करती थी। दिवाकर शास्त्री ने अपने निबन्धों का संकलन दे रखा था। एडवांस के पच्चीस रुपये पाकर चम्पा का उत्साह बढ़ गया था।

कई दिनों से चम्पा की इच्छा हो रही थी कि भुवन के बारे में मालूम करे। आज उसने पूछ ही लिया, "भुवन की चिट्ठी नहीं आयी है ?"

"नहीं बुआ !"—कम्पाउण्डर की बीवी ने सहज स्वर में कहा। मन-ही-मन बोली : अब कोई हर्ज नहीं, भुवन के बारे में थोड़ा कुछ बतला देना चाहिए।

"गया में मिली होगी चिट्ठी।"

"मुलाकात हुई थी बुआ !"

"कब ?"

"पिछले महीने बनारस गये थे हम···"

"भुवन बनारस है ?"

"सुनो भी तो बुआ···"

निर्मला ने संक्षेप में बनारस का समाचार दिया।

चम्पा टाइपराइटर छोड़कर उठी, निर्मला की पीठ के पीछे खड़ी हो गयी। दोनों हाथ उसके कन्धों पर रखकर झुकी, कान के पास मुँह करके कहा, "सच बतलाओ निर्मला, तुम उससे मिली थीं ? मेरा पत्र पढ़ा था भुवन ने ? क्या कहती थी मेरे बारे में ?"

"कुछ नहीं बुआ, तुम्हारे बारे में उसने कुछ नहीं कहा," निर्मला बोली, "चिट्ठी तुम्हारी वाली भुवन ने दो बार पढ़ी और भाभी को थमा दिया।"

"भाभी ने पत्र पढ़ा होगा ?"

"पढ़ा और अन्दर जाकर दराज में रख आयीं।"

"भुवन मुझे दो पाँती का एक पोस्टकार्ड भी नहीं भेजेगी ? आते वक्त तुमने कहा होता तो जरूर मेरे लिए वह कुछ लिख के तुम्हें देती निर्मला !"

"मैंने कहा था बुआ, भुवन चुप लगा गयी।"

चम्पा के दिल ने कहा—भाभी ने मना कर दिया होगा !

भाभी ने मना कर दिया—निर्मला अन्दर-ही-अन्दर बोली।

उन्होंने एक-दूसरे के चेहरे की ओर देखा।

चम्पा के हाथ निर्मला के कन्धे छोड़कर नीचे लटक गये थे। रुख सड़क की ओर हो गया था।

तीन बज रहे थे। बाहर अब भी कड़ी धूप थी। चार तख्तोंवाली दो

किवाड़ियों में से एक ही तख्ती खुली थी, प्रकाश और हवा के लिए उतना ही काफी था।

नेपाली नहीं था; एक ग्राहक आ गया—आधा सेर पापड़ चाहिए, मूंग का !

चम्पा ने पापड़ की गड्डी निकालकर उसे थमायी और पैसे लिये।

ग्राहक चला गया तो बोली, "निर्मला, मुझे भुवन का पता दोगी?"

निर्मला उठकर मेज के पास आ गयी। कहा, "पता क्यों नहीं दूंगी बुआ?"

अचार के दो छोटे-छोटे मर्तबान थे, पीछे रैक पर। कपड़े से उन्हें पोंछती हुई चम्पा आहिस्ते से बोली, "ना, रहने दो निर्मला, पता लेकर क्या करूँगी? हां, तुम कभी बनारस लिखो तो मुझसे कहना। एक बार मैं भुवन को और लिखूंगी, बस एक बार और···"

निर्मला फिर पीछे गयी। सामने होकर चम्पा को देखने लगी। चेहरे पर ग्लानि की छाया तैर रही थी। होंठ भिंचे हुए थे। पलकें गीली थी, पपोटों में स्पन्दन था। घुटती सांसों की विषम गति मे नथने फूलकर फड़क रहे थे।

चम्पा के कन्धे पर हाथ रखकर मुलायम आवाज में उसने कहा, "क्यों बुआ, एक ही बार क्यों लिखोगी तुम भुवन को? उस गरीब के और कौन हैं, हमी लोग तो हैं···"

छलकती आँखों से चम्पा बोली, "मैं कौन हूँ उसकी! उसे खाई की ओर लुढ़काने की तैयारियां चल रही थीं और मेरा कलेजा तनिक भी धड़क नहीं रहा था! क्या कसर थी भुवन का गला कटने में? निर्मला, तुम न होतीं तो···"

चम्पा सुबकने लगी, आगे एक भी शब्द नहीं निकला उसकी जुबान से। वह स्टूल पर बैठ गयी और आंसू बहाती रही।

निर्मला की भी आंख फटने लगी। उसने मुश्किल से रोका। आंचल के छोर से चम्पा की आंख वह बार-बार पोंछती थी लेकिन आंसू रुकते नहीं थे।

विकल स्वर में निर्मला ने कहा, "तुम्हें मेरी कसम, बुआ! अब मत रोओ! भुवन हमेशा याद करती है तुम्हें, अकेले में रोती है तुम्हारे लिए। वह तुमको चिट्ठी लिखना चाहती थी बुआ! उसका पत्र आयेगा और अवश्य आयेगा···।"

चम्पा ने निर्मला के हाथ हटा दिये।

निर्मला कहती गयी, "मैं मंगवा दूंगी भुवन की चिट्ठी तुम्हें, भुवन खुद भी आकर मिलेगी बुआ! तुम पर जरा भी रंज नहीं है···"

बुआ कुछ नहीं बोली। उसके आंसू थम चुके थे।

निर्मला निकल आयी। चम्पा ने सुराही के पानी से चेहरा धोया। शो-केस के

निचली दराज के अन्दर छोटा तौलिया था, मुंह पोंछा। दिमाग में लेकिन रंजना की कल्पित छवि उभर रही थी।

टाइपराइटर की खट-खट फिर शुरू हुई। चम्पा मन-ही-मन रंजना से कह रही थी—तुम काशी में हो, मैं यहां पटने में हूँ। कैसे समझ पाओगी मुझको? काश, तुम मुझे देख पातीं रंजना!

□

गरीबदास

अन्तर्राष्ट्रीय बाल-दिवस··· ···बच्चों-बच्चियों का मेला, निवेदिता विद्यालय, हरिनगर···

स्कूल के फैले कम्पाउण्ड की सीमा के पास, बाहर, लाल रंग के कपड़े पर नीली पट्टियो की सिलावट मे समारोह के शीर्षक दो बाँसों के सहारे झूल रहे थे। अन्दर जानेवाले धूल-भरे मार्ग पर जीपों और कारों के टायर के निशान थे। आम के हरे-हरे पत्तों और पीले कनेर की इकहरी मालाओं से प्रवेश-पथ के उन बाँसो को सजा दिया गया था। विद्यालय के भवन अन्दर काफी दूर थे, लेकिन उन्हें साफ-साफ देखा जा सकता था। रास्ते के इधर-उधर केलों की हरी-भरी बागवानी आँखों को तरावट पहुँचा रही थी। अगल-बगल की क्यारियाँ करीने से सजी हुई लगती थी। उनकी मेंड़ों पर कतारों में केलो के छायादार थम्भ शान से लहरा रहे थे।

विद्यालय की सीध मे कुछ और आगे बढ़े तो सामने से इधर आता हुआ एक बालक नजर आया। करीब आकर वह बोला, "आप अखबारवाले है न ?"

"नहीं," एक ने कहा, "हम कपिल जी के साथी हैं, उत्सव देखने आये हैं।"

"नमस्ते !" बालक बोला, "चलिए, एक शिक्षाधिकारी का भाषण चल रहा है···आप आइये, आप दोनों के लिए बैठने की व्यवस्था अन्दर है···" फिर, एक मिनट बाद उसने कहा, "दूर से चलकर आये हैं न ! पहले हमारे छात्रावास में चलकर हाथ-मुँह धो लेना चाहेंगे ?"

दोनों ने देखा, बालक के पहनावे में नीले रग का निकर और चन्दन वर्णी कमीज थी। सिर पर टोपी-ओपी नहीं थी। "जरूर ही, वह इस विद्यालय का छात्र है।" एक ने दूसरे के कान में कहा।

दोनों आगंतुकों ने उससे कहा, "हम थके-वके नही हैं, हमें सीधे वहीं ले चलो···"

समारोह की जगह तक ले जाकर उसने उन दोनों की किनारेवाली कुर्सियों की तरफ आगे बढ़ा दिया। बिना बाँहों वाली, सादी कुर्सियाँ थीं, लकड़ी की।

दोनों ने उड़ती निगाहों से अन्दाज लिया। उपस्थिति ढाई-तीन सौ से अधिक की नहीं थी। छात्र-छात्राओं के अलावा, अध्यापक-अध्यापिकाएँ और अभिभावक-अभिभाविकाएँ थे। विद्यालय के कर्मचारी, बागवानी के मजदूर और छात्रावास के परिचारक भी जरूर रहे होंगे।

अधेड़ उम्र के शिक्षाधिकारी महोदय पुराने युगों की गुरुकुलीय व्यवस्था का रंगीन ब्यौरा दे रहे थे···कैसे संदीपन मुनि के आश्रम में सुदामा और कृष्ण साथ-साथ पढ़ायी-लिखायी करते थे, कैसे श्रीमंत एवं मामूली हैसियतवाले परिवारों के बच्चे साथ-साथ रहकर क्योंकर सुयोग्य नागरिक बनने का संस्कार हासिल करते। आगे चलकर गुरुकुल में रहे हुए इन्हीं बालकों में से राजा भी निकलते थे, व्यापारी भी और खेतिहर भी, श्रमिक भी और विद्यावान भी, और बुद्धिजीवी भी···आपस में उनके अन्दर कटुता की भावना नाम मात्र को भी पनप नहीं पाती थी···

उनके बाद एक और विद्वान वक्ता उठे। उनकी आयु साठ से अधिक की रही होगी। उत्साह में लेकिन तीस वर्ष के नौजवान मालूम पड़ते थे। उन्होंने पुराने युगों की बात नहीं की, भावी भारत का समाजवादी ढाँचा कैसा अनोखा होगा और तब हमारी नयी पीढ़ियाँ शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति की दृष्टि से कितनी उन्नतशील उपलब्धियाँ हासिल करेंगी, इस पर वे लगभग पन्द्रह मिनट विभोर होकर बोलते रहे···

इस समारोह में सबसे ज्यादा आकर्षण की बात क्या थी?

निवेदिता विद्यालय के ये छात्र-छात्राएँ उन्हें कभी नहीं भूलेंगे। यह मंच के सामने अपने युनिफार्म में बैठे हुए थे। इनकी दस कतारें थीं। एक-एक कतार में व्यवस्थित तौर पर पन्द्रह-पन्द्रह छात्र-छात्राएँ थे। छात्राओं की संख्या 23 थी, बाकी सभी छात्र थे। उनकी पंक्तियाँ बराबर के फासले पर थीं सब के साथ पालथी मारे बैठे थे, सावधान और जागरूक मुद्रा में। विद्यालय के छात्र-छात्राओं का यह अनुशासन बार-बार दोनों आगंतुकों का ध्यान उनकी ओर खींचता रहा। समारोह में ंत्री या राज्यमंत्री स्तर का कोई नेता आमंत्रित रहा होता तो फोटोवालों की भी गुंजाइश जरूर रही होती। काश, इन स्वस्थ, सुन्दर, प्रसन्न छात्र-छात्राओं के चेहरे कैमरे की छवि छाया में उतरकर दूर-दूर तक लोगों की नजरों के लिए सुलभ होते!

माइक का इन्तजाम नहीं था, फिर भी बतला दिया गया था कि "छात्रावास के एक रूम में चित्रों की प्रदर्शनी अवश्य देखिए। विद्यालय के बच्चों ने बड़ी मेहनत से प्रदर्शनी का सामान जुटाया है। अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष के सिलसिले में बच्चों की हजारों-हजार छाया-छवियाँ जहाँ-तहाँ पत्र-पत्रिकाओं में आ रही हैं, दसवीं-ग्यारहवीं जमात के हमारे छात्रों ने इन चित्रों को जहाँ-तहाँ से जुटाया है। आपसे अनुरोध है चित्रों की यह प्रदर्शनी जरूर देख लें···"

अध्यापको ने बार-बार बतलाया तो उन दोनों की दिलचस्पी कई गुना बढ़ गयी।

छात्रावास की ओर बढ़ने पर गेंदा और गुलदाउदी के खिले हुए फूलो वाले सौ-सौ पौधो ने कतारो मे हमारी अगवानी की। यह देखकर उनकी तबियत को राहत-सी महसूस हुई कि विद्यालय प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति दकियानूसी दृष्टि नही रखता। दो-तीन बालक इनके साथ चल रहे थे। उनमे से एक ने बतलाया, "हमारे यहाँ, विद्यालय के पिछवाड़े की तरफ पाँच एकड भूमि मे सब्जियाँ भी उगायी जाती है। भाई जी, आपके पास वक्त होता तो हम सब्जियो और फलो की अपनी बागवानी भी दिखलाते। आपकी तबियत खुश हो जाती।"

एक आगतुक चलते-चलते एक और लडके के मुँह की तरफ अपना कान झुकाये हुए था। वह बालक उनसे कह रहा था, "मछली-पालन के लिए छोटी-छोटी दो तलैया भी हमारे यहाँ है, मुर्गी-पालन का एक अच्छा-सा फार्म है ..."

इतने मे एक और लडका बोल उठा, "और उधर बगीचे मे लीची के झाडो के नीचे मधुमक्खी पालन के लिए लकडी के बक्से भी रखे हुए हैं। ऐसा बढ़िया शहद आपको और कही नही मिलेगा।" पहला लडका बोल उठा, "मुजफ्फरपुर मे लीची के बहुत बाग हैं, वहाँ शायद इस तरह का शहद मिलेगा⋯"

लगा कि वहाँ के बालको मे अपने विद्यालय की उपलब्धियो के प्रति बडा ही अभिमान है। वे यदि इन उपलब्धियो के बारे मे अधिक-से-अधिक जानकारी इन दोनो तक पहुँचाने को आकुल दीखे तो यह बिल्कुल स्वाभाविक था।

छात्रावास के अन्दर जाने के लिए भी छोटे से प्रवेश-मार्ग से होकर गुजरना पडा। प्रदर्शन कक्ष मे प्रवेश करने से पहले ही, एक तरफ जरा हटकर अपने युनिफार्म मे चार-पाँच बालिकाएँ आगतुको को चाय दे रही थी। प्यालियाँ नही थी, मिट्टी के सकोरे थे। चाय के साथ दो-दो बिस्कुट और जरा-जरा-सी दालमोठ⋯ झुकी हुई नजरो से वे छात्राएँ आगतुको की ओर चाय के सकोरे बढ़ा रही थी। आगतुको मे उनके अपने भी अभिभावक थे, अभिभाविकाएँ थी।

प्रदर्शन-कक्ष के अन्दर दीवारो पर लगभग सवा सौ फोटो सजाये गये थे। दाहिनी तरफ से आगे बढ़ने पर चालीस-पचास रगीन छवियाँ थी। इन्हे देशी-विदेशी पत्रिकाओ से लेकर यहाँ सजाया गया था। ये सभी ऐसे बालक-बालिकाओं के चित्र थे जिनके चेहरो से हँसी-खुशी और ताजगी का नूर बरस रहा था। हैलिकोप्टर की खिडकियो मे झाँकते बच्चे, गुब्बारो के दरमियान किलकारियाँ भरने वाली बच्चियाँ, सूरजमुखी के बड़े फूल से अपना गाल सहलाती हुई नन्ही बच्ची, घास पर रगीन फूलो से किस्म-किस्म के आकार उभारते हुए, मदारी की निगरानी मे अजगर को अपनी कमर से लिपटाये हुए बच्चे⋯

मगर, ऐसी छवियाँ चालीस-पचास से ज्यादा न रही होगी। आगे बढ़ने पर,

रंगीन छवियों की दुनिया बिल्कुल खत्म हो गयी थी। जीवन की विसंगतियों वाला पक्ष ही ज्यादा से ज्यादा उजागर था अगले चित्रों में—अकाल, महामारी, मारकाट, तोड़-फोड़, विषमता, ठगी, धोखा-धड़ी। इनके सबसे अधिक शिकार कौन होते हैं ? छवियों की सजावट के माध्यम से ही विद्यालय के बालकों ने अतिथियों से बतला दिया था कि मौजूदा युग में बच्चे ही सबसे अधिक दुखी और सबसे अधिक शोषित प्राणी हैं। भूख में बिलबिलाते, दंगे के दिनों में मार-काट के शिकार, शोषण की चक्की में पिसते हुए, मरी हुई माँ के सूखे स्तनों को चिचोड़ते हुए अबोध शिशु···इस तरह के बीसियों दृश्य थे, जिन पर निगाहों को ठहराना कष्टप्रद लगता था। इनमें अपने देश के दंगाग्रस्त, तूफान-पीड़ित, अकाल-कवलित बच्चे तो थे ही, इनके अलावा बांगला देश, पाकिस्तान, नेपाल, बर्मा, थाइलैण्ड, वियतनाम, अरब, तिब्बत जैसे मुल्कों के भी बालक-बालिकाएँ विराजमान थे।

दर्शकों में से एक व्यक्ति फुसफुसाया, "प्रदर्शनी में यहाँ इन छवियों का चुनाव विद्यालय के बच्चों ने नहीं किया होगा। लगता है, इनमें से किसी छात्र का रिश्तेदार कालेज का कोई नक्सलाइट स्टुडेण्ट है, उसकी राय से बाद वाले ये चित्र छाँटे गये हैं।" इन दोनों में से एक उस व्यक्ति के इस कथन पर भड़क उठे। बोले, "इनको कौन इनकार करेगा ? अब यदि कोई सब जगह शत-प्रतिशत गुलाबी चेहरे ही देखना पसन्द करता है तो उसके लिए बाल वर्ष की प्रदर्शनी बिल्कुल सजी-सजायी और सुन्दरम् टाइप की हुआ करेगी।"

दोनों ने मन-ही-मन उन बच्चों की सराहना की। उनकी इच्छा हुई कि उन बच्चों से अलग एकान्त में बातचीत करें और उनके विचारों से अपनी जानकारी बढ़ाएँ।

चित्रों की प्रदर्शनी से बाहर निकले तो दोपहर का एक बज रहा था। छात्रावास के बरामदे में, दीवार पर एक सूचना-पत्र टँगा था, 'अतिथि महोदय, आपके लिए हमने भोजन का प्रबन्ध कर रखा है। ठीक दो बजे हमारे भोजन-कक्ष में अवश्य पधारें।' नीचे छात्रावास के सुपरिटेंडेण्ट का हस्ताक्षर था।

नौजवानों में इस बात पर मतभेद नहीं था कि फोटो वाली नुमाइश ही छात्र वर्ग का अपना असली कार्यक्रम था। पड़ोस के बाजार से माइक मँगवाकर अच्छी किस्म के दस-बीस रिकार्ड बजवा देते तो दूर-दूर तक ग्रामांचलों में विद्यालय का नाम फिर से ताजा हो उठता···लेकिन इस मुद्दे पर सभी नौजवान सहमत नहीं थे। माया की लड़की, सुलोचना, मेडिकल कालेज के अन्तिम वर्ष की छात्रा थी। वह शुरू से ही इन उत्सवों में माइक-वाइक के खिलाफ थी। माया का लड़का, विवेक, इंजीनियरिंग का स्टुडेण्ट था। सुलोचना से दो वर्ष छोटा। वह और उसके हमउम्र चार-पाँच तरुण मनोरंजन के पक्ष में थे। उनकी राय में बाल-दिवस के अवसर पर माइक न बुलवाना विद्यालयवालों की दकियानूसी का सबूत था। कुछ

लोगों ने इसे कपिल की कंजूसी का प्रमाण घोषित किया।

विद्यालय गाँव से एक किलोमीटर दूर पड़ता था। कपिल ने सौ एकड़ भूमि देकर विद्यालय की आर्थिक स्थिति, आज से पन्द्रह वर्ष पहले ही पक्की कर दी थी। अनाज, साग-सब्जी, फल-फूट, दूध-दही आदि के मामलों में विद्यालय किसी बाहरी सहायता पर निर्भर नहीं था। सिंचाई का उसका अपना इंतजाम था। दो विशाल कुएँ थे जिनसे पंपिंगसेट के सहारे खेती-बागवानी और आवासिक इस्तेमाल के लिए काफी पानी निकलता रहता था।

पाँच अध्यापक थे और अध्यापिकाएँ। वे सपरिवार वहीं अन्दर रहते थे। एक-एक को अलग-अलग क्वार्टर मिला था। टीम-टाम के लिहाज से यह क्वार्टर आकर्षक और शहरी फ्लैट जैसे नहीं थे; फिर भी आराम के लिहाज से इन क्वार्टरों में पर्याप्त सुविधा थी। दो-दो कोठरियाँ, लम्बा बरामदा, आँगन। साग-सब्जी उगाने के लिए छोटी-सी क्यारी, रसोई और नहानघर आदि तो थे ही। आजकल रेल श्रमिकों के लिए बनने वाले माचिस-सरीखे खिलौनानुमा घुच्ची क्वार्टरों की तुलना में निवेदिता विद्यालय के छोटे क्वार्टर भी कहीं अधिक आरामदेह थे। इनमें ऊपर छतें नहीं थीं, टाइल बिछे हुए थे।

छात्रावास में रहने की व्यवस्था एडमिशन से जुड़ी हुई थी। उतने ही छात्रों और छात्राओं को प्रवेश मिलता था जितनों की पढ़ाई-लिखाई, खेल-कूद और रहन-सहन की व्यवस्था सही तौर पर की जा सके। छात्रों की संख्या कभी एक सौ साठ से आगे नहीं बढ़ी। यों कहिए कि विद्यालय के व्यवस्थापक यहाँ अंधाधुंध एडमिशन के पक्ष में कभी नहीं रहे। अपने इस आग्रह के लिए इन अधिकारियों को भारी दबाव झेलना पड़ता था — यह दबाव प्रशासन की तरफ से उतना नहीं था जितना कि समाज के उच्च वर्ग की तरफ से। प्रवेश का शुल्क मासिक सौ रुपये। सत्र के आरंभ में एक मुश्त जमा करने पर दो सौ रुपये कम लगते थे। निम्न वर्ग के उन तेजतर्रार छात्र-छात्राओं के लिए विद्यालय की ओर से अलग व्यवस्था थी। इन छात्रों को प्रवेश से पहले प्रतियोगिता में बैठना पड़ता था। निम्नवर्ग ही नहीं, खानदान के लिहाज से उच्च वर्ग के भी साधनहीन छात्र इस प्रतियोगिता में शामिल कर लिये जाते थे। प्रतियोगिता में सफल होने पर उनके नाम पर वार्षिक तौर पर हजार-हजार रुपये जमा कर देने के लिए निवेदिता विद्यालय का अपना अलग फंड था। संस्था की आर्थिक बुनियाद सुदृढ़ थी, इसी से वैसा फंड विद्यालय के लिए कभी भार नहीं साबित हुआ।

कपिल और माया का अपने जिले में बड़े व्यापक पैमाने पर जनसम्पर्क था। सरकारी एवं गैर सरकारी उद्योग धंधों से जुड़ी हुई कई संस्थाएँ इस विद्यालय के प्रति हमदर्दी का बर्ताव रखती थीं। विद्यालय की खेती-बाड़ी से पैदा होनेवाले

अतिरिक्त अन्न, साग-सब्जी, फल-फूट, मछली, अंडा, शहद आदि की खपत का प्रबंध आसानी से होता था। खादी एवं ग्रामोद्योग भंडार वाले विद्यालय की उपयोग की वस्तुएँ जुटाने में भाई-चारे का परिचय देते थे।

राजनीतिक उथल-पुथल से विद्यालय को हमेशा अलग रखा गया, यह एक खास बात थी। माया एवं कपिल को कई बार विधायक बनाने की कोशिश की गयी लेकिन दोनों ने इस दृष्टि से अद्भुत संयम का परिचय दिया।

गाँव के अन्दर दर्जा चार तक की एक अलग पाठशाला थी। उसका संचालन जिला-परिषद की तरफ से होता था। बालिकाओं के लिए एक और प्राइमरी स्कूल था। यह कन्याशाला उच्च एवं मध्यवर्ग की सुविधा के अनुसार जैसे-तैसे चलायी जाती थी। इन दोनों शालाओं के अतिरिक्त एक संस्कृत हाई स्कूल भी था—उच्च संस्कृत माध्यमिक विद्यालय। यह विद्यालय इधर के ग्रामांचलों के संस्कृत पंडितों की आपसी कूटनीति बनाम फूटनीति का अच्छा अखाड़ा था। पिछले वर्षों में आठ-दस हरिजन बालकों के साथ ही सवर्ण परिवारों की बहू-बेटियों को भी उत्तर मध्यमा के प्रमाण-पत्र मिल गये थे।

नयी पीढ़ी के सुलोचना और विवेक जैसे प्रतिनिधियों का गाँव के साधारण तरुण वर्ग से नाम मात्र का भी सम्पर्क नहीं था। वे तो छुट्टियों में दो-चार रोज के लिए घर आ जाते थे। हाँ, इतना जरूर था कि उनकी हमदर्दी छोटी हैसियत वाले परिवारों के प्रति थी। वे कभी-कभी इसीलिए निवेदिता विद्यालय की नुक्ताचीनी भी कर बैठते थे। अपने माता-पिता का लिहाज था, अतः विद्यालय की आलोचना खुलकर नहीं कर पाते थे।

हरिजनों की बस्ती जरा हटकर थी। छोटे-छोटे घर थे। जरा-जरा से आँगन। गंदे, घूरे-भरे गलियारे। छोटी उम्र के नंग-धड़ंग बच्चे यहाँ-वहाँ खेलते हुए। इस बस्ती की अगली छोर पर, नाले के उस पार पीपल का छोटा पेड़ नजर आ रहा था। वहाँ दो छोटे घर अपनी पुती हुई दीवारों के कारण ध्यान खींच रहे थे। आँगन में तुलसी का चबूतरा था, चबूतरे के निकट संत रैदास की जटाधारी प्रतिमा विराजमान थी। सीमेंटवाली वेदी पर सात अक्षर सुन्दर लिखावट में जगमगा रहे थे—महर्षि रविदास।

आहट सुनकर घर के अन्दर से एक दढ़ियल चेहरा प्रकट हुआ। दोनों की ओर देखकर उसने पूछा, "कहिए, किसे खोज रहे हैं?" कुछ देर तक उस अधेड़ जटाधारी ने उन्हें देखा फिर अंदर जाकर चटाई निकाल लाया। कहने लगा, "अजी, दस मिनट के लिए बैठ भी तो जाइए। आप जैसे लोग यहाँ क्या हमेशा पधारते हैं···"

दोनों सचमुच ही बाबा से ही मिलने के लिए हरिजनों की बस्ती तक पहुँचे थे। नाटे कद का, साँवली सूरतवाला यह अधेड़ साधु पिछले दो-तीन वर्षों में काफी

चर्चित हो चुका था। हरिजनानंद को अपने इस नामकरण के बारे में बहुत बाद में पता चला, जैसा कि उन्होंने बतलाया। दोनों ने साधुजी से जानना चाहा कि वह हरिजनों में किस नेता को अपना आदर्श मानते हैं ?

"बाबा साहेब अंबेडकर को ही मैं दलितों का महान् पथप्रदर्शक मानता हूं।"

बात की अगली कड़ी को जोड़ते हुए हरिजनानंद बोले, "बाबूजी, आप हमें इस नाम से मत पुकारिये ! कोई नाम जरूरी ही लगे तो मुझे पुराने नाम से पुकारियेगा। आज भी पास-पड़ोस के लोग मुझे गरीबदास कहकर बुलाते हैं। हमें अपना यही नाम प्यारा लगता है। हां, अगर आप लोगों को हमारे इस नाम पर एतराज हो तो जो जी में आये वही कहकर पुकारिए···दरअसल, बात यह है कि मुझे हरिजन शब्द पसंद नहीं है। अछूत जातियों के लिए दलित शब्द ही वाजिब है···"

आगंतुकों ने देखा, गरीबदास खूब धड़ल्ले से अपने दिल के भाव कामचलाऊ भाषा में जाहिर कर लेते हैं। जरूर ही गरीबदास को देर-देर तक भाषण करने का अभ्यास है।

एक ने जाने क्या सोचकर दूसरे से पूछा, "दामोदर, तुम्हें प्यास तो नहीं लगी है ?"

दामोदर को अंदर ही अंदर हँसी भी आयी और अच्छा भी लगा। गरीबदास ने कहा, "लाऊँ जल-वल ?"

दोनों ने फौरन पानी लाने की बात कही। साथ ही यह भी कहा, "बाबाजी महाराज, आप क्यों तकलीफ उठाते हैं !"

इस पर गरीबदास ने कहा, "आप यहाँ का जल न लेना चाहें, यह दूसरी बात है। मगर, हमारे यहाँ का जल बड़ा मीठा लगेगा आपको। यह कुआं छोटा जरूर है लेकिन इसका पानी जो एक बार पी लेगा, वह जिंदगी-भर इस पानी का स्वाद नहीं भूलेगा।"

उन्हें पानी के साथ गुड़ की एक-एक डली भी मिली। पानी सचमुच मीठा था।

पहले का नाम जनार्दन था। वह बोला, "अभी आपको कहीं जाना हो तो हो आयें। हम थोड़ी देर बाद फिर आ जायेंगे।"

"अच्छी बात है बाबूजी, तो फिर दो-अढ़ाई घंटे बाद हम यहाँ मिलेंगे···रात कहाँ गुजरी आपकी ? विद्यालय में बाल-दिवस देखने आये हो ? रात का विश्राम उधर ही रहा होगा ?"

"नहीं।" जनार्दन ने कहा, "रात हम गाँव के अन्दर अपने एक मित्र के यहाँ रहे। कई वर्षों के बाद इधर आना हुआ। हमारे रिश्तेदारों और मित्रों में से कई लोगों के परिवार यहाँ रहते हैं। उनमें से दो ही तीन जने अब यहाँ रह गये हैं,

बाकी सभी के परिवार दूर-दूर के शहरों में स्थायी रूप से बस गये हैं।"

इतने में सोलह-सत्रह वर्ष का एक तरुण साधुजी के निकट आया। उसके हाथ में हिंदी का कोई अखबार था। उसने झुककर बाबाजी को प्रणाम किया और उन दोनों को नमस्ते कही। अखबार बाबाजी के सामने रखकर कुटिया के अन्दर चला गया। बाबाजी ने कहा, "कपिल बाबू की कोशिश से इसके बाप को पाँच हजार का लोन मिला था। पिछले वर्ष की बात है। चमड़ा सिझाने का धंधा चालू किया है। मंगलराम नया नाम है, पहले मंगलदास कहते थे। जब से इलैक्शन की बात शुरू हुई, तभी से रैदास बिरादरी के लोग अपने नाम के साथ राम जोड़ने लगे हैं, मंगलदास लेकिन ईमानदार और मेहनती आदमी है। लोन की रकम एक-एक पाई चुकता कर देगा। कपिल बाबू भी मंगलदास के इस धंधे में काफी दिलचस्पी ले रहे हैं। उनकी मेहरबानी से इस गाँव में और भी चार-पाँच गरीबों को लोन मिला है। एक बढ़ई है, एक जुलाहा, एक कुम्हार, एक हलवाई—चार-पाँच और लोगों को लोन मिलने वाला है···बाबूजी दरअसल, यह बस्ती जितनी बड़ी है और जितनी अधिक तादाद में यहाँ के गरीबों को इस तरह का लोन मिलना चाहिए, उतना तो अभी कोई भी सरकार नहीं कर सकती। यह तो कपिल बाबू का जादू है कि इन गरीबों को आसानी से कर्जा मिल गया···अच्छा बाबूजी, दो घंटे बाद हम फिर से कहीं-न-कहीं आप लोगों से मिल ही लेंगे···" गरीबदासजी भभाकर हँसे। हँसते-हँसते अखबार के पन्ने अपनी नजरों के आगे फैला लिये। मुँह से एकाएक निकला, "लड़ गयी साली! जाने कितनों के प्राण चले गये होंगे!"

दोनो ने समझ लिया, रेल-दुर्घटना की खबर होगी···

साथी जनार्दन बाबाजी की तरफ देखकर बोले, "हम गाँव के अन्दर या विद्यालय में ही मिलते तो कैसा रहे!···आप भी जाने कब वापस लौटें अपनी कुटिया में···"

"जी हाँ, वही ठीक रहेगा।" साधूजी ने कहा और हाथ जोड़ लिये।

अपने बच्चों को बाराखड़ी का अभ्यास करवाने के लिए हरिजनों ने अपनी उस छोटी बस्ती के अंदर ही एक 'शाला' खोली थी। इस शाला की निगरानी का भार भगत लछमन दास ने अपने ऊपर खुशी-खुशी ले लिया था। उसे बस्ती के बच्चे 'नाना' जी कहा करते। उम्र सत्तर से दो-एक साल ज्यादा ही रही होगी। अब से चालीस वर्ष पहले यही लछमन दास की भतीजी दुलहिन बनकर आयी थी। ताई न रही तो मुनियाँ ने ताऊ को अपने पास बुला लिया। लछमन दास को यहाँ रहते पन्द्रह साल हो गये। दामाद की भरी-पूरी गिरस्ती थी, काम चलाऊ खेती-बाड़ी थी। शहर में टेनरी के कारखाने में अच्छी मजदूरी मिल रही थी। लछमन दास का अपना कहने को उधर कोई नहीं था। इधर यही लोग थे। इनसे भगत को पूरा

अपनापन मिल रहा था। इज्जत भी थी, आराम भी था। नाती और नतिनियों, सब पर लछमन दास का हुकुम चलता था। मोची का अपना पुराना धंधा भगत को बड़ा ही प्यारा था। औजार झोले में टंगे थे, कभी-कभी यों ही भगत अपने उन औजारों को झोले से निकालकर सामने चटाई पर फैला लेते। झाड़-पोंछकर थोड़ी देर बाद औजारों को फिर से झोले में रख लेते। लछमन दास निरक्षर मोची नहीं थे, कबीर की साखियाँ धीरे-धीरे पढ़ लेते थे। दैनिक समाचार-पत्र के शीर्षकों को बाँचकर सुन-सुना लेने में अच्छा लगता था।

मुनियाँ ने अपने बैठकखाने का बरामदा शाला के लिए दे दिया था। दीवार पर खूटियों के सहारे वर्णमाला के दो चार्ट टँगे हुए थे—एक हिंदीवाला, दूसरा अंग्रेजीवाला। बच्चों की संख्या पन्द्रह तक पहुँचती थी। कभी तेरह, कभी दस, कभी बारह और कभी सात। औसत संख्या दस की थी। शिक्षक के तौर पर दर्जा आठ तक पढी हुई एक बाल विधवा मिल गयी थी—फुलेसरी।

गरीबदास इस शाला के लिए हर महीना तीस रुपये का इन्तजाम करते थे। बीस रुपये शिक्षिका को मिलते थे, दस रुपये और कामों के लिए रखे रहते थे।

छोटी उम्र के बच्चों-बच्चियों के लिए यों तो हर बस्ती मे जगह-जगह पर सुभीते का प्रबन्ध रहना चाहिए। दस परिवारों के छोटे शिशुओं के लिए 'नर्सरी टाइप' के बाल-निकेतन तो बड़े नगरों की कॉलोनियों तक में नहीं खुल सके हैं अभी, सुदूर प्रदेशो के इन देहातों की तो क्या बात है। लेकिन यहाँ तो बाबा गरीबदास ने मजदूरी करते हुए ही इस शाला का इन्तजाम किया था।

क्या मजबूरी थी? मजबूरी यह थी कि गाँव के प्राइमरी स्कूल में हरिजन बच्चों के प्रति सवर्ण परिवारों के बच्चों का सलूक तिरस्कारपूर्ण तो था ही, आतंक जनक भी था। पिटाई के डर से हरिजन बच्चे अक्सर वहाँ से भाग जाते थे। बार-बार की शिकायतो के बाद भी जब स्थिति में सुधार नही हुआ तो गरीबदास ने इधर के बच्चों की पढ़ाई के लिए अलग इन्तजाम किया। चार्टों से ऊपर एक फोटो दीवार में चिपका दिया गया था।

उन्हें यह जानकर भारी अचम्भा हुआ कि उस पाठशाला में रविवार को छुट्टी नहीं रहती है। पूछने पर मालूम हुआ कि खेती और बागबानी या पर्व-त्यौहार के मुताबिक छुट्टियाँ होती हैं। वर्षा होने पर खेती के दिनों मे लगातार तीन-तीन, चार-चार दिनो तक पढ़ाई बन्द रहती है। खेतो से पकी फसलें उगाहने के सीजन में भी ऐसा ही होता है।

शाला को अभी दो ही वर्ष हुए थे। 15 अगस्त दो बार मनाये गये। छब्बीस जनवरी एक बार। गांधीजी और अम्बेडकर साहेब का जन्मदिन एक-एक बार। जनार्दनजी ने पूछा, "आप अपने बच्चों से कैसे मनवाते हैं यह सब?" जवाब मिला, "बच्चों को पन्द्रह अगस्त, छब्बीस जनवरी, महात्माजी, बाबा साहेब वगैरह

के बारे में मोटे तौर पर समझा देते हैं···और एक खास काम यह रहता है कि इन त्योहारों में हम अपने बच्चों को भरपेट जलेबी-पूड़ी खिलाते हैं, ऐसा नहीं कि एक-एक जलेबी थमाकर उन्हें विदा कर दें। यों कहिए, इन त्योहारों में हम छोटी उम्र के सभी बच्चों-बच्चियों को जलेबी-पूड़ी का भोज देते हैं। खर्च का बोझा बाबा गरीबदास उठाते हैं।"

रात के दो बजे होंगे। घंटे की जोर-जोर की आवाज लगभग मिनट भर तक गूंजती रही। रात का सन्नाटा टूक-टूक होकर छितरा गया। यह खतरे की आवाज थी। सायरन के भोंपू की तरह। छात्रावास से निकल-निकलकर पचासों लड़के गाँव की तरफ भागे।

एक लड़के ने दूसरे के कान में फुसफुसाकर कहा, "डाकुओं का जत्था गाँव के अन्दर घुस गया है। किसी ने डोरी खींचकर घंटा बजा दिया है। अभी हमें टार्च नहीं जलाना चाहिए, नहीं तो वापस भागते हुए डाकू हम पर अँधेरे में भी अंधा-धुंध गोलियाँ बरसाना शुरू कर देंगे।"

लड़कों के साथ दो-तीन युवा अध्यापक और दो-तीन कर्मचारी भी थे। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर तालाब के मुहाने पर उनकी राय हुई कि तीन-तीन, चार-चार के गिरोह में सभी लोग गाँव के चारों ओर मुख्य मार्गों पर मुस्तैद हो जायें···यह भी तय हुआ कि टार्च नहीं जलायी जायेगी। लगभग आधा घंटा बाद गाँव की दक्षिण दिशा में सूखे नाले के अंदर, रेती पर छोटी टार्च झुक-झुककर तीन-चार बार जली तो विद्यालय के तीन लड़कोंवाला यह गिरोह खेत-खेत से होकर उस ओर दौड़ा। डाकू सूटकेस खोलकर गहनों के डब्बे फैलाये हुए थे—सोने की चूड़ियाँ, नगवाली अँगूठियाँ, और ईयर-रिंग वगैरह उस रोशनी में बार-बार चमक रहे थे। मुच्छड़ चेहरेवाला एक डाकू जल्दी-जल्दी में गहनों को थैले में ठूंस रहा था। दो नौजवान उस मुच्छड़ पर टूट पड़े···

गहनों से भरा थैला एक हाथ में थामकर दूसरे हाथ से उसने अपने को छुड़ाने की कोशिश की। इतने में उसके माथे पर डंडे का भरपूर प्रहार पड़ा। वह लुढ़क गया। दूसरा डाकू भाग खड़ा हुआ।

यह साफ था कि डाकू भी अलग-अलग गिरोहों में भागे हैं। नगद रकम लेकर भागनेवाला गिरोह शायद किसी और दिशा में निकल गया था।

विद्यालय के इस गिरोह में से एक तरुण अध्यापक को दौड़ते वक्त जरा-सी ठेस लगी थी। दो छात्रों ने गहनों का वह थैला एक मेंड़ के पास मिट्टी के ढेलों के अन्दर दबा दिया। जरा दूर से आवाज आयी, "पकड़ो, पकड़ो! भागने न पायें···"

विद्यालय के छात्र गांव से एक फलाँग दूर उस अँधेरी रात में यहाँ-वहाँ छितरा गये थे। लगता था, डाकू भी भागते समय कई दिशाओं से आगे बढ़े थे।

अभी यह भी नहीं पता चल पा रहा था कि गाँववालों ने भी दो-चार डाकुओं को पकड़ा या नहीं।

तालाब निकट आने पर कपिल की आवाज सुनाई पड़ी, "डाकू भाग गये हैं, दो को पकड़ लिया गया है···"

इधर एक विद्यार्थी ने कहा, "एक डाकू वहाँ नाले में बेहोश पड़ा है।"

टार्च जलाकर कपिल आगे बढ़ आये, "ललित, तुम्हारे साथ और कौन-कौन आया है ? मुठभेड़ में तुममें से किसी को चोट तो नहीं लगी ?"

"यह तो बाद में पता चलेगा···अभी उस घायल डाकू को बाँध-बूँधकर हम गाँव के अन्दर ले चलेंगे।"

"तुम और सुरेश पहरा दो, हम रस्सी भिजवाते हैं···देखना, उठकर भाग न जाये·· इनके पास बंदूक-रिवाल्वर दो-चार ही थे, एक बंदूक और एक पिस्तौल हमने छीन लिया है।"

थोड़ी देर में रस्सी और लालटेन लिये हुए दो आदमी गाँव से आये। बेहोश डाकू के हाथ-पैर-कमर बाँध दिये गये। इसके गिरोहवाले इसे लाद-लूदकर वापस न ले जायें, बैलगाडी पर इसको लादकर गाँव के अन्दर ले चलना तय हुआ। उस काम में घंटा भर लगा। तब तक विद्यार्थियों सहित दस-बारह गाँववाले तालाब के इर्द-गिर्द निगरानी करते रहे।

लट्ठ की चोट सिर पर भरपूर पड़ी थी। एक बुजुर्ग को शक था कि बेहोशी का कहीं अभिनय तो नहीं चल रहा है। दूसरे बुजुर्ग ने लालटेन की बत्ती तेज करके उस डाकू का चेहरा देखा और बोले, "कोई बात नहीं, थाने की हवालात में इसका इलाज होगा।"

भगदड़ में और दो डाकू पकड़े गये थे। उन्हें बाहरवाली कोठरी में डाल दिया गया था। थाना छः किलोमीटर दूर था। खबर जा चुकी थी। माया की नौकरानी ने लोगों को पानी पिलाया।

अगहन आधा गुजर चुका था, ठंड थी। फिर भी डाकुओं के हमले के कारण और जवाबी हमले के चलते वातावरण में काफी गर्मी आ गयी थी। लोग मौसम को भूल गये थे। फिलहाल यह अंदेशा तो नहीं था कि डाकुओं का गिरोह फिर से धावा मारेगा, लेकिन लोगों की नींद बिल्कुल उड़ गयी थी। बच्चों और बूढ़ी महिलाओं को छोड़कर लगता था, समूचा गाँव कपिल के दालान के इर्द-गिर्दवाली खुली जगहों में आ जुटा था। कोई भी वहाँ से हटने का नाम नहीं ले रहा था।

लोगों की छिट-पुट बातों से उनका यही विश्वास झलकता था कि दारोगाजी सूरज निकलने से पहले ही आ धमकेंगे। मुखियाजी, ठाकुर रामशंकर सिंह ने जीप से अपने छोटे भाई को थाने भेज दिया था। दारोगाजी या तो उसी से आ सकते थे या फिर सरकारी जीप से। सयाने लोगों की चर्चा का विषय यही था कि

पहचाने जाने पर डाकुओं के उन गिरोहों का पता चल जायेगा जिन्होंने पिछले तीन-चार महीनों से दो-तीन जिलों में आतंक मचा रखा है।

खतरे का घंटा पहली बार ही ठनठनाया था। ग्राम पंचायत ने तीन वर्ष पहले इस घंटे को ठाकुर सदानंद सिंह के चौबारे की छत पर टँगवाया था। खास आर्डर देकर मुरादाबाद से काँसे का यह घंटा मँगवाया गया था। वजन पंद्रह किलो था। पौने सात सौ रुपये लगे थे।

बूढ़ा चरवाहा निरगुन मंडल पिछले कई वर्षों से 'रिटायर्ड' था, ठाकुर के यहाँ बुढ़ौती के अपने दिन गुजार रहा था। उमर अस्सी से कम नहीं थी।

निरगुन मंडल सत्तर बरस से उस परिवार में चरवाहे का काम करता आया था। उसे रात में बहुत कम नींद आती थी। पिछवाड़े की तरफ आहट सुनकर वह धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ चुपचाप छत पर पहुँचा। झाँकने पर पाँच-छः चेहरे नजर आये। बूढ़े की आत्मा ने कहा, चोर नहीं, डाकू हैं···कुछ पीछे हैं और कुछ आगे होंगे···निरगुन को घंटे की रस्सी का पता था। रस्सी से लगभग लटक-सा गया। हल्के बदन का ठिगना बूढ़ा देर तक घंटे की रस्सी खींचता रहा। आवाज होती रही।

पकी ईंटों की खानदानी हवेली थी। सदर दरवाजे पर, बैठक-बरामदे में तख्तपोश खाली पड़ा था। दोनों भाई अंदर सो रहे थे। बाहर कुत्ता भौंका तो जरा ही देर भौंकता रहा। फिर हल्की गुर्राहट के साथ आवाज डूब गयी थी··· बाद को मालूम हुआ कि एक डाकू ने झपटकर कुत्ते को तौलिये में लपेट लिया था, फिर उसका गला घोट दिया था···

डाकू आलमारी नहीं खोल सके थे। पलंग के नीचे से दो सूटकेस ही ले पाये थे। छोटी बहू अगले दिन बंगलौर जाने वाली थी। सूटकेसों में अपना कुछ सामान जमाकर रख लिया था।

इससे ज्यादा कुछ हाथ नहीं लगा डाकुओं को। तीनों डाकुओं के चेहरे रंगीन तौलियों से ढँक दिये गये। पुलिस के चार जवान उन तीनों को अपनी गाड़ी में लाद चुके तो हैड कांस्टेबल ने पुलिस गाड़ी में पीछे से ताला लगा दिया। दो सिपाहियों के साथ वह खुद ड्राइवर के साथ आगे बैठा। दारोगाजी, छोटे दारोगा के साथ जीप में आगे निकल गये थे।

पिछले दो-तीन वर्षों में बड़ी जातियों और छोटी जातियों के आपसी झमेले बेहद बढ़ गये थे। यह कड़वाहट छोटे-छोटे गाँवों तक पहुँच चुकी थी। लगता था, अगले वर्षों में इधर वाले तीनों जनपद चम्बल घाटी बनने जा रहे हैं। पुलिस विभाग में नियुक्तियों, तबादलों, प्रमोशनों का आधार भी खास-खास जातियों के हितों को सामने रखकर ही बनाया जाने लगा था। योग्यता की उपेक्षा पहले से ज्यादा होने लगी। राजनीतिक दलपतियों के हस्तक्षेप अक्सर सुने जाने लगे।

अस्थायी मंत्रिमंडल कोढ़ में खाज साबित हो रहे थे।

ऐसी हालत में ठाकुर रिपुदमन सिंह को यह बदनाम थाना दुरुस्त रखने के लिए मिला था। कोई साफ-साफ बतला नहीं रहा था कि नये दारोगाजी यहाँ तीन वर्ष पूरे रहेंगे। इनसे पहले जाहिद अली खां साहब सात साल रहकर गये हैं। जाते-जाते खां साहब को बड़ी हुज्जत का सामना करना पड़ा। गनीमत यही थी कि छोटा लड़का, बख्तावर सम्पूर्ण क्रांतिवाले पिछले आंदोलन में मिसाबंदी की पूरी मियाद सेंट्रल जेल में गुजार आया था। यह तय था कि बख्तावर विधान सभा का मेम्बर होगा। आगे चलकर हुआ भी यही···नतीजा अच्छा ही रहा। खां साहेब सूली पर नहीं लटकाये गये, तबादला भर होकर रह गया। यों खां साहब पर पब्लिक के गुस्से का टेम्परेचर बहुत हाई था···इमर्जेंसीवाले दिनों में जिस हिसाब से खां साहब का हौसला बुलंदी पर उठा, उसी मात्रा में आमदनी भी आपकी खूब बढ़ी···इस बात पर साथी लोग बख्तावर की मीठी चुटकियाँ लेते हैं तो वह कहता है, "मौके की बात है, आपके अब्बाजान क्या वैशनो होटल खोलते?"

ठाकुर रिपुदमन सिंह को यह थाना भारी पड़ रहा था। अंचल के गाँवों में राजपूतों की अच्छी आबादी थी। वे चाहते थे कि बीस वर्षों के बाद आया हुआ ठाकुर दारोगा यहाँ कम-से-कम पाँच साल तो जरूर टिके लेकिन अपनी बिरादरी के दारोगा को निश्चित अवधि तक थाने में टिकाये रखना सिर्फ ठाकुरों पर ही निर्भर नहीं था। और जातियों के प्रमुख लोग इसमें ठाकुरों का साथ दें, तभी ठाकुर रिपुदमन सिंह चार-पांच वर्ष चल सकते हैं।

हरिजनों को अपना अलग दारोगा चाहिए था, मुसलमानों को अलग, महिलाओं से पूछा जाता तो जरूर ही वह भी किसी महिला को ही दारोगा के रूप में यहाँ पसंद करतीं। थाने में बारह जवान थे। उन पर एक दारोगा, एक छोटा दारोगा, और हेड कांस्टेबल। मालखाने में नये माडल की आठ बंदूकें थीं, दस पुराने माडल की। रिवाल्वर थे। बेतार का सिलसिला जिला हैडक्वार्टर से अभी-अभी छह महीना पहले जुड़ा था। एक जीप थी, दो मोटर साइकिलें। मोटे मजबूत किस्म के बीस-पच्चीस लट्ठ भी थे ही। पिछले वर्ष नया-नया पुलिस वैन मिला था। इमर्जेंसी वाले पीरियड में जो वैन था उसे पड़ोसी थाने के कॉलेजोंवाले छात्रों ने फूंक डाला था।

हाजत में बंद डाकुओं का गुस्सा उनकी चीखों से जाहिर हो रहा था। दिन ढल रहा था फिर भी वे भूखे-प्यासे थे। उनमें से एक तो रह-रहकर कराह उठता था।

थाने का मेहतर हाजत की सलाखों के सामने आकर खड़ा हुआ तो घुटी चाँदवाले अधेड़ डाकू ने उससे कहा, "क्या यमराज के नाती पीने को पानी भी नहीं देंगे?"

मेहतर बोला, "अभी तो आपका खाता खुलेगा। फिर छोटे दारोगा साहेब आपसे पूछ-ताछ करेंगे। तब जाकर डाक्टर बाबू का नम्बर आयेगा। वह आपको जब अच्छी तरह देख लेंगे, तभी दाना-पानी मिलेगा···"

दूसरे डाकू ने नफरत में थूका, "साले, लैक्चर पिलाता है! हमको यहाँ का रुटीन बतला रहा है! हरामजादे!"

मेहतर बूढ़ा था। गाली सुनकर ताव खा गया। अपना झाड़ूवाला हाथ डाकुओं की ओर बढ़ाकर बोला, "बस, अभी कुछ देर में तुम्हारा भूत उतरने ही वाला है···"

दो रोज बाद कपिल बाबू दारोगा से मिलकर इतना भर मालूम कर सके कि लगता है, डाकुओं ने गलत-सलत बातें बतलायीं···पते की बात वही थी जिसके बारे में पुलिसवालों को पहले से ही मालूम था।

सदानंद, रामशंकर सिंह और कपिल ने आपस में विचार-विमर्श करके तय किया कि नये दारोगा पर इस डाका-कांड के बारे में जल्दबाजी के लिए किसी तरह का दबाव नहीं डालेंगे। चूंकि गहनों का डब्बा डाकुओं से छीनकर छोटी बहू के हवाले कर दिया गया था, कोई और नुकसान नहीं हुआ था। हाँ, स्वामिभक्त कुत्ता कुर्बान हो गया था। इस बात का सभी को भारी अफसोस था। दो सप्ताह बाद दारोगाजी ने ठाकुर सदानंदसिंह के घर पर पहुँचकर निरगुन मंडल को 251 रुपये की नगद राशि का पुरस्कार दिया। उसी दिन शाम को बी० डी० ओ० (अंचल-अधिकारी) महोदय के हाथो और सुरेश को भी पुरस्कृत किया गया। इसी के लिए विद्यालय में छोटा-सा समारोह हुआ था। जल्दी-जल्दी में बालिकाओं ने मालाएँ तैयार कीं। इन बालकों के गले में बी० डी० ओ० साहब ने स्वयं अपने हाथों से एक-एक माला डाल दी और नगद राशि के बंद लिफाफे थमा दिये।

ठीक मौके पर, समारोह की समाप्ति के क्षणों में, जाने किधर से बाबा, हरिजनानंद प्रकट हुए। गमछे की पोटली खोलकर उन्होंने गेंदे के पीले फूलों की मालाएँ निकालीं। आगे बढ़कर दोनों बालकों के गले में एक-एक माला डाल दी। उपस्थित छात्रों-छात्राओं ने जोर से तालियाँ बजायीं। हरिजनानंद ने कहा, "भाइयो, मैं बी० डी० ओ० साहब से अनुरोध करता हूँ कि वे टाईप करवाकर वीरता का एक-एक प्रमाण-पत्र हमारे इन बहादुर छात्रों को अर्पित करें। अभी न सही, दस-पंद्रह रोज बाद ही सही, यह काम तो बी० डी० ओ० साहब को करना होगा···"

"जरूर, जरूर! बाबाजी का आदेश है तो यह काम होगा ही। हमारे दिमाग में भी यह बात आयी थी लेकिन वक्त की कमी के कारण यह काम आज नहीं हो सका···महीना-भर के अंदर ही मैं यहाँ आऊंगा और इन वीर बालकों को प्रमाण-

पत्र मिलेंगे। हो सकता है, इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए मैं जिलाधीश महोदय को यहाँ ले आऊँ…"

इस पर 'हरिजनानंद' बोले, "अब ऐसा न हो कि आप, हुजूर, किसी मिनिस्टर-फिनिस्टर को इस काम के लिए तकलीफ दें।"

बाबा गरीबदास के इस कथन के ऊपर लोग भभककर हँस पड़े। बी० डी० ओ० का चेहरा गम्भीर हो गया। उसे मालूम था कि आज तक कभी कोई मंत्री इस विद्यालय के प्रांगण में नहीं बुलाया गया।

संयोगवश कपिल और माया में से कोई भी उस दिन यहाँ उपस्थित नहीं था। हाँ, प्रधान अध्यापक पाठकजी जरूर मुस्तैद थे।

अगले ही दिन ललित और सुरेश ने अपना-अपना लिफाफा विद्यालय के दफ्तर में जमा करवा दिया था। कैशियर ने लिफाफे खोलकर नोट गिन लिये। कुल मिलाकर 502 रुपये थे।

"यह तो तुम दोनों की अमानत रही। अब यह बताओ कि विद्यालय इस रकम को किस काम में लगाये, तुम क्या चाहोगे ?"

ललित ने कहा, "बैडमिंटन के लिए कोर्ट तैयार करवा दीजिए आप लोग… कुछ और लगे तो विद्यालय के मनोरंजन वाले फंड से लगा लीजिएगा…"

गाँव के बाहर, जहाँ इस वफादार कुत्ते को निरगुन मंडल ने दफनाया था, वहाँ चबूतरा बनाकर बरगद का एक पौधा जमा दिया गया। मंडल को इसके लिए बाबा गरीबदास ने तैयार किया था।

निरगुन को मालिक का वह कुत्ता बेहद प्यारा था। लोग उसे सोनिया कहकर पुकारते थे। ठाकुर साहेब अलसेसियन के इस पिल्ले को राँची से ले आये थे। अभी चार वर्ष पूरे नहीं हुए थे। दिन को बँधा रहता था, रात को खुला। रोटी, दूध और कच्चे गोश्त के अलावा और कुछ नहीं खाता था। जीने के नीचे, पुरानी दरी तहाकर रख दी गयी थी। वही सोनिया का विश्राम-स्थल था। एनामेल की गहरी-चौड़ी प्लेट में खाना खाता था, दूध पीता था, पानी पीता था।

निरगुन के पास, रात के समय वह बार-बार लेटा करता। दिन के वक्त बूढ़ा ही बीच-बीच में सोनिया की सुध लिया करता। दोनों में प्रगाढ़ अपनापा था।

हरिजनानन्द ने सोनिया का एक नाम रख लिया था—'सेनापति'। किसी ने बाबा से पूछा, "सेना तो है नहीं, फिर सेनापति कैसे हुआ ?" गरीबदास का सीधा-सा जवाब होता, "सोनिया के अन्दर सौ-डेढ़ सौ जवान हमेशा मौजूद रहते हैं। वे सारा दिन आराम करते हैं, रात के वक्त अपने सरदार की निगरानी में उनकी कूच-कवायद चलती है…" बाबा की ऐसी बातें सुनकर निरगुन मंडल हँसते-हँसते लोटपोट हो जाता। कहता, "गरीबदास जी, सोनिया के अन्दर फिर तो

परेड का मैदान भी होगा, तबेले भी होंगे ! अच्छी-खासी छावनी आबाद होगी सोनिया के कलेजे में !" ऐसी बातों पर सदानन्द सिंह के नौकर-चाकर वर्ग का ही नहीं, परिवार के लोगों का भी मनोरंजन होता है। तभी लोग कभी-कभार फुस-फुसाकर कहते, "बिना अफीम के ही हरिजनानंद पर नशा छाया रहता है।"

चाहे कुछ हो, सोनिया की समाधि पर बरगद का पौधा लगाना किसी को नहीं अखरा। माया ने तो निरगुन से यहाँ तक कहा कि इस बरगद के साथ-साथ तुम्हारा भी नाम हमेशा के लिए जुड़ा रहेगा।

कपिल, सदानन्द और गजाधर जैसे दो-तीन और भी धनी किसान थे। इन सबकी हमदर्दी निरगुन मंडल के प्रति थी। इन्होंने अपने बचपन से ही इस चरवाहे की सेवा और प्यार के पल चखे थे। निरगुन के प्रति कृतज्ञता से इनका रोम-रोम पुलकित हो उठता। सदानन्द और गजाधर के रिश्तेदार उसे अपने-अपने साथ ले चलने को उतावले थे। दिखाऊ तौर पर सदानन्द भले ही कह देते कि हाँ-हाँ, ले जाइए निरगुन को, हमारा काम कोई और देख लिया करेगा। मगर अन्दर-ही-अन्दर सदानन्द निश्चित थे कि निरगुन इस परिवार को छोड़कर किसी भी कीमत पर कहीं और नहीं जायेगा···

निरगुन की निगाहों में लालच का कोई भी मतलब नहीं था, बूढ़े की संपूर्ण आस्था इसी परिवार के प्रति समर्पित थी। आज से सत्तर वर्ष पहले, दस-ग्यारह की उम्र में वह नानी की उँगली पकड़कर सदानन्द की दादी के दरबार में आया था। उस जमाने में इनके यहाँ दो हाथी थे, चार घोड़े, घोड़ों की हिनहिनाहट और हाथियों की चिंघाड़ पहली बार कानों में तभी पड़ी थी·· अब कारों और जीपों की भड़भड़ाहट और हार्न की आवाजें कानों को नहीं सुहातीं। कपिल मालिक को इसलिए देवता मानता है कि दो वर्ष रखकर ट्रैक्टर को हटा दिया···कपिल मालिक की दलील निरगुन को बिल्कुल भा गयी कि खेती-बाड़ी के काम में रहन-सहन के आराम में मशीनों का इस्तेमाल कम-से-कम करना चाहिए···माया दीदी की भी यही राय है कि मशीनों को अपने काबू में रखना चाहिए। ऐसा नहीं कि हम खुद ही मशीनों के गुलाम बन जायें···तभी तो संत विनोबा यहाँ आकर पूरे सात दिन, सात रात रहे। कपिल मालिक को संत का आशीर्वाद फला है। दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ोतरी हुई है···मिनिस्टर और हाकिम लोग तरसते हैं कि कपिल मालिक उनको बुलौआ भेजें।

निरगुन मंडल अकेले में इसी तरह अपने-आपसे बातें करता रहता था। किसी की आहट पाते ही उसका स्वागत आलाप रुक जाता, माया की नौकरानी बासमती ने यह अफवाह उड़ा दी थी कि बुढ़वा घण्टों बड़बड़ाता रहता है···छोटकी ट्रांजिस्टर बिगड़ जाने पर जिस तरह गड़-गड़ गुड़-गुड़ करता रहता है, उसी तरह निरगुन मंडल की गड़बड़ाहट भी रात-दिन चालू रहती है। हमारी दीदी चाहें तो

इस बूढ़ी मशीन की मरम्मत हो सकती है।

लेकिन सयाने लोगों के पास-पास बैठे रहने पर निरगुन अच्छा-भला गम्भीर नजर आता था। निवेदिता विद्यालयवाले पाठकजी निरगुन की बड़ी तारीफ करते थे। उनका कहना था कि यदि सदानन्द बाबू इसे हमारे सुपुर्द कर दें तो हमारा भारी कल्याण हो। एक दिन पाठकजी ने अपनी मंडली में कहा, "जी नहीं, मैं तो निरगुन को कबीर का अवतार मानता हूँ। लोग उपहास की मुद्रा में मंडल की चर्चा करते हैं तो मेरे चित्त को बड़ा ही क्लेश पहुँचता है···"

परन्तु सदानन्द और उनके परिवारवाले किसी भी स्थिति में निरगुन मंडल को अपनी परिधि से अलग देखना नहीं चाहते थे।

पिछले निर्वाचनों की तरह मौजूदा निर्वाचन भी ढेर सारी अफवाहों की बाढ़ में डूबता-उतराता, वायुमंडल में आगे-आगे नजर आ रहा था। पड़ोस के ठाकुर कमलनयन सिंह पिछली लोकसभा में चुने गये थे। भविष्य में अपनी ही बिरादरी का एक युवक उनके प्रतिद्वंद्वी के नाते जोरों में उजागर हो गया था। भाई के दरबार में दिल्ली तक वह इमर्जेंसी के दिनों में ही पहुँच गया था। वोट बटने का अंदेशा समझदार लोगों को बुरी तरह परेशान कर रहा था।

विद्यालय के अध्यापकों और बड़े छात्रों में भी फुस-फुस जोर पकड़ रही थी। दो अध्यापकों ने प्रकृति-चिकित्सा और घरेलू झंझटों का बहाना बनाकर छह-छह सप्ताह की छुट्टियों के लिए आवेदन-पत्र दे दिये। दसवीं और ग्यारहवीं कक्षाओं के चार-पाँच विद्यार्थी छात्रावास से चुपचाप खिसक गये थे। एक सप्ताह के अन्दर उनके पत्र दफ्तर की टेबुल पर थे। किसी की बहन को कैंसर की शिकायत थी, वह उसके साथ बम्बई जाने वाला था, किसी के पिता को डाकुओं ने पिटाई की थी, वह पिता की चिकित्सा में व्यस्त हो गया है···किसी का बहनोई बहन के तीनों बच्चे छीनकर ले गया है, वह अकेली बहन को छोड़कर कैसे आये!

इन आवेदन-पत्रों को देखकर कपिल के माथे में दर्द हुआ, लेकिन माया देर तक हँसती रही।

"लो, अब सँभालो अपने आदर्श विद्यालय को! कदम-कदम पर तुम यही घुट्टी हमें पिलाते आये कि संस्था को पालिटिक्स की धूल से हर हालत में बचाए रखना है···हमेशा तुम्हारे होंठों पर गुरुदेव रवीन्द्र, महायोगी रमण महर्षि, रोम्या रोलाँ और आइंसटीन जैसे बड़े-बड़े नाम उभरते रहते हैं। क्या तुम अपनी इस मानस पुत्री, इस शिक्षण संस्था को सचमुच ही राजनीति से बचाकर रख पाये हो? आज तुम हमें अच्छी तरह खुलासा करके समझाओ कि इन आवेदन-पत्रों का क्या मतलब है? कागज की इन टुकड़ियों को गलाकर वह कौन-सा अचार तुम नयी पीढ़ी के लिए तैयार करने जा रहे हो···"

सुन्दर-सुमुख-गौरवर्ण कपिल आहिस्ता से उठे और अधिष्ठाता वाले कुटीर के आगे, फूलों की क्यारियों के मध्य सुर्खी बिछी पगडंडी पर चहल-कदमी करने लगे।

माया ने बाहर झाँककर कपिल की ओर देखा। मुस्कराकर बोली, "प्लीज, कपिल, मेरा यह मतलब नहीं था। मैं सदा से तुम्हारे सुख-दुख की साथिन रही हूँ। तुम्हारी परेशानियों में पिछले पच्चीस वर्षों से मेरा साझा रहा है। भविष्य में आजीवन हमारी यह साझेदारी अटूट रहेगी—मैं कॉफी के लिए कहके आयी हूँ। अभी हम कॉफी लेंगे फिर नदी किनारे बाँध पर घंटा-आधा घंटा घूमेंगे…"

जवाब में कपिल ने भी हल्की मुस्कराहट का पुट देकर माया की ओर देखा।

माया और कपिल सप्ताह में तीन दिन, शाम को विद्यालय में आते थे। मंगलवार, गुरुवार और शनिवार—इन तीन दिनों की संध्या के दो-दो घण्टे विद्यालय के लिए निश्चित थे। दूसरे दिनों में अध्यापक, कर्मचारी, व्यवस्थापक, चाहे जब कभी कपिल तक पहुँच सकते थे। प्रधानाध्यापक (पाठकजी) तो अक्सर जिला केन्द्र और प्रदेश की राजधानी तक यात्राओं में साथ देते थे।

प्रत्यक्ष राजनीति में विद्यालय के किसी भी व्यक्ति का शामिल होना यों तो वर्जित दीखता था, किन्तु इस सिलसिले मे कुछ तथ्य परस्पर विरोधी लगते थे।

जे० पी० वाले पिछले आन्दोलन में यहाँ से आठ-दस छात्र और दो-तीन अध्यापक चुपचाप खिसक गये थे। उस उथल-पुथल में जमकर उन्होंने भाग लिया था। पाँच छात्र और दो अध्यापक जेलों में रहे। उन्ही में से तीन मीसा बन्दी थे। दोनों अध्यापक आजकल विधान सभा के मेम्बर हैं। विद्यालय के अधिकारी अब खुलेआम उनकी प्रशंसा करते थे। कहा करते, "उन्होंने निवेदिता विद्यालय की कीर्ति/पताका को चन्द्रलोक में फहरा दिया है।"

पास-पड़ोस के लोग 'धसान' कहते थे। यह नदी बागमती की शाखा थी। दो धाराओं में विभक्त होकर सात-साठ ग्रामों को घेरती हुई आगे जाकर मिल गयी थी। बरसात के मौसम में ही भरी-पूरी नजर आती थी। इस वर्ष वर्षा में थोड़ा-थोड़ा पानी तलैया की शक्ल में चमक रहा था। जहाँ-तहाँ खेतिहरों ने पानी उलीचने के लिए बाँस खड़े कर रखे थे। दरभंगा से समस्तीपुर को जोड़ने वाली सड़क धसान के किनारे-किनारे आगे निकल गयी थी। तटवर्ती अंचलों को दो जगहों पर लाँघती हुई। गाँव से सड़क को जोड़नेवाला बाँध अमराइयों के बीच से आगे की तरफ बढ़ गया था। कही फालतू हवाखोरी के लिए न तो इच्छा थी और न इसके लिए उनके पास वक्त ही था। कभी-कभार अगर कोई आहिस्ता-आहिस्ता इस बाँध पर चलता दिखता तो उसे कमजोर और लगभग अपंग समझा जाता था या फिर हवाई खयालों में डूबा हुआ आधा पागल जानकर लोग उस पर हँस

देते।

लेकिन माया और कपिल महीने में एकाध बार जीप लेकर इधर निकल आते तो इसका कुछ और ही मतलब निकाला जाता। खेत में काम करते हुए और गाय-भैंस चराते हुए लोग अगले रोज अपने टोले-मुहल्ले में बतलाते, "कल शाम को कपिलेसर बाबू और उनकी जनाना बाँध पर बड़ी देर तक मटरगस्ती करते रहे···" दोनों के मन में जब बहुत-सी बातें जमा हो जाती हैं तो इसी तरह अकेले-अकेले टहलने-घूमने निकल आते हैं···

बातचीत में बार-बार सूखे का जिक्र आ रहा था। सुलोचना और विवेक की पढ़ाई के बारे मे भी कुछ बातें हुईं। देश के बारे में, समाज के बारे में थोड़े-बहुत विचार व्यक्त किये गये। विद्यालय के बारे में जान-बूझकर दोनों ने चर्चा नहीं की···

कपिल ने कहा, "इस बार पटना गये तो श्याम बेनेगल की एक अच्छी फिल्म देखने का सुयोग मिल गया। डक्यूमेंट्री किस्म की फिल्म है। कहते हैं, अधूरी है। आधा हिस्सा आगे कुछ वर्षों में दिखलायेंगे। अमूल वाला प्रोजेक्ट शुरू करने में जो दिक्कतें सामने आयीं, उन्हीं को आधार बनाकर फिल्म तैयार की गयी है। वहाँ के दूध-उत्पादक किसानों ने एक-एक रुपया चन्दा करके पाँच लाख रुपये जुटाये थे। उसी रकम से श्याम बेनेगल ने इस फिल्म को तैयार किया। पटने में लगभग दो सप्ताह चली थी। मैं अपने एक मित्र के साथ रविवार की मैटिनी शो में जा बैठा था। भारी भीड़ थी उस रोज···मुझे बार-बार तुम्हारी याद आयी माया!"

माया ने इलायची छीलकर तीन-चार दाने कपिल के मुँह में डाले और खुद अपने मुँह में भी तीन-चार दाने डाल लिये। फिर बोली, "सुना है, कोई कुरियन साहब हैं। केरल के रहने वाले हैं। ईसाई सज्जन। आपने पिछले तीस वर्षों से अपने को अमूल वाले प्रोजेक्ट के लिए समर्पित कर रखा है। डेरी फार्मिंग का प्रशिक्षण लेकर अमेरिका से लौटे थे और तभी से गुजरात के दूध-उत्पादक किसानों के बीच बस गये···"

अन्त में, वापसी के लिए जीप की ओर बढ़ते हुए दोनों ने तय किया कि होली के बाद अपन अमूल वालों का करिश्मा देखने जायेंगे।

जीप स्टार्ट हुई तो कपिल स्वागत शैली में बोले, "कुरियन ने जरूर ही चालू किस्म की राजनीति से अपने को अलग रखा होगा।"

माया चुपचाप ड्राइव कर रही थी। निगाहें सीधे सड़क की तरफ थीं··· कपिल भी चुपचाप सामने देख रहे थे।

घूम-घामकर वापस आये तो दो मित्र प्रतीक्षा में बैठे दिखायी पड़े।

"अभी आयी···" माया जीप लेकर गैरेज की दिशा में मुड़ गयी। कपिल ने कहा, "रमेश, कई दिनों से तुम्हारी याद आ रही थी। अच्छा हुआ कि तुम आ

गये…" दूसरे आगन्तुक की ओर देखकर कपिल ने जानना चाहा, "इनको शायद मैंने तुम्हारे घर पर गत वर्ष देखा था। नाम नहीं याद आ रहा है…"

"मोतिहारी के देहात में अध्यापक हैं। गणित में एम० ए० किया था… और," झुककर कान में कहा, "तुम्हारी सिंह-बिरादरी के हैं।" फिर तीनों ने ठहाके लगाये। कपिल ने कहा, "सिंह-बिरादरी का होना क्या कोई अभिशाप है किसी के लिए ? यह क्या अपने वश की बात है कि हम किसी खास जगह कुल-कमल होकर पैदा हों ?"

बासमती प्लेट में बिस्कुट और मूँग की दालमोठ लाकर सामने रख गयी। शीशे के तीन गिलास, स्टेनलेस स्टील का पानी भरा जग। दो मिनट बाद भरी हुई चायदानी और कप प्लेट ले आयी। गिलासों में पानी भरा। कपिल ने छोटा टेबल खुद ही उठकर सामने ले लिया था। बासमती बोली, "सहजन के फूलों वाले पकौड़े तल रही है। दीदी ने कहा है, दस मिनट बाद आयेगी…"

रमेश ने कहा, "क्या हर्ज है, तब तक चाय का एक दौर चले…"

"हाँ, तुम तो पुराने चाय खोर हो !"

"यहाँ भला और क्या मिलेगा ! ठाकुर कपिलेश्वर सिंह पर तो प्रयोगों के दौरे आते रहते हैं…नहीं, मैं झूठ कहता हूँ !"

कपिल को हँसी आ गयी। दो बिस्कुट प्लेट से उठाकर उन्होंने रमेश को थमाये और दो अध्यापक महोदय को। हँसते-हँसते बोले, "प्रयोगों के दौरे क्या अकेले मुझ पर ही आते हैं ! रमेश, सच बतलाओ, तुम खुद को प्रयोगों से अछूता मानते हो ?"

अध्यापक ने कपिल का पक्ष लिया। कहा, "एक्सपेरिमेंट्स न चलें तो सृष्टि का विकास कैसे होगा ! रमेश बाबू, आप पुराने पत्रकार हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में जाने कितने प्रयोग किये होंगे…"

थोड़ी देर बाद बासमती ने आकर पूछा, "दीदी ने कहा है, अच्छी सूजी आयी हुई है, रमेश बाबू को पसन्द हो तो मद्रासी उपमा तैयार करूँ…हलवा भी इसका अच्छा ही रहेगा…" रमेश ने अध्यापक महोदय से पूछा, "आपके लिए तो मद्रासी उपमा नयी चीज होगी, शायद हलुवा ही आपको पसन्द आये…"

"अरे बाबा, जो भी लाना हो जल्दी लाओ। ये दोनों सज्जन जरा देर बाद ही वापस जाने की हड़बड़ी में होंगे…"

चाय का पहला दौर खत्म हुआ तो हलवा और पकौड़े साथ ही आ गये। रमेश ने मुस्कराकर कहा, "हाँ भाई, अपन तो ऐसी बिरादरी में पैदा हुए, जहाँ आदि और अन्त मिठाइयों से ही होता है। मद्रासी उपमा फिर कभी आकर चख लेंगे।"

ऊपर-ऊपर की हल्की-फुल्की बातें होती रहीं। दिल्ली, लखनऊ, हरियाणा,

कर्नाटक, मध्यप्रदेश और आसाम-बंगाल की बातें छिटपुट रूप में चलती रहीं। कपिल लेकिन अन्दर-अन्दर अच्छी तरह समझ रहे थे कि गणित के अध्यापक को लेकर सिफारिश की कोई बात होगी। रमेश कपिल के पुराने साथी थे। मिलने पर, कैसी भी भीड़-भाड़ हो, दस मिनट अकेले में फुसफुसाकर दिल की बातें अवश्य कर लेंगे। अन्त में माया प्रकट हुई। बड़ी-बड़ी आँखें नचाकर बोली, "माफ कीजिये रमेश बाबू, अब अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं भी आधा कप चाय ले लूँ..."

"वाह ! यह भी खूब रही ! कसूर तो आपका बहुत बड़ा है ! इतनी देर से हमें यहाँ बैठा रखा है और खुद अन्दर अग्निदेवता की उपासना में बेफिक्र होकर बैठ गयीं !"

दूसरी बार चाय आ चुकी थी। बागमती एक प्याला और रख गयी थी। रमेश ने अपने हाथों से माया के लिए चाय निकाली।

"रमेश, यह तुम क्या कर रहे हो ? उसको पकौड़े नहीं लेने दोगे ?" इस पर तीनों फिर हँसने लगे और माया ने सचमुच एक पकौड़ा उठा लिया।

चाय का अपना प्याला लेकर माया बैठकखाने के अन्दर से 'दिनमान' और 'सारिका' उठा लायी। यह संकेत था कि रमेश और कपिल दस-पन्द्रह मिनट के लिए अन्दर बैठेंगे और अध्यापक महोदय अपना ज्ञान वर्द्धन करेंगे। अँधेरा उतर आया था। यहाँ से निकलने पर गाँव के बाहर नुक्कड़ पर रिक्शा मिलने वाला था। बाबा गरीबदास थाने के दारोगा को गालियाँ देते हुए कुटी से निकले और दो रोज बाद उसी दारोगा को गालियाँ देते हुए उन्होंने कुटी में प्रवेश किया।

पीछे-पीछे उनके लिए खाना लेकर वह बालक भी आता दिखायी पड़ा। पास आया तो बाबाजी ने कहा, "मुझे भूख नहीं है ! तू खा ले या वापस ले जा !"

निवेदिता विद्यालय का एक कर्मचारी साइकिल से पहुँचा। प्रणाम करने के बाद उसने कहा, "कपिल बाबू ने आपको याद किया है। मैं तीसरी बार आपकी खोज में आया हूँ। पता चला, आप अभी लौटने वाले हैं। कपिल बाबू ने कहा है, बाबाजी थके होंगे, कल सबेरे आकर मिलें..."

गरीबदास ने सिर हिलाकर कहा, "सबेरे तो नहीं, दोपहर तक आ सकूँगा।"

थोड़ी देर बाद भगत लछमनदास मिलने आया। सन्त रैदास की प्रतिमा को भगत ने भक्तिभाव से प्रणाम किया। चबूतरे की तीन परिक्रमाएँ पूरी करके कुटी के पास आया। बाबाजी ने माचिस की डिबिया और दो अगरबत्तियाँ थमा-कर भगत से कहा, "कई दिनों से यहाँ धूपबत्ती नहीं जली है। पूजा का सामान कुल्लम चुक गया था। बाजार से ले आये हैं..."

प्रतिमा के सामने बोरी बिछाकर तीनों बैठकर गाने लगे—

"प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी
जाकी वास अंग-अंग माँ समानी
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती
जाकी जोत बरै दिन राती
... ..."

सन्त रैदास के इन पदों को भगत बार-बार दुहरा रहे थे। गरीबदास और बालक साथ दे रहे थे। अगरबत्तियों की खुशबू फैल रही थी...बालक कुटी के अन्दर से खंजरी ले आया। भगत ने बालक के हाथ से खंजरी ले ली और कबीर का पद गाने लगा—

"तेरे दया धरम नहिं मन में
मुखड़ा क्या देखे दरपन में !
... ..."

पद की कड़ियों को लछमन दास के साथ-साथ बाकी दोनों भी दुहरा रहे थे। बूढ़े का गला, अधेड़ का गला और बालक का गला—तीन कंठों के स्वर मिलकर अखर नहीं रहे थे। खंजरी में घुंघरू के महीन दाने फिट थे, कुल मिलाकर भजन का भाव-भीना माहौल उभरने लगा था।

दस मिनट बाद गरीबदास उठ खड़े हुए। गौर से लछमन दास के चेहरे को देखा। आँखों से आँसू बह रहे थे। गरीबदास ने सोचा—यह बेबसी के आँसू हैं... हजार...हजार वर्षों से अछूतों की समूची जातियाँ इसी तरह आँसू बहाती आ रही हैं। ये लाचारी के आँसू हैं, दीन-हीन भावों के आँसू हैं...

सोचते-सोचते गरीबदास जी वहीं आँगन में चहलकदमी करते रहे। जरा देर बाद बालक भी प्रतिमा के सामने से उठकर कुटी की तरफ आ गया। उठते समय बालक ने हल्के से भगत का कंधा छू लिया था। यह इशारा था कि लछमन दास जी भी भजन खत्म करें। लेकिन भगत जी थोड़ी देर जमे रहे। भजन चलता रहा, खंजरी ढपली बजती रही।

बालक ने लछमन दास के कान में कहा, "बाबाजी ने खाना नहीं खाया है। होंठ सूखे हुए हैं। चेहरा उदास है। लगता है, दिन में नहीं खाया होगा। मैं कहीं से दूध ले आता हूँ। दूध तो इन्हें पिला देना चाहिए। आप कहिएगा, जरूर मान जायेंगे। कई दिनों के बाद मिले हैं। आप बातचीत कीजिए। मैं वापस लौटूं, आप तभी यहाँ से जाइयेगा।"

बच्चे का यह कहना भगत लछमन दास को बहुत अच्छा लगा। "मैं आया, बाबाजी खाली पेट क्यों सोयेंगे। आखिर, हम लोग हैं किसलिए ?"

प्रतिमा के सामने से उठाकर बोरी बीच आँगन में बिछा दी गयी। बाबा और भगत दोनों बैठ गये।

भगतजी हथेली पर सुर्ती मलने लगे। गरीबदास ने कहा, "संक्षेप में गाँव का हाल-समाचार बताइये···"

भगत ने दबी जुबान में कहना शुरू किया, "एक-एक परानी के अन्दर डर समा गया है। दहशत के मारे लोग गूँगे हो गये हैं। कोई किसी से नजर नहीं मिलाता···उधर वो राक्षस दनदनाता घूम रहा है···हाल-समाचार क्या पूछते हैं बाबाजी! चमारों की समूची बस्ती भागकर कहाँ जायेगी! पचास पलिवाड़ हैं न?"

बाबा गरीबदास चुपचाप सुन रहे थे। एक शब्द भी उनके मुँह से नहीं निकला। जरा देर बाद उठकर फिर आँगन में चहलकदमी करने लगे···लछमन दास सुर्ती फाँक चुका था। उसे बालक ने कहा था बैठने के लिए। मगर भगत को लगा कि बाबा गरीबदास रात में पानी पी लें तो पी लें। दूध नहीं पियेंगे, उनसे पिया ही नहीं जायेगा···

"सबेरे-सबेरे आऊँगा," कहकर लछमन दास पगडंडी की ओर बढ़ गये।

अगहन की पूर्णिमा के चार दिन बाकी थे।

चाँदनी खिली हुई थी। लगता था, पन्द्रह दिन बाद रात्रि का आकाश स्वच्छ नहीं होता। ठंडक बढ़ती जायेगी। कोहरे का झीना आवरण सन्नाटे को, निशीथ की घड़ियों में अपनी लपेट में भली भाँति समेट लिया करेगा। तब सामने वाला पीपल साफ नहीं दिखायी पड़ेगा। अब की तरह पीपल की डालों को कोई गिन नहीं पायेगा। पूरे वृक्ष का आयतन मोटे तौर पर ही तब आभासित होगा···पीपल के इर्द-दिर्द खेतों में सरसों की हरी फसल तब घनी धुन्ध में डूबी होगी। और आगे वाली अमराइयाँ घने काले रंगों की चिकनी लीपा-पोती जैसी लगा करेंगी···

बाबा गरीबदास की चहल-कदमी थमी नहीं थी। अपनी परछाईं से ही बातें करने का जी कर रहा था।

गरीबदास ठमककर खड़े हो गये, हाथ उठाकर अपनी परछाईं से बोले, "तू उसका क्या कर लेगा? मालिक लोग चमारों की बस्ती को फूक देंगे, सौ-पचास इनसानों को जलाकर खाक कर देंगे···तो भी मालिक लोगों का तू क्या बिगाड़ लेगा? थाने का दारोगा उन्हीं की बिरादरी का है, यह खुलेआम उनकी तरफ-दारी करता चलेगा। एस० पी० कमजोर दिलवाला हरिजन है, उसके ऊपर-नीचे ज्यादातर बड़े अधिकारी ऊँची जातियों के ही लोग जमे हुए हैं···यह बेचारा तेरे लिए क्या हलाक होगा! तू ठहरा बापूजी का प्यारा हरिजन बालक···तेरे लिए स्वर्ग का फाटक खुला हुआ है। नियम-निष्ठा से रहेगा तो तेरे को इसी जनम में सन्त रैदास की तरह लोग पूजेंगे···तब यही मालिक लोग तेरी तारीफ अखबारों में छपवाया करेंगे। तब तेरी यह कुटिया छतोंवाली, कई मंजिलों की बिल्डिंग की तरह अँधेरी रात में भी दूर से चमका करेगी। तेरे महर्षि की यह प्रतिमा तब

संगमरमर की बनी होगी। इस तरह ढाई ईंटों वाले चबूतरे को बाँस के छोटे बाड़े में घेर-घारकर महर्षि को नहीं रखा जायेगा···अच्छा-खासा मन्दिर खड़ा हो जायेगा। तब हरिजन मंत्री कारों पर लदकर तुझसे परामर्श करने आयेंगे बेटा!"

बाबा को इस बात पर हँसी आयी। ठहाके लगाकर खुशी में चीखने का जी करने लगा···

हल्कापन महसूस हुआ तो चहल-कदमी में गति आ गयी। एक-एक पग के साथ मन बँधा नहीं रह गया। लगा कि पंख निकल आये हैं, लगा कि मन शरीर का साथ छोड़कर फुर्र से बाहर उड़ गया है, जैसे चमगादड़ छप्परों वाले पुराने घर के अन्दर से फुर्र से निकलकर उड़ जाते हैं।

बाबा जी ने मन में अपने पंछी को ढील दे दी। बिल्कुल खुला छोड़ दिया उसे।

कुटिया के तंग बरामदे में बोरी बिछी थी। बालक सरौता और सुपारी वाला बटुआ अन्दर से निकालकर बोरी पर रख गया था। यह छोटा-सा रंगीन और नफीस बटुआ बाबाजी चित्रकूट से ले आये थे। आज से दो वर्ष पहले रामायण मेला और जाति तोड़ो सम्मेलन के सिलसिले में उधर का चक्कर लगा था। बालक को अच्छी तरह मालूम था कि बाबा कभी-कभी सारी रात बोरी पर बैठकर सबेरा कर लेते हैं···बीच-बीच में कतर-कतरकर सुपारी चबाना और जुगाली करते जाना इस रतजगे में बाबाजी के लिए भारी सहारा होता है···हाँ, दोनों घड़ों में पानी भरा होना चाहिए।

गरीबदास पालथी मारकर दीवार के सहारे बैठ गये। तटस्थ भाव से मन के पंछी की उड़ान देखने लगे। सरौता और सुपारी बटुए के अन्दर से मानो अपने-आप निकल आये, अपने-आप सुपारी के कतरे होंठों के अन्दर पहुँचकर जीभ को कसैला जायका महसूस कराने लगे···

अपने-आपको सम्बोधित करके गरीबदास ने बोलना शुरू किया, "बेटा, हिम्मत से काम ले! बेधड़क आगे की तरफ कदम बढ़ा!···ऐसा नहीं करेगा तो दुनिया तेरा कचूमर निकाल देगी···हरे धनिये की तरह पीसकर लोग तुझे चाट जायेंगे! सौ-पचास जीवों का भला करने में तुझे थोड़े-बहुत उलटे-सीधे काम करने पड़ेंगे···सिर्फ फासला तय करना, सिर्फ चलते जाना ही काफी नहीं होगा। नये सिरे से तुझे पगडंडियाँ बनानी होंगी···नयी राहों के निर्माण की कोशिश में, हो सकता है, तेरे पंख बार-बार झुलस जायें, तू बुरी तरह घायल हो जाये, नयी राहें बनाने के सिलसिले में, यह सब झेलना होगा तुझे···!"

बाबा को बीच में दो बार पानी पीना पड़ा।

आज पहली बार उन्हें लगा कि जीव को जीव का सहारा हर हालत में

चाहिए। अकेले में इनसान की अकल को जंग लग जाती है। अपना सूनापन पहले अपने को ही खस्ता बना देता है···इसी से लोग तोता पालते हैं, गिलहरी पालते हैं, बन्दर के बच्चे को लाड़-प्यार से लादे फिरते हैं। कंधों पर कुत्ता, घोड़ा, गाय, बकरी, नेवला, सांप—क्या नहीं पालते हैं लोग ! अपने अन्दर भरोसा और ताजगी भरने के लिए इनसान आप ही अकेला काफी नहीं होता, हर हालत में उसे साथी चाहिए···

गरीबदास ने तय कर लिया, वह इस बार महीना-पन्द्रह रोज के अन्दर ही कुत्ते का पिल्ला कहीं से ले आयेंगे। यह पिल्ला इनसान की बोली भले नहीं बोलेगा, लेकिन दिल के मतलब को बखूबी समझेगा···धोखा नहीं देगा—साथ निभाने में जान की बाजी लगा देगा, परेशानी की घड़ियों में चुपचाप दर्द बटायेगा···

नये सिरे से दस-बीस बालकों-बालिकाओं की भर्ती करके एक आश्रम भी चालू किया जा सकता है—बाबा ने सोचा—लेकिन, आश्रम चलाने के लिए शुरू में ही दस-बीस हजार रुपये चाहिए, दस-बीस एकड़ जमीन चाहिए, आश्रम की बुनियाद तभी पक्की होगी जब मालिक लोगों में से दो-एक प्रभुओं का जमकर सहारा लिया जायेगा···गरीबदास, तू जिस मालिक का सहारा लेगा, उसी के हुकुम चलेंगे न तेरे आश्रम में। जो मिनिस्टर, जो बड़ा हाकिम तेरे आश्रम को दस-बीस हजार की सरकारी मदद दिलवायेगा, वह क्या यों ही तेरे को खुला छोड़ देगा ? फिर एक दूसरा झंझट भी तो लगा रहेगा···वह झंझट, वह झमेला ऐसा होता है कि बड़े-बड़े आश्रमों की मटियामेट हो जाती है—जिन बालकों और बालिकाओं को तू उनके बचपन में ही अपने आश्रम में घेर-घारकर रखना शुरू करेगा, उनके माँ-बाप, उनके रिश्तेदार, उनके पुराने मालिक बीच-बीच में उन्हें आश्रम से खिसकाते रहेंगे। तब तू क्या करेगा ? तेरे आश्रम का भट्ठा नहीं बैठ जायेगा ! धीरे-धीरे सिखाया-पढ़ाया हुआ तोता जब पिंजड़े से उड़ जाता है तो दिल को भारी कचोट नहीं पहुँचेगी ? गांधी जी को जिन्दगी में चार-चार बार अपने आश्रमों का अन्त देखना पड़ा था। अंग्रेज सरकार भी बापू के पीछे पड़ी रहती थी। कभी जेलों में ढुका लेती थी, कभी बड़े लाट की कोठी में उनके फलाहार का इन्तजाम करती थी···अपने समाज के दकियानूस लोग बापूजी को पसन्द नहीं करते थे—सेठों में से कुछ तो जरूर ऐसे थे जो कि आश्रम को नये सिरे से स्थापित करने में उनकी मदद के लिए हमेशा आगे-आगे रहे···

मन का पंछी बाहर इधर-उधर के चक्कर मारकर पड़ोस वापस आ गया। अब वह निवेदिता विद्यालय के अधिष्ठाता वाले कॉटेज की मुँडेर पर आकर बैठ गया, अपने हरे परों को अपनी लाल चोंच से खुजलाता रहा···बड़ी देर तक परों को सहलाने-खुजलाने की यह लीला दिखती रही, यहाँ तक कि गरीबदास अपने-आप में मुस्कराने लगे···मन का पंछी कपिल बाबू के कंधे पर फुदकता नजर आया

तो बाबा ने सोचा—बालक कटोरे में ढककर दूध रख गया है···

डब्बे के अन्दर चबेना भी था, अलग छोटी हण्डिया में गुड़ के डले भी थे। बाबा को आँतों के अन्दर कुलबुलाहट महसूस हुई। वह डलिया में से चना और गुड़ निकाल लाये, दूध का कटोरा पास में रख लिया।

दाने चबाते-चबाते गरीबदास इस नतीजे पर पहुँचे कि दुपहर नहीं, अभी सबेरे-सबेरे वह कपिल बाबू से मिलने जाएँगे।

बात भी सच थी। दोनों को इस वक्त एक-दूसरे का सहारा चाहिए था। दोनों एक-दूसरे के लिए अनिवार्य थे···

रात्रि शेष की ठण्डी बयार हेमन्त ऋतु की प्रकृति में अधिक से अधिक तरावट घोल रही थी। उस सन्नाटे में 'जानकी एक्सप्रेस' के भारी-भरकम इंजन का भोंपू साफ-साफ सुनाई दे गया।

गरीबदास जी दूध पीकर लेटे तो जरा-सी झपकी आ गयी।

इन ग्रामांचलों में इस बार भी मुख्य फसल—धान की खेती मारी गयी थी। सूखे का प्रकोप यों तो समूचे राज्य को झेलना पड़ रहा था लेकिन हरिनगर के मध्यम और बड़े किसान अपने खेतों की सिंचाई के सिलसिले में भाग्यवान निकले। उनका पम्पिंग सिस्टम बिजली के अभाव का शिकार नहीं हुआ था। आसमानी अमृत वर्षा न सही, धरती के अन्दर का संजीवन रस, उन्हें काफी मात्रा में मिलता रहा। शत-प्रतिशत तो नहीं, सत्तर प्रतिशत अगहनी फसल यहाँ हासिल होने वाली थी।

यह सब कपिल बाबू और ठाकुर सदानन्द सिंह जैसे जागरूक भू-स्वामियों की मुस्तैदी का नतीजा था···तरुणाई के दिनों में इन दोनों की माध्यमिक शिक्षा काशी-विद्यापीठ के अन्दर हुई थी। माया को बड़ौदा और वनस्थली में रहकर नौ वर्षों तक अपना आरम्भिक जीवन ढालने का सु-अवसर मिला था। गाँव के दो युवक कृषि विज्ञान और पशु-पालन में स्नातक-कोर्स पूरा करके गत वर्ष पन्तनगर से लौटे थे, उन्होंने ग्राम की अपनी सीमा के अन्दर ही अपना-अपना कर्मक्षेत्र विकसित करने का संकल्प ले लिया था—अपने अभिभावकों से उन्हें पूरा सहयोग मिल रहा था। उनको कपिल और सदानन्द की सिफारिश पर एक-एक लाख का सरकारी लोन मिलने वाला था।

कपिल और सदानन्द पिछले तीन-चार वर्षों में पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, आन्ध्र जैसे विकासशील राज्यों के कई चक्कर लगा चुके थे। माया और दीपा भी बीच-बीच में उनके साथ घूम-फिर आयी थीं। कन्या-गुरुकुल (देहरादून) में पढ़ी थीं। माँ के प्रति गाढ़ी ममता के कारण, उसने दूसरी शादी नहीं की। स्त्री-शिक्षा और समाज-संस्कार के कामों में अपनी दिलचस्पी के लिए इन दिनों बड़ी लोकप्रिय हो रही थी। एक बार

पूर्वी जर्मनी, दो बार बलगारिया और एक बार क्यूबा देखने का मौका मिल चुका है दीपा सिंह को। अपने ग्रामांचलों के भावी विकास की परिकल्पनाएँ इन चारों के आपसी विचार-विनिमय का खास टापिक थीं···

माँ का बन्धन न होता तो दीपा निवेदिता विद्यालय की प्रधान अध्यापिका रहती। माया से उसका गहरा लगाव था। महीने में कम-से-कम दो बार तो वह हरिनगर जरूर आ धमकती। दीपा के आग्रह के चलते ही माया ने महिला-समिति की जिला-शाखा का अध्यक्ष होना स्वीकार किया था—यह दीपा ही थी जिसकी बदौलत पाठक-सरीखे सुयोग्य एवं सु-व्यवस्थित सज्जन इस विद्यालय को हेडमास्टर के तौर पर हासिल हुए। वह माया की तरह ही अपने को इन छात्र-छात्राओं की 'ट्रू मदर' मानती थी···

देश के पूर्वी राज्यों में पैदा हुई होती तो माया का नाम श्यामली होता, बड़ी-बड़ी आँखें, पतली नाक, पतले होंठ, लम्बोतरा चेहरा। बड़े बालों का सादा जूड़ा, मुखमण्डल के सौन्दर्य को सन्तुलित करता था। लम्बी-छरहरी आकृति समूचे बदन को, देखने वालों की नजरों में बार-बार रेखांकित-सी किये दे रही थी···दीपा का गठन माया की तुलना में, बिल्कुल ही और किस्म का था। आँखें तो बड़ी-बड़ी अवश्य थीं, लेकिन चेहरा गोल-मटोल था। नाटे कद के दुहरे बदन पर छोटी-सी गर्दन खूब फबती थी।

पाठकजी ने गणित के उन अध्यापक महोदय को अपने विद्यालय में अस्थायी तौर पर बहाल कर लिया था। इसलिए नहीं कि वह सिंह बिरादरी का था, न ही इसलिए कि कपिल बाबू के पुराने मित्र रमेश जी ने उसकी सिफारिश की थी। बहाल उसे पाठकजी ने इसलिए किया कि वह व्यक्ति सचमुच ही गणित पढ़ाने की क्षमताओं से लैस था। उसकी हिन्दी और अंग्रेजी भी अच्छी थी। मोतिहारी के माध्यमिक स्कूल से यह महोदय इसीलिए ऊब गये थे कि वहाँ आवास का प्रबन्ध नहीं था और छोटी जातियों के नव-धनिक वर्गों की गुटबन्दी का वहाँ बहुत अड्डा था। यहाँ निवेदिता विद्यालय के अन्दर और भी ढेर-सारी सुविधाएँ थी। छात्र-छात्राएँ अनुशासित एवं स्वस्थ-प्रसन्न थे। स्टाफ में अन्दर-बाहर पारिवारिक किस्म का भाईचारा था। उपयोगी वस्तुओं का टोटा नहीं था। खाद्य पदार्थों की शुद्धता और ताजगी की गारन्टी थी। सारा वातावरण अनूठा प्रतीत होता था। साथ-साथ रहने पर—नुक्ता-चीनी के लायक छिट-पुट बातें यहाँ भी माहौल में कभी-कभार तैर आती थीं···

पाठकजी साँवली सूरत वाली थुल-थुल काया के मालिक थे। गोल गालों, मझोली आँखों, छोटे कानों वाला भारी-सा चेहरा था। हँसने लगते तो गालों में गड्ढा उभर आता। आवाज भरी-भरी-सी लेकिन मिठास में घुली-घुली-सी थी। उनकी बातें सुनते रहना कानों को बड़ा ही भला लगता था। पाठकजी को क्रोध

की मुद्रा में शायद कभी किसी ने देखा हो। विद्यालय का एक-एक व्यक्ति उनको पिता की गहरी श्रद्धा और ममता से देखता था। विद्यालय के विकास की दिशा में कपिल बाबू जो भी प्रयोग कर रहे थे, उन सभी के लिए पाठकजी का आन्तरिक सहयोग एवं समर्थन उन्हें प्राप्त था।

आपका पूरा नाम था श्री नीलाम्बर पाठक। एम० एस० सी० करने के बाद अनेक गैर-सरकारी एवं सरकारी उच्च माध्यमिक स्कूलों में वर्षों तक अध्यापन-कार्य किया था। दीपा के पिता अपने राज्य में पब्लिक-सर्विस कमीशन के सुयोग्यतम सदस्य थे। पाठकजी उन्हें अंग्रेज की भाँति मानते रहे। उन्हीं के जोर डालने पर पाठकजी जिला स्कूल का उप-प्राचार्य पद छोड़कर निवेदिता विद्यालय आ गये थे।

भगत लछमनदास धूप में बोरी बिछाकर लेटा हुआ था।

मुनिया का छोटा देवर भगत की कमर में तेल की मालिश कर रहा था। पास में प्लास्टिक की पीली कटोरी में सरसों का तेल था। भगत की आँखें मुँदी हुई थीं।

गठिया की हल्की शिकायत थी। जाड़े के मौसम में थोड़ा-बहुत परेशान रहते थे भगत। यह कोई अधिक दुखदाई बीमारी नहीं थी, भगत के खुद के शब्दों में 'यह एक किस्म का सुख-रोग था।' उनका कहना था कि बुढ़ापे में कोई-न-कोई हल्की बीमारी लगी रहे तो अच्छा ही रहता है। लोग बाग पूछने आते हैं। घर वालों को सेवा के मौके मिलते रहते हैं। दवादारू चाटने-पीने मे मिजाज खुर-खुरा बना रहता है···

पिछली रात में जमकर ओस पड़ी थी। सबेरे पहर-भर कोहरे के कारण सूरज नहीं नजर आया। अभी दुपहर में धूप खिली थी। धूप में लेटे-लेटे लछमन दास को आराम महसूस हो रहा था। झपकियाँ आ रही थीं। उसने करवट बदलकर कहा, "रहने दो सूरज, बस करो। जरा देर सोने दो···"

सूरज तेल की कटोरी लेकर चला गया।

फसल उगाहने के दिन थे। पिछले चार-पाँच दिनों से पढ़ाई बन्द थी। शाला-वाला बरामदा सुबह और रात को देर तक बैठकबाजी का अखाड़ा बन जाता था। अलाव के इर्द-गिर्द बुजुर्ग अड्डा जमाते थे। कल पता चला था कि ठाकुर गजाधर सिंह का वह भांजा, चतुरभुज, चार-पाँच दिनों से थाने की हाजत मे बन्द था। अब दो-एक दिन के अन्दर पहुँचा देंगे। जमानत पर उसके छूटने की उम्मीद नहीं है।

ठाकुर की तरफ से किसी ने गाँव में यह खबर फैला दी है कि चतुरभुज अपनी दादी को लेकर प्रयागराज गया हुआ है, अभी महीना भर नहीं लौटेगा···

भगत को इन बातों की असल जानकारी बाबा गरीबदास से मिल सकती थी।

लेकिन, बाबाजी पिछले चार दिनों से बस्ती से बाहर थे। आज शाम तक उनके लौटने की बात थी। गरीबदास की साँवली सूरत और छोटी आँखों वाला चेहरा उसे इस वक्त बार-बार याद आ रहा था···

भगत को नींद आ गयी थी। बालक आकर दो बार झाँक गया था।

मुनिया की बकरी के दोनों बच्चे उछल-कूद करते आँगन में खेल रहे थे। हल्का कालापन और हल्की सफेदी में चमकते हुए ये चितकबरे बच्चे बेहद खूबसूरत लगते थे। आँगन के किनारे-किनारे उगी हुई हरी दूबों को टूँगने का मानो अभिनय कर रहे थे। अलग-अलग छलाँग लगाते, फिर आपस में गुँथ जाते।

खिलवाड़ का उनका यह सिलसिला देर तक चलता रहा। बकरी अन्दर, घरों वाले आँगन में बँधी थी, बीच-बीच में इन बच्चों की कच्ची मिमियाहट के जवाब में में-में कर उठती।

बकरी का एक बच्चा जोरों से छलाँग लगाकर भगत की पीठ को लाँघ गया। उसकी पिछली टाँगों की हलकी छुअन से भगत की आँखें खुल गयीं···

जरा देर बाद शाला की अध्यापिका फुलेसरी सामने नजर आयी। उसके हाथ में अखबार था। पास आयी तो लछमन दास ने देखा—खुशी के मारे फुलेसरी का मुखड़ा दमक रहा है। आँखों में कई गुनी अधिक चमक आ गयी है। साँवली सूरत वाली वह लड़की भगत को इतनी खूबसूरत कभी नहीं लगी थी···

भगत ने कहा, "बिटिया बड़ी खुश नजर आ रही है। क्या हुआ है तेरे को आज? लगता है, तेरे नाम का लाटरी टिकट वाला नम्बर इस अखबार में छपा है···"

"हाँ, नाना! आप सच कहते हैं, यह लाटरी जीतने की ही खबर है···अकेली मेरी ही जीत नहीं हुई है, हमारी समूची बस्ती के सभी लोगों के नाम वाले नम्बर छपे हैं इसमें···"

भगत लछमन दास फुलेसरी की खुशी में खुलकर अपनी खुशी जाहिर नहीं कर पा रहे थे। उन्हें लाटरी जीतने वाली यह बात अनबूझ पहेली-सी लग रही थी। वह समझ नहीं पा रहे थे कि ऐसी क्या खबर आयी है अखबार में जिससे फुलेसरी का चेहरा इतना अधिक दमक रहा है···

भगत सँभलकर उठ बैठे। बोले, "बहन, किसी को आवाज दो, प्यास लगी है···"

बालक फुलेसरी के पीछे आकर खडा हो गया था। वह दौड़कर पानी का लोटा ले आया। भगत आधा लोटा पानी गट-गट करके पी चुके तो कहा, "अब तू संक्षेप में बतला! क्या छपा है अखबार में?"

फुलेसरी एक ओर बोरी पर लछमनदास के सामने बैठ चुकी थी। दैनिक

समाचार-पत्र 'लोकबंधु' के पन्ने को उसने हाथ में थाम रखा था। भगत की ओर देखती हुई कहने लगी, "इस बस्ती के ही नहीं, समूचे हरिनगर के लिए बहुत बड़ा शुभ समाचार छपा है। अगले पाँच वर्षों के अन्दर बीस लाख रुपये की लागत से बीसों छोटे-छोटे धन्धे यहाँ चालू होंगे। इधर के जितने भी खेत-मजदूर हैं, सबको काम मिलेगा। फिलहाल उन्हें एक-एक एकड़ जमीन तो इसी छमाही में मिलने जा रही है। हमारी बस्ती के पचास के पचासों परिवार अब जमीन हासिल करेंगे। अपनी-अपनी जमीन के आप ही मालिक होंगे। बीज, खाद, हल-बैल सिचाई का इन्तजाम पंचायत की तरफ से होगा···

अचरज के मारे भगत का मुँह खुल गया था। दोनों तरफ टूटे दाँत थे, उनके बीचों-बीच लाल जीभ की छोर बहुत भली लग रही थी···भगत ने जानना चाहा, "मगर कौन करेगा यह सब ?"

हाथ चमकाकर फुलेसरी बोली, "कपिल बाबू, ठाकुर साहब सदानन्द सिंह, माया दीदी, दीपाजी, अपने बाबा गरीबदास जी, बी० डी० ओ० साहेब, दारोगाजी, दो जने एम० एल० ए० साहेब, गाँव के मुखिया जी, पाठकजी, यह कुल मिलाकर तेरह ठो नाम छपे हैं। अखबार में···इस सबकी मीटिंग पिछले रविवार को कपिल बाबू के बैठक खाने में, बन्द कमरे के अन्दर हुई थी। उसी मीटिंग मे ग्राम विकास का यह निर्णय लिया गया था···"

लछमन दास ने उंगली के पोरों पर गिनकर अपने-आपसे कहा, "सात रोज हो गये, आज शनिवार है न !"

फुलेसरी बोली, "बैंक की जिला शाखाओं के दो बड़े-बड़े हाकिम भी इस मीटिंग में बुलाये गये थे···हाँ, उनके नाम भर नहीं छपे हैं···"

खुशी के मारे भगत लछमन दास की आँखें गीली हो आयीं। वह कुछ बोलना चाहते थे, लेकिन प्रसन्नता के आवेग में घिग्घी बँध गयी थी। दोनों हाथ जोड़कर भगत ने बाबा गरीबदास और कपिल बाबू के नाम पर माथा झुका लिया। भगत को बाबा गरीबदास ने एक बार बतलाया था कि बाल दिवस के मौके पर दो आदमी यहाँ आये थे, वे दोनों ही गरीबों के बहुत बड़े हितचिंतक थे···लछमनदास ने सोचा—जरूर ही ऐसे अनूठे समाचार को उन्हीं दोनों ने इस अखबार में छपवाया होगा···

पूस महीने के आरम्भिक दिनों की मीठी धूप अमृत बरसा चुकी थी, दिन ढल रहा था। हाल में ब्याई हुई जवान बकरी आँगन से बाहर आकर, बरामदे के निकट अपने दोनों बच्चों को दूध पिला रही थी। फैली हुई टाँगों के अन्दर मोटे-मोटे दोनो थन लटक रहे थे। दूध से भरे-भरे, तने हुए···दोनों बच्चे अपनी-अपनी गरदन ऊंची करके एक-एक थन को चूस रहे थे। उनकी अगली टाँगें उठी हुई थीं।

अखबारों के पन्ने भगत के करीब रखकर फुलेसरी जा चुकी थी। भगत ने इधर-उधर देखा, गीली आँखों को गमछे की खूंट से पोंछ लिया।

भगत तब तक बकरी के उन बच्चों को दूध पीते देखते रहे जब तक बच्चों का पेट नहीं भर गया।